Gangotri

AJANTA

1952

JAN-DEC

K. U.
WAR LIB.

079510

COMPILED

Stock Verification-2[illegible]

Stock Verification-2[illegible]

अजन्ता

079510

079510

~~Acc.No: RT-081~~

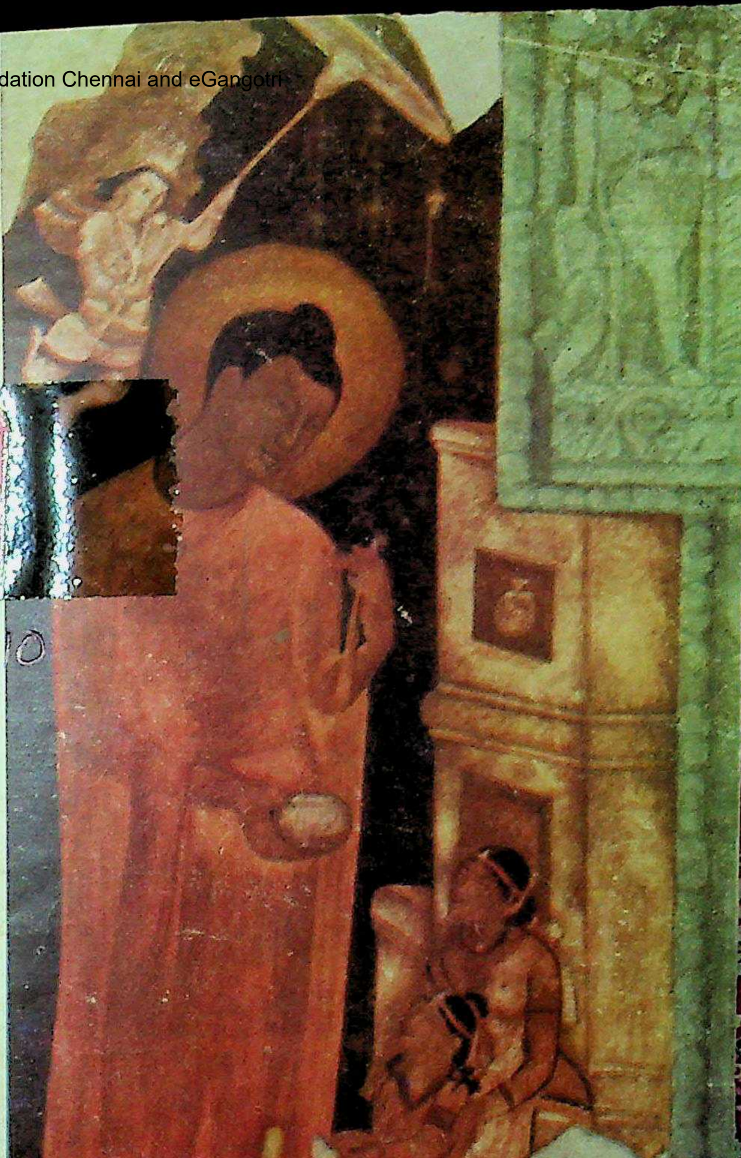

वर्ष ४ जनवरी अङ्क

हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभ

इस अङ्क में पढ़िए:—

श्री डा० रघुवीर
श्री के. शेषाद्रि
श्री प्रो० ओ. सी. गांगुली
श्री बनारसीदास चतुर्वेदी
श्री के. सजनलाल
श्री लालजीराम शुक्ल
श्री अंचल
श्री क़ाज़ी नज़रुल इस्लाम
श्री विनयमोहन शर्मा
श्री कमलप्रसाद 'कमल'

* * *

अगले अङ्क में पढ़िए:—

श्री डा० अवनीन्द्रनाथ ठाकुर
श्री डा० श्रीनिवासाचार्य
श्री जे. मस्करो
श्री बनारसीदास चतुर्वेदी
श्रीमती राजकुमारी शिवपुरी
श्री रामेश्वरदयाल दुबे
श्री सत्यभूषण 'योगी'
श्री अंचल
श्री निशंक
श्री विश्वप्रकाश दीक्षित 'बटुक'

"अजन्ता" का वार्षिक मूल्य ९) एक अङ्क का १) (भा० मु०)

हैदराबाद

में

मनोरंजन का सर्वोत्तम स्थान

वर्ष में केवल एक बार, एक स्थान पर अपनी तमाम जरूरियात की चीजें प्राप्त कीजिए।

हैदराबाद व भारत के विभिन्न स्थानों में उपलब्ध वस्तुओं के अनुपम संग्रह जिसमें प्रवेश होकर लाभ उठाइए।

नाना प्रकार की घरेलू दस्तकारियाँ, आधुनिक मैशीन-युग की अद्भुत चमत्कारिक

विराट् प्रदर्शन

इसके अलावा

- सरकार के विविध विभाग जो आपकी सतत सेवा में संलग्न हैं उनका संगठित प्रदर्शन।
- प्रदर्शिनी में कला तथा चित्रकारी का भी अद्भुत संग्रह किया गया है। प्रदर्शिनी का यह एक खास अंग है।

* * *

मनोरंजन व पार्क

यहाँ सब प्रकार के खेल तमाशों व मोटर साइकिल का मृत्यु कुएँ में हैरत अंगेज काम देखिये।

अखिल भारतीय औद्योगिक प्रदर्शिनी

मुकर्रमजाही रोड, हैदराबाद द.

६ फरवरी १९५२ से ९ मार्च १९५२ तक

प्रवेश शुल्क ०–२–०

प्रेसिडेण्ट,
श्री रामचन्द्रराव
एच. सी. एस.

मन्त्री,
श्री खाजा सरदारुल्लाखां

हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा

प्रान्तीय शाखा कार्यालय

(१) **श्री रेवाशंकर दुबे,**
संचालकः महाराष्ट्र प्रान्तीय हिन्दी प्रचार सभा,
शाहगंज, औरंगाबाद.

(२) **श्री राजवीर,**
संचालकः आन्ध्र प्रान्तीय हिन्दी प्रचार सभा,
स्टेशन रोड, वरंगल.

(३) **श्री शिवकुमार**
कर्णाटक प्रान्तीय हिन्दी प्रचार सभा,
किला रोड, गुलबर्गा.

तीनों स्थानों पर पुस्तक विक्रय विभाग, उच्च श्रेणियों के हिन्दी-वर्ग तथा हिन्दी के सम्बन्ध में आवश्यक सहायता सदैव प्रस्तुत ।

अजन्ता

दक्षिण भारत का प्रमुख
-हिन्दी मासिक-
वार्षिक मूल्य ९) एक प्रति १) भारतीय मुद्रा

व्यवस्थापक,
अजन्ता
हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा
नामपल्ली स्टेशन रोड, हैदराबाद-द.

COMPILED

दी
निजाम
शुगर
फैक्टरी
[लिमिटेड]

स्फटिकवत्, समरूप, मधुरतम

श्वेत शर्करा

★

जानकारी

विक्रय-विभाग

प्रधान कार्यालय से प्राप्त करें।

* * * *

प्रधान कार्यालय
आबिद रोड,
हैदराबाद — दक्षिण.

फैक्टरी
शक्कर नगर
निजामाबाद.

केबल तथा तार } "शुगर" • "शुगर" { केबल तथा तार

फोन नं० ४७०४, ४२९६, ४९३७, ४८७६

दी हैदराबाद कन्स्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड
आबिद रोड, हैदराबाद दक्षिण
के
मैनेजिंग एजेण्ट के प्रतिनिधि,
दी निजाम शुगर फैक्टरी लिमिटेड
दी हैदराबाद कन्स्ट्रक्शन कम्पनी लिमिटेड के लिए विक्रय विभाग

THE

Hyderabad Co-operative Dominion Bank Ltd.

[Estd. MARCH 1915]

Telephone : 4610

Telegram : DOMINBANK

Sub Offices :

PATHER GATTI,
UNIVERSITY BRANCH
(Adickmet)

HeadOffice :

SHAHRAH-E-OSMANI
HYDERABAD-DECCAN.

Branches :

JADCHARLA (Dt, Mahboobnagar) THUNGABHADRA PROJECT (Munirabad)

1. CURRENT ACCOUNTS are opened free of charge and interest is allowed at ½% per annum.
2. SAVING DEPOSITES are accepted aud interest is allowed at 2% per annum.
3. SPECIAL SAVINGS DEPOSITES are accepted and interest is allowed at 1½% per annum.
4. DRAFTS are issued on all important COMMERCIAL CENTRES and within the HYDERABAD STATE.
5. PENSIONS, MANSABS, etc, are collected on commission basis, premiums remitted & all standing instructions on behalf of the customers carried out.
6. SAFE DEPOSIT LOCKERS & VAULUTS are available at HEAD OFFICE.

BANKING BUSINESS OF EVERY DESCRIPTION TRANSACTED

K. SUNDARAVARADACHARI.
GENERAL MANAGER.

RAI DILSUKH RAM.
CHAIRMAN.

FIRE: ACCIDENT: MARINE:

The HYDERABAD UNITED INSURANCE CO., LTD.,

Sponsored by the Govt. of HYDERABAD.

Post Box No. 164, Abid Road, Hyderabad - Dn.

Telegram: 'HUICOL'

Telephone: 5579

Chairman:
L. N. GUPTA Esq., I.A.S.,

General Manager:
H. D. MEHTA Esq.

BRANCHES: Bombay, Calcutta, Madras, Nizamabad & Mancherial.

HIND

हिन्दी, तेलुगु, मराठी और अंग्रेज़ी की

सब तरह की

उत्तम

★ छपाई ★

के लिए

हमेशा याद रखिये

॥

★ हिन्दी-प्रेस ★

॥

हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा
श्री राम हिन्दी भवन

नामपली ● स्टेशन रोड ● हैदराबाद दक्षिण.

तार का पताः—हिन्दी

टेलीफोनः—५४५०

THE OSMANSHAHI MILLS LTD.
NANDED

and

THE AZAM JAHI MILLS LTD
WARANGAL

● ●

SECRETARIES, TREASURERS AND AGENTS

THE INDUSTRIAL TRUST FUND
Government of Hyderabad

HYDERABAD-DECCAN.

Manufacturers of

COTTON FABRICS OF OUTSTANDING QUALITY
AND DURABILITY.

For particulars and prices apply to:—

C. S. TYABJEE, Esqr., O. B. E.,

MANAGING AGENT-

159, Gunfoundry Road, Hyderabad-Dn.

Telegrams : "OSMANSHAHI" "AZAMJAHI"

Telephone : 4738

राष्ट्रभाषा

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का मुखपत्र
संपादक
भदन्त आनन्द कौसल्यायन

विषय सूची

१. राष्ट्रभाषा का वार्षिक मूल्य तीन रुपये और एक प्रति का चार आने है।

२. वी॰ पी. से अंक नहीं भेजा जाता। कृपया मूल्य मनी आर्डर द्वारा भेजें।

३. मनीआर्डर-कूपन में 'राष्ट्रभाषा' का चन्दा भेजने का उल्लेख, ग्राहक का नाम एवं पूरा पता सुवाच्य अक्षरों में लिखा रहना चाहिये।

४. 'राष्ट्रभाषा' फरवरी ५१ से प्रतिमास ता. ९, १० को रवाना की जायेगी।

५. पते में परिवर्तन कम-से-कम छः महीनों के अंकों के लिये करना हो तभी उसकी सूचना कार्यालय को दें। अन्यथा अपने पोस्ट आफिस से स्थानीय व्यवस्था कर लेनी चाहिये।

६. पत्र व्यवहार करते समय प्रत्येक पत्र में अपना नाम एवं पूरा पता सुवाच्य अक्षरों में लिखें; प्रमाणित प्रचारक, केन्द्र-व्यवस्थापक, राष्ट्रभाषा के ग्राहक—इन शब्दों के साथ अपनी क्रम-संख्या लिखें।

७. 'राष्ट्रभाषा' में प्रकाशनार्थ समाचार प्रान्तीय संचालकों के द्वारा मिलने पर ही उन्हें पत्र में स्थान दिया जा सकेगा।

—व्यवस्थापक

राष्ट्रभारती **भारतीय साहित्य की प्रतिनिधि पत्रिका**

साहित्य-संस्कृति-कला प्रधान पत्रिका "राष्ट्रभारती" प्रतिमास आपको भारतीय एवं विदेशी भाषाओं की साहित्यिक-सांस्कृतिक गतिविधिका परिचय देती है। इसमें देश-विदेश के गण्य-मान्य विद्वानों और कलाकारों की श्रेष्ठ रचनाएँ और अधिकृत अनुवाद भी रहते हैं। "राष्ट्रभारती" को राष्ट्रभाषा हिन्दी और लगभग सभी प्रान्तीय भाषाओं के श्रेष्ठ साहित्यकारों का सहयोग प्राप्त है।

★ **आज ही ग्राहक बन कर लाभ उठायें** ★

—राष्ट्रभारती प्रत्येक मास की १ तारीख को प्रकाशित होती है—

(वी. पी. भेजने का नियम नहीं है। नमूने की प्रति के लिए ।।=) के डाक टिकट भेजें।)

वार्षिक मूल्य ६) **एक प्रति ।।=)**

पताः— व्यवस्थापक "राष्ट्रभारती"

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, हिन्दीनगर, वर्धा (म॰ प्र॰)

‘अजन्ता’ के विषय में कुछ पत्र

......आपने ‘अजन्ता’ का सम्पादन-भार लिया है...उसमें आपके सम्पादन कौशल की छाप भी अंकित हो गई है। ‘अजन्ता’ के उज्वल भविष्य की कल्पना कर मैं प्रसन्न हो रहा हूँ।.........

—**विनयमोहन शर्मा**, एम. ए.
नागपुर

. . . . .

......दिसम्बर का अङ्क मिला। ‘अजन्ता’ के इस आश्चर्यजनक रूप से परिवर्तन को देख कर विस्मय हुआ, प्रसन्नता हुई।...पिछले पत्रों, सम्पादकीय और सामयिक के लिए आप मेरी बधाई स्वीकार कीजिए.......

—**राजेन्द्र यादव**, एम. ए.
आगरा

. . . . .

......‘अजन्ता’ के दिसम्बर का अङ्क बड़ा ही आकर्षक है।...‘अजन्ता’ के लेख रोचक एवं प्रभावपूर्ण हैं। बनारसीदास जी चतुर्वेदी का पत्र सुन्दर और सारगर्भित है। प्रगतिवाद पर तीनों लेखकों के लेख गम्भीर हैं।...समस्त प्रकाशित कविताएँ भावपूर्ण और सुन्दर हैं।...आशा है आप भविष्य में भी ऐसे ही रुचिर, गम्भीर एवं मार्मिक साहित्यिक सामग्री को पाठकों को उपहार के रूप में देते रहेंगे।........

—**ए. हनुमच्छास्त्री**, एम. ए.
तिरुपति (मद्रास)

. . . . .

.........‘अजन्ता’ के पिछले दोनों अङ्क मिले। दोनों ही अत्यन्त सुन्दर हैं।...‘प्रगतिवाद’ वाली Controversy ज्ञानवर्द्धक है.........

—**प्रकाशचन्द्र चतुर्वेदी**, एम. ए.
हाथरस

हैदराबाद और त्रावणकोर राज्यों के शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत

अजन्ता

मासिक पत्रिका

वर्ष ४ जनवरी १९५२ अङ्क १

सम्पादक
वंशीधर विद्यालङ्कार
श्रीराम शर्मा

—: संचालक :—

हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा

अनुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

१. बरसों बाद —श्री रामेश्वल शुक्ल 'अंचल' एम ए. १
२. सूर्योदय—श्री वंशीधर विद्यालङ्कार ३
३. उत्सर्ग—श्री कमलप्रसाद 'कमल' ४
४. विद्रोही—श्री नज़रुल इस्लाम
अनु० श्री वैजनाथ चतुर्वेदी, एम. ए. ५
५. गीत—श्री शैलबाला, एम. ए., बी. टी. ८
६. हिन्दी में पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण—श्री डा. रघुवीर, एम. ए. ... ९
७. हिन्दी साहित्य की वर्त्तमान इतिहास पुस्तकें—श्रो वंशीधर विद्यालङ्कार ... १३
८. ड्रीश और नव्य चेतनावाद—श्री के. शेषाद्रि, एम. ए. ... २२
९. हिन्दी में प्रेम-काव्य—श्री. प्रो. ओ. सी. गांगुली २९
१०. कबीर का विरह—श्री आनन्दकुमार दीक्षित ३०
११. गीत की एक कड़ी—श्री विनयमोहन शर्मा, एम. ए. ३०
१२. ग्वालियर की डायरी (१)—श्री के. सजनलाल, एम. ए. ... ३४
१३. मनुष्य की वासना का विकास—श्री लालजीराम शुक्ल, एम. ए. ... ४२
१४. प्राचीन भारत में जनतन्त्र व्यवस्था के संकेत—श्री महावीरदास, एम. ए. ... ४५
१५. सत्य, शिव और सुन्दर !—श्री प्रमोद, बी. ए. ४९
१७. अभिनय और आंत्रव्रण—श्री चिन्तामणि विनायक जोशी
अनु० श्री गोपीवल्लभ उपाध्याय ५१
१७. रज़ाकार—श्री श्रीराम शर्मा ५९
१८. साहित्य-चर्चा—श्री बनारसीदास चतुर्वेदी ६४
१९. बापू—श्री रमा शर्मा 'कान्त', साहित्यालङ्कार ६८
२१. सौ जीने से ज़ोरदार—श्री नवीनचन्द्र आर्य ६९
२२. चिट्ठी-पत्री—श्री प्रो. ओ. सी. गांगुली ७१
श्री रमेश, बी. एससी.
श्री धर्मवीर
श्री इन्द्र संघी
श्री केशवाचार्य
२३. नीर-क्षीर—श्री वंशीधर विद्यालङ्कार
श्री श्रीराम शर्मा ७४
२४. सामयिक ७७
२५. सम्पादकीय—श्री वंशीधर विद्यालङ्कार
श्री श्रीराम शर्मा ८२
२६. कार्य-विवरण (हिन्दी प्रचार सभा)—प्रधान मन्त्री, हि. प्र. स. ... ८६

वर्ष ४ | जनवरी १९५२ | अंक १

बरसों बाद............

आज बरसों बाद मैंने स्वप्न वह देखा रँगीला

रूप जिसका बाँसुरी की तान-सा मन मुग्ध करता
रूप जो अपनी सुरभि से साँस की प्रतिसन्धि भरता
स्वप्न--जिसमें सत्य की सूनी विकलता भास होती
स्वप्न--जिसकी नीलिमा जलते दृगों की प्यास धोती
तृप्ति के निखरे अमल आकाश में मन उड़ चला फिर
मंत्रिता जादू भरी उन खिड़कियों से जुड़ चला फिर
था हुआ जिनमें कभी सीमन्तिनी का चीर ढीला
आज बरसों बाद मैंने स्वप्न वह देखा रँगीला

(२)

लौं भरे दो सीप से दो दृग किसी के पास आये
दो अलक्षित चुम्बनों की लालिमा गति में सजाये
एक युग तक बोल को तरसा किये ये प्राण कातर
आज कानों में समाते हैं नहीं वे स्वर सिमट कर
हाथ में लेकर किसी ने हाथ फिर मेरा दबाया
भोर की मुस्कान-सा तन पर करों का कम्प छाया
जो कली के फूल बनते भेद सा गहरा नशीला
आज बरसों बाद मैंने स्वप्न वह देखा रँगीला

(३)

आज बरसों बाद कोई मिल गया विश्वास भरता
छा गई अवरुद्ध प्राणों में नयी गति की अमरता
मिल रहे जीवन धरित्री को नये अंकुर लहरते
आज रस के सिन्धु में कितने नये मोती उभरते
हो गई है रात दिन सी एक सपने के सहारे
लग गये दुख पार कितने एक आँचल के किनारे
है मरण से भी परे यह लघु चिरन्तन सुख लजीला
आज बरसों बाद मैंने स्वप्न वह देखा रँगीला

जबलपुर

—श्री रामेश्वर शुक्ल 'अंचल',
एम. ए.

○○○

सूर्योदय

देखो, सूरज निकल रहा है ।
बदल गया है रंग गगन का, रंग भूमि का बदल रहा है ॥

—

अन्धा होकर चला अंधेरा ;
कहीं ढूँढ़ने अपना डेरा ।
मधुर उषा की उजियाली में बाल किरण दल मचल रहा है ॥

—

विकसीं नव जीवन की कलियाँ ;
हिल मिल खेल रहीं रँग रलियाँ ।
दिग्वधुओं के मुख से आँचल हट कर सिर पर सँभल रहा है ॥

—

दूर हुई नीरव निश्चलता ;
नाच रही जगमग चंचलता ।
सतरंगी, उज्वल तारों से राग सुनहरा निकल रहा है ॥

—

जाग उठी दुनिया सपनों की ;
चहक रही चिड़िया प्राणों की ।
उठती लहरों में प्रकाश की दिल नव दिन का उछल रहा है ॥

हैदराबाद —वंशीधर विद्यालंकार

उत्सर्ग

आओ तुम को पंख लगा दूं

नील गगन में, मुक्त विहग सी, डोल सको ये भेद बता दूं
प्यार और बन्धन ! हे रानी, मानो, बन्धन प्यार नहीं है
प्रिय पथ को रोधित करने का, प्रेमी को अधिकार नहीं है
प्यार सिखाता है प्रिय पथ के, कांटों को पलकों से चुनना
प्रियतम पथ के मृदुल-पांवड़े, सांसों के तारों से बुनना
आ निज जीवन रस दे, तेरे पथ में पग पग फूल खिला दूँ
आओ तुम को पंख लगा दूं

कल तक तुम को पाना ही था, अन्तिम लक्ष्य बना जीवन का
कल भी याद तुम्हारी होगी, एक सहारा कातर मन का
अमर कामना तुम दुनिया की, तुम्हें अकेला कैसे हर लूं
सागर से निस्सीम हृदय को, इतना छोटा कैसे कर लूं
इसीलिये तो सोच रहा हूं, पाकर तुम को आज गंवा दूं
आओ तुम को पंख लगा दूं

याद तुम्हारी मेरा बल, पर, तुम यादों का भार न ढोना
कोमल चरणों की द्रुत गति को, इसके ढोने में मत खोना
चाह यही है, हलकी हो तुम, साथ पवन के उड़ती जाओ
यादें बाधा गति की, उनकी धूल न चरणों में लिपटाओ
जो पथ को घेरे हैं आओ, उन सपनों के जाल मिटा दूँ
आओ तुम को पंख लगा दूं

पीछे मुड़कर देखोगी तो, रुक जाएगा आगे बढ़ना
छोड़ सहारा तट का अब है, लहरों की छाती पर चढ़ना
मेरे निश्चय को हर लेंगे--रानी डगमग चरण तुम्हारे
मेरे पंख झुलस डालेंगे--ये नयनों के टूटे तारे
पलकों में सागर बांधे--तुम को हंसने की रीत सिखा दूँ
आओ तुम को पंख लगा दूं

हैदराबाद

--कमलप्रसाद 'कमल'

विद्रोही

[बंग कवि काज़ी नज़रुल इस्लाम की 'अग्निवीणा' नामक कविता-संग्रह में 'विद्रोही' पहली कविता हैं। सन् १९२१ में 'मुस्लिम-भारत' में इसका सर्वप्रथम प्रकाशन हुआ और सन् १९२२ के 'प्रवासी' में उनकी दूसरी कविता 'प्रलयोल्लास' साहित्य-जगत् के सामने आई। इन दो कविताओं ने अल्पकाल में श्री नज़रुल इस्लाम को बंगाल का लब्ध-प्रतिष्ठ कवि बना दिया। प्रथम यूरोपियन महासमर में योग देकर नज़रुल इस्लाम मेसोपोटामिया गए थे, इसलिए यह विद्रोह का स्वर भावुकता मात्र नहीं है—अनु०]

(१)

विद्रोही वीर! बोलो:
"मेरा सिर उन्नत है,
मेरे उन्नत सिर को देख हिमालय के शिखर सिर झुका लेते हैं।
महाविश्व के महाकाश को भेद कर,
चन्द्रसूर्य,तारों और ग्रहों से ऊपर;
भूलोक, गोलोक, से ऊपर,
खुदा के सिहासन को छिन्न भिन्न कर,
विश्व-विधाता को आश्चर्य-चकित करता हुआ मरा सिर ऊपर उठा हुआ हैं।
रुद्र भगवान् ने स्वयं मेरे ललाट पर विजय-श्री का ज्वलन्त टीका किया है।

(२)

मैं चिर-दुर्दम, दुर्विनीत और नृशंस हूँ।
मैं महाप्रलय का नटराज हूँ, मैं साईक्लोन हूँ, मैं ध्वंस हूँ।
मैं पृथ्वी का दुर्निवार अभिशाप हूँ और सारे संसार को चूर चूर करता हूँ।
मैं अनियम, उच्छृङ्खल हूँ और जितने बंधन हैं, नियम, क़ानून की शृङ्खलाएं हैं, सबको तोड़न वाला हूँ।

मैं भार से लदे हुए पोत को डुबाने वाला टारपीडो हूँ,
मैं भयंकर शब्द कर फटने वाला माइन हूँ।
मैं काल-वैशाखी का कालकेश और भयंकर धूल से भरा हुआ तूफ़ान हूँ।
मैं विद्रोही हूँ, मैं सृष्टिकर्ता का विद्रोही-पुत्र हूँ।

(३)

मैं दुर्मद हूँ, मेरे प्राणों का प्याला सदा मद-पूर्ण रहता है।
मैं हवन की अग्नि-शिखा हूँ, मैं जमदग्नि हूँ।
मैं स्वयं यज्ञ, पुरोहित और अग्नि हूँ।
मैं सृष्टि हूँ, मैं ध्वंस हूँ, मैं लोकालय हूँ, मैं श्मशान हूँ;
मैं प्रातः और सन्ध्या दोनो हूँ।
मैं इन्द्राणी-पुत्र के हाथ का चन्द्र, और उसके मस्तक का सूर्य हूँ।
मेरे एक हाथ में बाँस की बाँकी बाँसुरी है, और दूसरे में रण-तूर्य है।
मैं व्यथा-वारिधि को मन्थन कर विष पीनेवाला नीलकण्ठ हूँ,
और बन्धन-मुक्त गंगोत्री की धारा धारण करनेवाला व्योमकेश हूँ।

(४)

मैं बन्धन तोड़ बाहर निकली हुई कुमारी की वेणी हूँ,
मैं तरुणी की आँखों की आग हूँ।
मैं षोड़शी के कमल-हृदय का उद्दाम प्रेम हूँ, मैं धन्य हूँ।
मैं सन्यासी का उन्मन मन हूँ।
मैं विधवा के हृदय की क्रन्दन-श्वास हूँ,
निराश के हृदय की लम्बी साँस हूँ।
मैं गृह-हीन, चिरपथिक के पथ भूलने की व्यथा हूँ।
मैं अपमानित की मर्म-वेदना हूँ,
प्रियतमा से लाञ्छित प्रेम की हृदय-ज्वाला हूँ।
मैं अभिमानी के सतत क्षुब्ध हृदय की कातरता हूँ, गम्भीर व्यक्तिकी व्यथा हूँ;
मैं चुपके चुम्बन लेने वाले चोर प्रेमी की कम्पन हूँ,
मैं प्रथम-स्पर्श से काँपती हुई कुमारी की थर थर हूँ।
मैं छिप कर देखने वाली प्रियतमा की चकित दृष्टि हूँ,
मैं चञ्चल लड़की का प्यार हूँ और उसकी चूड़ी का खन्-खन् शब्द हूँ।

(५)

मैं सावन की वर्षा से हरी-भरी खेती हूँ।
मैं कभी धरणी को अवर्णनीय रूप देता हूँ,
कभी भयंकर बाढ़ से विनष्ट कर देता हूँ।
मैं विष्णु की गोद में सोने वाली कन्या को छीन लाने वाला हूँ।
मैं अन्याय हूँ, मैं उल्का हूँ, मैं शनि हूँ।
मैं धूमकेतु-ज्वाला हूँ, और विषधर की काल-फणि हूँ।
मैं कटे मस्तक वाली चण्डी हूँ, सर्वनाशी रण में लीन हूँ।
मैं दोज़ख की आग में बैठ कर फूल-सी हंसी हँसनेवाला हूँ।

(६)

मैं परशुराम का कठोर परशु हूँ।
मैं सारे संसार को क्षत्रियहीन कर उदार शान्ति लाऊँगा।
मैं बलराम के कन्धे का हल हूँ।
मैं नवीन-सृष्टि के महानन्द की अवहेलना करनेवाला पराधीन देशों को उखाड़ फेंकूँगा।
उसी दिन महा-विद्रोही मैं रण मे थक कर शान्त हो सकूँगा।
जब उत्पीड़ित का क्रंदन आकाश में न गूँजता होगा,
और अत्याचारी की तलवार भयङ्कर युद्ध में न चमकती होगी।

(७)

मैं विद्रोही भृगु की तरह भगवान् की छाती में अपने पद-चिन्ह अंकित करूँगा।
मैं शोक-ताप-रहित सृष्टिकर्त्ता ख़याली विधाता का हृदय चूर चूर कर दूँगा।
मैं चिर-विद्रोही वीर हूँ।
संसार को त्याग कर, अकेला सिर ऊँचा कर उठ खड़ा हुआ हूँ।

हैदराबाद

अनु० श्री बैजनाथ चतुर्वेदी,
एम. ए., साहित्यरत्न.

गीत

टूट गये हैं यदि सुख सपने,
ये सांसें हैं भार न कहना;
दुख की अग्नि परीक्षा में,
प्रिय, जीवन है निस्सार न कहना।

देखो, फूलों का लघु जीवन, पल भर को खिलते मिट जाते,
पर पत्थर की कठोरता में युग के युग भी सिमट समाते ;
पर क्या लघुता असफलता है, और दीर्घता क्या अनन्त है,
ग्रीष्म और हिम से रुँध कर भी, भूला जाता क्या वसन्त है ?

जग में असफल है फूलों का,
लघु जीवन व्यापार न कहना;
उनके क्षण भर के सौरभ पर,
विजयी प्रस्तर भार न कहना।

मरु का यह सिकता प्रसार भी न्योछावर है ओस कणों पर
युग जीवी बबूल क्या भारी हो सकता इन क्षुद्र तृणों पर,
ओस सूख जाती सिकता में पर इससे क्या वह असत्य है,
तृण जल जाते तो क्या उससे कंटक हो जाता प्रशस्य है ?

दुख रजनी में भूल गया वह,
युग बीता अभिसार न कहना;
दुख सागर में डूब गया जो,
झूठा था वह प्यार न कहना।

यदि दिन आज समाप्त हो गया तो निशि भी कल बीत चुकेगी
बाधायें जो आज उठी हैं, कल अपने ही आप झुकेंगी।
जीवन के आंगन में प्रतिदिन सांझ उषा आलिंगित होते
दुख के सुख से, सुख के दुख से, प्रति दिन प्रति पल इंगित होते।

जीवन को बेसुरी बीन के,
तारों की झंकार न कहना;
दहला देती जो जड़ चेतन,
ऐसी रण-हुंकार न कहना।

—शैलबाला,
एम. ए., बी. टी.

हैदराबाद

हिन्दी में पारिभाषिक शब्दावली का निर्माण

आजकल भारतवर्ष में ११ साहित्यिक भाषाएं प्रचलित हैं। सात उत्तर में और चार दक्षिण में। उत्तर की सातों भाषाएँ अर्थात् पंजाबी, हिन्दी, बंगला, आसामी, उड़िया, मराठी, और गुजराती संस्कृत की पुत्रियां हैं। भाषाविज्ञ यद्यपि तामिल, तेलुगु, कन्नड और मलयालम इन चारों दक्षिणी भाषाओं का उद्गम संस्कृत से नहीं मानते तथापि इन भाषाओं का भी पोषण और वर्द्धन संस्कृत भाषा और साहित्य के आधार पर ही हुआ है।

साहित्यिक दृष्टि से इन ११ में से ९ तो लगभग एक ही स्तर की हैं। पंजाबी और आसामी का साहित्य कुछ थोड़ा है। अन्यों में कथा, नाटक, कविता, दर्शन आदि की रचनाएं पर्याप्त मात्रा में हुई हैं। जो भाव एक भाषा में व्यक्त किए जा सकते हैं वे दूसरियों में भी न्यूनाधिक रूप से हो ही सकते हैं। शब्दराशि, सामान्य तथा विशेष, बहुत भिन्न नहीं हैं। संस्कृत के ४०, ५० सहस्र शब्द क्या तामिल और मलयालम तथा हिन्दी और बंगला सभी में विद्यमान हैं। भागवत, पुराण और भगवद्गीता, रामायण और महाभारत, षड्दर्शन, आयुर्वेद, ज्यौतिष और कर्मकाण्ड की शब्दावलि हिमालय से कन्याकुमारी तक एक है।

किन्तु जनसंख्या की दृष्टि से इन ११ भाषाओं में बड़ा अन्तर है। पंजाबी, आसामी, उड़िया, गुजराती, मराठी, मलयालम, कन्नड़ और तामिल इनमें से प्रत्येक के प्रयोग करने वालों की संख्या तीन कोटि के लगभग अथवा उससे भी न्यून है। बंगला और तेलुगु की संख्या चार चार करोड़। भारतवर्ष का विभाजन होने से पूर्व बंगलाभाषियों की संख्या ६ करोड़ के लगभग थी। अब हिन्दी पर दृष्टिपात करें तो इसके प्रयोग कर्ताओं की संख्या सतलुज और आबू से बिहार की पूर्वी सीमा तक और हिमालय से विन्ध्य तक, न्यूनातिन्यून १५, १६ कोटि होती हैं। संसार की भाषाओं में चीनी, अंग्रेज़ी, हिन्दी और रूसी ये चार विस्तृत भाषाएँ हैं। इस स्थिति को ध्यान में रखते हुए आज से दो वर्ष पूर्व भारतीय संविधान सभा में सर्व सम्मति से निश्चय किया गया कि हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा स्वीकार की जाए।

भारत उन्नतिशील देश है। हम जीवन के प्रत्येक अंग का विकास चाहते हैं। भाषा राष्ट्र की अभिव्यक्ति का मुख्य साधन है। विदेशियों के शासन काल में भारतीय भाषाओं को नीचे दबाया गया और विदेशी भाषाओं को सिखाने के लिए विश्वविद्यालय खोले गए। अब स्वतन्त्रता के पश्चात् हमको अवसर मिला है कि हम अपना कार्य अपनी भाषाओं द्वारा कर सकें।

अंग्रेजी राज्य में शासन पश्चिमी पद्धति से किया जाता रहा। अभी तक हम उसी पद्धति को अपनाए हुए हैं। भाषा परिवर्तन के लिए यह आवश्यक है कि जो विचार अंग्रेज़ी में प्रकट होते आए हैं वे हिन्दी में भी किए जाएँ। एक प्रकार से इस को अनुवाद भाषा कहा जा सकता है। यद्यपि यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक शब्द और प्रत्येक वाक्य का सर्वथा अंग्रेज़ी से हिन्दी में प्रतिशब्द और प्रतिवाक्य सम्पन्न किया जाए। हिन्दी भाषा की शैली अंग्रेजी से पर्याप्त भिन्न है। शब्द और वाक्यरचना इस विभिन्नता को ध्यान में रख कर ही बनानी आवश्यक है, किन्तु जब विचार की सूक्ष्मता, गम्भीरता, विशालता, व्यापकता आदि को स्पष्ट रूप से प्रकट करना अनिवार्य हो तब नये शब्दों की आवश्यकता पड़ेगी ही। हां, प्रयोग करते समय ध्यान रखना आवश्यक होगा कि यथासम्भव अपनी शैली का अनुसरण किया जाए।

हिन्दी की वाक्यशैली नाटक, कथा, समालोचना, आदि साहित्यिक विषयों के लिए पिछले दो सौ वर्षों से विकसित की जा रही है। किन्तु जब हम नये क्षेत्रों में हिन्दी का पदार्पण कराएँगे तो विषय की आवश्यकताओं के अनुसार नई शैली का बनना स्वाभाविक है। विषय विषय की शैली भिन्न रहती है। गणित और काव्य की

शैली में आकाश पाताल का अन्तर है। एवमेव संविधान और कथा की शैली में यह अन्तर संसार की प्रत्येक भाषा में दृष्टिगोचर होता है।

भाषा में नये, शब्दों का प्रादुर्भाव विकास का एक मार्ग है। यह मार्ग कभी बन्द नहीं किया जा सकता। अंग्रेजी में पिछले दो सौ वर्षों में २० लाख नए शब्दों का निर्माण हुआ है।

शब्दों के निर्माण के सम्बन्ध में कई प्रकार के मत प्रचलित हैं। अंग्रेज़ी जानने वाले भारतीयों का मत है कि अंग्रेज़ी के शब्दों को ही हिन्दी के कोष में स्थान दे दिया जाए। इस में सन्देह नहीं कि ऐसा करने से अंग्रेज़ी जानने वालों को सुविधा होगी। यह मत अंग्रेज़ी न जानने वालों की दृष्टि से ग्राह्य नहीं। यदि इस मत को मान लिया जाए तो परिणाम स्पष्ट है कि थोड़े बहुत साहित्यिक शब्द छोड़कर शेष अंग्रेज़ी की शब्दराशि अपने कोश में भर ली जाएगी। किन्तु यह नितान्त अस्वाभाविक और अहितकर होगा। जनता इसको कभी स्वीकार भी न करेगी। किन्तु यदि यह ऐसा हो सकता तब तो क्षणमात्र में ही हिन्दी का शब्द भंडार अंग्रेजी से ओत प्रोत हो जाता और कुछ वर्षों में हिन्दी का अन्त्येष्टि संस्कार भी समीप आ जाता।

यह सच है कि प्रत्येक भाषा में कुछ न कुछ विदेशी शब्द प्रवेश कर जाते हैं जैसे हमारे यहां तम्बाखू, पीपा, गिलास, मोटर, स्टेशन आदि। भाषाविज्ञों की गणना है कि विदेशी शब्दों की सर्वाधिक संख्या अंग्रेज़ी में है। किन्तु जब हम ने भारतीय दृष्टि से Concise Oxford Dictionary का अध्ययन आरम्भ किया तो उसमें तो एक प्रतिशत भी भारतीय शब्द नहीं मिले। अंग्रेज़ों का सम्पर्क तीन सौ वर्ष तक हमारे साथ रहा। इस देश में रहते हुए भले ही वे धोबी, दाल, घी, आदि शब्दों का प्रयोग करें, किन्तु सामान्य अंग्रेज़ी में बहुत ही थोड़े भारतीय शब्दों का समावेश हुआ जैसे mongoose (मंगूस) मराठी से और rice (राईस) तामिल से। किन्तु यदि हम हिन्दी भाषा की दृष्टि से परीक्षा करें तो खाट से Cot जैसे बहुत थोड़े शब्द अंग्रेज़ी में मिलेंगे। मलाया के शब्दों की संख्या हिन्दी के शब्दों की संख्या से कहीं अधिक है।

जो हिन्दी के शब्द लिए भी गए वे प्रायः अकेले ही रह गए। उनसे अन्य शब्दों का निर्माण अंग्रेज़ी में नहीं किया गया; जैसे (जंगल)। इसका विशेषण जंगली अंग्रेज़ी में प्रयोग नहीं होता, इसके स्थान में wild, woody आदि शब्द प्रयोग होते हैं।

Concise Oxford Dictionary सामान्य अंग्रेज़ी का प्रामाणिक कोष है। यदि हम बड़े Oxford कोष को ले लें तो इसमें भी स्थिति का परिवर्तन नहीं होता। शिव, विष्णु, ब्रह्म, उपनिषद्, माया वेदान्त आदि शब्द तो अंग्रेज़ी कोषों में इसलिए प्रवेश किए गए हैं कि भारतीय धर्म, इतिहास, दर्शन, आदि सम्बन्धी अंग्रेज़ी ग्रन्थों को समझने में अंग्रेज़ी जनता को कठिनाई न हो। वास्तव में यह शब्द अंग्रेज़ी भाषा के अंग नहीं बने। God के स्थान में कोई अंग्रेज़ी शिव अथवा ईश्वर का प्रयोग नहीं करता और न ही Soul के लिए आत्मा का।

अंग्रेज़ी में फ्रेंच, लेटिन और, ग्रीक इन तीन भाषाओं से शब्द लिए गए हैं। अन्य भाषाओं के शब्द तो नगण्य संख्या में हैं। फ्रेंच और अंग्रेज़ी के बीच केवल २२ मील का अन्तर है। फ्रेंच लेटिन की पुत्री है। लेटिन और ग्रीक समस्त पश्चिम की सांस्कृतिक मूल भाषाएं हैं।

भाषा–गणना–विशारदों ने सामान्य अंग्रेज़ी के सम्बन्ध में लिखा है कि सौ में से ८५ शब्द लेटिन से आए हैं तथा शेष १५ प्रतिशत में से ५ ग्रीक से। अब दस रह गए। ये पुरानी अंग्रेज़ी अथवा एंग्लोसेक्सन के हैं।

इन गणनाओं पर सावधानी से विचार किया जाए और हिन्दी शब्दराशि की गणना की जाए तो स्थिति बहुत विभिन्न प्रतीत नहीं होती।

भारतीयों ने तो विदेश में अपना साम्राज्य नहीं फैलाया, इसलिए विदेशी भाषाओं के साथ हिन्दी का सम्पर्क विजेता के रूप में नहीं हुआ। हां, पिछली दस

शताब्दियों से विदेशियों का नहीं किन्तु विदेशी भाषाओं का घोर अनिवार्य साम्राज्य रहा। उस के फलस्वरूप तुर्की, फारसी, अरबी, पुर्तुगाली, अंग्रेज़ी आदि के सहस्रों शब्द हमारे यहां प्रचलित हुए।

इस समय हमारे सामने एक नई परिस्थिति उपस्थित हुई है। वह यह कि हमको दस बीस वर्षों के अन्दर ही अमरीका और रूस के समकक्ष पहुँच जाना चाहिए। जो उन्नति इन देशों में सौ डेढ़ सौ वर्षों में हुई उसका आभास उनकी भाषा से पूर्णरूपेण, हो जाता है क्योंकि प्रत्येक नए विचार और आविष्कार के लिए नये शब्दों की आवश्यकता पड़ती है। दस बीस वर्ष में हम समस्त भारत को अंग्रेज़ी नहीं पढ़ा सकते। विदेशी भाषा में चिन्तन करना प्रकृतिसम्मत नहीं। इसीलिए तो डेढ़ सौ वर्षों के अंग्रेज़ी शिक्षण के पश्चात् हमारा देश विज्ञान में पीछे रहा है।

मूल विचारों के अबाध उद्भव और प्रसार के लिए अपनी भाषाओं में शिक्षण होना हमारी प्रथम आवश्यकता है। शिक्षण के लिए वैज्ञानिक साहित्य का निर्माण अपेक्षित है और वैज्ञानिक साहित्य के वैज्ञानिक शब्दावलि के निर्माण की आधार रूपेण प्रथम आवश्यकता है।

सामान्य हिन्दी भाषा में तत्काल कोई परिवर्तन नहीं करना चाहिए। न शैली में न शब्दराशि में। किन्तु हां; विशेष शब्दों का निर्माण करने के लिए अधो निर्दिष्ट सिद्धान्तों को ध्यान में रखना चाहिए।

१. यथासम्भव शब्द केवल हिन्दी में ही नहीं किन्तु उत्तर और दक्षिण की अधिकतम भाषाओं में प्रयोज्य हो सकें जैसा कि हम अभी निर्देश कर चुके हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति संस्कृत शब्दों द्वारा सरलता से हो सकती है। उदाहरण रूप से Osteomalacia; इसका अनुवाद यदि हम चाहें तो दो प्रकार से कर सकते हैं। एक केवल हिन्द्री की दृष्टि से और दूसरा अखिल भारत की दृष्टि से ; हिन्दी की दृष्टि से हड्डियों का मृदु हो जाना, अखिल भारतीय दृष्टि से अस्थि मृदुता। इसी प्रकार Otorroea केवल हिन्दी की दृष्टि से कान का बहना और अखिल भारतीय दृष्टि से कर्णस्राव।

२. शब्द सार्थक होने चाहिएं। सार्थक होते हुए दूसरे समान शब्दों से उनका अर्थछाया भेद भी स्पष्ट रहना चाहिए। उदाहरणरूपेण वाणिज्य में Account renderd उपस्थापित लेखा और Account Stated स्वीकृत लेखा। Account Stated वास्तव में वह Account rendered है जो दोनों पक्षों ने ठीक स्वीकार कर लिया हो। एक और उदाहरण लीजिए Parallel ; रेखागणित में इसका अर्थ समान्तर है, किन्तु वनस्पतिशास्त्र में और अन्यत्र भी कई स्थानों पर इसका अर्थ है समदिश।

३. यथासम्भव असमस्त अंग्रेज़ी शब्दों का अनुवाद समस्त शब्दों से न करना चाहिए। आज से पचास वर्ष पूर्व मंद्रभद्र नामक गुजराती ग्रन्थ के कर्ता ने और उसकी अनुकृति करके, अन्य उपहासकों ने सिगनल जैसे अकेले शब्द का अनुवाद 'अग्निरथ गमन आगमन सूचनपट्टिका' किया है। वास्तव में यह उपहास असमस्त शब्दानुवाद का अनुपम समर्थक है। सिगनल का अर्थ संकेत है। प्राचीन साहित्य में इसके लिए संज्ञप्ति शब्द भी आया है। चाहे यह संकेत रेल के आने अथवा जाने का हो अथवा स्नेही मित्रों के मिलने का अथवा क्रान्तिकारियों के उत्पात आरम्भ का।

४. प्रायः एक शब्द से अनेक शब्दों की उत्पत्ति होती है और एक शब्द से अनेक समास बनते हैं। हिन्दी शब्दावलि का निर्माण करते समय यह परम आवश्यक है कि हम मूल शब्द का ही अनुवाद करके न ठहर जाएं किन्तु मूल शब्द से निकलने वाले अन्य शब्दों का भी उससे निर्माण हो सकना चाहिए जैसे Mercury पारा अथवा पारद। रसायन शाला में इसके दो विशेषण हैं Mercuric पारदिक और Mercurous पारध। इनके अतिरिक्त एक तीसरा विशेषण Mercurial पारदयुत और फिर Mercuriol से संज्ञा Mercurialness पारदयुतता है। केवल विशेषण ही नहीं इससे

दूसरी संज्ञाएं भी बनती हैं Mercuriate पारदीय और Mercuride पारदेया इतने से भी समाप्ति नहीं होती। धातु Mercurity पारदायन और धातु Mercurate अथवा Mercurise पारदीयन। एक एक शब्द से कभी कभी तो बीसों और पचासों शब्द बनते हैं। जिन पाठकों को अधिक उत्सुकता हो वे हमारा कोष उठाकर Phos, Phosgene, Phosphagen, Phosphorus आदि शब्दमाला को पढ़ जाएं। इन शब्द-मालाओं को संग्रह करना और विशेष विषयों में इनके अर्थों का विश्लेषण करना समयापेक्ष, परिमापेक्ष और तद् तद् विषय ज्ञानापेक्ष है। क्योंकि एक ही व्यक्ति में सर्वविषय ज्ञान का समावेश होना कठिन है इसलिए अनेक विशेषज्ञों की सहायता अपेक्षित है।

५. शब्दों का निर्माण करते समय हमें अपने देश के प्राचीन और अर्वाचीन शब्दसमूह का यथाशक्य पूर्णज्ञान होना चाहिए। अथवा ऐसा कहिए कि हमारे पास पूर्ण भंडार उपस्थित होना चाहिए जिससे कि हमारा भूत, वर्तमान और भविष्य एक सूत्र में ग्रथित हो। अपना कोष निर्माण करने से पूर्व हमने इस शब्द भंडार के संग्रह करने के लिए वर्षों व्यतीत किए हैं। इस भंडार में अमूल्य रत्न विद्यमान हैं। इनसे हाथ धो बैठना अपनी पैतृक संपत्ति से हाथ धो बैठना होगा।

उपरिलिखित सिद्धान्तों का अनुसरण करते हुए हमने विगत बीस वर्षों में अंग्रेजी के डेढ़ लाख शब्दों का अनुवाद किया है। रसायन शास्त्र, भौतिक पदार्थविज्ञान, प्राणिशास्त्र, आधुनिक, पाश्चात्य, आर्युविज्ञान, गणित, व्यापार, संविधान और राजनीति, शासन और विधि, अर्थशास्त्र, शिक्षा, खनिजविद्या, रेलवे, कृषि आदि अनेक विषयों में हमारी हिन्दी अथवा भारतीय शब्दावलि सम्पूर्ण हो चुकी है और अब सम्भव है कि हिन्दी अंग्रेजी भाषा का पूर्णरूपेण स्थान ले सके। अब हमें हिन्दी भाषा में वैज्ञानिक साहित्य निर्माण की आवश्यकता है। नागपुर विश्वविद्यालय ने इस दिशा में पर्याप्त प्रगति की है।

नागपुर

--डा. रघुवीर,
एम. ए., पी एच. डी., डी. लिट.

मैंने अच्छे से अच्छा भोजन किया है, उत्तम से उत्तम मद्य पिया है, मुझे श्रेष्ठतम सुन्दरियों का प्रेम प्राप्त हुआ है; परंतु मुझे तन्दुरुस्ती जैसा आनन्द किसी वस्तु में प्राप्त नहीं हुआ।

मैंने जीवन में कड़वे से कड़वे घूँट पिए हैं परन्तु मुझे ग़रीबी जैसी कोई वस्तु कड़वी नहीं प्रतीत हुई।

मैंने दुनिया भर का बोझ अपने ऊपर उठाया है परन्तु मुझे कर्ज़ जैसा और कोई बोझ नहीं प्रतीत हुआ।

गुजराती '**कुमार**' से

हिन्दी साहित्य की वर्तमान इतिहास-पुस्तकें

कहते हैं कि इतिहास सदा अपने आप को दुहराता है। इस उक्ति में चाहे कुछ सत्य का अंश हो या न हो परंतु यह बात सोलहों आना सत्य है कि इतिहास की पुस्तकें प्रायः अपने आप को दुहराती रहती हैं। इतिहास की पुस्तकें जो एक बार प्रामाणिकता प्राप्त कर लेती हैं वे अधिकांश में सदा के लिए ही प्रमाणिक हो जाती हैं। किसी और देश या भाषाओं के साहित्य के इतिहास के विषय में संभवतः इसके विरुद्ध कुछ कहा जा सके परन्तु हमारे विस्तृत देश के प्राचीन इतिहास के सम्बन्ध में साधारणतया, और हमारी भाषाओं के साहित्य और संस्कृति के इतिहास के सम्बन्ध में विशेषतया, इस बात को निस्सन्देह सत्य कहा जा सकता है। कारण यह है कि अनुसन्धान का कार्य सुगम कार्य नहीं है; इस में कई पेचीदगियां और कठिनाइयाँ हैं; पुस्तकालयों की सुविधा और अप्राप्य पुस्तकों का प्रश्न है। परिणाम यह होता है कि इस क्षेत्र में थोड़े से जो व्यक्ति प्रवेश कर पाते हैं और वे जो कुछ लिख देते हैं वह प्रामाणिक बन जाता है। उसे अकाट्य समझा जाने लगता है और इसीलिए इतिहास की पुस्तकें ज़रा-से हेर-फेर या जोड़-तोड़ से उसी को दुहराती रहती हैं या उन्ही को एक सिद्धान्त के रूप में प्रस्तुत करती रहती हैं।

प्रत्येक देश के समान प्रत्येक भाषा के साहित्य की भी अपनी ही एक विशेषता होती है और इतिहास में इसी विशेषता को आदि से अन्त तक खोजना पड़ता है। हर एक भाषा के अपने ही प्रश्न और समस्याएँ होती हैं। एक नदी अपना मार्ग स्वयं बनाती है, चाहे वह कितनी ही टेढ़ी-मेढ़ी चाल से क्यों न चले परन्तु अपना मार्ग वह स्वयं बनाती है। एक नदी जैसे अपना मार्ग बनाती है दूसरी नदी वैसे ही अपना मार्ग नहीं बनाती। भाषाओं के साहित्य के विषय में भी यही बात सत्य है। एक देश के और दूसरे देश के साहित्य में चाहे कितनी ही समानता क्यों न हो तो भी वह अपने ही विशिष्ट रूप में प्रकट होता है; उस की अपनी ही पद्धति और प्रणाली होती है और वह जैसे एक भाषा की होती है ठीक वैसी ही दूसरी भाषा की नहीं होती। जो भाषा की अपनी इस विशिष्टता को नहीं परख सकता वह भाषा के और उसके साहित्य के स्वरूप से यथार्थतया परिचित नहीं हो सकता और जब तक उसके स्वरूप से परिचिति न हो भाषा के इतिहास के अनुसन्धान में सफलता प्राप्त नहीं हो सकती।

हिन्दी साहित्य के क्रमबद्ध इतिहास लिखने का सूत्रपात लगभग १८३९ ई. में होता है। अन्य भारतीय भाषाओं के इतिहास की तरह हिन्दी में इतिहास लिखने के कार्य में भी यूरोपियन लोगों ने ही नेतृत्व किया। इन यूरोपियन लोगों ने इन भाषाओं और इनके साहित्य को अध्ययन करने और समझने का बहुत कुछ प्रयत्न किया तो भी यूरोपियन भाषाओं के साहित्यों के अपने आदर्शों के कारण उनकी एक विशेष प्रकार की मनोवृत्ति विकसित हो गई थी और अपना एक विशेष दृष्टिकोण बन गया था और उनकी यह मनोवृत्ति और दृष्टिकोण बहुत कुछ तत्कालीन राजनैतिक कारणों से, भारतवर्ष की पराधीनता और उस समय की विशिष्ट परिस्थितियों से और अपने देश के साहित्य और संस्कृति के ढाँचों, विशेषताओं और इसी प्रकार के अन्य कारणों से प्रभावित था। भारतवर्ष की राजनैतिक और सामाजिक अवस्था उस समय कुछ ऐसी अस्वाभाविक थी कि वे उससे आविष्ट हुए बिना नहीं रह सकते थे और इस कारण वे इस देश की सभ्यता और संस्कृति को बिना किसी पक्षपात के, उसी के अपने विशिष्ट रूप में समझने में अधिकांश में अक्षम थे। उनके लिए इस प्रकार का इतिहास लिखना एक उदारता और असाधारणता का कार्य था। इस प्रकार के दृष्टिकोण का यह परिणाम हुआ कि इन इतिहास पुस्तकों में जो

वस्तु सामान्य होते हुए भी असामान्य थी वह अपनी असामान्यता का अनुभव न करा सकी और जो असामान्य वस्तु थी वह अत्यधिक असामान्य हो गई और हम उसकी सामान्यता से ही परिचित न हो सके ; जो एक विच्छिन्न वस्तु थी वह परम्परागत वस्तु बन गई और जो परम्परागत वस्तु थी वह एक और पृथक् होकर पड़ी रह गई ; हमारे साहित्य में बहुत-सी अवान्तर बातों का प्रवेश हो गया और इस प्रकार हमारी भाषा के साहित्य का क्रमबद्ध इतिहास तो तैयार हुआ परन्तु उसके कारण हमारे इतिहास की समस्याएँ उतनी हल न हुई जितनी कि पैदा होगईं । हमें पूर्ण विश्वास है कि यदि इन्हीं यूरोपियन विद्वानों को आज की परिवर्तित अवस्थाओं में यह इतिहास लिखना पड़ता तो वह और ही प्रकार का लिखा जाता । इस प्रकार हमारे साहित्य की नींव पड़ गई और इसी नींव के सहारे हमारे साहित्य के इतिहास की भित्ति खड़ी होने लगी और यह सिलसिला किसी न किसी रूप में चलता चला गया और इतिहास सम्बन्धी बहुत सी पुस्तकें लिखी गईं । यद्यपि हिन्दी का साहित्य तो पुराना था परन्तु क्रमबद्ध इतिहास लिखने का यह उपक्रम नया था । एक तो ये प्रयत्न व्यक्तिगत और सीमित थे और दूसरा ये बिलकुल प्रारंभिक अवस्था में थे ; वातावरण और परिस्थितियों के अनुकूल न होने के कारण इस कार्य की महत्ता का भी पूर्णरूप से अनुभव न हो सका ।

इसी बीच में काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा ने इस क्षेत्र में प्रवेश किया और सन् १०.२९ में श्रीयुत पं. रामचन्द्र शुक्ल का "हिन्दी साहित्य का इतिहास" प्रकाशित हुआ । हिन्दी साहित्य के इतिहास में यह एक स्मरणीय घटना थी । इस पुस्तक के बाद हिन्दी साहित्य के इतिहास में बहुत से गण्य-मान्य लेखकों द्वारा बहुत-कुछ संशोधन और परिवृद्धि हुई है तो भी हिन्दी साहित्य के इतिहास की जो परिधि और सीमाऐं इस पुस्तक में निश्चित की गईं वे बिना किसी सन्देह और विवाद के बहुत कुछ प्रामाणिक मान ली गईं; उन्होंने जिस तरह इसका काल विभाजन और नामकरण किया वह उसी प्रकार मान लिया गया और आज अधिकांश में हमारी साहित्य के इतिहास की पुस्तकों का इसी आधार और सीमाओं के अन्दर निर्माण हो रहा है ; जो इतिहासकार इस विभाजन से सहमत नहीं हैं उन्होंने भी इसी विभाजन के अनुसार या थोड़े-बहुत परिवर्तन से अपनी इतिहास की पुस्तकों को लिखा है । हिन्दी साहित्य के इतिहास की पुस्तकों में जितनी मान्यता इस एक पुस्तक को प्राप्त हुई है संभवतः वह हिन्दी साहित्य के इतिहास की किसी अन्य पुस्तक को प्राप्त नहीं हुई । यह पुस्तक चाहे कितनी ही महत्वपूर्ण क्यों न हो तो भी यह मानते हुए भी कि यह प्रयत्न पहले प्रयत्नों की अपेक्षा काफ़ी दूर गया है हमें यह कहना पड़ेगा कि यह प्रयत्न भी एक प्रारम्भिक प्रयत्न ही है। इस इतिहास को शुक्ल जी ने अपने उन्हीं नोटों के आधार पर लिखा है जो कि उन्होंने अपने विद्यार्थियों के लिए लिखे थे । इससे यह ज्ञात होता है कि मुख्यतया यह पुस्तक विद्यार्थियों के उपयोग के लिए लिखी, गई है और भी बहुत-सी हिन्दी साहित्य में इतिहास की पुस्तकें विद्यार्थियों के लिए ही लिखी गई हैं और जो पुस्तकें विद्यार्थियों को पढ़ाने के लिए लिखी जाती हैं उनका एक विशेष दृष्टिकोण होता है-उसका उद्देश्य एकमात्र अनुसन्धान नहीं होता ।

हिन्दी साहित्य का क्षेत्र इतना विशाल और विस्तृत है और उसमें इतनी विभिन्नता है कि उसके बीच में से हिन्दी साहित्य की सम्पूर्ण रेखा को चाहे वह कितनी ही टेढ़ी-मेढ़ी क्यों न हो खींच देना अत्यन्त कठिन है । इसके आदिकाल में अपभ्रंश का साहित्य है और वह अपभ्रंश भी एक प्रकार का नहीं है-उसका साहित्य भी कई सौ वर्षों तक फैला हुआ है ; इस के साहित्य के बहुत से स्तर हैं, उसके अपने ही प्रश्न और अपनी ही समस्याएँ हैं । दूसरी ओर हिन्दी साहित्य के अध्ययन की बड़ी समस्या उसके अन्तर्गत बहुत-सी बोलियों की या उपभाषाओं की है ; इन बोलियों या उपभाषाओं का अपना क्षेत्र, विशेषता और इतिहास है; इन की अपनी ही विशिष्ट प्रथाएँ और परम्पराएँ हैं । जो साहित्य एक बोली में जिस प्रकार उत्पन्न हुआ है, पारस्परिक समानता और सम्बन्ध होते हुए भी वह ठीक उसी प्रकार दूसरी बोली में उत्पन्न नहीं हुआ । इन सब के बीच में से साहित्य के इतिहास के एक सूत्र को निकाल ले जाना विच्छिन्न

तत्वों को और घटनाओं को किसी प्रकार एक सूत्र से जोड़ने के समान ही प्रतीत होता है--उनमें किसी प्रकार का घटनाओं का नैरन्तर्य और सामञ्जस्य नहीं है । जो स्थान जिस कवि या साहित्यकार को दिया गया है वह वहाँ एक पृथक् रूप में ही दृष्टिगोचर होता है ; उसके द्वारा न उसकी पूर्ववर्ती और न परवर्ती परम्परा का ज्ञान होता है और इसलिए इन साहित्यकारों का साहित्य में कौन-सा विशिष्ट स्थान है इसका हमें ठीक तरह पता नहीं चलता । उदाहरण के लिए हम मिथिला के कवि विद्यापति को लेते हैं । निस्सन्देह विद्यापति एक महान् कवि हैं परन्तु क्या हिन्दी काव्य साहित्य में उनकी काव्यशैली की कोई ऐसी परम्परा है जिससे हमें हिन्दी साहित्य में उनके विशिष्ट स्थान का पता लग सके । हम तो समझते हैं कि यदि बंगाली साहित्य में विद्यापति को यह महान् आदर या गौरव प्राप्त न हुआ होता तो हिन्दी साहित्य में उनको यह स्थान भी प्राप्त होता या नहीं इस में सन्देह है । फिर हिन्दी के विशाल साहित्य में विद्यापति जैसे महान् कवि की कितनी लोकप्रियता है और उनके गानों या पदों को क्या गौरव प्राप्त हुआ है ? हिन्दी कविता को विद्यापति की देन क्या क्या है ? उसकी पृष्ठभूमि क्या है और उसके अनन्तर आनेवाले हिन्दी कवियों पर उसका क्या प्रभाव पड़ा है ? इसका हिन्दी साहित्य के इतिहास में विशेष रूप से कुछ पता नहीं चलता । इसके विपरीत यदि हमें मैथिल-कोकिल विद्यापति के पदों का बंगाली काव्य-साहित्य में अनुसरण करें तो हमें वहाँ उसका स्थान और परम्परा का ज्ञान होता है जिसके बिना विद्यापति की कविता के महत्व को समझा नहीं जा सकता । हिन्दी में विद्यापति के पदों का संग्रह भी बंगाली पुस्तकों के आधार पर किया गया है । विद्यापति पर जितनी पुस्तकें बंगाली में प्राप्त होती हैं हिन्दी में उतनी नहीं प्राप्त होतीं । यदि बंगाल के काव्य-साहित्य में से विद्यापति को निकाल दिया जाए तो बंगाली साहित्य सूना हो जाएगा परन्तु हिन्दी-काव्य-साहित्य के विषय में यह बात उतनी तीव्रता से अनुभव नहीं की जा सकती । विद्यापति बिहार के रहनेवाले थे इसलिए बिहार के पूर्व और परवर्ती साहित्य को जब तक पूर्ण प्रतिनिधित्व नहीं दिया जाएगा तब तक हिन्दी-साहित्य के इतिहास में एकमात्र विद्यापति को अन्तर्गत करने का अर्थ इस इतिहास में उनके नाम को जितना अन्तर्गत करना होगा उतना उनके काव्य को नहीं । इसी प्रकार राजस्थान के साहित्य को लीजिए । राजस्थानी के साहित्य में " रासो " का एक विशिष्ट स्थान है परन्तु वह विशिष्ट स्थान उसे हिन्दी साहित्य के इतिहास में प्राप्त नहीं हो सका क्योंकि उस के पूर्वापर क्रम का ज्ञान नहीं होता । उससे हमें यह तो बोध होता है कि इस समय में यह साहित्य उत्पन्न हुआ परन्तु हमें यह ज्ञान नहीं होता कि हिन्दी की विशाल साहित्य-धारा में इसका प्रवेश कहाँ हुआ और उसने इस धारा को किस प्रकार प्रभावित किया या गति प्रदान की । हिन्दी के साहित्य के इतिहास में वह एक पृथक्-सी घटना प्रतीत होती है यद्यपि 'रासो' बहुत-से लिखे गए परन्तु वे राजस्थानी साहित्य के अतिरिक्त हिन्दी की मुख्य भाषा में कुछ विशेष प्रगति नहीं कर सके । जब तक हमें समस्त राजस्थानी साहित्य की पृष्ठभूमि और उस की पूर्वापरवर्ती प्रवृत्तियों का पता नहीं लगेगा तब तक हम " रासो " और इसी प्रकार के अन्य साहित्यिक रचनाओं की विशेषता ऐतिहासिक दृष्टि से परिचित नहीं हो सकते । इतिहास में इन बोलियों के साहित्य का इतना अल्प विवरण है और जो कुछ विवरण है वह भी अत्यन्त विवादग्रस्त है और इसके साथ साथ उस साहित्य को समझने की दुरूहता का जब प्रश्न आता है तब उसका रहा-सहा महत्व भी एकमात्र पुस्तकों का विषय बन जाता है उसे अनुभव नहीं किया जा सकता ।

हिन्दी के साहित्य का क्षेत्र जितना विस्तृत और और व्यापक है-इतिहासकारों की दृष्टि इतनी विस्तृत और व्यापक नहीं है और हो भी कैसे सकती है । हम इतने विस्तृत इतिहास को एकमात्र ऊपर ऊपर से, बिलकुल बाह्य रूप से, केवल उड़ती हुई दृष्टि से देख सकते हैं । इतने विस्तृत और विभिन्न साहित्य के विषय में हमारा ज्ञान पल्लवग्राही ही हो सकता है । यदि हम इसी पल्लवग्राही ज्ञान के आधार पर इतिहास बनाएँगे, भिन्न भिन्न घटनाओं को शृंखलित करेंगे तो वे संभवतः किसी प्रकार एक सूत्र में बँध तो जाएँगे परन्तु

उसकी भिन्नता और पृथक्ता उसे किसी एक वस्तु के ही अंश के रूप में उपस्थित नहीं कर सकेगी । जितनी उपभाषाओं को आज हिन्दी के नाम से कहा जाता है वे उपभाषाऐं यदि एकमात्र भूतकाल की ही वस्तु होतीं तो भी उनका अध्ययन सरल और सुगम न होता क्योंकि उनका विस्तार पर्याप्त है परन्तु फिर भी उनका क्षेत्र सीमित होजाता और उनका अध्ययन सूक्ष्मतया किया जा सकता था । इन में भी प्रायः सभी उपभाषाओं का साहित्य वर्तमान काल में प्रगति कर रहा है । हिन्दी साहित्य के इतिहासों में उन के भूतकाल का और वह भी बिलकुल आंशिक और संक्षिप्त-सा उल्लेख है और दुर्भाग्यभवश इस इतने-से उल्लेखपर उनका क्रम समाप्त हो जाता है ; उनकी अगली प्रगति या भविष्य का हमें कहीं पता नहीं चलता । आज इन उपभाषाओं की बहुत-सी रचनाओं को ही 'लोक-गीत' के नाम से कहा जाने लगा है-यद्यपि इन्हें "लोक-गीत" के नाम से कहा जाना उपयुक्त नहीं है—इनमें से बहुत-से गीत उस उपभाषा के साहित्य के गीत हैं । यदि हम इन समस्त उपभाषाओं को "हिन्दी" ही समझते हैं तो हमें या तो उनका प्रारंभ से अन्त तक पूर्ण इतिहास देना चाहिए और या फिर इन में से हमें एकमात्र उन्हीं उपभाषाओं को हिन्दी में स्थान देना चाहिए जिनके साहित्य ने हिन्दी की मुख्य धारा को प्रवाहित करने में सहायता प्रदान की है और या फिर इसी धारा में आकर सम्मिलित होगई हैं । इन उपभाषाओं के कारण हिन्दी साहित्य का बहुत विस्तार हो गया है जिसका परिणाम न केवल एक प्रकार की अमर्यादा है परन्तु उसकी वजह से इतिहासकार को बहुत-सी ऐसी समस्याओं का समाधान करना पड़ता है जो समस्याएँ कि मूलरूप से हिन्दी की मुख्य धारा की नहीं हैं । प्रश्न यह है कि हम हिन्दी के नाम पर कितनी उपभाषाओं और उनके विस्तृत साहित्य का अध्ययन करेंगे? क्या एक दो पुस्तकों के थोड़ा-बहुत पढ़ लेने से हमारी उस उपभाषा और उपभाषा के साहित्य से परिचिति हो सकती है और हमें उसके ऐतिहासिक महत्व का यथार्थतया अनुभव हो सकता है । हमें हिन्दी साहित्य के इतिहास में उनका थोड़ा-सा पुट मिल जाने से उनकी ऐतिहासिक स्थिति की स्पष्टता और महत्व का ज्ञान नहीं होता । हमें हिन्दी साहित्य के क्षेत्र की सीमा को कुछ तो निश्चित करना पड़ेगा नहीं तो यह अव्यवस्था अब बहुत दिनों तक नहीं चल सकेगी । जब तक यह क्षेत्र इतना विस्तृत रहेगा तब तक हमारी दृष्टि सूक्ष्मता से वस्तु स्थिति का निरीक्षण नहीं कर सकेगी ; हम बाह्य साक्ष्य और बाह्य परीक्षा को अन्तः साक्ष्य और अन्तः परीक्षा से अधिक महत्व देते रहेंगे । इतने विस्तृत साहित्य के प्रत्येक भाग और अंश को ऐतिहासिक दृष्टि से समझ सकने के लिए हमें बहुत विस्तार में जाना पड़ता है । हमें इस विस्तार को संकुचित करना पड़ेगा-इसके बिना हमारा अध्ययन सुसम्बद्ध और गहरा नहीं हो सकेगा ।

इसके लिए हम समझते हैं कि इतने विशाल और विस्तृत हिन्दी साहित्य के इतिहास में से हमें ऐतिहासिक दृष्टि से एकमात्र उन्हीं उपभाषाओं के साहित्य को पूर्ण रूप से लेना पड़ेगा जिनका हिन्दी साहित्य की मुख्य धारा से बिलकुल प्रत्यक्ष सम्बन्ध है ; जिन के लिए हिन्दी साहित्य को वह रूप प्राप्त नहीं हो सकता था जो कि उसे आज प्राप्त हुआ है । शेष बोलियों में से एकमात्र उतना ही स्वल्प-सा भाग लिया जाएगा जिसका कि हिन्दी की मुख्य धारा से किसी-न-किसी प्रकार का सम्बन्ध है । इस दृष्टिकोण से हम समझते हैं कि हमें एक तो उन्हीं हिन्दी की बोलियों को लेना पड़ेगा जो अपने क्षेत्र को छोड़ कर हिन्दी के अन्य प्रदेशों में अपने आप को लोकप्रिय बना सकी हैं और जिनका साहित्य अपने क्षेत्र से अतिरिक्त भी निर्मित हुआ है और दूसरा जिनका सभ्बन्ध हिन्दी के साहित्य के अत्यन्त निकट है । हम समझते हैं कि इस प्रकार कुछ ही बोलियाँ रह जाएँगो जिनका कि ऐतिहासिक दृष्टि से सूक्ष्मतया अध्ययन करना पड़ेगा । इनमें से अवधी, पूरबी, व्रजभाषा और खड़ी बोली ही रह जाएँगी । अवधी और पूरबी का भी हमें संभवतः इतने विस्तार से अध्ययन नहीं रहना पड़ेगा जितना कि व्रजभाषा और खड़ी बोली का । देखा जाय तो साहित्य में खड़ी बोली के लोकप्रिय होने के पूर्व हिन्दी की साहित्यिक भाषा मुख्यतया व्रजभाषा ही थी । व्रज भाषा में हिन्दी साहित्य

की जितने समय तक रचना होती रही उतनी किसी अन्य उपभाषा की नहीं । व्रजभाषा के कारण ही हिन्दी को इतनी लोकप्रियता और साहित्यिक विस्तार प्राप्त हुआ ; वह देश के सब वर्गों में पढ़ी और लिखी जाने लगी । व्रजभाषा में एकरूपता उत्पन्न हुई और उस में अन्य उपभाषाओं का सम्मिश्रण हो गया । व्रजभाषा के बाद हिन्दी साहित्य में खड़ी बोली का बोलबाला हो गया । हमारा विचार है कि हिन्दी साहित्य के इतिहास में मुख्यतया इन्हीं बोलियों के इतिहास को लिया जाना चाहिए--शेष का तो समावेश प्रसंगवश इसीलिए ही किया जाना चाहिए क्योंकि इनके साहित्य का हिन्दी साहित्य की मुख्य धारा से सम्बन्ध है परन्तु जिन बोलियों की धारा मुख्यतया अलग ही प्रवाहित हो रही है, जिनका सम्बन्ध वैसा ही है जैसा कि एक काव्य में स्थायी भाव के साथ संचारी भाव का होता है उनका उतना ही समावेश होना चाहिए । इस से हम हिन्दी साहित्य के क्षेत्र को मर्यादित कर सकेंगे और हम उसके अध्ययन के लिए अपनी सीमा की रेखाओं को स्पष्टतया खींच सकेंगे । वर्तमान अवस्थाओं में हमारे साहित्य के इतिहास के अत्यन्त विस्तृत हो जाने के कारण हमारे इतिहास का क्षेत्र निर्मर्यादित और अव्यस्थित हो गया है और हमारी सीमा की रेखाएँ अस्पष्ट हो गई हैं और इस अस्पष्टता के कारण हमारा चित्र अपने पूर्ण रंगों में उभर नहीं पाता, उस में धुँधलापन है । हम इतनी दूर की दौड़ लगा रहे हैं जो हमारे बस की नहीं है ।

परन्तु यदि हमारे इतिहासकारों का यही विचार हो कि इन समस्त उपभाषाओं को हिन्दी साहित्य के इतिहास का आधार बनाया जाना चाहिए जो हमें उपयुक्त नहीं प्रतीत होता तो जिस तरह इतिहास में एक काल को 'अपभ्रंशकाल' नाम दिया गया है उसी प्रकार अन्य विभागों को हमें इन उपभाषाओं के नाम पर ही बनाना पड़ेगा । जैसे राजस्थानी, पूर्वी, अवधी, व्रजभाषा और खड़ी बोली का काल आदि और जिन बोलियों का साहित्य छूट गया है हमें उन के साहित्य को भी इस में अन्तर्गत करना होगा । इन विभागों में हमें इन उपभाषाओं के साहित्य के इतिहास का पूरा विवरण देना पड़ेगा जिससे हमें उन भाषाओं के साहित्य की प्रत्येक मुख्य विशेषता और महत्व का ऐतिहासिक ज्ञान हो सके । हमें इस में उन भाषाओं की वर्तमान प्रगति को भी सम्मिलित करना होगा । इस समय हमारे साहित्य का जो काल-विभाग किया गया है वह किसी दृष्टि से भी हमें युक्तिसंगत नहीं प्रतीत होता । काल का जो नाम रखा गया है उसका साहित्य उस के सर्वथा अनुरूप नहीं है । कोई ऐसा काल नहीं हो सकता जिसमें एकमात्र एक ही प्रकार का साहित्य उत्पन्न हो । यह सत्य है कि एक विशेष काल में एक विशेष प्रकार का साहित्य उत्पन्न होता है परन्तु यह बात एक सीमित क्षेत्र में ही सत्य हो सकती है । इसे एक ऐसी भाषा के साहित्य के क्षेत्र में ठीक नहीं समझा जा सकता जिसका कि क्षेत्र इतना विस्तृत और विशाल हो । ऐसे महान् देश के एक भाग में एक महान् घटना होती है और दूसरे भाग में दूसरी । इस प्रकार का विभाजन उस समय के साहित्य की समस्त प्रवृत्तियों को प्रदर्शित नहीं कर सकता और फिर साहित्य सदा महान् घटनाओं को ही लेकर नहीं चलता-- वह तो सामान्य-सी घटना को भी असामान्य बना देता है । फिर ऐसा नही होता कि एक समय में साहित्य एक ही जैसा उत्पन्न होता है उसमें भिन्नता अनिवार्य है । साहित्य मनुष्य की मानसिक सृष्टि है और क्योंकि मनुष्यों के मन, भावना तथा रुचि कभी एक सी नहीं होतीं, इसलिए साहित्य में एक समय में भी सदा एकरूपता नहीं होती इन सब बोलियों के साहित्य के विस्तृत रूप को से हिन्दी साहित्य में अन्तर्गत करने से बहुत सी नई समस्याएँ उत्पन्न होंगी जिनका ऐतिहासिक दृष्टि से समाधान करना आवश्यक होगा ।

इन्हीं उपभाषाओं के समान 'अपभ्रंश' भाषा का भी प्रश्न है। कई इतिहासकारों ने अपभ्रंश को हिन्दी का ही एक रूप समझ लिया हैं और उसे पूर्ण रूप से हिन्दी साहित्य में अन्तर्गत कर लिया है। अपभ्रंश को कहीं बोलचाल की बोली, कहीं साहित्यिक भाषा, कहीं देशी भाषा, और कहीं पुरानी हिन्दी कहा गया है । इसमें सन्देह नहीं कि अपभ्रंश का हिन्दी भाषा और उसके साहित्य के विकास से गहरा सम्बन्ध है । परन्तु जिस

प्रकार प्राकृत एक प्रकार की नहीं है उसी प्रकार अपभ्रंश भी एक प्रकार की नहीं है। गुजराती साहित्य के इतिहासकार अपभ्रंश को जूनी अर्थात् पुरानी गुजराती कहते हैं और अपभ्रंश का सम्बन्ध बंगाली, उड़िया और मराठी आदि भाषाओं से भी है। यह सत्य है कि हिन्दी को न केवल छन्द और काव्य के ढाँचे अपभ्रंशसे प्राप्त हुए हैं परन्तु विचारधारा और काव्य की कई अन्य परम्पराएँ भी प्राप्त हुई हैं। फिर भी अपभ्रंश को हिन्दी का नाम देना जैसा कि कुछ इतिहासकारों और श्रीयुत राहुल सांकृत्यायन ने किया है हिन्दी के विस्तृत क्षेत्र को और भी अधिक विस्तृत करना है। अपभ्रंश का साहित्य कई सदियों तक फैला हुआ है और इसका अध्ययन न केवल एक स्वतंत्र विषय है परंतु उसकी ऐसी अपनी समस्याएँ हैं जिन्हें हिन्दी साहित्य के इतिहासकार के लिए समझना कठिन है। हमारा कहने का यह अर्थ नहीं है कि हमें अपभ्रंश के साहित्य को नहीं लेना चाहिए परंतु हमें इसके समूचे साहित्य को हिन्दी के अन्तर्गत नहीं करना चाहिए। हाँ, हमें इसमें ऐसे कवियों और साहित्यकारों की विशेष रूप से चर्चा करनी चाहिए जिनका कि हिन्दी की काव्यधारा से सम्बन्ध हो और जिनका अध्ययन हिन्दी काव्य साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन के लिए उपयोगी हो। आजकल जो हिन्दी साहित्य के इतिहास की पुस्तकें हैं इनमें से कई अपभ्रंश के इस प्रकार के कवियों का उल्लेख नहीं है और न उनमें इस प्रकार की कोई तुलना करने का प्रयत्न किया गया है। इनमें से एक तो स्वयंभू है जो आठवीं सदी का कवि है। इसने 'रामायण' लिखी है जिसका नाम "पउमचरिउ" है। इसका अध्ययन तुलसीदासजी के 'रामचरितमानस' के तुलनात्मक अध्ययन के लिए आवश्यक है। तुलसीदासजी ने स्वयं भी इस ओर इशारा किया है "जे प्राकृत कवि परम सयाने।" इसी प्रकार दसवीं सदी के पुष्पदंत कवि ने 'कृष्णकाव्य' लिखा है जिसकी हिन्दी के कृष्ण काव्य से तुलना की जा सकती है। इसी प्रकार जैनाचार्य मेरुतुंग की "प्रबन्ध-चिन्तामणि" में अपभ्रंश के कुछ ऐसे दोहे मिलते हैं जिन की परम्परा हमें पिछले हिन्दी साहित्य में प्राप्त होती है। जैसे मृणालवती मुंज से कहती है :—

"बाह बिछोड़बि जिह तुहूँ हउँ तेवइँ का दोसु।
हियअड्ढिय जइ नीसरहि, जाणइँ मुंज सरोसु ॥"

इसी प्रकार का एक दोहा सूरदासजी के विषय में भी हिन्दी में प्रसिद्ध है। कहते हैं कि कृष्ण जब सूरदास को छोड़कर चले गए थे तब सूरदास ने कहा था :—

"बाँह छुड़ाए जात हो, निबल जानि कै मोहि।
हिरदे ते जब जाहुगे, सबल बदौंगो तोहि ॥"

इन से अपभ्रंश की काव्य परम्परा का हिन्दी में पता चलता है। यदि 'अपभ्रंश काल' के साहित्य को छोड़ कर अपभ्रंश के उन्ही कवियों को लिया जाएगा जिनकी हिन्दी काव्य साहित्य में परम्परा है और या जिनका अध्ययन हिन्दी काव्य की तुलनात्मक हिन्दी के लिए आवश्यक है तो अपभ्रंश के विस्तृत साहित्य के कुछ अंश ही की प्रसंग के अनुसार हिन्दी साहित्य के इतिहास में आवश्यकता होगी और समस्त अपभ्रंश साहित्य को उसमें सम्मिलित करने की आवश्यकता नहीं रह जाएगी। हमारा प्रयत्न यह होना चाहिए कि हिन्दी साहित्य के इतिहास के विस्तृत क्षेत्र को जितना हिन्दी से ही सम्बद्ध बनाएँ उतना ही हमारा क्षेत्र प्रासंगिक और मर्यादित होगा। अन्यथा हम इतने विस्तार में पड़ जाएँगे कि हिन्दी के साहित्य का इतिहास एक ओर रह जाएगा और जिसको प्रधानता मिलनी चाहिए उसे वैसी प्रधानता नहीं प्राप्त हो सकेगी।

हिन्दी साहित्य के वर्तमान इतिहास जितने भी लिखे गए हैं प्रायः एक ही प्रकार के हैं। उन्हें बहुत कुछ एक ही दृष्टि से लिखा गया है। कुछ में कुछ भेद भी है। जिस सामग्री के आधार पर उन्हें लिखा गया है वह इतनी अपर्याप्त है और वह अभी तक विवाद की अवस्था में है और उस के सामने प्रश्नात्मक चिन्ह लगा हुआ है। निर्विवाद रूप से अभी प्रायः किसी भी विवादग्रस्त विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता; कुछ सिद्धान्त बना लिए गए हैं और इन्हीं का ज़रा-से हेर-फेर से सर्वत्र प्रतिपादन किया जाता है। कवियों के जन्म और जीवन आदि के विषय में मतभेद है जो स्वाभाविक

0 79510

होते हुए भी इतिहास को प्रामाणिक नहीं बनने देते। फिर इनकी पुस्तकों के भी ऐसे संस्करण नहीं प्राप्त होते जिन्हें सर्वथा प्रामाणिक कहा जा सके। इन अप्रमाणिक संस्करणों के आधार पर जिस साहित्य के इतिहास का निर्माण किया जा रहा है वह भी किस प्रकार प्रामाणिक हो सकता है। प्रारम्भिक अवस्था में कल्पना से ही अधिक कार्य लिया जाता है और इन इतिहास की पुस्तकों में भी कल्पना से बहुत-कुछ कार्य लिया गया है। यह सत्य है कि प्रारम्भिक अवस्था में यह स्वाभाविक है फिर भी इसे आज की परिस्थितियों में उपयुक्त नहीं समझा जा सकता। हम अभी तक अपनी परिस्थितियों से ऊपर उठ कर अपने साहित्य का निरीक्षण नहीं कर सकते। हमारे देश में अंग्रेज़ी के राज्य भाषा और उसके विशाल साहित्यिक और अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के कारण हमारी देशी भाषाओं का इतिहास न केवल निष्प्रभ हो गया है अपितु उस से हमारे इतिहासकारों के निरीक्षण, परीक्षण और आलोचन में अप्रत्यक्ष रूप से एक हीनता की मनोवृत्ति (Inferiority Complex) आ गई है जिस के परिणास्वरूप हम एक तो अपने साहित्य के इतिहास में अंग्रेज़ी साहित्य की मसस्त विशेषताओं को प्रदर्शित करना चाहते हैं और दूसरा हम अपने महान् कवियों और साहित्यकारों को अस्वाभाविक रूप में महान् देखना चाहते हैं और हम उन्हें प्रत्येक दृष्टि से महान् बनाना चाहते हैं। जैसे मानों हमें यह डर लगा रहता है कि वे किसी अंश में अमहान् न सिद्ध हो जाएँ। महान् वस्तु वही होती है जिस में बहुत-से क्षुद्र अंश होते हैं परन्तु वे समस्त क्षुद्र अंश मिल कर भी उनकी महानता या उनके गौरव को रत्ती भर भी कम नहीं कर सकते। साहित्य के इतिहास में महानता की अपेक्षा किसी साहित्यकार की अपनी विशेषता का अध्ययन करना अधिक आवश्यक है। इसी प्रकार की मानसिक वृत्ति का यह परिणाम है कि हमारे साहित्य में सामान्यता का अंश लुप्त-सा हो गया है।

हिन्दी साहित्य के वर्तमान इतिहास में रीतिकाल को जो महत्व, प्राप्त होना चाहिए था वह उसे प्राप्त नहीं हो सका है। भाषा की जैसी एकरूपता और उसका विकास और प्रवाह, विषयों की विविधता तथा विस्तार, साहित्यकारों की प्रचुरता, सृजन शक्ति और कलाकारत्व, एक ही प्रकार के विषयों में भेद और विस्तार और सर्वसाधारण, विद्वानों और धनियों-मानियों में इस भाषा के प्रति रुचि और प्रेम जैसा इस समय उत्पन्न हुआ वैसा अन्य समयों में नहीं। फिर इस समय के साहित्य की जितनी प्रामाणिक सामग्री प्राप्त होती है वैसी अन्य समयों के साहित्य की नहीं। यदि यह कहा जाय कि इसी समय में व्रजभाषा के अन्दर परिस्कृति, संस्कृति, शब्दों में संगीत और एकरूपता उत्पन्न हुई तो इसमें किसी प्रकार की अत्युक्ति न होगी। यह सत्य है कि इस समय में हिन्दी भाषा में भक्त और सन्त कवि उत्पन्न नहीं हुए परन्तु इसी समय में साहित्यकार और भाषा के कलाकार उत्पन्न हुए और इस भाषा को अद्भुत लोकप्रियता प्राप्त हुई। इस समय व्रजभाषा को व्रज के क्षेत्र से बाहर अद्वितीय प्रतिष्ठा प्राप्त हुई और यह समस्त हिन्दीभाषा प्रदेश की काव्यभाषा बन गई। राजा, महाराजा भी इस भाषा में काव्य लिखने में अपना गौरव अनुभव करने लगे। इस काल के कवियों को शृंगारी, कृत्रिम या एकमात्र अलंकारिक कहकर उपेक्षा करना उपयुक्त नहीं है। इसी कारण इन में से अधिकांश की हिन्दी साहित्य के इतिहास में जो स्थान प्राप्त होना चाहिए था वह प्राप्त नहीं हुआ।

एक बात और है। हमारे साहित्य के इतिहास में साहित्यकारों की जैसी आलोचना है वैसा उनका इतिहास नहीं है। इन पुस्तकों में जन्म और जीवन की बातों के विवाद के अतिरिक्त आलोचना को इतिहास समझा गया है। आलोचना अवश्यक है परन्तु फिर भी इतिहास की पुस्तकों और समालोचना की पुस्तकों में भेद है। हमारे साहित्य के इतिहास में आलोचना को प्रधानता दी जाती है जब कि प्रधानता साहित्यकि दृष्टि से उनको ऐतिहासिक स्थिति को प्राप्त होनी चाहिए। आलोचना के लिए हमें आलोचना की पुस्तकों को पढ़ना चाहिए न कि इतिहास की। इस आलोचना का यह परिणाम हुआ है कि हिन्दी साहित्य के इतिहास की पुस्तकें आलोचना की गम्भीरता में बहुत कुछ दर्शनशास्त्र की पुस्तकें बन गई हैं। इन इतिहास की पुस्तकों में वही शुष्कता

और नीरसता आ गई है जो कि दर्शनशास्त्र की पुस्तकों में होती है। इन में कबीर को जितना दार्शनिक बनाया गया है उतना कवि या साहित्यकार नहीं। तुलसीदास को जितना समन्वयवादी और धर्म का रंग दे दिया गया है उतना उनमें कवि या साहित्यकार के रूप को प्रदर्शित नहीं किया गया। हम यह नहीं कहते कि उनमें ये विशेषताएँ नहीं हैं परन्तु साहित्य के क्षेत्र में साहित्य सम्बन्धी विशेषताओं का ही अधिक उल्लेख होना चाहिए। वज्रयान, हीनयान, सहजवाद, निर्गुणधारा, सूफ़ी प्रेमधारा और सगुण धारा को लेकर आज के छायावाद, अभिव्यंजनावाद, मार्क्सवाद और प्रगतिवाद तक हमारे साहित्य का समस्त इतिहास दर्शनशास्त्र की विचारधाराएँ बन गई हैं। बौद्धदर्शन, शैवमत, नाथ पन्थ, शंकराचार्य, रामानुज, माध्व, निम्बार्क, इस्लाम का सूफीवाद, रामानन्द, वल्लभाचार्य और उनका पुष्टिमार्ग, राधामत और अब छायावाद, समाजवाद और प्रगतिवाद—हिन्दी साहित्य का समस्त इतिहास इन्ही वादों के दर्शन से भरा पड़ा है। हमें इतिहास का अध्ययन करने के लिए इन समस्त वादों का अध्ययन सूक्ष्मतया करना पड़ता है और करना चाहिए फिर भी हम नहीं समझते कि साहित्य के इतिहास में दर्शन की मीमांसा की इतनी अधिक आवश्यकता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि आजकल इन समस्त वादों के आधार पर ही हमारे साहित्य के इतिहास को लिखा जा रहा है। दर्शन के साथ साथ धर्म और सम्प्रदाय का अंश भी हमारे साहित्य के इतिहास में बहुत-कुछ सम्मिलित हो गया है। कवियों की कविता में किसी सम्प्रदाय या धर्म-विशेष के होते हुए भी हमें किसी भाषा के साहित्य के इतिहास में उनकी कविता, भाषा, शैली और उनकी साहित्य को देन और उनकी साहित्यिक विशेषता इत्यादि पर ही अपने अध्ययन को केन्द्रित करना चाहिए। भाषा देश या राष्ट्र की होती है। वह किसी व्यक्ति विशेष या वर्ग, धर्म या समाज विशेष की नहीं होती। इसी प्रकार किसी भाषा की कविता या उसका साहित्य समस्त देश या राष्ट्र का होता है। उसे सम्प्रदाय, मत, धर्म या किसी वर्ग या समाज विशेष के साथ सम्बन्ध करने से हम मत या संप्रदाय का अध्ययन करते हैं काव्य या साहित्य का नहीं। यह सत्य है कि हमें कवियों की विचारधारा का भी ऐतिहासिक दृष्टि से ज्ञान होना चाहिए परन्तु वह काव्य या साहित्य की हद तक ही सीमित रहना चाहिए। यदि हम इन काव्य-साहित्य की पुस्तकों के द्वारा उनके सम्प्रदाय, मत, दर्शन और धर्म सम्बन्धी समस्य विचारों का आमूल अध्ययन करेंगे तो हम उनके काव्य या साहित्य के इतिहास का अध्ययन नहीं कर सकते। सम्प्रदाय, मत, दर्शन या धर्म व्यक्ति विशेष या समुदाय विशेष का होता है परन्तु कविता और साहित्य समस्त देश और राष्ट्र के होते हैं। हमें साहित्य के इतिहास में उनके विचारों की साहित्यिक विशेषता का अध्ययन करना है। इन समस्त विस्तारों में जाने के कारण साहित्यक इतिहास एक गौण वस्तु बन जाती है।

जिस तरह किसी प्रामाणिक शब्दकोश या ज्ञानकोश को तैयार करने में कई विद्वानों को मिलकर कार्य करना पड़ता है उसी प्रकार हिन्दी जैसे विशाल साहित्य के इतिहास को बनाने में कई विद्वानों को मिल कर कई खंडों में हिन्दी साहित्य के प्रामाणिक इतिहास को तैयार करना पड़ेगा। कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय ने अंग्रेजी साहित्य के इतिहास को १४ खंडों में प्रकाशित किया है। हिन्दी साहित्य के इतिहास को भी कई खंडों में प्रकाशित करना होगा क्योंकि हिन्दी साहित्य का इतिहास भी इतना विस्तृत है कि इस को लिखने में जब तक बहुत-से हिन्दी साहित्य के विद्वान् एकत्रित होकर प्रामाणिकता के आधार पर सम्मिलित और संगठित प्रयत्न नहीं करेंगे, हिन्दी साहित्य का इतिहास ठीक तरह नहीं लिखा जा सकेगा। इसके लिए पारस्परिक विचार-विनिमय से किसी-न-किसी पद्धति का भी निर्धारण करना पड़ेगा। ऐसे प्रामाणिक, विस्तृत इतिहास के बनने के पश्चात् उसी के आधार पर उसके संक्षिप्त संस्करण तैयार किए जा सकते हैं। इस कार्य के लिए व्यक्तिगत प्रयत्न चाहे कितने ही महान् और साधन-

सम्पन्न क्यों न हों तो भी यह विषय अपने में इतने प्रश्नों, समस्याओं और दृष्टियों को लिए हुए है कि उन प्रयत्नों में पूर्ण सफलता नहीं प्राप्त हो सकती। अभी तो हमें इस इतिहास का एक प्रामाणिक और निर्विवाद आधार तैयार करना है जो कि विद्वानों के सम्मिलित और संगठित प्रयत्नों के बिना नहीं हो सकता। इसका यह अर्थ नहीं है कि इस विषय में व्यक्तिगत प्रयत्न नहीं होने चाहिएँ। व्यक्तिगत प्रयत्न एक निश्चित सीमा तक निश्चित क्षेत्र में किए जा सकते हैं और किए ही जा रहे हैं। हिन्दी के राष्ट्रभाषा बन जाने के कारण अब इस प्रकार के सम्मिलित और संगठित प्रयत्नों के करने का समय आ गया है। यदि इस प्रकार के प्रयत्न नहीं होंगे तो जो वर्तमान इतिहास की पुस्तकें हैं और जो हमारी आवश्यकता को पूर्ण नहीं करतीं-उन्हीं को अभी पर्याप्त समय की और अवधि प्राप्त होजाएगी जो कि आज की परिवर्तित अवस्थाओं में उपयुक्त नहीं प्रतीत होती।

पुस्तकालय 07.9510 गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय हरिद्वार

हैदराबाद

—वंशीधर विद्यालंकार

* * *

स्मृति का चमत्कार

. . . प्रयाग में गंगा और यमुना के पुण्य संगम त्रिवेणी में एक दिन एक ब्राह्मण स्नान कर रहे थे और गायत्री मंत्र का जाप कर रहे थे। वे अंग्रेज़ी बिलकुल नहीं जानते थे। इसी समय दो अंग्रेज़ वहाँ आए और किनारे पर खड़े हो गए। दोनों में वाद विवाद होने लगा और गर्मागर्मी में नौबत यहाँ तक पहुँची कि आपस में लड़ाई हो गई। मामला कोर्ट तक पहुँचा। कोर्ट में उस ब्राह्मण को बुलाया गया जो कि उस समय वहाँ उपस्थित था और स्नान करते हुए गायत्री का जाप कर रहा था। उस ब्राह्मण ने कोर्ट के सामने हूबहू उनके अंग्रेज़ी के वाद विवाद को जैसा हुआ था वैसे ही अपनी स्मृति के आधार पर सुना दिया यद्यपि वह अंग्रेज़ी का एक अक्षर भी नहीं जानता था। . . .

'इलस्ट्रेटेड वीक्ली से'

ड्रीश और नव्य चेतनावाद

(विश्व में प्रत्यक्ष रूप से जीव और अ-जीव--ये दो तत्त्व दृष्टिगोचर होते हैं। इन तत्त्वों का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने के लिए वैज्ञानिक अनेक शताब्दियों से प्रयत्न कर रहे हैं। वे इनके निर्माण, आकार, व्यापार आदि का वैज्ञानिक विश्लेषण करना चाहते हैं। जहां तक 'अ-जीव' तत्त्व का संबंध है पदार्थ और रसायन विज्ञान इसका अधिकांश में विश्लेषण कर भी सके हैं किन्तु इन विज्ञानों को 'जीव' तत्त्व के विवेचन में समर्थ बताना न्यायसंगत नहीं है। उस के लिए हमें जीव विज्ञान (बायोलॉजी) और नव्य-चेतनावाद (नीओ वाइटैलिज़म) का सहारा लेना पड़ेगा। वस्तुत: तो जीवविज्ञान और नव्य-चेतनावाद भी जीवत्त्व नामक गुह्य शक्ति का सम्यक् विश्लेपण करने में सफल नहीं हुए हैं। (और इसके लिए उन्हें भारतीय अध्यात्मवाद का ही सहारा लेना पड़ेगा)। प्रस्तुत लेखमें जीव तत्त्व भी क्या अ-जीव तत्त्व की हीभांति पदार्थ और रसायन विज्ञान का विषय है अथवा अन्य किसी विज्ञान का? इस विषय पर प्रकाश डाला गया है--सं०)

तत्त्वज्ञान का कार्य अनुभव की आधारभित्तियों के मूल में खोज करना है और विज्ञानों का कार्य इन आधार-भित्तियों के ऊपर निर्माण करना है। विविध विज्ञानों की सीमाएं यद्यपि एक दूसरे की सीमा में प्रविष्ट हो जाती हैं-किन्तु वे समतल भूमि पर सुनिश्चित ही होती हैं। दूसरे विपरीत तत्त्वज्ञान की गहराई अप्रमेय है। किसी भी भूमि के भीतर एक दूरी तक उतरने के पश्चात् हम तत्त्वज्ञान का आभास पाने लगते हैं। ड्रीश और वर्ग्सन-जिन्होंने तत्त्वज्ञान का आधार जीव विज्ञान माना है उपर्युक्त सिद्धान्त की ही पुष्टि करते हैं। जीव विज्ञान की सहायता से तत्त्वज्ञान तक पहुंचने का उनका यह कार्य पदार्थ और रसायन विज्ञान के यान्त्रिक दृष्टिकोण के नितान्त विरोध में था। यान्त्रिक दृष्टिकोण के समर्थकों का कहना है कि हमारे लिए यान्त्रिक ज्ञान से परे और कोई ज्ञान नहीं है और 'विचार' का केवल एक ही वैज्ञानिक रूप है---भौतिक-रासायनिक रूप। यद्यपि इसमें सन्देह नहीं कि यान्त्रिक समाधान अपने क्षेत्र में सुसंगत है फिर भी उक्त कथन एक अतिशयोक्ति ही नहीं वरन् मिथ्या है। और उनका अपना क्षेत्र केवल अ-जीव या पुद्गल तत्त्वों तक ही परिमित है। जीव विकास, क्रिया और गति से युक्त होता है और क्रिया तथा नीति में एक प्रहेलिका निहित है जिसका उत्तर यन्त्रवादी नहीं दे सकते।

क्या यान्त्रिक सिद्धान्त अपने प्रश्नों का स्वयं उत्तर दे सकता है? यदि हां तो हमारे तात्त्विक प्रश्न स्वयंमेव समाप्त हो जाएंगे। किन्तु वस्तुत: जहां यान्त्रिक सिद्धान्त की 'इति' होती है वहीं तत्त्वज्ञान का 'अथ' होता है। यान्त्रिक सिद्धान्त स्वयमेव एक समस्या के रूप में प्रगट होता है और पदार्थविज्ञान नहीं अपितु आत्मविज्ञान ही इसका समाधान कर सकता है।

तत्त्वज्ञानी जीव विज्ञान की अत्यन्त सराहना करते हैं। जीव विज्ञान के सम्बन्ध में किए गए विगत पच्चीस वर्ष के प्रयोगों और अनुसंधान ने यह सिद्ध कर दिया है कि जीवेन्द्रिय की समीक्षा यान्त्रिक दृष्टिकोण से नहीं की जा सकती। जीव प्रत्येक स्थिति में विज्ञान के यान्त्रिक दृष्टिकोंण की विचार परम्परा का खण्डन करता है। सूक्ष्मतम जीवांश में भी हमें जीवन के समस्त व्यापार यथा आत्मपोषण, विकास, संचार और स्पर्शानुभव आदि देखने को मिलते हैं। एक छिद्रवाले जीव में भी वे व्यापार पाए जाते हैं जिनकी समीक्षा भौतिक या पदार्थ विज्ञान की शक्ति के बाहर है। चेतनावादियों का यही सिद्धान्त है। जीवन एक यान्त्रिक रचना मात्र नहीं है वह 'संख्या और परिमाण' तक सीमित नहीं। जीवन की घटना में यान्त्रिक-रचना के साथ कुछ और चीज़ जुड़ी हुई है---वह एक समस्या है जिसका समाधान

पदार्थ और रसायन विज्ञान के पास नहीं है और जिसके सम्बन्ध में कोई भी आनुमानिक बात नहीं कही जा सकती ---कोई भी भविष्य वाणी नहीं की जा सकती ।

सांगोपांग जीव में एकत्व है और वह भौतिक और रासायनिक विज्ञान के अभीष्ट अंगों या भागों के योग या एकत्रीकरण से भिन्न है । जीव आत्म-संरक्षण करता है आत्म निर्माण करता है । उसे अपना रूप परिस्थितियों से प्राप्त नहीं होता। वह परिस्थिति और वातावरण से अपने लिए अभीष्ट सामग्री चुन लेता है और उसे अपने तन्तुवाय में मिला कर उससे अपनी कार्यसिद्धि करता है । जीव सदा अपने सर्वांश का हित सामने रखता है और उसी के अनुसार क्रियाकलापों में सन्नद्ध रहता है । उसकी गति और व्यापार हेतु विज्ञान के बिना नहीं समझे जा सकते । उसका तनिक सा भी कार्य अहेतुक नहीं होता और न किसी यान्त्रिक आवश्यकता का पूर्ति-विधायक ही होता है । उसका समस्त व्यापार सोद्देश्य होता है और उद्देश्य पूर्ति तक उसमें साधना और धैर्य की भावना प्रच्छन्न रहती है । प्रवासोन्मुख ईल मछली अन्ध-महासागर में एक ही दिशा में सीधी तैरती है और अपने उद्दिष्ट स्थान तक पहुंचने से पूर्व कार्यरत रहती है । सॉलमान मछली अनुकूल स्थान में अण्डे देने की इच्छा से बहाव के विरुद्ध तैरती है और अनेक बाधाओं को लांघ कर अपनी यात्रा पूरी करती है। कौन-सा यान्त्रिक दृष्टिकोण इन घटनाओं का सम्यक् विश्लेषण कर सकता है? वस्तुतः जीव के व्यापार अ-जीव से विचित्र प्रकार से भिन्न होते हैं और यही कारण है कि उसके व्यापार की यन्त्र-व्यापार से तुलना नहीं की जा सकती ।

अरस्तू ने जीवन की परिभाषा करते समय उसे 'स्वतः गतिशील' बताया है । कैण्ट ने उसे स्वेच्छा शक्ति पर प्रतिष्ठित बताया है। स्पेंसर ने जिसे यान्त्रिक दृष्टिकोण के कट्टर समर्थक अपने पक्ष का समर्थक बताते हैं---जीवन के संबंध में कहा है कि वह आभ्यन्तर संबंधों को बाह्य संबंधों के अनुरूप ढालता है । स्पेंसर का जीव के संबन्ध में विचार उसकी स्वतः गतिशीलता और सुचारुता की ओर ही अधिक झुका हुआ है न कि यन्त्रवादिता की ओर । यदि हम लक्ष्यसिद्धि का उद्देश्य न मानें तो हम जीव के समस्त अंगों के व्यापार में दिखाई देनेवाले सामञ्जस्य की सिद्धि कर ही नहीं सकते । हेतु और उद्देश्य पर ही तो शरीरधर्मविज्ञान प्रतिष्ठित है । तनिक आंख की रचना, योजना और आकार पर विचार कीजिए तो उक्त सिद्धान्त और स्पष्ट हो जाएगा ।

हेतुविज्ञान और यन्त्र-विधि-विज्ञान की लड़ाई उतनी ही पुरानी है जितने अरस्तू और डिमाक्रिटस हैं । हेतुविज्ञान ने चेतनावाद के साथ मिल कर यह लड़ाई लड़ी है जिसमें जीवविज्ञान एक ओर था और दूसरी ओर थे अन्य भौतिक विज्ञान । इस लड़ाई में इतने ऊंच-नींच देखने को मिले कि उनकी पुनरावृत्ति यहाँ अनावश्यक और अशक्य है । इस लड़ाई में एक समय ऐसा आया जब कि यह प्रतिभासित हुआ कि भौतिक विज्ञानों की ही विजय होती और जीव विज्ञान पक्ष के कुछ समर्थक विपक्ष से मिल गए और उनमें से डारविन और लैमरक सरीखे वैज्ञानिकों ने प्राकृतिक आधार पर विकासवाद ((ऐवोल्यूशन) आदि सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया ।

उक्त विवेचन के परिणामस्वरूप चेतनावाद को नवीन रूप से उपस्थित करने की आवश्यकता पड़ी । चेतनावाद के पुराने समर्थकों का कथन था कि प्रत्येक जीव में एक ऐसी रहस्यमय और प्रच्छन्न जीवन-शक्ति होती है जो देहधारी की भौतिक और रासायनिक शक्तियों और प्रक्रियाओं को बल देती रहती है और उन शक्तियों को उसके सर्वांश के हित में तत्पर करती रहती है । उनका विचार था कि कुछ ऐसी जीवात्माएँ और निर्माणशील अन्तःप्रेरणाएं हैं और एक ऐसी मूलभूत चेतन धारणा है **जो** अपना हित साधन स्वयं करती है । इस प्रकार उनकी मान्यता के अनुसार चेतनाशक्ति और भौतिक व रासायनिक शक्तियां एक ही स्तर पर उपस्थित हैं भी । हां, वे इतना अवश्य स्वीकार करते थे कि उस चेतना का शक्ति-स्रोत स्वतन्त्र है और वह शरीरावयव की यान्त्रिक गतिविधि में स्वेच्छापूर्वक हस्तक्षेप करती है । नवीन चेतनावादी, चेतना शक्ति को भौतिक और

रासायनिक शक्तियों का समान-स्तर नहीं मानते । उनकी धारणा है कि चेतना शक्ति की सरलतम प्रक्रिया भी भौतिक और रासायनिक विज्ञानों द्वारा ठीक तरह अभिव्यक्त नहीं हो सकती । जीवविज्ञान पदार्थ और रसायनविज्ञान के आदेशानुसार कार्य नहीं करता और न ही उनके द्वारा संचालित या नियन्त्रित होता है । जीव अपने सर्वांश में कार्य करता है अर्थात् शरीर के अवयव सामूहिक रूप से व्यापारशील होते हैं इसलिए इस व्यापार की व्याख्या करने के लिए एक स्वतन्त्र सिद्धान्त अपेक्षणीय है । यदि एक सावयव जीव के रूप और कार्य की उचित व्याख्या करनी है तो जीव विज्ञान को पूर्णरूपेण स्वतन्त्र विज्ञान मानना होगा और उसे अपनी स्वतन्त्र पदावली और विभाजन-व्यवस्था आदि के प्रयोग का अधिकार देना होगा ।

नवीन चेतनावाद के आन्दोलन में हैन्स ड्रीश का नाम स्मरणीय है । ड्रीश ने जो पिछले दस वर्ष पूर्व तक जीवित थे जीव विज्ञान विशारद के विद्यार्थी के रूप में अपना जीवन आरंभ किया और ख्याति प्राप्त की । बाद में लीपज़िग विश्वविद्यालय में तत्त्वज्ञान के अध्यक्ष का पद संभाला और सोसायटी फॉर फ़िज़िकल रिसर्च (भौतिक विज्ञान संबंधी खोज के लिए स्थापित संस्था) के प्रधान बने । उनका कथन था कि अनेक वर्षों के अनुसंधान और प्रयोगों के परिणामस्वरूप उन्हें अपने पूर्व विचारों का परित्याग करना पड़ा और चेतनावाद की धारणा का विशद रूप से अध्ययन करना पड़ा । उन्होंने अपने गिफ्फोर्ड भाषण में इस सिद्धान्त की विवेचना की है और इसे न्यायसंगत ठहराया है । उनका कहना है कि न्याय दर्शन तत्त्वों की सर्वांशता को मानता है किन्तु न्यायात्मक परिभाषा इस सर्वांशता को न केवल गुणधर्मों में विभक्त ही कर देती है वरन् उसे विनष्ट भी कर देती है क्योंकि 'तत्त्व' गुण-धर्मों का योगमात्र नहीं है वरन् उस योग की एकात्मकता है ।

ड्रीश में जहां एक वैज्ञानिक की यथार्थवादिता और घटनाओं को उसी रूप में उपस्थित करने के गुण है वहां उसमें एक अध्यात्म के आचार्य की परोक्ष विश्लेषणविषयक शक्ति भी विद्यमान है । हार्टमैन के निष्कर्षों की चर्चा करते हुए ड्रीश ने कहा है कि "मेरे विचारों और हार्टमैन के अनुसंधान-निष्कर्षों की समानता स्पष्ट हैं । किन्तु ये समानताएँ परिणामों में हैं—विधि और क्रिया में नहीं हैं । " इससे निष्कर्षों की सत्यता का अनुमोदन होता है ।

ड्रीश ने प्रयोगात्मक भ्रूणविज्ञान (अपरिपक्व गर्भ का विज्ञान) की सहायता से यह सिद्ध किया है कि प्रत्येक जीव की प्रत्येक स्थिति में पुनरुत्पादन अथवा जनन शक्ति किसी न किसी मात्रा में विद्यमान रहती है । एक गोह की टांग काट देने पर उसकी नई टांग निकल आती है । यदि एक गोह विशेष के अण्डे को दबा कर धागे से दो-चार भागों में विभक्त कर दिया जाए तो प्रत्येक भाग एक पूर्ण सावयव शरीर के रूप में परिणत हो जाता है । इससे न केवल यह सिद्ध होता है कि एक अण्डे में आरम्भ से ही पूर्ण और एकीभूत जननशक्ति विद्यमान होती है वरन् यह भ्रूण विकास की स्थिति में उद्देश्यमत्ता का भी संकेत करता है । यदि हम पदार्थ और रसायन विज्ञान की सहायता से इन विचित्र घटनाओं की व्याख्या करना चाहें तो असम्भव है । रासायनिक शक्ति तो केवल यान्त्रिक गतिविधि का संचालन करती है कितु जीव स्वयं कार्य करता है । ड्रीश के अनुसार यन्त्रवाद केवल कारण-चर्चा द्वारा पीछे की व्याख्या करता है न कि परिणाम चर्चा द्वारा आगे की" । जीवित शरीर एक सुचारु पद्धति व्यवस्था है जो यान्त्रिक कार्यकारण सम्बन्ध से अनुशासित नहीं होती वरन् व्यक्ति और ऐक्यसाधक कारणत्व से अनुशासित होती है । किसी भी यन्त्र को अनेक भागों में विभक्त करने के उपरान्त भी उसी यन्त्र की संज्ञा कैसे दी जा सकती है ।

अब हम यह देखते हैं कि जब देहधारी कार्य करता है तब क्या घटनाएँ घटित होती हैं । उसका समस्त कार्य उसके जीवन काल में उत्पन्न हुईं संभावनाओं के आधार पर प्रतिष्ठित होता है । उदाहरण के रूप में मनुष्य का प्रत्येक कार्य उसके जीवन के उस क्षण तक की घटनाओं और अनुभवों के द्वारा निश्चित किया जाता है । मनो-

विज्ञान की भाषा में––'स्मरण के आधार पर प्रतिष्ठित अनुभव ही किसी कार्य के प्रधान ज्ञापक हैं'। फोनोग्राफ़ (वह मशीन जो फोन पर कही हुई बात को ध्वनिबद्ध या लिपिबद्ध कर लेती है) तो ध्वनिबद्ध शब्दों को उसी रूप में दुहरा देता है किन्तु देहधारी के संकलित अनुभव उसके लिए भावी कार्य की सम्भावना स्थिर करते हैं। एक यान्त्रिक प्रतिक्रिया तो किसी प्रेरणा का एक जैसा ही उत्तर प्रकट करेगी। किन्तु देहधारी में उसका अपना व्यक्तित्त्व भी कार्य करता है उसकी प्रतिक्रियाओं में वह निहित भी रहता है। प्रत्येक व्यक्ति में वह प्रतिक्रिया भिन्न भिन्न रूप में प्रगट होती है क्योंकि विविध व्यक्तियों का विभिन्न इतिहास होता है। इस दृष्टिकोण से मस्तिष्क और नाड़ी मण्डल कार्य के आवश्यक साधन प्रतीत होते हैं स्मरण रहे कि कार्य के साधन मात्र न कि स्वयं कार्य-कारक! तत्वज्ञान का यह निष्कर्ष अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसी आधार पर ड्रीश ने शरीर से परे एक असाधारण व्यक्तित्व के सिद्धान्त का परीक्षण आरम्भ किया।

एक प्राणवादी या चेतनावादी के रूप में ड्रीश, एक चेतना शक्ति मानता है जो हेतु को दृष्टि में रखकर क्रिया करने वाले जीव का संचालन करती है। वह इसे अन्तर्चेतना-ब्रह्म या एण्टेलेशी की संज्ञा देता है किन्तु साथ ही यह भी कहता है कि इसे कोई शक्ति न समझ क्योंकि इसका कोई परिमाण नहीं है। यह 'शून्य' में काम करती है, यह स्वयं शून्य में नहीं रहती। यह 'शून्य' में केवल कार्य करने की क्षमता रखती है। हम सादृश्यानुमान के द्वारा दूसरी कार्य प्रणाली का अनुमान कर सकते हैं। पियानो बजाने वाले की भाँति यह अन्तर्चेतना मस्तिष्क की विशिष्ट शक्तियों का उपयोग करती है। किन्तु इस प्रकार के वर्णन रहस्यमयता की ओर बहुत अधिक झुक जाने के कारण नवीन चेतनावादियों द्वारा स्वीकार नहीं किए जाते।

मनोविज्ञान के सम्बन्ध में अनुसंधान करनेवाले के रूप में ड्रीश ने हमारा ध्यान कुछ असाधारण घटनाओं, तथ्यों और समस्याओं की ओर दिलाया है। उसने जिन घटनाओं का वर्णन किया है उन्हें दो श्रेणियों में रक्खा है जिन्हें पदार्थ समकक्ष और मनः समकक्ष की संज्ञा दी गई है। ड्रीश ने अत्यन्त सावधानी से जो मनोवैज्ञानिक प्रयोग किए हैं और व्यक्ति और समाज की प्रतिक्रियाओं का अध्ययन किया है उसके परिणामस्वरूप उसका कहना है कि जहां टेलीपेथी (मानसिक संक्रमण) और अवधिज्ञान (वह आत्मिक शक्ति जिससे दूर स्थित वस्तुओं का यथार्थ ज्ञान हो जाता है) को वह सत्य मानने को तैयार है वहां भविष्य वाणी को एक 'बड़ी सम्भावना' के रूप में स्वीकार कर सकता है। उसका कथन है कि "माना कि बहुत सी घटनाएँ पूर्णरूप से अवश्यम्भावी मानी जा सकती हैं किन्तु अवशिष्ट को एक आलोचना के दृष्टिकोण से––एक 'बड़ी सम्भावना' के रूप में मानना ही उचित है।"

प्रत्येक अनुभव की श्रेणियां होती हैं और प्रत्येक श्रेणी अथवा स्थिति में उससे नए रहस्य प्रगट होते हैं और नई समस्याएं सामने आती हैं। नई पद्धतियों को व्यवस्था देने के लिए नई श्रेणियों की आवश्यकता होती है। मनोविज्ञान या ब्रह्मविज्ञान के प्रयोग और अनुभव चेतनावादियों के तर्क को जीव विज्ञान की सभी सीमाओं से बाहर ले जाते हैं तथा हमें नए अनुभव प्राप्त होते हैं और जैसे जैसे हम इस अनुसंधान में और आगे बढ़ते जाते हैं वैसे वैसे हम नवीन चेतनावाद और यन्त्रवाद को भी महत्त्वहीन समझने लगते हैं और न जाने कहां निकल जाते हैं––(कदाचित् अध्यात्मवाद की ओर–सं.)।

त्रावणकोर

––श्री के. शेषाद्रि
एम. ए.

हिन्दी में प्रेम-काव्य

[प्रसिद्ध कला मर्मज्ञ और आलोचक श्री प्रो. ओ. सी. गाङ्गुली, कलकत्ता हाईकोर्ट के लब्ध-प्रतिष्ठ एडवोकेट हैं। जिन दिनों यूरोप में भारतीय कला के विषय में, अनेक बाहु-मस्तकयुक्त मूर्त्तियों के कारण, बहुत-सी भ्रान्त धारणाएँ फैल रही थीं, कलकत्ता आर्ट स्कूल के प्रिन्सिपल श्री हैवेल की विचार-धारा से प्रेरित होकर श्री प्रो. गाङ्गुली ने अपने लेखों द्वारा भ्रम और मिथ्या प्रचार का खण्डन करते हुए भारतीय-कला की उच्चता प्रमाणित करने का अनथक प्रयत्न किया। आपने अँग्रेज़ी भाषा के माध्यम से कला, स्थापत्य और संगीत विषयक अनेकों पुस्तकें लिखीं और एक पत्र भी निकाला। आपकी सैकड़ों रुपए मूल्यवाली "मास्टर पीसेज़ आफ राजपूत पेन्टिङ्ग" (Masterpieces of Rajput painting) और 'इण्डियन ब्रोंज़ेज़' (Indian Bronzes) आदि दुर्लभ पुस्तकें कतियय संग्रहालयों में ही देखने को मिलती हैं। बङ्गला भाषी इस विद्वान् को हिन्दी से उतना ही प्रेम है जितना कि अपनी उन्नत मातृभाषा से। दक्षिण भारत के निवासियों द्वारा हिन्दी की उपेक्षा के प्रति आपने खेद प्रकट किया है—सं०]

स्वतन्त्र भारत में एक इस प्रकार की सांस्कृतिक एकता की आवश्यकता है जो भारतके समस्त लोगों को एक सूत्र में ग्रथित कर दे। भारत अपनी राजनैतिक और आध्यात्मिक उन्नति को पुनः उसी समय प्राप्त कर सकता है जब कि सारा देश एक हृदय हो कर विचार अनुभव करे; थोड़ी या अधिक मात्रा में समान विचारों और आदर्शों से प्रेरणा प्राप्त करे; दूसरे शब्दों में देश के विभिन्न अङ्ग एक ही हृदय की धड़कन से स्पन्दित हों। भारतीय-संघ के विभिन्न घटकों में भोजन, पोशाक और भाषा की अपनी स्थानीय या प्रान्तीय विशेषताएँ हैं। महात्मा गाँधी ने खद्दर और गाँधी टोपी के द्वारा सभी भारतीयों में समान वेश-भूषा लाने की चेष्टा की, और कुछ अंशों में कम से कम सामाजिक और राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं में इस प्रकार की एकता दृष्टिगोचर भी हुई। किन्तु भिन्न भोजन की आदतों वाले देशवासियों के लिए समान और पौष्टिक भोजन की व्यवस्था करने का तो अभी तक कोई प्रयत्न ही नहीं हुआ। जो लोग विदेशों से लौटते हैं, भारतीय रेलों और जहाजों में सर्वत्र-सुलभ होने के कारण, यूरोपियन ढंग का भोजन पसन्द करने लगते हैं। अस्तु।

आचार-विचार के आदान-प्रदान में सबसे अधिक कठिनाई विभिन्न भाषाओं के कारण है। यहाँ तक कि इस विशाल देश में किसी एक सुबोध भाषा के अभाव में व्यापार में भी बहुत कठिनाइयाँ होती हैं। अतएव ऐसा प्रस्ताव देश की जनता के सम्मुख उपस्थित किया गया है कि हिन्दी, जो हिन्द की भाषा है और जिसका प्रयोग उत्तर भारत के अधिकांश प्रदेशों में होता है सारे भारत की राष्ट्र-भाषा माना ली जाय, जिसको सीखने के बाद उत्तर, दक्षिण, पूर्व या पश्चिम भारत में किसी प्रकार का पार्थक्य न रह जाय।

राजनैतिक एकता प्राप्त करने के अतिरिक्त भी हिन्दी-भाषा के सीखने से हमें अनेक प्रकार से लाभ हो सकते हैं। हिन्द की संस्कृति की विभिन्न दृष्टियों का ज्ञान, साहित्यिक सौन्दर्य, सरलता, आध्यात्मिक भावनाओं की गहराई और स्वाभाविकता हिन्दी साहित्य की विशेषताएँ हैं। जो लोग हिन्दी नहीं पढ़ते वे इस सुस्वादु, पवित्र अमृत के पान से वञ्चित रह जाते हैं। जिन लोगों का ज्ञान, तामिल, तेलुगु, मराठी या उर्दू भाषाओं तक ही सीमित है, उन्हें तो अवश्य हिन्दी पढ़ कर अनेक रूपों में व्यक्त होने वाली भारतीय संस्कृति में भाग लेने के योग्य बनना चाहिए जिसको कई शताब्दियों में विकसित किया गया है। अन्य-भाषाओं के ज्ञान-भण्डार की विना उपेक्षा किए यह कहा जा सकता है कि हिन्दी भाषा में माधुर्य या सौन्दर्य कम नहीं है

और जो उन समस्त लोगों को आनन्द-विभोर करने की प्रतीक्षा में है जिन लोगों ने हिन्द की भाषा और विशेष कर उसके अनूठे काव्य का रसास्वादन नहीं किया है । सत्य तो यह है कि अपनी विशेषताओं के कारण भी हिन्दी अध्ययन करने के योग्य है ।

हिन्दी-कविता, विशेष कर उसके प्रेम सम्बन्धी अंश के अध्ययन और रसास्वादन के मार्ग में कुछ कठिनाइयाँ भी हैं । पहली कठिनाई तो कुछ परम्परागत रूढ़ियों और कृत्रिम अलंकारों के कारण है जो उत्तर संस्कृत काल से अलङ्कारशास्त्र और रसशास्त्र अर्थात् हाव, भाव, विभाव, अनुभाव और संचारी भाव आदि के बन्धन के रूप में उत्तराधिकार में प्राप्त हुए हैं । और दूसरी कठिनाई उसकी खुली श्रृङ्गारिकता के कारण है ।

प्राचीन हिन्दी-काव्य में प्रेम की तीव्रता का वर्णन कुछ खुले और स्पष्ट ढंग से किया गया है जो वर्तमान रुचि के अनुकूल नहीं । लेकिन यह सांसारिक प्रेम सदा उस धार्मिक प्रेम भावना की ओर इंगित करता हुआ प्रदर्शित किया गया है जो नर-नारी के प्रेम को आत्मा और परमात्मा के प्रेम के रूप में परिवर्तित कर देती है । प्राचीन हिन्दी काव्य के अधिकांश कविता का विषय, साहित्य की परम्परागत कृष्ण-भक्ति है, जिसमें परमात्मा को पुरुषोत्तम रूप में पाकर उनसे प्रगाढ़ प्रेम प्रदर्शित किया गया है जैसा प्रेम संसार में पति-पत्नि के सम्बन्ध में दृष्टिगोचर होता है । यह भक्ति-पद्धति निर्गुण और धर्म के सूखे सिद्धान्त और निर्जीव अनुष्ठानों के प्रति विद्रोह नहीं, तो प्रतिक्रिया के रूप में ही विकसित हुई और इसने धर्म को अधिक मानवीय और जन-साधारण-सुलभ बनाया । कम से कम इसके द्वारा जीवन, लौकिक-सुख के परित्याग और सन्यास-सिद्धान्त वाले धार्मिक जीवन की अपेक्षा अधिक सजीव और आनन्दमय हो उठा ।

प्राचीन हिन्दी काव्य का एक दूसरा मनोरंजक पहलू भी है । संस्कृत के श्रृङ्गार और रसशास्त्र अपनी प्रेम की कहानियों और रूढ़ियों के साथ एक नए रूप में उपस्थित किए गए हैं जहाँ वे केवल कविता की रीति या परिपाटी ही बताने का काम नहीं करते अपितु हृदयगत भावनाओं और वास्तविक अनुभवों की निरन्तर अभिव्यक्ति भी करते हैं । राधा-कृष्ण के प्रेम की कल्पनाओं ने लौकिक प्रेम को एक रहस्यमय सुंदरता प्रदान की जिससे हिन्दी कविता चमक उठी । संस्कृत के काव्य का विषय विद्वन्मण्डली के सीमित क्षेत्र से निकल कर हिन्दी-साहित्य द्वारा जनसाधारण के लिए बोधगम्य हो उठा ।

हिन्दी काव्य की एक तीसरी विशेषता उसके छोटे छोटे मुक्तक, गीत और प्रगीत हैं । यद्यपि लम्बे कथा-काव्यों या महाकाव्यों की कमी नहीं, फिर भी हिन्दी की प्रतिभा इन छोटी कविताओं में ही अधिक प्रस्फुटित हुई है । एडगर ऐलेन पो नामक अंग्रेजी कवि ने कहा है कि छोटी कविताएँ हीं वास्तव में सच्ची कविताएँ हैं क्योंकि कविता के अन्य स्वरूपों की अपेक्षा छोटी कविताएँ एक बार के भावोद्रेक में लिखी जा सकती हैं । इस परिभाषा की कसौटी पर हिन्दी मुक्तक खरे उतरते हैं । कुछ समालोचकों का कहना है कि रचना के लिए जो सात्विक प्रेरणा प्राप्त होती है वह चिर काल तक नहीं रह सकती और दीर्घ समय की विचारशीलता उस मौलिक प्रेरणा को नष्ट कर देती है । जिस तरह अग्निक्रीड़ा में स्फुलिङ्ग एक क्षण की ज्योति के बाद निष्प्रभ हो जाते हैं उसी तरह रचनात्मक प्रेरणा भी क्षणभङ्गुर है और विश्राम और विचार के लम्बे समय तक अपनी एकता स्थिर नहीं रख सकती और न निर्धारित छन्द और अलङ्कार के कष्ट-साध्य माध्यम की ही प्रतीक्षा कर सकती है । इस विचार धारा को पूर्णरूपेण स्वीकार किए बिना भी यह कहा जा सकता है कि हिन्दी-कविता मुक्तक रूप में अपनी चरम सीमा पर है और दोहा, चौपाई हिन्दी के स्वाभाविक छन्द हैं । छन्दों की सूक्ष्मता से भावों की लघुता प्रदर्शित हो यह आवश्यक नहीं । यदि हिन्दी कविता ने हमेशा बृहदाकार धारण नहीं किया तो यह समझिए कि हिन्दी कलाकारों ने तीव्रता और गम्भीरता व्यक्त करने में विशेषता प्राप्त की है और उनके छोटे छन्द कभी कभी छोटे मणि-माणिकों की तरह जगमगा उठते हैं जिनकी प्रभा कुछ

लोग सूर्य के तीव्र प्रकाश से अधिक पसन्द करते हैं।

यह लेख कुछ प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध हिन्दी की प्रेम की कविताओं का परिचय कराने तक ही सीमित है। इस लेख में ऐसे कुछ नमूने नीचे उपस्थित किए गए हैं जो भाव और सौन्दर्य की अनुभूति के साथ ही बड़ी मधुरता से अनुभूत और अभिव्यंजित किए गए हैं।

जाति के मोची चिरञ्जीव कवि ने राधा के विलाप का वर्णन किया है। राधा प्रारम्भ में अभिसन्धिता नायिका के रूप में प्रदर्शित की गई है जो कृष्ण के सान्निध्य का अनादर करती है और जब वे अपनी चाटूक्तियों से उसे मनाने का प्रयत्न करते हैं तो उन्हें अपमानित कर लौटा देती हैं। पश्चात् उनको पास न देख द्विगुणित रूप से दुःख होती है:—

"आए लला कहुँ ते गृह में जिनके मैं उमंग में मान दिखायो,
रूठि के ठाड़े भए इतने पै तो, ना उनको कर थामि बिठायो।
काह कहूँ अपनी मति को चिरँजीवजू प्रीतम को न मनायो।
लाज के काज अरी सजनी अपने अनुराग में दाग लगायो।।"

कृष्ण कहीं से आए और सीधे मेरे कमरे में पहुँचे। मैंने अभिमान किया और उन्हें हाथ पकड़ कर बिठलाया नहीं। वे नाराज़ होकर चलने के लिए उठ खड़े हुए। हाय, मैं अपनी बुद्धि के विषय में क्या कहूँ मैंने अपने प्रियतम का आदर नहीं किया। अरी सखी, लज्जावश मैंने अपने अनुराग में दाग़ लगा दिया।

जब किसी दूर देश से प्रियतम लम्बी अवधि के बाद लौट आता है तब प्रियतमा दौड़ कर उससे गले मिलती है।

अब सुन्दर से, जो शाहजहाँ बादशाह का राजकवि था, आगतपतिका नायिका की कहानी सुनिए:—

"परदेस से 'सुन्दर' पीतम आए हुलास विलास बढ़े सिगरे,
उर कण्ठ लगाय लई ललना गहि गाढ़े अनन्द सों अंक भरे।
तड़की मुथनी, धड़की अँगिया मनि-मालन तें महि लाल गिरे,
जनु पीके मिले तिय के हिय के अँगरा विरहागिन के निकरे।"

सुन्दर कवि कहते हैं कि परदेश से प्रियतम के आने की ख़बर सुन कर प्रियतमा का मन आनन्द-विलास की इच्छा से भर गया। प्यारी ने परदेशी प्रियतम को गले से लगा लिया और उनके आलिङ्गन के आनन्द में विभोर हो गई। इस परिश्रम में वस्त्रों का बुरा हाल हुआ। अधोवस्त्र का नारा टूट गया, चोली मसक गई और मणियों की माला टूट गई जिससे लालमणि के दाने पृथ्वी पर बिखर गए और ऐसे सुशोभित हुए मानों प्रियतम के मिलने से प्रियतमा के हृदय से विरहाग्नि निकल कर चिनगारियों के रूप में बिखर गई है।

महाकवि केशव ने प्रेम की विभिन्न अवस्थाओं का विवेचन और विस्तार किया है जो उनकी प्रसिद्ध पुस्तक रसिक-प्रिया में दृष्टिगोचर होता है। देखिए, उन्होंने प्रौढ़ा धीरा नायिका का वर्णन किस खूबी से किया है:—

"आदर माँझ अनादर, प्रगट करे हित होई।
आकृति आप दुरावे प्रौढ़ा धीरा सोई॥"

प्रौढ़ा धीरा अपने मन के भाव अपनी आकृति पर नहीं आने देती और अपने उदासीनता और निरादर के भावों को छुपा कर प्रिय के आदर पूर्वक स्वागत करने का स्वांग भरती है।

राधा का जो नीचे चित्र खींचा गया है जिसमें वह प्रिय के स्वागत के लिए बड़ी तैयारी से आती है, इसी मनोदशा का प्रदर्शन किया गया है:—

"आवत देखि लए उठि आगे आपहि केसव आसन दीनो।
आपहिं पाँय पखारि भलो जलपान को भाजन लाइ नवीनो।
बीड़ी वनाइ कै आगे धरी, सो जेंवाय हरी वर वीजन लीनो।
बाँह गंही हरि ऐसो कह्यो हँसि एतो मतो अपराध न कीन्हो॥"

उनको आता हुआ देख राधा आगे बढ़ कर उनका स्वागत करती है और बैठने के लिए आसन देती है।

अच्छी तरह उनके पैर धोकर वह नवीना जलपान का पात्र आगे कर देती है । कृष्ण को भली भांति भोजन करा और पान का बीड़ा बना कर वह हाथ में पंखा लेती है । तब कृष्ण का धीरज हार जाता है, और हाथ पकड़ कर, हँस कर पूछते हैं कि ऐसा मुझसे क्या अपराध हुआ जिसके लिए तुमने मुझे इतना कोरा आदर दिया ।

मनुष्य की प्रेमातुर भावनाओं के साथ सामंञ्जस्य उपस्थित करता हुआ, निम्नांकित प्रकृति चित्रण, जिसमें किसी अज्ञात कवि ने वर्षा-वर्णन किया है, अद्वितीय है :—

"नित चातक चाव सों बोलो करै, मोरवान को सोर सुहावन है ।
चमकी चपला चहुँ चाव-चढ़ी घन-घोर-घटा बरसावन है ।
पल कौं पपिहा न रह्यो चुप है अस पौन चहुँ दिसि आवन है।
मिलि प्यारी-पिया लिपटी छतियाँ सुख को सरसावन सावन है ।। "

—आनन्द विभोर चातक बोल रहा है मोरों का शोर मचाना सुहावना लगता है । बिजली चमक रही है, घने बादल घटाओं में उमड़े चले आ रहे हैं और लगातार वर्षा कर रहे हैं। पपीहा एक क्षण भी चुप नहीं रहता । हवा ज़ोर शोर से चल रही है । प्रियतम और प्रियतमा एक दूसरे को छाती से लगा कर लिपटे हुए हैं । सावन का समय कितना सुखमय, सरस और सुहावना है ।

हिन्दी-काव्य के निःशेष ख़ज़ाने से ये दो चार रत्न उपस्थित किए गए हैं। आशा है ये पाठकों की सुरुचि और आनन्द को संवर्धिति करने में सहायक होंगे ।

कलकत्ता

प्रो. ओ. सी. गांगुली

पुरानी हैं, इसीलिए सब वस्तुएँ अच्छी नहीं हो सकतीं,
नई है, इसीलिए कोई वस्तु बुरी नहीं हो सकती ।
बुद्धिमान् सोच समझ कर दोनों में से जो वस्तु अच्छी है उसको ग्रहण कर लेता है ;
मूर्ख मनुष्य वह है जो दूसरों की सम्मति के अनुसार कार्य करता है ।

—कालिदास

कबीर का विरह

प्रेम और विरह की जिस बाढ़ में भक्ति उत्तरकालीन साहित्य शताब्दियों तक डूबा सा रहा है, वह वस्तुतः सन्तों की देन है। प्रेम और विरह के उत्कर्ष को दिखाते हुए, प्रेम को जिस प्रकार 'तलवार की धार' पर दौड़ना पड़ा है, तथा जिस विरह का वर्णन करते हुए रीतिकाल का कवि कह उठा :

"दृगनि में जाले परे, पगनि में छाले परे
तऊ लाल लाले परे, रावरे दरस को।"

उस विरह का मूल सन्तों की वाणी में है। प्रेम की वह दृष्टि जो आगे चलकर राधा और कृष्ण के विलास की ही द्योतक रह गई, और जिसे बहुतों ने 'राधा कन्हाई' के सुमिरन का बहाना समझकर ही सन्तोष कर लिया उसके शुद्ध, सात्त्विक रूप की प्रतिष्ठा यदि कहीं है तो, सन्त काव्य में। संत इन्द्रियों के प्रेम में नहीं डूबा है। बिहारी के 'तन्त्री-नाद, कवित्त रस, सरस राग, रति रंग' में नहीं भींजा है। फिर भी प्रेम और विरह के प्रवाह में आप्लुत है। वह राधा और कृष्ण के विलास का प्रेमी नहीं है। वह 'राम अमल माता' रहने वाला 'जीवन मुकुल' है। उस तलवार की धार की तीक्ष्णता को संत कवि ने समझा है, और उसकी वाणी ने उसकी पीड़ा को गीत को आकार प्रदान किया है।

इन्हीं सन्तों में बहुत उदात्त वाणी लेकर कबीर, प्रेम की उस भूमि पर उतरे थे जहाँ जाकर उनकी नींद, उनका सुख, सब नष्ट हो गया था। कबीर को न 'वासुरि सुख न रैण सुख, ना सुख सुपिनैं माँहि'। जब राम से, उस राम से जिसकी कबीर बहुरिया थे, कबीर बिछुड़ गए तो भला प्रियतम से बिछुड़ कर उन्हें चैन कैसे मिलता। इसी नींद और सुख की दुखियारी तो मीरा भी थी, जिसने रो रोकर कहा--'दिवस न भूख, रैण नहिं निद्रा'। संसार में यदि कोई दुखी था तो बस कबीर ही। शेष सारा संसार सुखी था।

"सुखिया सब संसार है, खावै अरु सोवै।
दुखिया दास कबीर है, जागै अरु रोवै॥"

वे जागते और रोते थे। उन्हें अपने विरह में यह प्रकृति उदास नहीं प्रतीत होती थी। उनकी पीड़ा वही अनुभव कर सकते थे।

कबीर का जागरण गीता के संयमी व्यक्ति का जागरण है जो समस्त संसार जिसे निशा समझता है, उसमें जागृत रहता है, और जब सारा संसार जागता है, तब वह सोता है ('या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी')। वह संसार के मिथ्यात्व को समझता है, और सारे संसार के उसी माया से लिप्त रहने पर वह सचेत भाव से उससे दूर रहने का प्रयत्न करता है। कबीर की भी यही स्थिति है। बल्कि वे जागते ही नहीं दयनीय दशा में प्रियतम की कृपा के लिए रोते भी रहते हैं।

कबीर की एक ही रट है "जिव तरसै तुझ मिलण कूँ, मन नाहीं विस्राम।" इस बेचैनी का कारण है, कबीर का हरिरस पी लेना। वह हरिरस--जिसका कभी खुमार उतरता ही नहीं। यह अलौकिक रस है। इसे जो पी लेता है वह "मैमंता घूमत रहै, नाहीं तन की सार।" कबीर भी उसी में आकण्ठ मग्न हैं, मैमंत हैं। यह वह रस है जिसे 'सिर सौंपै सोई पियै, नहि तर पिया न जाय।"

कभी कभी हरिरस की उसी मस्ती में विरह का बाण कबीर का मर्मवेध करता हुआ उन्हें सालता रहता है। यह बाण भी विचित्र है। यह 'अनियारे दीरघ दृगनि' का बाण नहीं है जिसके वशीभूत 'बड़े चतुर सुजान' हो जाया करते हैं। कबीर को वेधने वाले बाण की तो विचित्रता ही यह है कि वह जिसे लग जायगा उसे ऊपर खींचता जायगा और प्रियतम को प्राप्त करने की तीव्र उत्कण्ठा उसके हृदय में जागृत कराता रहेगा। कबीर **इसी से बिंध कर उस प्रियतम का नाम ले ले कर दिन रात**

'कूक रहे हैं'। आशा है किसी दिन उनकी पुकार सफल होगी ही—

"कैसो कहि कहि कूकियैं, ना सोइयै असरार।
राति दिवस कै कूकणैं, कबहूँ लगै पुकार॥"

इस प्रकार की पीड़ा में, इस विरह के ताप में कबीर इतने मस्त हो जाते हैं कि उन्हें उसी वेधक विरह को बुरा कहना ही बुरा लगने लगता है। वे सावधान करते हुए कहते हैं :

"बिरहा बुरहा जनि कहौ, बिरहा है सुलतान।
जिस घट बिरह न संचरै, सो घट सदा मसान॥"

वस्तुतः कबीर के लिए जीवन की सार्थकता विरह दाह से दग्ध रहने में ही है। प्रेम के पीड़ामय राज्य में ही सुख मिलता है। इस विरह की सार्थकता को केवल वही जानता है, जिसने अनुभव किया है अथवा वही जनता है कि जिसने पीड़ा दी है। "मारणहारा जाणिहै, कै जिहिं लाई सोइ।" मीरा के शब्दों मेंभी 'घायल की गति घायल जानै, और न जानै कोय।"

विरह न केवल बाण के सदृश बेधक ही है, न केवल दाहक है वल्कि सर्वथा विनाशकारी आशीःविष भुवंगम के समान है, जो कलेजे में घाव करके पैठ और बैठ जाता है। किन्तु कबीर जैसे साधु प्रियतम के भक्त-जानते हुए भी अपने अंग नहीं मोड़ता :—

"विरह भुवंगम पैसि करि, किया कलेजै घाव।
साधू अंग न मोड़ही, ज्यूँ भावै त्यूँ खाव॥"

कबीर के लिए यह बाण, यह दाहकता तथा यह भुवंगम का खाना अब इतना अधिक अपना हो गया है कि कबीर को यदि वह बाण न लगे, वह दाहकता प्रतीत न हो, वह विष उनके शरीर में न फैले तो वे चिल्ला चिल्ला कर उसी बाण को बार बार मारने के लिए प्रार्थना करने लगते हैं—'उसके लगे बिना उन्हें शान्ति ही नहीं मिलती "वह सर अजहूँ मारि, सर बिनु सचु-पाऊँ नहीं।' इसी प्रेममयी पीड़ा को पाकर 'प्रसाद' प्रियतम को ही भूल जाते हैं— "मैं तो तुमको भूल गया हूँ। पाकर प्रेममयी पीड़ा।' इसी का संकेत करते हुए उर्दू के एक शायर ने कहा है— 'दर्द का हद से गुज़रना, है दवा हो जाना।' एक दूसरा कहता है— 'दर्द वह शै है, कि जिस पहलू से लौटो दर्द है।'—

कबीर की आँखों में प्रियतम का मार्ग देखते देखते झाँई पड़ जाती है, नेत्रों से अश्रु का अविरल प्रवाह निर्झर के समान बहने लगता है। उनकी यह दशा देखकर मूर्ख संसार समझता है कि कबीर की आँखें दुख रही हैं। वह उनकी हृद्गत पीड़ा को नहीं जानता। किन्तु, कबीर को इतनी पीड़ा सहन करने पर भी अपने प्रियतम के प्रति हार्दिक प्रेम में पूर्ण विश्वास नहीं रहता। उनके विश्वास का एक ही उपाय है कि उनकी आँखों से यदि रक्त चूने लगे तभी समझो कि पूर्ण अनुराग है। 'जे लोइण लोहू चुवैं, तौ जाणो हेत हियाँहि।' कितना तीव्र उन्माद है; कितनी कठिन और दुस्साध्य परीक्षा है। जायसी की नागमती भी इस कठिन परीक्षा को देने में पीछे नहीं रही। उसके नेत्रों से भी 'रक्त के आँसू' गिर गिर पड़ते थे। "। गिरि गिरि परैं रकत कै आँसू।"। उसने भी बहुत सी कठिन परिक्षाएँ दीं और अपनी व्यथा का प्रसार करते हुए उसे भौंरे तथा काग के द्वारा प्रमाण-पत्र भेजने की आवश्यकता हुई, उसने प्रार्थना की :—

"पिउ से कहु सँदेसड़ा, हे भौंरा, हे काग।
सो धनि विरहै जरि मुई, ओहि के धुँआ हम्ह लाग।"

किन्तु कबीर किसी की सहायता नहीं लेते, स्वयं कूकते रहते हैं। इन्हें दृढ विश्वास है कि कभी तो पुकार सफल होगी ही।

कबीर का रोग बड़ा विषम है। संसार में उसकी औषधि नहीं। उसका उपचार एकमात्र प्रियतम की प्राप्ति है, चाहे वे स्वयं आएँ, या कबीर को उनके समीप जाना पड़े।— किन्तु कबीर दोनों कार्यों में असमर्थ है, उनके अपने हाथ में तो कुछ भी नहीं है, वे तो उसी प्रियतम के आधीन हैं, वह जैसा चाहे घुमाए। ज्ञात होता है वह भी आना नहीं चाहता, कबीर को जलाने पर तुला हुआ है :—

"आइ न सकौं तुझ पै, सकौं न तुझे बुलाइ ।
जियरा यौं ही लेहुगे, विरह तपाइ तपाइ ।।"

उनकी इस विवशता से लाभ उठाकर उनका प्रियतम उन्हें आठों पहर जला रहा है । कबीर की दशा अत्यन्त दयनीय हो गई है । अब आठों प्रहर की यह ज्वाला उन्हें भी असह्य हो उठी है । अतएव वे आतुर भाव से पुकार उठते हैं––

"कै विरहिन को मीचु दै, कै आपा दिख राइ ।
आठ प्रहर का दाझणा, मों पै सह्या न जाइ ।।"

रीतिकाल के बिहारी की नायिका को भी (लौकिक विरह की) एका लपट स्पर्श कर पाई और उसे इस आठ पहर दाझणे से अधिक श्रेयस्कर स्वयं मृत्यु ही प्रतीत होने लगी । विरह ज्वाला के सम्मुख मृत्यु भी उसे आशीष ज्ञात हुई: "विरहज्वाल जरिबौ लखें, मरिबौ भयो असीस' । किन्तु बिहारी की पंक्ति में उक्ति मात्र रह गई, और कबीर की बात ने सीधे हृदय पर मर्म पर आघात किया । कबीर की उक्ति में अनुभूति की गहराई है, बिहारी के आशीष में अनुवाद चातुरी । उर्दू के प्रसिद्ध शायर ज़ौक ने भी इस विरह का अनुभव किया था । उनका कहना है––

"छूट जायें गम के हाथों से जो निकले हम कहीं ।
खाक ऐसी ज़िन्दगी पर हम कहीं और तुम कहीं ।।"

परन्तु यहाँ भी वचन-वैदग्ध्य के अतिरिक्त पीड़ा की अनुभूति की गहराई नहीं मिली । कबीर आठ पहर के विरह से खीज कर कभी कभी मृत्यु की माँग अवश्य करने लगते हैं, किन्तु अपवाद रूप में ही । वे उसे आशीष के रूप में ग्रहण नहीं करते । उनका सिद्धान्त चिर जलन का सिद्धान्त है । वे खीझ कर भी विरह में ही लीन रहना चाहते हैं । उनका विरह उनका जीवन है––

"हौं विरह की लाकड़ी, समुझ समुझ धूँधाऊँ ।
छूटि पड़ौं या बिरह तें, या सारी ही जल जाऊँ ।।"

प्रियतम को प्रसन्न करने के लिए वे 'मन ही माँहि बिसूरना' भी स्वीकार कर लेते हैं, किन्तु उससे बाजी नहीं लगाते, हठ नहीं पकड़ते, उपालम्भ भी नहीं देते । बिसूरते हुए धीरे २ घुलकर मर जाना ही उन्हें प्रिय है । वह जैसे भी मिले, वह उसी उपाय के लिए तैयार हैं ।––

"फाड़ि पुटोला धज करौं, कामलड़ी पहिराऊँ ।
जिहि जिहि भेषा हरि मिलैं, सोइ सोइ भेष कराउँ ।।"

उन्होंने निश्चय कर लिया है कि यदि किसी भी उपाय से उस प्रियतम का नशा न उतरा, उसकी निद्रा न भंग हुई तो वह अपना शरीर भस्म कर देंगे। अपनी अस्थियों की लेखनी से लिख लिख कर प्रिय के पास प्रेम-निवेदन भेजते रहेंगे । हारना थकना उन्होंने नहीं सीखा है, अंग मोड़ना वे साधु का काम नहीं समझते । ऐसा अदम्य उत्साह, मिलन की ऐसी उत्कट लालसा देखकर प्रियतम कब तक मुँह छिपाए रहेगा । उनका संकल्प है कि––

"यहि तन जारौं छार कै लिखौं राम को नाँव ।
लेखनि करूँ करंक की, लिखि लिखि राम पठाऊँ ।।"

संभव है इसी उत्कट संकल्प से प्रभावित होकर जायसी की नागमती को भी कहना पड़ा––

"यहि तन जारौं छार कै, कहौं कि पवन उड़ाव ।
मकु तेहि मारग उड़ि परै, कंठ धरै जिंहिं पाँव ।।"

कबीर के हृदय की इस व्यथा का, इस पीड़ा, खीझ और समझ पूछ का ढंग अनूठा ही है । उनके अनुराग की लालिमा ही कुछ दूसरी है । उनके मन का राग कुछ ऐसा है जो मृत्य को भी विवशता मानता है और जिसे विरह का बाण न लगने पर भी पीड़ा होती है। उनकी इस व्याकुलतापूर्ण, कातर वाणी का कुछ ऐसा प्रभाव था कि उनके परवर्ती सन्तों, प्रेममार्गी सूफ़ियों तथा अन्य कवियों नें अनेक स्थलों पर उन्हीं के स्वर को प्रतिध्वनित किया है । मीरा का विरह भी उतना ही उत्कट, उनकी पीड़ा भी उतनी ही गहरी और पुकार भी उतनी ही तीव्र थी, जितनी कबीर की । मीरा के भक्त हृदय से वही उच्छ्वास

निकला जो कभी कबीर की वाणी से फूट निकला था । जायसी की विरहिणी नागमती के स्वर में भी कबीर का अन्तर्नाद ध्वनित हो रहा है । और आज की महादेवी भी कबीर के स्वर में स्वर मिलाकर पीड़ा को ढूँढ रही हैं ।——

"तुमको ढूँढ़ा पीड़ा में, तुममें ढूँढ़ूँगी पीड़ा ।"

गोरखपुर

——श्री आनन्दकुमार दीक्षित
एम.ए., साहित्यरत्न.

* * *

गीत की एक कड़ी

ये तुम्हारे गीत बाले !
भर रहे हैं मीड़ उर में——'नीड़ में कोई छिपा ले'।

काँपते से स्वर लजीले,
भाँपते से नयन गीले ।
मौन रजनी ! तारकों के दीप जल जल कर दिपा ले ।
स्नेह की मधु धार ढाले ।

नागपुर

——विनय मोहन शर्मा, एम.ए.

ग्वालियर की डायरी

(दिसम्बर १८५० से दिसम्बर १८५२ तक)

(१)

दौलतराव सींधिया पुत्रहीन था । सन् १८२७ में उसकी मृत्यु के पश्चात् ग्यारह साल के बालक मुगतराय को निकटतम सम्बन्धी होने के कारण महाराजा घोषित किया गया । उसने आलीजाह जनकोजी सींधिया की उपाधि धारण की । बैजाबाई ने दौलतराव सींधिया की प्रपौत्री से उसका विवाह करवाया।

जनकोजी सींधिया के शासन में दम नही था । उसके राजत्व काल के अधिकांश में उसके मामा[1] ने मंत्री का कार्य-भार सँभाला । बैजा बाई के षड्यन्त्र काफ़ी अरसे से चल रहे थे । राजसभा में दल बंदी थी । आश्चर्य नहीं, सेना के रुख से भी विद्रोह टपकता था ।

७ फरवरी १८४३ को जनकोजी निःसन्तान मरा। ग्यारह साल की आयु में उसकी विधवा महारानी ताराबाई ने प्रमुख सभासदों और सेनापतियों की सलाह से भगीरथ राव को, जो हनुमन्तराव का आठ वर्ष का बालक था, गोद लिया । उसने आलीजाह जयाजीराव सींधिया की उपाधि धारण की । लार्ड एलेनबरा ने, जो उस समय भारत का गवर्नर जनरल था इस अवसर से अनुचित लाभ उठा कर अपने आदमी को प्रतिशास्ता (Regent) नियुक्त करना चाहा । मिस्टर होप ने सींधिया परिवार-सम्बन्धी अपनी पुस्तक में इस प्रकार लिखा है—

"लार्ड एलेनबरा ने, मन ही मन, दृढ़ विचार कर लिया था कि पहले तो ग्वालियर राज्य के स्वतन्त्र अधिकारों की उपेक्षा की जाय और पश्चात् उसकी स्वतन्त्रता का पूर्णरूपेण हरण कर लिया जाय । इसके लिए आवश्यक था कि महारानी को अल्पवयस्का होने के बहाने शासन से अलग कर दिया जाय और ऐसे आदमी को प्रतिशास्ता नियुक्त किया जाय जो ब्रिटिश सरकार के इशारों पर चले ।"

निर्वाचन राजसभा के हाथ में था । सभा में उस समय एक ही आदमी ऐसा था जो राष्ट्रविरोधी नीति को कार्यान्वित करने में अपने को यन्त्र बना सकता था, और वह था मामा साहब । उसका असली नाम कृष्णराव कादम्ब था ।

आगे चल कर होप ने मामा साहब को बहुत बुरा बताया है और उसके घृणित कार्यकलापों के बारे में लिखा है । उसके अनुसार यदि लार्ड एलेनबरा ने दखल न दिया होता तो राज-सभा सर्वसम्मति से दादा खासजी वाला को प्रतिशास्ता चुनती । किन्तु ठीक ऐन मौक़े पर गवर्नर जनरल का पत्र मिला जिसमें लिखा था कि मामा साहब के प्रतिशास्ता होने से उन्हें प्रसन्नता होगी । इसलिए अंग्रेज़ों पर कृपालु मामा साहब प्रतिशास्ता बने और अपनी भतीजी महाराजा को ब्याह[2] दी ।

अब उनको प्रतिशास्ता पद से अलग करने के लिए षड्यन्त्र शुरू हुए । पहले तो इस काम में नौरङ्गी नामक एक स्त्री ने प्रमुख भाग लिया । वह महारानी ताराबाई की कृपापात्र थी । महारानी पर उसका ऐसा रंग जमा था कि मामा साहब ने अपने पद और प्रभाव को खतरे में समझा और सोचने लगे कि इस काँटे को किस तरह दूर किया जाय । अन्त में अपने लिए बहुत अच्छा सौदा[3] कर नौरङ्गी इस षड्यन्त्र से अलग हुई ।

जैसा पहले कहा जा चुका है दादा खासजी वाला की महत्वाकांक्षा जब पूरी न हुई तो वह मामा साहब का प्रभुत्व कम करने के लिए भीतर ही भीतर प्रयत्न

---

[1] J. Hope : A Sketch of the House of Scindia १८६३ पृष्ठ ४२.

[2] B. D. Basu : Rise of the Christian Power in India भाग ५ पृष्ठ ११६-१२३.

[3] Beveridge : A Comprehensive History of India भाग २ पृष्ठ ४७५.

करता रहा और इस कार्य में उसे कुछ सफलता भी मिली । सम्भवतः जब ताराबाई के हाथ से शक्ति की बागडोर लें ली गई तो मामा साहब के प्रति उसके मन में उतनी ही घृणा की भावना स्थान पाने लगी जितनी मामा में उसका सलाहकार दादा खासजीवाला उसकी प्रसन्नता प्राप्त कर सका । क्योंकि दादा योग्य व्यक्ति था । फलस्वरूप दरबार में दलबन्दी दृढ़ता से अपनी जड़ें जमाने लगी । एक पखवारे तक वाद विवाद चलने के पश्चात् मामा साहब को अपने पद से पृथक् कर दिया गया और ग्वालियर स्थित अँग्रेज़ों के प्रतिनिधि ने महारानी की आज्ञानुसार उसे नगर छोड़ देने का आदेश दिया । ऐसा भी कहा जाता है कि दादा खासजी ने मामा साहब से हमेशा के लिए पीछा छुड़ाने का भी प्रयत्न किया था जब वह सेरोंज[4] नामक स्थान पर कुछ समय के लिए ठहरा था ।

अब मामा साहब के रिक्त स्थान की पूर्त्ति का समय आया। महारानी ने राजसभा के परामर्श से दादा खासजी वाला को प्रतिशास्ता नियुक्त किया जिसे अँग्रेज़ों ने स्वीकार नहीं किया । दादा की ब्रिटिश-विरोधी नीति गवर्नर जनरल के निकट स्पष्ट थी जिसने चुपके से कर्नल स्पियर की तरफ़ इशारा किया कि वह ग्वालियर की सीमा से बाहर आ जाय । अपने तारीख़ २७ जून सन् १८४३ के पत्र में वह लिखता है : "भूतपूर्व प्रतिशास्ता के ग्वालियर छोड़ देने से ग्वालियर की सेना के विद्रोह का डर कम हो गया । इसलिए ब्रिटिश प्रतिनिधि ने आदेशानुसार ग्वालियर के बाहर ३० मील की दूरी पर धौलपुर[5] में अपना डेरा डाला है ।"

कर्नल स्पियर की जगह कर्नल स्लीमैन की नियुक्ति हुई जिसे गवर्नर जनरल बहुत पसन्द करता था। एलेनबरा ग्वालियर को अपने अधीनस्थ राज्यों की श्रेणी में लाने का बहाना ढूँढ़ता था । उसने दादा खासजी वाला के किसी कार्यक्रम को स्वीकार नहीं किया और दादा के प्रत्येक कार्य को ब्रिटिश विरोधी माना । इसीलिए अपने १९ सितम्बर सन् १८४३ के पत्र में-उसने रानी को सूचित किया :—

"दादा खासजी वाला अब भी रानी को अपने प्रभाव में रखता है और राज कार्य संभाल रहा है यद्यपि सभी विरोधी कार्यों की जड़ वही है । ऐसा प्रतीत होता है कि ब्रिटिश-प्रतिनिधि से जो पत्र व्यवहार[6] चल रहा है उसे रानी से छुपाया गया है।" दुर्भाग्यवश गवर्नर जनरल द्वारा रानी को लिखे गए इस पत्र को दादा जी ने खोल कर पढ़ा जिससे मामला और ख़राब हो गया । जैसा कि होप ने लिखा है: "ऐसा कहा गया है........ कि प्रतिशास्ता ने लाट साहब द्वारा अपनी भगिनी-तुल्य महारानी को लिखे गए एक पत्र को बीच ही में उड़ा लिया ।" पर सच तो यह है कि महारानी का मुख्य-मंत्री और संरक्षक होने के कारण केवल दादा ही गवर्नर जनरल के पत्र को खोल सकता था और पढ़ कर रानी को समझा सकता था ।

इस घटना से गवर्नर जनरल बहुत नाराज़ हुए । इसलिए उन्होंने दृढ़ विचार किया कि "जो कुछ हुआ है उसे देखते हुए केवल दादा खासजी वाला को अपने पद से हटा देने मात्र से राज्य की रक्षा उन सब षड्यन्त्रों से न हो जाएगी जिनको दादा ने जन्म दिया है और जो दोनों सरकारों को किसी सन्तोषप्रद भित्ति पर खड़ा होने देने में बाधक[7] हैं ।" इसलिए गवर्नर जनरल ने मांग पेश की कि न केवल दादा अपने पद से पृथक् कर दिया जाय वरन् उसे ग्वालियर की सीमा से हमेशा के लिए बाहर निकाल दिया जाय । गवर्नर जनरल का पत्र मिलते ही रानी ने दादा खासजी वाला को सूचित किया और उसे वैसा करने पर विवश किया । किन्तु इतना पर्याप्त न समझा गया । गवर्नर जनरल समझता था कि ग्वालियर की सेना बहुत बड़ी है और रानी की संभाल के बाहर है । इसलिए उसे विनष्ट कर देना चाहिए ।

इस तरह अँग्रेज़ों ने अपनी सेना और तोपों के साथ ग्वालियर में कदम रक्खा । एलेनबरा ने जो युद्ध करने

---

[4] Beveridge : भाग ३ पृष्ठ ४७५.

[5] B. D. Basu : भाग ५ पृष्ठ १२०

[6] पूर्वोक्त पुस्तक पृष्ठ १२४.

[7] Beveridge : पूर्वोक्त पुस्तक पृष्ठ ४७६.

के लिए उत्कण्ठित था एक झूठा बहाना खोज ही निकाला। हम युद्ध की घटनाओं का वर्णन[8] अनावश्यक समझते हैं।

जयाजी सींधिया को विवश होकर सन्धि की शर्तें माननी पड़ीं। ता. १३ जनवरी सन् १८४४ को ब्रिटिश गवर्नमेण्ट और ग्वालियर राज्य ने संथिपत्र पर हस्ताक्षर किया जिसकी आठवीं, नवीं और दसवीं धाराएँ निम्नाङ्कित हैं:—— ५वीं धारा: अठारह साल की आयु प्राप्त करने पर १९ जनवरी सन् १८५३ को महाराज की अल्प वयस्कता समाप्त होगी।

९वीं धारा: राव रामरस फलकिया बहादुर शमशेर जंग के सभापतित्व में एक राज प्रतिनिधि सभा नियुक्त की जाएगी जिसके सदस्य होंगे: देवरस यादव, मामा साहब, दबीरुद्दौला, मुंशी राजा बलवन्त राय बहादुर, ऊदाजी राव पाटगिया, मुल्लाजी और नारायणराव भानु उमा जी पटनवीस।

१०वीं धारा: राजसभा और राज प्रतिनिधि सभा के लिए तीन लाख रुपए सालाना का ख़र्च नियत हुआ।

इस प्रारम्भिक वर्णन की पृष्ठ-भूमि में ग्वालियर के छ: वर्षों की घटनाओं को निकाल देने के पश्चात् हम सन् १८५० वें वर्ष में प्रवेश करते हैं और पाठकों के सन्मुख ग्वालियर के जीवन और दिसम्बर सन् १८५० से दिसम्बर सन् १८५२ तक की घटनाओं का वर्णन साप्ताहिक क्रम से उपस्थित करते हैं। यदि हम चाहें तो इन दो वर्षों के अतिरिक्त दस या बीस वर्ष का धारावाहिक वर्णन भी दे सकते हैं। किन्तु स्थानाभाव और समान घटनाओं के पुनरुक्ति दोष से बचने के लिए यह वर्णन केवल दो वर्षों तक ही सीमित रक्खा गया है।

अभी तक हमारा विश्वास है, और जब तक विरुद्ध प्रमाण नहीं मिलते, हम समझते हैं कि विद्वानों के सम्मुख यह सामग्री किसीने उपस्थित नहीं की है। हमारी यह भी धारणा है कि इस सामग्री से स्नातकों और अन्वेषक विद्वानों को जो डाक्टर का पद प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हैं लाभ पहुँचेगा। अब इन दो वर्षों में सप्ताह प्रति सप्ताह ग्वालियर में महाराज के वयस्क होकर राज-कार्य संभालने के पहले जो घटनाएँ हुई, पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत की जाती हैं:——

२० दिसम्बर १८५०——सहायक ब्रिटिश प्रतिनिधि दरबार में उपस्थित हुआ। साधारण रस्में पूरी करने के बाद एकान्त में उसने महाराज और मुख़्तार-ए-रियासत मामा साहब से बातें कीं। कुछ मिनटों के लिए दीवान जी भी उपस्थित थे।

सरिश्तेदार को साथ लेकर ब्रिटिश प्रतिनिधि, गाना नामक सेना की छावनी पर पहुँचा।

मुख़्तार-ए-रियासत ने अपने घुड़साल के लिए १९ अच्छी नस्ल के घोड़े ख़रीदे।

सुना गया है कि चौधरी मुरलीधर जो दो सौ सशस्त्र घुड़सवारों के साथ परगना अम्भावाला से भाग गया था धौलपुर में ठहरा है। यहाँ से वह अँग्रेज़ अफसरों के पास आमिल लोगों के खिलाफ़ शिकायतें भेजता रहा है।

बाबा सरगुरु की कन्या का विवाह हुआ। उन्होंने एक दिन सभी सभासदों को निमन्त्रित किया। मुख़्तार-ए-रियासत सभासदों के साथ भोज में सम्मिलित हुए। उन्होने बाबा को ख़िलअत प्रदान की। आज (२० दिसम्बर) का शुभदिन महाराजा और महारानी ने एक बड़ा प्रीतिभोज देकर मनाया।

खण्डेराव को जो असिस्टेण्ट लेफ्टिनेन्ट बहादुर के साथ जानेवाला है पाँच परचा और सरपेच के साथ हीरों की माला[9] प्रदान की गई है।

ऐसा समझा जाता है कि दिवंगत गोपाशास्त्री के स्थान पर गोपालराव शास्त्री कुछ समय के लिए प्रधान अदालत के जज नियुक्त हुए हैं। सभी हाकिमों

---

[8] ग्वालियर अख़बार १८४४ पृष्ठ १५-१८ और भी देखिए Law: India under Ellenbrough पृष्ठ २८.

[9] Akhbar-ul-Haqaiq, 25th January, 1851. Proceedings of the Indian Historical Records Commission, 22nd Session 1945. पृष्ठ ६८-६९.

को गोपालराव शास्त्री की आज्ञा मानने का आदेश दिया गया है ।

तुलसा जी के विवाह के समारोह में सरकारी बाड़े में बहुत बड़ा भोज हुआ । मुख्तार-ए-रियासत और दूसरों को मिलाकर बत्तीस राजकीय वस्त्र (खिलअत) प्रदान किए गए ।

महाराज को साथ लेकर बरात मुख्तार-ए-रियासत के महल को गई ।

चौधरी मुरलीधर अम्भावाला ने अपने मुक़दमे के सिलसिले में रेज़ीडेन्सी से बातचीत करना शुरू किया है। पता नहीं इस बातचीत से क्या नतीजा[10] निकलता है ।

मुख्तार-ए-रियासत ने बरखास्त सिपाहियों को फिर नियुक्त कर लिया है और लोग इस बात से बहुत प्रसन्न हुए हैं ।

जब बापू साहब सातोवेला देशमुख और लक्ष्मणराव फलकिया के सम्मान में एक भोज का प्रबन्ध हुआ तो सब सरदार और सशस्त्र सेनानायक सरकारी बाड़े में उपस्थित हुए जहाँ चार हज़ार लोगों ने भोज में भाग लिया ।

तुलसा जी के विवाहोपलक्ष्य में कई दिनों तक सरदारों और राज्य-कर विभाग के अफ़सरों के द्वारा खिलअतों की वर्षा होती रही ।

कुछ परजना की जनता ने आमिल और तहसीलदारों के विरुद्ध बड़ी शिकायतें की हैं । मुख्तार-ए-रियासत ने जाँच का हुक्म दिया है ।

सिपाहियों को दो महीने का वेतन दिया जा रहा है। शहर में इस बात की चर्चा है कि ५०० सवारों को साथ लेकर एक लश्कर सबलगढ़[11] के परगने में ऊधम मचा रहा है ।

नरूर नामक इलाक़े में एक नया ज़िला बनाया जा रहा है । यद्यपि कई दूसरे स्थानों के नाम पेश किए गए पर उन पर ध्यान न दिया गया । इसके अतिरिक्त अन्य कोई वर्णनीय घटना नहीं है ।

मथुरा के कई चौबे और ब्राह्मण ग्वालियर आए हैं । ऐसा सुना जाता है कि दरबार से उनको सहायता मिलेगी ।

खण्डेराव भाऊ ने जो सहायक प्रतिशास्ता के साथ गया था अब लौट आया है महाराजा के सम्मुख विवरण[12] पेश किया है ।

२२ जनवरी सन् १९५१ को तीसरे पहर महाराजा का जन्म दिवस मनाया गया और साधारण सभा की बैठक हुई । बापू साहब सातोवेला देशमुख और मुख्तार-ए-रियासत अपने कार्यकर्ताओं के साथ उपस्थित हुए । अपने पद के अनुसार प्रत्येक सभासद ने महाराजा को वस्त्र[13] भेंट किए ।

२६ जनवरी को मथुरा के चौबे लोगों को भोजन और मिष्ठान्न से सन्तुष्ट किया गया और प्रत्येक को ५/ की दक्षिणा दी गई । इसके अतिरिक्त हिमालय से आए हुए ब्राह्मणों को भोजन कराया गया और ७/ दक्षिणा और एक रज़ाई प्रत्येक को सरकार की ओर से दिए गए ।

ऐसा अनुमान किया जाता है कि महाराजा शीघ्र ही शिकार[14] खेलने जाने वाले हैं ।

महाराजा हिन्दूराव दिल्ली से ग्वालियर आने वाले हैं क्योंकि महाराजा जयाजीराव उनसे मिलने के इच्छुक हैं । मुख्तार-ए-रियासत भी मामा साहब के सत्प्रयत्नों से उनके आगमन[15] का प्रबन्ध हुआ है ।

९ जनवरी १८५१ : श्रीमती गजाबाई ने अपना सामान और नखड़ा (श्रृङ्गार सामग्री) उज्जैन भेजा था । अब उनकी आज्ञा हुई है कि ये सामान वापस लाए जाएँ ।

---

[10] पूर्वोक्त पुस्तक २९ जनवरी १८५१.

[11] पूर्वोक्त पुस्तक ५ फरवरी १८५१.

[12] पूर्वोक्त पुस्तक २६ फरवरी १८५१.

[13] पूर्वोक्त पुस्तक ५ मार्च १८५१.

[14] पूर्वोक्त पुस्तक १९ फरवरी १८५१.

[15] पूर्वोक्त पुस्तक २२ फरवरी १८५१.

एक दिन किसी कार्य वश सेना के अफ़सरों ने मुख्तार-ए-रियासत से भेंट की ।

९ जनवरी को मूसलाधार वृष्टि हुई । नाजिर ने एक पण्डित के मुकदमे की जाँच कर उसकी जब्त सम्पत्ति वापस देने की आज्ञा दी ।

तिल संक्रान्ति के दिवस को शाम को राज सभा की एक बैठक हुई । बापूराव सातोवेला और माधवराव फलकिया उपस्थित थे । हमेशा की भाँति बड़ी देर तक उत्सव[16] मनाया गया ।

राज्य के प्रायः सभी उच्च अधिकारी अपने मकानों पर कार्यालय रखने लगे हैं । फलस्वरूप जनता और सरकारी नौकरों को बड़ी असुविधा हो रही है । किन्तु आपत्ति करने का साहस किसी में नहीं है ।

नगर में ज़ोरों की अफवाह है कि ब्रिटिश सरकार ने ग्वालियर के किले की तोपों को बेचने का हुक्म दिया है । जनता में इससे दुःख और निराशा फैल रही है । वे समझते हैं कि दरबार और सभासदों की दुर्बलता से ही ऐसा हो रहा है ।

अत्तारी रोड पर बहुत से लोग लूटे और घायल किए गए हैं ।

मुंशी बलवन्त राव की हार हुई है । वे मुख्तार-ए-रियासत पर पुरश्चरण कराने के अपराध में अपने पद से निलम्बित गिए गए हैं यद्यपि उन्होंने इस आरोप को मिथ्या बतलाया है और प्रमाण भी पेश किए हैं । देखें इसका क्या फल होता है ।

७ तारीख को अग्रिम खेमा नरूर पहुँचा । इसी दिन महाराजा शिकार खेलने जाने वाले थे ।

मुख्तार-ए-रियासत की अनुपस्थिति में राकू भाला दीवान और मल्लनजी राज-कार्य करेंगे ।

मुंशी बलवन्तराव के दरवाज़े पर सिपाहियों का एक दल पहरा देता है । उनसे दबाव डाल कर अपराध स्वीकार[17] कराने का प्रयत्न हो रहा है ।

हमारा स्थानीय प्रतिनिधि विवरण भेजता है कि जब से मुख्तार-ए-रियासत प्रतिशास्ता नियुक्त हुए, किसी भी व्यक्ति के अधिकार या स्वत्वों का हनन नहीं हुआ । उन्होने सशस्त्र सेनानायकों का वेतन जो बाक़ी पड़ा था चुका दिया । अब केवल दो महीने का वेतन और वितरित करना है । इस नए प्रबन्ध से सेनानायकों को सन्तोष और आनन्द हुआ है । वे आज तक ग़रीबी में अपने दिन काट रहे थे ।

श्रीमती बैजाबाई के विशेष प्रबन्ध के पश्चात् भी कर विभाग के अफ़सरों को कपड़े का अभाव है । फिर भी ये विचारे उनके दीर्घ जीवन की कामना करते हैं केवल उनको छोड़ कर जो नमकहराम हैं । इनमें से एक की कृतघ्नता[18] विस्तृत विवरण देने के योग्य है ।

पत्र-प्रतिनिधि का कहना है कि बुरे विचारवाला व्यक्ति अपना स्वभाव प्रकट करने का अवसर पाने पर नहीं चूकता । किन्तु दूसरों की बुराई करने वाला नहीं समझता कि ईश्वर निर्दोष पुरुषों की ऐसे नीचों से बराबर रक्षा करता है । जो लोग दूसरों के लिए कुँआ खोदते हैं वे स्वयं उसमें गिर कर मरते हैं ।

मुंशी बलवन्त राव हर तरह से कृपा और उपकार प्राप्त करता हुआ भी अपनी कृतघ्नता और शैतानी से बाज़ नहीं आता ।

पत्र-प्रतिनिधि ने मुंशी के काले-कारनामों का वर्णन किया है । जब कर्नल स्लीमैन गवर्नर जनरल के राज-प्रतिनिधि थे, मुंशी बलवन्त राव पर ७५,०००) रुपये ग़बन करने और घूस लेने का आरोप हुआ था । ब्रिटिश सरकार की आज्ञा से उन्हें देश निकाले का दण्ड मिलनेवाला था । बाबू पटनवीस को भी देश छोड़ने की आज्ञा दी गई थी ।

मुख्तार उद्दौला ने अपनी सारी शक्ति और प्रभाव से मुंशी बलवन्त राव को इस तरह लाञ्छित होकर देश छोड़ने की विपत्ति से उद्धार करने का प्रयत्न किया । इतना ही नहीं, उन्होने मुंशी के गोद लिए हुए पुत्र को पिता के

---

[16] अखबार-ए-मालना ४ फरवरी १८५१.

[17] उपरोक्त अखबार ८ मार्च १८६१.

[18] उपरोक्त अखबार १८ मार्च १८५१.

सभी स्वत्व और विशेषाधिकार प्रदान किए । कभी कभी उन्होंने मुंशी बलवन्त राव को दरबार में उपस्थित होने का निमन्त्रण भेजा और मुंशी दो बार दरबार में उपस्थित भी हुआ । पश्चात् मुख्तार-उद्दौला ने पूरे सम्मान के साथ मुंशी को उसके पद पर स्थापित[19] कर दिया ।

इस कृपापूर्ण व्यवहार के बाद भी उस दुष्ट व्यक्ति ने अपनी नीयत प्रदर्शित की और राज्य के सम्मान पर धब्बा लगाने की कोशिश की ।

उसने अपने पुराने साथियों रङ्गराव और कृपाराम से जो राजकीय पाठशाला के अधिकारी थे सहायता ली और विवाहोत्सव में जाने का बहाना कर दरबार में अनुपस्थिति की आज्ञा प्राप्त की । अपने साथियों के साथ वह पुरश्चरण में कुशल एक व्यक्ति से मिलने कोरापूँदी पहुँचा । इस के बाद वह बनारस गया । वहाँ दशहरा के दिन उसने जादू-टोना का मन्त्र सिद्ध किया और मुख्तार-उद्दौला बीमार पड़े ।

उनकी हालत दिन-पर-दिन खराब होती गई । सब तरह की दवाएँ हुंई पर कोई लाभ न हुआ । अन्त में ज्योतिषी और शास्त्री लोग बुलाए गए जिनकी प्रयत्नों और मनौतियों से उनका रोग दूर हुआ ।

समर जिसने सारा भेद खोल दिया, गिरफ्तार है । उसने अपराध स्वीकार कर लिया है । षड्यन्त्रकारियों का नेता जियो भी बनारस में गिरफ्तार कर लिया गया । एक और सहायक राजाराम ग्वालियर में पकड़ा गया है । बिना हस्ताक्षर और पते वाले कई पत्र जो मुंशी बलवन्तराव ने लिखे थे राजाराम के पास मिले हैं । राजाराम ने सब कुछ सच सच बता दिया है । उसने बयान दिया है कि उसको किस किस ने किस उद्देश्य से क्या करने के लिए बहकाया था । उसके पास से जो पैंतालीस मराठी, गुजराती और फ़ारसी में लिखे हुए पत्र पकड़े गए हैं उनसे भी यही कहानी व्यक्त होती है ।

यह मुकदमा गोपाल शास्त्री को सौंपा गया जिसने षड्यन्त्र का विस्तृत विवरण प्राप्त कर लिया है । उसने मुंशी को बुला भेजा और उससे सब स्वीकार करा लिया । इस नीचता और धोखे पर ध्यान न देते हुए मुख्तार-उद्दौला ने अपनी सहज उदारता से उसे क्षमा प्रदान की । शायद मुंशी ने सोचा था कि मुख्तार-उद्दौला की मृत्यु से उसे वह पद[20] प्राप्त होगा ।

फरवरी १८५१: तीन फरवरी को महाराजा शिकार को गए । उन्हें चीता नहीं मिला इसलिए एक हरिण को मार कर सन्तोष करना पड़ा ।

पाँच फरवरी: बाबा हिन्दुराव की अगवानी के लिए राजसभा के एक सरदार को शाहजहानाबाद भेजा गया । ऐसा सुनने में आया है कि स्वीकृति मिलते ही हिन्दूराव ग्वालियर आ पहुँचेगा ।

आज महाराजा ने मौजा महीदपुर के जङ्गल में एक चीतेका शिकार किया है ।

छः फरवरी: महाराजा ने राजमाता के स्वास्थ्य के विषय में पूछताछ की और मुख्तार-ए-रियासत के महलों पर पधारे ।

सात फरवरी: मुख्तार-ए-दरबार ने आज्ञा दी है कि स्वर्गीय श्री जैकोब के महलों में सफ़ाई और सफेदी की जाय और उसे बाबा हिन्दूराव के रहने लायक बना दिया जाय ।

९ फरवरी: महाराजा हाथियों का युद्ध देखने फूलबाग़[21] गए ।

१० से १६ फरवरी तक: महाराजा मुख्तार-ए-रियासत को साथ लेकर १० फरवरी को शिकार खेलने गए । जाने से पहले उन्होंने बलवन्त राव को वस्त्र-पुरस्कार दिए क्योंकि उनके विरुद्ध कुछ साबित न हो सका । जिन लोगों पर पुरश्चरण कराने का अपराध साबित हुआ उनको दण्ड दिया जाएगा ।

---

[19] उपरोक्त समाचार पत्र १८ मार्च १८५१.

[20] पूर्वोक्त पत्र २२ मार्च १८५१.

[21] पूर्वोक्त समाचार पत्र १२ अप्रैल १८५१.

ग्यारह फरवरी को महाराजा अत्तारी पहुँचे और वहाँ सारा दिन बिताया। बारह फरवरी को उन्हें सूचना मिली कि घुड़सवार सेना के दो सवार आहत हुए हैं। चौदह फरवरी को सहायक ब्रिटिश प्रतिनिधि 'महाराजा से मिला और चार घंटे तक उनसे एकान्त में वार्तालाप करता रहा।

ऐसा सुना जाता है कि ग्वालियर किले की तोपें नीलाम होंगी। बाद को निश्चय हुआ कि चार तोपें छोड़ दी जाएँगी। बाक़ी युद्ध का सामान नीलाम होने में सरकार अपना अपमान समझती है इसलिए उसको नष्ट कर दिया जाएगा।

सहायक ब्रिटिश प्रतिनिधि ने सुझाव पेश किया कि महाराजा घूमने और शिकार में अपना अधिक समय नष्ट न करें। शासन-प्रबन्ध में दिलचस्पी लेना उनके लिए ज्यादा अच्छा होगा।

मुख्तार-ए-रियासत राज्य में बढ़ती हुई डकैतियों से बहुत दुःखी हैं।

ऐसा सुना जाता है कि ब्रिटिश सरकार पण्डितों की सहायता से शासन करने को पसन्द नहीं करती क्योंकि उनकी सम्मति में पण्डित लोग इस काम के योग्य नहीं है। किन्तु सत्य तो यह है कि पण्डितो को छोड़ कर और कोई इस काम के योग्य[22] नहीं।

१५ फरवरी को महाराजा नरूर पहुँचे। किलेदारों ने उनका स्वागत किया और जङ्गली जानवरों के छिपने के स्थानों से उन्हें परिचित कराया। तीसरे पहर महाराजा मछली का शिकार करने निकले।

१६ फरवरी को महाराजा शिकार खेलने गए और दो बड़े चीतों को मारा।

जनता ने महाराजा से आमिलों के विरुद्ध शिकायतें पेश कीं। वे सस्ते भाव में अनाज खरीद कर सेना के हाथ बहुत ऊँचे भाव में बेचते हैं लेकिन उन्हें बाज़ार भाव में सेना के हाथ अनाज नहीं बेचने देते।

दस फरवरी के खरीतों से मालूम होता है कि बलवन्तराव बहुत दुःखी और उदास है। यद्यपि पुरश्चरण के मुक़दमे से उसको मुक्ति मिल गई है फिर भी पचास हज़ार रुपये ग़बन करने का दूसरा मुक़दमा चल रहा है। रुपया भर पाई देने के लिए उसने मुख्तार-ए-रियासत के हाथ अपना बनारसवाला गङ्गामहल बेच कर नक़द बीस हज़ार रुपये दाखिल किए हैं। फिर भी इस झमेले से छूटना आसान नहीं।

बहुत समय के बाद पेशवा बाजी राव द्वितीय की निधन तिथि मनाई गई। दरबार ने तीन दिन तक शोक मनाया। सरकार ने बद्रीनाथ मन्दिर को वस्त्र और पाँच सौ रुपए भेजे।

जो सरदार महाराजा के साथ शिकार पर जाते हैं अब तंग आने लगे हैं। उनकी भी राय है कि महाराजा को राजकाज में अधिक समय लगाना चाहिए न कि समय और धन का शिकार में दुरुपयोग करना चाहिए।

सिपाहियों और एक सेठ में झगड़ा हो गया। सरकार ने इस मामले को दबा दिया।

मुख्तार-ए-रियासत ने मालवा के आमिल को कड़ी चेतावनी दी है कि वह जनता को राजनियमों का पालन करने के लिए बाध्य करे।

एक दिन जब सेना की क़वायद हो रही थी, तोपों के चलने से से कुछ पुराने घर ढह[23] गए।

महाराजा जयाजी राव सींधिया बहादुर ने अपने सेक्रेटरी को ५०० सवारों और कुछ पैदल सिपाहियों के साथ दिल्ली से हिन्दूराव को सम्मानपूर्वक लाने के लिए भेजा है।

आशा की जाती है कि हिन्दूराव इस महीने की अन्तिम तिथि तक आजाएँगे। ईश्वर की कृपा से हिन्दूराव की आन्तरिक इच्छा पूरी हो रही है।

महाराजा आलीजाह बहादुर ने स्वर्गीय चँवन जी कुँवर के पुत्र और समद किशन के भतीजे को स्वयं चढ़ने के लिए हाथी पुरस्कार में दिया। कुमार अभी पाँच वर्ष का बालक है।

---

[22] पूर्वोक्त समाचार पत्र २६ मार्च १८५१.

[23] पूर्वोक्त समाचार पत्र २ अप्रैल १८५१.

होली के दिन पाँच कैदियों को मुक्त किया गया। कोई आश्चर्य नहीं कि ब्रिटिश भारत के लोग आलोचना करेंगे कि बिना पूरा समय व्यतीत किए हुए कैदी कैसे छोड़े जा सकते हैं। पर हम लोगों को इसकी चिन्ता नहीं है। कैदी छोड़ने से मनुष्य ईश्वर की कृपा प्राप्त करने के योग्य बनता है। ब्रिटिश भारत में भी ब्रिटिश-सम्राट् के जन्म दिन पर कैदी छोड़े जाते हैं। इसलिए मुख्तार-उद्दौलाने भारतीय व्यवहार को मानते हुए कैदियों को छोड़ दिया है।[24]

मार्च १८५१: भाऊ पटनवीस के भतीजे का विवाह हुआ। मुख्तार-ए-रियासत ने स्वयं उपस्थित होकर वस्त्र भेंट में दिए।

सेना में कोषाध्यक्ष ने भारतीय और यूरोपियन अफसरों को प्रीति-भोज दिया।

मुख्तार-उद्दौला ने हाकिम साहब भैया जी के अच्छे कामों को पुरस्कृत करने के लिए एक दूसरा हाथी दिया।

हाकिम साहब ने धन्यवाद देते हुए हाथी रखने का खर्च सहन करने में अपनी असमर्थता प्रकट की। मुख्तार-उद्दौला ने सेवक और हाथी रखने के खर्च के लिए उनको प्रभूत धन दिया।

मुख्तार-उद्दौला कितने सज्जन और उदार हैं? किस प्रकार वे लोगों की योग्यता पहचानते हैं और उनको आदर देते हैं इसका विवरण देने की यहाँ आवश्यकता नहीं। उनको मनुष्यों के हृदय की बातों को जानने की देवी शक्ति प्राप्त है। यह ज्ञान प्राप्त करना कठिन है और ईश्वर की दया पर ही निर्भर है।

एक दिन ब्रिटिश-प्रतिनिधि कुछ अफसरों को साथ में लेकर बाड़े में आया। स्वागत के पश्चात् आतिशबाज़ी का प्रदर्शन हुआ। उसको आठ राजकीय वस्त्र भेंट में दिए गए किन्तु उसने एक भी लेना स्वीकार न किया।

महाराजा की नौकरानी नौरङ्गी मुख्तार-ए-रियासत की आज्ञा लेकर उज्जैन से यहाँ आई वह दलवाला में एक नए बने हुए मकान[25] में ठहरी है।

झाँसी में कबर्दा और खरोंचा के ठाकुर लूट मार कर रहे हैं। मुख्तार-उद्दौला और ब्रिटिश प्रतिनिधि की राय से उनको दबाने के लिए सेना की एक टुकड़ी भेजने का निश्चय हुआ।

(क्रमशः)

हैदराबाद

--श्री के. सजनलाल,
एम. ए.

एक हीरा जिसमें सैकड़ों दोष
हों उस पत्थर से अच्छा है जिसमें
कोई दोष न हो।

---

[24] पूर्वोक्त समाचार पत्र ५ अप्रैल १८५१.

[25] पूर्वोक्त समाचार पत्र १८ अप्रैल १८५१.

मनुष्य की वासना का विकास

वासना मनुष्य की मूल शक्ति है । वासना एक ओर अनेक प्रकार की भोगेच्छाओं में व्यक्त होती है और दूसरी ओर वह उन पदार्थों में व्यक्त होती है जिनसे इच्छाओं की तृप्ति हो सकती है । इच्छा और संसार के पदार्थ एक दूसरे के सापेक्ष हैं । जब तक इच्छा रहती है संसार और उसके पदार्थ रहते हैं और जब तक संसार और उसके पदार्थ रहते हैं इच्छा रहती है । आधुनिक मनोविज्ञान इस तथ्य को बता रहा है कि मनुष्य के ज्ञान का उसकी इच्छा से घनिष्ठ सम्बन्ध है । मनुष्य के ज्ञान का प्रसार उसी ओर होता है जिस ओर उसकी इच्छा का विकास होता है । इच्छा से स्वतंत्र ज्ञान का अस्तित्व नहीं । किसी पदार्थ के ज्ञान करने में मनुष्य की एक ही इन्द्रिय काम नहीं करती, उसका सम्पूर्ण मन काम करता है । इस प्रकार देखने में सुनने की शक्ति, समझने की शक्ति और मनुष्य के मनका रुख सभी बातें काम करती हैं । इसी बात को प्रेग्मेटिज्म के दर्शन ने बताया है । मनुष्य का साधारण ज्ञान और सत्य का ज्ञान उसकी इच्छा से सम्बन्धित है ।

मनुष्य की मूल वासना शरीर के भरण-पोषण की वासना और काम वासना है । भोजन की चाह मनुष्य में केवल स्वार्थ भाव से काम कराती है । वह दूसरों के सम्पर्क में अपने स्वार्थपूर्ति मात्र के लिये आता है । काम वासना इससे ऊंची है । इस वासना की पूर्ति विना दूसरे व्यक्ति को सुख दिये सम्भव नहीं। जो व्यक्ति दूसरे के हित की दृष्टि को ध्यान में न रखकर काम-वासना की पूर्ति करते हैं वे काम-वासना से मुक्त नहीं होते । वे सदा भूखे मनुष्य के समान ही इन्द्रिय सुख के लोलुप बने रहते हैं । काम वासना मनुष्य में प्रेम भाव की वृद्धि का हेतु है । निम्न कोटि की वासना केवल व्यक्तिगत सुख से सम्बन्ध रखती है, उच्च कोटि की वासना में मनुष्य अपना सुख दूसरे के सुख के द्वारा खोजता है । जिस व्यक्ति का सुख दूसरों को सुखी बनाने में है और जो अपने लिये कुछ भी नहीं चाहता वही महात्मा है ।

इस प्रकार मनुष्य की इच्छाओं का विकास धीरे धीरे होता है । प्रारंभ में मनुष्य और पशु में कोई भेद नहीं रहता, परन्तु अपने अनुभव की वृद्धि के साथ साथ मनुष्य अपना स्वार्थीपन छोड़ देता है ; वह व्यक्तिगत और क्षणिक सुखों के पीछे न पड़ कर व्यापक और स्थायी सुखों की चाह करता है । सभी प्रकार के सुखों का अन्त दुःख में होता है । मनुष्य का स्वार्थ भाव भी इसी प्रकार उसके सुखों की वृद्धि न करके उसके दुःखों की वृद्धि करता है। बार बार दुःखों का अनुभव करने के परिणाम-स्वरूप मनुष्य व्यक्तिगत सुखों और स्वार्थ के भावों से मुक्त हो जाता है । वह फिर स्वभावतः नित्य सुख की ओर आकर्षित होता है ।

वासना का विकास एक ओर दुःख के भाव के साथ साथ होता है और दूसरी ओर विचार की वृद्धि के साथ। जो मनुष्य जन्म से प्रखर बुद्धि का होता है वह अपने सामान्य अनुभव से लाभ उठाता है और अनित्य सुखों में अपने मन को इसलिये नहीं फंसाता ताकि उनका अन्तिम परिणाम दुःख होगा । नित्य चिन्तन करने के अभ्यास से मनुष्य की वासना में इस प्रकार विकास होता है । प्रारंभ में विचार इच्छा का दास होता है, आगे चलकर वह इच्छा का संचालक और स्वामी बन जाता है । जिस व्यक्ति का विचार इच्छा से जितना ही स्वतंत्र होता है वह उतना ही विकसित मन का है ।

वासना का नियंत्रण केवल वासना के दमन से नहीं होता । वासना का दमन मनुष्य में विषमता, उद्विग्नता और व्यक्तित्व विच्छेद की अवस्था को उत्पन्न करता है। वासना का दमन उसके सफल नियंत्रण से भिन्न वस्तु है। वासना के सफल नियंत्रण से मनुष्य की शक्ति का प्रसार

होता है। वह असाधारण कार्य करनेकी क्षमता प्राप्त करता है। वासना का सफल नियंत्रण वासना की शक्ति के सदुपयोग के लिये नितांत आवश्यक है। वासना शक्ति के संचय से ही मनुष्य किसी भी कार्य को लगन के साथ करता है। जब मनुष्य की इच्छा-शक्ति निर्बल हो जाती है तो उसको कार्य में लगन भी नहीं रहती।

मनुष्य के जीवन में प्रबल वासनाओं का रहना एक दृष्टि से भला है। संसार के लोगों के लिये कल्याण का काम करना, सुन्दर पदार्थों का निर्माण करवाना, वैज्ञानिक सत्य की खोज करना, तथा अनेक प्रकार के सांस्कृतिक विषयों का निर्माण करना वासना का ही कार्य है। जिस मनुष्य को संसार से पूर्ण वैराग्य हो जाता है वह संसार के काम का भी नहीं रहता। ऐसे मनुष्य का जीवन न तो संसार के लोग चाहते हैं और न वह स्वयं संसार में रहना चाहता है। अत एव ऐसे व्यक्ति का शरीरान्त भी शीघ्रता से हो जाता है। मनुष्य संसार में तभी तक जीता है जब तक उसका आन्तरिक मन जीना चाहता है। इसके लिये अपने आप में लौकिक पदार्थों के लिये आसक्ति आवश्यक है। दूसरे लोगों की इच्छा भी हमारी जीने की इच्छा को बली बनाती है। जिस मनुष्य का मरना सभी लोग चाहने लगते है, अथवा जिसके जीने मरने से सभी लोग उदासीन हो जाते हैं उसका जीना अधिक दिन तक नहीं होता।

हमारे लौकिक जीवन का ध्येय केवल उसका विसर्जन कर देना मात्र नहीं है। लौकिक जीवन का कोई प्रयोजन या हेतु है। पशु-योनि में लौकिक जीवन का अन्तिम ध्येय प्राप्त नहीं होता। मनुष्य योनि में यह संभव है। इसके लिये मनुष्य को अपनी आकांक्षाओं का उत्तरोत्तर विकास करना आवश्यक है। ऐसे तो स्वयं प्रकृति ही दुःख-सुख के विनियमन के नियम के अनुसार मानव-जीवन को विकसित कर रही है। परन्तु इस प्रकार का प्राकृतिक विकास सफल जीवन की कसौटी नहीं हैं। प्रकृति द्वारा जो इच्छाओं का विकास होता है वह धीरे धीरे होता है और उसके साथ साथ दुःख भी होता है। स्वेच्छा से जो वासनाओं का विकास होता है वह शीघ्रतापूर्वक होता है और उसमें मनुष्य को दुःख नहीं होता। मनुष्य और पशु में इतना ही भेद है कि पशु के दुःख-सुख प्रकृति अर्थात् बाह्य परिस्थितियों पर निर्भर करते हैं मनुष्य अपने सुख और दुःखों का नियंत्रक स्वयं बन जाता हैं। जिस मनुष्य का जीवन जितना ही अधिक विकसित होता है उसका अपने सुख और दुःखों पर उतना ही अधिक अधिकार होता है। ज्ञानी मनुष्य के सुख और दुःख उसकी मानसिक स्थिति पर ही निर्भर करने लगते हैं। वास्तव में सभी लोगों के सुख-दुःख अपनी मानसिक स्थिति पर निर्भर करते हैं। विवेकी पुरुष इस तथ्य को समझ जाता है। अविवेकी इसे न समझ कर अपने आप को सदा पराधीन और ग़रीबी की अवस्था में बनाये रखता है।

वासना का विकास वासना की भर्त्सना से नहीं होता, उसकी स्वीकृति अपने आप में कर के उसको सुन्दरता से प्रकाशित होने का अवसर देने से होता है। काम-वासना एक तो रतिक्रिया में प्रकाशित होती है, परन्तु यही दाम्पत्य-प्रेम, बाल-प्रेम, लोक-प्रेम, कला-प्रेम, संगीत-प्रेम तथा अनेक प्रकार की लोक-सेवा में प्रकाशित होती है। काम-वासना की भर्त्सना करने से मनुष्य अपनी शक्ति का ज्ञान नहीं कर पाता। वह अपने जीवन के सौन्दर्य को भी नहीं समझ पाता। उसकी काम-वासना के प्रति घृणा की मनोवृत्ति उसके सभी प्रकार के मानसिक विकास को रोक देती है। वह फिर आत्म-भर्त्सना करता हुआ जीवन व्यतीत करता है। मनुष्य की आनंद की स्थिति आत्म-प्रसाद से आती है। यह आत्म-प्रसाद मनुष्य को तभी होता है जब मनुष्य अपनी अन्य भाव शक्ति को उत्तरोत्तर ऊंची रीति से प्रकाशित करे। दाम्पत्य-प्रेम, बाल-प्रेम, लोक-प्रेम, कला-प्रेम, संगीत-प्रेम और लोक-सेवा काम-वासना के उदात्तीकरण के उपाय हैं। ये वासना के विकास की भिन्न भिन्न अवस्थायें हैं और एक एक करके ही ये पार की जा सकती हैं। कोई भी मनुष्य एकाएक सभी सीढ़ियां पार नहीं कर पाता। कभी कभी एक सीढ़ी से दूसरी पर जाते समय पैर फिसल जाता है। परन्तु इस प्रकार के फिसलने को स्वाभाविक समझना चाहिये। जो प्रयत्न करता है वह भूल भी करता है। मनुष्य प्रयत्न और भूल के द्वारा ही

किसी नये काम को सीखता है । अत एव किसी प्रकार की भूल से निराश न होकर सदा आगे की ओर बढ़ते जाने में ही मनुष्य का पुरुषार्थ है ।

मनुष्य की मानसिक प्रगति स्वयं एक दैवी वस्तु है । इस प्रगति के नियम को उल्लंघन करने की चेष्टा से भारी अनर्थ हो जाता है । जिस प्रकार किसी फल के पक जाने से वह स्वभावतः डाली से अलग हो जाता है इसी प्रकार जब निम्न कोटि की इच्छाओं का समय चला जाता है तब वे अलग होकर दूसरी उच्च कोटि की इच्छाओं को अपना स्थान देती हैं । परन्तु यह तभी होता है जब कि निम्न कोटि की इच्छाओं को अपने समय में ठीक से तृप्त कर लिया गया हो । जब ऐसा नहीं होता तो निम्न कोटि की इच्छायें अपना स्थान नहीं छोड़तीं और इसके कारण उच्च कोटि की इच्छाओं का आगमन ही नहीं होता । मनुष्य एक ओर विचार में बढ़ता जाता है परन्तु इच्छाओं की दृष्टि से वह बालक ही बना रहता है । जब वह इन इच्छाओं के अस्तित्व को अपनी परिस्थिति के कारण स्वीकार नहीं करता और उनके शान्त होने का कोई उपाय नहीं खोज निकालता तो वह मानसिक अथवा शारीरिक रोगों का शिकार बन जाता है। अविकसित दबी इच्छाओं में अब रोग के रूप में हठ करनेवाले व्यक्ति के जीवन में प्रकाशित होती हैं । ये रोग दैवी इच्छाओं के प्रतीक होते हैं ।

लेखक के एक विद्यार्थी को असाधारण भय साँप का है । साधारण सी कोई वस्तु शरीर के किसी अंग में गड़ जाने से उसे विचार आता है कि उसे कहीं साँप ने तो नहीं काट लिया । चूहों से भी उसी प्रकार का भय है । एक दूसरे व्यक्ति को अकेले कहीं जाने का भय है । एक तीसरे व्यक्ति को गंदगी का विचार बहुत सताया करता है । एक को सफ़ाई की झक है । एक साधक को स्त्रियों के देखते ही उनके गुह्य अंगों की कल्पना होती है । एक को नये मनुष्य के मिलने से ही गुदा भाग का स्मरण ही आता है । एक व्यक्ति किसी भी व्यक्ति की ओर देख कर बातचीत नहीं कर सकता । उसे विशेष प्रकार की झेंप सी होती है । ये सभी मानसिक रोग दबी वासना के प्रतीक हैं । काम वासना को घृणा की दृष्टि से देखने से एक ओर उसकी शक्ति प्रबल हो जाती है और दूसरी ओर वह रचनात्मक ढंग से प्रकाशित न कर ध्वंसात्मक ढंग से अथवा रोग के रूप में प्रकाशित होती है ।

वासना को जान बूझ कर प्रकाशित करने से उसका उदात्तीकरण सरलता से हो जाता है । वासना सम्बन्धी इच्छायें जबतक दमन की अवस्था में रहती हैं वे प्रबल होती जाती हैं, जब उन्हें प्रकाशित होने की छूट दे दी जाती है तो बहुत-सी चेतना के स्तर पर आकर ही शान्त हो जाती हैं । सभी इच्छाओं का आचरण में प्रकाशित होना उनके शान्त होने के लिये आवश्यक नहीं होता । परन्तु उनके प्रति विरोध के भाव का अन्त होना उनके विकसित होने के लिये नितांत आवश्यक है । अपने आप से घृणा करने वाले व्यक्ति का कल्याण कभी भी नहीं होता । अपने आप से घृणा करना अपने आप को अपना शत्रु बनाना है । जिस व्यक्ति के मन में इस प्रकार द्वन्द्व चलता है वह सुखी कैसे रह सकता है । स्थायी शान्ति के लिये अपने आप के प्रति अर्थात् अपने भूतकालीन और वर्तमान स्वत्व के प्रति मैत्रीभाव का स्थापन करना आवश्यक है । जो कुछ हमने पहले सोचा, समझा और किया है उसी का फल आज का व्यक्तित्व है । अन्य शान्ति के लिये अपने पूर्ण स्वत्व को स्वीकार करना और उसकी मांगों को न ठुकराना आवश्यक है ।

बनारस

--लालजीराम शुक्ल
एम. ए.

प्राचीन भारत में जनतन्त्र व्यवस्था के संकेत

आज के राजनीतिक युग की दो मुख्य देन हैं—— गणतन्त्र पद्धति और अन्तर्राष्ट्रीय वाद । प्रचलित धारणा के अनुसार गणतन्त्रात्मक शासनपद्धति का जन्मदाता ब्रिटेन माना जाता है । इसमें सन्देह नहीं कि इस गौरवपूर्ण शासनप्रणाली के सम्बन्ध में पाश्चात्य जगत् ने अनेक प्रयोग किए हैं किन्तु ब्रिटेन को अथवा पश्चिम को इसका जन्मदाता कदापि स्वीकार नहीं किया जा सकता ।

भारत आज से सहस्रों वर्ष पूर्व इस गणतन्त्र प्रणाली से परिचित था । यदि हम ईसा के जन्म से एक हज़ार वर्ष पूर्व तक दृष्टिपात करें तो दीर्घ समय के व्यवधान के कारण अविस्पष्ट होने पर भी उस काल में गणतन्त्र व्यवस्था के सुचारु प्रचलन का परिज्ञान होता है । इस प्रणाली का सूत्रपात तो उससे भी अनेक वर्ष पूर्व हो चुका था । वेद, भाष्य, ब्राह्मण ग्रंथ, व्याकरण ग्रंथ, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, जैन सूत्र तथा बौद्ध जातक और अविदान शतक आदि अनेक प्राचीन शास्त्रों में गणतन्त्र पद्धति का उल्लेख मिलता है । इस गणतन्त्र पद्धति का उस काल में सम्यक् विकास हो चुका था—— इसकी पुष्टि में इन शास्त्रों में अनेक अन्तःप्रमाण उपलब्ध होते हैं—— गण, विशः, सभापति, शलाका, गणपूरक, बहुतर वा ये भुय्यसिकम, छन्दाक् तथा वैह्यः आदि पद वर्तमान गणतन्त्र प्रणाली के पार्लमेण्ट, विधानसभा, प्रेज़ीडेण्ट, मतपत्र या बैलट, सचेतक या ह्विप्, बहुमत, जनमत संग्रह तथा सामान्य जन (Commoner) के पर्यायवाची ही हैं । वर्तमान गणतन्त्र प्रणाली की लगभग समस्त पदावली की तात्कालिक सत्ता सिद्ध होने से यह प्रमाणित नहीं होता कि उस काल में इसका यथेष्ट विकास हो चुका था ?

वैदिक संकेत

वेदों में जिन सभा तथा समितियों का वर्णन मिलता है वे गणतन्त्र के लघु संकेत ही हैं । उदाहरण के रूप में ऋग्वेद की एक ऋचा है——

"समानो मंत्रः समितिः समानी
समानं व्रतं सह चित्तमेषाम्"

इसमें प्रार्थना की गई है कि हमारी एक सर्वसामान्य समिति हो, एक राज्यनीति हो, समान उद्देश्य हो तथा एक समान चित्तवृत्ति हो । समिति से तात्पर्य है एकत्रित होना——एकसाथ मिल कर बैठना ; सभा से तात्पर्य है—— 'जिसमें सब समान रूप से विभ्राजित-शोभायमान होते हों ।

अथर्व वेद में सभा तथा समितियों को प्रजापति की 'दो पुत्रियां' कहा गया है । निस्सन्देह प्रजापति के साहचर्य से उनका वैदिक काल से भी अत्यधिक प्राचीन होना सिद्ध होता है । मंत्र इस प्रकार हैं——

"सभा च मा समितिश्चावतां प्रजापतेर्दुहितरौ संविदाने
येना संगच्छा उप मा स. शिक्षा चास वदानि पितरःसंगतेषु
विद्म ते सभे नाम नरिष्टा नाम वा असि ये ते के चे
सभासदस्ते मे सत्तु स वाचसः"

इन मंत्रों में याज्ञिक प्रार्थना करता है कि हे सभा तेरा नाम सचमुच 'वरिष्टा' है——जो सभासद् तुझमें एकत्रित होकर बैठें वे मेरे मतैक्य से बोलें । वरिष्टा से तात्पर्य है——बहुतों का वह प्रस्ताव जिसका उल्लंघन नहीं किया जा सकता अथवा जो अवश्य ही क्रियान्वित किया जाएगा । क्या इन मंत्रों में वर्तमान गणतन्त्र प्रणालीद्वारा अभिहित 'मेजोरिटी' द्वारा शासन करने के संकेत नहीं मिलते ?

प्राचीन गणतन्त्र पद्धति में ये सभाएं तथा समितियां ही जनशासन के उत्तरदायित्व का निर्वाहण करती थीं । ये सभाएँ प्रधान शासक का निर्वाचन करती थीं और शासक या राजा सभा में उपस्थित होकर इस प्रकार अपनी भक्ति की 'श्रुति' या शपथ लिया करता था :

"प्रतिज्ञाञ्चाभिरोहस्व मनसा कर्मणा गिरा
पालयिष्याम्यहं भौमं ब्रह्म इत्येव चासकृत्
यश्चात्र धर्मो नीत्युक्तो दण्डनीतिव्यपाश्रयः
तमशंकः करिष्यामि स्ववशो न कदाचन ॥"

महाभारत के शान्तिपर्व के इन श्लोकों में 'भौम' शब्द से निश्चय ही यह अभिप्रेत है कि 'सब कुछ देश का है। राजा तो केवल गणदास होता था। इसके अतिरिक्त प्रधान मंत्री का पद केवल उसी व्यक्ति को दिया जा सकता था जिसमें नागरिकों को विश्वास हो। जैसा कि महाभारत में ही कहा है—

"तस्मै मंत्रः प्रयोक्तव्यो दण्डमाधित्सता नृपाः
पौरजानपदा यस्मिन् विश्वासं धर्मतो गताः।"

इस प्रकार यह स्पष्ट ही है कि प्रधान मंत्री तभी तक पदारूढ़ रह सकता था जब तक नागरिक उसके नेतृत्व का सम्मान करते थे। उपर्युक्त श्लोक में नृप शब्द से "लिमिटेड मोनार्क" की—जो वर्तमान गणतन्त्र प्रणाली का एक रूप है— ओर भी संकेत होता है। इस प्रणाली में राजा को गणतन्त्र के वैधानिक शासक के रूप में स्वीकार किया जाता है जैसी कि प्रथा ब्रिटेन में प्रचलित है।

यजुर्वेद में अनेक स्थलों पर ऐसे व्याख्यान मिलते हैं जिनसे प्राचीन काल में उत्तरापथ और दक्षिणापथ में गणतन्त्र की सत्ता का निर्देश होता है।

ऐतरेय ब्राह्मण का एक उदाहरण है—

"एतेन च तृचेनैतेन त यजुतैताभिश्च व्याहृतिभि वैराज्याय तस्मादेतस्यां उदीच्यां दिशि ये के च परेण हिमवन्तम् जनपदा उत्तर कुरव उत्तरमद्रा इति वैराज्यायैव तेऽभिषिच्यन्ते। विराडित्ये नानभिषिक्ता नाचक्षत ...."

इस उद्धरण में वैराज्य विधान प्रणाली को हिमालय की तराई के राज्यों में प्रचलित बताया गया है। वैराज्य विधान में राजा का अस्तित्व स्वीकार नहीं किया जाता। वह पूर्णरूपेण जनतन्त्रात्मक होता है।

"य एवं विद्वान् वाजपेयेन यजति, गच्छति स्वाराज्याम् अग्रं समानानाम् पर्येति।"

तैत्तिरीय संहिता के इस उद्धरण में स्वराज्य का उल्लेख किया गया है। यहां स्वराज्य से प्रजा राज्य का अर्थ ही अभिप्रेत है।

वैराज्य राज्य प्रणाली का तो प्राचीन काल में इतना विकास हो चुका था कि उसके अनुसार विदेशियों को भी तत्संबंधित गणतन्त्र का नागरिक स्वीकार कर लिया जाता था।

पाणिनि का संकेत

प्रसिद्ध वैयाकरण पाणिनि ने (जिन का समय विक्रम से पांच सौ वर्ष पूर्व माना जाता है) अपनी अष्टाध्यायी में संघोद्घौ गणप्रशंसयोः' सूत्र के द्वारा संघ और गण को एकार्थ सूचक माना है। ये गण और संघ शब्द गणतन्त्र प्रणाली के अभिवाचक ही हैं। गण गणना का सूचक होने के कारण 'पार्लमिण्ट' का बोधक है जिसमें उपस्थित सभ्यों की पूर्व निर्धारित गणना पूर्ण होने पर ही कार्यवाही आरम्भ की जा सकती है। वर्तमान 'कोरम' की प्रथा का प्राचीन संकेत हमें यही मिलता है।

महाभारत के संकेत

महाभारत का शान्ति पर्व गणतन्त्र के व्याख्यान से भरा हुआ है (महाभारत का रचना काल ईसा से ४०० से ५०० वर्ष पूर्व माना जाता है)। युधिष्ठिर भीष्म पितामह से पूछते हैं—

"....गणानां वृत्तिमिच्छामि श्रोतुं मतिमतां वर।
यथा गणा प्रवर्द्धन्ते न भिद्यन्ते च भारत
अरींश्च विजिगीषन्ते सुहृदः प्राप्नुवन्ति च।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं निखिलेन परन्तप
यथा च ते न भिद्येरंस्तच्च मे वद पार्थिव

अर्थात् हे विद्वद्वर, गणों का सम्यक् पारिभाषिक विवेचन कर यह बताइये कि गण किस प्रकार समृद्ध हो सकते हैं और किस प्रकार फूट और विभेद से बचकर शत्रुओं से आत्मरक्षा कर सकते हैं। इस प्रश्न के विश्लेषण

से ज्ञात होता है कि गण उस समय पतनोन्मुख थे। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के अनुसार प्रत्येक पदार्थ, नीति और परंपरा में अन्तर पड़ते रहते हैं। एक दीर्घ अवधि तक सुसमृद्ध रह कर गण पतनगामी हो चले थे। प्रश्न के उत्तर में भीष्म कहते हैं—

> “ज्ञानवृद्धाः प्रशंसन्ति शुश्रूषन्तः परस्परम्
> विनिवृत्ताभिसन्धानाः सुखमेधन्ति सर्वशः।
> धर्मिष्ठान् व्यवहारांश्च स्थापयन्तोहिः शास्त्रतः
> यथावत् प्रतिपश्यन्तो विवर्द्धन्ते गणोत्तमाः।
>
> . . . .
>
> “अन्योऽन्यं नाभिभाषन्ते तत्पराभवलक्षणं
> जात्या च सदृशाः सर्वकुलेन सदृशास्तथा।
> न चोद्योगेन बुद्धया वा रूपद्रव्येण वा पुनः
> भेदाच्चैव प्रदानाच्च भिद्यन्ते रिपुभिर्गणाः।
>
> . . . .
>
> तस्मात् संघातमेवाहुर्गणानां शरणम् महत्।”

सारांश यह कि गणों में ज्ञान में वृद्ध व्यक्ति अपने प्रस्ताव से एक दूसरे पर नियन्त्रण रखते थे। गणतन्त्र में जन्म से ही प्रत्येक व्यक्ति को समान समझा जाता था। कुल भेद की प्रथा नहीं थी। सामान्य जन गणनायकों द्वारा गणप्रधान की आज्ञा का पालन करते थे। गणों का नाश शत्रु उनमें पारस्परिक विद्वेष जागृत कर ही कर सकते थे। वास्तव में गणों को किसी भी प्रकार का बाह्य भय नहीं होता था वरन् उनके विनाश का हेतु तो केवल आभ्यन्तर विद्वेष होता था। सचमुच हम वर्तमान गणतन्त्र का सत्यस्वरूप महाभारत के श्लोकों में देख सकते हैं।

जैनागम-संकेत

लगभग ढाई हज़ार वर्ष पूर्व रचित जैन आचारांग सूत्र में लिखा है—

> “अरायाणि वा गणरायाणि वा जुवरायाणि वा
> दो रज्जाणि वा वे रज्जाणि वा विरुहरज्जाणि वा”

इसमें विभिन्न राज्य प्रणालियों का उल्लेख है। उस समय गणतन्त्र के साथ साथ ऐसे भी राज्य विद्यमान थे जहाँ द्वैध शासन चलता था। किन्तु इतना निश्चित है कि उस समय गणतन्त्र परम्परा अधिक स्पृहणीय और प्रिय बनती जा रही थी। ‘अभिधानराजेन्द्र’ नाम के प्राकृत कोष में—‘सचितादिसमूहो लोगम्मि गणो उमल्लपूरादि कुप्पावयणम्मि लोउत्तर ओसन्नगोयाणाम्’—के द्वारा गणतन्त्र के संचालकों को सावधान चित वाला कहा है। निस्सन्देह गणतन्त्र में विलासिता अथवा शिथिलता के लिए कोई स्थान नहीं है।

बौद्ध-संकेत

बौद्ध ग्रंथों में अनेक स्थलों पर गणतन्त्रसंबंधी उद्धहरण मिलते हैं। ‘मज्झिम निकाय’ में कहा है—‘इमे सम वि हि गौतम संघानाम् गणानाम् संयथीदम् वज्जिनाम् मल्लानाम्’ अर्थात् हे गौतम! संघ और गणों के लिए भी यही व्यवहार है—गण यथा-वज्जि और मल्ल।

अवदान शतक में एक मनोरंजन कथा आती है जिसक कुछ अंश इस प्रक र है—

“अथ मध्यदेशात् वणिजो दक्षिणापथं जताः। तैः राज्ञो महाकप्रदिणस्य प्राभृतमुपनीतम्। राजां उक्तम् भो वणिजः कस्तत्र राजेति, वणिजः कथयन्ति देव! केचिद्देशा गणाधीश केचिद्राजाधीना इति”—अर्थात् मध्यदेश से दक्षिणापथ गए कुछ व्यापारियों से जब दक्षिणापथ के राजा ने प्रश्न किया कि मध्यदेश में कौन राजा है— तब उन्होंने उत्तर में कहा कि वहां गणतन्त्र और राजतन्त्र दो शासन प्रणालियाँ प्रचलित हैं।

जातकों में गणतन्त्रात्मक लिच्छवियों की राजधानी वैशाली में ७७०७ राजकों की सत्ता का विधान है। ये राजक् वर्तमान पार्लमिण्ट सदृश तत्कालीन गण के सदस्य होते थे तथा धनिक और निर्धन सभी का प्रतिनिधित्व करते थे। ये विधान भवन में समय समय पर एकत्रित हुआ करते थे।

अंगुत्तर निकाय नामक पालीग्रंथ में लिखा है—

“यस्स कस्स चि महानाम, कुल पुत्तस्स पंच धम्मा संविज्जन्ति यदि वा रजो ग्वत्तियस्स युद्धाभिसित्तस्स

यदि वा रट्ठिकस्स पेत्तनिकस्स यदि वा सेनाय सेनापतिकस्स यदि वा गाम गामणिकस्स यदि वा पूग गामणिकस्स ये वा पन कुले सु पच्चे काद्दिपच्च कारेत्ति"

अर्थात् कुलपुत्र अपनी शिक्षा दीक्षा और प्रयत्न से राजा बन सकता था (राजा वास्तव में गण का प्रथम सेवक समझा जाता था)। वह सेनापति बन सकता था, व्यापार मण्डल का प्रधान बन सकता था इत्यादि। तात्पर्य यह कि प्रत्येक नागरिक को गणतन्त्र में उन्नति की पूर्ण सुविधाएं उपलब्ध थीं।

गणतन्त्रों का नामोल्लेख

पाणिनि ने-- "आयुधजीविसंघात्र सञ्न्यङ्वाहीकेष्व ब्राह्मण राजन्यात् वृकहिण्यण्" सूत्र के द्वारा और पाणिनि के टीकाकार नागेशप्रदीपोद्योत ने "शतद्रुविपाशेरावदी वितस्ता चन्द्रभागेति पंचनद्यः सिन्धुः, षष्टस्तन्मध्यदेशो वाहीक इति तद् व्याव्यातारः" के द्वारा 'वाहीक' गणतन्त्र की सत्ता का तथा विस्तार का वर्णन किया है।

ईसा के अनन्तर काल में तो--

"गान्धारा यवनाश्चैव सिन्धुसौवीरमद्रकाः
शकाः द्रुह्या पुलिन्दाश्च पारदाहारमूर्त्तिकाः"

आदि के द्वारा मत्स्य पुराण में और इसी प्रकार वायुपुराण में अनेक गणतन्त्रों का नामोल्लेख मिलता है।

कौटिल्य का अर्थशास्त्र

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में संघ-शासन-प्रणाली का सविस्तार वर्णन उपलब्ध होता है। कौटिल्य ने गणतन्त्रवाद की निन्दा ही की है क्यों कि उनके विचार में गणतन्त्र के आधार पर प्रतिष्ठित शासन पद्धति में राज्यनीति की गुह्य बातों को अप्रकाशित या गुप्त रखने की क्षमता नहीं होती। संसद् के सदस्यों के सामने कही हुई सभी बातें तुरन्त जनता में फैल जाती हैं जिससे शासन का अहित होता है।

कौटिल्य ने संघ प्रणाली के दो रूपों का वर्णन किया है--इन में से प्रथम रूप संघ शासन के प्रधान को राजा की पदवी से अलंकृत करता था और दूसरा नहीं। प्रथम प्रकार के संघों में लिच्छविक, वृजिक, मल्लक, भद्रक, कुकर, कुस तथा पांचाल आदि प्रसिद्ध थे। द्वितीय प्रकार के संघ 'कांबोजसुराष्ट्रक्षत्रियश्रेण्यादयो वार्ताशास्त्रोपजीविनः' के अनुसार काम्बोज, सुराष्ट्र, क्षत्रिय, श्रेणी आदि के। ये द्वितीय प्रकार के संघ आयुधजीवी कहलाते थे जिनमें प्रत्येक नागरिक को आवश्यक रूप से सैन्यशिक्षा प्राप्त करनी पड़ती थी। किन्तु इस विभेद के रहते हुए भी दोनों ही संघ प्रणालियों में नागरिक स्वतन्त्रता तथा गण शासन को सामान्य रूप से स्वीकार किया गया था।

इस प्रकार ज्ञात होता है कि आज के युग में जिस गणतन्त्र पद्धति का बोलबाला है और जिस प्रकार उसके अनेक रूप पश्चिम के राष्ट्रों में दृष्टिगोचर होते हैं उसी के संबंध में आज से शताब्दियों पूर्व भारतवर्ष ने अनेक प्रयोग किए थे। साहित्य विहित वे प्रयोग आज भी भारत के अतीत गौरव को अक्षुण्ण बनाए हुए हैं।

हैदराबाद

--महावीरदास

सत्य, शिव और सुन्दर!

हाँ, तो मैं कला की खोज में चल पड़ा। मैं जानता था कि यह कार्य कठिन था, पर असम्भव तो न था! मेरे पास आँखें थीं, वे आँखें जो अच्छी-बुरी, नेक-बद, सुन्दर-असुन्दर को पहचानने की क्षमता रखती थीं, मेरे पास दिल था जो उमंग और उत्साह से परिप्लावित हो छल छल कर रहा था। मेरे पास अंतरात्मा का प्रकाश था, जिसके आगे सूरज मात था।

फुट पाथ पर मैंने देखा––एक हड्डियों का कंकाल जिसके मांस रक्त समय की दाढ़ में समा गये थे। उसके वक्ष पर गोश्त के दो लोथड़े लटके थे जिनमें गोश्त के बदले चिमड़े चाम का आधिक्य था। मैंने ग़ौर किया––उस स्थान पर अवश्य ही पुष्ट पीन उरोज रहे होंगे जो हिम से श्वेत-धवल पुष्प–से होंगे और जिन पर अलि बैठे रसपान करते रहे होंगे। उन्हीं के बग़ल से धड़धड़ाता दिल जो कभी यौवन की अंगड़ाई से बेताब हो प्रेम के तराने गाता रहा होगा। और वे आँखें-जो अभी गढ़े में धँस निज का अस्तित्व ही खो बैठी हैं––कल कवि के 'अमिय हलाहल मद' की उक्ति को चरितार्थ करती रही होंगी। और वह पतली सी कमर, कदली-सी जाँघें जिन पर आज कोई आवरण नहीं, पर कल जिसे निरावरण करने को कई बेताव रहे होंगे। "घृणित! घृणित!!" मैं बोल उठा। वे अस्थि पिंजर खड़ खड़ा कर कह उठे––"बाबू एक पैसा?" मैं कुछ देकर बढ़ा सोचते हुए––इन्सान की हवस फिर भी नहीं जाती? जीने की इच्छा फिर भी बनी रहती है? विचार आया इसकी 'स्टडी' करूँ, पर यह तो कला है नहीं, यह सुन्दर नहीं, शिव भी नहीं चाहे सत्य हो. . . .नहीं सत्य भी नहीं है। हिप्नौटिज्म' में भी तो सत्य-असत्य का भ्रम हो जाता है। मुझे कला चाहिये कला! सत्य, शिव, सुन्दर!

लेकिन लगा-वह कंकाल मेरे पीछे चल रहा है। अट्टहास कर मानों सर्द स्वर से कह रहा हो––"मुझे देखो, मुझमें तुम सत्य, शिव, सुन्दर पाओगे। सत्य पर पर्दा मत डालो। यह हिप्नौटिज्म नहीं, सत्य है। चिरंतन सत्य है। एक दिन तुम भी इसी अवस्था को प्राप्त होगे। जीवन का सत्य प्राप्त करो, जीवन-यापन की कला प्राप्त करो––वह ही सत्य शिव सुन्दर होगी।"

झूठ! झूठ! मैं कानों को दबा कर भागा, पर जितनी तेज़ी से मैं भागना चाहता था उससे दूनी तेज़ी से वह कंकाल मेरे पीछे दौड़ने लगा। मेन रोड पर आकर मैंने दम लिया। आस पास रंग बिरंगे कपड़ों में अपने रूप और यौवन का प्रदर्शन करती सुन्दरियों का समूह इठलाते डोल रहा था। मैं प्रशंसा की दृष्टि से उनकी ओर देखने लगा। अजन्ता और एलिफेन्टा की गुफाओंमें अंकित सुन्दरियों का प्रतिरूप–अहहः यही तो है कला! सुन्दर है, सत्य है और शिव है! सुन्दर कटि, पुष्ट वक्ष, निर्दोष मुख, भाव-पूर्ण अलसाई आँखें। लेकिन कानों में लौह हथौड़ों का घन् घन् शब्द गूँज उठा- "यह चूसीं जाने वाली गंडेरियाँ हैं। इनके अधरों की लालिमा समय के चुम्बन से हर ली जायगी, इनका अक्षत यौवन काल द्वारा क्षत हो जायगा, इनका मादक रूप तिरोहित हो जायगा यह अस्थाई है, असत्य है, अशिव है, असुन्दर है। मुझे देखो।"

और मैं फिर भागा। वह अशिव और असुन्दर सत्य मेरे पीछे था। मैं सोचता था–मैंने उसे पीछे छोड़ दिया, पर वह मेरी छाया के साथ था, मेरी साँसों के साथ था, मेरी आत्मा के साथ था। मैं रूप के हाट में पहुँचा। यहाँ भी सौंदर्य का साम्राज्य था। यहाँ मुझे वासवदत्ता और चिन्तामणि दिखाई देने लगीं पर उस कंकाल ने कहा––"ये गंडेरियां चूसी जा रही हैं। तुम वासवदत्ता की सोच रहे हो? पर उसकी दशा क्या थी जब उपगुप्त उसके पास पहुँचा? उससे मेरी समानता करो। मैं ही तो हूँ वह वासवदत्ता। मेरी ओर देखो, मुझसे प्रेम करो, मेरी आराधना करो। मेरे रूप-दीप पर परवाना बनकर झूमो और गाओ।"

मेरे पैरों में पर लग गये । मैं देव-मन्दिर के पास पहुँचा । भगवान् कला-पूर्ण है, उनके निवास स्थान पर कला को आश्रय मिला होगा और मिलेगी मुझे शाँति । सेठ जी नेत्रों को अर्ध उन्मीलित किये, माथे पर त्रिपुण्ड दिये अत्यन्त भक्तिभाव से सुप्त भगवान् को जगाने का प्रयत्न कर रहे थे । उनका दृश्य भक्ति रस में इतना डूबा था कि आस पास की आवाज़ों या शोर गुल से उन्हें तनिक भी व्याधात न हो सका । मैंने सोचा यह कला का पुजारी, कला का प्रेमी और आश्रयदाता मालूम पड़ता है । भगवान् की मूर्ति में साक्षात् कला फूट पड़ रही थी । उनके घुंघराले बाल, सुन्दर मुखड़े पर बंसरी की थिरकन, अलस नृत्य की मुद्रा । अहहः, चरणों में विनीत मस्तक झुक गया । पुजारी की थाल पर खनन् के साथ सेठजी ने रुपये बरसाये । पुजारी ने भगवान् के माथे की रोली सेठ जी के मस्तक पर लगाई और वे मुस्कुरा पड़े । साथ ही वंशीवाले के अधरों पर भी मुस्कान झलक उठी । कंकाल बोल उठा–"ध्यान से देखो । कला को रुपये से बांधा जा रहा है । उन रुपयों को भी देखो जिन पर ग़रीबों के खून की छाया है । यहीं है न तुम्हारी कला ?"

मैं चिल्ला उठा—"यहाँ भी नहीं, कला यहाँ भी नहीं ?"

"पागल है !" सेठ जी बोले—"कला तो यहाँ ही है ।"

"यह कला नहीं, कला का भूत है । हाँ, कला का भूत. . . . ."

और मैं भागा ।

सौंदर्य, ऐश्वर्य, भक्ति—नहीं कला नहीं । मैं उस गली में घुसा जहाँ आज से पहले नहीं गया था । जहाँ की सड़न और बदबू दिमाग़ के कीड़ों को भी कुलबुला देती थी, जहाँ का जीवन एक उपहास था, जहाँ की समस्यायें एक ढोंग थी, जहाँ के आंसू पानी की बूंदें थीं और जहाँ की अभिलाषायें उपहासास्पद थीं । उन्हीं गरीबों की बस्ती में जहाँ इन्सान रहता था पर कुत्तों से गई बीती ज़िन्दगी गुज़ारता था ।

मैंने देखा उन्हें, जिनका सब कुछ साम्प्रदायिकता की भेंट चढ़ चुका था, दूने उत्साह और जोश के साथ जीवन से जूझते और संग्राम करते । अतीत की स्मृतियां पावस बन उमड़तीं पर जीवन की इच्छा, शक्ति की आग उन्हें भाप बना उड़ा देती । उस उत्साह और उस लड़ने में मुझे कला दिखाई दी-यह जीवन से युद्ध करने की कला थी ।

मैंने देखा पूंजीवाद के दुर्दम प्रहारों से त्रस्त सर्वहारों को जो फिर भी अपने जीवन को बनाये रखना चाहते थे । निरन्तर अभावों से युद्ध कर जीवन का वरदान पाया था और अब जीने के साधन की चाह कर रहे थे । मुझे दीखा ग़रीबी में कला लिपटी हुई । मुझे दीखा जौ और बाजरे की रोटियों में कला लिपटी हुई और मैंने कहा—"यहाँ ही कला है ! ""

फिर मैंने सोचा-शरीर बेचने वाली वेश्या भी कलाकार कही जा सकती है क्योंकि माटी के शरीर का सोने से मोल करना, वैभव और ऐश्वर्य ख़रीदना सचमुच एक कला है । उसी तरह सफ़ाई से हजारों जोड़ी आँखों में धूल झोंककर पौकेटमारी करना भी एक कला है ।. . .

". . . . .तन बेचने वाली वेश्याओं की कमी तब तक न होगी, जब तक पुरुषों की पूंजीवादी मनोवृत्ति का विनाश न होगा, जब तक आर्थिक समझौता न होगा, इसलिये यह सत्य है । कटु होते हुए भी सत्य है । तन बेच कर अपना उदर पोषण करना व्यष्टि के लिये कल्याणकारी है और व्यष्टि का संकेत समष्टि की ओर होता है । और सुन्दरता विकृति में भी होती है तथा जो वस्तु सत्य है वह असुन्दर नहीं हो सकती, चाहे वह सत्य कटु या कसैला क्यों न हो ।. . . . .

". . . .सत्य देखने के लिए आत्मा का प्रकाश चाहिये, क्योंकि मृग मरीचिका की संसार में कमी नहीं है ।

". . . .जीवन से जूझना सबसे बड़ी कला है और कलाकार जीवन से जूझने की ओर इंगित करता है और रास्ता बतलाता है ।"

और उस कंकाल ने पूछा—"और सत्य-शिव-सुन्दर कहाँ गया ?"

नागपुर —प्रमोद, बी. ए.

मराठी कहानी

अभिनय और आंत्रव्रण

(१)

धरमगढ़ के युवराज की संरक्षकता में तैयार होने वाले मयूर पिक्चर्स के हृदय दहलानेवाले, भावनाप्रधान एवं युवकों की मनोदशा के सजीव चित्र 'पत्थर' का शूटिंग चल रहा था । पश्चिमी पंजाब में सतलुज नदी के तटवर्ती कपूरपुरा नामक सुन्दर ग्राम का दृश्य इस पट कथा के पार्श्वभाग में था । कपूरपुरा नार्थ वेस्टर्न रेलवे की दो लाइनों का संगम स्थान था । अर्थात् वह एक छोटी और दूसरी बड़ी लाइन का जंक्शन था । साथ ही एञ्जिन के लिए पानी लेने की भी वहीं व्यवस्था थी । इस कारण गाँव छोटा-सा होते हुए भी स्टेशन बहुत बड़ा होनेसे 'कटी नाक पर झूमरदार नथ' को वह सोलहों आने चरितार्थ करता था । स्टेशन-मास्टर कन्हैयालाल की एकमात्र कन्या 'सिन्धु' ही मुख्य कथा-नायिका थी । पटकथा के प्रथानुसार उसके भाई बहन कोई भी न था ।

दूसरी ओर चरणदास एक ग़रीब विधवा का एकमात्र पुत्र था । भारतीय प्रेममय चित्रपटों के नायक की तरह वह अत्यंत लाड़ला होने से घर के लिए निरुपयोगी ही था । बेचारी माता लोगों का अनाज पीस कर दोनों का पेट भरने योग्य मज़दूरी कर लेती थी । किन्तु फिर भी चरणदास क़िस्से कहानी की पुस्तकें पढ़ने, घाट पर आने जानेवाली लड़कियों से हँसी-मज़ाक करने अथवा अपने दिन रात के साथी कुत्ते से वार्तालाप करने या बाँसुरी बजाते रहने में ही अपने समय का उपयोग करता था । एक दिन चरणदास का मामा अपनी बहन से मिलने के लिए आया और उसने उसे घोर परिश्रम से अपना पेट भरते देखकर सहज भाव से पूछा "बहन, तेरा बीस वर्ष का ताज़ा-तगड़ा लड़का रहते हुए भी इस प्रकार कठिन परिश्रम से तुझे पेट क्यों भरना पड़ता है? मुझसे तो तेरा यह कष्ट नहीं देखा जाता ।" ठीक उसी समय उसे अपना भानजा बंसी बजाता हुआ साइकल पर कुत्ते के साथ आता दिखाई दिया । उसकी उस आवारगी को देखकर मामा का पित्ता भड़क उठा । उसने कठोर शब्दों में कहा "रे नालायक, कृतघ्न छोकरे ! माता को कष्ट देकर इस प्रकार चैनबाज़ी में दिन बिताते हुए तुझे शर्म नहीं आती ? यदि अब भी तू मेहनत करके अपना और मां का पेट नहीं भरेगा, तो तुझे लड़की कौन काला कुत्ता देगा ?"

इस लताड़ को सुनते ही चरणदास का चेहरा पीला पड़ जाता है। किंतु साथ ही लड़की देने की बात सुनकर उसके चेहरे पर लज्जा की छटा भी दिखाई देती है । 'मामा, मुझे किसीसे भी लड़की नहीं चाहिए । में और माता, हम दोनों ही अपना जीवन व्यतीत कर लेंगे ।' वह उत्तर देता है ।

"अरे मूर्ख ! माता को नदी से पानी ला देने और रोटी बनाने में मदद करने के लिए भी तो कोई चाहिए न ? बस, बहुत बरदाश्त कर लिया । अबसे मेहनत करना ही होगा । तेरा उड़नटप्पू छैलापन आज से दूर होना ही चाहिए !" मामा डाँटता है ।

किंतु चरण एक 'कर्मणि' युवक था, 'कर्तरि' नहीं । अधिक बोलना उसे आता ही न था। वह तो केवल "हाँ, जी, माफ़ कीजिये । मैं भूल में था !" केवल यही सांकेतिक वाक्य जानता था । किंतु वाणी की मुग्धता वह अपने चेहरे पर की भावना से पूर्ण कर देता था । फलतः मामा की फटकार से उसने अपना चेहरा इतना करुण एवं दयनीय बना लिया कि उसे तत्काल ही उस पर दया आगई एवं अपने कठोर शब्दों पर पश्चात्ताप हुआ ।

(२)

कपूरपुरा के ज़मींदार कंचनलाल का बंगला सतलुज के किनारे पर ही था । और उस बंगले के आस

पास फूलों का अच्छा सा बग़ीचा भी था। उसमें हर समय प्रत्येक प्रकार के वृक्ष पर मनमाने फूल मिल सकते थे। कभी कभी तो एक वृक्ष की एक ही डाली पर तीन चार प्रकार के फूल भी दिखाई देते थे। क्योंकि सिने-जगत् में वृक्षोंपर प्रत्यक्ष फूल नहीं लगते, वरन् काग़ज़ के ही फूल काटकर उनपर चिपका दिये जाते हैं। कंचनलाल कपूरपुरा से लाहौर आते जाते समय प्रायः स्टेशन-मास्टर के कमरे में आकर बैठ जाता, और गाँव के प्रतिष्ठित एवं सम्माननीय पुरुष के नाते स्टेशन-मास्टर भी उसका आदर करता था। एक बार प्यास लगने पर कंचनलाल ने स्टेशन-मास्टर से बर्फ़ की तरह ठंडा पानी माँगा और तत्काल ही उसने पुकारा "बेटी सिन्धु! सेठ साहब के लिए ठंडा पानी लाना तो! और साथ में एक अच्छा सा सेव (फल) भी अवश्य लाना!"

'नहीं केवल पानी ही बस है। सेव लाने का कष्ट न करें; उसकी आवश्यकता नहीं।"

किंतु स्टेशन मास्टर ने हँसते हुए 'कहा' वाह साहब, कहीं खाली पानी भी दिया जाता है। पहले कुछ खाकर ही ऊपर से पानी पीना चाहिए। वही ठीक होता है। यह हमारा काश्मीरी रिवाज़ है।"

इसके बाद सिन्धु का आँखों को चकाचौंध कर देने वाला प्रवेश होता है। चित्रपट प्रसिद्ध अभिनेत्री कुंजलता 'सिन्धु' का अभिनय करने वाली है। एक हाथ में पानी का लोटा और दूसरे में छुरी सहित सेव फल की तश्तरी लेकर वह इस प्रकार ठुमकती हुई पर्दे पर दिखाई देती है कि कंचनलाल को वह छुरी अपने हृदय में ही घुसती हुई प्रतीत होती है। और सेव की लाली से उसके कपोलों की तुलना करते हुए वह लोटे से ग्लास में पानी डालने के बदले अपने घुटने पर डाल लेता है।

उसी दिन से कंचनलाल के लाहौर के चक्कर बढ़ जाते हैं। उसकी प्यास भी बढ़ने लगती है और दूसरी ओर सिन्धु का मन भी विचलित होने लगता है।

(३)

चरणदास ने मामा के सामने स्वीकार किया कि आज ही से मैं काम-धन्धा करके अपनी वृद्धा माता को कठिन परिश्रम से मुक्त करूंगा। फलतः उसी समय मामा ने उसे सेठ कंचनलाल के पास ले जाकर, ज़ोरदार सिफ़ारिश के बाद नौकर रखवा दिया। कंचनलाल के बग़ीचे में खिले हुए फूल नित्य सवेरे तोड़ कर डलिया में रख पहली गाड़ी से लाहौर जाने और जाते समय गाड़ी में बैठे हुए उन फूलों के हार या गुच्छे बनाकर बाज़ार में बेचने के बाद दोपहर को कपूरपुरा वापस आकर विक्री के पैसे सेठजी को सौंप देने का काम उसको दिया गया।

कभी कभी फूल न बिकने पर कंचनलाल नौकर की ख़ासी खबर भी लेता और अनेक प्रकार से गाली-गलौज कर अपना क्रोध शांत करता था। गालियों को सुन चरणदास विफल हो उठता और उसके मुख पर का तेज क्षीण होकर वह दीन हीन दिखाई देने लगता था। कभी कभी कंचनलाल बहुत ही झल्लाता उसके बग़ीचे के डेढ़ रुपये दर्जन वाले सुवर्ण चंपे के फूल यदि बारह आने दर्जन के भाव से बेच दिये जाते अथवा इसी प्रकार का और कोई नुक़सान या घाटा चरणदास के द्वारा होता, तो वह उसकी माता को भी गन्दे शब्दों के साथ संबोधन करने लगता था। उस समय चरणदास को मृत्यु से भी अधिक कष्ट होता और उसका मुँह काला पड़ जाता था। कंचनलाल के इस गालीगलौज के कारण कितनी ही बार नौकरों के हाथ से पिटना भी पड़ा था; किंतु चाहे जैसे अपशब्द चुपचाप सुन लेने वाला यह ग़रीब नौकर मिल जाने के बाद से तो उसके गाली गलौज के लिए केवल एक ही सीमा रह गई; और वह भी सेन्सरबोर्ड की कैंची!

चरणदास नियम से प्रतिदिन सवेरे और दोपहर को कपूरपुरा स्टेशन पर उपस्थित होने लगा। सवेरे जब वह फूलों की डलिया लिये गाड़ी की प्रतीक्षा में बैंच पर बैठता तो उन पुष्पों की सुगंध से सारा प्लेटफ़ार्म महक उठता। स्टेशन मास्टर का निवासस्थान भी स्टेशन की ही बिल्डिंग में होने से प्रातःकाल की मधुर निद्रा में मग्न रहने वाली सिन्धु को उस सुगन्ध के कारण और भी गहरी निद्रा घेर लेती और वह सुखमय स्वप्न देखने लगती थी। उसे प्रतीत होने लगता कि मैं किसी वाटिका में विहार कर रही हूँ अथवा मेरा विवाह हो

रहा है और उपस्थित लोगों को इत्र दिया जा रहा है। फिर भी एक दिन प्रातःकाल जब वह जल्दी उठ बैठी तो उसे फूलों की सुगन्ध ने मस्त कर दिया। फलतः आश्चर्य के साथ उसने कमरे का द्वार खोलकर यह जानना चाहा कि यह सुगन्ध कहां से आरही है, तो उसे फूलों की डलिया लिये बैठा चरणदास दिखाई दिया। तत्काल उसने पूछा "भाई, ये फूल लेकर तू कहां जा रहा है?"

उस लावण्यमयी युवती के मुख से इन मधुर शब्दों को सुनते ही क्षण भर के लिए वह विचलित सा हो उठा। सदैव की तरह उसके चेहरे पर आनन्द, भय और लज्जा के भाव प्रकट हुए और अपना समस्त धैर्य जिह्वा पर लाकर उसने उत्तर दिया "लाहौर ले जाता हूँ, बहन!"

"अरे, पर हमारे गाँव के ये सारे फूल लाहौर बेचने के लिए क्यों ले जाये जा रहे हैं? क्या इस कपूरपुरे में इन फूलों का उपयोग करने वाले कोई मनुष्य ही नहीं हैं? 'उसने उपेक्षायुक्त तीव्र स्वर में पूछा!"

"बहन, तुम जैसी सुन्दर मूर्ति के इस ग्राम में होते हुए मैं यह कैसे कह सकता हूँ कि यहां कोई योग्य व्यक्ति ही नहीं है? किंतु लाहौर की लड़कियों में सुन्दरता कम होते हुए भी उनके पिताओं के पास पैसा अधिक होता है। अतः उन पैसों के लिए ही मुझे ये सुन्दर सुगन्धित फूल लाहौर ले जाने पड़ते हैं!"

इस प्रकार उस संपूर्ण संवाद को लिखने की अपेक्षा संक्षेप में यही कहा जा सकता है कि क्रमशः सिन्धु और चरणदास के बीच स्नेह बढ़ता जाता है। वह प्रथमतः उसे चुने हुए फूल देने लगता है और धीरे धीरे चुने हुए बढ़िया फूलों की वेणी बना कर उसकी चोटी में अपने हाथों सें बाँधने तक नौबत पहुँच जाती है।

(४)

कंचनलाल का उद्यानशास्त्र-विषयक अध्ययन प्रशंसा के योग्य ही था। उसने पृथ्वी पर के सभी देशों के पुष्पवृक्षों के नमूने अपने बग़ीचे में लगा रक्खे । इतना ही नहीं वरन् अनेक प्रकार से 'कलमें' बाँध कर भी उसने फूलों की संख्या में यथेष्ट वृद्धि कर ली थी। लाल रंग का मोतिया, नीला चंपा, काला गुलाब तथा गुलाब के बराबर बेले (मोगरे) का फूल एवं मौलश्री के फूल जितना छोटा गुलाब तैयार कर उसने पंजाब हार्टिकल चर सोसाइटी की प्रदर्शिनी में इनाम भी पाया था।

सिंधु दोनो के प्रेमपाश में फँस रही थी। कंचनलाल यदि स्वयं सेठ, बहुत बोलनेवाला और बड़ी बड़ी बातें बनाकर हर समय आगे बढ़ने वाला व्यक्ति था, तो बेचारा चरणदास शर्मीला नौकर और मितभाषी, किंतु प्रत्येक भावना को अपनी मुखाकृति पर प्रदर्शित करने वाला ग़रीब युवक था। एक दिन मौलश्री के फूल जैसे छोटे गुलाब की गेंद बनाकर कंचनलाल उसे भेंट करने के लिए लाया; और उसका अनुमान था कि उस अद्भुत गेंद को देखकर सिंधु आश्चर्य करेगी, किंतु जब उसने यह कहते हुए गेंद पर लिपटा हुआ पत्ता हटाया कि "सिंधु, आज यह एक अनोखी भेंट मैं तेरे लिए लाया हूँ।" तो सिंधु ने उसे देखते ही कह दिया "इसमें कौन नई बात हैं? पिछले आट दिनों से तो मैं इन्ही फूलों को अपनी वेणी में लगा रही हुँ।"

इन शब्दों को सुनते ही कंचनलाल पर हज़ारों घड़े पानी-सा पड़ गया।

(५)

उस दिन जब चरणदास फूलों की बिक्री के पैसे देने के लिए कंचनलाल के पास गया तो वह एकदम क्रोध के मारे गर्जता हुआ उस पर टूट पड़ा और बोला "नमक हराम! स्टेशन मास्टर की लड़की को जो तू हर रोज़ फूल देता है क्या उन्हें अपने बाप के बग़ीचे का माल समझ कर देता है?"

'नहीं मालिक, मैं उन फूलों के पैसे बाज़ार भाव से बराबर चुकाता हूँ। सेठ का माल मुफ्त में ही किसी को नहीं दे डालता।'

"लेकिन तुझ जैसे भिखारी छोकरे का उस खानदानी लड़की को प्रतिदिन एक एक रुपया कीमत के फूल भेंट करने का कोई कारण?"

इस प्रश्न का बेचारा चरणदास क्या उत्तर देता ? उसने अपना रोने का-सा मुँह बना कर 'केवल प्यार' यही दो शब्द उच्चारण किये ।

'प्यार'? 'मुहब्बत !' हः हः हः कंगाल ! यह काम तुझ सरीखे मेहनत मज़दूरी करने वाले गधे का होना चाहिए ?' क्रोध के मारे टेबल पर के शीशे पर हाथ फटकारते हुए कंचनलाल गरजा 'मैं तुझे साफ़ जता देता हूं चरनिया, उस लड़की को मैं प्यार करता हूँ । अगर तू फिर उसके रास्ते पर गया, तो बस पिस्तौल की गोली तेरी छाती के पार ही दिखाई देगी ।'

चरणदास को उसकी धमकी पर अत्यन्त क्षोभ हुआ, किंतु अपनी उस असहाय दशा पर ध्यान देकर वह चुपचाप उसे पी गया । उसका चेहरा निराशा के कारण एकदम उतर गया और केवल 'जी हुजूर" करता हुआ वह रोती सूरत लिये घर लौटा गया । माता ने उस के दुःख का कारण पूछा और मालूम होने पर वह प्रेम से उसकी पीठ पर हाथ फेरती हुई कहने लगी 'बेटा, हम ग़रीब मज़दूरी करने वाले मनुष्य हैं । मालदारों की लड़कियाँ हमारे लिए नहीं हैं । क्या कौए ने भी कभी सारस से विवाह किया है ? अरे ,तू अपने पड़ौसी डूंगरमल बढ़ई का गंगा से विवाह क्यों नहीं कर लेता ? मैं अपने जीते जी इस घर की मालकिन-नयी बहू को तो देख लूँ !"

(६)

अगले दिन सवेरे सिन्धु को फूल नहीं मिले बल्कि उसे अपनी इच्छा के विरुद्ध अत्यंत कष्टपूर्वक झिड़कते हुए चरणदास गाड़ी में जा बैठा । गाड़ी के चल देने पर भी उसने नित्य नियमानुसार सिंधु से आँख नहीं मिलाई। और न गाड़ी के दृष्टि-ओट होने तक हाथ ही हिलाया । किंतु सिंधु उसके इस प्रकार के व्यवहार को देख कर रो पड़ी । उसके पिता का अंतःकरण भी विचलित हो उठा । इतने ही में गुलाब की सुगन्ध वहां फैल गई । कंचनलाल फूल लेकर आया था । सिन्धु के रुदन का कारण भी उसने समझ लिया और इसीलिए चरणदास का ध्यान छोड़ कर अपने साथ प्रेम जोड़ने के लिए उसने प्रार्थना की ।

इसके बाद कुछ अन्य दृश्य दिखाये जाकर चित्रपट के नियमानुसार कंचनलाल और सिन्धु लुका-छिपी खेलने लगते हैं, और उनको इस प्रकार खेलते देखकर चरणदास का हृदय विदीर्ण होने लगता है । सिंधु पिता के आज्ञानुसार कंचन की हो जाती है ; किंतु उसका आंतरिक झुकाव चरणदास की ओर ही बना रहता है ।

गाँव में एक ही दिन दो विवाह होने वाले हैं । कंचन और सिंधु का विवाह बड़े ही धूम-धड़ाके से, शान के साथ होने वाला है । लाहौर से खास तौर पर बैंड मँगवाया गया है । उत्तम गायिका और नर्तकियाँ मेहमानों का मनोरंजन कर रही हैं । मेवे-मिठाई के रसोई घर कई जगह खुले हुए हैं । इस प्रकार किसी नवाब के घर जैसी तैयारी से सब हो रहा है । (यहां दो चार प्रकार के नाच-तमाशे दिखाये जाते हैं ।)

उधर कंगालपुरे में डूंगरमल बढ़ई के द्वार पर जाजम का मंडप बाँध कर उसके नीचे बालिश्त भर की वेदी बनाई गई है । एक ताशेवाला और उसका साथी ढोलक लिये अपनी करड़ करड़ करड़, ढम से मुहल्ले भर को गुँजा रहे हैं । आशा से प्रफुल्ल गंगा को उसकी सखियाँ दुलहिन का शृंगार सजाती हुई हास्य विनोद कर रही हैं । ये परस्पर विरोधी दृश्य अमीरी और ग़रीबी का भेद प्रत्यक्ष सिद्ध कर रहे हैं । बहुमूल्य आभूषणों से सज्जित की जानेवाली सिंधु यज्ञपशु की तरह दीन बन कर आँसू ढाल रही है । उस प्रत्येक अश्रु-बिन्दु में उसे चरणदास की भावमयी मूर्ति प्रतिबिम्बित होती दिखाई देती है । उधर चरणदास भी सिंधु का स्मरण करता हुआ अपने चेहरे पर भिन्न भिन्न भाव प्रकट कर रहा है ।

किंतु अचानक ही विवाह से पहले यह आतिशबाजी कैसे शुरू होगई ? 'पाकिस्तान ज़िन्दाबाद !,' 'लड़ कर लेंगे पाकिस्तान' आदि की पुकारों के बीच बैंड और ताशे की आवाज़ धीमी कैसे पड़ गई ? भारत के दुर्भाग्य-पूर्ण विभाजन से पूर्व पंजाब की बहुसंख्यक जनता की ओर से विभाजन करना अनिवार्य बना देने के लिए **अल्प-संख्यकों के संगठित अत्याचार आरंभ हो चुके थे ।**

सर्व प्रथम सतलुज के तटवर्ती शिवालय को नष्ट भ्रष्ट किया गया और उसके बाद सिक्खों के संगमर्मरी गुरुद्वारे को बर्बाद कर दिया गया। फिर तो बाज़ार और गलियों की ओर उन असुरों का मोर्चा बदला। पहले सभी खास दूकानें लूटी गईं और फिर सारे बाजार को आग लगा दी गई। वहाँ के आर्य समाज मंदिर और काँग्रेस के दफ्तर को जलाकर राख कर दिया गया। इस प्रकार धनसम्पत्ति का विध्वंस करने के पश्चात् अल्पसंख्यक पुरुषों पर हमले और उनकी स्त्रियों पर अत्याचार आरंभ हुए। थोड़ी ही देर में सतलज की गोद में अंतिम शरण लेने वाली स्त्रियों के झुंड विकल अवस्था में दिखाई देने लगे।

बेचारे चरणदास के विवाह का मण्डप भी विध्वंस कर दिया गया। दुलहिन वेश में सजी हुई गंगा को उसके सामने ही गुण्डे उठा ले गये लेकिन वह यह सब देखते हुए भी एक हृदयस्पर्शी गीत गाता हुआ सिर पर हाथ रखे मुँह बिगाड़ कर रह गया। उधर कंचन सेठ के शानदार मंडप की तो और भी दुर्दशा हुई। विवाह में आई हुई महिलाओं की इज्ज़त लूटने में गुण्डों ने ज़रा भी कसर नहीं रक्खी। किंतु जब सिंधु के शरीर पर हाथ डालने के लिए गुण्डे आगे बढ़े तो उसके पिता ने वीरता के साथ प्रतिकार किया। अंत में वह गुण्डों की छुरी के भेंट चढ़ गया। यह सब काण्ड देखते ही कंचन सेठ अपना विवाह वाला वेष बदल कर चोटी काट लेता और बंगले के पीछेवाले घाट पर रखी हुई नौका में बैठ कर भाग जाता है। उसकी दुलहिन गुण्डों के पंजे में फँसी हुई है और आखिर में पुकार रही है कि 'लालाजी, मेरी इज्ज़त बचाइये!' किंतु उसके चिल्लाने पर ज़रा भी ध्यान न देते हुए वह अपनी नाव में भागा चला जा रहा है। ज़रा आगे बढ़ने पर जैसे ही उसके मुँह से निकला कि 'जान बच गई तो इज्ज़त फिर मिल जायगी और उसी क्षण एक चट्टान से टकराकर नाव सतलुज में डूब जाती है।

इसके बाद दर्शकों के हृदय को द्रवित कर देने वाला अंतिम दृश्य दिखाया जाने वाला था। उसमें अत्याचारियों द्वारा सतीत्व नष्ट की हुई, बिखरे केस एवं रोते रोते सूज जाने वाले नेत्रों वाली, फटे वस्त्रों में खड़ी सिंधु आँसू बहाती दिखाई देती है। किंतु उस दशा में भी चरणदास उसके सामने अंग्रेजी आर्केस्ट्रा की धुन में अहल्या की कथा गा कर सुना रहा है। किंतु 'अब इस भ्रष्ट देह को लेकर जीने से लाभ ही क्या है?' यों कहते हुए सिंधु अपने हृदय में छुरी मार लेती और गौरी राग के करुणाजनक स्वर में प्राण दे देती है।

अंतमें जलती हुई चिता का दृश्य सामने आता है, जिस में चरणदास चिता के सामने पत्थर पर बैठा पूर्व स्मृतियों के ध्यान में निमग्न दिखाई देता है।

फिर बुझी हुई चिता का दृश्य। चरणदास अस्थियाँ एकत्र कर रहा है। किंतु सिनेमा जगत् में इस बात की आवश्यकता नहीं होती कि वे अस्थियाँ सिंधु का अभिनय करने वाली नटी की ही हों। उन अस्थियों को लेकर वह नदी किनारे ऊंचे स्थान पर खड़ा हो जाता है। किंतु उस अस्थियों की गठरी में से सिंधु की आवाज़ सुनाई देती है, और वह भयभीत हो जाता है। इतने ही में 'क़ाफ़िर को मारो' 'क़ायदे आज़म जिन्दाबाद' के नारे लगाती हुई एक टोली उसकी ओर झपटती है; किंतु इसके पूर्व ही वह सतलज में कूद कर सिंधु की अस्थियों सहित डूब जाता है।

अंत में नदी की सतह पर पानी के बुलेबुले और जले हुए कपूरपुरे का दृश्य दिखाई देता है और खेल समाप्त होता है।

(७)

'पत्थर' चित्र के दिग्दर्शक उसकी सफलता के लिए पूर्ण मनोयोग से प्रयत्न कर रहे थे। क्योंकि इसी चित्र पर उनका भावी अवलंबित था। किंतु चरणदास का अभिनय करनेवाला प्रसिद्ध अभिनेता राज कपूर होते हुए भी दिग्दर्शक को उसका काम पसन्द नहीं आ रहा था। उदाहरणार्थ—चरण की वृद्धा माता टूटी खाट पर एक ओर बैठी हुई है और दूसरी ओर उसका भाई—चरण का मामा बैठा है। उसी समय बंसी बजाता हुआ चरणदास साइकल पर आता है। उसे देखते ही मामा का पित्ता खौल उठता है और वह उसकी अच्छी तरह खबर लेता है। उस समय चरणदास का चेहरा भय और

लज्जा के कारण जैसा चाहिए वैसा फीका नहीं पड़ता । अत एव दिग्दर्शक उसे डाँट कर कहता है-"कपूर! तेरा चेहरा एकदम पत्थर की तरह निर्विकार दिखाई देता है, उस पर ज़रा तो लज्जा का भाव दिखला! अरे, तुझे तो कुछ भी एक्स्प्रेशन दिखाना नहीं आता !"

इस पर कपूर आईना सामने रखकर मुखाभिनय का कई बार अभ्यास करता है, किंतु वह विकारयुक्त, होने पर भी शांत, बंगाली नायक की तरह भाव प्रकट नहीं कर सकता । हां, उसे धक्के के जवाब में घूंसा तानने वाले जोशीले एवं रोषभरे अभिनय दिखाने में पूरी सफलता मिल सकती थी । अतः उसकी दृष्टि से यह ढीला ढाला किंतु कला की दृष्टि से सूक्ष्म मानसशास्त्रीय अभिनय दिखला सकना असंभव था ।

सिन्धु का अभिनय करनेवाली कुंजलता अपनी कोठरी का द्वार खोलकर चरणदास से पूछती है "भाई, ये फूल लेकर तू कहां जा रहा है ?" यह सुनकर खानदानी युवती से पहली ही बार बोलने का अवसर पाने के कारण चरणदास डरता, शरमाता और काँपता है, किंतु यह नाज़ुक काम कपूर से नामको भी न बन पड़ा । वह विदूषक की तरह कह कहे लगाता, हँसता, खेलता है; किंतु दिग्दर्शक को उसके ये सब काम ज़रा भी पसन्द नहीं । वह इसके अभिनय को अस्वीकार कर देता और स्पष्ट कहता है कि तुझे स्टंट पिक्चर में ही काम करना चाहिए । उच्च कोटि के सट्ल् पिक्चर के लिए तू सर्वथा अयोग्य है । महीन क़सीदा काढ़ने की कला तू ज़रा भी नहीं जानता । तुझे तो सूआ-सुतली लेकर बोरे ही सीना चाहिए । तू तो निरा पत्थर! एकदम पत्थर है !" इस प्रकार उसने फटकारते हुए कहा ।

इतना सुनने के बाद कपूर को भी क्रोध आ ही गया । वह रंगमंच से एकदम नीचे उतर कर दिग्दर्शक से बोला "डाइरेक्टर साहब, पाँच सौ रुपये रोज़ देकर भी मुझ से काम लेने वाले सभी प्रोड्यूसर निरे पत्थर हैं, और तू ही केवल 'हीरा' जान पड़ता है क्या? अरे तुझे दस रुपये रोज भी कमाने की अक्ल नहीं है और मुझे पत्थर बतलाता है ?

'जबान बंद कर । आदमी की कीमत रोज़ मिलने वाली मज़दूरी पर से नहीं आँकी जाती । कोई नंगा नाच दिखानेवाली वेश्या हज़ार रुपये रोज़ कमा सकती है, जब कि कोई भले घर की बेटी रोटी के टुकड़े से भी मँहगी हो जाती है । बन्दर की तरह उलटे सीधे उछलने और पागल की तरह अकारण हँसने तथा भूत-बाधा की तरह हाथ पाँव पछाड़ने से ही यदि तुझे पाँच सौ रुपये मिलते हैं तो तू साइकॉलौजिकल काम कैसे कर सकता है ?' दिग्दर्शक ।

'अरे जा, साइकॉलौजिकल वाला! कोरे उलटे सीधे दो चार बड़े शब्द बोल देने से ही कोई विद्वान् नहीं हो जाता । तू क्या जानता है, वह सब मुझे मालूम ह! केवल पूंजीवाले का वसीलेदार छोकरा होने से तुझे डाइरेक्टर बनाया गया है समझा!' 'वसीलेदार का छोकरा होने' के शब्द दिग्दर्शक के कलेजे में तीर की तरह लगें; और उसने क्रोध के आवेश में कपूर की गर्दन पकड़ ली । उधर कपूर ने भी उसकी लंबी लटें खींच लीं । दोनों की यह अभिनीत भिंड़त केमरा-मेन को इतनी पसंद आई कि उसने स्वेच्छा से ही उसकी रील तैयार कर ली । इसके बाद अन्य लोगों द्वारा दोनों के अलग किये जाने पर दिग्दर्शक की दृष्टि आस पास खड़े फ़ालतू लोगों में से फतेहचन्द की ओर आर्कषित हुई । इस द्वंद्व-युद्ध को देखते समय उसकी मुखाकृति पर प्रतिक्षण अद्भुत परिवर्तन हो रहा था । क्षण भर में प्रसन्नता तो दूसरे ही क्षण भय और उसी के साथ लगे हाथ निराशा के रूप में विविध मनोविकार उसकी चर्या पर प्रकट होते जा रहे थे । उसे देखते ही डाइरेक्टर ने कहा 'अजी, ज़रा इधर तो आना ।'

अचानक इस प्रकार बुलाये जाने पर फतेहचंद के मन में अनेक प्रकार के भाव उत्पन्न हो चले । उसने सोचा कि डाइरेक्टर साहब मुझे पास बुलाकर शाबाशी देना चाहते हैं या कि थप्पड़ मारना! वह कुछ भी न समझ सका फिर भी डरते डरते आगे बढ़ा, और 'जी साहब' करके खड़ा हो गया ।

'तेरा नाम क्या है ? फतुआ ? नहीं नहीं, आज से तेरा नाम फतेहचन्द होगा, राज कपूर के बदले तू इस चित्र-पट में काम करने को तैयार है ?"

फ़तेहचन्द भी यही चाहता था !

फ़तेहचन्द ने चरणदास का काम करना आरंभ किया । मामा का क्रोधपूर्ण भाषण सुनते ही पेट को थाम कर उसने अपना मुँह इस प्रकार बनाया कि, दिग्दर्शक अपनी इस नयी खोज पर प्रसन्नता के मारे एकदम उछल पड़ा जब सिंधु ने चरणदास से पूछा कि 'भाई ये फूल लेकर तू कहां जा रहा है ?' तो लज्जा के मारे वह सिकुड़ कर एकदम चुप हो गया । उसके चेहरे पर इतने भाव प्रकट हो रहे थे कि मनोविश्लेषणकर्ता के लिए, मनोविकारों का पृथक्करण करना कठिन हो जाता । मुख पर विविध भाव प्रकट करने में फ़तेहचन्द मूक चित्रपट को भी सफल करके दिखा सकता था । 'पत्थर' चित्रपट में कितने ही 'क्लोज़ अप' सीन फ़तेहचन्द के ही मुखाभिनय के थे और वे अत्यंत लोकप्रिय भी हुए ।

पत्थर की अद्‌भुत सफलता में प्रथम श्रय फतेहचन्द को ही प्राप्त हुआ । फिर तो 'सोने की खान' 'बोगदा' 'हमारी जागीर' 'कृष्ण विजय' आदि पंद्रह चित्रों में उसी को प्रधान कार्य मिला और प्रत्येक चित्रपट पर उसे पाँच से लेकर दस हजार तक रुपया भी मिला ।

किंतु उसकी इस अद्‌भुत सफलता का रहस्य किस बात में था, जानते हैं ? उसके एक शारीरिक व्यंग्य ने ही उसे सफलता प्रदान करने में सहायता दी थी । उसे पेट के दर्द की व्याधि थी । और उसके कारण प्रतिक्षण उसका रूप बदलता जाता था । जैसे ही पेट में थोड़ा-सा शूल उठा कि निराशापूर्ण, मध्यम शूल उठने पर दुःखी और ज़ोरों का शूल उठने पर वह एकदम भग्नहृदय जैसा बन जाता था । और जैसे ही पेट का दर्द कम होता कि उसका चेहरा खिल जाता । और कभी कभी तो पेट के एकदम साफ़ होने पर वह आनन्द-सागर में डुबकियाँ मारता हुआ ही दिखाई देता । फिर भी पेट का दर्द उसके लिए प्रासंगिक व्याधि नहीं, वरन् चिरकालीन रोग ही था । किंतु वही उसके लिए लाभदायक सिद्ध हुआ ।

अनेक सफल अभिनेताओं की तरह फ़तेहचन्द भी मरीन ड्राइव पर बंगला किराये पर लेकर विवाह और विच्छेद के खेल करता हुआ रँगीला जीवन बिताने लगा । किंतु पेट के दर्द के कारण उसे उस जीवन में मधुरता प्रतीत नहीं होती थी । उसकी आठवीं पत्नी चारुलता ने कहा 'फत्तूजी, तुम पेट का औपरेशन क्यों नहीं करा लेते ?"

"किन्तु इस बात को तू कैसे भूल जाती है चारु कि यह पेट का दर्द ही तो मुझे खाने को देता है । यदि औपरेशन करवा लिया तो मेरी एक्स्प्रेशन पावर नष्ट हो जाएगी और तब मुझे इस धन्धे से अलग हो जाना पड़ेगा ।"

फिर भी चारुलता के आग्रह पर उसे डॉ. धन्वन्तरी के पास जाना ही पड़ा । यहां यथानियम दस-पाँच विशेषज्ञों द्वारा परीक्षा की जाने के बाद उसके पेट का एक्सरे से फोटो लिया गया । वैसे एक सफल नाटचकार के नाते आज तक उसके बाह्यांग के तो लाखों ही फोटो लिये जा चुके थे, किंतु पेट के अंतर्भाग का छायाचित्र लिया जान का यह पहला ही अवसर था ।

फ़ोटो की ओर देखते हुए डॉक्टर ने कहा "ओफ़, मिस्टर फ़तेहचंद 'डी ओडोनल अल्सर' का यह क्रानिक केस है—'.

'तब तो यह बड़े ही गर्व की बात है, डॉक्टर ! मेरे पहले तीन पतियों के एकदम सादे हिन्दुस्तानी रोग ही थे ; किंतु इन को तो ऐसा कठिन रोग है जिसका नाम भी मुझे याद नहीं रह सकेगा ! क्या नाम बताया आपने 'दि ओडो . . . . . . ?' चारुलता ने पूछा !

'डिओडोनल अल्सरका मतलब हिन्दुस्तानी भाषा में आंत्रव्रण या आँत का घाव है !' डॉक्टर ने कहा ।

'तो क्या इसका भी हिन्दुस्तानी नाम है ही ?' उसने निराशापूर्वक पूछा ।

'यह हिन्दुस्तानी नाम तो केवल बनाया ही गया है । सच्चा नाम तो अंग्रेज़ीवाला ही है ।' यों कह कर डॉक्टर ने उसका समाधान किया ।

चारुलता की इच्छा पूर्ण करने के लिए ही फतेहचन्द के पेट का औपरेशन किया गया । उसके आमाशय से पक्वाशय में अन्न लेजाने वाली नलिका पर व्रण (घाव) हो जाने से उस मार्ग को बंद कर डॉक्टर ने अन्न जाने के लिए दूसरा-रास्ता कर दिया । फलतः आमाशय के

बाजू में होकर बाहर ही बाहर से अन्न पक्वाशय में जाने लगा और फ़तेहचन्द के पेट का दर्द निर्मूल हो गया। वह स्वस्थ निरोग हो गया।

इसके बाद निर्माण किये जाने वाले नवीन चित्र 'सूर्यपुत्र-शनि' में भी फ़तेहचन्द को प्रधान पात्र का काम दिया गया था और उसमें नायिका के सम्मुख घुटने टेककर उसे रुदन के स्वर में गाते हुए प्रार्थना करनी थी—'है किस्मत मेरी हेटी, तू बड़े बाप की बेटी! अब मैं क्या करूं?' किंतु बहुत कुछ प्रयत्न करने पर भी वह अपनी रोती सूरत नहीं बना सका!

"फ़तेहचन्द! इससे भी अधिक पेथेटिक एक्स्प्रेशन (रोनेका भाव) होना चाहिए। तेरा चेहरा बिल्कुल भावनारहित दिखाई देता है। फिर एक बार गाना तो ...." डाइरेक्टर ने कहा।

उसने फिर प्रयत्न किया। किंतु दिग्दर्शक को संतोष नहीं हुआ। "नहीं-नहीं, बिलकुल पत्थर! एकदम बेजान पत्थर की तरह ही तू दिखाई देता है। किस मूर्ख ने तेरा नाम फ़तेहचन्द रख दिया? तेरा तो पत्थरचन्द ही उचित नाम हो सकता था!"

आँत्रव्रण (घाव) अच्छा हो जाने के बाद फ़तेहचन्द के मुखपर का भावना प्राचुर्य नामशेष हो गया। और इसी कारण उसे सिने-जगत् से अंतर्धान हो जाना पड़ा। अंततः उसके व्यवसाय की इतिश्री करके चारुलता ने भी उसे छोड़ दिया।

मूल लेखक: चिन्तामणि विनायक जोशी **अनु०: गोपीवल्लभ उपाध्याय**

◆ ◆ ◆

तेलुगु

देशमंटे मट्टि कादोय ;	:	देश का अर्थ मट्टी नहीं;
देशमंटे मनुष्युलोय।	:	देश का अर्थ उसके निवासियों से है।
देशाभिमानं नाकु कद्दनि,	:	मैं देशभक्त हूँ;
वट्टी गप्पलु चेप्पुको कोय।	:	इस तरह की बढ़ वढ़ कर बातें मत करो।
पूनि येदैनन् ओका वेल,	:	यदि तुम देशभक्त हो,
कूर्चि जनुलकु चूपवोय॥	:	तो देश की चुपचाप सेवा करो।

—अप्पाराव

धारावाहिक उपन्यास

रज़ाकार

(६)

कुछ लोगों ने अपने घरों में पत्थर जमा करने शुरू किये । मनचले लोग प्रातःकाल पौ फटने से पहले मीर आलम तालाब की तरफ़ चले जाते थे जहाँ सिमेण्ट की सड़क बन रही थी । साथ में थैला रहता था । लौटते समय उसमें गिट्टियां भर लाते थे । घर के एक कोने में ये गिट्टियाँ जमा की जा रही थीं और उनके चारों और शाहाबादी पत्थर लगा दिये गये थे जिससे किसी को भ्रम भी न हो । पुराने ज़माने के बूढ़े लोगों ने सलाह दी—हर घर में गोफन रखी जाय और समय पड़ते ही गोफन पर पत्थर रख कर चलाना चाहिए ।

जिन लोगों के घरों में तलवारें थीं वे उन पर धार चढ़वाने लगे । उन दिनों कसारहट्टे के गिल्ट चढ़ानेवाले कारखानों की हालत देखने लायक थी । यहां पहले तीन-चार कारखाने ऐसे थे जहाँ लोहे-पीतल और ताँबे की चीजों पर चाँदी-सोने के पानी की गिल्ट चढ़ाई जाती थी किन्तु अब इन दूकानों में काफी वृद्धि हो गई थी । दूकानों पर बरतनों का काम प्रायः बन्द हो गया था । दिन-रात तलवारों, भालों और छुरों पर सान चढ़ा करती थी । दूकान के भीतर ही नहीं बाहर भी मोर्चा खाये हुए हथियारों का ढेर लगा रहता था । मशीन की सई-सर के साथ रगड़ से निकलनेवाली चिनगारियों में धार चढ़ाने वाले का चेहरा बड़ा भद्दा लगता था । म्यान बनानेवालों को फ़ुरसत नहीं थी ।

संभवतः हथियारों पर इस तरह धार चढ़ाने का काम उस समय भी नहीं चमका होगा जब औरंगजेब ने हैदराबाद और गोलकुण्डा के चारों ओर घेरा डाला था और तानाशाह ने नगर से कील कील चुनवा कर कटोरा हौज पाट दिया था । लुहार उस समय रात दिन हथियार ढालने में लग गये थे; किन्तु उस समय काम में इतनी तेज़ी नहीं थी ।

उन दिनों सब से अधिक हलचल इसी बाजार में थी । जो सड़क चारमीनार से लेकर चौक को जाती है वहीं हथियारों और गोला-बारूद की दूकानें हैं । लोग दूर दूर से इस बाजार में आया करते थे । किसी को बन्दूक चलाना आती हो या नहीं किन्तु वह पाव सेर बारुद और आध पाव छर्रे ज़रूर फ़रीद लेता था । शंकर के पड़ौसी के पास एक बन्दूक थी । उसके पास बन्दूक का लाइसेन्स था । बन्दूक कई सालों से जंग खा रही थी । वह कूड़े करकट में से बाहर निकाली गई; कई शीशे मट्टी का तेल उस पर खर्च किया गया; वह दोस्त चौक से एक सेर भर बारुद और आधा सेर छर्रे लाकर निश्चिन्त था । सोते समय पूरी सामग्री सिरहाने रख लेता था । बारूद रखने के लिए उसने सींग का की बनी बारूद-दानी खास तौर पर खरीदी थी ।

घर के बच्चों को तो ख़ास काम मिला हुआ था । वे लोग दिन भर तलवार और छुरों के जंग मिटाने में लगे रहते थे । जंग खाई तलवार को चमका देना सरल काम नहीं । ये तलवारों और बन्दूकें कम से कम दो सौ साल पहले बनी थीं । इन हथियारों ने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि बीसवीं सदी के सभ्य लोग उनकी सुध लेंगे । कहते हैं बारह वर्ष बाद तो कचरे की कुण्डी के दिन भी फिरते हैं । फिर ये तो हथियार थे । लड़के दिन भर मट्टी के ठीकरों से हथियार रगड़ा करते । ज्यों ज्यों तलवार का मैल उतरता ठीकरों का रगड़ना और खराश समाप्त हो जापी । धीरे धीरे लोहे का गुण ठीकरे में आ जाता और वह आइने की तरह चमकने लगता । बच्चों के लिए यह एक अच्छा खासा खेल था ।

कुछ लोग कुछ छुप कर इन हथियारों की देखा भाल करते थे किन्तु एक वर्ग ऐसा भी था जो इन हथियारों को प्रदर्शित करने में बेहद रुचि लेने लगा । पता नहीं सोच-समझकर या देखा-देखी लोग दो-चार दिन एक शस्त्र लेकर निकलते तो दो-चार दिन दूसरा । उदाहरण-

स्वरूप दो-चार दिन भालों का नम्बर आता तो शहर की सड़कों पर जिधर देखिये उधर भाले ही भाले दिखाई देते थे। भाले की लम्बाई में जैसे होड़ लगी थी। कुछ लोग तो ऐसे भाले लेकर चलते थे जिनसे दो भाले बन सकते थे। किसी समय तलवार की बारी आती और किसी समय बन्दूक की। इस वर्ग के लिए ये हथियार आभूषण का काम देते थे।

जिस दिन की चर्चा हम लोग कर रहे हैं उस दिन शंकर का मन स्कूल में नहीं लगा और वह दोपहर की छुट्टी में स्कूल से चला आया। एक एक करके उसके मस्तिष्क में सारी बातें चक्कर लगा रही थीं किन्तु सूझ नहीं रहा था कि क्या किया जाय। जिस तरह की तैयारी लोग कर रहे थे उन सब पर शंकर को विश्वास नहीं था। शंकर ने स्थिति का गंभीर अध्ययन किया था। इसी लिए वह जल्दबाज़ी में कुछ कर डालने का पक्षपाती नहीं था। वह सोच समझ कर किसी काम में हाथ डालना चाहता था। फिर उसका विश्वास था कि अकेले काम करने से कुछ फल नहीं; काम में बहुतों का साथ चाहिए। स्कूल से चल कर वह सुलतान बाजार के रानी-बाग़ में आया। वहाँ वह कुछ देर के लिए लान पर लेट गया। दस-पन्द्रह मिनट तक वह आँख बन्द किये लेटा रहा। रास्ते पर दुमंज़िली बसें आ जा रही थीं यद्यपि दूसरे राहगीरों की आमदरफ्त बहुत कम थी। इसी लिए शंकर ने कुछ शान्ति का अनुभव किया। वह बाहर से गंभीर प्रतीत होता था किन्तु उसके अन्दर तूफान चल रहा था। शंकर के मस्तिष्क का अनुमान वे लोग ठीक तरह से लगा सकते हैं जिन्होंने मैसूर, खंडाला घाट या जबलपुर के पास धुँआधार में से किसी एक का जल प्रपात देखा है। बहुत ऊपर से सात-आठ फ़ीट की पानी की धार कई फ़ीट नीचे सहसा गिरे और उसके हाहाकार से दिशाएँ गूँज उठें। इस दिशा में इतनी ही वृद्धि और की जाय कि वह धार इतने ऊपर से गिर कर भी कोई मार्ग न पाये और वहीं रुद्ध हो जाय। ऊपर से आनेवाली जलराशि का कहीं अन्त नहीं। बिना रुके हजारों मन पानी चला आ रहा है और उसका हाहाकार जैसे दिशाओं को बहरा बना देता है और नीचे प्रति क्षण बढ़ने वाला पानी मार्ग न पाकर एक दूसरे हाहाकार की सृष्टि कर डालता है।

शंकर जब अपने आन्तरिक चिन्तन से व्याकुल हुआ तो उसने पास के गुलाब के पेड़ पर निगाह डाली। पेड़ पर एक भी पत्ती नहीं थी। उस काँटों से भरे ठूँठ को देख कर शंकर का मन और भी विषण्ण हो गया। इसी समय एक व्यक्ति ने जो देखने में उच्च कुल का हिन्दू लगता था बड़े ही विनय के साथ नमस्ते की और शंकर के पास ही बैठ गया। शंकर ने उठते हुए नमस्कार किया। वह जानना चाहता था कि इस अज्ञात व्यक्ति की नमस्ते यों ही शिष्टाचार के कारण है या उसका कोई विशेष अर्थ है।

आगन्तुक ने शंकर को सोचने का अधिक कष्ट न देते हुए अपनी बात शुरू की––"देखने में तुम बहुत अच्छे दिखाई देते हो। तुम्हारे बारे में कुछ जानकारी भी मिली है। तुम ..... विद्यालय में पढ़ाते हो न? बहुत चतुर हो। कुछ पैसा कमाना चाहते हो? इस मास्टरी में क्या रखा है?

"मैंने आपका मतलब नहीं समझा!" शंकर ने घबराते हुए कहा। इसमें समझने की क्या बात है? दस से चार बजे तक 'दो एकम दो' करते करते थक जाते हो, हम ऐसा काम बताएँ कि मेहनत कुछ नहीं और मज़दूरी मन-माँगी।"

"यह कैसे?" शंकर बात करने की मूड में नहीं था फिर भी उसने यों ही प्रश्न कर डाला।

"यह ऐसे कि तुम शहर में अच्छे अच्छे लोगों से मिलो और देखो कौन क्या करता है। सन्ध्या समय मेरे पास लिख कर अपनी रिपोर्ट दे दो। जल्दी ही चमक उठोगे। शुरू शुरू में ज्यादा नहीं यही चालीस रुपये मिलेंगे, आगे काम देख कर बढ़ा दूँगा। आगन्तुक सिर हिलाते हुए शंकर को ग़ौर से देखने लगा। जैसे वह जानना चाहता था कि उसकी बात का प्रभाव शंकर पर क्या पड़ता है।

आप मुझसे सी.आई.डी. का काम लेना चाहते हैं? शंकर का चेहरा और भी गंभीर हो गया था ।

आगन्तुक ने ज़रा सहमते हुए कहा "नहीं । ऐसी बात नहीं है । आपका नाम कहीं कोई जानेगा भी नहीं । सरकार से आपका कोई सम्बन्ध नहीं । आपका सम्बन्ध केवल मुझसे रहेगा । अच्छे-बुरे दोनों का मालिक मैं । आप चिन्ता न करें । फिर इस में हर्ज ही क्या है ? जो सरकार रहेगी हम उसकी सेवा करेंगे ।"

"क्या आप इसे देशद्रोह नहीं मानते ?" शंकर के स्वर में स्पष्ट रूप से क्रोध झलक रहा था ।

"नहीं जनाब, यह देशभक्ति है । देश क्या है, राज्य । राज्य की सेवा करो । यथा राजा तथा प्रजा । कल को गांधी का राज्य हो जाय तो हम उनके पाँव पड़ लेंगे । हमारे जैसे लोग ही सदा देश की सेना बना करते हैं ।"

"देश की सेवा होती हो या नहीं किन्तु आप अपनी सेवा तो कर ही लेते हैं । क्षमा कीजिये, मुझसे यह काम नहीं होने का । और इससे अधिक मैं आप से कुछ कहना नहीं चाहता ।"

आगन्तुक तुरंत खड़ा हो गया और चलते चलते बोला—"कोई बात नहीं, कोई बात नहीं । मैंने कमाई का ज़रिया बताया है, आप सोचिये । अगर पसन्द हो तो मुझ से कहना ।"

शंकर की आँखों के आगे अँधेरा-सा छा गया । उसका मस्तिष्क जैसे गहरे समुद्र में डूबा जा रहा था और वह फिर लेट गया । पता नहीं उसे कब नींद आ गई । उसकी नींद सड़क पर से गुज़रनेवाले जुलूस के गीत से टूटी । कोई तीस-चालीस लड़के होंगे । उम्र किसी की दस साल से अधिक नहीं । आगे आगे एक बूढ़ा व्यक्ति चल रहा था जिस के हाथ में आसफ़जाही झंडा था । बूढ़ा व्यक्ति हैदराबाद का मामूली जागीरदार था । उम्र काफ़ी हो चुकी है, कम्र झुक गई है, बाल सफ़ेद, लेकिन लीडरी का शौक़ है । दो-चार सभाओं में भाषण दे चुके हैं । क़द छोटा उस पर पाँवों तक शेरवानी । आँखें छोटी-छोटी और मूँछे खूब घनी और लम्बी लम्बी । पान इस बुरी तरह खाते हैं कि ओठों के नीचे तक उसकी ललाई फैल जाती है । शंकर ने राजा साहब को तत्काल पहचान लिया । राजा साहब बोल रहे थे—"हम आज़ाद रहे हैं, आज़ाद रहेंगे ।" और उन छोटे छोटे लड़कों ने उस लाइन को दुहराया "हम आज़ाद रहे हैं । आज़ाद रहेंगे ।"

यह एक नई चोट थी । जैसे किसी ने मन भर वज़न का घन उठा कर शंकर के मस्तिष्क पर डाल दिया । उसने आँखें बन्द करने की कोशिश की किन्तु वह उन्हें बन्द न कर सका । जुलूस तुरुप बाज़ार की तरफ़ चला गया । सड़क पर आवागमन बढ़ गया था । दफ्तर और विद्यालय छूट चुके थे । उस शोर-गुल में शंकर वहाँ न ठहर सका और सीधा घर चला आया । शंकर को उदास देख कर माँ सहम गई किन्तु उसने कुछ पूछा नहीं । चुपचाप भोजन की तैयारी में लग गई । शंकर यों ही खाट पर लेट गया । उसे नींद नहीं आ रही थी, वह स्वप्न नहीं देख रहा था और जाग भी नहीं रहा था । बड़ी विचित्र अवस्था थी । इस अवस्था का ज्ञान उसे स्वयं भी नहीं हो रहा था । जब माँ ने आकर कहा रोटी तैयार है तो वह रसोई घर में चला गया और भोजन कर के फिर जो खाट पर लेटा तो उसे पता नहीं चला कि कब नींद आ गई । इस बीच में उसने माँ से एक शब्द नहीं कहा । माँ बहुत व्याकुल थी । वह शंकर से कुछ पूछना चाहती थी किन्तु उसने पूछा नहीं । वह शंकर की आदत को अच्छी तरह जानती थी । शंकर अपने बारे में कभी अधिक नहीं बताता था । उसे जब अपने बारे में कुछ कहना होता था तो स्वयं कहता था खास कर जब वह चिन्तित या व्यथित हो जाता वह अधिक से अधिक एकान्त में रहना चाहता था । यहाँ तक कि वैसे समय में वह अपनी माँ की उपस्थिति भी सहन नहीं कर सकता था । भयंकर से भयंकर बीमारी हो, वह चाहता था उसे अकेला छोड़ दिया जाय और कोई उससे पूछे नहीं कि क्या हाल है । ऐसे समय किसी की सहानुभूति उसके दुःख में वृद्धि का ही कारण बनती थी । किन्तु जब दुःख टल जाता था तो वह पूरी बात अपनी माँ से कह देता । वह अपनी प्रसन्नता में सब को शामिल करना चाहता

था और अपने दुःख में एकाकी रहना चाहता था। इसीलिए माँ ने विशेष आग्रह नहीं किया।

रात को ग्यारह बजे के लगभग उसे अपने किवाड़ों पर किसी की धीमी-धीमी थाप सुनाई दी। इस आवाज़ के साथ शंकर उठ खड़ा हुआ। बिना कुछ सोचे बिचारे वह उठ खड़ा हुआ और ज़ंजीर खोल कर बाहर चला आया। बाहर रामराव खड़ा था।

बिना किसी काम के रामराव ने कहा भाई, देर न करो,... मन्दिर में सुरेन्द्र जी राह देख रहे हैं। तुझे बुलाया है- ज़रूरी काम है।

शंकर सोच में पड़ गया-जाऊँ या नहीं ?। जाने से पहले माँ से पूछ लूँ ? किन्तु क्या माँ इस समय जाने भी देगी ?

इसी समय रामराव ने कहा—"किस सोच में पड़ गये। चलो, यों ही चले चलो।"

"बिना चप्पल पहने ही।"

"हाँ, कौन-सी दूर है।" रामराव ने शंकर का हाथ अपने हाथ में ले लिया। शंकर ने धीरे से किवाड़ खोल दिए। उसने आगे पग रखने से पहले ध्यान से कुछ सुनने की कोशिश की। माँ खुर्राटे भर रही थी।

शंकर जब.... के मन्दिर में पहुँचा तो वहाँ छः सात लोग और भी बैठे थे। सुरेन्द्र वहाँ नहीं था। रामराव ने बताया सभी लोग निश्चिन्त हैं। सुरेन्द्र जी आते ही होंगे।

पाँच मिनट बाद ही सुरेन्द्र आ गया। उसकी दाढ़ी बढ़ गई थी और शेरवानी पहन कर वह बिलकुल अपरिचित लग रहा था। उसके देखने का ढंग भी बदल गया था। वह जिस ओर देखता उस ओर दो-चार मिनिट तक एक टक ताकता था। अच्छा खासा दार्शनिक लगता था।

सुरेन्द्र साधारण ढंग से बैठ गया। दोनों घुटने उठे हुए थे। उसने बिना किसी भूमिका के कहना शुरू किया— साथियो, हो सकता है हैदराबाद में जल्दी ही हिन्दु-मुस्लिम दंगा हो। ऐसे अवसर के लिए आप क्या करना चाहते हैं ?"

सब से पहले बोला शंकर। जैसे उसका मौन बाँध तोड़ कर बह गया। उसने सर्राटे से कहा—"भाई सुरेन्द्र, यह बात सैंकड़ों मुखों से सुनी है। इस के उपाय सुनते सुनते भी कान पक गये हैं। मेरी तुम पर बड़ी श्रद्धा थी। मैं नहीं समझता था कि तुम या तुम्हारी पार्टी का कोई भी आदमी इस तरह की बात कहेगा।"

"शंकर, मालूम होता है कच्ची नींद से उठ कर आए हो, ज़रा मुँह धो लो।" सुरेन्द्र ने मुस्कराते हुए कहा।

शंकर ने उत्तर दिया—"नहीं, मैं सो नहीं रहा हूँ। अच्छी तरह जाग रहा हूँ-। हैदराबाद के प्रश्न पर इस समय बहुत से लोग सोच रहे हैं। लोगों की धारणा स्पष्ट नहीं है। मैंने कभी राजनीति में भाग नहीं लिया लेकिन मेरा मत है कि हैदराबाद में हिन्दू-मुस्लिम दंगा नहीं होगा। कुछ लोग इस दंगे की बात करते हैं किन्तु वह इसीलिए कि लोग अपनी असली समस्या से हट जाएँ। अगर हम लोग इसी तरह सोचने लगें तो वे लोग सफल हो जाएँगे अपने उद्देश्य में।

"यह कैसे ?" सुरेन्द्र गंभीर हो गया था। उसके स्वर में जिज्ञासा थी।

"यह इसलिए कि दंगा मुसलमान कर सकते हैं और यह उन्हीं के हित में नहीं है और हमारी लड़ाई हैदराबाद के सामन्तवाद के साथ है, न कि यहाँ के मुसलमानों के साथ। यदि हम अपना उद्देश्य यहाँ के ग़रीब मुसलमानों को समझा सकते तो वे भी हमारे साथ होते। यदि हम अपनी लडाई को हिन्दू-मुस्लिम के झगड़े के रूप में देखें तो भी यहाँ का शासक वर्ग इस लड़ाई का असली रूप अच्छी तरह जानते हैं। वे इस लड़ाई को कभी इस रूप में बदलना नहीं चाहेंगे।"

"तुम तो बड़े ज्ञानी हो गये हो शंकर। इन दिनों क्या कोई नई भाषा नहीं सीखी।"

"नहीं भाई सुरेन्द्र, में इन दिनों वास्तविक स्थिति का अध्ययन कर रहा हूँ। यहाँ आपका इस उद्देश्य से आना मुझे अच्छा नहीं लगा। तुम भी क्या लोगों का ध्यान असली उद्देश्य से हटाना चाहते हो। दंगे से बचना ही हमारा उद्देश्य नहीं है। असली उद्देश्य है जनता को

संघर्ष के लिए तैयार करना।" शंकर के मुख पर किसी तरह की चिन्ता नहीं थी ।

यह बैठक यहीं समाप्त हो गई ।

"तुम मेरे साथ चलोगे?" शंकर ने सुरेन्द्र से पूछा ।

"इस समय नहीं । मुझे दूसरे घर में जा कर कपड़े बदलने होंगे और फिर कहीं और जाना है । सुरेन्द्र ने शंकर ने के कान में कहा ।

शंकर ने धीरे से कहा––"क्षण क्षण में वेश बदलने से पक्के बहुरूपिये बन गये । इतनी रात गये इस तरह घूमना निशाचरों का काम है ।"

जवाब दिया सुरेन्द्र ने––"देखता हूँ तुम हमारे पंथ में कब दीक्षित होते हो?"

सुरेन्द्र रामराव के घर में सुरेन्द्र के साथ चला गया और शंकर अपने घर चला आया । वह बार बार सोच रहा था कि रामराव भी सुरेन्द्र के पन्थ में है । कितना भोला-भाला लगता है? आज तक पता ही नहीं चला ।

शंकर ने धीरे से दरवाज़ा खोला और चुपचाप अपनी खाट पर जा कर सो गया । माँ उस समय ज़ोर ज़ोर से खुर्राटे ले रही थी ।

(क्रमशः)

हैदराबाद

––श्रीराम शर्मा

सदा अभय

मित्र से,
अमित्र से,
ज्ञात से,
अज्ञात से,
दिन में,
रात में,
हम सदा सबसे अभय हों,
सारा संसार हमारा मित्र हो।

––वेद

साहित्य चर्चा

साहित्यिक भिक्षु का स्वप्न

प्रिय वंशीधरजी,

कुछ किताबें ऐसी हैं, जिन्हें मैं अपने मनोरंजन के लिये बार बार पढ़ा करता हूँ। सुप्रसिद्ध चीनी लेखक लिन युटाङ्ग की (Importance of Living) 'जीवन का महत्व' उन्हीं ग्रन्थों में से एक है। इस पुस्तक में 'मिंग लिया उत्स की यात्राएँ' शीर्षक एक अध्याय है, जिसमें उस चीनी भिक्षु के भ्रमण का मनोरंजनक वृत्तान्त दिया गया है। चीज़ बड़े मज़े की है। भिक्षु महोदय घर से निकल पड़ते हैं और तीन वर्ष तक बराबर यात्रा किया करते हैं। आत्मज्ञान ही उनका उद्देश्य है पर उनका दृष्टिकोण हमारे साधु संन्यासियों की तरह नीरस नहीं। रास्ते में वे खाते, पीते, मौज करते चलते हैं। युक्ताहार विहार की नीति के पक्षपाती हैं, गो कभी कभी पी भी लेते हैं। कहीं कविसम्मेलन हुआ तो वे उसमें शामिल होजाते हैं और अपनी कविता भी सुना देते हैं। उनका जीवन संयत है तथा दृष्टिकोण दार्शनिक और उसमें दम्भ का कोई नामो निशान नहीं।

इस अध्याय को पढ़ कर हमारे मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि क्या हमारे साहित्य को इस प्रकार के दम्भहीन भिक्षुओं की आवश्यकता नहीं?

भिक्षु का आदर्श भारतीयों की रग रग में व्याप्त है। 'चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजन-सुखाय लोकानुकम्पाय....' इत्यादि शब्दों द्वारा भगवान् बुद्ध ने अपनी शिष्यमण्डली को मानव समाज के कल्याण के लिये भ्रमण करने का आदेश दिया था। सहस्रों ही भिक्षुओं ने उनकी आज्ञा का पालन कर देश विदेशों की यात्रा की, सैकड़ों ही इस प्रयत्न में मर मिटे, पर उन्होंने वह काम कर दिखाया जो संसार के इतिहास में अद्वितीय है।

इस प्रसंग में हमें श्री. देवीप्रसाद राय चौधुरी के एक चित्र 'कुमारजीव की चीन यात्रा' का स्मरण आरहा है। इस चित्र में हमें कुमारजीव तथा अन्य तीन भिक्षुओं के दर्शन होते हैं, जो धर्म प्रचारार्थ चीन यात्रा के उद्देश्य से हिमालय की ओर जा रहे हैं। हिमालय की बर्फ़ से ढकी हुई चोटियाँ दूर दीख रही हैं। मार्ग बड़ा भयंकर है, पर भिक्षु लोग दृढ़ आशा के साथ क़दम बढ़ाते हुए चले जारहे हैं! इन कुमारजीव ने चीन पहुँच कर चीनी साहित्य के लिये जो महान् कार्य किया उसे इतिहास के प्रेमी भली भाँति जानते हैं। उन्होंने चीनी भाषा पर अद्भुत अधिकार प्राप्त कर लिया और लगभंग सौ महत्त्वपूर्ण संस्कृत ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद किया और इस प्रकार चीनी भाषा में अपना नाम अमर कर लिया और भारत के गौरव को संसार की दृष्टि में कहीं ऊँचा उठा दिया।

आधुनिक काल में भी स्वर्गीय भिक्षु अखण्डानन्द तथा महापंडित राहुल जी ने जो कार्य कर दिखाया है उससे किसी भी साहित्यिक को प्रेरणा मिल सकती है। पर किसी साहित्यिक भिक्षु के लिये कपड़े रँगाने की आवश्यकता नहीं। हाँ, उसका मन साहित्य-प्रेम से अनुरंजित अवश्य होना चाहिये।

भारत में त्याग तथा तप की भावना के लिये जो महान् श्रद्धा सहस्रों वर्ष से चली आरही है वही किसी साहित्यिक भिक्षु के लिये सबसे बड़ा सहारा है। यहाँ लखपति साहित्यिक कभी वैसी लोकप्रियता प्राप्त नहीं कर सकता, जो किसी भिक्षु को मिल सकती है। विदेशों की बात दूसरी है। और विदेशों में भी महान् लेखकों का लक्ष्य अर्थप्राप्ति नहीं रहा। आयर्लैण्ड के सुप्रसिद्ध कवि और चित्रकार ए.ई. का दृष्टान्त हमारे सामने है। अपने देश में ए.ई. की वही पोज़ीशन थी, जो भारतवर्ष में कवीन्द्र श्री. रवीन्द्रनाथ ठाकुर की; और अंग्रेज़ी के रहस्यवादी कवियों में उनका स्थान अत्युच्च माना जाता है।

ई. ए. नेअपने किसी मित्र को एक पत्र में लिखा था:–

"आपने अपनी पुस्तक में एक बात बड़े मार्के की लिखी है और वह मुझे सत्य, कल्याणकारी और बुद्धिमत्तापूर्ण जँची, यानी आपने कलाकारों और कवियों को यह आदेश दिया है कि वे स्वेच्छापूर्वक निर्धनता का व्रत ग्रहण कर लें। आयर्लैण्ड में हम सभी ग़रीब हैं और इससे हममें से किसी का कुछ नुक़सान नहीं हुआ। मेरे जीवन के सबसे अधिक आनन्ददायक दिन वे थे, जब मैं ५० पचास पौण्ड प्रति वर्ष (५५-५६ रुपये महीने) से भी कम पर अपनी गुज़र करता था और भोग विलास की किसी चीज़ को ख़रीदने के लिये मेरे पास पैसा ही नहीं था पर निर्धनता के उन दिनों में हम दिन दिन भर और लम्बी रात तक पृथ्वी और स्वर्ग न जाने कितने विषयों पर वार्तालाप किया करते थे और जो कुछ पढ़ते उसका मनन करते रहते थे। अब भी मैं बड़ी किफ़ायतशारी के साथ रहता हूँ। मेरी निश्चित आमदनी एक सौ पौण्ड प्रति वर्ष (११० या ११५ रु. प्रति मास) है। क्या इससे मेरा जीवन कुछ दुःखी है? नहीं जनाब, बिलकुल नहीं... कितने ही कलाकारों की यह आकांक्षा रहती है कि हमारे पास मोटर कार चढ़ने के लिये हो, बँगला रहने के लिये और ख़ूब पैसा मौज करने तथा मित्रों को पार्टियाँ देने के लिये। नतीजा यह होता है कि उन्हें अपनी प्रतिभा दूसरों को बेच देनी पड़ती है...."

ए. ई. के उपर्युक्त शब्दों में वस्तुतः भारतीय आदर्श का ही समर्थन हुआ है।

इसका अभिप्राय आप यह न समझें कि मैं अनिच्छापूर्वक लादी हुई ग़रीबी का समर्थन करता हूँ। वह तो एक बहुत ही फ़ालतू चीज़ है। यदि किसी साहित्यिक के मन में मोटरों में घूमने की अथवा वायुयान द्वारा यात्रा करने की या एयर कंडीशण्ड रेल के डब्बे में सफ़र करने की तीव्र लालसा विद्यमान हो तो उसे अवश्य ही उसकी पूर्ति कर लेनी चाहिये। बच्चों को मिठाई खाने से कौन रोकता है? बज़ाते ख़ुद इन चीज़ों के भोगने में कोई बुराई नहीं है—बुराई है उनको महत्त्व देने में अथवा उनके लिये लालायित रहने में।

आज भी कितने ही व्यक्ति निमंत्रित होकर भिन्न भिन्न स्थलों की यात्रा किया करते हैं और कुछ डैपूटेशन भी इधर से उधर जाया करते हैं। इन यात्राओं से पर्याप्त लाभ भी होता है, पर उस यात्रा में, जिसके प्रतीक कुमारजीव थे, और इन यात्राओं में ज़मीन आसमान का फ़र्क है। इनमें सबसे अधिक अनाकर्षक हैं धनसंचय के लिये जाने वाले डैपूटेशन! उनका महत्त्व मदारियों द्वारा किये गये बन्दर के नाच से अधिक नहीं। मनोरंजन के बाद पैसा-प्राप्ति ही दोनों का उद्देश्य है।

साहित्यिक भिक्षु में यदि फक्कड़पन नहीं तो फिर कुछ भी नहीं।

हिन्दी के राष्ट्रभाषा पद प्राप्त होजाने के बाद यह सर्वथा स्वाभाविक है कि अनेक मनचले प्रकाशकों और लेखकों के मन में यह भावना उत्पन्न हो कि इस परिस्थिति से लाभ उठाना चाहिये। मसल मशहूर है तालाब खुदा नहीं कि मगर आ कूदे! साहित्य सरोवर के इन मगरमच्छों की यात्रा से जनता को कोई लाभ नहीं।

हमारी साहित्यिक भिक्षु की कल्पना इससे बिलकुल भिन्न ही है। कहीं वे पुस्तकालय खुलवायेंगे तो कहीं हिन्दी की संस्थाओं के उत्सव करायेंगे और कहीं वसन्त व्याख्यान माला का आयोजन। कहीं वे हिन्दी अध्यापकों का संगठन करेंगे तो अन्यत्र अपने अनुभवों से नवीन लेखकों को प्रोत्साहित करेंगे। प्राचीन लेखकों तथा कवियों के साहित्यिक श्राद्ध की व्यवस्था उनका एक उद्देश्य होगा। एक काम वे कभी नहीं करेंगे—अपने लिये या अपनी किसी संस्था के लिये चन्दा! और उनकी सम्पूर्ण सेवा स्वाभाविक ही होगी—किसी पर अहसान लादने के लिये नहीं।

अन्य प्रान्तों में जहाँ प्रान्तीय भाषाओं का बोलबाला है, हमें अपने सर्वोत्तम व्यक्ति ही भेजने चाहिये। यदि हमने निम्नकोटि के आदमी भेजे तो हमारी राष्ट्रभाषा के गौरव को वह धक्का लगेगा, जिससे वह कभी न पनपेगी!

हम जहाँ कहीं भी जाएँ सीखने की भावना से जाएँ। विनम्रता और शिष्यत्व की भावना की हमें

आज सबसे अधिक ज़रूरत है। विश्व की भाषाओं में हिन्दी को स्थान दिलाने के स्वप्न जो लोग देखा करते हैं क्या उन्होंने कभी यह कल्पना भी की है कि उसके लिये हमें कितनी साधना करनी पड़ेगी, कितना त्याग करना पड़ेगा ?

एक ओर जहाँ हमें गौरीशङ्कर हीराचंद ओझा और काशीप्रसाद जायसवाल उत्पन्न करने होंगे तो दूसरी ओर सैकड़ों हिन्दी मिशनरी भी। महात्मा गान्धी जी की वह बात मुझे अभी तक याद है जो उन्होंने आज से तीस वर्ष पूर्व साबरमती आश्रम में कही थी। बड़े खेद के साथ उन्होंने कहा "मुझे हिन्दी के मिशनरी चाहिये, जो तुम्हारे यहाँ नहीं मिलते। महाराष्ट्र में मिशनरी स्पिरिट वाले युवक ख़ूब मिलते हैं। मेरे पास पटवर्धन था जो पन्द्रह रुपये में गुज़र करता था। मैं चाहता हूँ कि तीस तीस रुपये देकर हिन्दी के सैकड़ों प्रचारकों को गुजरात में भर दूँ पर वे मुझे मिलते कहाँ हैं ?" महात्मा जी के इस प्रश्न का उत्तर मौन के सिवाय और क्या हो सकता था ?

एक बार सेवाग्राम में—यह सन् १९४५ की बात है—मैंने महात्मा जी की सेवा में निवेदन किया :—

"महात्मा जी आप दस बारह लाख रुपये इकट्ठे कीजिये और उत्तर भारत के दिल्ली जैसे केन्द्रीय स्थल में दक्षिण भारत की भाषाओं के अध्ययन, अध्यापन का प्रबन्ध कर दीजिये। तामिल, तेलुगु, मलायलम और कन्नड़ भाषा के पढ़ाने का कोई इन्तज़ाम हमारे यहाँ नहीं है।"

इस पर महात्मा जी ने कहा "बात तो तुमने मेरे मन की कही है और दस बारह लाख रुपये जमा कर देना भी मेरे लिये कोई मुश्किल काम नहीं। पर सवाल यह है कि इस काम को उठाने वाला तुम्हारे यहाँ है कौन ? जीवराज मेहता मुझे मिल गये तो मैंने कमला नेहरू अस्पताल का काम पूरा करा दिया। उन्हीं की तरह का योग्य आदमी मुझे मिल जाय तो उत्तर भारत में दक्षिण की भाषाओं के अध्यापन का काम भी हो सकता है।" महात्मा जी उपरोक्त कोटि के यज्ञों के लिये होताओं की तलाश में रहते थे। हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के लिये उन्होंने जो महान् कार्य किया तदर्थ उनका नाम भारतीय इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा। अब हमारा कर्तव्य है कि उनके प्रारम्भ किये यज्ञों के लिये याज्ञिक तय्यार करें। मेरा यह निवेदन है कि परिव्राजक ही ऐसे याज्ञिक बन सकते हैं। अँग्रेजी की एक कविता इस प्रसंग में हमें याद आ रही है :—

"If you give all and life retain
I say all your gift is in vain"

अर्थात् "यदि तुम अपना सर्वस्व दान करदो पर अपना जीवन अपने लिये सुरक्षित रखो तो मैं कह सकता हूँ कि तुम्हारा वह सर्वस्वदान निरर्थक है।"

हमारी राष्ट्रभाषा की माँग है ऐसे व्यक्तियों से जो अपना जीवन ही उसके लिये अर्पित कर सकें, पर होनें चाहियें वे सजीव व्यक्ति। बहुधन्धी साहित्यिक मठाधीश, जिन्होंने संस्थाएँ पाल रक्खी हैं, राष्ट्रभाषा के लिये अधिक काम न कर सकेंगे।

राजनैतिक क्षेत्र में जिस प्रकार सैकड़ों, सहस्रों भारतीयों ने अपने जीवन को खपा दिया उसी प्रकार साहित्य और संस्कृति के क्षेत्र में भी अपने को खपाने वाले व्यक्ति हमें चाहिएँ।

सन् १९१५ में हमें पहले पहल शान्ति निकेतन जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था और तब से लेकर १९४० तक न जाने कितनी बार हमने उक्त साहित्यिक तीर्थ की यात्रा की थी। इस बीच में पचासों ही बार हमने कवीन्द्र श्री. रवीन्द्रनाथ ठाकुर के दर्शन किये थे और यह देखकर हमें निरन्तर आश्चर्य ही होता रहा कि वे किस प्रकार अपने को खपा रहे हैं। गुरुदेव को अनेकों यात्राएें अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये करनी पड़ीं। यद्यपि अपनी संस्था के लिये उन्हें कभी कभी चन्दा भी करना पड़ा पर यह कार्य उनकी रुचि के सर्वथा प्रतिकूल ही था।

संस्थाओं के हम विपक्ष में नहीं हैं, हमारा कहने का अभिप्राय यही है कि किसी साहित्यिक भिक्षु के लिये वे प्रायः बन्धन ही हो सकती हैं।

जिस कोटि के साहित्यिक भिक्षुओं की बात हमने लिखी है वे मिलें कहाँ ? यह सवाल बड़ा टेढ़ा है । इसका जवाब एक ही हो सकता है—

‘जिस आदमी की तुम तलाश में हो, वह खुद ही बन जाओ ।’ पर ऐसा उत्तर देने का साहस इन पक्तियों के लेखक में नहीं ।

विनीत

टीकमगढ़

—बनारसीदास चतुर्वेदी

एक–न–एक दिन ;
संसार की समस्त प्रिय वस्तुएँ;
चाहे वे कितने ही वर्षों तक –
हमारे पास क्यों न रही हों,
हमारे पास से अवश्य जाने वाली हैं ।
उनके हमारे पास से जाने में कुछ भेद नहीं –
हाँ उनके जाने के रास्तों में भेद है ।
एक रास्ता तो यह है कि हम उन्हें छोड़ दें
और दूसरा यह कि वे हम से छीन ली जाएँ ।
यदि वे हम से छीन ली जाएँगी,
तो वे जाएँगी भी और हमें सदा के लिए,
दुःखी कर जाएँगी ।
और यदि हम उन्हें छोड़ देंगे
तो उनके जाने से हमें कोई कष्ट न होगा,
और हमारे चित्त को चिर शान्ति प्राप्त होगी ।।

—भर्तृहरि

बापू

बापू ! तुमको शत शत प्रणाम––

तुम मानवता के अग्रदूत,
तुम सत्य अहिंसा के सपूत,
हे देव ! तथागत की पुकार
भारत के सुख-शान्ति प्यार
सेनानी स्वतत्रंता संग्राम
बापू ! तुमको शतशत प्रणाम––

तुम महावीर, तुम महाप्राण,
दलितों के प्रिय––परित्राण,
तुम सत्य-सुधा की अमर-तृप्ति
“भारत छोड़ो, की प्रबल-शक्ति
तुम जग-पूजित, भारत ललाम,
बापू ! तुमको शतशत प्रणाम––

मानस-समता के प्रतीक,
तुम धर्मसूर्य, के पुंडरीक
भारत-जन-मानस-मराल
तुम एकनिष्ठ तुम डर विशाल
आशीष सुलभ, यह मनस्काम
बापू ! तुमको शतशत प्रणाम ।।

देहली

––रमा शर्मा ‘कान्त’
साहित्यालङ्कार

सौ जीने से जोरदार !

तेरा मरना भी, सौ जीने से ज़ोरदार !

जल्दी-जल्दी तुम बढ़े, राम हरि जपने को,
जनवरी, तीस की शाम, पूर्ण कर सपने को,
अमृत-मंथन हित बढ़े देवगण खपने को,
तब छूटे विषधर तीन, प्राण तव डसने को,
कह 'राम,' प्राण भोगे चद्दर घूमिल उतार !
तेरा मरना भी, सौ जीने से ज़ोरदार !

तू मरा, अमरता को भी पीछे छोड़ गया,
कितने असुरों के वज्र हृदय-पट तोड़ गया ;
सुरपति का आसन तब पद लखकर डोल गया,
मानवता का यों विजय-नगाड़ा बोल गया—
तुझ पर हैं आज निछावर ईश्वर बेशुमार !
तेरा मरना सौ जीने से ज़ोरदार !

तेरी वाणी अब सुन न सकेंगे हम जग में,
मंजुल मुस्कान न प्राप्त कर सकेंगे मग में,
पर तेरा चिर उपदेश शक्ति भर दे पग में,
तेरे सु-कर्म युग-युग तक बल दें रग-रग में,
तव क्रांति-कार्य जीवन में लाते वृहद् ज्वार !
तेरा मरना भी सौ जीने से ज़ोरदार !

तू जिया और मर गया, साधना कर कर के,
तू जिया और मर गया, भावना भर भर के,
तू जिया और मर गया, यातना सह सह कर के,
तू जिया और मर गया, कामना कर कर के,
पर क्या हम सुन पाये, मानस की तव पुकार !
तेरा मरना भी सौ जीने से ज़ोरदार !

नई दिल्ली.

—नवीनचन्द्र आर्य

चिट्ठी-पत्री

॥

(१)

स्वर्गीय डा. अवनीन्द्रनाथ ठाकुर की हिन्दी कविता

......एक कविता श्री. डा. अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने जो कि एक महान् भारतीय कलाकार थे और जिनकी कि मृत्यु अभी कुछ समय पूर्व हुई है—हिन्दी में लिखी थी। मुझे यह पता चला है कि उन्होंने यह कविता अपने साहित्यिक नाम (Pen Name) से लिखी थी और अभी तक यह किसी को ज्ञात नहीं था कि यह कविता महान् कलाकार श्री. डा. अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने स्वयं लिखी थी।.............. मैं इसकी एक शुद्ध प्रति आपकी सेवा में भेजूँगा। यह कविता बड़ी सुन्दर है और भारतीय साहित्य के लिए यह एक संग्राह्य वस्तु है........

कलकत्ता (प्रो.) ओ. सी. गांगुली

(हमने इसी अंक में प्रसिद्ध भारतीय कलावेत्ता श्रीयुत प्रो. ओ. सी. गांगुली का "हिन्दी में प्रेम-काव्य" पर एक लेख प्रकाशित किया है। उनकी 'अजन्ता' पर कृपा है यह देख कर हमें प्रसन्नता होती है। हम श्रीयुत प्रो. ओ. सी. गांगुली महोदय के आभारी हैं कि वे हमें भारतीय महान् कलाकार स्वर्गीय श्री. अवनीन्द्रनाथ ठाकुर की हिन्दी कविता भेज रहे हैं। इस से यह ज्ञात होता है कि डा. अवनीन्द्रनाथ ठाकुर को हिन्दी से प्रेम था। हम इस कविता को 'अजन्ता' के अगले अंक में प्रकाशित कर रहे हैं—सं.)

॥

(२)

सिनेमा जगत्

......अभी पिछले दिनों चीन का एक शिष्ट मंडल भारत में आया था। उन्होंने अपने भाषणों में चीन की जिन नवीन प्रवृत्तियों पर प्रकाश डाला उन में से एक चीन का सिनेमा भी है। चीन के सारे राष्ट्र में सिनेमा द्वारा किस प्रकार शिक्षा का प्रसार किया जा रहा है—किस प्रकार ग्राम ग्राम में सिनेमागृह खोले जा रहे हैं और उनके द्वारा जनता में नव जीवन और जागृति उत्पन्न की जा रही है......इन सब बातों पर उन्होंने अच्छी तरह प्रकाश डाला।......

हमारे देश में सिनेमा जगत् की जो अवस्था है उसे देख कर बड़ा दुःख होता है। हमारी भारतीय सरकार इस ओर कुछ भी ध्यान नहीं दे रही है। स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद तो इन फिल्मों का स्तर और भी गिर गया है। इन सिनेमाओं के द्वारा न तो किसी प्रकार की कला का प्रदर्शन होता है, न उसमें काव्य है और न उनको तैयार करने में कोई विशेष परिश्रम किया जाता है। इन से जनता के सदाचार पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है।

भारतीय प्रशासन भारतीय नवयुवकों को उच्च शिक्षा प्रदान करने के लिए विदेशों में भेजता है? क्या कुछ नवयुवक चीन और रशिया आदि देशों में में इसलिए नहीं भेजे जा सकते कि वे वहाँ के सिनेमा से पूर्णतया परिचित हों और वे उसी प्रकार अपने देश में लौट कर सिनेमा को कुछ उसी प्रकार से संगठित

कर सकें जैसा कि इन देशों में हुआ है। यह बात तो आज सभी मानते हैं कि आज सिनेमा जैसा प्रचार का साधन अन्य कोई नहीं हो सकता। भारतीय सरकार ने इन में अपने समाचार आदि प्रदर्शित करने का तो प्रबन्ध किया है और उसके द्वारा देखनेवालों के ज्ञान में पर्याप्त वृद्धि होती है; उसके द्वारा यह पता चलता हैं कि हमारे देश के किस भाग में क्या हो रहा है—। हम इसी प्रकार की प्रवृत्ति का अधिक विस्तार चाहते हैं। हमें तो आज सिनेमा में सब से अधिक आकर्षक समाचारों के रील ही प्रतीत होते हैं।

कहते हैं कि पहले लिखने में भी चित्रों से ही काम लिया जाता था और अब भी लिया जाता है। इससे यह ज्ञात होता है कि चित्र ज्ञान के प्रसार का एक महान् साधन है। चित्र एकमात्र चित्र ही नहीं। एक पुस्तक का भी काम देते हैं। हमारे अशिक्षित देश में सिनेमा के द्वारा बड़ी आसानी से ग्राम ग्राम में शिक्षा का प्रचार किया जा सकता है। सत्य तो यह है कि सिनेमा का सम्बन्ध शिक्षा के सचिवालय से होना चाहिए और इस उद्योग का इसी आधार पर संगठन किया जाना चाहिए। और यदि यह संभव हो तो इसका विभाग बिलकुल अलग होना चाहिए जिससे सरकार इस उद्योग को स्वास्थ्यकर और प्रगतिशील बना सके।

नई दिल्ली

—रमेश, बी.एससी.

(हम इस विषय में 'अजन्ता' मे अन्य पाठकों के विचारों को 'अजन्ता' में सहर्ष प्रकाशित करेंगे—सं.)

॥

(३)

साहित्य की समस्याएँ

....आप के 'अजन्ता' को देखकर प्रसन्नता होती है। इस में साहित्य की नई प्रवृत्तियों पर भी लेख प्रकाशित किए जाते हैं और उनसे नई प्रेरणा प्राप्त होती है। मैं यह एक सुझाव देता हूँ कि आप 'अजन्ता' के चिट्ठी-पत्री के स्तम्भों में हिन्दी की साहित्य की समस्याओं और प्रवृत्तिओं पर अपने पाठकों के पत्रों को प्रकाशित करें। आजकल हम अपने साहित्य में जीवन से दूर होते जा रहे हैं और जब हम जीवन के निकट आते हैं तो उन्हीं प्रवृत्तियों को अङ्कित करते जिनसे (मुझे कहने की आज्ञा दीजिए) मनुष्य और पशु में कुछ विशेष भेद नहीं रहता और इसे हम कहते हैं— यथार्थवाद। कहा तो यह जाता है कि साहित्य के द्वारा मनुष्य में संस्कृति (Culture) उत्पन्न होती है—, वह सभ्य बनता है परन्तु क्या आज यथार्थवाद के आधार पर जो साहित्य उत्पन्न हो रहा है—उसके विषय में यह कहा जा सकता है? आज साहित्य में यथार्थवाद के नाम पर कुछ भी प्रकाशित किया जा सकता है। बदबूदार वस्तुओं को मट्टी में दबाना पड़ता है अन्यथा चारों ओर दुर्गन्ध फैल जाती है। हमें साहित्य में सुगन्ध को उत्पन्न करना है और उसके द्वारा सुगन्ध को फैलाना है....... । मैं चाहता हूं कि आप 'अजन्ता' के पाठकों से हिन्दी के साहित्य की समस्याओं और अन्य प्रवृत्तियों पर पत्र निमंत्रित करें। हमें इस विषय में सर्व-साधारण के विचारों को जानना चाहिये। इस तरह ये स्तंभ सर्व साधारण के हृदयों में इन प्रश्नों के प्रति एक नई दिलचस्पी उत्पन्न कर सकेंगे।......

धनबाद

—धर्मवीर

(हम 'अजन्ता' के पाठकों को 'अजन्ता' के चिट्ठी-पत्री के स्तम्भों में साहित्यिक या अन्य समस्याओं पर अपने विचार लिख भेजने के लिए निमंत्रित करते हैं। हम उनके विचारशील पत्रों को 'अजन्ता' में प्रकाशित करेंगे और हम इन पत्रों के लिए पारिश्रमिक भी देंगे क्योंकि हम चिट्ठी-पत्री को साहित्य का एक बड़ा अंग समझते हैं। पत्र लेखकों को यह ध्यान रखना चाहिए कि वे इन स्तम्भों के लिए जिन पत्रों को भेजें वे लम्बे न हों और सुसम्बद्ध हों—सं.)

॥

(४)

जीवन के चल चित्र

सन् १९४१ के मई मास की घटना है। मैं अपने

छोटे भाई और एक विश्वसनीय ड्राइवर के साथ मोटर से मुरादाबाद से कानपुर जा रहा था । उस समय मैं बालक ही था, मेरी आयु प्राय: १४ या १५ वर्ष की ही थी। रास्ते में शाहजहांपुर और रामपुर के बीच का रास्ता बहुत खतरनाक समझा जाता था । दिन दहाड़े खून कर दिया जाता था, मोटरें रोक कर लूट ली जाती थीं । अतएव हमारा विचार था कि सूर्य डूबने के पहले ही शाहजहांपुर पहुंच कर रात्रि के लिये वहीं विश्राम किया जाय । इसीलिये हम मुरादाबाद से प्रातःकाल ५ बजे ही निकल गये । परन्तु होनहार की बात, शाहजहांपुर से प्राय: १७ मील बीच जंगल में अचानक मोटर फ़ेल हो गई । ड्राइवर तो होशियार था परन्तु देखने भालने पर ज्ञात हुआ कि लगातार चलते रहने और अत्यधिक गरमी से कोई पुरज़ा ख़राब हो गया जो कि बन नहीं सकता था । शाहजहांपुर अथवा मुरादाबाद जाने के अतिरिक्त कोई चारा नहीं था । आस पास कोई आदमी भी नज़र नहीं आता था । रेल का स्टेशन भी दो मील के अन्दर शायद न था । अस्तु, राम का नाम लेकर ड्राइवर किसी आदमी की खोज में निकला और शाम को एक बूढ़े मुसलमान किसान के साथ लौटा । हम लोगों को इसके हवाले करके वह स्वयं रेलवे-स्टेशन की खोज में चला गया । उस बिचारे मुसलमान किसान ने अपने बैल लाकर हमारी मोटर में जोते और इस प्रकार हमें दो तीन मील दूर अपने गांव में ले गया । मन में तो हम बहुत डरते रहे और इसीलिये रात भर मोटर पर ही जागते बिताई । परन्तु इस शराफ़त के पुतले ने हर तरह से लोगों की खातिरदारी की और हमारी रक्षा के लिये स्वयं रात भर लाठी लेकर हमारी मोटर के पास ही पहरा देता रहा । अगले दिन प्रातःकाल भी उसनें हमारे जलपान का प्रबन्ध कर दिया । बाद में तो ड्राइवर पुरज़ा बनवा कर लौट ही आया । चलते समय हम लोगों नें बहुत कोशिश की कि उसके बच्चों के हाथ में कुछ रुपये दे दें परन्तु उसने एक भी पैसा लेने से इनकार कर दिया । आज भी जब मुझे इस घटना का स्मरण हो आता है और उस अज्ञात व्यक्ति की नेकनीयती और आजकल की हिन्दु-मुस्लिम कटुता को देख कर न जाने क्यों आखों में आंसू और मन में क्षोभ भर जाता है ।

हैदराबाद **—इन्द्र संघी**, एम.एससी.

॥

(५)

कविराजभूषण रामराजभूषण

विजयनगर साम्राज्य के शासक तिरुमल राय सम्राट् के यहाँ रामराजभूषण नामक एक महान् कवि थे । वे तेलुगु के साथ संस्कृत के भी प्रकाण्ड पंडित थे। तेलुगु के किसी प्राचीन कवियों को " उभय-भाषा-प्रवीण " कहा जाता था ।

रामराजभूषण की एक कृति " वसु चरित्र " प्रबंध काव्य है । उस की रचना अलौकिक है । रसपोषण, शब्दार्थ का सन्निकर्ष आदि अनुपम हैं । उस की पदयोजना शब्दलालित्य पर पंडितप्रवर मुग्ध हैं । परंपरा से लोगों की धारणा है कि वे विशिष्ट कवि तथा गायक थे । अतः उन की कविता पद्यमयी हो कर, गाने या भजन के रूप में न होते हुए भी संगीतमय है । उन के पद्यों को कीर्तनों की तरह राग-ताल आदि देकर आलाप कर सकते हैं । इसमें ब्रह्मा की स्तुति है ।

रामराजभूषण ने अपनी शब्दयोजना में सुंदर श्लेष का आश्रय लिया है । उसने प्राचीन संस्कृत कवियों की कल्पना को नवीन रूप दिया ।

प्राय: तेलुगु के प्राचीन कवि संस्कृत के पुराणों एवं काव्यों का अनुवाद करते रहे । परन्तु रामराजभूषण ने इस प्रवाह को उलट दिया । ये प्राचीन तेलुगु से संस्कृत में ग्रन्थ का अनुवाद कराये जाने का सुअवसर लाए। कथावस्तु तो पुराणों की है । फिर भी उसका संस्कृत में अनुवाद किया गया । वह ग्रन्थ अप्रकाशित है । उसकी पाण्डुलिपि प्राच्य पुस्तकालय तंजौर में सुरक्षित है ।

उदाहरण के लिए :-

मत्तेभ विक्रीडित :--

"सकलामोद तालवृत्त-गतुलन्
संगीत साहित्य ना
मक विद्यायुगलंबु पल्कुचेलिकि
बालिड्ल जोडै सिरुल् ।
प्रकटिंपन्नखरेखलं न लघु,
प्रस्तारमुल् सेयु स-
र्व कला कान्तुडु प्रोचु दिर्मल
महारायक्षमावल्लभुन् ॥"

सरल भावार्थ--सकलामोद-तालवृत्त--गतियों से संगीत और साहित्य नामक विद्या, युगलंबु--दो विद्याएं पल्कुचेलिकि--सरस्वती के, बालिड्ल जोडै--स्तनों के जोड़े बन कर, सिरुल--श्री वैभवों का, प्रकटिंपन्--प्रदर्शित कर रही हैं। अंदुन्--उन में या उन पर, नख--रेखाओं से, अलघु--प्रस्तार करने वाला, सर्वकलाकान्त--ब्रह्मा, तिरुमलराय क्षमावल्लभ की रक्षा करे ।

कवि ने अपनी प्रतिभा से सुन्दर शब्दों की योजना कर के कैसे उदात्ततम व्यंग्य की साधना की है ।

वे अपनी श्लिष्ट पद योजना से तथ्य वस्तु को पाठकों के सामने विचित्र रूप से रख कर एक दम चकाचौंध कर देते हैं। आन्ध्र भाषा ही एक प्रपंच (संसार) है । पुराणों के अनुसार ब्रह्माण्ड की रचना ब्रह्मा करता है । उसको शेषनाग धारण करता है और उसकी विष्णु रक्षा करता है। सूर्य चन्द्र उस को प्रकाशित करते हैं। वैसे ही आन्ध्र भाषा की भी रचना, भारवहन और रक्षा आदि करने वाले विख्यात कवि हो चुके। उन प्राचीन कवियों के नाम से आन्ध्र भाषा प्रपंच (संसार) की प्रगल्भता की ऊहा करते हुए विष्णु आदि से सृष्टि और इस प्रपंच की भी ऊहा हम पाठकों को करा रहे हैं ।

मत्तेभ विक्रीडित :—

"महिमुन्वागनुशासनुडु सृजियिं
पं गुंडलीद्रुंडु द
न्महनीय स्थितिमूलमै निलुव श्री
नाथुंडु प्रोवन् महा-
महुलै सोमुडु भास्करुंडु वेलयिं पन्,
सोंपुवाटिंचु नी,
बहुलान्ध्रोक्ति मय प्रपंचमुन द
त्प्रागल्भ्य मूहिंचेदन् ॥"

कवि की दृष्टि में बहुलान्ध्रोक्तिमय प्रपंच है। तेलुगु का आदि कवि नन्नय है। उन्होंने महाभारत का सुन्दर अनुवाद प्रामाणिक भाषा में ११वीं शताब्दी में किया। उन का उपनाम 'वागनुशासनुडु' है। वाक्-वाणी का शासक ब्रह्मा है। एक ने आन्ध्र भाषा की रचना की तो दूसरे ने प्रपंच की। कुंडली कहते हैं सांप को, यज्ञयाग कर के मकर-मत्स्य कुण्डल भी धारण किए जाते हैं। अतः वे भी कुंडली हैं। आन्ध्र भाषा में नन्नय के बाद तिक्कन कवि ब्रह्मा तथा यज्वा हुए। नन्नय के बाद उन्होंने अधूरी महाभारत के अनुवाद का वहन किया तथा विराट् पर्व से लेकर महाभारत का पूरा अनुवाद उत्तम प्रामाणिक पद्यानुसार करके आधुनिक तेलुगु कवियों का वह सिरमौर बन गया। उन्हें सोमयाजी कहते थे। कुंडल धारण करने वालों में वे इन्द्र, या समर्थ हैं। इस प्रकार संसार का वहन तो कुंडलींद्र पन्नगेश कर ही रहे हैं। उधर आन्ध्र भाषा का वहन भी कुंडलीन्द्र ही करनेवाले थे। दोनों तन्महनीय स्थिति के मूल स्तम्भ हो कर रहे। तेलुगु भाषा के रीति कवियों में सिरताज श्रीनाथ हैं। उनकी उपाधि कविसार्वभौम है। उन्होंने भाषा की अनुपम सेवा की। उनका 'श्रृंगारनैषध काव्य' प्रसिद्ध है। लोगों की धारणा है कि वे अपर कालिदास हैं। संयोग से श्रीनाथ संसार की रक्षा करते हैं तो वे आन्ध्रभाषा की रक्षा और वृद्धि श्रीनाथ करते रहे। इन के अतिरिक्त जो बड़े बड़े कवि हुए उनमें नाचनसोम एक हैं। और दूसरे भास्कर हैं जिन्होंने रामायण पद्यानुवाद किया। यों तो संसार को सोम (चन्द्र) और भास्कर (सूर्य) प्रकाशमान कर रहे हैं। उसी तरह आन्ध्र भाषा को भी ये दोनों कवि प्रकाशमान कर रहे हैं।

हैदराबाद **केशवाचार्य शास्त्री**
भाषाप्रवीण, साहित्यविशारद

नीर-क्षीर

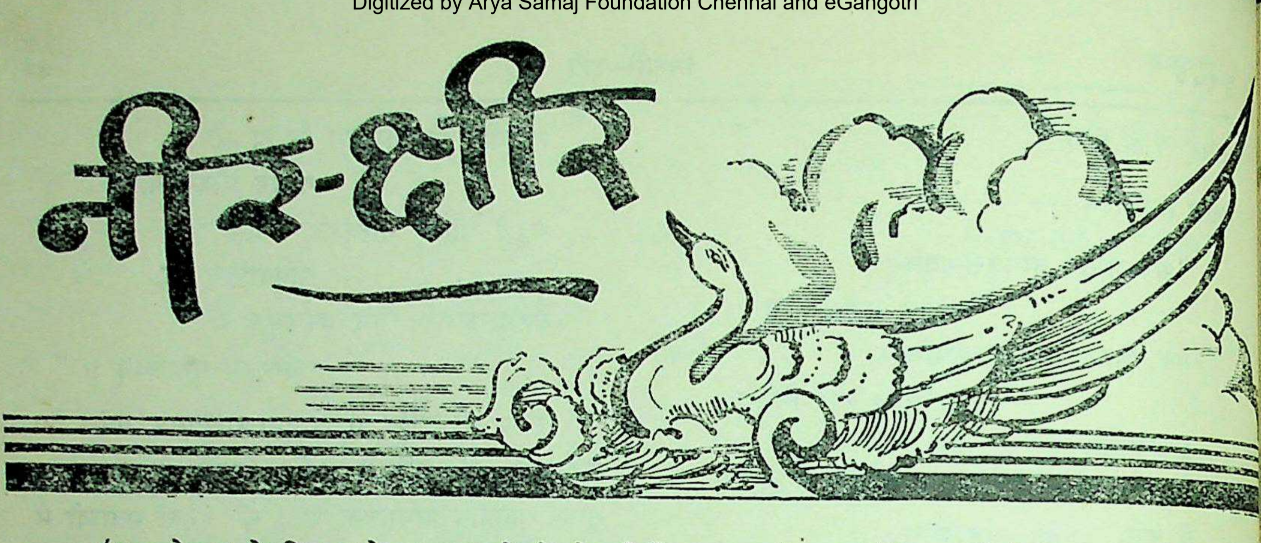

(समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो दो प्रतियाँ सम्पादक 'अजन्ता' के नाम से भेजी जानी चाहिएँ)

जय कश्मीर

लेखक—विष्णुदत्त 'तरंगी'

प्रकाशक—दिल्ली प्रेस, नई दिल्ली

मूल्य—७।।)

प्राचीन काल में कवि राजाओं की वीरता का वर्णन किया करते थे—प्रस्तुत पुस्तक में श्री विष्णुदत्त 'तरंगी' ने कश्मीर की लड़ाई के सैनिकों की वीरता के वर्णन करने का प्रयत्न किया है। लेखक के अनुसार "मशीनजीवी युद्ध पर यह प्रथम काव्य है अत एव फौज में अनेक अंग्रेज़ी शब्द और प्रयोग रूढ़ हो गए हैं—जैसे मार्टर का माटर हो गया है, होबिटजर का "हौजर" हो गया है।" विषय के नवीन होने पर भी कविता की शैली पुराने ढंग की ही है। प्रचलित भाषा में लिखे जाने पर भी इस में व्रजभाषा का पुट पर्याप्त मात्रा में है। कविता की पद्धति भी बहुत कुछ रीतिकालीन है और उन्हीं की परिपाटी के आधार पर ही लिखी गई है। कविता को पढ़ने में प्रवाह का जितनी सरलता से अनुभव होता है—अर्थ के गाम्भीर्य का उतनी सरलता से अनुभव नहीं होता। पुस्तक में प्रारम्भ से अन्त तक युद्ध की किसी कथा का वर्णन नहीं किया गया है—अलग अलग छन्दों में युद्ध का और सैनिकों की वीरता का वर्णन किया गया है। यदि युद्ध का कथारूप में वर्णन होता तो इस में नवीनता उत्पन्न हो जाती और इस में अपनी ही एक विशेषता उत्पन्न हो जाती। यद्यपि इसमें काश्मीर का वर्णन किया गया है और प्रत्येक छंद के ऊपर काश्मीर की घाटियों या सिपाहियों या अन्य इसी प्रकार के युद्ध के चित्रों को प्रत्येक पृष्ठ में छन्द के ऊपर प्रकाशित किया गया है तो भी इन छन्दों को पढ़ने से कश्मीर की घाटी और वहाँ के युद्ध और सैनिकों की बहादुरी का इससे कुछ विशेष परिचय प्राप्त नहीं होता। 'जय कश्मीर' में घनाक्षरी के कुल ११२ छन्द हैं। एक पृष्ठ पर एक ही छन्द प्रकाशित किया गया है। उस छन्द पर जो चित्र प्रकाशित किए गए हैं उनका नीचे के छन्दों से कुछ विशेष मेल नहीं है। कविता में भी स्वाभाविकता की अपेक्षा कृत्रिमता का अधिक अनुभव होता है। पुस्तक आर्ट पेपर पर छापी गई है। पुस्तक की भूमिका जनरल करिअप्पा ने लिखी है। उनकी भूमिका तो हिन्दी में है परन्तु हस्ताक्षर अंग्रेज़ी में हैं। साथ में ही जनरल करिअप्पा का चित्र भी दिया गया है। पुस्तक को देखने से यह अनुभव होता है कि यह पुस्तक भारतीय सरकार के कार्यालयों को देने के लिए प्रकाशित की गई है। इस पुस्तक में 'प्रोपेगैण्डा' की भी कुछ गन्ध आती है यद्यपि इस पुस्तक के चित्रों से जो प्रोपैगैण्डा हो सकता है वह कविता द्वारा नहीं कारण यह है कि कविता की परिपाटी आधुनिक युग के विशेष अनुकूल नहीं प्रतीत होती। एक उदाहरण दिया जाता है :—

"गिरिजा न माने पट खोल खोल विश्वनाथ,
देखत तमाशो गिरिराज के शहर में।

कबहूँ दिखानो श्रोत पुच्छल सो वायुयान,
कबहूँ हिराने बरहान के कुहर में ।
कतहूँ छिपानो ओट, कतहूँ उड़ानौ लौट,
आयो कहँ धायौ नहिं सूझत कहर में
शिव की झटक बाँ गिरिजा पुकारें--‘ नाथ ’--
‘अंबर में मेघ, यान मेघ के भँवर में ।।”

यदि इन छंदो को युद्ध के मैदानों में उपस्थित रह कर और वहाँ से प्रत्यक्ष प्रेरणा प्राप्त कर के अपनी हृदय की भावनाओं के साथ लिखा जाता तो इन छंदों को पढ़ते हुए लेखक की हृदय की भावनाओं का अनुभव होता। इन कविताओं को पढ़ने से कवि की इन छंदों की लिखने की चतुराई का तो अनुभव होता है परन्तु इन में उनके हृदय का स्पंदन अनुभव नहीं होता जिससे कि कविता या कला में जीवन उत्पन्न हो जाता है ।

भावों की भीख

लेखक—रामनिवास जाजू, एम.काम.
प्रकाशक—पिंडार्स लिमिटेड, ७, लोअर राउडन स्ट्रीट, कलकत्ता २०
मूल्य—१॥)

प्रस्तुत पुस्तक में श्री रामनिवास जाजू की २७ कविताओं का संग्रह है । कविताएँ सरल तथा सुबोध हैं। उनके भाव और विचार समझ में आते हैं । इन में लेखक के हृदय की धड़कन सुनाई देती है । इन कविताओं के लेखक में कल्पना की न तो रंगीनियाँ हैं और न ऊँची उड़ानें। इन कविताओं में अनुभूति है परन्तु गहरी अनुभूति नहीं है, विचार हैं और उन्नत विचार हैं परन्तु उन विचारों में शृंखला और तीव्रता नहीं है । भाषा अच्छी है। उस में स्वाभाविकता है परन्तु उसमें शिथिलता और अपरिपक्वता है । कहीं कहीं तो तुक मिल गए हैं परन्तु भावों में बेतुकापन आगया है । कई गीत सुन्दर हैं और कइयों में बहुत-सी पंक्तियाँ सुन्दर हैं । इस कविता-संग्रह में सब कविताएँ एक सदृश नहीं है और कई कविताएँ यद्यपि छन्द में लिखी गई हैं परन्तु वे गद्यमात्र रह गई हैं। लेखक सहृदय व्यक्ति है और उसे अपने इन प्रयत्नों को जारी रखना चाहिए । पुस्तक के ऊपर का चित्र खटकता है ।

हैदराबाद —**वंशीधर विद्यालङ्कार**

मराठी

विराट् मानव

लेखक—डाक्टर शंकरलाल पुरवार
प्रकाशक—????

डाक्टर शंकरलाल जानकीलाल पुरवार का ‘ विराट्-मानव ’ नामक काव्य मानव की उस महानता का परिचायक है जिसकी अनुभूति स्वयं मानव को नहीं है । अतीत काल के न जाने किस महिमावान् क्षण से मानव ने अपनी सृष्टिका श्रीगणेश किया था । उस अज्ञात क्षण से लेकर, कवि मानव को पिछले महायुद्ध की विभीषिका में लाकर खड़ा कर देता है । केवल ७५ पृष्ठों में यह प्रयास गागर में सागर भरने का प्रयास है । इस पथ में कितने चौराहे आये, कितनी दुविधाओं ने घेरा, कब पाथेय का अभाव हुआ, कब भ्रम छा गया और कब इस भ्रम में से भी सत्य को उत्पत्ति हुई इनका परिचय मिलता हैं। विराट्-मानव में मानव अपने साध्य की ओर अग्रसर हो रहा है । वह अपनी यात्रा में पीछे जिन पदचिन्हों को छोड़ आया है वे अंकित हैं इस छोटे से काव्य में । और इस काव्य की विशेषता है इतिहासकार से कवि का पृथक् होना इन सब उपकरणों को लेकर ऐतिहासिक अपना इतिहास लिखता है । इतिहासकार उस युग का दर्शक मात्र होता है, किन्तु कवि इस उपकरणों से अपनी कला को ज्योतित करता है। स्वयं दर्शक न रह कर भोक्ता बनकर। दर्शक और भोक्ता का अंतर स्पष्ट है। एक दृश्य के परिणाम, उत्थान और पतन से अलिप्त कथानक के विस्तार में रुचि रखता है, तो दूसरा परिणाम उत्थान और पतन म रुचि ही नहीं रखता, उसे आत्मसात् कर विस्तार की ओर उपेक्षावृत्ति रखता है ।

“ विराट् मानव ” का कवि , कवि होने के साथ साथ दार्शनिक भी है। प्रथम पृष्ठ में ही वह हमारे सम्मुख

अद्वैत दर्शन के गहन चिन्तन को लिए आता है और अंतिम पृष्ठों में पहुँचते मार्क्स और हीगल ही नहीं इटली के फासिस्ट दर्शन की प्रतिक्रिया भी उसमें दिखाई देती है। किन्तु विशेषता यह कि दर्शन ने कविता को आच्छादित नहीं किया गया है । इसीलिये वह अद्वैत से प्रभावित होकर भी, मानव को कर्म-विरत नहीं करता। मानव अपने को विराट् अनुभव करता हुआ भी, अद्वैत में निःशक्त ही रहता है और उस में माया अथवा अज्ञान से सदैव पलायन लक्षित होता है। किंतु कवि का 'विराट् मानव' शक्ति और आत्मविश्वास से उद्दीप्त जैसे माया ही नहीं, समस्त प्रकृति को ललकारता दिखाई देता है। वह विराट् का उत्तराधिकारी अथवा अंश ही नहीं पूर्ण विराट्-पुरुष' ' बनकर अपना जीवन आरंभ करता है। कवि उस की विराटता को अंकित करता है अतीत के उन पदचिन्हों पर जिन्हें मानव पथमें पीछे छोड़ आया है। काव्य का यह अंश मानव के प्रबल प्रयास और शक्ति की आभा से आलोकित है

किन्तु कवि केवल कल्पना लोक का प्राणी नहीं है। वह इस धरती की कठोरता से भी परिचित है। वह यदि शिशु के शरीर की कोमलता में पुष्प की मृदुलता देखता है तो उस मृदुलता को झुलसने वाली अग्नि से भी वह अपरिचित नहीं। पुराण के गायक कवि ने ब्रह्मा, विष्णु और शिव के रूप में स्रष्टा को त्रिधा के रूप में उपस्थित कर के अपने को झंझट से बचा लिया है। 'विराट्-मानव' का कवि इस त्रैत में जब अद्वैत स्थापित करता है, प्रातः कालीन उषा की गुलाबी आभा में जब संध्या की रंगीन प्रतिभा दौड़ाता है वहीं वह हमारी दृष्टि में बहुत ऊँचा चढ़ता है। उषा और संध्या को पृथक् पृथक् चित्रित करना कुशल कलाकार के लिये असंभव नहीं, किन्तु एक ही चित्र में दोनों को अंकित करना और इस तरह कि दोनों एक दूसरे से प्रभावित न होकर दर्शक पर अपना सौंदर्य और वास्तविक स्वरूप प्रगट कर सकें, किसी भी कलाकार की महानता ही नहीं, महत्त प्रगट करेगी। "विराट् मानव" का कवि मानव की विराटता की भाँति मानव की तुच्छता को भी चित्रित करता है और इस तरह की इस चित्रण से न विराटता पर अश्रद्धा होती है और न तुच्छता पर घृणा या ग्लानि। यही कवि की सब से बड़ी सफलता है।

विश्व युद्ध की विभीषिका से जिस समय विश्व संत्रस्त था, उसी समय इस काव्य का सृजन हुआ है। किंतु काव्य में एक आशा है। कवि का विश्वास है, इस संघर्ष में, इस आग में सोना कुन्दन बन कर चमकेगा। वह क्रांति के सुपरिणामों में विश्वास रखता है। उसका विश्वास है कि मानव अपने तुच्छता को छिन्न भिन्न कर महान् बनेगा।

भाषा में प्रवाह है जो दार्शनिकता के बोझ से भी कहीं शिथिल नहीं हुआ है। छंदो में लय और ओज है। और मैं गर्व करता हूँ कवि पर, इसलिए कि वे हिन्दी भाषी होते हुए भी, मराठी भाषा पर इतना अच्छा अधिकार रखते है। उनकी प्रतिभा से वर्त्तमान युग इस प्रकार के अन्य काव्यों की अपेक्षा रखता है।

हैदराबाद

--श्रीराम शर्मा

सामयिक

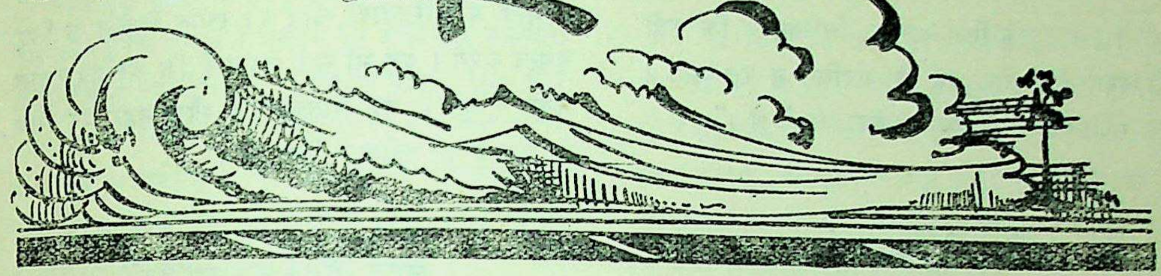

॥

गुरुदेव और हिन्दी

श्री बनारसीदास जी चतुर्वेदी ने "गुरुदेव और हिन्दी" शीर्षक से एक लेख प्रकाशित किया है। हम उसमें से कुछ अंश यहाँ उद्धृत करते हैं। इस लेख से ज्ञात होता है कि गुरुदेव की हिन्दी के प्रति क्या भावना थी।

"गुरुदेव हिन्दीका प्रचार चाहते थे और खूब चाहते थे; पर उनका ढंग दूसरा ही था। उन्हें आचार्य क्षितिमोहन सेन की कार्य-पद्धति पसन्द थी, अर्थात् हिन्दीमें जो कुछ सर्वोत्तम है, उसे भारत के प्रान्तीय भाषा-भाषियोंके सम्मुख रखना। यही नहीं, गुरुदेव ने तो कबीर के एक सौ पद्योंका हिन्दी-अनुवाद करके उनकी कीर्तिको विश्वव्यापी बना दिया था। सुना है कि गुरुदेव की उक्त पुस्तकके कई अनुवाद यूरोप में हुए।

गुरुदेव हिन्दी के शुभचिन्तक थे। श्री हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, श्री भगवतीप्रसाद चन्दोला तथा अन्य हिन्दी-लेखकों को उन्होंने न जाने कितने परामर्श हिन्दी-ग्रंथों के लिखने-लिखाने के लिए दिए थे। शान्तिनिकेतन में हिन्दी-भवन बनवाने के लिए वे बहुत उत्सुक थे और उससे भी अधिक चिन्तित थे वे इस बात के लिए कि हिन्दी-भवन ठोस साहित्यिक कार्य करे।

ईंट-पत्थर-चूने में अविश्वास

गुरुदेव ईंट-पत्थर-चूने में धन व्यय कर देने के विरोधी थे, और हिन्दी-भवनके कार्यकर्त्ताओं से उन्होंने कई बार कहा भी था कि भवन कच्चा ही बनाया जाए और जो रुपया बचे, उसे साहित्य-निर्माण पर व्यय किया जाय। गुरुदेव की इच्छा थी कि विवेकशील हिन्दी-विद्वानों का एक समूह हिन्दी-भवनमें कार्य करे। खेद है कि आश्रम के संचालक तथा भवन के निर्माता गुरुदेवके इस आदेशका अभी तक पालन नहीं कर सके। साधनों की कमी ही इसका मुख्य कारण है।

हिन्दी-गद्यका लचीलापन

गुरुदेव हिन्दी-भाषाके लचीलेपन पर——उसके लोच पर—— मुग्ध थे, और उन्होंने कई बार 'आँख की किरकिरी ('चोखेर बाली' के हिन्दी-अनुवाद) की भाषा की प्रशंसा की थी। वे सरल तथा सजीव भाषाके पक्षपाती थे। कृत्रिम अथवा अलंकारमय हिन्दी-कविताएँ उन्हें पसन्द नहीं आती थीं। एक बार उन्होंने कहा था—— "कुछ भी क्यों न हो, 'विहारी-सतसई' जैसे ग्रन्थ मेरे लिए रुचिकर सिद्ध नहीं हुए, विशेषतः किसी-किसी दोहे के चार-चार पाँच-पाँच अर्थोंके विषय में वाद-विवाद मुझे कुछ जँचा नहीं।"

कविवर का हिन्दी-भाषाका ज्ञान

कविवर हिन्दी भली भाँति पढ़ और समझ लेते थे, यद्यपि उन्होंने उसका विधिवत् अध्ययन नहीं किया था। पर हिन्दी बोलने में उन्हें सदा संकोच होता था। उन्हें बराबर यह आशंका बनी रहती थी कि हिन्दी-सम्भाषणों में उनसे त्रुटियाँ होंगी और किसी भी भाषा को अशुद्ध बोलने में उनकी अन्तरात्मा हिचकती थी; वैसे कामचलाऊ हिन्दी वे आवश्यकता पड़ने पर बोल भी लेते थे।

सुना है कि शब्दसागरके संक्षिप्त संस्करणको उन्होंने बड़े परिश्रमपूर्वक पढ़ा था और अनेक स्थलों पर निशान भी लगा दिए थे ।

"वे इस बातके लिए अत्यन्त चिन्तित थे कि कहीं हिन्दी-भवन ईंट-पत्थर तक ही परिमित न रह जाय । वे इसे सजीव संस्थाके रूपमें देखना चाहते थे ।"

॥

चर्चिल और भारतवर्ष

अमेरिका के प्रो. तारकनाथ दास ने दिसम्बर के "माडर्न रिव्यू" में '१९५१ के ब्रिटिश चुनावों में चर्चिल की विजय' शीर्षक से एक लेख लिखा है। वे इस लेख में चर्चिल और भारतवर्ष के विषय में लिखते हैं :—

"चर्चिल एशिया के लोगों का मित्र नहीं है। उसकी उनके प्रति फैसिज्म की राजनैतिक, आर्थिक और जातीय साम्राज्यवाद की भावना रही है। वह भारतीय स्वतंत्रता का विरोधी था और भारत के विभाजन का मुख्य निर्माणकर्ता। उसने जिन्ना की मुस्लिम लीग का पूरे हृदय से समर्थन किया और पाकिस्तान को बनाने में हर तरह की सहायता की ...... । हैदराबाद के मामले में उसकी सहानुभूति निज़ाम के साथ थी और वह भारत का विरोधी था। यह सब जानते हैं कि चर्चिल और उसके मित्र कश्मीर के झगड़े में पाकिस्तान की क्रियात्मक रूप से सहायता कर रहे हैं ।

भारतवर्ष के लोग जानते हैं कि किसी राजनेतिक पार्टी के बावजूद भी चर्चिल भारतवर्ष का शत्रु रहा है और अब भी है। वह और उसका प्रशासन भारतवर्ष के वास्तविक हितों के विरुद्ध अमरिका के लोगों की सहायता प्राप्त करेगा । इसका यह परिणाम होगा कि अमरीका को भारतवर्ष की जनता को यह विश्वास दिलाना होगा कि अमरिका भारत का ऐंसा विरोधी नहीं है कि वह अमेरिका को छोड़ कर दूसरे देशों की सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न करे । इसका यह अर्थ होगा कि भारतवर्ष चीन और रूस के साथ अपनी मित्रता को दृढ़ करेगा, मिश्र की पूर्णतया सहायता करेगा यद्यपि वह क्रियात्मक रूप से इंग्लेण्ड से युद्ध नहीं करेगा । हमें इस तरह के लक्षण दिखाई दे रहे हैं । श्री. पनिक्कर जो पीकिंग में भारत के राजदूत हैं संयुक्त राष्ट्र संघ के पेरिस के अधिवेशन में सम्मिलित हो रहे हैं। वे सुरक्षा समिति में साम्यवादी चीन को स्थान दिलाने के लिए प्रयत्न करेंगे । यह भी सुना जाता है कि श्री जवारलाल नेहरू ने अपनी एक बातचीत में स्वेज़ नहर पर मिश्र के प्रभुत्व को स्वीकार किया है ।"

॥

भारत और समाजवादी दल

चुनावों में भारत के समाजवादी दल की हार पर बम्बई के प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्र "फ़ोरम" में एक लेख प्रकाशित हुआ है । उसके कुछ अंश नीचे दिए जाते हैं :—

"बम्बई भारतवर्ष के समाजवादी दल का गढ़ है । उन्हें यहाँ अपने विजय की पूर्ण आशा थी । कांग्रेस के हाथों यहाँ उसकी हार होगई है । कांग्रेस के विषय में सब की धारणा यह थी कि वह बम्बई में इस बार के चुनावों में विजय प्राप्त न कर सकेगी । सचमुच यह बड़े आश्चर्य की बात है ।

समाजवादी नेता.....इसके विषय में ठीक उत्तर नहीं दे सकते । अभी अशोक मेहता ने उत्तर में कहा—"भारत के मतदाताओं में अभी राजनैतिक जागृति उत्पन्न नहीं हुई और या फिर इसका कारण यह है कि समाजवादी दल और कांग्रेस का एक ही उद्देश्य है ।"

कांग्रेस की विजय का का क्या कारण है? क्या कांग्रेस को किसी विशेष वर्ग का समर्थन प्राप्त हुआ है? या फिर धनी उद्योगपतियों से उसे इस में आर्थिक सहायता प्राप्त हुई है ? परन्तु कांग्रेस को समस्त वर्ग के लोगों का मत प्राप्त हुआ है । उन चुनाव क्षेत्रों में भी जहाँ श्रमिक वर्ग अधिकता में है कांग्रेस को ही अधिक मतदान मिला है ।

हर जगह जहाँ जहाँ भी चुनाव हुए हैं कुछ इसी प्रकार की अवस्था है । ऐसा प्रतीत होता है कि अभी भारतवर्ष के लोग अपने शासन में कुछ विशेष परिवर्तन

नहीं करना चाहते और या फिर अभी तक जनता की श्री पं. जवाहरलाल नेहरू में विशेष आस्था है ।

यदि यह व्यक्तिगत कारणों से हुआ है तो क्या हम कह सकते हैं कि भारत में जनतंत्र को अभी कुछ सफलता प्राप्त नहीं हो रही है । . . . . .इस का कारण एक ओर तो जनता की निरक्षरता है और दूसरी ओर नेताओं का प्रभाव और आकर्षण । फिर भी दक्षिण भारत ने यह सिद्ध कर दिया है कि कृषक अपने हितों को समझता है और उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती ।

क्या यह औद्योगिक श्रमिक वर्ग और सफ़ेदपोश लोगों का दोष है । वे अपने आज के और कल के अपने हितों में भेद नहीं कर सकते । वे ढुलमुल रहते हैं और किसी निर्णय पर नहीं पहुँचते । इंग्लैण्ड में भी जहाँ इतनी राजनैतिक जागति है यही अवस्था है । . . . . . वहाँ के चुनावों में भी ऐसा ही हुआ ।

समाजवादियों के पराजय का कारण प्रतीत होता है उनकी बम्बई में कपड़े की मिलों में कराई गई हड़ताल की असफलता । निर्वाचन के दिन होटलों के लड़के और लौण्ड्रियों में काम करने वाले समाजवादियों के विरुद्ध प्रोपैगैण्डा कर रहे थे । वे कांग्रेस से रुपया लेकर उसके एजेण्ट नहीं बने थे । श्रमिक वर्ग पर उनका यह असर पड़ा है कि समाजवादी निष्प्रयोजन हड़तालें करवा कर उनकी रोटी छीन लेते हैं । समाजवादी नेताओं में उनका विश्वास नहीं रहा है । जिन्होंने समाजवादी सभाओं के भीड़-भड़क्के को देखा है वे यह समाचार सुनकर विश्वास नहीं कर सकते कि समाजवादी इस निर्वाचन में असफल रहे हैं । . . . .कुछ कारण उनके विचारों की अस्पष्टता भी है । कभी वे गांधीवाद की ओर झुकते हैं तो कभी मार्क्सवाद की ओर । . . . . . . भारतीय समाजवादी भारत के समाजवाद का निर्माण करना चाहते हैं परन्तु उन्हें पहले अपना निर्माण करना चाहिए ।"

॥

मध्य-पूर्व

डा. कालीदास नाग का जो अखिल-भारतीय संस्कृति संघ के अध्यक्ष हैं बम्बई के साप्ताहिक पत्र "धर्मयुग" में एक लेख "हमारी मध्य-पूर्व की यात्रा पर प्रकाशित हुआ है । वे लिखते हैं :—

"कलकत्ता से प्रस्थान कर हम भिन्न-भिन्न मार्गों से होते हुए काहिरा पहुंचे । अतः हमें ईरान, ईराक, सीरिया, लेबेनान, टर्की और मिस्र आदि विभिन्न सांस्कृतिक प्रदेशों में गुज़रना पड़ा । इन राष्ट्रों में बंटे हुए इस विशाल भूभाग को युरोपियन लेखक "निकट पूर्व" के नाम से कभी-कभी संबोधित करते हैं । क्योंकि यह यूरोप के बहुत ही समीप है ।यहां न केवल एशिया और यूरोप की विचारधाराओं में प्रतियोगिता चल रही है अपितु आफ़्रिका की नव प्रवाहित स्वयंसत्तात्मक धारा की कलकल ध्वनि भी सुनायी देती है । और वह ध्वनि हमें मिस्र के स्वेज नहर एवं सुदान पर, फ़्रांसीसी और ब्रिटेन तथा अन्य पश्चिमी देशों के खिलाफ़ अपने अधिकार की घोषणा में गूंजती हुई सुनाई पड़ती है । इसराइल की नींव धरी जाने के बाद तो उस विस्फोका भय द्विगुणित हो चुका है । एक ओर तो यहूदियों ने, जिन्हें आज से दो हज़ार वर्ष पूर्व रोमियों ने यहां से मार भगाया था और जो तब से निराश्रित हो बेघर-बार के विचर रहे थे, सदा के लिये अपना घर बनाने का ठान लिया है तथा दूसरी ओर अरबी इस्लामी संस्कृति ने इस हेब्रू संस्कृति के माननेवाले छोटे से यहूदी टापू के आस पास घेरा डाल रखा है । यहूदियों को अपने हेब्रू विश्वविद्यालय पर अभिमान है ; किन्तु दुःख की बात है कि विभाजन के कारण माउण्ट स्कोपस पर स्थित उनका प्रसिद्ध ग्रंथालय, जिसमें ५,००,००० ग्रंथों का संग्रह है, आज उनके अधिकार में नहीं है । यद्यपि राष्ट्र-संघ ने उनकी रक्षा का भार अपने ऊपर ले रक्खा है, किन्तु ग्रंथालय बन्द रहने के कारण उससे कोई लाभ नहीं उठाया जा सकता । "फूट डालो और शासन करो" नीति से व्याप्त और विभाजन के विष से दूषित होने की यह एक दुःखद मिसाल है, जिसमें हमें विश्व की वर्तमान स्थिति का अनुमान होता है । हमें भी उसके फलस्वरूप अनेकों कष्ट उठाने पड़े हैं और यदि भारत को फिर से काश्मीर के टुकड़े कर देने के लिये बाध्य किया गया,

तो संभव है भारत संयुक्त-राष्ट्र से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर दे ।

राजनीतिक संघर्ष

मध्यपूर्व की आंग्ल अमरीकी नीति पुरानी व्यवस्था बनाये रखने के पक्ष में है ; किन्तु नवनिर्मित इस्लामी राष्ट्र राजनैतिक, आर्थिक अथवा अन्य सभी प्रकार की पराधीनता के विरोध में अपनी आवाज़ उठा रहे हैं । केवल ईराक़, जोरडन और टर्की, तीनों राष्ट्र इसराइल से मित्रता का सम्बन्ध बनाए हुए हैं । अरब-लीग के अन्य सभी सदस्य यहूदी राष्ट्र को अपना कट्टर शत्रु मान बैठे हैं । इस तरह तीनों धर्म और उनकी संस्कृतियां, यहूदी, ईसाई और इस्लाम मध्य और निकट पूर्व के क्षेत्र में आपस में टकरा रही हैं और एक दूसरे पर विजय पाने का पूरा प्रयत्न कर रही हैं । इसी संघर्ष का स्वरूप हम ने मध्यपूर्वीय देशों की यात्रा में देखा है ।

॥

विद्यापति

कवि विद्यापति के विषय में श्री. मन्मथनाथ गुप्त के "आधुनिक हिन्दी और बंगला साहित्य" में से निम्न अंश उदष्टत किया जाता है । यह लेख दिल्ली की "सरिता में प्रकाशित हुआ है :--

कवि विद्यापति को बंगाली अपना कवि मानते हैं । बंगाल के प्राचीन कवियों में वे आदि कवि और कुछ लोगों के मतानुसार सर्वश्रेष्ठ प्राचीन बंगला कवि माने जाते हैं । हिंदी वाले भी विद्यापति को अपना कवि मानते हैं । हिंदी के नवरत्नों में उनकी गिनती नहीं की जाती । यहां पर यह प्रश्न उठाना उचित नहीं जान पड़ता कि विद्यापति को यदि हिंदी कवि मानना है, तो उन्हें नवरत्न में न मान कर उनके साथ अन्याय किया गया है या नहीं ? मैं पूरी ज़िम्मेदारी के साथ इस बात को कहने का साहस करता हूं कि विद्यापति सूर, तुलसी, केशव और चंडीदास के समकक्ष कवि हैं ।

असली बात यह है कि विद्यापति न तो ठीक ठीक बंगला के ही कवि थे, और न हिंदी के ही । वह मैथिल थे और मैथिली में ही उन्होंने रचनाएं की हैं । पर वह मैथिली ऐसी मैथिली थी कि उस समय की बंगला और हिंदी--दोनों उससे मिलती थीं । इसी कारण इस वितर्क की उत्पत्ति हुई है कि विद्यापति किस भाषा के कवि थे । मुझे तो यह सारा वितर्क ही अजीब मालूम होता है । यदि किसी भाषा के कवि को दूसरी भाषा के लोग अपना कवि मानते हैं, तो उस में उस कवि का भी लाभ है, कविता का भी लाभ है, और इस में झगड़े को कोई बात न हो कर आनंद की ही बात है ।"

॥

आदान-प्रदान

श्री शम्भुनाथ शेष की कलकत्ता के मासिक पत्र "रश्मि" के दिसम्बर १९५१ के अङ्क से "आदान-प्रदान" कविता उद्धृत की जाती है :--

"तुम मुझे प्रिय प्यार की पहचान दे दो,
मैं तुम्हें अमरत्व का विश्वास दूंगा !

पास होकर भी रहे हम दूर कितने !
हैं नियति के हाथ में मजबूर कितने !
सत्य निकला, वज्र सा इस ज़िन्दगी में !
हो चुके हैं स्वप्न चकनाचूर कितने !
आज प्रिय आह्वान का पावन समय है !
आज नव पुष्पाभ का रूपाभिनय है !
तुम मुझे भूले हुए मधु गान दे दो !
मैं तुम्हें मधु पर्व का मृदु हास दूंगा !
तुम मुझे प्रिय प्यार की पहचान दे दो,
मैं तुम्हें अमरत्व का विश्वास दूंगा !

याद है अब तक प्रथम दर्शन सुवेला !
वह प्रकृति की गोद, कवि उन्मन अकेला !
तुम मिलीं, सहसा खिली ऊषा गगन में !
लग गया नव कल्पना रङ्गीन मेला !

आज हैं फिर स्नेह-भीजीं भावनाएं !
आज हैं अनुराग-रञ्जित कामनाएँ !
तुम मुझे नव प्रेरणा का मान दे दो !
मैं तुम्हें हिय ज्योति में आवास दूँगा !
तुम मुझे प्रिय प्यार की पहचान दे दो,
मैं तुम्हें अमरत्व का विश्वास दूँगा !

गुल मुहर से लग रही है आग वन में !
है सुलगती फूल सी अभिलाष मन में !
यह मनोहारी छटा मुग्धा प्रकृति की !
कुछ नहीं, जो तुम नहीं मेरे नयन में !
आज तुम हो साथ, यह अनुभूति गहरी !
नीम की छाया मुखाभा से सुनहरी !
तुम मुझे ऊषा-सलज मुसकान दे दो !
मैं तुम्हें यौवन-सुलभ उल्लास दूँगा !
तुम मुझे प्रिय प्यार की पहचान दे दो,
मैं तुम्हें अमरत्व का विश्वास दूँगा !

यों मिले हैं आज हम जीवन डगर पर !
भावना से ज्यों मिले कर्तव्य आकर !
साधना को सिद्ध का वरदान जैसे !
या उनींदे नयन को सपना मनोहर !
क्यों न इस क्षण को शुभे, शाश्वत बना लें !
प्राण से हम प्राण का दीपक जगा लें !
तुम मुझे नव राग प्रेरक ध्यान दे दो !
मैं तुम्हें नव सृष्टि का इतिहास दूँगा !
तुम मुझे प्रिय प्यार की पहचान दे दो,
मै तुम्हें अमरत्व का विश्वास दूँगा !"

—शम्भुनाथ शेष

अविश्वासी मन

कार के दरवाज़े का हेण्डल घुमाया ही था कि पीछे से ऊँचे स्वर में आफिस बाय रामा पुकार उठा,

ज़रा ठहरिए साहब !

क्या है ?

ये तीस रुपये

तो

देहलीज़ पर मिले

फिर,

देखिये, आप ही के हों ।

नहीं रामा ; चल हट ।

साहब ! ज़रा अपनी जेब तो देख लें ।

झट जेब की तलाशी ली, ज्ञात हुआ पचास रुपये कम हैं । गुस्से से डाँटते हुए,—

रामा ! ये तीन नोट मेरे हैं, बाक़ी और दो कहाँ है ?

"साहब ! सिर्फ तीन ही मिले" भय से कांपते हुए रामा ने कहा ।

बेईमान ! बीस रुपये मारना चाहता है ।

नहीं साहब, मेरी क़सम,

ठहर ; शेरसिंह ! पुलिस को रिंग करो ।

नहीं साहब ,मैं मर जाऊँगा, मैं चोर नहीं, रामा रोते कहा ।

शेरसिंह ! फ़ोन

जो आज्ञा, साहब ।

रामा !

जी,

देख, अब भी सच बतला दे,

सरकार, मैं सच कहता हूँ ; मैंने नहीं,—

नहीं के बच्चे ; अभी मालूम होगा, ठहर.

-।- -।- -।-

हलो ! गुड डे बॉस, क्या बात है ? सब इंस्पेक्टर पेट्रिक ने आते ही प्रश्न किया ।

पेट्रिक ! एक तकलीफ़ दी तुम्हें ; रामा ने चोरी की है ।

अच्छा अभी ; पेट्रिक ने दो रसीद करते हुए रामा से कहा,—

हरामज़ादे, चोरी करता है,
नहीं हुजूर मैं. . . . . . .
और ऊपर से रोता है,

सरकार ! चपरासी इस्माइल कमरे में प्रवेश करते हुए बोल उठा,—"आपने सवेरे दवा मंगाई थी, नहीं मिली ; ये बीस रुपये वापस ।"

पेट्रिक ! हाथ रोक लो,. . . . . . .
चोर मैं हूँ, मेरा अविश्वासी मन.

हैदराबाद **—पूनमचन्द सीसोदिया**

सम्पादकीय

१९५२ का वर्ष

यह नया वर्ष मानव जाति के लिए शुभ और कल्याणकर सिद्ध हो । विज्ञान जितनी उन्नति करता चला जा रहा है उतनी ही मानव-हृदयों में भय की वृद्धि हो रही है । विश्व में इस समय जो शान्ति है उसका कारण मुख्यतयां भय ही है । यदि विश्व की बड़ी शक्तियों को एक दूसरे से भय न होता तो संभवतः लड़ाई कभी की छिड़ चुकी होती । इस भय के बावजूद भी युद्ध का खतरा दिन प्रति दिन बढ़ता चला जा रहा है । लड़ाई की तैयारियाँ हो रही हैं । चर्चिल का अमेरिका जाने का एक यह भी उद्देश्य था कि इंगलैण्ड को अमेरिका से युद्ध सामग्री तैयार करने के लिए अधिक-से-अधिक सामग्री प्राप्त हो सके । कोरिया के मामले में कोई विशेष उन्नति नहीं हुई ; ईरान का मामला भी वैसा ही है, मिश्र का झगड़ा बढ़ता और बिगड़ता चला जा रहा है; दक्षिण आफ्रिका संयुक्त राष्ट्र-संघ की अवहेलना कर अपने निश्चित मार्ग से टस-से-मस नहीं होता ; काश्मीर का मामला भी ज्यों-का-त्यों है । ऐसा प्रतीत होता है कि संसार के समस्त राष्ट्र मिल कर भी विश्व की समस्याओं को हल नहीं कर सकते । वे इन समस्याओं का समाधान न कर-इन को और भी अधिक जटिल और पेचीदा बनाते चले जा रहे हैं । इसके परिणामस्वरूप एक समस्या से अन्य हज़ारों विषम समस्याएँ उत्पन्न होती चली जा रही हैं जिस के कारण वातावरण दूषित होता जाता है; अशान्ति बढ़ रही है और इस का अन्तिम परिणाम युद्ध ही हो सकता है । विश्व में संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना हो गई है परन्तु शक्तिशाली राष्ट्रों में से एक शक्तिशाली राष्ट्र भी ऐसा नहीं है जो संसार के भिन्न भिन्न भागों की समस्याओं को समस्त विश्व की दृष्टि से देखे ; विश्व के पारस्परिक झगड़ों को न्यायपूर्वक सुलझाने का प्रयत्न करे। प्रत्येक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के झगड़ों को एक विशेष दृष्टिकोण से देखता है ; वह इस बात का प्रयत्न करता है कि वह इन झगड़ों से किस प्रकार, कितना लाभ उठा सकता है । इस का परिणाम यह होता है कि विश्व का कोई झगड़ा न्याय और ईमानदारी से न केवल तै नहीं हो पाता परन्तु उससे कटुता और अन्य हज़ारों झगड़े पैदा होते जा रहे हैं । जब तक शक्तिशाली राष्ट्र स्वार्थ की भावना से दूसरे राष्ट्रों के झगड़ों को सुलझाने का प्रयत्न करेंगे तब तक राष्ट्रों के पारस्परिक मामलों में न तो न्याय हो सकेगा और जब तक न्याय न होगा राष्ट्रों में पारस्परिक संघर्ष की वृद्धि होती जाएगी और इस संघर्ष का परिणाम होगा युद्ध, सर्व संहारक युद्ध। यह संघर्ष प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है ? हम इस समय ऊँचे पर्वत के बिलकुल किनारे पर खड़े हुए हैं । जहाँ हम खड़े है वहाँ कठिनाई से पैर टिकाने का स्थान है । ज़रा-सा धक्का लगा कि नीचे अथाह खाई है । मनुष्य जाति का भविष्य अन्धकार में है । क्या मनुष्य जाति समय रहते सावधान हो जाएगी ? यह नया वर्ष मनुष्य जाति को शान्ति की नई प्रेरणा देने वाला हो । शान्तिमय अहिंसात्मक उपायों द्वारा मनुष्य जाति अपने नव निर्माण के पथ पर अग्रसर हो जिससे समस्त संसार एक राष्ट्र बन सके ।

क्या हिन्दी लादी जा रही है ?

दक्षिण के प्रान्तों में और कुछ अन्य अ-हिन्दीभाषी प्रान्तों में समय और असमय पर आजकल कई (Interested) दल यह प्रचार करने का प्रयत्न कर रहे हैं कि उन पर हिन्दी लादी जा रही है । परन्तु प्रश्न यह है कि क्या सचमुच हिन्दी लादी जा रही है? भारत की संविधान सभा ने जिसमें भारत के समस्त राज्यों के प्रतिनिधि उपस्थित थे यह निर्णय कर दिया कि हिन्दी भारतवर्ष की राष्ट्र भाषा है । यदि भारतवर्ष एक है और यदि हम उसकी एकता के पक्षपाती हैं तो हमें भारत में बोली जानेवाली किसी एक भाषा को राष्ट्रभाषा बनाना ही पड़ेगा । हिन्दी को राष्ट्रभाषा

बनाने का यह अर्थ कदापि नहीं है कि वह भाषा भारतवर्ष में बोली जाने वाली किसी भी भाषा से चाहे उसका साहित्य उन्नत हो या न हो, किसी दृष्टि से भी उच्च (Superior) है। हाँ, हमें यह अवश्य देखना पड़ेगा कि उसमें सर्वतोमुखी विकास की योग्यता या क्षमता है या नहीं? यह तो हमें मानना ही पड़ेगा कि हिन्दी में विकास की क्षमता है और यह स्वीकार कर लेने के पश्चात् भारतवर्ष के समस्त राज्यों का यह कर्तव्य हो जाता है कि वे जिस प्रकार अपने राज्य की प्रादेशिक भाषा की उन्नति की ओर ध्यान दें वैसे ही अपनी राष्ट्रभाषा की उन्नति की ओर भी। वे राष्ट्रभाषा को उतना ही अपना समझें जितना कि वे प्रादेशिक भाषा को अपना समझते हैं।

रहा लादे जाने का प्रश्न। पहले तो राष्ट्रभाषा के प्रश्न को राष्ट्र के समस्त प्रतिनिधियों ने मिलकर तै किया है और दूसरा आज भारत की किसी भी भाषा को राष्ट्रभाषा बनाइए वह किसी न किसी पर तो पहले पहल कुछ-न-कुछ लादी ही जाएगी। परन्तु हमें यह बोझ प्रसन्नतापूर्वक उठाना चाहिए। और यदि हम इस बोझ को प्रसन्नतापूर्वक उठाएँगे तो हमें यह बोझ बोझ प्रतीत न होगा। बच्चा अपनी माँ के पेट से तो कोई भाषा, वेश, धर्म, संकृति आदि को अपने साथ लाता ही नहीं। यदि हम विचार करें तो माँ अपनी भाषा, वेशभूषा, धर्म और संस्कृति आदि को अपने बच्चे पर पहले पहल लादती है और कुछ दिनों के बाद वह बच्चा उस भाषा, वेश, धर्म और संस्कृति आदि को स्वाभाविक रूप से अपनी समझना प्रारम्भ कर देता है। उसी प्रकार यदि आज भारतमाता अपनी सन्तान पर अपनी एक भाषा लादना चाहती है तो उन्हें इसे अपना गौरव ही समझना चाहिए। भारतमाता के लिए उन्हें इस बोझे को सहर्ष उठाना चाहिए। कुछ समय बाद वे बिलकुल स्वाभाविक रूप से इस भाषा को अपनी ही समझना प्रारम्भ कर देंगे। वह उनके जीवन का अंग वैसे ही बन जाएगी जैसी आज उनकी मातृभाषा है।

चर्चिल-ट्रुमेन मिलन

इंगलैण्ड के प्रधान मंत्री श्री चर्चिल ने हाल ही में अमेरिका के राष्ट्रपति श्री ट्रुमेन से भेंट की थी।

जब श्री चर्चिल ने प्रधान नेतृत्व स्वीकार किया तो उन्होंने इस ओर संकेत किया था कि वे शीघ्र ही राष्ट्रपति ट्रुमेन और हो सके तो स्तालिन से भी भेंट करेंगे। चर्चिल मंत्रिमण्डल के सम्मुख अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्न हैं। सब से जटिल समस्या मध्यपूर्व की है। ईरान के तैल-कूपों का राष्ट्रियकरण तथा वहां से अंग्रेज व्यक्तियों का निष्कासन अन्तर्राष्ट्रिय कलह का कारण बना हुआ है। मिश्र में अंग्रेज़-विरोधी भावनाएँ बल पकड़ती जा रही हैं, जिनसे अंग्रेज अपरिचित नहीं हैं। इन प्रश्नों का निपटारा अंग्रेज़ों को शीघ्र ही करना पड़ेगा, किन्तु चर्चिल और उनके साथी उतावले हो कर कुछ करना नहीं चाहते।

संसार ने यह समाचार भी बड़ी प्रसन्नता के साथ सुना है कि श्री स्तालिन तीन बड़ों की बैठक में सम्मिलित होने के लिए रूस से बाहर जाने के लिए तैयार हैं। अब एक ऐसे स्थान की खोज की जा रही है जहाँ तीनों बड़े मिल सकें। संभवतः यह भेंट आगामी दो मासों में सम्पन्न हो जायगी।

इस समय संसार में दो भावनाएँ साथ साथ चल रही हैं। कुछ व्यक्ति ऐसे हैं जो युद्ध से प्रेम करते हैं और जिन्हें शान्ति पसन्द नहीं है। वे नई भावनाओं से घृणा करते हैं और बीते हुए युग को फिर से लाना चाहते हैं, जिससे शोषण और दमन का चक्र अबाध गति से चलता रहे। ये लोग तृतीय विश्वयुद्ध को निमंत्रित करके मानवता को सदा के लिए नष्ट कर देना चाहते हैं जो गत दो विश्वयुद्धों में बहुत क्षत-विक्षत हो चुकी है।

दूसरी ओर बहुत-से ऐसे लोग हैं, पूरी जनता हैं, जो किसी भी प्रकार के युद्ध को पसन्द नहीं करते। वे दो विश्वयुद्धों का परिणाम देख चुके हैं और इसीलिए युद्ध के नाम से उनके रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

दुनिया बहुत बड़ी है, करोड़ों व्यक्ति इस दुनिया में रहते हैं। यह स्वाभाविक है कि इस दुनिया में प्रतिदिन अनेक समस्याएँ सामने आएँ, किन्तु यह भी उतना ही

स्वाभाविक है कि हम इन समस्याओं का हल शान्ति के साथ करें।

गत दो तीन मास से जो समाचार आ रहे हैं उन से प्रतीत होता है कि लोग युद्ध की विभीषिका से बचना चाहते है। कोरिया का युद्ध रुक गया है और दोनों दल इस समय बातचीत में लगे हुए हैं। दोनों दल इस संघर्ष का निपटारा इसी बातचीत से करना चाहते हैं। तीन बड़ों का सम्मिलन इस दिशा में किया जाने वाला एक अच्छा प्रयत्न है। इन तीनों व्यक्तियों के पीछे बहुत बड़ी शक्ति है।

जनता यह चाहती है कि युद्ध की तैयारियों में जो सम्पत्ति, बुद्धि और श्रम खर्च किया जा रहा है, यदि उसका विनियोग मानव की उन्नति और भलाई में किया जाय तो इस संसार को एक स्वर्ग के रूप में परिणत किया जा सकता है। आज सभ्य समाज के पास साधनों की कमी नहीं है और समस्त साधन मानव की भलाई में लगने ही चाहिएँ।

विश्व कोष

मलयालम के कुछ साहित्यिकों ने मिल कर एक अच्छा अनुष्ठान प्रारंभ किया है। इन साहित्यिकों ने मिलकर मलयालम भाषा में विश्वकोष तैयार करने का निश्चय किया है। इस दिशा में कार्य आरंभ हो चुका है और आशा की जा रही है कि आगामी तीन वर्षों में विश्वकोष का काम पूरा हो जाएगा।

कन्नड भाषा के साहित्यिक भी इस प्रकार का अनुष्ठान करना चाहते है। इन प्रयत्नों की सफलता प्रत्येक साहित्यिक चाहेगा।

प्रान्तीय भाषाओं में किये जाने वाले इन अनुष्ठानों से हिन्दी के साहित्यकार भी प्रेरणा प्राप्त कर सकते हैं। इस सम्बन्ध में मराठी भाषा का उल्लेख करना भी उपयुक्त होगा। आज से बीस वर्ष पूर्व मराठी में विश्वकोष तैयार किया गया था। इस विश्वकोष की रचना बिना किसी सरकारी सहायता तथा संस्थाओं के आश्रय से डाक्टर केतकर ने की थी। व्यक्तिगत रूप से डाक्टर केतकर का यह प्रयत्न जल्दी ही सफल हुआ और आज इस विश्वकोष के कारण ही मराठी भारतीय भाषाओं में बहुत ऊँचा स्थान रखती है। एक प्रसिद्ध मराठी लेखक ने विचार व्यक्त किया है कि यदि मराठी में एक भी पुस्तक न होती और केवल हमारा ज्ञानकोष ही होता तब भी हमें किसी प्रकार की लज्जा अनुभव न होती।

मराठी के बोलने वाले तीन करोड़ से अधिक नहीं हैं। कन्नड़ और मलयालम भाषा के बोलनेवाले भी इस से अधिक नहीं, फिर भी इन भाषाओं के साधकों ने जनता के भरोसे अपना कार्य शुरू किया। मराठी-भाषी जनता ने जिस उदारता से ज्ञानकोष की रचना में सहायता दी और जिस तरह इस विशाल ग्रन्थ को खरीदने में जनता ने अपनी सुरुचि का प्रदर्शन किया वह इस दिशा में प्रेरणा प्रदान कर सकती है।

हिन्दी के बोलने वाले बीस करोड़ से अधिक माने जाते हैं, किन्तु इस प्रकार का कोई प्रयत्न नहीं हो रहा है। लखनऊ से "विश्व भारती" का प्रकाशन शुरू हुआ था और इस प्रकाशन से हिन्दी का गौरव भी बढ़ा किन्तु पांच-छः भाग प्रकाशित होने के बाद यह प्रकाशन बन्द हो गया। विश्व भारती के प्रकाशक इस समय पुस्तकें प्रकाशित कर रहे हैं जो विद्यालयों में आसानी से खप सकें। यदि हमारी जनता की ओर से इस प्रकाशन को प्रोत्साहन मिलता तो यह सत्प्रयत्न पूर्णतया सफल हो सकता था। इसी प्रकार यदि जनता हिन्दी में विश्वकोष जैसी उपयुक्त ग्रन्थ चाहती है तो उसे मराठी भाषी जनता का अनुकरण करना होगा। इस बारे में हिन्दी-सेवी विद्वान् भी इन भाषाओं के साधकों से बहुत कुछ सीख सकते हैं।

प्रौढ़ शिक्षा

भारत के अन्य राज्यों की तरह हैदराबाद ने भी अपने यहाँ प्रौढ़ शिक्षा का कार्य आरंभ किया है। इस कार्य के लिए एक नये विभाग की स्थापना हुई है, एक विशेषज्ञ को बुलाया गया है और काम को आगे बढ़ाने के लिए एक परामर्श देनेवाली समिति भी बनाई गई है।

सभी राज्यों के शिक्षा-विभाग कम आयु के बालकों

को शिक्षित करने के लिए अल्प मात्रा में ही क्यों न हो, प्रयत्न कर रहे हैं। किन्तु अब यह अनुभव किया जाने लगा है कि शिक्षा-विभाग प्रौढ़-शिक्षा पर भी ध्यान दे। प्रौढ़ों को साक्षर बनाना देश के विकास के लिए अधिक आवश्यक है। हैदराबाद सरकार ने इस दिशा में पग बढ़ाया है, इस लिए वह अभिनन्दनीय है।

प्रौढ़ों को साक्षर बनाना संभवतः बालकों को साक्षर बनाने से अधिक कठिन है। बालकों को ज़बर्दस्ती पाठशाला में भेजा जा सकता है, किन्तु बड़े बूढ़ों के साथ इस प्रकार की ज़बर्दस्ती नहीं की जा सकती। पढ़ने के लिए प्रौढ़ों में रुचि उत्पन्न करनी होगी। इस तरह प्रौढ़-शिक्षा के साथ साथ प्रचारात्मक कामों की बड़ी आवश्यकता है। रुचि उत्पन्न होने पर उस रुचि को स्थायी बनाने की आवश्यकता है। श्रीगणेश के साथ ही यह रुचि समाप्त हो सकती है। छोटा बच्चा बार बार प्रयत्न कर सकता है और अपने साथी तथा अध्यापक की लाञ्छना सह सकता है, किन्तु वयस्क व्यक्तियों से इस बात की आशा नहीं की जा सकती। इस स्थिति में वे जल्दी ही हिम्मत हार जाएँगे। सब से बड़ा प्रश्न समय का है। दिन भर काम करने के बाद प्रौढ़ व्यक्तियों के मनोरंजन तथा विश्राम का समय भी वही होता है जब कि उन्हें वर्गों में जाना पड़ता है। घरेलू कार्य और शारीरिक थकान इस बात के लिए विवश करते हैं कि प्रौढ़ व्यक्ति घर में रहें।

यदि प्रौढ़ों को शिक्षित बनाया भी जाय तो उनकी इस शिक्षा को बनाये रखना भी एक समस्या है। पढ़ना-लिखना सीख कर भी प्रौढ़ व्यक्ति अपनी साक्षरता को जल्दी ही व्यर्थ कर सकता है।

इन सब समस्याओं को सुलझाने के लिए निम्न लिखित कार्यों की अत्यन्त आवश्यकता है:

(१) प्रौढ़ शिक्षा के काम में राजकीय कर्मचारियों की अपेक्षा उन लोगों का सहयोग प्राप्त किया जाय जिन लोगों ने सार्वजनिक सेवा को अपने जीवन का ध्येय बनाया है।

(२) जो बड़े-बूढ़े साक्षी बनते हैं उन्हें सार्वजनिक रूप से पुरस्कृत किया जाय और समाज में उनकी स्थिति आदरणीय बनाई जाय।

(३) प्रौढ़ शिक्षा के वर्ग उस मौसम में चलाए जाएँ जब किसान या मज़दूर बेकार रहते हैं। समय स्थानीय सुविधा के अनुसार रखा जा सकता है। प्रौढ़ शिक्षा में समय की पाबन्दी पर अधिक ज़ोर न दिया जाय। वर्गों के बारहों महीने चलने की आवश्यकता नहीं। ये वर्ग उस समय चलें जब प्रौढ़ लोग उन से लाभ उठा सकें।

(४) प्रौढ़ लोगों के लिए शिक्षा वर्ग हों, न कि शिक्षा वर्ग प्रौढ़ लोगों पर शासन चलाने लगें।

(५) शिक्षा-वर्गों में समय समय पर मनोरंजक कार्यक्रम हों। उन्हें मौखिक रूप से उपयोगी बातों की शिक्षा दी जाय और प्रस्तुत समस्याओं की अच्छी जानकारी दी जाय। यह जानकारी भाषण के रूप में न हो कर संवाद के रूप में हो सकती है। जानकारी देते समय उनकी प्रतिक्रिया से परिचय पाना भी अच्छा होगा। होली-दीवाली के अवसर पर प्रौढ़ों की मनोरंजक कार्यक्रम रखने के लिए प्रेरित किया जाय।

(६) शिक्षा-वर्गों में काम करने की छूट दी जाय। यदि शिक्षा-विभाग या ग्राम-सुधार विभाग वहां कुछ घरेलू उद्योग शुरू करे तो अधिक लाभ होगा। वैसे किसान या मज़दूर अपने घर का काम भी वहाँ कर सकता है।

(७) प्रौढ़ लोगों के लिए प्रत्येक वर्ग में कुछ मासिक, साप्ताहिक और दैनिक पत्र अवश्य आयें। इस वाचनालय के कारण उनकी साक्षरता टिकी रह सकती है और वे पुस्तकों के बिना भी, जिन का खरीदना उन के बस की बात नहीं है, प्रति दिन सभी विषयों की जानकारी लेते रहेंगे। कुछ ऐसे पत्र भी हों जिनमें प्रौढ़ों के लिए विशेष स्तंभ रखे जाते हों।

हैदराबाद का प्रौढ़-शिक्षा-विभाग इन बातों पर आचरण कर के उस उद्देश्य को प्राप्त कर सकता है, जिससे प्रेरित होकर उसकी स्थापना की गई है।

* * *

कार्य-विवरण

परीक्षाओं की प्रगति

सभा द्वारा सञ्चालित परीक्षाएँ फरवरी मास में हो रही हैं। इन परीक्षाओं में अधिक से अधिक संख्या में परीक्षार्थियों को सम्मिलित करने की प्रार्थना गत मास सभा के परीक्षा-मंत्रीजी ने की थी। इस प्रार्थना पर केन्द्र व्यवस्थापकों तथा प्रमाणित प्रचारकों ने तुरन्त ध्यान दिया, राज्य में इस समय चुनाव आन्दोलन के कारण कार्यकर्त्ता पूरी शक्ति से हिन्दी का काम नहीं कर सके फिर भी उन्हें आशा से अधिक सफलता मिली है। अगस्त मास की परीक्षाओं में लगभग नौ हज़ार परीक्षार्थी सम्मिलित हुए थे, किन्तु यह संख्या इस बार अठारह हज़ार से अधिक पहुँच गई। इस तरह परीक्षार्थियों की संख्या में शत प्रतिशत की वृद्धि कर के सभा के कार्यकर्त्ताओंने एक अच्छा आदर्श उपस्थित किया है।

इस संख्या नें यह भी प्रमाणित किया है कि राज्य की जनता हिन्दी सीखने के लिए कितनी लालायित है। आज प्रत्येक स्थान से अध्यापक और कार्यकर्त्ता भेजने की मांग आ रही है। इस बार परीक्षाओं में जो विद्यार्थी सम्मिलित हो रहे हैं उन में अधिक संख्या उन विद्यार्थियों की है जो ग्रामों में रहते है। हमारे कार्यकर्त्ताओं के कारण हिन्दी का काम ग्रामीण क्षेत्रों में व्यापक होता जा रहा है।

अनुकरणीय कार्य

सभा के औरंगाबाद कार्यालय के सञ्चालक श्री रेवाशंकर दुबे और उनके साथियोंने हिन्दी पढ़ाने का नया तरीका अपनाया है। इस कार्य के लिए आठ-दस व्यक्तियों का दल तैयार हुआ है। ये व्यक्ति राजकीय तथा निजी पाठशालाओं के अध्यापक हैं। छुट्टी के दिन ये लोग औरंगाबाद से बाहर चले जाते हैं और दिन भर आस-पास के गाँवों में हिन्दी प्रचार का काम करते हैं। उस दिन गाँव से बाहर किसी पेड़ की छाया में कथा शुरू होती और लोग हिन्दी पढ़ते हैं। ग्रामीणों के साथ दिन भर रह कर ये लोग सन्ध्या के समय औरंगाबाद लौट आते हैं। इस तरह औरंगाबाद से बीस-पच्चीस मील दूर तक के गाँवों में हिन्दी का काम शुरू हुआ है। इन कार्यकर्ताओं के कारण ग्रामों में शिक्षा का प्रचार ही नहीं बढ़ा है नई नई प्रवृतियाँ भी उत्पन्न हो रही हैं जो नये जीवन का परिचय देती हैं।

शाबास आदिलाबाद

हिन्दी का काम आदिलाबाद में बहुत पीछे शुरू हुआ और आज यह ज़िला दूसरे ज़िलों से आगे निकल रहा है। आदिलाबाद ज़िले में प्रति वर्ग मील दस व्यक्ति भी नहीं रहते जब कि नलगोंडा ज़िले में यह संख्या छः सौ से अधिक है। यह ज़िला घने जंगलों से घिरा है और पहाड़ी श्रृंखलाओं से भरा है। यह ज़िला आदिलाबावासियों का घर है। इस ज़िले में सभा के उत्साही कार्यकर्त्ताओं ने बड़ी तेज़ी से काम शुरू किया है। इस समय आदिलाबाद नगर ही नहीं दूर दूर के गांवों में हिन्दी की निःशुल्क पढ़ाई चल रही है। इन वर्गों में पढ़नेवालों की संख्या दो हज़ार से अधिक हैं। आदिवासियों ने अपनी भाषा के लिए नागरी लिपि अपनाई है और इस लिपि में उन के पढ़ने योग्य साहित्य तैयार किया जा रहा है। सभा द्वारा सञ्चालित परीक्षाओं में इस वर्ष इस ज़िले से एक हज़ार विद्यार्थी सम्मिलित हो रहे हैं।

तीन नई पुस्तकें

साहित्य-विभाग उच्च कोटि के साहित्यिक ग्रन्थ तैयार करने में लगा है। जून-जुलाई तक हिन्दी में लगभग चार सौ पृष्ठों का ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है, जिसमें तेलुगु भाषा और साहित्य का विस्तृत इतिहास दिया जा रहा है। इस प्रकार मराठी भाषा तथा साहित्य का इतिहास भी पूरा हो चुका है और प्रेस में जा रहा है। कन्नड़ भाषा और साहित्य का इतिहास तैयार हो रहा है।

≈≈≈≈

PRINTED AT THE OSMANIA UNIVERSITY PRESS—HYDERABAD No. 7.

शीघ्रता कीजिए! शीघ्रत कीजिए!!

नूतन वर्ष का उपहार

❋

"समय चूकि पुनिका पछिताये"

हिन्दी प्रेमियों एवं पुस्तकालयों के लिये शुभ अवसर

हिन्दी की उत्तमोत्तम पुस्तकों के सेट

लगभग ४०% कमीशन पर

हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा

हैदराबाद से

शीघ्र प्राप्त कीजिये

निम्न प्रकार श्रेणी का चुनाव कर नम्बर के साथ केवल १) भा. मु. अग्रिम व्ही. पी. से या पूरा मूल्य डाक व्ययसहित भेज कर माँग लीजिये।

संच १
१. गाँधी डायरी
२. स्वाधीननता की चुनौती
३. रामचरित-मानस
४. बच्चों की पहेलियाँ
कु. मू. १४॥=)। हा.
दे. मू. ७॥≡) भा.
डा. व्य. ॥)

संच २
१. गाँधी डायरी
२. साधना के पथ पर
३. अजायब घर
४. गाँधी प्रार्थना
कु. मू. ८॥=)॥ हा.
दे. मू. ४॥) भा.
डा. व्य. ॥-) भा.

संच ३
१. गाँधी डायरी
२. आधुनिक हिन्दी शब्दकोश
३. गाँधी आश्रम प्रार्थना
४. रामायण के उपदेश
कु. मू. ९।≡) हा.
दे. मू. ५।≡) भा.
डा. व्य. ॥=) भा.

संच ४
१. गाँधी डायरी
२. भारतीय मजदूर
३. मिचौती भय्या
४. गाँधी आश्रम प्रार्थना
कु. मू. ८॥-) हा.
दे. मू. ४॥=) भा.
डा. व्य. ॥) ,,

संच ५

१. गाँधी डायरी
२. रवींद्र साहित्य
३. इतिहास की पाँच नई कहानियाँ
४. गाँधी आश्रम प्रार्थना

कु. मू. ६॥=)॥ हा.
दे. मू. ४-) भा.
डाक व्यय ।॥) ,,

संच ६

१. गाँधी डायरी
२. मालिक और मज़दूर
३. वीर बहादूर
४. गाँधी आ. प्रार्थना

कु. मू. ५॥=) हा.
दे. मू. ३॥-) भा.
डाक व्यय ।॥≡) ,,

संच ७

१. गाँधी डायरी
२. कोई शिकायत नहीं
३. वीर बालक आल्हा ऊदल
४. हिन्दी इंग्लिश टीचर

कु. मू. १२।-) हा.
दे. मू. ६।≡) भा.
डाक व्यय ।॥-) ,,

संच ८

१. गाँधी डायरी
२. विनोबा के विचार
३. मिचौंनी भया
४. गाँधी आ. प्रार्थना

कु. मू. ६।-) हा.
दे. मू. ३।॥= भा.
डाक व्यय ॥≡) ,,

संच ९

१. गाँधी डायरी
२. पाक विज्ञान
३. हिन्दी इंग्लिष टीचर
४. खेल की तानें

कु. मू. ९)॥ हा.
दे. मू. ५।≡) भा.
डाक व्यय ।॥-) ,,

संच १०

१. गाँधी डायरी
२. नव जीवन
३. नटखट रिहा
४. गाँधी आ. प्रार्थना

कु. मू. ७॥≡)॥ हा.
दे. मू. ४॥-) भा.
डाक व्यय ।॥-) ,,

संच ११

१. गाँधी डायरी
२. बटोही
३. सुनै का नार
४. गाँधी आ. प्रार्थना

कु. मू. ५।=)॥ हा.
दे. मू. ३।=) भा.
डाक व्यय ॥≡) ,,

संच १२

१. गाँधी डायरी
२. विभावरी
३. मूसर चन्द्र
४. गाँधी आ. प्रार्थना

कु. मू. ५॥-)॥ हा.
दे. मू. ३॥-) भा.
डाक व्यय ॥≡) ,,

संच १३

१. गाँधी डायरी
२. त्यागपत्र (जैनेन्द्र)
३. साहसी सुरेश
४. गाँधी आ. प्रार्थना

कु. मू. ५=)॥ हा.
दे. मू. ३।-) भा.
डाक व्यय ॥≡) ,,

संच १४

१. गाँधी डायरी
२. निर्मला (प्रेमचन्द)
३. पागल
४. निश्वास

कु. मू. ६॥≡) हा.
दे. मू. ४=) भा.
डाक व्यय ॥≡) ,,

संच १५

१. गाँधी डायरी
२. गाँधी साहित्य
३. घिस्सू पिस्सू
४. निस्वास

कु. मू. ६॥-)॥ हा.
दे. मू. ४-) भा.
डाक व्यय ।॥-

विशेष सूचना :-

कु. मू.=कुल मूल्य
दे. मू.=देय मूल्य

दिनांक १-१-५२

व्यवस्थापक
पुस्तक विक्री विभाग

★ १९५२ की गांधी डायरी ★

सस्ता साहित्य मण्डल की सजिल्द **गांधी डायरी** जिसमें प्रत्येक दिन राष्ट्रपिता गांधीजी के आदर्श वाक्य अंकित हैं। गांधीजी के सम्बन्ध में जानकारी, उनके मुख्य सिद्धान्त और महत्वपूर्ण ज्ञातव्य बातें।

❁ कपड़े की जिल्द — ❁ सुन्दर छपाई

अपनी प्रति शीघ्र ही मँगवाइये।

हैदराबाद राज्य के लिए एक मात्र वितरक

पुस्तक विक्रय विभाग

हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा, नामपल्ली स्टेशन रोड़, हैदराबाद-द.
फोन नं. ५४५०

पुस्तक विक्रेताओं के लिए कमीशन की व्यवस्था है।

THE PRUDENTIAL CO-OPERATIVE CENTRAL & URBEN BANK LTD.,
Kingsway, SECUNDERABAD-Dn.

★

BRANCH : **HYDERABAD.** PHONE NO. **7195**

TRANSACTS BANKING BUSINESS OF EVERY DESCRIPTION.

Office Safety Facilities In Uptodate Underground Safe Vaults.

A. H. VENKAT RAO B. A., LL. B.,
Honorary Secretary.

L. N. GUPTA, I. A. S.
President.

हिन्दी के उत्तमोत्तम

साहित्य की प्राप्ति

के लिए

—* एकमात्र स्थान *—

हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा

नामपल्ली रोड : हैदराबाद–द०

टेलीफोन नं० ५४५० तार—"हिन्दी"

प्रकाशकः— प्रियबन्धु–हिन्दी प्रेस, हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद–दक्षिण.

अजन्ता

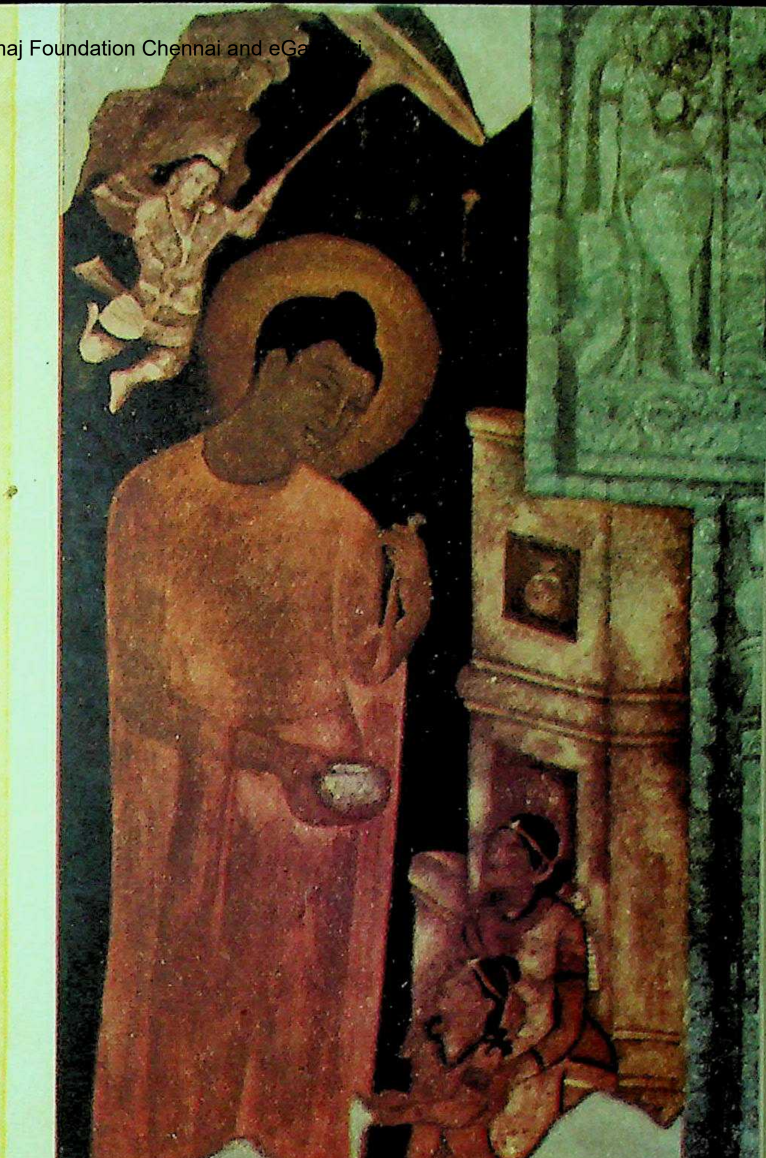

वर्ष ४ मार्च १९५२ अङ्क ३

हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा

इस अङ्क में पढ़िए

श्री डा. सोमनाथ गुप्त
श्री हरिकृष्ण पुरोहित
श्री नलिनीकान्त गुप्त
श्री अलैक्ज़ैंडर फ़ादेयेव
श्री के. सजनलाल
श्री अखिलविनय
श्री हनुमच्छास्त्री 'अयाचित'

श्री डा. सुधीन्द्र
श्री अंचल
श्री सत्यभूषण 'योगी'
श्री रामेश्वरदयाल दुबे

* * * *
* * *
* *
*

अगले अङ्क में पढ़िए

श्री उदयशंकर भट्ट
श्री डा. भगवतशरण उपाध्याय
श्री आदित्य मिश्र
श्री राजेन्द्र यादव
श्री अर्देशिर करसेटजी
श्रीमती तारारानी श्रीवास्तव

श्री सत्यभूषण 'योगी'
श्री अंचल
श्री निशंक

दी
नि
जा
म
शु
ग
र
फै
क्ट
री
[लिमिटेड]

स्फटिकवत्, समरूप, मधुरतम

श्वेत शर्करा

★

जानकारी

विक्रय-विभाग

प्रधान कार्यालय से प्राप्त करें।

* * * *

प्रधान कार्यालय	फैक्टरी
आबिद रोड, हैदराबाद – दक्षिण.	शक्कर नगर निजामाबाद.
केबल तथा तार } "शुगर"	"शुगर" { केबल तथा तार

फोन नं० ४७०४, ४२९६, ४९३७, ४८७६

दी हैदराबाद कन्स्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड

आबिद रोड, हैदराबाद दक्षिण

के

मैनेजिंग एजेण्ट के प्रतिनिधि,

दी निजाम शुगर फैक्टरी लिमिटेड

दी हैदराबाद कन्स्ट्रक्शन कम्पनी लिमिटेड के लिए विक्रय विभाग

THE

Hyderabad Co-operative Dominion Bank Ltd.

[Estd. MARCH 1915]

Telephone : 4610

Telegram : **DOMINBANK**

Sub Offices :

PATHER GATTI,
UNIVERSITY BRANCH
(Adickmet)

Head Office :

SHAHRAH-E-OSMANI
HYDERABAD-DECCAN.

Branches :

JADCHARLA (Dt, Mahboobnagar) THUNGABHADRA PROJECT (Munirabad)

1. CURRENT ACCOUNTS are opened free of charge and interest is allowed at ½% per annum.
2. SAVING DEPOSITES are accepted and interest is allowed at 2% per annum.
3. SPECIAL SAVINGS DEPOSITES are accepted and interest is allowed at 1½% per annum.
4. DRAFTS are issued on all important COMMERCIAL CENTERS and within the HYDERABAD STATE.
5. PENSIONS, MANSABS, etc, are collected on commission basis, premiums remitted & all standing instructions on behalf of the customers carried out.
6. SAFE DEPOSIT LOCKERS & VAULUTS are available at HEAD OFFICE.

BANKING BUSINESS OF EVERY DESCRIPTION TRANSACTED

K. SUNDARAVARADACHARI,
GENERAL MANAGER.

RAI DILSUKH RAM,
CHAIRMAN.

FIRE: ACCIDENT: MARINE:

THE HYDERABAD UNITED INSURANCE CO., LTD.,

SPONSORED BY

THE GOVT. OF HYDERABAD.

Post Box No. 164, Abid Road, HYDERABAD-Dn.

Telegram: ***HUICOL***

Telephone: ***5579***

Chairman:
L. N. GUPTA Esq. I. A. S.,

General Manager:
H. D. MEHTA Esq.,

BRANCHES : *Bombay, Calcutta, Madras, Nizamabad & Manchirial.*

'HIND'

हिन्दी, तेलुगु, मराठी और अंग्रेज़ी की
सब तरह की
उत्तम

★ छपाई ★

के लिए
हमेशा याद रखिये
॥
★ हिन्दी-प्रेस ★
॥
हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा
श्री राम हिन्दी भवन

नामपल्ली ● स्टेशन रोड ● हैदराबाद दक्षिण.

तार का पताः—हिन्दी
टेलीफोनः—५४५०

THE OSMANSHAHI MILLS LTD
NANDED
and
THE AZAM JAHI MILLS LTD
WARANGAL

SECRETARIES, TREASURERS AND AGENTS
THE INDUSTRIAL TRUST FUND
Government of Hyderabad
HYDERABAD-DECCAN.

Manufacturers of
COTTON FABRICS OF OUTSTANDING QUALITY
AND DURABILITY.

For particulars and prices apply to:—

C. S. TYABJEE, Esqr., O. B. E.,
MANAGING AGENT.
159, Gunfoundry Road, Hyderabad-Dn.
Telegrams: "OSMANSHAHI" "AZAMJAHI"
Telephone: 4738

राष्ट्रभाषा

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का मुखपत्र
संपादक
भदन्त आनन्द कौसल्यायन

विषय सूची

१. राष्ट्रभाषा का वार्षिक मूल्य तीन रुपये और एक प्रति का चार आने है।

२. वी. पी. से अंक नहीं भेजा जाता। कृपया मूल्य मनी आर्डर द्वारा भेजें।

३. मनीआर्डर-कूपन में 'राष्ट्रभाषा' का चन्दा भेजने का उल्लेख, ग्राहक का नाम एवं पूरा पता सुवाच्य अक्षरों में लिखा रहना चाहिये।

४. 'राष्ट्रभाषा' फरवरी '५१ से प्रतिमास ता. ९, १० को रवाना की जायेगी।

५. पते में परिवर्तन कम-से-कम छः महीनों के अंकों के लिये करना हो तभी उसकी सूचना कार्यालय को दें। अन्यथा अपने पोस्ट आफिसर से स्थानीय व्यवस्था कर लेनी चाहिये।

६. पत्र व्यवहार करते समय प्रत्येक पत्र में अपना नाम एवं पूरा पता सुवाच्य अक्षरों में लिखें; प्रमाणित प्रचारक, केन्द्र-व्यवस्थापक, राष्ट्रभाषा के ग्राहक—इन शब्दों के साथ अपनी क्रम-संख्या लिखें।

७. 'राष्ट्रभाषा' में प्रकाशनार्थ समाचार प्रान्तीय संचालकों के द्वारा मिलने पर ही उन्हें पत्र में स्थान दिया जा सकेगा।

—व्यवस्थापक

राष्ट्रभारती

भारतीय साहित्य की प्रतिनिधि पत्रिका

साहित्य-संस्कृति-कला प्रधान पत्रिका "राष्ट्रभारती" प्रतिमास आपको भारतीय एवं विदेशी भाषाओं की साहित्यिक-सांस्कृतिक गतिविधि का परिचय देती है। इसमें देश-विदेश के गण्य-मान्य विद्वानों और कलाकारों की श्रेष्ठ रचनाएँ और अधिकृत अनुवाद भी रहते हैं। "राष्ट्रभारती" को राष्ट्रभाषा हिन्दी और लगभग सभी प्रान्तीय भाषाओं के श्रेष्ठ साहित्यकारों का सहयोग प्राप्त है।

★ आज ही ग्राहक बन कर लाभ उठायें ★

—राष्ट्रभारती प्रत्येक मास की १ तारीख को प्रकाशित होती है—
(वी. पी. भेजने का नियम नहीं है। नमूने की प्रति के लिए ।।=) के डाक टिकट भेजें।)

वार्षिक मूल्य ६) **एक प्रति ।।=)**

पताः— व्यवस्थापक "राष्ट्रभारती"

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, हिन्दीनगर, वर्धा (म० प्र०)

अजन्ता के विषय में कुछ पत्र

……'अजन्ता' के लेखों, चयन और प्रकाशन के लिए मेरी बधाई। हार्दिक कामना है कि 'अजन्ता' निरन्तर साहित्य और कला की सेवा करके समाज को आगे बढ़ाए……

—वृन्दावनलाल वर्मा
झांसी

……

……

……'अजन्ता' को देख कर अत्यन्त प्रसन्नता हुई। आपके हाथों जो चीज निकलेगी उसकी कला और सुरुचिपूर्ण होने में कहना ही क्या है……

—सत्यवती मलिक
देहली

……

……

……पत्र का बाह्यांग जितना आकर्षक है उससे कहीं अधिक पत्र का अन्तरंग, सामग्री एवं छपाई-सफ़ाई मनोमुग्धकर जान पड़ी।

……मुझे 'अजन्ता' में सब नया ही नया दृष्टिगोचर हुआ……

—गोपीवल्लभ उपाध्याय
भू. पू. सम्पादक,
चित्रमयजगत्

……

……

……'अजन्ता' को देख कर हिन्दी के भविष्य के प्रति बड़ी आस्था उत्पन्न हो गई है। 'अजन्ता' आज के युग की एक उत्कृष्ट पत्रिका है जिसमें सभी प्रकार की पाठ्य सामग्री उपलब्ध होती है। 'अजन्ता' की कविताओं में नए युग की सहृदय कल्पनाओं एवं लेखों में जिज्ञासा की प्रवृत्तियों के दर्शन होते हैं। पत्रिका की सामग्री के सम्पादन तथा कलेवर सजाने में आपका प्रयत्न, दृष्टिकोण एवं परिश्रम प्रशंसनीय है……

—लक्ष्मीशंकर मिश्र 'निशंक',
एम. ए.
लखनऊ

पंजाब, हैदराबाद और त्रावणकोर राज्यों के शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत

अजन्ता

मासिक पत्रिका

वर्ष ४ मार्च १९५२ अङ्क ३

सम्पादक
वंशीधर विद्यालङ्कार
श्रीराम शर्मा

—: संचालक :—

हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा

अनुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

१. मैंने कब तुमसे प्रेम किया—श्री डा. सुधीन्द्र १
२. निशि ढलने में—श्री 'अंचल' ४
३. दिल चलो वहाँ--श्री वंशीधर विद्यालंकार ५
४. अग्निमीळे पुरोहितम्—श्री सत्यभूषण 'योगी' ६
५. ज्वाला और जल—श्री रामेश्वरदयाल दुबे ७
६. प्रगतिशील राही—श्री रामनिवास जाजू ८
७. सूर की भक्ति भावना के उपकरण
मनोवैज्ञानिक विश्लेषण—श्री डा. सोमनाथ गुप्त ९
८. कला का मार्क्सवादी दृष्टिकोण--श्री हरिकृष्ण पुरोहित १५
(३)
९. कन्नड़ की कुछ कहावतें—श्रीमती आर. माधवी २४
१०. श्री अरविन्द का सन्देश—श्री नलिनीकान्त गुप्त
अनु : श्री श्यामसुन्दर झुनझुनवाला २५
११. लेखन कला—श्री अलेक्जेण्डर फ़ादेयेव
अनु : श्री मंगलकिशोर पाण्डेय ३०
१२. अज्ञेयवाद की झलक—अनु : श्री गोपीवल्लभ उपाध्याय ३५
१३. विराग वासना—श्री मोहितलाल मजूमदार
अनु : श्री वैजनाथ चतुर्वेदी ३९
१४. ग्वालियर की डायरी—श्री के. सजनलाल ४१
(३)
१५. श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा—श्री अखिलविनय
भारत के प्रथम क्रांतिकारी ४७
१६. तेलुगु का शतक-साहित्य—श्री हनुमच्छास्त्री 'अयाचित' ५२
१७. अर्चना के पुष्प—श्री कमला दीक्षित ५८
१८. कशमकश (एकांकी)—श्री प्रमोद वर्मा ५९
१९. चिट्ठी-पत्री—श्री कृष्णराव
श्री गोपीवल्लभ उपाध्याय ६७
२०. नीर-क्षीर—श्री वंशीधर विद्यालङ्कार ७१
२१. सामयिक ७२
२२. सम्पादकीय—श्री वंशीधर विद्यालङ्कार ७७

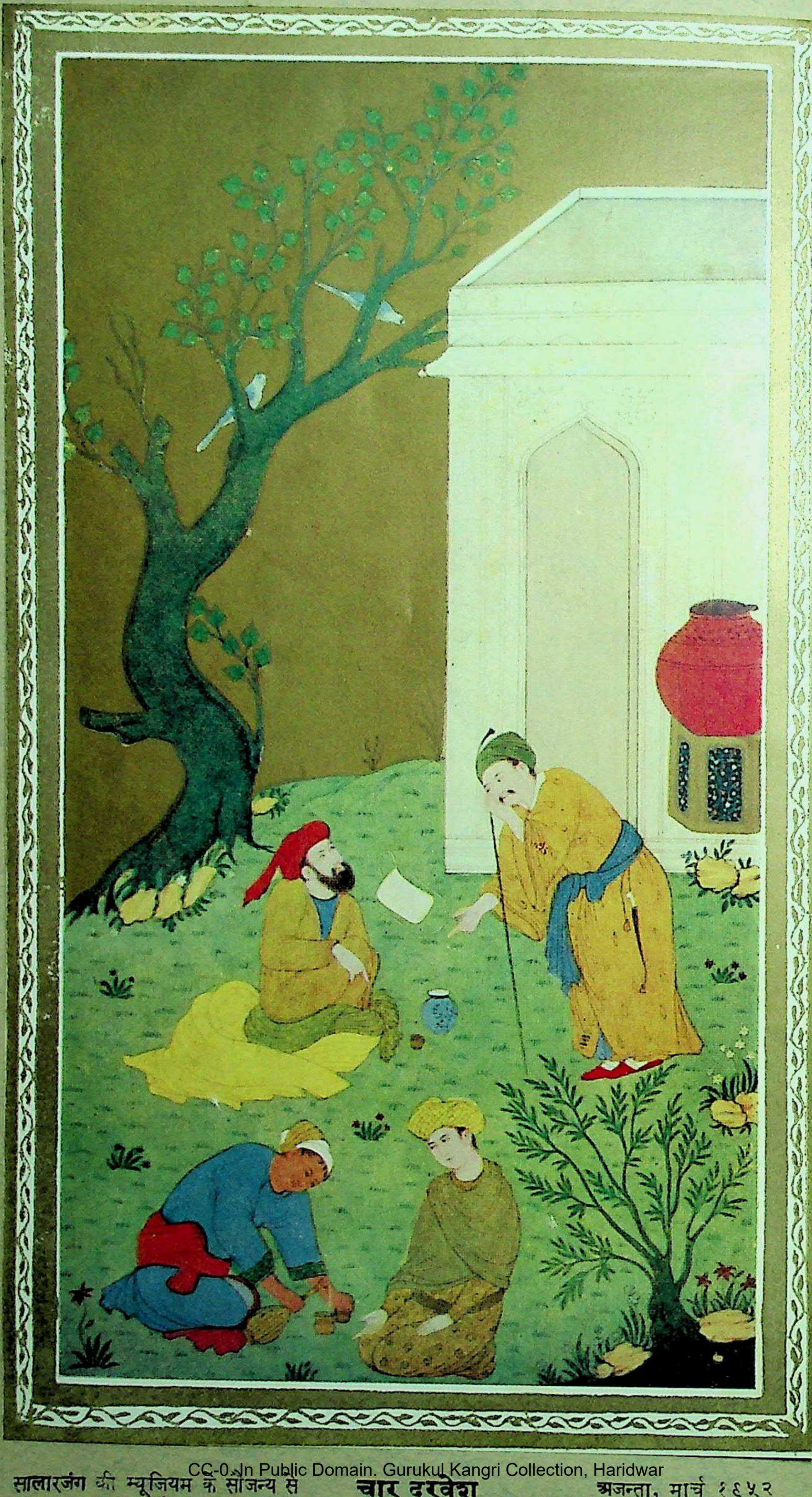

सालारजंग की म्यूज़ियम के सौजन्य से

चार दरवेश

वर्ष ४ | मार्च १९५२ | अंक ३

मैंने कब तुम से प्रेम किया

मैंने कब प्रेम किया तुमसे यह तो कुछ अपने आप हुआ।

इस जग की यमुना के तट पर उस दिन हम एकाएक मिले,
कुछ स्मरण नही आता मैंने देखा भी हो तुमको पहले,
फिर भी दोनों के मन में कुछ उठ आई कसक पुरानी-सी,
कुछ जाग पड़ीं सोई सुधियां कुछ भूली हुई कहानी-सी,
सब कुछ अपना होने पर भी मन कुछ कुछ कहीं भटकता था,
सच कहो अभाव किसी सुख का क्या तुमको भी न खटकता था ?
तन में जो भूली भूख उठी बाहों की भूली प्यास जगा,
हृदयों में कुछ स्पन्दन जागा अधरों में मधु उल्लास जगा,
मानों युग युग से बिछुडों का फिर से हो आज मिलाप हुआ !

संसार बताया करता है क्या प्रेम प्रणय की परिभाषा ?
कुछ मीठी मीठी-सी पीड़ा कुछ मादक मादक सी आशा,
ज्यों ही नयनों से नयन मिले, पुतली में यह पुतली उलझी,
कुछ चित्र खिंचे कुछ राग छिड़ा, कविता की उलझन-सी सुलझी,
मिल गया प्रकृति के अणुओं में अपना कुछ परिचित नाता सा,
वह मलय समीरण जाग चला धड़कन को और बढ़ाता-सा !
धड़कन ने अपने कानों में कह दीं कितनी बीती बातें ?
पुतली में झूम उठे सोने के दिन वे चांदी की रातें !
प्राणों का प्राणों से उस पल परिचित का सा संलाप हुआ !

पंडित ज्ञानी कुछ कहते हैं—कैसे विराट यह सृष्टि बनी,
था एक प्राण, दो हुए जभी दोनों ने इच्छा की अपनी !
हो गया एक ही जब अनेक संसार हुआ, जीवन जागा
जीने की इच्छा लिये हुए प्राणों में मूर्त्त मिलन जागा.
इच्छाओं का ही खेल यहां जीवन में खेला जाता है,
वह उससे मिल कर रहता है जिसका जिससे चिर-नाता है ?
हम एक प्रकृति की इच्छा को पूरी करने को आते हैं,
हम काम किसी का करते हैं यदि अपना मन बहलाते हैं !
प्राणों में प्रेम कामना से जीवन की गति का माप हुआ !

भूखे से पूछो किस सुख के मद में वह गाता जाता हैं ?
शशि से पूछो मन हरने को किसका, वह यों मुसकाता है ?
दीपक से पूछो—वह क्यों लौ के फूल सहेजा करता है !
पूछो प्रसून से किसे सुरभि—संदेशा भेजा करता है ?
लतिका से पूछो, क्यों तरु से वह इतनी लिपटी जाती है !
पृथ्वी यह किसे रिझाने को निशि दिन नर्तन-रत गाती है ?
झरना-शशि, दीपक, या प्रसून, लतिका पृथ्वी तो मनुज नहीं,
फिर भी इन सबके प्राणों में बैठा है प्रेम कहीं न कहीं !
वह प्रेम इन्हें वरदान बना—मानव को क्यों अभिशाप हुआ ?

जाने क्यों मान रही जगती इसको मानव की दुर्बलता !
जाने किस पापी मानव ने गढ़ ली यह पावन नैतिकता !
तन के टूटे, पर टूटेंगे कब मानव के मन के बन्धन !
स्वच्छन्द बने जब मानव मन धरती पर ही उतरे नन्दन ।
काया की क्षुधा तृषाओं पर ये आन्दोलन करनेवालो !
आत्मा की नित्य क्षुधा को भी इस जीवन में देखो-भालो !
झरना पर्वत से बहता है जो सहज सहज चट्टानों में---
कूलों में उसको बांध रहे सरिता कह कर मैदानों में !
आनन्द छिन गया वह उसका, जग का सुख उसका ताप हुआ !

है अचल ठाठ में बाँध लिया मैंने इन अपने गानों को,
फिर भी क्यों लगते हैं मीठे ये इस जगती के प्राणों को ?
मैंने इन गीतों में गाई अपनी जो प्रेम-कहानी है,
जग के जन कहते, हम सब की यह तो जानी-पहिचानी है !
जग का क्या इसमें भला-बुरा, यह दो प्राणों की क्रीड़ा है ।
क्यों अपना हास रुदन उसका, उसका सुख, अपनी पीड़ा है ?
यह क्रीड़ा है ऐसी जिसको करनेवाले भी रोते हैं ।
जो नहीं जानते हैं करना वे चुप चुप आँख भिगोते हैं !
जिसको सब करते प्राणों में वह करना क्या कुछ पाप हुआ ?

है जग का सार सहज जीवन, जीवन का सुख है जीने में
जीवन का मधु-रस मिलता है बस प्रेम-सुधा को पीने में !
हम तो जीवन का ही मधुमय सन्देश सुनाने आते हैं,
पथ की यह भ्रांति मिटाने को मधु गीत प्रेम का गाते हैं !
जग में है मिलनीं सहज कहाँ इस प्रेम-सुधा की दो बूंदें ?
हम क्यों विष पीते रहा करें इस अमृत से आंखें मूंदे ?
जो झुका प्रेम के चरणों में वह महामरण को जीत सका
जो महामरण को जीत सका वह गा जीवन का गीत सका,
यह जीवन-गीत जिसे न मिला यह जीवन उसे विलाप हुआ !
मैंने कब प्रेम किया तुमसे यह तो कुछ अपने आप हुआ ।

वनस्थली **--डा. सुधीन्द्र, एम. ए.**

निशि ढ़लने में............

अब देर नहीं निशि ढलने में

यह राह नहीं मेरी देखी कुछ भय-सा लगता चलने में
अब देर नहीं निशि ढलने में

जीवन से मुझको मोह नहीं कब मैं मरने से घबराता
पर पथ का यह एकाकीपन जैसे मुझको खाये जाता
लहरों में डूब रहा भावी विह्वल है सरिता की धारा
बादल का कोना उठा गगन में जाग उठा प्रभात-तारा
है ज्ञात नहीं अगले पथ पर कितने गह्वर, कितने भूधर

मानव की गति से बैर किये जिनका प्रतिडगप्रत्येक शिखर
पथ के दुःसह सूनेपन में है साथ नहीं मेरे कोई

प्यासे प्राणों में वल भर कर जाग्रत कर दे जो गति सोई
किरणों के सँग चल दूँगा मैं जग के संघर्षों के पथ पर
रजनी भर मन से लिपटी थी जो याद यहीं उसको तजकर
अम्बर में आग लगा जल्दी निकलेगा रवि ज्वालावाही
बढ़ जाऊँगा कितना आगे तब तक मैं प्रगति स्रोत राही

अब देर नहीं निशि ढलने में

जबलपुर

—अंचल, एम. ए

दिल चलो वहां

—

(यह कविता उस्मानिया यूनिवर्सिटी के लेंड स्केप गार्डन में बैठ कर लिखी गई है—ले.)

दिल चलो वहाँ, हैं फूल जहाँ
क्यों बैठे घर में बन्द यहाँ ।

कैसा प्रकाश, कैसी रंगत,
कैसी सुगन्ध, कैसी कुदरत ;
यह धरती है या है जन्नत ।
दिल चलो वहाँ, हैं फूल जहाँ
क्यों बैठे घर में बन्द यहाँ ।

वन वन फूलों का मेला है,
फैला रंगीन उजेला है ;
ऋतुपति रतिपति का चेला है ।
दिल चलो वहाँ, हैं फूल जहाँ,
क्यों बैठे घर में बन्द यहाँ ।

सूरज की किरणें आती हैं,
हँसती हैं और हँसाती हैं ;
सोने में महक मिलाती हैं ।
दिल चलो वहाँ, है फूल जहाँ
क्यों बैठे घर में बन्द यहाँ ।।

नव पल्लव के सिंहासन पर,
बैठे हैं फूल बने ईश्वर ;
कैसी है कोमलता सुन्दर ।
दिल चलो वहाँ, हैं फूल जहाँ,
क्यों बैठे घर में बन्द यहाँ ।।

गाती है मधुपों की टोली,
तितली है खेल रही होली;
मीठी है कोयल की बोली ।
दिल चलो वहाँ है फूल जहाँ,
क्यों बैठे घर में बन्द यहाँ ।।

तुम फिर फिर आँखें खोलोगे,
अपने दुःखों को भूलोगे ;
खुश हो फूलों-सा फूलोगे ।
दिल चलो वहाँ, हैं फूल जहाँ,
क्यों बैठे घर में बन्द यहाँ ।।

हैदराबाद

—वंशीधर विद्यालङ्कार

अग्निमीळे पुरोहितम्

यह यज्ञ रचा है मैंने तुम देव, यहाँ पर आओ !

ये बढ़ती हैं ज्वालाएं
चहुं दिशि प्रकाश फैलाएं
यह काला कुत्सित ईंधन
शुचि उज्ज्वलतम हो जाए
मैं देखूँ तुमको सम्मुख तुम ऐसी ज्योति जगाओ
यह यज्ञ रचा है मैंने तुम देव, यहाँ पर आओ

हो चुकी प्रतीक्षा कितनी
तुम उचित समय के ज्ञाता
वह चिर संकेत तुम्हारा
मुझको है पास बुलाता
अब रखो लाज प्रेमी की प्रिय, तुम ही कदम बढ़ाओ
यह यज्ञ रचा है मैंने तुम देव, यहाँ पर आओ !

क्या माँगूं प्रिय, मैं तुमसे
रमणीय तुम्हारी छवि ही
मेरी अक्षय निधि मधुमय
मैं रहूं तुम्हारा कवि ही
तुम सुनते ही हो सबसे कुछ मुझको आज सुनाओ
यह यज्ञ रचा है मैंने तुम देव, यह पराँ आओ

देहली

सत्यभूषण 'योगी'

ज्वाला और जल

उरमें ज्वाला, नयनों में जल!
विरही के व्याकुल प्राणों को मिल ही जाता इतना सम्बल!

चंचल नयनों की मृदु कीक्रीड़ा
बन जाती अंतर की पीड़ा,
कितनी ही प्रखर बने किरणें, मुरझाता कब है नेह-कमल ?
उरमें ज्वाला, नयनों में जल !

यह प्रेम कोई व्यापार नहीं
नित विजय यहाँ है, हार नहीं,
सुख-दुख कूलों को छू-छूकर बहता जीवन-सरिता का जल!
उरमें ज्याला. नयनों में जल!

जब मस्ती मिली विभूति उसे,
कब हस्ती की अनुभूति उसे,
चिन्ता क्या, बन कर भाप उड़े, जब है समीप जल और अनल!
उरमें ज्वाला, नयनों में जल!

वर्धा

—रामेश्वर दयाल दुबे, एम. ए.

प्रगतिशील राही

जिसको मंज़िल तक जाना है, राही कैसे रुके डगर में।

देवालय में शपथ उठाकर, निर्बलता का नाम मिटाने।
चरण बढ़ाये साहस भर कर, आजीवन संग्राम मचाने॥

मृत्यु मुकुट मस्तक पर रक्खा, जिसने देने हार 'हार' को।
सागर ही मथना है जिसको, क्यों अकुलाये देख धार को?

वीर 'विजय' का रक्षक बनकर, कैसे रख दे खड्ग समर में।
जिसको मंज़िल तक जाना है, राही कैसे रुके डगर में।

सदियों तक कवि करता चिंतन, भावों को भाषा ही देने।
युग की चक्की में पिसता है, युग को एक संदेशा कहने॥

जीवन की अनुभूति समझने, जीवन दल दल-सा कर डाला।
पीड़ित का बन प्रतिनिधि पीता, अभिशापों का घूंट विषैला॥

उसके कंठों के स्वर कैसे, थामे भी थम सके अधर में।
जिसको मंज़िल तक जाना है, राही कैसे रुके डगर में।

देखा है जिसने शोषण भी, देखे शोषक के नग्न भाव।
घोर विषमता में पल पल कर, जो पीता खलते अभाव॥

आंखों में अंगार लिये जो, निकला सच्ची क्रांति मचाने।
वही निकलता विकल घड़ी में, फूटे छालों को सहलाने॥

जो बन ब्रह्म रूप चमकेगा, मानवता के प्रलय पहर में।
जिसको मंज़िल तक जाना है, राही कैसे रुके डगर में।

आज प्रगति की नींद जगी है, झूठे जग से सत्य चुराने।
गाँठ खोलता छिटक प्रणय, कर्त्तव्य राह में बलि चढ़ जाने॥

आज खड़ा युग एक पैर पर, अपना अगला कदम बढ़ाने।
इसीलिये तो चली लेखनी कवि की, उसको मार्ग दिखाने॥

जो बदलेगा वायु विश्व की, उसकी गति क्या रुकी लहर में।
जिसको मंज़िल तक जाना है, राही कैसे रुके डगर में।

पिलानी

—श्री रामनिवास जाजू, एम. काम

सूर की भक्ति भावना के उपकरण : मनोवैज्ञानिक विश्लेषण

परमात्मा और जीवात्मा के सम्बन्ध के ज्ञान को धर्म कहना चाहिए। आत्मा की कुछ विशेष आवश्यकताओं और बुद्धि के प्रभाव से इसका जन्म होता है। सच्चा धर्म तो तर्क और ज्ञान पर अवलम्बित है। अपने चारों ओर पाई जाने वाली अनन्त सत्ता से मनुष्य इसको स्थापित करता है। जातियों और संस्कारों के अनुसार इस सम्बन्ध के अनेक रूप होते हैं। आदर्श ब्राह्मण अपने को ब्रह्म का अंग मान कर उसी में लीन हो जाने को अपना अंतिम ध्येय समझते हैं, बौद्ध धर्मावलम्बी समस्त वासनाओं के अभाव में ही 'निर्वाण' की आशा रखते हैं। परन्तु यह निश्चय है कि मनुष्य में तीन ऐसी शक्तियां हैं जो उसे धर्म की ओर अग्रसर करती हैं. . . अनुभूति, विचार और प्रेरणा।

सूरदास में तीनों का समावेश है परन्तु पहली और तीसरी का प्रस्फुटन उनमें विशेष रूप से हुआ है। सूर के जीवन में अनेक घटनायें घटीं परन्तु उन सब में सब से अधिक प्रभाव महाप्रभु वल्लभाचार्य के सम्पर्क का पड़ा। इसने उनकी विचारधारा को एकदम परिवर्तित कर दिया और 'निराकार' की उपासना करनेवाले सूर 'साकार' का भक्त बन बैठा। अत एव यह स्वाभाविक है कि महाप्रभु के दार्शनिक विचारों में ही सूर के विचारों की पृष्ठभूमि मिलनी चाहिए।

महाप्रभु के दार्शनिक विचारों का विवरण देना प्रस्तुत लेख का अभिप्राय नहीं है परन्तु कुछ मोटी मोटी बातों का ज्ञान अनावश्यक नहीं माना जा सकता। वल्लभाचार्य के श्रीकृष्ण परम ब्रह्म हैं जिनके हाथ और पैर अप्राकृतिक हैं और जिनका शरीर सत्, चित्, आनन्द से मिल कर बना है! उनका नाम पुरुषोत्तम है और उनकी सब क्रीड़ायें अनन्त हैं। वह अपने भक्तों के साथ 'व्यापि-बैकुंठ' में लीलायें करते हैं अत एव कृष्ण 'परमानन्द' हैं। उन्हीं की आज्ञा के अनुसार उनका सत् अंश, आनन्द अंश पर विजय प्राप्त कर लेता है और इस प्रकार वह 'अक्षर-ब्रह्म' का रूप धारण कर सब कारणों का कारण और सृष्टि का रचयिता होता है। यह व्यवस्था सगुण और निर्गुण ब्रह्म दोनों से पूर्ण है। आचार्य जी अक्षर-ब्रह्म के दो भेद मानते हैं :—

१. वह जिसको भक्त लोग पुरुषोत्तम मानते हैं और जिसमें व्यापि-बैकुंठ के सब गुण पाये जाते हैं।
२. वह ब्रह्म जो ज्ञानमय मनुष्यों को सत्, आनन्द और निर्गुण रूप में दिखाई देता है।

पुरुषोत्तम अपने अन्तरयामिन् (Inward Controller) रूप से अवतरित होते हैं। कृष्ण के सत्व गुण से विष्णु, रज से ब्रह्म और तप से शिव का प्रादुर्भाव होता है। जीव अपने शुद्ध ब्रह्म स्वरूप को तभी प्राप्त कर सकता है जब सत्, चित्, आनन्द का आविर्भाव और तिरोभाव दोनों मिट जाते हैं और यह बात केवल ईश्वर के अनुग्रह से ही जिसे 'पुष्टि' कहते हैं प्राप्त हो सकती है। इसी अनुग्रह को प्राप्त करने के लिए वल्लभाचार्य ने एक विस्तृत उपासना मार्ग भी चलाया जिसे 'पुष्टि-मार्ग' कहते हैं।

यों तो वल्लभाचार्य ने कई प्रकार की 'पुष्टि' मानी है परन्तु उन सब में सब से श्रेष्ठ 'शुद्ध-पुष्टि-भक्ति' है। यह भक्ति उन लोगों के लिए है जो केवल प्रेम द्वारा परम-पुरुष में अपने आपको संलग्न कर देते हैं। यह भक्ति परम-पुरुष द्वारा स्वयं भक्त के हृदय में उत्पन्न होती है। इस 'शुद्ध-पुष्टि-भक्ति' का आरम्भ प्रेम से होता है और इस प्रेम की तीन अवस्थायें होती हैं. . . .

१. प्रेम या अनुराग (Love or liking)
२. आसक्ति (Attachment)
३. व्यसन (A havanting Passion)

जिन लोगों में भक्ति इस दशा को पहुंच जाती है वे सामीप्य, सारूप्य, सालोक्य और सायुज्य चारों

प्रकार की मुक्ति का तिरस्कार कर देते हैं और हरि की सेवा में ही रहना चाहते हैं । श्री भागवत का भी यह वचन है....

न किंचित् साधवो धीरा भक्ताह्येकांतिनो मम ।
वांछन्त्यपि मया दत्तं कैवल्यंम नापुनर्भवम् ॥

'मेरे एकान्त भक्त धीर साधुजन कुछ नहीं चाहते, मम प्रदत्त कैवल्य और अपुनर्भव की भी कामना नहीं रखते।"

व्यसन की इस दशा में पहुँच कर भक्त प्रत्येक वस्तु में हरि का दर्शन करता है, उसे प्रत्येक वस्तु प्रभुमय हो जाती है। संसार का आंतरिक और बाह्यरूप उसे पुरुषोत्तममय दिखाई देता है। इसी भक्ति का अन्तिम परिणाम व्यापि-वैकुंठ वासी कृष्ण से मिलन है। भक्त वहां जाकर पशु, पक्षी, नदी आदि का रूप धारण कर कृष्ण की लीलाओं का आनन्द उठाता है। यही वल्लभीय मुक्ति है।

भगवद्भक्तों ने इन्हीं लीलाओं का आरोपण ब्रज और वृन्दावन में किया है। भगवद्भक्त कवि ब्रज में हुई लीलाओं का वर्णन इसी आशय को ध्यान में रख कर करते हैं। पाठकों को उनमें कुछ लौकिकता की गंध आने लगती है परन्तु कवियों का ध्येय, व्यापि-वैकुंठ में होने वाली कृष्ण की लीलाओं का वर्णन कर, भक्तों को प्रेम का आदेश करते हुए, शुद्ध-पुष्टि-भक्ति की ओर उनका ध्यान आकर्षित करना है। सूर का वर्णन इसी भावना और इसी उद्देश्य से भरा है और इसी कारण वह बीच बीच में अपने आराध्य की अलौकिकता की ओर संकेत करते हैं। रासलीला आदि कृष्ण की लीलायें मथुरा के वृन्दावन की लीलायें हैं।*

यहां तक तो हमने संक्षेप में वल्लभाचार्य द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों का ही परिचय दिया है, अब हम यह दिखाने का प्रयत्न करेंगे कि सूरदास जी में ये सब कहां तक पाया जाता है, और किस समय में पाया जाता है।

यदि सूरदास जी का कोई प्रमाणिक जीवन चरित्र मिलता तो इन बातों का निर्णय करने में हमें बहुत सहायता मिलती परन्तु उसकी अनुपस्थिति में हमें केवल उनके प्राप्त ग्रन्थों एवं अनेक किंवदन्तियों का ही सहारा लेना पड़ता है।

साहित्य लहरी के ११०वें पद में लिखा है कि सूरदास के ७ भाई थे जिनमें से ६ जो शाह के सेवक थे लड़ाई करके ब्रह्म लोक को गये और सातवें सूरजचंद थे जो कुएँ में गिर पड़े और जिनका सातवें दिन आकर यदुपति ने उद्धार किया।

सूर के दार्शनिक सिद्धान्तों के समझने में ये घटनाएं बड़ी ही महत्वपूर्ण हैं। सूरदास जी के विनय वाले पदों से यह बात स्पष्ट प्रकट हो जाती है।

परमात्मा का ध्यान करना मनुष्य के जीवन में एक आवश्यक अंग है। देखा जाता है कि जीवन में ऐसी अनेक घटनायें होती हैं जिनके कारण हृदय में एक विरक्ति और वैराग्य का भाव पैदा होता है। जीवन से विरक्ति होने के उपरान्त ही वैराग्य का भाव पैदा होता है और तभी कवि के हृदय से विनय के पद निकलते हैं। सूरदास जी को अपने भाइयों की असामयिक मृत्यु का करुणापूर्ण दृश्य देखना पड़ा था। एक ओर अपने हृदय की प्रवृत्ति और दूसरी ओर यह वेदनापूर्ण घटना। संभव है इन दोनों ने सूर के हृदय को इतना प्रभावित किया कि उनकी काव्य-प्रतिभा जाग उठी और उन्होंने अपने उद्गारों को विनय के रूप में प्रकट कर अपने हृदय को हलका करना चाहा! वैराग्य की चरम सीमा पर पहुंच कर मनुष्य परमात्मा के ध्यान में ही अपने कल्याण की कल्पना करता है। उसी के ध्यान में उसे एक शान्ति मिलती है। अतएव विनय में मिलने वाली शान्ति अथवा आनन्द का विकास इस प्रकार होता है पहले मनुष्य को असंतोष घेरता है और फिर संसार की अनित्यता और अपने को निस्सहाय देख कर वह अपने जीवन से निराश हो जाता है। परन्तु उद्योग करने पर सफलता प्राप्त हो ही जाती है। कुछ दिनों के

---

*देखो भण्डारकर कृत (Vaishnaivaism, Shaivlsm and oteer minor Sects)

पश्चात् जब उसके मस्तिष्क की उत्तेजना कम हो जाती है, उसे कुछ धैर्य होने लगता है और सहसा आशा का टिमटिमाता हुआ धुंधला आलोक दिखाई देने लगता है! उसको इससे भी संतोष नहीं होता और वह अपने लक्ष्य की ओर बढ़ता ही चला जाता है। धीरे धीरे वह उस अवस्था तक पहुंच जाता है जब आदि शक्ति में उसका विश्वास दृढ़ हो जाता है। दृढ़ता की इसी अवस्था में आत्मा और परमात्मा के इसी दृढ़ संबंध में उसे शान्ति मिलती है, उसे अनुभव होता है कि जिस वस्तु की खोज में वह इधर उधर मारा मारा फिर रहा ह वह वास्तव में उसी के पास उपस्थित है।

सूरदास की विनय पदावली को पढ़ने पर भी हम ठीक इसी परिणाम पर पहुंचते हैं। उनके मस्तिष्क का भी इसी प्रकार क्रम विकास हुआ और यह उनके पदों से स्पष्ट है। संसार की असारता, अपने आपको हीन और तुच्छ समझना, साधन होते हुए भी सफल न होना, आशाहीन मन की स्थिति, इसके पश्चात् निश्चयात्मक बुद्धि, फिर दृढ़ता और अन्त में आनन्द ये सब भाव विकास सूर के निम्नलिखित पदों में पूर्ण रूप से व्यक्त हैं...

असारता—

१. जग में जीवत ही को नातो।
मन बिछुरे तनु छार होइगो, कोऊ न बात पुछातो॥
मैं मेरी कबहुं नहीं कीजै, कीजै पंच सुहातो।
विषय असवत रहत निसि वासर, सुख सीरो दुख तातो॥
सांच झूंठि करि माया जोरी, आपुन रूखो खातो।
सूरदास कुछ थिर नहीं रहई, जो आयो सो जातो॥

विरक्ति—

२. हरि हौं सब पतितन पतितेस?
और न सरि करिबे को दूजो, महामोह मम देश॥
आसा के सिंहासन बैठ्यो, दंभ छत्र सिर तान्यो।
अपजस अति नकीब कहि टेरयो, सब सिर आयु सिमान्यो॥
सेवक तृस्ना भ्रमत टहलहित, रहत न छिन विश्राम।
अनाचार सेवक सों मिलिके, करत चवावयु काम॥

अनुराग—

३. हरि बिनु कोऊ काम न आयो।
यह माया झूठी प्रपंच लागि, रतन सो जनम गंवायो॥
कंचन कलस विचित्र चित्र करि, रचि पचि भवन बनायो।
तामें ते तेहि छिन ही काढ़्यो, पल भरि रहन न पायो॥

निराशा—

४. दौ में एको तो न भई।
ना हरि भजे न गृह सुख पाये, वृथा विहाय गई॥
ठानी हुती और कछु मन में, और अवनि ढ़ई।
अविगत गति कछु समुझ परिति नहीं, जो कछु करत दई॥
कहा होत अबके पछताये, होनी सिर बितई।
सूरदास सेये न कृपानिधि, जो सुख सकल भई॥

आशा—

५. करि मन नंद नंदन ध्यान।
सेहु चरन सरोज सीतल तजि विषय रसपान॥
जानु अंव त्रिभंग सुन्दर, कलित कंचन दंड।
काछनी कटि पीत पट द्युति, कमल केसर खंड॥

दृढ़ता—

६. आजु हौं एक एक करि टरिहौं।
कै हम हीं कै तुमहीं माधव! अपुन भरोसे लरिहौं॥
हौं तो पतित सात पीढ़िन को पतितै ह्वै निस्तरिहौं।
अब हौं उगरि नचन चाहत हौं तुम्हें विरद बिनु करिहौं॥
कत अपनी परतीति नसावत, मैं पायो हरि हीरा।
सूर पतित तबहीं लै उठिहै, जब हँसि दैहौ बीरा॥

आनन्द—

७. अपुनपी आपुन ही पें पायो।
सब्दहि सब्द भयो उजियारो, सतगुरु भेद बतायो॥
ज्यों कुरंग नाभि कस्तूरी ढूंढत फिरत भुलायो।
फिरि चेत्यो जब चेतन ह्वै करि आपुनही तनु छायो॥
सूरदास समुझे की वह गति मन ही मन मुसुकायो।
कहि न जाय या सुख की महिमा ज्यों गूंगो गुर खायो॥

सूरदासजी के विनय के पदों को पढ़ने पर हमें उनमें कुछ विशेषतायें और भी प्रतीत होती हैं...

१. इन पदों में प्रायः हरि का नाम आया है। यद्यपि माधव भी एक दो स्थान पर आया है परन्तु इससे हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि माधव नामवाले पद कदाचित् उस समय के हों जब वल्लभाचार्य द्वारा सूरदास जी दीक्षित हो चुके थे।

२. हरि के किसी विशेष रूप की आराधना अथवा उपासना सूरदास जी ने नहीं की है।

३. सूरदास जी की परमात्मा के प्रति दास भाव की भक्ति है।

४. सूरदास जी का अभिप्राय हरि से निर्गुण ब्रह्म से ही प्रतीत होता है यद्यपि यह भाव नहीं है।

संभवतः मन की ऐसी ही परिस्थिति में सूर का वल्लभाचार्य से साक्षात्कार हुआ। आचार्य ने निर्गुण परम्परा वाली सारूप्य मुक्ति की अपेक्षा सायुज्य का चित्र सूर के सामने प्रस्तुत किया। जिस प्रकार वल्लभ की मुक्ति प्रेम के चरमानन्द की दशा है उसी प्रकार उनके उपास्य भी प्रेममूर्ति कृष्ण हैं।

सूरदास जी के हृदय से नैराश्य की स्थिति निकल चुकी थी। भगवान् एक सार वस्तु हैं, संसार को छोड़ कर उनकी उपासना आवश्यक है। यह भाव उनके हृदय में अंकुरित हो गया था। सूर के सामने प्रश्न यह था कि भगवान् के किस रूप की पूजा की जाये? वेदान्त-वाली निराकार उपासना की अपेक्षा भगवान् के अवतारी रूप की कल्पना करना इन आचार्यों के लिए आसान था। अतएव परमात्मा के अनन्त शक्ति अथवा अन्य किसी रूप की अपेक्षा वल्लभाचार्य ने भगवान् का एक नया रूप बाल गोपाल सूर के सामने रक्खा। यह प्रेम का रूप था, अतएव आलम्बन के पूर्ण अथवा अपूर्ण होने की भी शंका की आवश्यकता न पड़ी। सूर के सामने भगवान् का यह ऐसा रूप था जिसमें प्रेम के अतिरिक्त कोई भावना ही न आ सके। सूर अपने इष्ट की प्रेम पूर्ण छवि को देख कर आनन्द से नाच उठे। यह प्रेम का वही रूप था जो प्रातः कालीन सूर्य की रश्मि-राशियों के समान जिस वस्तु पर पड़ता है उसी को चमका देता है। जिस प्रेम की निष्ठुरता में ह्रास नहीं है, अभिमान में अपमान नहीं है, अवस्थाओं में विपर्यय नहीं है, जो प्रेम प्रार्थना का पवित्र मन्दिर है, पूजा की पवित्र मूर्ति है, सूर उसी प्रेम के रंग में सराबोर हो गये। अपने अस्तित्व को मिटा कर सूर अनन्त में लीन हो गये। तल्लीनता की इसी दशा में आ कर सूर ने अपने इष्ट का कीर्तन आरम्भ कर दिया। उन्हें अनुभव हुआ कि सारे ब्रह्माण्ड, देव माया, तृष्णा, प्रकृति, पुरुष आदि सब के सब उनके आराध्य गोपाल के अंश हैं। मिसरी को छोड़ कर भला गुड़ किसे अच्छा लगता है? वल्लभाचार्य के उपदेश का उनके ऊपर जो प्रभाव पड़ा उसका वर्णन सूर ने 'सूरसारावली' के एक पद में किया है...

"सदा एक रस एक अखंडित आदि अनादि अनूप।
कोटि कल्प बीतत नहिं जानत, विहरत युगल स्वरूप॥
सकल तत्व ब्रह्मान्ड देव, मुनि, माया सब विधिकाल।
प्रकृति पुरुष श्रीपति नारायण सब हैं अंश गोपाल॥
कर्म योग पुनि ज्ञान प्रकाशन सब ही भ्रम भरमायो।
श्री वल्लभ गुरु तत्व सुनायो, लीला भेद बतायो॥
ता दिन तें हरि लीला गाई, एक लच्छ पद बंद।
ताको सार सूरसारावली, गावत अति आनंद॥"

सूरसारावली...दोहा १०६८
११०१
११०२
११०३

इस पद में वल्लभाचार्य के द्वारा प्रतिपादित वैष्णव सिद्धान्त की पूरी छाप है। युगल स्वरूप राधा और कृष्ण सदा विहार करते रहते हैं। उनकी क्रीड़ाएँ अनन्त हैं, ब्रह्म, माया आदि उन्हीं के आश्रित हैं, यह सिद्धान्त, जैसा हम ऊपर लिख चुके हैं, वल्लभाचार्य के थे। हमें सूर में भी उन्हीं का आभास मिलता है।

सूरदास जी के पदों को पढ़ कर प्रतीत होता है कि उन्होंने वल्लभाचार्य द्वारा चित्रित बाल गोपाल

प्रकट होता है कि सूर कर्मयोग, ज्ञानयोग और उपासना अर्थात् भक्तियोग...तीनों का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त करने पर वल्लभाचार्य से दीक्षित हुए थे।

के रूप को अंध विश्वास की तरह ही ग्रहण नहीं कर लिया। उनके मस्तिष्क में बहुत कुछ तर्क वितर्क हुआ और अंत में यह देख कर और सोच कर कि निर्गुण रूप की उपासना करना कठिन है, उन्होंने भगवान् के साकार रूप की लीलाओं का वर्णन किया। सूर कहते हैं...

'अविगत गति कछु कहत न आवै।
ज्यों गूंगे मीठे फल को रस अंतर्गत ही भावै॥

परम स्वादु सब ही जु निरन्तर अमित तोष उपजावै।
मन वाणी को अगम अगोचर सो जाने जो पावै॥

रूप रेख गुन जाति जुगति बिनु, निरालंब मन चक्रत धावै।
सब विधि अगम विचारहिं, ताते, सूर सगुन
लीला पद गावै॥"

सूरदास जी निराकार ब्रह्म की सत्ता झूठ नहीं मानते परन्तु जैसा अंतिम पंक्ति से प्रगट है सब प्रकार विचार करने के अनन्तर वह इसी निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि ब्रह्म अगम्य है, उस तक गति होना कठिन है इसलिए सगुण ब्रह्म की लीला के पद गाना ही युक्तियुक्त है। इस लीला का अभिप्राय वल्लभाचार्य द्वारा कथित व्यापि-वैकुंठ की लीला से है, किसी लौकिक लीला से नहीं।

सूरदास जी ने व्यापि-वैकुंठ वाली भावना की ओर कई स्थानों पर संकेत किया है। उदाहरणार्थ कुछ पद नीचे दिये जाते हैं...

मुक्त जीव—

१. चलि सखि तिहि सरोवर जाहिं।
जिहिं सरोवर कमल कमला, रवि बिना विकसाहिं॥

हंस उज्ज्वल पंख निर्मल, अंग मिलि मिलि न्हाहिं।
मुक्ति मुक्ता अंबु के फल, तिन्हें चुनि चुनि खाहिं॥
अतिहि मगन महा मधुर रस, रसन मध्य समाहिं।
पद्मावास सुगंध सीतल, लेत पाप नसाहिं॥
सदा प्रफुल्लित रहैं जल बिनु, निमिष नहीं कुम्हलाहिं।
देख नीर जो छिलछिलो अति, समुझि कछु मन माहिं॥
सघन गुंजत बैठि उन पर, भौंरे हैं विरमाहिं।
सूर क्यों नहिं चलो उड़ि तह, बहुरि उड़िबो नाहिं॥

चित्त बुद्धि संवाद—

२. सुआ! चलि वा बन को रस लीजै।
जा मन कृष्ण नाम अमृतरस, श्रवन पात्र भरि पीजै॥

को तेरो पुत्र? पिता तू काको? मिथ्या भ्रम जग केरो।
काल मंजार लै जैहै तोकों, तू कहै "मेरी" "मेरो"॥

३. सीत उष्ण सुख दुख नहिं माने, हानि भए कछु सोच
न रांचै।
जाय समाय सूर वा निधि में बहुरि न उलटि जगत में नाचै॥

४. हम तो कान्ह केलि की भूखी।
कैसे निरगुन सुनहिं तिहारो बिरहिनि बिरह बिदूखी॥

सूरदास जी सगुण ब्रह्म के उपासक हो चुके थे। निर्गुण उपासना की अपेक्षा सगुणोपासना में क्या विशेषता है, उसका क्या महत्त्व है? इन प्रश्नों के उत्तर सूर ने अपने भ्रमरगीत में गोपियों से दिलवा दिए हैं। उद्धव और गोपियों के बीच जो तर्क वितर्क इस विषय में हुआ है उसे वर्णन करने से पूर्व हम यह कह देना चाहते के उत्तर में मस्तिष्क को चकित करने वाली कोई दलील नहीं है। सूर यहां पर भी दार्शनिक न होकर कवि हैं। उन्होंने हृदय को वशीभूत करने वाली युक्तियों का ही सहारा लिया है, किसी सूक्ष्म तत्व की आलोचना नहीं की है। गोपियां बार बार दोहरा कर एक ही बात कहती हैं, कृष्ण के प्रति अपनी अनन्यहृदयता का परिचय देती हैं, कभी ऊधो पर खीझती हैं, कभी झुंझलाती हैं। अपने प्रिय से सम्बन्ध रखने के कारण, प्रियतम को अनुपस्थिति में प्रेमी की क्या दशायें होती हैं, इन्हीं का चित्रण सूर ने अपने 'भ्रमरगीत' में किया है। हम यहां पर संक्षेप में उद्धव और गोपियों के बीच में जो ब्रह्म की उपासना के विषय में विवाद हुआ था, उसका सारांश देते हैं।

उद्धव निर्गुण का उपदेश देने के लिए ब्रज में आये और कहने लगे...मैं तुम्हें उसी योग का उपदेश देने आया हूं जिसकी साधना साधु और मुनि करते हैं। तुम जिसके विरह में व्याकुल हो वह तुमसे दूर नहीं है, तुम्हारे ही अंतस्तल में उसका निवास है। वह अविनाशी और अविगत है, सारे संसार में छाया हुआ है। उसका

कोई एक निर्दिष्ट रूप नहीं है । तुम अज्ञानवश सगुण को भगवान् समझ बैठी हो । निर्गुण के ज्ञान के बिना भी कहीं मुक्ति हो सकती है ? वेद और पुराण इसके साक्षी हैं । अतएव अब सगुण का ध्यान छोड़ कर अपनी चित्त वृत्तियों को निर्गुण की ओर लगाओ । उसमें तुम्हें शान्ति मिलेगी और तुम्हें मोक्ष की प्राप्ति होगी ।

परन्तु गोपियां उत्तर देती हैं...ऊधो तुम हमें वृथा योग का उपदेश देते हो । मालूम होता है तुमने कभी वेद, पुराण, स्मृति नहीं पढ़ी, कहीं युवतियों के लिए भी योग की शिक्षा है ? या वैसे ही सिखाते फिरते हो । मृग चर्म पहनने, भस्म रमाने, अधारी पर शरीर टेकने और जटा बढ़ने का कष्ट भला कौन उठाएगा ? और वह भी किसके लिए ? जो मिलना कठिन है, जो अगम है, अपार है, अगाध है । आसन, ध्यान, प्राणायाम आदि का खटराग जमाना कौन पसंद करेगा ? माणिक को छोड़ कर कहीं कोई राख का ढ़ेर अपने कंधे पर रखता है ? ऊधो तनिक सोचो तो सुरीली मुरली की ध्वनि की सुन कर क्या कोई उसे बजाने वाले को भूल सकता है ? जिनकी बाहों में अपनी बाहें डाल हमने अनेक खेल खेले उसी को तुम भुला देने का उपदेश करते हो । प्रेम रूपिणी गोपियों को योग रूपी जहरीली बेल खिलाना क्या तुम्हें किसी प्रकार उचित है ? ऊधो हम तुम्हारे पाँव पड़ती हैं, योग की कथा बार बार न कहो । जिन आंखों से हमने कमल नयन को देखा है उन्हीं को तुम मूंद लेने की शिक्षा देते हो...कहां रसरास कहां यह रूखा सूखा ज्ञानोपदेश ? परन्तु जब उद्धव इतना कहने पर भी अपनी ज्ञान चर्चा नहीं छोड़ते तो गोपियां कहने लगती हैं...अच्छा ऊधो जी, तनिक यह तो बताओ तुम्हारा निर्गुण ब्रह्म कौन देश का वासी है, उसके माता पिता कौन हैं ? उसका कैसा वर्ण है, कैसा वेश है ? उद्धव इसके उतर में कुछ नहीं कहते, यह देख कर गोपियां अपने पक्ष को सबल बनाती हुई कहती हैं...जब उनका कोई रूप ही नहीं तो फिर उनकी पहिचान कैसी ? निर्गुण ब्रह्म की सत्ता ऐसी है जैसे बिना तरंग का जल, बिना मोर का चित्र, बिना-बुद्धि का चित । ऐसे निर्गुण से कहीं प्रेम का निर्वाह हो सकता है ? ऊधो जरा सोच कर देखो हमने तो पहले से ही सन्यास ले रखा है । क्या तुमने हममें से किसी को अपनी वेणी गूंथते हुए देखा है ? क्या तुमने किसी को सुन्दर वस्त्र धारण करते हुए देखा है ? हम तो एकाग्र चित्त से केवल एक ओर ही अपना ध्यान लगाये हैं, क्या यह योग नहीं है ? सब ओर से अपने चित्त की वृत्तियों को हटा कर एक ओर लगाना ही योग का मुख्य सिद्धान्त है, हम तो बहुत पहले से ही इसमें दीक्षित हो चुकी हैं ।

जोधपुर

—डॉ सोमनाथ गुप्त, एम. ए.

दो ही स्थानों पर समाजवाद कार्य करता है । एक तो मधुमक्षिका के छत्ते में और दूसरा चिउँटियों के बिल में ।

रीडर्स डाइजेस्ट

कला का मार्क्सवादी दृष्टिकोण

(३)

अक्टूबर मास की 'अजन्ता' पत्रिका में उपरोक्त शीर्षक के अन्तर्गत मेरा एक लेख प्रकाशित हुआ था। बन्धुवर श्री आदित्य मिश्र जी ने उस पर गत मास के अजन्ता में कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न उठाये हैं। सचमुच ही जैसा कि मिश्र जी ने कहा है मैं समझता हूँ "कला का तत्व और है तथा मार्क्सवाद का तत्व और है।" मैं कहना चाहता हूँ अमुक व्यक्ति अमुक सिद्धान्त को मानता है इससे क्या? विरोधी मतों को मानते हुए भी दो भिन्न व्यक्ति श्रेष्ठ कलाकार हो सकते हैं। इसका सीधा सा अर्थ यह है कि कला की अपनी प्रक्रिया होती है। कलाकार जीवन के सत्यों को प्रकट करता है, सिद्धान्तों का प्रचार नहीं। 'जीवन का सत्य' यह एक व्यापक स्थापना है। प्रत्येक व्यक्ति के अपने अनुभव होते हैं। कलाकार उस अनुभव को श्रोता या पाठक के हृदय में पुनर्जीवित कर देता है यह उसकी कला की सफलता है। यह अनुभव एक मार्क्सवादी का भी हो सकता है तथा किसी अन्य मत के मानने वाले का भी। जहाँ तक वह जीवन का अनुभव है, ठीक है। परन्तु यह कैसे स्वीकार किया जा सकता है जीवन को एक विशिष्ट पूर्व-योजना के अनुसार ही देखा जाय? कोई रचना प्रगतिशील है या प्रतिक्रियावादी अर्थात् वह सर्वहारा वर्ग को श्रेणी संघर्ष में बल प्रदान करती है या नहीं। मैं सोचता हूँ कला के बारे में यह कहना अप्रासंगिक (irrelevant) है। देखने की बात यह है अमुक कलाकार की रचना कहाँ तक मानव हृदय को स्पर्श करने में समर्थ है और किन मानवीय तत्वों के आधार पर वह हमारे हृदय को छूती है मिश्र जी ने मानवतावाद का प्रश्न उठाया है इसका विवेचन हम आगे करेंगे। पहले मार्क्सवाद के सम्बन्ध में मूलभूत प्रश्नों पर विचार करना आवश्यक है।

मानव इतिहास को मार्क्स की अत्यन्त महत्वपूर्ण देन क्या है? एंगिल्ज के कथनानुसार मिश्र जी 'इतिहास का भौतिकवादी दृष्टिकोण' और 'अतिरिक्त मूल्यों के द्वारा पूंजीवादी उत्पादन का रहस्य' मार्क्स की देन मानते हैं। उनका तक़ाज़ा है—

> "अब बताइये कि सौ वर्षों में जब कि गंगा का जल इतनी मात्रा में सागर में जा मिला और मनुष्य का ज्ञान बहुत ज्यादह बढ़ गया तो क्या ये दोनों खोजें मिथ्या हो गईं? क्या (Dialectics) के आगे किसी नए ज्ञान का उद्भव हो गया जिसने प्रकृति और समाज की गति को ज्यादह सुन्दरता और सरलता के साथ, समझा दिया? क्या इतिहास का भौतिकवादी दृष्टिकोण पुराना पड़ गया और उसके स्थान पर किसी उससे ऊँचे सिद्धान्त ने अपनी सत्ता जमाली? क्या पूंजीवादी उत्पादन का रहस्य अब कोई दूसरा हो गया है? और अतिरिक्त मूल्य सौ बरस पुरानी चीज़ पड़ गई है? क्या गंगा के जल के साथ साथ पूंजीवाद के आत्म-विरोध भी मुक्त हो गए हैं? क्या पूंजीवाद अपनी क़ब्रों के खोदनेवालों को जन्म नहीं दे रहा है? क्या युग की गति का नेतृत्व विश्व की कर्मठ जनता के हाथों में खिसकता नहीं जा रहा है?"

मिश्रजी के सरल विश्वास के प्रति सम्मान के साथ मुझे यही निवेदन करना है कि इन प्रश्नों के आधार पर मैं समझता हूँ मार्क्सवाद चाहे सम्पूर्णतः ग़लत सिद्ध नहीं हुआ हो (उसमें प्रगति के तत्व हैं, यह मैं स्वीकार करता हूँ) परन्तु अवश्य ही वह एकांगी, अ-सम्पूर्ण है अतः प्रकृति और समाज की गति को स्पष्ट करने में अपर्याप्त है। यहाँ उपरोक्त प्रश्नों पर विचार करने से पहले मार्क्सवाद के प्रगतिशील तत्वों को पहचानना

उचित होगा यद्यपि सम्यक् विवेचन के लिए यह विषय स्वयं स्वतंत्र स्थल की अपेक्षा रखता है।

मार्क्सवादी दर्शन का मूल आधार है—"अस्तित्व हमारी चेतना का आधार है।" जैसा कि मिश्र जी ने कहा है भौतिकवाद, सामाजिक दृष्टि या वर्ग-संघर्ष की विचारणा तो मार्क्स के पहिले भी वर्त्तमान थी। परन्तु मार्क्सवाद का यह मूलभूत सिद्धान्त मानव इतिहास की सृजनात्मक गतिशीलता को स्थापित करता है और यांत्रिक भौतिकवादी या शाश्वत आदर्शवादी दृष्टिकोण के बदले गत्यात्मक जीवन-दर्शन की प्रेरणा देता है। अस्तित्व का अर्थ मनुष्य का भौतिक जगत् से सम्बन्ध मात्र नहीं है वरन् इसके अन्तर्गत मनुष्य की प्रतिक्रिया को भी हमें लेना होगा। भौतिक जगत् से स्थापित मनुष्य का सम्बन्ध विशेष चाहे दी हुई परिस्थिति में पूर्णतः टूट न पाया हो परन्तु, उन सम्बन्धों के प्रति मनुष्य की प्रतिक्रिया बँधी हुई लीकों से भिन्न हो सकती है विशेषतः समाज के अधिक संवेदनशील व्यक्तियों के बारे में यह सत्य है। उन सम्बन्धों को तोड़ने के लिए यह नूतन प्रतिक्रिया सामाजिक रूप धारण कर सकती है। इसी आधार पर समाज में विचार-क्रान्तियाँ उत्पन्न होती हैं। मार्क्स ने बताया है कि मनुष्य के भौतिक जगत् से सम्बन्ध परिवर्त्तित होते हैं और हमारी चेतना उनसे नया संतुलन स्थापित करती है यह निश्चय ही मानव-इतिहास की सृजनात्मक गतिशीलता स्थापित करना है। इस आधार पर मार्क्सवाद मूलतः मजहबी कठमुल्लापन नहीं है। मिश्र जी से मेरा यही निवेदन है कि मार्क्सवाद के कुछ मूल सिद्धान्त हैं यथा "अस्तित्व हमारी चेतना का आधार है।" "दार्शनिकों ने केवल जगत् की व्याख्या की है पर बात है उसको बदलने की" आदि जो "सौ बरसों के बीच में पुराने न होकर नित्य नूतन रूपों में प्रस्फुटित हुए हैं परन्तु, मार्क्स और एंगिल्स ने उन्नीसवीं सदी की पृष्ठभूमि में उन सिद्धान्तों के आधार पर कुछ स्थूल प्रमेयोपपाद्य (Corolleries) स्थापित की जो आज बीसवीं सदी की पृष्ठभूमि में केवल उतनी सही ही नहीं वरन् ग़लत सिद्ध हुई हैं। मार्क्सवाद को मानव इतिहास की पृष्ठभूमि में देखना किसी तरह उसके महत्त्व को छोटा करके नहीं देखना है।

ऊपर 'अस्तित्व' की जो व्याख्या की गई है उसमें सभी मार्क्सवादी कदाचित् सहमत नहीं होंगे। यहाँ तक कि स्वयं मार्क्स भी अस्तित्व को केवल आर्थिक सम्बन्धों का अस्तित्व ही स्वीकार करता है अन्यथा 'इतिहास का भौतिकवादी दृष्टिकोण' किसी तर्क के सहारे स्थापित नहीं किया जा सकता। मिश्र जी कहते हैं कि "पहली खोज (इतिहास का भौतिकवादी सिद्धान्त) की गरिमा द्वंद्वात्मक गति को प्रकृति के क्षेत्र से मानव-समाज के क्षेत्र में भी लाना है।" यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि मार्क्स ने वर्ग-संघर्ष का सिद्धान्त इतिहास का वस्तुगत अध्ययन करके मानव इतिहास के सम्बन्ध में स्थापित नहीं किया वरन् उसने द्वंद्वात्मक भौतिकवाद के सिद्धान्त को इतिहास पर लागू किया है! यही कारण है मार्क्स निश्चय पूर्वक कहता है "सम्पूर्ण समाज का इतिहास वर्ग-संघर्ष का इतिहास है।" मार्क्स इस निर्णय पर अपनी पूर्व स्थापना "अस्तित्व हमारी चेतना का आधार है" के द्वारा पहुँचता है। परन्तु, इस स्थापना से हम कथित निर्णय पर मनोविज्ञान सम्बन्धी एक पूर्व-स्वीकृति (assumption) लिये बिना नहीं पहुँच सकते कि मनुष्य की सभी क्रियाओं की प्रेरणा आर्थिक स्वार्थ है, कम-से-कम उन क्रियाओं की जो इतिहास निर्मात्री होती हैं। वर्ग-संघर्ष का सिद्धान्त उसी सीमा तक सही हो सकता है जहाँ तक यह पूर्व-स्वीकृति सही है। मनुष्य विचार तभी कर सकता है जब कि उसका अस्तित्व हो। इस कथन से यह निष्कर्ष किसी तरह नहीं निकाला जा सकता कि मनुष्य की क्रियाओं की प्रेरणा आर्थिक स्वार्थ है क्योंकि हो सकता है मनुष्य जीवन-यापन की लघुतम आवश्यकताओं को प्राप्त कर आर्थिक स्वार्थों के प्रति उदासीन हो जाय और अन्य विषयों के प्रति आकृष्ट हो जाय। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है। भौतिकवादी दर्शन के लिए यह आवश्यक नहीं कि मनुष्य के क्रिया-कलापों की मूल-प्रेरणा आर्थिक स्वार्थों में देखी जाय। यदि यह पूर्व-स्वीकृति ग़लत है पर आंशिक रूप में सत्य है तो यह ग़लत मनोविज्ञान है

परन्तु, ग़लत दर्शन नहीं । साथ ही यह स्मरण रखना चाहिए कि मार्क्स के युग में मनोविज्ञान का जन्म भी नहीं हुआ था अतः इस सम्बन्ध में मार्क्स का दोष नहीं है ।

मनुष्य केवल आर्थिक प्राणी नहीं है । शताब्दियों से उस समय भी जब कि आर्थिक शोषण अपनी चरम सीमा पर था शोषित जनता वर्ग-संघर्ष में लीन होने के बदले धार्मिक विचारों से प्रभावित होकर शोषक वर्ग का साथ देती रही है और इस लोक से परे स्वर्ग में अपने पुण्य कर्मों के फल की आशा करती रही है । आधुनिक युग में राष्ट्रीयता के नाम पर सर्वहारा-वर्ग की जनता ने जर्मनी में अपने शोषक वर्ग का साथ दिया और देश के नाम पर अपने प्राणों की बलि चढ़ाई । इसके विपरीत उत्पादन के साधनों के अधिकारी वर्ग ने सदैव निश्चित रूप से अपने आर्थिक स्वार्थों के प्रति सजगता दिखलाई हो यह भी आवश्यक नहीं है । वास्तव में क्रान्तिकारी विचारधाराएँ अधिकांश में शोषित वर्ग के बीच उत्पन्न नहीं हुई जो कि निर्धन होने के कारण सांस्कृतिक चेतना से हीन रहता है वरन् धनिक या मध्य-वर्ग के लोगों ने जिनका सम्बन्ध उनके आर्थिक स्वार्थों से नहीं होता, समाज को नई मान्यताएँ दी हैं । इन लोगों ने नई मान्यताएँ ही नहीं दी वरन् उनके लिए संघर्ष भी छेड़ा जिसमें उन्हें शोषित वर्ग का सहयोग कभी कम, कभी अधिक मिला । राबर्ट ओवन किसी मिल का मज़दूर नहीं था और न मार्क्स, एंगिल्स और लेनिन ही सर्वहारा-वर्ग में उत्पन्न हुए थे । गेलीलियो से लेकर आइन्सटीन तक प्रायः सभी वैज्ञानिकों का प्रेरणा-स्रोत आर्थिक स्वार्थों से भिन्न रहा है । तुलसी और प्रेमचन्द ने आर्थिक स्वार्थों से प्रेरित होकर साहित्य-सृजन नहीं किया अन्यथा साहित्य-निर्माण के बदले वे किसी अन्य कार्य को करते तो उन्हें दरिद्रता से अधिक मुक्ति मिल सकी होती । अतः मनुष्य की क्रियाओं की मूल प्रेरणा आर्थिक स्वार्थ नहीं है । वस्तुतः आर्थिक स्वार्थ से प्रेरित होने का अर्थ क्या है ? इसका स्वाभाविक उत्तर यही होगा आर्थिक प्रभुता या मोटे तौर पर धन प्राप्त करना । आर्थिक लाभ की इच्छा सरल सीधी इच्छा नहीं है वरन् उसके अनेक कारण हो सकते हैं यथा आत्म-रक्षा की भावना, प्रभुत्व-कामना, परिवार से प्रेम, आत्म-प्रदर्शन की भावना आदि आदि । अवश्य आर्थिक लाभ की इच्छा का कोई कारण हो उससे आर्थिक स्वार्थ से प्रेरित होने की स्थापना में कोई अन्तर नहीं पड़ता परन्तु उस दशा में हम मानव मन की सूक्ष्म गहराइयों से अनभिज्ञ रहना चाहते हैं! इन सूक्ष्म इच्छाओं की पूर्ति आर्थिक लाभ की ओर प्रेरित न होकर अन्य उपायों से भी हो सकती है । एक व्यक्ति हवाई यात्रा करके आत्म-प्रदर्शन करता है तो दूसरा शहीद होकर भी ऐसा कर सकता है (यह कह कर मैं शहीद होने के महत्व को कम नहीं समझता) । अस्तु, मनुष्य की क्रियाओं की मूल प्रेरणा जब केवल मात्र आर्थिक स्वार्थ नहीं है तो इस पूर्व-स्वीकृति पर आधारित इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या सही नहीं मानी जा सकती ।

यहाँ विचारों के महत्व का प्रश्न उठता है । विचारों की शाश्वत स्वतंत्र सत्ता नहीं है । भौतिक परिस्थितियाँ विचारों को जन्म देती हैं । परन्तु एक बार विचारों की उत्पत्ति हो जाने पर उनका अपने तर्क से विकास होता है और वे भौतिक परिस्थितियों को भी प्रभावित करती हैं । मार्क्सवाद संस्कृति के सभी तत्वों को आर्थिक प्रणाली का ऊपरी ढाँचा मात्र मानता है । उसके अनुसार कला और साहित्य का अपना इतिहास, अपनी गति नहीं है वरन् आर्थिक प्रणाली में सम्बन्धित वर्गों के स्वार्थों की इनमें प्रतिध्वनि मात्र होती है । विचारों की महत्ता को अस्वीकार करके, उन्हें द्वितीय स्थान देकर मार्क्सवाद मनुष्य की क्रियाशीलता के आगे एक बहुत बड़ा प्रश्न चिन्ह लगा देता है । विचारों और भौतिक परिस्थितियों का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है । जब हम किसी विचारधारा के जन्म के कारणों को ढूंढ़ना चाहेंगे तो निश्चय ही हमें उनका भौतिक और आर्थिक आधार मिल जायेगा परन्तु, किसी आर्थिक प्रणाली की व्याख्या करने पर उसके मूल में हम उस विचारधारा को भी पायेंगे जिसने उसे जन्म दिया है । समाज का आर्थिक आधार युग-विशेष के इतिहास को समझने में सहायक होता है । विचारों की महत्ता स्थापित करने का अर्थ यह नहीं कि हम आर्थिक परिस्थितियों के प्रति उदासीन रहें

परन्तु, इसका अर्थ है आर्थिक आधार के साथ विचारों को भी उचित महत्त्व दिया जाय । 'अस्तित्व' का अर्थ मनुष्य के आर्थिक अस्तित्व में ही सीमित नहीं किया जा सकता, विचार भी उस अस्तित्व का एक पहलू है ।

अतः यह आवश्यक नहीं है कि किसी विशेष आर्थिक परिस्थिति में एक निश्चित सभ्यता और संस्कृति का ही विकास हो। संस्कृति, परम्परा, विचार धारा, व्यक्तित्व तथा युग जीवन की आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक परिस्थितियाँ सभी का मानव समाज के विकास में योग होता है । प्राचीन युग में एथेन्स में ग्रीस के अन्य नगर-राज्यों (city states) की तरह आर्थिक आधार समान होने पर भी यदि कुछ चुने-गिने दार्शनिक और कलाकार न होते तो क्या एथेन्स की गौरव-पूर्ण संस्कृति का निर्माण सम्भव था ? यहाँ हमें स्मरण रखना चाहिए कि समान आर्थिक परिस्थितियों के होते हुए भी उस युग के अन्य नगर-राज्य एथेन्स की तरह सांस्कृतिक विकास कर पाने में असफल रहे थे । यद्यपि दास-प्रथा पर आधारित आर्थिक परिस्थितियों ने उन दार्शनिकों के लिए ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी थी कि वे जीवन पर्यन्त दार्शनिक समस्याओं को सुलझाने में लीन रह सकें परन्तु केवल आर्थिक परिस्थितियाँ यह निश्चय नहीं कर सकती कि कहाँ कैसा सांस्कृतिक विकास होगा । अस्तु, इतिहास की गति का निर्णय केवल आर्थिक परिस्थितियाँ नहीं करतीं वरन् उस पर विचारों का भी प्रभाव होता है और यह विचार आर्थिक परिस्थितियों का ऊपरी ढाँचा मात्र नहीं हैं वरन् मनुष्य के अस्तित्व का ही अंग हैं । यदि विचारों का प्रभाव इतिहास की गति पर पड़ता है तो स्पष्ट है वर्ग-संघर्ष इतिहास का एकमात्र तथ्य नहीं है । पूंजीवाद का विश्लेषण करते हुए मार्क्स का कथन है--पूंजीवादी प्रणाली के आत्म विरोध के कारण समाज दो वर्गों में बँट जाता है--सर्वहारा और पूंजीपति । सर्वहारा वर्ग पूंजीवादी प्रणाली का अंत करके वास्तविक समाजवाद स्थापित करता है । परन्तु, मार्क्स के बाद पिछले सौ वर्ष का इतिहास बतलाता है समाज उपरोक्त दो वर्गों में नहीं बँटा है वरन् एक अन्य वर्ग भी जो नगण्य किसी तरह नहीं है मध्यवर्ग के नाम से विकसित हो चला है जो न पूंजीवाद के आत्म-विरोध के कारण उससे समझौता कर सकता है और न सर्वहारा वर्ग की सांस्कृतिक हीनता के कारण उसमें अपने आपको खो सकता है । यह मध्य-वर्ग ही आज सांस्कृतिक स्वतंत्रता का जो मानव स्वतंत्रता का आदर्श है, सबसे बड़ा रक्षक है । तथा सर्वहारा-वर्ग ने पिछले महायुद्ध में जर्मनी में समाजवाद के बदले फासिस्टवाद का साथ दिया है ! कहा जा सकता है इसका कारण सर्वहारा वर्ग को सड़ी गली विचारधारा से पथ भ्रष्ट किया जाना है (इसका अर्थ है सर्वहारा की कोई विचारधारा नहीं !) परन्तु अंततः था तो यह विचारों का प्रभाव ही, आर्थिक परिस्थितियों का परिणाम नहीं। यदि चीन में मार्क्सवादी विचारधारा का अधिक प्रभाव है और इसलिए समाजवाद स्थापित होता है तो यह भी विचारों का प्रभाव है---एक विशेष प्रकार के विचारों के बदले दूसरे प्रकार के विचारों का । अवश्य आर्थिक परिस्थितियों के प्रति असंतोष जर्मनी में भी था और चीन में भी परन्तु, उस असंतोष की प्रतिक्रिया विचारों के प्रभाव से भिन्न रूपों में हुई । मानव इतिहास को वर्ग-संघर्ष के इतिहास के रूप में देखना एक सीमित दृष्टिकोण है । शोषक और शोषित अपने आर्थिक स्वार्थों के लिए सदैव विरोधी कैम्पों में नहीं पाये जाते । इतिहास के निर्माण में विचारों का प्रभाव स्पष्ट है । यह विचार हवाई नहीं होते, उनका सामाजिक आधार भी होता है अर्थात् समाज की वह अवस्था जिसमें अमुक विचार अपील कर सकें । जर्मनी का सर्वहारा-वर्ग रोटी-रोजी चाहता था, हिटलर ने उसकी इन आवश्यकताओं को पूरा किया और देश के नाम पर उसकी भावना को उभाड़ा और सर्वहारा वर्ग देश के नाम पर पर बलि चढ़ गया पूंजीवादियों के शोषण को कायम रखने जिसके लिए मार्क्सने कहा था--A proletariat has no country of his own सर्वहारा का अपना कोई देश नहीं है, कहाँ गया सर्वहारा का आर्थिक स्वार्थ?

एंगिल्स के शब्दों में मिश्र जी कहते हैं--मार्क्स की मानव इतिहास को दूसरी देन है 'अतिरिक्त मूल्य के द्वारा पूंजीवादी उत्पादन का रहस्य ।' कहा जाता

है पूंजीवादी प्रणाली में जितना उत्पादन होता है वह सब उपयोग के लिए नहीं होता । उसका बड़ा अंश पुनः पूंजी के रूप में लगाया जाता है और इस तरह शनैः शनैः पूंजी का विकास होता है । यह पूंजी का विकास श्रमिकों के शोषण पर आधारित होता है और सर्वहारा वर्ग को जन्म देता है जो कि सर्वहारा क्रान्ति का अगुआ होता है ।

अतिरिक्त-मूल्य पूंजीवादी व्यवस्था की ही विशेषता नहीं है । मानव सभ्यता के किसी युग में जितना उपयोग के लिए आवश्यक हो उससे अधिक उत्पादन की सदैव आवश्यकता बनी रहती है अर्थात् जो कुछ उत्पादन होता है वह सम्पूर्णतः उपयोग करना आत्म-घातक है । उत्पादन के विकास के लिए यह आवश्यक है कि पूंजी का कुछ अंश उत्पादन को बढ़ाने के लिए लगाया जाय । अतिरिक्त मूल्य से मार्क्स का आशय पूंजीवादी आर्थिक प्रणाली में उस उत्पादन से है जिसका उपयोग न होकर पूंजी के रूप में उपयोग किया जाय । आर्थिक दृष्टि से अतिरिक्त-मूल्य के द्वारा उत्पादन सामाजिक विकास के लिए नितान्त आवश्यक है । मार्क्स ने अतिरिक्त मूल्य के द्वारा उत्पादन को कभी बुरा नहीं कहा । मार्क्स का आशय यही है पूंजीवादी प्रणाली में अतिरिक्त-मूल्य पर पूंजीपति वर्ग का अधिकार होता है अतः यह श्रमिक वर्ग के शोषण पर आधारित होता है । मनुष्य का मनुष्य के द्वारा शोषण रोकने के लिए आवश्यक है कि इस अतिरिक्त मूल्य पर पूंजीपति वर्ग के बदले सम्पूर्ण समाज का अधिकार हो ।

परन्तु, क्या रूस में जहाँ समाजवाद की आर्थिक व्यवस्था है अतिरिक्त मूल्य के द्वारा उत्पादन नहीं होता ? यदि इसका उत्तर नकारात्मक है तो रूस के जिस समय में हुई औद्योगिक विकास की प्रसंशा के पुल बाँधे जाते हैं उसके उत्पादन का रहस्य क्या कोई दूसरा है ? यदि अतिरिक्त मूल्य के उत्पादन का अर्थ श्रमिकों का शोषण है तो यह शोषण समाजवाद के अन्तर्गत भी होता है ! और रूस में यह शोषण और भी अधिक है जहाँ औद्योगिक विकास के लिए और महायुद्ध लड़ने के लिए अधिकाधिक पूंजी का विकास हुआ है ! समाजवाद को इस दृष्टि से (State Capitalism) 'स्टेट केपिटलिज्म' कहना उपयुक्त होगा । मार्क्सवाद अतिरिक्त मूल्य पर एक वर्ग के अधिकार को हटा कर उस पर दूसरे वर्ग का अधिकार स्थापित करना चाहता है और उसका यह लाड़ला सर्वहारा वर्ग है । परन्तु सर्वहारा वर्ग की तानाशाही होने से ही उत्पादन के साधनों पर सम्पूर्ण समाज का अधिकार नहीं हो जाता । कल-कारखानों को हिटलर ने भी राज्य के अधिकार में लिया था परन्तु इससे श्रमिक वर्ग का शोषण कम नहीं हुआ । वास्तव में यह शोषण तो नष्ट तभी हो सकता है जब उत्पादन के साधनों पर सम्पूर्ण समाज का अधिकार हो और जब तक सर्वहारा वर्ग की तानाशाही स्थापित रहती है (जो रूस में आज भी है) और राज्य-व्यवस्था का निराकरण (Withering of State) नहीं होता तब तक यह नहीं कहा जा सकता मानव का मानव के द्वारा शोषण बन्द हो गया है ।

'अतिरिक्त मूल्य के द्वारा उत्पादन के रहस्य' को प्रकट करते हुए मार्क्स ने पूंजीवाद के आत्म-विरोध को प्रकट किया है इसे मिश्र जी की तरह प्रत्येक प्रगतिशील व्यक्ति मार्क्स की मानव इतिहास को अत्यन्त महत्वपूर्ण देन स्वीकार करेगा । अवश्य, गंगा के जल के साथ साथ पूंजीवाद के आत्म-विरोध उसमें नहीं बह गये हैं । परन्तु (State Capitalism) उस आत्म-विरोध का, श्रमिक के शोषण का अंत कहां करता है ? कल-कारखानों का राष्ट्रीयकरण या समाजी करण मानव समाज के आर्थिक विकास में तभी सहयोगी हो सकता है जब सांस्कृतिक स्वतंत्रता की परिस्थिति देश में हो अन्यथा, तानाशाही फिर चाहे वह सर्वहारा की हो या नात्सीवाद की, समाज को प्रगति की ओर ले जाने के बदले दुर्गति की ओर ही ले जा सकती है ।

यहाँ सांस्कृतिक स्वतंत्रता के प्रश्न के साथ मिश्र जी का दूसरा महत्वपूर्ण प्रश्न सम्बन्धित है । मिश्र जी कहते हैं—"व्यक्ति-स्वतन्त्रता की परिभाषा क्या है? वह किससे स्वतंत्र है? और स्वतंत्र होकर वह समाज की हत्या करता है या उसका निर्माण ?" व्यक्तिगत स्वतंत्रता का नारा व्यापारिक स्वतंत्रता (Laissez-faire) के रूप में पूंजीवाद के आरम्भ में लगाया

गया था। मार्क्सवाद व्यक्ति-स्वातंत्र्य का विरोधी है कह कर मैं पूंजीवाद की व्यक्ति-स्वतंत्रता का हामी नहीं हूँ क्योंकि पूंजीवादी व्यक्ति-स्वतंत्रता का अर्थ व्यापारादि के लिए आर्थिक स्वतंत्रता से ही है। मार्क्सवाद भी मनुष्य को आर्थिक प्राणी के रूप में देखता है। व्यक्ति-स्वतंत्रता का प्रश्न आर्थिक स्वार्थों से परे सांस्कृतिक स्वतंत्रता का है। बचपन में हम लोग एक कविता पढ़ते आए हैं—स्वर्ण पिञ्जर में बद्ध पक्षी स्वतंत्रता के लिए छटपटाता है, पिंजरे में यद्यपि उसे सब प्रकार की सुरक्षा मिलती है परन्तु यह सब त्याग कर वह उड़ना चाहता है, कि शायद उसे बाहर अन्न के लिए मारे मारे भटकना पड़े, झंझावातों का सामना करना हो, पर इससे क्या? यह है स्वतंत्रता की इच्छा इसी स्वतंत्रता के लिए ईसा सूली पर चढ़ गया था, सुकरात ने ज़हर पिया, ब्रूनो ने आग की लपटों का आलिंगन किया, भगतसिंह फाँसी पर झूला, गाँधी ने गोलियों को छाती पर लिया, परन्तु उन्होंने जीवन के अपने अनुभवों को, अपनी आत्मा की आवाज़ को कुचला नहीं जाने दिया। मार्क्सवाद का व्यक्ति के प्रति दृष्टिकोण कितना लचर है! उसके अनुसार व्यक्ति वर्ग या श्रेणी से अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रखता। यही कारण है लेनिन नारा लगाता है (Down with non-party writers)! रूस की कम्युनिस्ट पार्टी कलाकारों पर कितना कड़ा प्रतिबंध रखती है इसका कुछ आभास वहाँ के कलाकारों की आत्म-हत्या (Maiakoffsky), निर्वासन (Pilayak) और संस्थाओं से बहिष्कार (Ramanoff) की सरकारी विज्ञप्तियों से चलता है। पार्टी की विचारधारा का व्यक्ति स्वातंत्र्य पर जो प्रतिबंध होता है उसका चित्रण भूतपूर्व कम्यूनिस्ट लेखक आर्थर केस्टलर अपने उपन्यास (Darkness at noon) के एक पात्र के मुख से निम्न शब्दों में कराता है—

> "The party is never wrong," said Roubachoff. The party is the incarnation of the revolutionary idea in history. We are doing the job of prophets without being equipped with their gift. We have replaced vision by logical deductions.........one proff refutes the other, and in the end we have had to fall back on belief—an anxiomatic belief in the correctness of our own reasoning....The party denies the free will of the individual....the possibility to choose between the solutions....the faculty to distinguish between good and evil."

तब मुझे हिन्दी के प्रगतिवादी कथाकार यशपाल का कथन स्मरण आता है। वे कहते हैं—"कला कला के के लिए सिद्धान्त का नाम लेने पर प्रगतिवादी नाक भौं सिकोड़ते हैं परन्तु यह एक बहुत ही क्रान्तिकारी सिद्धान्त रहा है। जब कला का विकास राजदरबारों में होता था उस समय कला के लिए कहने का अर्थ था कलाकार का विद्रोह कि वह राजाओं के बहलाव या उनकी प्रशंसा के लिए रचनाएँ लिख कर कला के उच्च्व आसन को पतित नहीं करेगा। वह कला का सृजन करेगा कला के लिए।"

तब क्या आश्चर्य है आज कलाकार कम्युनिस्ट पार्टी के पिंजरे में बंद होकर अपनी प्रतिभा को कुंठित होते गवारा नहीं कर सकता। केस्टलर का उपरोक्त उद्‌गार स्वयं उसके व्यक्तिगत अनुभव से दीप्त है!

मिश्र जी कहते हैं "स्वतंत्र होकर वह (व्यक्ति) समाज की हत्या करता है या उसका निर्माण?... किस व्यक्ति की स्वतंत्रता प्रशंसनीय है और किस व्यक्ति की निंदित?" अवश्य सांस्कृतिक स्वतंत्रता पर आधारित व्यक्तिवाद पूंजीवादी व्यक्तिवाद की तरह 'प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए' का अराजकतापूर्ण नारा नहीं है परन्तु, साथ ही 'व्यक्ति का मूल्य समाज के लिए है' के घातक सिद्धान्त का भी विरोध है। समाज तो एक

शब्द बनता जा रहा है ईश्वर, धर्म, राष्ट्र की तरह जिसके नाम पर व्यक्ति की बलि की माँग की जाती है बर्बरता को सभ्य रूप देकर। समाज की वास्तविक मान्यता यही हो सकती है कि वह जीवन में अधिक से अधिक व्यक्तियों के लिए सौख्य की अवस्था उत्पन्न करे। जो समाज जिस अंश तक ऐसा नहीं कर पाता वहाँ तक वह निंदित है। समाज और व्यक्ति के घात-प्रतिघात के बीच आज के अधिनायकत्व के युग में आवश्यकता है कि हम अपनी सारी शक्ति व्यक्ति की रक्षा में लगायें। समाज की व्यवस्था का आधार समाज की इकाई होनी चाहिए। वह इकाई व्यक्ति है। कहा जाता है एक व्यक्ति की स्वतंत्रता का अर्थ दूसरे के लिए घातक सिद्ध हो सकता है। परन्तु जीवन का सत्य केवल संघर्ष ही नहीं है, यदि यह हो तो समाज का निर्माण भी नहीं होता। उदारतापूर्वक विरोधी के विचारों के प्रति कुछ अंशों में समझौते की अवस्था सदैव बनी रहती है। इसके बिना समाज का विकास असम्भव हुआ होता। व्यक्ति समाज की हत्या करता है या उसका निर्माण इस प्रश्न को मैं उलट कर रखना चाहता हूँ—समाज व्यक्ति की हत्या करता है या उसका निर्माण और जो समाज व्यक्ति के स्वार्थों को भुलावा देकर उससे बलि की माँग करता है कि सामाजिक हित के नाम पर वर्ग के छद्म वेष में किसी पार्टी का और पार्टी के छद्म वेष में उसके चोटी के कुछ नेताओं का स्वार्थ सिद्ध होता रहे वह समाज घृणित है और उसके विरुद्ध व्यक्ति-स्वातंत्र्य की भावना ही मानव समाज के मुक्ति का द्वार खोल सकती है। सांस्कृतिक स्वतंत्रता के रूप में किसी भी व्यक्ति की स्वतंत्रता निंदित नहीं कही जा सकती। इसीलिए मैं कहता हूँ "यह नहीं कि मार्क्सवादी रचनाओं का विरोध किया जाना चाहिए..." यह तो अधिनायकत्व की प्रवृत्ति होती है जो स्वतंत्र-विचारकों पर प्रतिबंध लगाये बिना नहीं पनप सकती। हिटलर ने जर्मनी के श्रेष्टतम विचारकों को निर्वासन दिया और उनकी पुस्तकों की होली जलाई। मार्क्सवादी शायद कहना चाहेंगे केवल ऐसे विचारों की स्वतंत्रता होनी चाहिए जो जनता के हित के हों परन्तु जनता का हित निर्णय करने वाला कौन है? नात्सी जर्मनी में यदि सांस्कृतिक स्वतंत्रता होती तो वहाँ नात्सीवाद पनप नहीं पाता क्योंकि मनुष्य का विवेक अंततः विजयी होता है। विरोधी विचारों को प्रतिबंध लगा कर नहीं कुचला जा सकता तथापि सांस्कृतिक स्वतंत्रता होने पर मनुष्य का विवेक ही अंततः विजयी होता है।

कला अंततः व्यक्तिगत सृजन है। अतः व्यक्ति-स्वतंत्रता का लक्ष्य कलाकार की स्वतंत्रता भी है। स्तालिन का कथन है "भाषा सम्पूर्ण समाज की सृष्टि है, वह वर्ग-संघर्ष को अभिव्यक्त नहीं करती वरन् सामाजिक जीवन की मूलभूत एकता और संघटन (Cohesion) की द्योतक है।" यही बात मैं समझता हूँ सम्पूर्ण कला क्षेत्र के बारे में भी सही है। यह सत्य है कि शासक वर्ग उस विचारधारा को प्रोत्साहन देता है जो उसके स्वार्थों की रक्षक हो परन्तु क्या बहुत सा ऐसा साहित्य प्रत्येक युग में नहीं रचा गया है जिसका वर्ग-संघर्ष से सम्बन्ध नहीं था और मानवीय संवेदन के कारण ही वह प्रत्येक वर्ग को अर्थात् सम्पूर्ण मानवता को अपील करता रहा है। वर्ग-संघर्ष को एकमात्र तथ्य मान कर कला की व्याख्या की जा सकती है और तब इस संघर्ष से किसी रचना विशेष का सीधा या परोक्ष सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है परन्तु, इससे कुछ सिद्ध या असिद्ध नहीं होता। मार्क्स की यह स्थापना "जो लिखित साहित्य हमारे पास पहुँचा है वर्ग-विभक्त समाज की उपज है अतः उस पर समाज के वर्ग-भेद की छाप है," साहित्य को संकुचित दृष्टि से देखने के लिए बाध्य करती है। कलाकार जीवन के सत्य को प्रकट करता है। जिस तरह एक वैज्ञानिक पूर्वग्रहों से मुक्त होकर अपने प्रयोग में लीन रहता है उसी तरह कलाकार अपने व्यक्तिगत, जातिगत या वर्गगत स्वार्थों से परे जीवन की वास्तविकता का वर्णन करता है। मान लीजिये एक कलाकार अपने व्यक्तिगत जीवन में सूदखोर बनिया है और जिसको वह पैसे उधार देता है उसके साथ में सख्ती करता है, तो क्या इसी कारण वह अपनी रचनाओं में सूदखोरी का प्रचार करेगा? नहीं, वह निर्वैयक्तिक हो सकता है और जिस रुपये

उधार लेने वाले के साथ में वह वास्तविक जीवन में निर्मम है उसी के प्रति उसकी कला में सहृदयता की झाँकी मिल सकती है। कलाकार कलाकार के नाते सच्चाई को अपनी व्यक्तिगत इच्छा अनिच्छा से स्वतंत्र समझता है। प्रसिद्ध वैज्ञानिक 'डारविन' एक धार्मिक पुरुष था परन्तु अपने वैज्ञानिक प्रयोगों के द्वारा जिस विकासवाद के सिद्धान्त को उसने स्थापित किया वह धार्मिक विश्वासों के लिए विस्फोटकारी सिद्ध हुआ। प्रेमचन्द आदर्शवादी थे। वे सुख और प्रेम के साम्राज्य का स्वप्न देखते हुए जागीरदारों के हृदय परिवर्तन में विश्वास करते थे परन्तु, यह उनकी महानता का कारण नहीं है। उनकी महानता तो भारतीय किसान के जीवन को पूर्ण रूप से जानने के कारण है। भारतीय किसान के अंध-विश्वासों, जागीरदारों, बनियों, ब्राह्मणों और पटवारी से उसके सम्बन्ध को इतनी निकटता से प्रकट करने में है। क्या यह बिल्कुल स्पष्ट नहीं है जीवन के यथार्थ पर अपनी आदर्शवादी विचारधारा को थोपने के कारण प्रेमचन्द की कला को क्षति पहुँची है? और जब विचारधारा ऊपर से नहीं थोपी जाती तो कला का जो रूप निखर उठता है 'गोदान' उसका साक्षी है! कला में महानता एक विशेष विचारधारा को छोड़ कर दूसरी विचारधारा अपनाने से नहीं आ जाती। उसके लिए जीवन की गहराइयों में उतरना होता है सम्पूर्ण संश्लिष्ट मानव जीवन की। टालस्टाय का ईश्वर के न्याय में पूर्ण विश्वास था परन्तु यथार्थ के प्रति आँखें न मूंदने के कारण ही उसने लिखा--"God sees the truth but wait"। ईश्वर न्याय करता है परन्तु ठहर कर--जिसका अर्थ है सच्चाई पर स्थिर रहने वाले मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन दुःख और कष्टों में बीत सकता है! "कलाकार के लिए किसी एक मत या विचारधारा को फिर चाहे वह कितनी ही श्रेष्ठ हो स्वीकार करना उसकी कला की विकृति है" यह कहने से मेरा अभिप्राय यही है किसी स्थिर पूर्व-निर्णीत इसलिए पूर्वगृहीत विचारधारा की स्थापना कला का लक्ष्य नहीं होना चाहिए वरन् कलाकार की आँखें नित्य प्रस्फुटित होने वाले जीवन-कुसुम के सौन्दर्य या मुर्झाने वाले की म्लानता को देखने के लिए सदैव खुली रहनी चाहिए। इसका अर्थ यह नहीं कि कला विचारों को अभिव्यक्ति नहीं करती। मिश्र जी इसका अर्थ निकालते हैं कला विचारशून्य होती है और कहते हैं--"यदि विचार-शून्यता कला है तो सन्निपात सबसे बड़ी कला है" इसके लिए क्या कहा जा सकता है? मिश्र जी से यही निवेदन करता हूँ यह कोई तर्क नहीं। और "युग ऐसा है कि है कि मतपरक हुए बिना..." यह 'इस्लाम खतरे में है,' 'हिन्दूधर्म खतरे में है' के नारे से भिन्न खतरे को घगड़ो किस तरह है? मानवता में अखण्ड विश्वास युग युग में आशा के दीप को प्रज्वलित बनाये रख सकता है।

अतः मार्क्सवादी लेखक जहाँ जीवन के अनुभवों को प्रकट करते हैं उनकी रचनाएँ भी महान् है परन्तु जहाँ वे अपने मत का प्रचार करना चाहते हैं, 'सर्वहारा-वर्ग के उभरते हुए सीने' को दिखाना चाहते हैं वहाँ यह ऊपर ऊपर की कुछ हल्की, थोथी हुई-सी बात लगती है उसी तरह जिस तरह प्रेमचन्द का आदर्शवाद हलका सा जान पड़ता है।

हमारे साहित्य की जड़ें जीवन में गहरी होनी चाहिए। मतपरकता उन जड़ों को काटती है। मिश्रजी कहते हैं "हम यह दावा तो नहीं करते कि प्रत्येक श्रेष्ठ कला मतपरक ही होती है--पर यह अवश्य कह सकते हैं कि जो मत जीवन की प्रगति का नियम हो वह कला को विकृत न कर हर विकृति से उसकी रक्षा करता है।" यह जीवन की प्रगति का नियम क्या है? मिश्र जी के अनुसार यह कदाचित् वर्ग-संघर्ष का नियम है। मिश्र जी से हम यही निवेदन करें जीवन का वृक्ष सदैव हरा भरा रहता है और युग का मत उन पतों की तरह है जो वसंत में खिल कर पतझड़ में गिर जाते हैं! तब प्रगति के नियम को मतपरकता में जकड़ कर बाँध रखना सूखे पत्तों को आँखों से चिपकाये रखना है। जीवन की प्रगति का नियम केवल मात्र आर्थिक स्वार्थों के लिए संघर्ष नहीं है, वह व्यक्ति की सार्वमूलक स्वतंत्रता की चाह है जो आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में व्यक्त होती है। यह भावना स्वभावतया महान्

कलाकार की रचनाओं में प्रकट होती है, सैद्धान्तिकता का बाना पहिन कर नहीं। मिश्र जी कहते हैं—"बिना किसी मत को माने हुए कला के प्रति उत्तरदायित्व की बात कैसे उठ सकती है? ......व्यक्ति-स्वातंत्र्य को यथार्थ मानने वाला मानवतावाद के बंधन को क्यों स्वीकार कर लेता है?" क्योंकि परिवेश से संतुलन स्थापित करने की जैविक आवश्यकता मनुष्य जीवन में उससे उच्चतर स्तर पर स्वतंत्रता की चाह के रूप में प्रकट होती है और यह स्वभावतया कलाकार में भी विद्यमान होती है। कलाकार इसी स्वतंत्रता की भावना को व्यक्त करता है और यही उसके सत्य और न्याय का पक्ष है। मिश्र जी व्यक्ति की सांस्कृतिक स्वतंत्रता को भी एक मत मान सकते हैं परन्तु यह मत अपने सच को सच और अपने न्याय को न्याय कहने वाला मजहबीपन नहीं है। कोई भी विचारणा अंततः व्यक्तिवादी हुए बिना प्रगतिशील नहीं कही जा सकती क्योंकि जाति, समाज, राष्ट्र अपने आप में न-कुछ हैं, उनका आधार समाज की इकाई व्यक्ति ही है। अतः कलाकार की दृष्टि 'मनुष्य' पर केन्द्रित होनी चाहिए। वाल्मीकि ने आर्य जाति के प्रति संवेदनशील होकर, कृष्ण ने कौरवों के विरुद्ध पाण्डवों का पक्ष लेकर, हमारे जातीय और राष्ट्रीय कवियों ने विदेशी सत्ता के विरुद्ध आवाज उठा कर जहाँ तक मानवीय स्वतंत्रता का पक्ष लिया है उनकी कला महान् है। परन्तु इस स्वतंत्रता की हत्या करने वाला समस्त नात्सी-साहित्य घृणित और मरणशील है। अवश्य यह मानवीय स्वतंत्रता हवाई नहीं है। परन्तु मनुष्य को वर्ग और जाति का अभिन्न निर्जीव पुर्जा मत मानिये वह इनका नियामक है और भंजक भी। गीताकार सत्य का पक्ष लेकर पाण्डवों का साथ देते हैं तो क्या 'सत्यमेव जयते नानृतम्' का कौरवों के लिए कुछ भी अर्थ नहीं है? भीष्म का शरीर कौरवों के अन्न से पला होने के कारण उन्हें अर्पित है परन्तु उनका मन जो पाण्डवों के साथ है! महान् कलाकार भीष्म की तरह झूठ के सामने समर्पित नहीं हो सकता। वह उसके अन्न को ठुकरा देगा और सत्य का पक्ष लेगा। इसलिए मानवीय स्वतंत्रता का आदर्श सत्य और न्याय को निरस्त्र नहीं करता वरन् सबल बनाता है। मिश्रजी कहते हैं "कला (मार्क्स के लिए) वहाँ तक साध्य है जहाँ तक समाज की प्रगति का वह साधन बन सके।" इस कथन को और स्पष्टतया यों रक्खा जा सकता है—जहाँ तक पूंजीवादी युग में वह सर्वहारा वर्ग के आर्थिक स्वार्थों का प्रतिनिधित्व कर सके। इसलिए मार्क्स पार्टी-साहित्य को महत्व देते हैं। उसके बाहर रचे जाने वाले साहित्य का वे कोई आधार नहीं मानते। परन्तु सम्पूर्ण विश्व-साहित्य का इतिहास इस स्थापना के विरुद्ध है। आज अधिनायकत्व की प्रवृत्ति के विकास के साथ सांस्कृतिक स्वतंत्रता की रक्षा का प्रश्न अधिकाधिक गम्भीर बनता जा रहा है। मार्क्सवाद सांस्कृतिक मान्यताओं को आर्थिक प्रणाली का ऊपरी ढाँचा मात्रा मान कर समस्या को सुलझाने के बदले और विषम बना देता है। बीसवीं सदी के प्रथम कोटि के कलाकार रोमा रोलाँ का कथन है—"मैं उस अधीनता के वातावरण में नहीं रहना चाहता जहाँ कम्युनिस्ट और बोर्जुआ दोनों अपने अपने ढोल कलाकार के गले में बाँधने के लिए सन्नद्ध हैं।........हम क्रान्ति और प्रगति के साथ रहेंगे परन्तु आजाद मानव बन कर।"

और अंत में "संघर्ष की परिस्थिति न उत्पन्न करते हुए कलाकार मार्क्सवाद से यही संदेश ले सकता है कि वह अपनी ओर व्यक्तिपरकता को छोड़ कर समाज की ओर भी देखे तब वह पाएगा जीवन केवल रुदन या असफलता नहीं और वह देखेगा कि मनुष्य की शक्ति असीम है।" मिश्र जी कहते हैं 'कलाकार' की जगह 'पूंजीवाद' शब्द फिट बैठता है। यह शब्दों के खेल की 'फिट' कुछ बनाती या बिगाड़ती नहीं। पूंजीवाद के आत्म-विरोध को अनदेखा कोई नहीं कर सकता क्योंकि यह एक तथ्य है। मैं केवल यही कहना चाहता हूँ मार्क्सवाद एक सामाजिक दृष्टिकोण देता है। सामाजिक दृष्टिकोण के प्रभाव में पूंजीवादी व्यक्तिवाद निराशा का शिकार होता है। व्यक्ति-स्वातंत्र्य के आधार पर—समाज व्यक्ति के सौख्य के लिए है के सिद्धान्त पर सामाजिक भावना जीवन को सुखी और सम्पन्न बनाती है। परन्तु मनुष्य की असीम शक्ति

वर्ग और मत में बँध कर नहीं वरन् निरन्तर सतर्क रह कर ही प्राणवान् रह सकती है। 'अपलक सतर्कता ही स्वतंत्रता का मूल्य है' और कला जो मानवीय स्वतंत्रता की चाह को अभिव्यक्त करती है कभी मर नहीं सकती क्योंकि स्वतंत्रता मनुष्य का जन्म-सिद्ध अधिकार है और इस अधिकार की रक्षा के लिए सजग विवेकशील मनुष्य निरन्तर प्रयत्नशील रहता है।

—हरिकृष्ण पुरोहित

≈≈≈≈

कन्नड़ की कुछ कहावतें

(१) गादेय मातु वेदक्के समान : कहावत की बात वेद के समान है।
(२) दिल्लिय मूल हक्कि : दिल्ली की जड़ गाँव है।
(३) बसवन हिन्दे बाला ; मदुवेय हिन्दे साला : बैल के पीछे पूँछ ; शादी के पीछे कर्ज़ा
(४) होट्टेगे हिट्टिल्ला, जुट्टिगे मल्लिगे हूऊ : पेट को रोटी नहीं, चोटी को फूल
(५) मनविद्दरे मार्गविदे : जहाँ मन तहाँ मार्ग
(६) माड़िद्दुण्णो महराया : जो करै, सो भोगे
(७) कन्नड़ ओदिदरे कैलास : जो कन्नड़ पदे, सो कैलास जा
(८) कळ्ळन मनस्सु हुळ्ळुळ्ळगे : चोरी का मन गुदगुदा
(९) मंगन कय्यल्लि माणिक्य विद्दंते : बंदर के हाथ में मोती जैसा
(१०) बड़वन कोप दवड़ेगे मूल : गरीब का कोप गाले को बाधा

—आर-माधवी

श्री अरविन्द का सन्देश

एक विशेष दृष्टिकोण से श्री अरविन्द का सन्देश बहुत सरल, प्रायः स्पष्ट जैसा है । वे जो जो कुछ कहते हैं उसका सारांश यह है कि मनुष्य विकसित हो रहा है और उसे अपनी चेतना को विकसित करते जाना है जब तक कि वह अपने व्यक्तिगत ही नहीं, वरन् सामूहिक अर्थात् सामाजिक जीवन में भी समग्र और पूर्ण चेतना तक न पहुंच जाय । वास्तव में चेतना का विकास ही जीवन का परम रहस्य है, पार्थिव विकासक्रम की रहस्य कुंजी है ।

श्री अरविन्द क्रम-विकास में विश्वास करते हैं । उनके अनुसार सृष्टि का एक उद्देश्य है और मनुष्य एक लक्ष्य की ओर अग्रसर हो रहा है । यह चीज़ चेतना के प्रकटन होने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है । आरंभ में सब कुछ जड़ था, केवल मृत जड़ । एक विशेष स्थिति में जड़ से प्राण आया : जो कुछ मृत था या मृत प्रतीत होता था सजीव हो उठा । इस भांति उद्भिद् जगत् का जन्म हुआ. . .यह था चेतना का आदिम आलोड़न, यह चेतना थी अस्पष्ट, अंधी, प्रायः अचेतन-सी, फिर भी वह नव प्राप्त या नव जागृत स्पन्दन से चालित थी । इसके बाद फिर गर्भ धारण और अन्तः पोषण का समय आया जिसके अन्त में मन के अंकुर का जन्म हुआ, यह थी प्रथम सचेतन चेतना । इस प्रकार पशु की उत्पत्ति हुई । यहां चेतना अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट और स्वतंत्र है, यहां वह रूप ग्रहण कर रही है : अब यह एक सहज वृत्ति या संवेदनशीलता जैसी चीज़ है और उसके उच्चतर स्तरों में स्वतः स्फूर्ति विचारशीलता के भी धागे का समावेश है । ऐन्द्रिय मनोवृत्ति ने जन्म दिया शिव शुद्ध मन को अर्थात् विचार चिन्तन को, और मानव प्रकट हुआ । एक पूर्णतया जागृत चेतना, ऐसी चेतना जो स्वयं की ओर अभिमुख हो सके, यही है मानव चेतना की विशेषता ।

चेतना की प्रगति के मार्ग में ये स्थितियाँ आती हैं । ये स्पष्ट देखी जा सकती हैं और प्रायः सब कोई इन्हें मानते हैं । केवल श्री अरविन्द ही इस यात्रा की दो महत्त्वपूर्ण विशेषताओं को दिखलाते हैं । पहली बात यह कि जड़, प्राण, मन, बुद्धि. . .ये विभिन्न या पृथक् इकाइयां नहीं हैं जो एक के बाद एक करके आती हों, एक में दूसरी और दूसरी में तीसरी आकर बस जुड़ जाती हों, न जाने कहाँ से । ऐसा नहीं, क्योंकि 'कुछ नहीं' से कुछ का उद्भव नहीं हो सकता । यदि जड़ से प्राण निकलता, तो इसका कारण यह है कि प्राण जड़ के अन्दर था, जड़ प्राण को छुपाकर रखे हुए था प्राण उसमें निहित था । केवल वही चीज़ बाहर आ सकती है जो कि अन्दर निवर्तित थी । इस प्रकार फिर यदि प्राण से मन निकल आया तो इसका कारण यह है कि मन प्राण के अन्दर निवर्तित था और अत एव जड़ के अन्दर भी था, भले ही और दूरी पर । और फिर भी, प्राणिक मन विशुद्ध बुद्धि और चेतना के रूप में विकसित है, और इसका कारण केवल यही हो सकता है कि यह भी इसका गुप्त स्वभाव था । इस प्रकार यह सारी कड़ी या श्रेणी-बद्धता अटूट रूप से संबद्ध है और इन्हें आपस में जोड़नेवाली वास्तविकता एक ही है--चेतना प्रकट या अप्रकट । वास्तव में, सत्ता के मूल में चेतना ही मूलगत तत्व है । जड़ और कुछ नहीं, अचेतन बनी चेतना ही है, और विश्व की सारी योजना या प्रक्रिया उसी चेतना की बढ़ती हुई अभिव्यक्ति और प्रकटनशीलता है ।

द्वितीयतः दूसरी विशेषता यह है कि इस प्रकार प्रत्येक मंजिल में पहुंचकर योजना की एक उलटी चलने की क्रिया होती है अर्थात् जिस स्तर की प्राप्ति होती है वह अपने पूर्ववर्ती स्तरों की ओर वापस अभिमुख होता है और जहाँ तक संभव होता है अपनी निजी सत्ता के विधि विधान में उन्हें प्रभावित करता और ढालता रहता है । जब जड़ के अन्दर प्राण प्रकट हुआ तब जहाँ कहीं भी जड़ जीवन था, वहां प्राण के हाथों में पड़ कर

जड़ तत्व निष्प्राण जड़ से भिन्न रूप में व्यवहार करने लगा । एक सजीव देह निर्जीव देहों के कड़े यान्त्रिक नियमों से आबद्ध नहीं रहती । इसी प्रकार, जिस प्राण में मन का समावेश है उसकी क्रिया अकेले प्राण से भिन्न होती है और जिस शरीर में प्राण और मन का निवास है, जो शरीर मानों प्राण और मन में पुष्पित होगया है उसकी गति विधि और क्रिया किसी जड़ या सप्राण शरीर से भी भिन्न होती है । मनुष्य की प्रज्ञा और बुद्धि ने उसकी प्राणिक सहज वृत्तियों और रूपों को भी परिवर्त्तित किया है या परिवर्त्तित करना चाह रही है । प्राण की कोई स्वतः स्फूर्त्ति अनियमित गति हो या जड़ तत्व के आधार जैसी कोई यंत्रवत् चकरी चले, इसके स्थान पर एक सचेतन अनुशासन, यहाँ तक कि अपने जीवन और शरीर को एक दूसरे सांचे में ढालना . . .यही है मानव चेतना का सार तत्व, उसकी प्रकृति की प्रेरणा । जड़, प्राण और मन, चेतना के इन तीन प्रदेशों या स्वरों का समावेश मनुष्य ने अपने अन्दर किया है और अपनी चेतना के, अपनी प्रज्ञा के प्रकाश में उनका अध्ययन किया है, उन्हें श्रेणीबद्ध किया है, उन्हें शरीर-विज्ञान, मनोविज्ञान और जीव-विज्ञान (Physics, Biology and Psychology) नामक सुविदित विज्ञानों में सजाया है ।

अब श्री अरविन्द यह कहते हैं कि विकासक्रम ऊर्ध्वमुखी चल रहा है और वह मन से भी परे उठ कर चेतना की एक अन्य स्थिति में जा पहुंचेगा जिसे उन्होंने अतिमानस का नाम दिया है । इस प्रकार पार्थिव योजना में एक नया प्रकार अभिव्यक्त होगा, चेतना की एक महत्तर क्रिया प्रगट होगी और इस नूतन चेतना को प्रमुख सूत्र मानती हुई एक अभिनव कोटि या जाति आविर्भूत होगी । पाषाण और खनिज से पौधों की उत्पत्ति हुई, पौधों से पशु की उत्पत्ति हुई, पशु से मानव की उत्पत्ति हुई और मानव से भी अतिमानव का प्रादुर्भाव होना अवश्यम्भावी है ।

मन के स्तर पर खड़े होकर, मानसिक बुद्धि और प्रज्ञा के आयतन में आबद्ध रहकर, आनेवाली चेतना के प्रकार की कल्पना करना सहज नहीं । यह बात वैसी ही है जिस भांति कि बन्दर के लिए अपने उत्तराधिकारी मानव के प्रादुर्भाव की कल्पना करना कठिन था । किन्तु, मनोभव चेतना अभी वर्त्तमान में जैसी है, उसमें भी भविष्य के कुछ विशिष्ट चिन्हों को उस उच्चतर स्थिति की प्रारंभिक या आंशिक गतियों को देखा जा सकता है : इसी प्रकार बन्दर भी बुद्धि और तर्क की झलक से रहित नहीं था, यहाँ तक कि उसमें युक्ति-युक्त विचार-प्रणाली की वृत्ति की भी झलक थी जो कि मानव का एकाधिकार प्रतीत होती है । उदाहरण के लिये एक ऐसी गति भी है जिसे संबोधि कहा जाता है, वह मानसिक तर्क-बुद्धि से बहुत ही भिन्न है और अपने बहुत से अन्वेषणों और आविष्कारों के लिए वैज्ञानिक और गणितज्ञ भी उसके कृतज्ञ हैं, और एक ऐसी ही और गति भी है जिसे प्रेरणा कहा जाता है, जिसका राज्य कवि और कलाकार में रहता है और उनके सामने सौन्दर्य तथा वास्तविकता का ऐसा जगत् प्रकट करती है जो सामान्य मानव चेतना के लिये प्राप्य नहीं । फिर, विकास-क्रम की सीढ़ी के सिरे पर मानव प्राणियों की एक और श्रेणी है. . .यह श्रेणी है रहस्य-वेत्ताओं और मुनियों की. . .जो सत्य को देखते हैं, दृष्टि की एक ज्योतिमय, अव्यवहित साक्षात्कारिता से सीधे सत्य को अधिकृत किये होते हैं, यह चीज़ है प्रत्यादिष्ट प्रत्यक्ष दर्शन । अब बात यह है कि चेतना की ये सारी क्रियायें जो सामान्य मानवता के प्रदेश में काफ़ी बार होती रहती हैं फिर भी चेतना की एक उच्चतर धारा की अभिव्यक्तियां हैं । यें चीजें मानसिक बुद्धि या तर्कज्ञान की उत्पत्ति या क्रिया नहीं हैं और मानसिक बुद्धि या तर्क ज्ञान ही मानव चेतना का विशिष्ट तत्व है ।

वर्त्तमान में ये चीजें अन्यत्र से आनेवाली झांकियां और झलकें ही है, उन पर मनुष्य का वश या अधिकार नहीं ।ये उसकी अभ्यस्त सचेतन इच्छा शक्ति से बाहर हैं, ये अपनी इच्छानुसार आती हैं और चली जाती हैं, एक दूसरे जगत् से आनेवाली सुखद चीज़ों की भांति ही हैं, वे हममें टिकी नहीं रहतीं, वे हमारी आज्ञा या इशारे के आधीन नहीं । इसके विपरीत, अतिमानस

को उस चेतना पर पूरा अधिकार रहता है जिसकी ये फीकी आरंभिक चीजें और दूर की प्रतिध्वनियां भर ही हैं। अतिमानव का जन्म तब होगा जब मानव मन से ऊपर उठ जाएगा और अतिमानसिक चेतना में उदित होगा।

यहां एक बात कहने की आवश्यकता रह जाती है: वह यह कि मनुष्य से यह आशा की जाती है कि वह सचेतन रूप से निज को अतिक्रमण करे और इस अतिमानवत्व की प्राप्ति करे, क्योंकि इस प्रक्रिया को सचेतन होना है, जागृत इच्छा का उद्यम होना है। इस नये परिवर्तन से जो महान् अन्तर आया है, वह यही है। अब तक विकास-क्रम था एक स्वतः स्फूर्त और प्रत्यक्षतः अचेतन प्रक्रिया, वह धीमे धीमे और असावधानी से चल रहा था जिस प्रकार कि प्रकृति में चीजें सामान्यतः चलती हैं। मनुष्य पशु से निकला: उसने बस एक दिन अपने आपको मनुष्य हुआ पाया, इसके लिये पशु की ओर से कोई सचेतन प्रयत्न नहीं हुआ, आनेवाले परिवर्तन का उसे कोई पूर्व ज्ञान नहीं था। इसी प्रकार पशु भी पौधे से आया था—स्वतः स्फूर्त रूप से, अनजान रूप से, और पौधा भी धीमे परिवर्तन की स्वाभाविक प्रक्रिया के द्वारा ही निर्जीव और निष्प्राण जड़ तत्व से बाहर आया था। किन्तु अब "मानव" की स्थिति में, चेतना पूरी सचेतन, स्व-सचेतन हो गयी है और अत एव इसका भावी आरोहण सचेतन ही होगा, अधिकाधिक सचेतन होगा, सचेतन शक्ति का ही परिणाम होगा। यह है आत्मरूपान्तर की प्रक्रिया। इसकी अपनी एक शैली है, एक विधि है, अपनी सारी योजना है। चेतना का विकास, उसका परिमार्जन और रूपान्तर, यही है समस्त सच्ची शिक्षा का उद्देश्य और लक्ष्य: और इसकी चरम परिणति, इसकी चरम पूर्णता ही योग में, अध्यात्म के आन्तरिकत अनुशासन में अभिप्रेत है।

तो हम यह कहते हैं कि चेतना का अतिमानसीकरण ही प्रकृति का लक्ष्य और मनुष्य के प्रयास का उद्देश्य रहा है, यही वह आत्मा का डग है जो पृथ्वी और मानवता अपने क्रम-विकास की प्रेरणा में भर रही है। तथापि मानव एक बहुत ही महत्वपूर्ण स्थिति प्रदर्शित कर रहा है। वह दो गोलार्द्धों के बीच की, चेतना की दो धाराओं के बीच की, सृष्टि के दो प्रकारों की बीच की विभाजक रेखा है। जैसा मैं कह चुका हूं मनुष्य के आगमन तक विकासक्रम स्वाभाविक, स्वतः स्फूर्त, विवेचन रहित, अचेतन रहा था: मनुष्य के समय से यह विकास-क्रम चेतन, सज्ञान और अभिप्रेत हो गया है। जो काम पर्दे के पीछे अनजान में हो रहा था वह अब खुले में पूरी जानकारी के साथ किया जायगा। इसका सबसे पहला फल यह होगा कि समय कम लगेगा। सचेतन क्रिया गति तेज कर देती है, जिस प्रक्रिया या विकास को अन्यथा शताब्दियां लग जाती या उससे भी अधिक समय लग जाता उसे अब कुछ दशाब्द या वर्ष ही लगते हैं: मनुष्य एक ही जीवनकाल में ऐसा विकास प्राप्त कर लेता है जिसमें सामान्यतः कई जीवन लग जाते। दूसरा विशिष्ट परिणाम यह है कि जब अतिमानस स्थापित हो जाता है तब अज्ञान और बचा नहीं रह जाता, होता है पूर्ण ज्ञान और प्रकाश। तब तक मानसिक लोक, अपनी उच्चतम शिखरों पर भी प्रकाश और अन्धकार का, ज्ञान और अज्ञान का सम्मिश्रण ही रहता है,: सदैव एक संशय, अनिश्चितता या आंशिक दृष्टि का तत्वं बना रहता है, एक टटोलना जैसा चलता रहता है, जांच चलती रहती है और उत्तर बिन्दु पर यही होता है कि हम अधिक घने अन्धकार से कम घने अन्धकार की ओर बढ़ते हैं। अतिमानव के साथ यह सब परिवर्त्तित हो जाता है: अतिमानव सदैव निवास करता है दिन के पूर्ण प्रकाश में, उच्चतम चेतना में, ज्ञान के बाहुल्य में। वह वर्तमान मानवीय चेतना के अन्तर्निहित विभेद और द्वैत में और नहीं बंधा रह जाता है, वह बढ़ता है प्रकाश से प्रकाश की ओर, ज्ञान से ज्ञान की ओर। हो सकता है कि मनुष्य एक ही छलांग में अतिमानस की शिखर तक न पहुंच पाय, क्योंकि कुछ नीचे की शिखरें भी होती हैं। जहां उस प्रकाश की स्वेच्छाकृत सीमायें होती हैं, उस पूर्ण सत्ता के अपेक्षाकृत कम पूर्ण रूप होते हैं जिनके बीच से मनुष्य को निकलना होगा, अपनी प्रकृति को अधिक समृद्ध करने के लिए और पृथ्वी पर आलोकमय जीवन के अन्य

विधानों की स्थापना करने के लिये । इस प्रसंग में श्री अरविन्द ने परमानस और आलोकित मानस की बात कही है । किन्तु ये भी मानसिक अर्द्ध प्रकाश की सीमा से परे हैं और प्रकाश के प्रदेश हैं, अतिमानस के अपने प्रतिनिधि हैं ।

इस अतिमानसिक चेतना की कुछ विशेषताओं का ज़रा सा इंगित कर देना अप्रासंगिक नहीं होगा । प्रथमतः यह चेतना ज्ञान की स्थली और उसका अंग होती है : यहां ज्ञान तर्क की आनुमानिक और निगमन पद्धतियों का परिणाम नहीं होता, यहां प्रश्न के पहलुओं और कोणों को तौल कर अनिश्चित संभावनाओं में से किसी सामान्य संभावना को ढूंढ़ना नहीं होता ; यहां ज्ञान होता है प्रत्यक्ष, सीधा, अव्यवहित, निश्चित और निरपेक्ष । यहां ज्ञान की प्राप्ति होती है एकत्व के द्वारा, ज्ञेय और ज्ञात एक ही होते हैं और अतएव जो कुछ ज्ञात होता है वह आत्म ज्ञान है । दूसरी बात यह है कि यहां इच्छा भी कोई प्रयास या उद्यम और संघर्ष नहीं रहती वरन् वह चेतना की आत्मशक्ति की स्वतः स्फूर्त्त अभिव्यक्ति होती है : इच्छा करने का अर्थ ही होता है प्राप्त करना, तब हम अनिवार्यतः सत्य की ही इच्छा करते रहते हैं क्योंकि वैसी दशा में इच्छा और ज्ञान भी एक ही होते हैं । तीसरी बात यह कि यह स्थिति पूर्ण आनन्द की होती है, क्योंकि उस दशा में हम आंसुओं की जगती को पार कर उस शक्ति में प्रवेश कर लेते हैं जो बुद्धि से परे है, उसे हम प्राप्त कर लेते हैं वह आनन्द ही सृष्टि का मूल है और सत्ता का सत्य भी आनन्द में ही है ।

दूसरे शब्दों में, यह आधारतः सच्चिदानन्द की, सत्-चित-आनन्द की वैदान्तिक स्थिति है, परन्तु विश्व जीवन और सत्ता की मूलगत वास्तविकता होने के लिये उसने व्यक्तिगत रूप लिया है, यही चीज़ भौतिक रूपों और जीवन तथा सत्ता की विधियों और धाराओं में अपने स्वधर्म में : परम विधान के रूप में : अभिव्यक्त और मूर्त्तिमान् होना चाहती है । उस निगूढ़ रहस्य में इससे और आगे जाना संभव नहीं ।

अन्त में एक बात और, और मैं समाप्त करता हूं वह यह कि जिस परम परिणति के संबंध में श्री अरविन्द कहते हैं कि वह आ रही है या उसका आना अवश्यम्भावी है उस परिणति में महत्तर जीवन के लिये किसी भी देश या लोक में किये गये अतीत के समस्त मानवीय प्रधान सहायक रहे हैं । बहुत बार यह कहा जाता है कि मानव प्रकृति असाध्य है, हम सहज वृत्तिमय जीवन को विशेषतः एक सामूहिक प्राणी के नाते सुधारने की कोशिश भले ही करलें, उसके अज्ञान और निश्चेतनता के आदिम पाप का कोई स्थायी या आमूल उपचार नहीं हो सकता, ये चीजें उसकी पार्थिव प्रकृति की छाप हैं । सुधारकों, आदर्शवादियों, संतों और मुनियों ने भी यह बुराई देखी और इसका प्रतिरोध करना चाहा... कुछ ने इससे छुटकारा पाने का प्रयत्न किया, कुछ ने इससे कतरा कर निकल जाना चाहा किन्तु यह बुराई अभी भी सदा की भांति फैली हुई है, मालूम होता है कि उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा है । यहाँ एक कारण यह रहा कि बुराई को उसकी विपरीत चीज़ अच्छाई से सुधारने की कोशिश की गई, किन्तु वह अच्छाई भी चेतना की उसी स्तर की चीज है जिस पर कि बुराई है । अन्य शब्दों में हमने मन को शक्ति द्वारा जगत् पर क्रिया की, भले ही कुछ दशाओं में मन ऊंचे स्तर का या उच्चतम अध्यात्मिक स्तर का भी था । किन्तु हमारे अन्तरतम के नीचे के तन्तुओं में, हमारी जड़ातिजड़ सत्ता में, निष्प्राण निश्चेतना तक में, जो रोग फैल गया है उसकी जड़ को स्पर्श करने के लिये हमें चेतना के स्वयं मूल में, स्रष्टा, सत्य चेतना में पहुंचना होगा; केवल अतिमानस ही पृथ्वी को, पार्थिव जीवन को रूपान्तरित कर सकता है । दूसरे स्थान में, यह बात है कि अतीत के प्रयत्न बिल्कुल व्यर्थ नहीं गए: यह तैयारी थी, यह प्रथम आरंभिक कार्य था, यह कार्य हुआ विभिन्न स्तरों पर और मानव जीवन तथा चेतना के विभिन्न प्रदेशों में जहां जहां उस ने प्रकाश कर पाया था वहां और चीजों और शक्तियों को अन्य शक्तियों और चीजों के प्रवेश के लिये आलोड़ित और उलट पुलट कर दिया गया, और और कुछ नहीं तो कम से कम, एक संभावना की रचना तो हो गई ।

श्री अरविन्द का लक्ष्य, हमने कहा है, कोई व्यक्तिगत सिद्धि नहीं है, चाहे कितनी ही महिमापूर्ण और सफल वह क्यों न हो और न व्यक्ति के किसी अंग की ही सिद्धि है, चाहे वह कितनी ही गम्भीर और उच्च क्यों न हो। श्री अरविन्द ने समग्र मानव और समग्र समाज का आलिंगन किया है। पृथ्वी पर, समाज के अन्दर, परिपूर्ण जीवन,---उच्चतम और पूर्णतम जीवन, जो कि संभव हो सकता है, केवल संभव ही नहीं वरन् मानव प्राणी के लिये अवश्यम्भावी भी है. . . यही है वह कार्य जिसके लिये उन्होंने उद्यम किया। मनुष्य के मन और उसकी बुद्धि को, उसकी प्राण शक्ति को, उसके शारीरिक रूप को, इन सब को ऊपर उठा कर निम्न चीज़ों से विशुद्ध किया जाता है, अतिमानसिक सत्य चेतना के सांचे और ढांचे में फिर से ढाला जाता है: वह एक संपूर्ण, समग्र सर्वांगीण प्राणी है, वह अपने सारे अंगों और गतियों में पूर्ण सत्य, ज्ञान, शक्ति एवं आनन्द को अभिव्यक्त तथा मूर्त्तिमान् करता है। और जब उसका व्यक्तिगत जीवन ऐसा है तो उसका सामाजिक और सामूहिक जीवन भी उसी ढांचे का अनुकरण करेगा। एक नूतन समाज, जिसमें मनुष्य ने अपनी आत्मा और आत्मा के कर्म को पा लिया है, एक सामंजस्यपूर्ण, ऐकिक शरीर होता है जो ऐसे व्यक्तियों से बना होता है जिसमें से प्रत्येक अपनी अपनी आत्मा में निवास करने के नाते सब के अन्दर निवास करता है और सब के अन्दर निवास करने के नाते प्रत्येक अपनी अपनी आत्मा में निवास करता है। इसी प्रकार, ऐसे समाजों का समूह जैसा कि कुछ भविष्यदर्शी जैसे सुर में कहा जा चुका है, राष्ट्रों का समाज भी एक अन्तर्निहित सामंजस्य और एकत्व से सम्पन्न होगा, वह एक ऐकिक शरीर भी होगा क्योंकि ये सारी बड़ी इकाइयां भी अपनी अपनी विशिष्ट राह से अपने सामूहिक जीवन के द्वारा भागवत चेतना की श्री और महिमा को अभिव्यक्त करेगी।

पार्थिव जीवन के इस सार्वभौमिक पुनर्निर्माण में श्री अरविन्द भारत को एक महान् भाग, एक महान् नियति और भारी उत्तरदायित्व देते हैं, क्योंकि वे भारत को आध्यात्मिक चेतना का भंडार, वेदों ने जैसा कहा है, सत्य का संरक्षक मानते हैं और विश्व एकता के नूतन युग में भारत का राष्ट्रीय व्यक्तित्व ऐसे त्रिशूल का कार्य करेगा जो प्राचीन जगत् के निर्माणों का भेद न करेगा और आनेवाली चीजों के रूप को इंगित करेगा।

—नलिनीकान्त गुप्त

अनु: श्यामसुन्दर झुनझुनवाला

वृक्षों को छिन्न-भिन्न करने से,
पशुओं की हत्या करने से,
खून-खराबी करने से,
यदि स्वर्ग प्राप्त हो
तो फिर नरक में कौन जाएगा।

—संस्कृत

लेखन कला

(लेखनकला का महत्व इतना अधिक है कि इसके विषय में जो भी लिखा जाए थोड़ा है । प्रस्तुत लेख में सोवियत संघ के चोटी के लेखक, सोवियत लेखक संघ के सेक्रेटरी, 'यंग गार्ड' जैसे युग प्रवर्तक उपन्यास के स्रष्टा, स्तालिन पुरस्कार विजेता अलेकज़ांडर फादेयेव ने कुछ ऐसी बातें बताई हैं जो हर लेखक, कलाकार एवं साहित्यकार के लिए मनन करने योग्य हैं ।)

लेखनकला के विषय में तीन बातें हृदयंगम कर लेनी चाहिएँ :

प्रथम—हर उस व्यक्ति के लिए जो लेखक बनना चाहता है जीवन का विस्तृत ज्ञान प्राप्त करना, युग की रफ्तार के साथ क़दम में क़दम मिलाकर चलना, सच्चे अर्थ में समकालिक होना अर्थात् अपने युग के प्रगतिशील विचारों से भली भांति परिचित होना तथा जनजीवन में भाग लेना नितांत आवश्यक है ।

द्वितीय—उसे अपने उद्देश्य को बिलकुल साफ़ साफ़ दृष्टिगत रखना चाहिये जिसे वह अपनी रचना में उभार रहा है और जिस पर उसकी साहित्य रचना का पूरा ढाँचा निर्भर करता है ।

तृतीय—अन्त में उसे अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि साहित्य रचना विशेष प्रकार की ही सही परन्तु एक प्रकार का काम है । और इसका यह अर्थ है कि लेखक को भी किसी भी दूसरे श्रमिक की तरह अपनी कला को उन्नत बनाने के लिए, उसे और भी निखारने के लिए निरंतर प्रयत्न करते रहना चाहिए :— लेखनकला की आधारभूत टेकनीक से लेकर (किसी भी दूसरी कला की तरह लेखनकला की भी टेकनीक होती है) साहित्य रचना की जटिल समस्याओं तक ।

लेखक के लिए हमेशा जीवन का विस्तृत एवं व्यापक ज्ञान प्राप्त करते रहना आवश्यक है । यह निश्चय ही स्वतः सिद्ध है कि इन दिनों जब नूतन एवं पुरातन के बीच इतनी तीव्र संघर्ष हो रहा है कोई भी कलाकार सम्भवतः किसी भी प्रकार की रचना नहीं कर सकता जब तक कि उसे जीवन का पूरा पूरा ज्ञान न हो और जब तक वह बिलकुल सचेत होकर इसके साथ क़दम में क़दम मिलाकर चलता न हो । पुराने ज़माने के लेखक ऐसा कह सकते थे कि जीवन का ज्ञान प्राप्त करने के लिए कोई विशेष प्रयास की ज़रूरत नहीं है। मैं जो कुछ लिखता हूं चिन्तन और ध्यान करके । लेकिन यदि आप हमारी मौजूदा सोवियत वास्तविकता को लें तो देखेंगे कि इसमें इतनी विविधता है और इसका विकास इतनी तेज़ी से हो रहा है कि बिना गम्भीर अध्ययन के सिर्फ़ ध्यान और चिंतन से कुछ भी नहीं हो सकता ।

यहाँ मैं आपको अपने अनुभव की चीज़ बता रहा हूँ । जब मैं अपना 'यंग गार्ड' (नौजवान रक्षक) नामक उपन्यास पूरा कर रहा था तो एक दूसरी पुस्तक लिखने की विषयवस्तु हमारे सामने प्रस्तुत हो गई। लड़ाई के बाद के दिनों में सामूहिक कृषि जीवन के कुछ पहलुओं को लेकर सामूहिक कृषिशाला के नौजवान की कहानी लिखने का विचार मेरे मन में आया । इस कहानी की रूपरेखा मेरे मन में तैयार होने लग गयी थी। लेकिन १९४६-१९४७ में मैं यह कहानी नहीं लिख सका ; और अब मैं देखता हूं कि चीज़ काफ़ी पुरानी हो गई : जो नौजवान कल थे वह आज नहीं हैं, सामूहिक कृषिशालाओं की शक्ल बदल गई है, हर चीज़ बदल गई है, हर चीज़ प्रगति और विकास की दौड़ में आगे निकल गई है । कहानी की विषयवस्तु ज्यों की त्यों है। लोग भी मूलतः वहीं हैं लेकिन उन्हें बदली हुई परिस्थिति के आलोक में देखना है और ऐसा करने के लिए जीवन के स्कूल में हमें पुनः भर्त्ती होकर एक जमात और पूरी करनी होगी ।

वर्त्तमान जीवन की परिस्थितियों का पूरा पूरा ज्ञान प्राप्त करने के सिवा कलाकार के सामने एक और समस्या इससे भी जटिल है: उसमें कुछ अंशों में एक भविष्य द्रष्टा की कल्पनाशक्ति चाहिए ताकि किसी नई चीज़ के बीज को देखकर वह इसके पूर्ण विकास की सही तसवीर उतार सके।

जब हम कहते हैं कि अमुक लेखक अथवा साहित्यकार एक इनोवेटर है तो हमारा अभिप्राय सिर्फ़ यह नहीं होता कि वह अपनी लेखनकला में अभिनव प्रयोग कर रहा है, या नई टेकनीक अमल में ला रहा है। इसमें सन्देह नहीं कि कला के विकास के लिए इस प्रकार के नये प्रयोग नितांत आवश्यक हैं। लेकिन सबसे पहले हमारा उद्देश्य होता है वास्तविक जीवन के नये पहलुओं का पर्यवेक्षण कर कला के ज़रिये उनके गतिशील विकास का चित्रण करना।

लेकिन तब तक कोई कलाकार अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सकता जब तक उसे अपने कर्त्तव्य का पूरा पूरा ज्ञान न हो। कोई भी उच्च कोटि की साहित्य-रचना चाहे उपन्यास हो या कहानी बिना कठिन शारीरिक और मानसिक परिश्रम के नहीं होती। हम ऐसे लेखक की कल्पना तक नहीं कर सकते जिसने कोई अनमोल कृति कम से कम तीन बार आद्यन्त लिखे बिना तैयार की हो। चाहे वह एक लम्बे अरसे से इसके विषय में सोचता रहा हो और मन ही मन रूप-रेखा तैयार करता रहा हो उसके लिए अपनी मूल योजना को ज्यों का त्यों कार्यरूप में परिणत करना सम्भव नहीं। पुराने ज़माने में जो बात थी आज भी वैसी ही है। हमेशा लेखक की एक योजना होती है। यह योजना काग़ज़ पर हो सकती है अथवा उसके दिमाग़ में...यह भी आदत की बात है। लेकिन एक बार ज्यों ही पात्रों का गढ़न शुरू हो जाता है वे स्वयं आवश्यक फेर फार करना आरम्भ कर देते हैं। विशेष परिस्थितियों में आंतरिक विधान के अनुसार पात्रों का विकास अनिवार्य हो जाता है जिससे लेखक को अपनी मूल योजना में परिवर्तन करना पड़ता है और कभी कभी तो उसकी मूलयोजना जहां की तहां धरी रह जाती है।

जो चित्र आपके दिमाग़ में है उसे बिलकुल ठीक ठीक भाषा बद्ध करना कोई आसान काम नहीं है। आपके सामने शब्दों का समूह है और एक एक शब्द के इन्द्रधनुष की धारियों की तरह कई अर्थ हैं। एक भाव को व्यक्त करने के लिए पन्द्रह पन्द्रह बीस बीस शब्द आपके मस्तिष्क में घूमने लगते हैं...अब इस विशाल शब्दसागर से आपको ऐसे मोती चुन लेना है जो आपके भाव बिलकुल ठीक ठीक मूर्त करते हैं। लोग प्रायः भूल जाते हैं कि किसी कहानी या उपन्यास के अंदर जो विभिन्न पात्रों के बीच बातचीत होती है वह भी साधारण तरह की चीज़ नहीं होती इसका भी निर्माण होता है और इसके निर्माण करने की प्रणाली आसान या यांत्रिक नहीं है।

कई वाक्य लिख लेने के बाद कलाकार अचानक अपने अंदर एक प्रकार की निराशा अनुभव करने लगता है। वह सोचता है अमुक वाक्य उड़ा देना चाहिए, अमुक मुहावरा उस चीज़ को ठीक ठीक मूर्त्त नहीं कर रहा है जैसा मैं चाहता हूं, अमुक वाक्य में जिन शब्दों का मैंने प्रयोग किया है उनकी जगह यदि दूसरे शब्द होते तो अच्छा होता। कुछ लेखक कहानी या पुस्तक पूरा कर चुकने के बाद उसका शोध करते हैं, इसके विपरीत ऐसे बहुत से लेखक हैं जो लिखने और संवारने का काम साथ साथ करते हैं। ज्यों ही वे एक वाक्य लिखते हैं उसमें संशोधन करना शुरू कर देते हैं। वे तब तक आगे नहीं बढ़ते जब तक उन्हें यह यक़ीन नहीं हो जाता कि जो कुछ उन्होंने लिखा है संतोषप्रद है। अपने असंतोष पर विजय पाना हर किसी के वश की बात नहीं है। जब मैंने लिखना शुरू किया था तो मेरे लिए बिना काट छाँट किए एक अध्याय भी लिखना एक असम्भव बात थी। मैं एक पैरा लिखता और फौरन उसको दुहराता और फिर से लिखना शुरू कर देता। बाद में प्रायः मुझे यह तजुर्बा हुआ कि जिस पैरा को लिखने में मैंने सबसे अधिक प्रयास किया था उसकी क़तई ज़रूरत नहीं थी। जब मेरा अनुभव बढ़ गया तो मैंने लिख चुकने के बाद शोध करने का नियम बना लिया क्योंकि तब तक आपको यह ज्ञान हो जाता है कि कौन चीज़ें नितांत आवश्यक हैं और कौन अनावश्यक।

आज तक जितने भी महान् लेखक और कलाकार हुए हैं उन्होंने इस चीज़ को सदैव अपने ध्यान में रखा है। लेखकों के लिए और कोई भी साहित्य इतना उपयोगी और स्फूर्त्तिदायक नहीं है जितना वह साहित्य है जिनमें प्रातः स्मरणीय लेखकों और कलाकारों ने अपनी लेखन-कला के ऊपर प्रकाश डाला है और वह पत्र जिनमें उन्होंने लेखन कला के सम्बन्ध में अपने विचार विनिमय किये हैं और सुझाव दिये हैं।

साहित्य रचना में परम सिद्धि प्राप्त करने की दिशा में गोर्की का अथक प्रयास, उसकी तीक्ष्ण आलोचनात्मक प्रज्ञा हमारे लिए प्रकाशस्तम्भ के समान है। उसकी समस्त पांडुलिपियां महान् आध्यात्मिक शक्ति एवं अविश्रांत उद्योग की बोलती हुई तसवीर हैं।

पहले के लेखकों और कलाकारों का मूल्यमानदंड कितना उच्च था इसका पता हमें लियो टालस्टाय की उन पांडुलिपियों से चलता है जो टालस्टाय-म्यूज़ियम में आज भी देखी जा सकती हैं। टालस्टाय के रेज़रेक्शन (पुनरुत्थान) की एक, दो, तीन, चार भिन्न भिन्न पांडुलिपियों को देखकर मस्तक श्रद्धा से नत हो जाता है. . . टालस्टाय की कुछ कृतियों की पन्द्रह, बीस भिन्न भिन्न पांडुलिपियां मौजूद हैं। अनुसंधानकर्ताओं ने टालस्टाय के एक लेख की नव्वे भिन्न भिन्न पांडुलिपियों का पता लगाया है।

टालस्टाय की नोट बुक देखने से बिलकुल साफ़ मालूम होता है कि हर नयी पुस्तक की रचना करने से पहले वह कितने व्यापक पैमाने पर सामग्रियों का संग्रह करते थे। टालस्टाय के नोट बुक में पदार्थ-विज्ञान सम्बन्धी बहुत से स्केच आज भी सुरक्षित हैं जिन्हें इस कलाकार ने पदार्थ विज्ञान का अध्ययन करने के समय खींचा था। इसमें विभिन्न लोगों के साथ टालस्टाय की बातचीत दर्ज है। टालस्टाय ने रूसी भाषा का, जनबोली की विशिष्टता का अध्ययन किया था तथा प्रयोग के तौर पर हर तरह की वाक्य रचनाएं करके दाहूल के कोश पर टिप्पणियां की थीं।

इन नोट बुकों को देखने से पता चलेगा कि कितने अनगिनत शब्दों का अनुसंधान टालस्टाय ने किया था।

गोर्की हमेशा नवसिखुए लेखकों को रूसी लोककथा तथा जनता के मुहाविरों को पढ़ने की सलाह देता था। उन लेखकों की कृतियां भी पढ़ने की सलाह गोर्की देता था जिनमें शब्द सौष्ठव विशेष रूप में पाया जाता है। गोर्की कहा करता था कि हर लेखक को लेस्कोव और मेलनीकोव-पेचेर्स्की की कृतियां पढ़नी चाहिएँ।

लम्बे लम्बे वाक्य लिखना बहुत आसान बात है लेकिन छोटे छोटे, नपे तुले वाक्यों में अपने भाव व्यक्त करना इतना आसान नहीं है। हर वाक्य का गठन सुडौल शरीर-वाले खिलाड़ी के सुगठित अंगों के समान होना चाहिए: मानव शरीर के अंदर बहुत से भिन्न भिन्न प्रकार के मांसल हैं जिनके सम्यक् विकास के लिए भिन्न भिन्न प्रकार के व्यायाम की ज़रूरत है लेकिन इन समस्त मांसलों को मिलाकर पूरा शरीर बना है। कलाकार की शैली के अंदर भी ऐसी ही बात होनी चाहिए और इसका विकास करने के लिए उसे विभिन्न प्रकार की वाग्रचना द्वारा 'जिमनास्टिक' करना चाहिए।

अपने भाव से पाठक को अभिभूत कर देना कला के दिव्यगुणों में एक है। आप स्वयं अपनी प्रतिक्रियाओं पर ग़ौर करें। मान लें आप एक पुस्तक या कहानी पढ़ रहे हैं। कुछ सफ़े ऐसे हैं जिन्हें आप यों ही सरसरी निगाह से पढ़ लेते हैं: ये आपके हृदय को स्पर्श नहीं करते। लेकिन अचानक आप देखते हैं कि कलाकार आपके हृदय को स्पन्दित कर रहा है:. . .कहानी की काव्य धारा मानो आपके अंतर में प्रवाहित होने लगती है, आप हीरो. . .नायक के इतने निकट चले आते हैं कि उसी जैसा आप ख़ुद अनुभव करने लगते हैं, कभी क्रोधानल में प्रज्वलित हो उठते हैं, तो कभी वाष्प गद्‌गद हो जाते हैं, आनन्द विह्वल होते हैं तो कभी हंसने लगते हैं। लेकिन इस तरह का कमाल हासिल करने के लिए लेखक को लम्बा अभ्यास करना होता है।

यह बात और भी साफ़ साफ़ कविता में देखी जाती है। सभी पद्य कविता नहीं हैं। शब्दों को छन्दबद्ध कर देने से ही कविता नहीं बन जाती जब तक आपकी रचना हृदय को स्पर्श नहीं करती तबतक उसे कविता

की संज्ञा नहीं दी जा सकती। यह जमीन की सतह के नीचे प्रवाहित होने वाली उद्दाम जलधारा के समान है, और एक बार जब ऊपर को फूट पड़ती है तो फिर जो भी उसके मार्ग में पड़ता है उसे अभिभूत कर अपने साथ बहा ले जाती है।

अंत में लेखक के सामने समस्त सामग्रियों को कलापूर्ण ढंग से एकमें बांधने की समस्या आती है: तथ्यसमूह, घटनाएं विचार, आदि। कुछ विचार महत्वपूर्ण और बहुमूल्य होते हैं। लेकिन आपकी रचना तभी कारगर हो सकती है जब आपको यह मालूम हो कि कौन सी चीजें ज्यादा महत्वपूर्ण हैं और कौनसी कम, किस चीज को ज्यादा ज़ोरदार तरीके से उभारना है और किस चीज को कम। टालस्टाय सामग्रियों को सजाने का काम सबसे कठिन और महत्वपूर्ण काम समझते थे। विस्तार बढ़ जाने से लेखक अपने मूल उद्देश्य को भूल सकता है, अथवा इसके विपरीत मुख्य उद्देश्य को शुरू में ही प्रकट किये जाने का डर रहता है जब कि इसकी अभिव्यक्ति प्रसंगक्रम से पात्रों के विकास के दौरान में होना चाहिए।

टालस्टाय ने 'शुद्ध और शांति' तथा गोर्की ने 'क्लिम सामगिन का जीवन चरित्र' नामक पुस्तक की कथावस्तु को सजाने में जिस कुशलता का परिचय दिया है उसे लेखकों को सदैव अपने सामने एक आदर्श के रूप में रखना चाहिए। गोर्की ने चालीस साल के लम्बे जीवन की घटनाओं का चित्रण करते हुए यह दिखाया है कि किस प्रकार पुराने सामाजिक आदर्शों की जगह नये आदर्श ले लेते हैं।

मैं कह सकता हूं कि अपने 'यंग गार्ड' नामक उपन्यास में कथावस्तु को सजाने में पर्याप्त सावधानी नहीं बरतने तथा कुछ चीजों पर ग़लत तरीके से ज़ोर देने की वजह से कुछ त्रुटियां आ गयी हैं जिसकी आलोचना पत्रों ने भी की है और उनका ऐसा करना न्यायोचित है।

हम बहुधा अपने आधुनिक गद्य साहित्य में निर्माण की शिथिलता देखते हैं जो एक असहनीय बात है। इसे देखने से मालूम होता है कि लेखक ने मुख्य वस्तु को उभारने में अपने समस्त अन्य उपकरणों का प्रयोग नहीं किया है। बहुत से लेखक आज भी सोचते हैं: . . . मैंने काफी देखा भाला है, बहुत सी सामग्रियों का संग्रह किया है अब हमें इन्हें किसी तरह एक में बांध कर लेखबद्ध करना है। यह बहुत बड़ी भूल है। चाहे उपन्यास या कहानी हो, या नाटक . . . और मैं खास तौर पर नाटक का ज़िक्र करता हूं हम जो कुछ भी करें उद्देश्यपूर्ण हो। यदि हम पात्रों के किसी और पहलू को उभारते हैं अथवा कोई नया पात्र लाते हैं तो हमें यह बात बिलकुल साफ साफ जान लेना चाहिए मुख्य उद्देश्य का कौन सा पहलू उक्त घटना अथवा पात्र उभार कर सामने रखता है।

हमारे सोवियत जीवन की विशेषताएं कुछ ऐसी हैं कि आज यह खास तौर पर कठिन काम हो गया है: विशाल जनसमूह महान् निर्माणकार्य में लगा है, हर शख्स दूसरे लोगों से अनेक तरह से बँधा है और विभिन्न सम्बन्ध सूत्रों को नज़रअन्दाज़ करके उसका चित्रण करना कठिन है। इसीलिए हमें मुख्य वस्तु पर और भी अधिक सावधानी के साथ अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिए ताकि गौण चीजें इसे हमारी आंखों से ओझल न कर दें। जो बात घर के विषय में सही है वही साहित्य पर लागू होती है: कम जगह में ज्यादा लोगों का रहना खतरे से खाली नहीं है। जहां बहुत से लोग एक साथ ठसाठस भरे पड़े हैं वहां हर एक का व्यक्तित्व साफ साफ नहीं उभर सकता। यह बात तब देखने में आती है जब किसी उपन्यास में बहुत से गौण पात्र आ जाते हैं। तथ्यों और सामग्रियों के ठीक तरह से नहीं सजाये जाने के कारण यह दोष आ जाता है। खास तौर से यह चीज नाटकों में देखी जाती है जब कि पात्र शुरू में ही समस्त कथावस्तु को उगल देते हैं जिससे इसके और विकास के लिए कोई गुंजायश नहीं रहती। कला के ज़रिए, जीवन्त उपमा उपमेय और परिस्थिति के द्वारा इसे प्रकट करने के बदले नाटककार पुलपिट उपदेशक की तरह अपना विचार लोगों के गले ज़बरदस्ती उतारने लगता है। हमारे थियेटरों के बोर्डों पर इस

तरह के बहुत से नाटक देखे जा सकते हैं, और इसकी वजह यह है कि लेखक को उन लोगों की जिसकी उसने सृष्टि की है जीवन शक्ति में विश्वास नहीं है, उसकी विश्वास नहीं है कि पात्रों के घात प्रतिघात के द्वारा वह अपना विचार प्रकट कर सकता है ।

इन सब बातों से साफ ज़ाहिर है कि लेखन कला न सिर्फ़ एक किस्म का कार्य है वरन् दुस्तर कार्य है। चाहे नये लेखक हों या हमारे जैसे खुर्राट, सब को बराबर अध्ययन करते रहना, अपने स्तर को उन्नत बनाने के लिए प्रयत्न करते रहना चाहिए ।

--अनु : मंगलकिशोर पांडेय

○○○

मैं चाहता हूँ कि सब मनुष्य वीर बनें,
निरर्थक शब्दों में विश्वास न करें ;
अपने दोनों कन्धों पर उत्तरदायित्व का बोझ उठा कर--
अपना झंडा ऊंचा करें और उच्चस्वर में गर्जना करें ।
कमर बाँध कर सब आपत्तियों को कुचल डालें ।
तब हमारे हृदयों में दुःख की अनुभूति न होगी
हम अपने मही सने कपड़ों में कड़ी मेहनत करेंगे ।।

—एक चीनी कवि

अज्ञेयवाद की एक झलक

(१)

मानव में जब से चेतना का प्रथम आविर्भाव हुआ है, तब से लेकर आज तक थोड़ा थोड़ा करके एक प्रश्न का उद्घोष होता ही रहा है? मैं कौन हूं?" पुरातन होते हुए भी प्रकृति की नित्य नूतन लीला की प्राणपूर्ण खोज में असंख्य कवियों ने काव्य क्रंदन किया है। इसी प्रकार समग्र मानव जीवन के स्थूल एवं सूक्ष्म स्तरों की चिन्मय मीमांसा भी अनेक तत्वज्ञों ने लिपिबद्ध की है। वर्तमान भौतिक विज्ञान की प्रगति के इस युग में महान् भौतिक विज्ञानवेत्ता आइन्स्टाइन भी बतलाते हैं कि ''अनादिकाल से अस्खलितरूप में प्रवाहित चेतनमय जीवन के रहस्य के विषय में किसी प्रकार की धारणा करना, अथवा सहज ही थोड़ी सी झलक पा सकने योग्य इस विश्व की अद्भुत रचना का मनन करना, और प्रकृति में अविर्भाव पाई हुई बुद्धि शक्ति के एक लक्षांश भाग को भी सम्यक् रूप से नम्रभाव रखते हुए समझने का प्रयत्न करना कोई साधारण बात नहीं है।' इस प्रकार रह रह कर यही प्रश्न प्रत्येक युग में ही नहीं, युग-युगान्तर की चिन्मय एवं प्राणमय साधना के परिपाक रूप में उठता ही रहा है। और पूर्ण अभिषेक के इच्छुक प्रत्येक यात्री ने अपना संचित जीवन जल उस अगम्य, अनिर्वचनीय अथवा अरूप को भक्ति-भाव से चढ़ाया है।

समस्याएँ अनेक उत्पन्न हुईं और उनके आंशिक निराकरण भी सुझाये गये। कई प्रश्न और परंपराएँ उठीं और उनका समाधान भी महामनीषियों ने अपने अपने साधनों के द्वारा किया, किंतु फिर भी वह कूटस्थ महा प्रश्न आज भी मानव-मन में उथल पुथल मचा ही रहा है।

पश्चिमी विद्वानों ने पृथक्करण कर-कर के अदृश्य को दृश्य एवं अगम्य को गम्य, अज्ञान को ज्ञान एवं अव्यक्त को व्यक्त करने का भगीरथ प्रयत्न किया है उन प्रयत्नों के परिणाम स्वरूप उन्होंने हमें अनेक वादों की बहुमूल्य देन प्रदान की है। स्थूल उपकरणों के आधार पर की हुई खोज द्वारा प्राप्त शक्ति जिस प्रकार जीवन का संरक्षण एवं संवर्धन करती है उसी प्रकार वह भक्षण एवं संहार करने वाली भी सिद्ध होती है और उसके प्रत्यक्ष परिणाम भी मानवजाति ने देखे हैं।

किंतु हम ने उसे केवल बुद्धि का ही विषय नहीं समझा। क्योंकि बुद्धि के अतिरिक्त मानव के पास हृदय या अंतःकरण भी तो होता है। और वह अंतर्हृदय एकात्मभावी समन्वयकारी एवं सूक्ष्म अनुभूति का संवेदनशील है। बुद्धि वस्तु को पृथक् भाव से देखती है, हृदय उसे सम्यक् भाव से अनुभव करता है। बुद्धि विश्लेषण करती है, अंतर्हृदय संश्लेषण करता है।

उस बुद्धि एवं हृदय सभी परे मानव चेतना के किसी ऊर्ध्व या गहन स्तर में जहां कि सच्चिदानंद की लहरियों से प्राणों के उफ़ान, प्रज्ञा के उन्मेष और देह के प्रत्येक कोष 'रसो वै सः' का अनुभव करते होंगे; उनके विषय में तो पूछना ही क्या? कबीर की वाणी में कहा जाय तो उनके अंतरघट परब्रह्म से आकंठ भर जाते हैं, यही नहीं वरन् वे घट ब्रह्म चैतन्य के पारावार में डूबे भी रहते हैं। भला, जहां ऐसी दशा हो वहां वाणी का उच्चार ही कैसे हो सकता है?

(२)

इस विवेचन से ज्ञात हो जाता है कि अगम्यवाद आंतर अनुभूति का विषय है। इस विषय की चर्चा एवं विवेचन तथा इसे भिन्न भिन्न रूप में प्रस्तुत करने वाला साहित्य पश्चिम में विपुल परिमाण में प्रस्तुत किया गया है। देश-देश के मर्मज्ञों की साधना को नवीन वैज्ञानिक प्रणाली के आधार पर परख कर उसमें से अमुक तारतम्य निकाला जाता है।

अंग्रेजी में इस विषय का नाम मिस्टिसिज्म (Mysticism) रखा गया है। वहां एक विद्वान् के मतानुसार इस शब्द का मूलरूप ग्रीक भाषा में है। उस भाषा में 'जोड़ना' वैद्यक-परिभाषा का एक शब्द था; जिसका अर्थ होता है "जोड़ना"। अर्थात् ज़ख्म या घाव के दोनों सिरों को जोड़ देना। उसके बाद किसी के विच्छिन्न या वियुक्त होने पर उसे पुनः संयुक्त करने के अर्थ में इसका उपयोग किया जाने लगा। यहां तक कि अंतमें यह होंठ बंद करने या आँखें मूंदने के ध्वन्यर्थ में प्रयुक्त होने लगा। इस प्रकार अगम्यवाद का अर्थ निष्पन्न हुआ दो अलग हो जाने वाले पदार्थों को उनकी मूल भूमिका में संयुक्त करना। एवेलिन अंडर हिल् इस शब्द की व्याख्या करते हुए कहता है कि "अगम्यवादका अर्थ है मूल वास्तविकता में संयुक्त होने की कला"। इस प्रकार पश्चिम में इस विषय की पृथक् एवं सम्यक् भाव से चर्चा करने वाले जो लोग थे तथा जो आज विद्यमान है, उनमें कुछ के नाम इस प्रकार हैं:— रुडाल्फ, ऑटो, विलियम जोन्स, डीन ईज, एवेलिन

निष्पन्न हुआ दो अलग हो जाने वाले पदार्थों को उनकी मूल भूमिका में संयुक्त करना। एवेलिन अंडर-हिल् इस शब्द की व्याख्या करते हुए कहता है कि "अगम्य-वाद का अर्थ है मूल वास्तविकता में संयुक्त होने की कला"। इस प्रकार पश्चिम में इस विषय की पृथक् एवं सम्यक् भाव से चर्चा करने वाले जो लोग होगए तथा जो आज विद्यमान हैं, उनमें कुछ के नाम इस प्रकार हैं:— रुडाल्फ़, ऑटो, विलियम जोन्स, डीन ईज, एवेलिन

अंडर हिल्, बर्ट्राण्ड रसेल, जूलियन हक्सली, आल्डस हक्सले, इत्यादि।

किंतु हमारे यहां तो इस विषय को जीवन से अलग किया ही नहीं गया। फूल और उसकी सुगन्ध की तरह यह हमारे विकास की भिन्न भिन्न शाखाओं में ओतप्रोत करता है। हमारे दर्शन, शास्त्र एवं कलाओं का अंतिम लक्ष्य भिन्न भिन्न प्रकार से किंतु एक ही अनिर्वचनीय जान पड़ता है। हमारी जीवन-विषयक इस दृष्टि का वर्णन सर राधाकृष्णन् ने अपने ग्रंथ "हिन्दुओं की जीवन दृष्टि" में बड़ी उत्तमता से किया है।

इसके अतिरिक्त भारतके भिन्न भिन्न प्रांतों में समय समय पर प्रकट होने वाले भक्तों, संत पुरुषों और योगीश्वरों की वाणी में भी हम उस स्वर को सुनते आ रहे हैं। कविगुरु श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर के एक गान में मानव हृदय की यह सनातन लालसा इस प्रकार व्यक्त हुई है:—

"तुम्हारे स्वर के साथ अपना स्वर मिलाने की साधना करते करते मेरा समय बीत जाता है और संध्या होने लगती है! तुम्हारे महान् संगीत की वेदना मेरे इस एकतारे के एकतार पर ध्वनित नहीं हो सकती। इसीलिए तुम्हारी इस लीला में साथ देते हुए मैंने बारंबार पराजय स्वीकार की है। मेरे वाद्य के तार यहां के स्वरों से बँधे हुए हैं, और तुम्हारी वह बाँसुरी तो दूर, बहुत दूर, कहीं बज रही है! तुम्हारे मान की लीला के इस किनारे पर क्या सभी साथ देने में समर्थ हो सकते हैं? तुम्हारे विश्व हृदय के पारावार में राग रागिनियों का जाल कैसे फैलाया जा सकता है?"

(३)

मर्मज्ञों का हृदयकमल जैसा जैसा विकास को प्राप्त होता है वैसे वैसे उसकी चेतना प्रत्येक वस्तु को नये रंग में रँगी हुई देखती है। उसकी दृष्टि में जहां तहां विश्व चैतन्य के स्मारक चिन्ह दीख पड़ते हैं। पक्षियों की फड़फड़ाहट सुन कर उसकी चेतना जागृत हो जाती है और वह अपने अंतरतम के किसी कोने में सर्वव्यापी ध्वनि का स्पंदन अनुभव करता है। उसकी दृष्टि में संगीत केवल उसके तान पलटने या आलाप के विस्तार को लेकर महिमान्वित नहीं होता। वरन् उसकी हृदयवीणा के तारों को झंकृत करके चित्त को आनंदित करने वाली राग रागिनियों को ही वह मर्मस्पर्शी अनुभव करता है। यदि किसी महान् कलाकार की कोई कृति स्पर्श भी करती है तो वह केवल उसके बाह्य आकार, सादृश्य या रंगों के मिश्रण को लेकर नहीं, वरन् जितने अंश में वह विश्व के महान् कलाकार की झाँकी दिखलाती है, उतने ही परिमाण में वह उसे स्वीकार करता है। अर्थात् वह कला, साहित्य या संगीत के बाह्य उपकरणों को नहीं, वरन् उसके मर्म इंगित को सहज भाव से पकड़ लेता है।

संसार की स्थूल वस्तुओं के परिचय एवं संचय में हमारे चित्त इतने ओतप्रोत हो जाते हैं कि जो सदा-सर्वदा के लिए हमारा है अथवा जिसको लेकर हमारा अस्तित्व है, उसकी उपेक्षा करके हम सर्वत्र विचरते रहते हैं। हमारी दृष्टि के सम्मुख कितने ही दृश्य परिचित या अपरिचित, परछाँई की तरह निकल जाते हैं, किन्तु फिर भी उनमें से किसी की भनक या उसका सहज सम्मिलन हम नही पा सकते। सब विषय आविर्भाव पाने के लिए लालायित हैं, परंतु हम इनका अनुकंपन तक अनुभव नहीं कर सकते।

न्यूटन ने एक फल का यह अनुक्रंदन सुना और उसके मनन एवं निदिध्यासन ने फल के द्वारा हमें भौतिकशास्त्र का एक महान् सिद्धान्त सुलभ कर दिया। कोई कवि[1] आकर यदि हमें अत्यंत साधारण प्रतीत होनेवाली वस्तु में से विश्वलक्ष्मी का सौन्दर्य दर्शन कराता है, तो कोई तत्वज्ञानी अपनी सूक्ष्मबुद्धि की शक्ति-द्वारा हमें यथार्थ की सीमा का दर्शन कराता है, और कोई धर्मगुरु आकर हमें नीति के नवीन पाठ भी पढ़ाता है।

और ऐसा होते हुए भी हमारा जो कुछ अपना है, उसका कहीं पता भी नहीं लगता! उसकी खोज में हम इधर-उधर ग़ोते खा रहे हैं, धन या द्रव्य आकर टकराता है तो कभी मान आकर बाधा देता है और कभी ख्याति सामने खड़ी हो जाती है; किंतु फिर भी अंतर में शांति का ज़रा भी अनुभव नहीं होता। अंतर की शून्यता को दूर करने के लिए हम नाटक, सिनेमा आदि में भी जाते हैं; परंतु इतने पर भी हमारा आंतरिक अभाव पूर्ण नहीं हो पाता।

किस कारण से? इसीलिए कि हमारी प्रवृत्ति, समृद्धि एवं सुख के साधनों में कहीं भी शुद्ध आनंद या अहैतुक अनुराग का नाम भी नहीं होता। हमारा आस्वाद तो मिश्रण के कलुषित दोष से विकृत हो गया है; और हमारी भावनाएँ भी आधारहीन पंगु सिद्ध होती हैं। जिसे जोत कर सींचा जाना चाहिए, उसी को हम सुखा डालते हैं, जिसके सम्मुख नैवेद्य समर्पण करना चाहिए उसी को हम उपवास कराते हैं, और जिसको लेकर ही हमारे जीवन का अस्तित्व है उसी की हम उपेक्षा करते हैं। जो हमारे लिए नित्य निरन्तर एवं निकट से निकट का है उसी को हम पराया समझते हैं। किंतु जब तक मूलमें ही जलसिंचन नहीं किया जायगा, तब तक बीज फलफूल ही कैसे सकेगा? गर्भ-धारण के बिना प्रसव ही कैसे हो सकेगा? और यदि गर्भधारणा हो भी जाय तो प्रसव-वेदना से किसी प्रकार छुटकारा कैसे हो सकता है?

कहा जाता है कि चीन-सागर में कभी कभी भयंकर तूफ़ान उठ खड़ा होता है, और उस समय नाविक सहसा घबरा जाते हैं। इसी प्रकार यह भी पता लगा है कि ऐसे तूफ़ानों में पानी में भौंरें (चक्कर) पड़ने लगती हैं, उस समय यदि कोई कुशल एवं साहसी नाविक अपनी नौका को ठीक केन्द्र में लेजा सके तो वहांसंरति होने से उसकी रक्षा हो सकती है।

इसी प्रकार यदि सांसारिक झंझावात के समय भी हम अपने केन्द्र[2] बाह्य नहीं, आंतरिक में, अपनी अस्तव्यस्त वृत्तियों को समेट कर ले जासकें तो वहां हमें अपूर्व शांति प्राप्त हो सकती है। क्योंकि ऊपर सिंधु में जल कितना ही गहरा हो तो भी मर्मज्ञ के लिए सामान्य ही है।

---

[1] तुलना किजीए :—

Behold, the Little can create
More wonders than the so-called Great;
A spuirrels eye, a latus-delal,
There may settle
Accounts no man dare calculate.

—हरीन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय

[2] तुलना कीजिये :—

कर्मप्रबल बनकर जभी, हलचल देय मचाय।
तव मम-मानस में प्रभो, कृपया बसिये आय।।

—रवीन्द्रनाथ

(४)

यहाँ जिस अज्ञेयवाद शब्द का प्रयोग किया गया है, वह केवल पश्चिमी शब्दों के आधार पर ही ; अन्यथा हमारी भारतीय प्रणाली के अनुसार तो हम उसे 'अपरोक्षानुभूति' ही कह सकते हैं। अंग्रेज़ी (Mystic) शब्द के लिए 'मर्मज्ञ' या मर्मी शब्द ही उपयुक्त हो सकता है। किंतु यथार्थ में तो मर्मियों की आंतरिक साधना से प्राप्त किसी उपलब्धि को किसी वाद में जकड़ कर उसमें से भौतिकशास्त्र की नीति रीति के अनुकूल किसी ऐसे सिद्धान्त को स्थापित कर सकना असंभव है जो देशकाल या पात्र से अबाधित हो। हमें तो अभी तक इस बात की भी शंका है कि, अपने मनोमंदिर की द्वार देहली पर भी पैर रखा है या नहीं ? पश्चिम के लब्धप्रतिष्ठ विचारकों ने इस विषय को व्याख्या अथवा वर्णत से अतीत समझा है। वट्रण्ड रसल के कथनानुसार तो यह विषय जीवन की ओर मन की एक प्रेरणा ही है अथवा इसे दर्शन भी कह सकते हैं। यहं कोई वाद या संप्रदाय नहीं है। मर्मी की वाणी से उसका मनोभाव व्यक्त होता है। उसका आंतरदर्शन प्रतीत हो ता है। अर्थात् मर्मी की जीवन साधना के फलस्वरूप प्राप्त यह मर्मीभाव ही है।

हमारे यहां तो मानव चेतना की विविध भूमिका के दर्शन कराने वाले ऐसे अनेक 'पद' मिल सकते हैं। विशेषतः साक्षर कवियों की अपेक्षा निरक्षर कवियों की वाणी में उसका अधिक निर्मल और निरलंकार सहजभाव से सुरक्षित दृष्टिगोचर होता है। ऐसी वाणी हम प्रतिदिन सुनते भी है।

गुजराती के विद्वान् श्री रविरास का कथन है कि "उस आगम-निगम के खेल के विषय में मैं कुछ भी कहना नहीं जानता। क्योंकि जो नेत्र देखते हैं उसकी, वाणी मौन हो जाती है और वाणी बेचारी देख नहीं सकती अर्थात् गूंगे या मूक की गति को वही जान सकता है ! शूर वीर की रीति को कायर कैसे जान सकता है? यह उन 'भरजीवों' काही काम हो सकता है कि जो समुद्रतल में जाकर मोती ला सकते हैं। शेष सभी तो केवल पानी में चमकने वाले तारे ही कहला सकते हैं।

गुर्जर 'भारती' से.

—अनु: गोपी वल्लभ उपध्याय

◆ ◆ ◆

मंसार में सव वस्तुओं का इलाज हो सकता है,
मूर्खता का कोई इलाज नहीं है।

—भर्तृहरि

विदाय - वासना

(विदाय-वासना अर्थात् विदा लेने की इच्छा आधुनिक बङ्गाली-कविता के एक उदाहरण के रूप में उपस्थित की जा रही है। यह कवि, चिन्तक और समालोचक श्री मोहितलाल मजूमदार के 'स्मर-गरल' नामक संग्रह में प्रथम बार सन् १८३६ में प्रकाशित हुई। इसके पूर्व उनके 'स्वपन-पसारी' और 'विस्मरणी' नामक दो संग्रह प्रकाशित हो चुके थे इसलिए यह उनकी प्रौढ़ रचनाओं में से है। हिन्दी-कवियों के समान वे अपनी कविताओं के सम्बन्ध में वाद-विवाद उठने पर मौन-साधना में विश्वास नहीं करते। एक बार किसी विदुषी महिला ने 'स्मर-गरल' की सुदीर्घ समालोचना की। इस युग की वङ्ग कविता का रस-ग्रहण साधारण पाठक ने केलिए अत्यन्त कष्ट-साध्य है ऐसा मन्तव्य प्रकाशित किया। कुछ कविताओं में अर्थ-संगीत का अभाव और कुछ की भाषा और भाव-वस्तु को उन्होंने सुरुचि और सुनीतिविरुद्ध वताया, और उनके उद्गम की ओर विशेष ध्यान देकर काव्य छोड़ कवि के चरित्र के प्रति भी कटाक्ष किया। श्री मजूमदार ने उनका जो मुंह तोड़ उत्तर दिया उसके फलस्वरूप उन्हीं के शब्दों में "मेरी कविता की समालोचना-अन्ततः जब तक में जीवित हूँ और कोई न करेगा। सम्भवतः मुझे स्वयं ही करना पड़े——आखिर बङ्ग देश में आज अपना विवाह और श्राद्ध स्वयं कर लेने की भी तो प्रथा है।"——अनुवादक)

इतने दिनों बाद, हे सखि, मन में आता है——
यहाँ रुकना——व्यर्थ बैठे रहना और सम्भव नहीं
अब विदा लेना होगा।
चन्द्र-हीन रात्रि में जागने से क्या लाभ,
जब आयु-हीन वायु अपनी दिशा भूल चुका हो,
और तारामय आकाश अन्धकार पूर्ण हो चला हो,
अब विदा लेना होगा।
प्रतिपदा का चन्द्रमा दशमी को सुधाकर बन जाता है,
वह आलोक से पुलकित हो उठता है,
उसकी कलङ्क-मसि मनोहर होती है
यौवन-वन में माया की छाया पड़ने से प्रत्येक प्राणी का शरीर कुसुम-सुन्दर हो उठता है।
जिस पर मानस-मधुकर मुग्ध होता है।
इस जीवन में जो कुछ है सब मनोहर हो जाता है।
पङ्क-शैवाल सने जल से जो सुन्दर फूल उठता है
उसके मधु से हमने अपना प्याला भरा।
जिस गान में कोई छल नहीं——
उसको छल-छल आँखों से अपनी वीणा पर साधा।
पंकज-मधु से अपना प्याला भरा।

अप्राप्य वस्तुएँ की कामना करते हुए, हम दोनों ने, चाँदनी रातें जाग कर बिताई।
कभी कुहासा ने चन्द्रमा के चारों ओर मेखला की सृष्टि की।
उसको मद-भरी आँखों से एक टक देखते हुए,
सुख-पूर्णिमा की प्यास से, कितने ही स्वप्नों का संचय किया।
इस प्रकार चाँदनी रातें जाग कर बिताईं।
अन्त में एक दिन शरद-पूर्णिमा हँस उठी।
चराचर आलोक की बाढ़ में निमग्न हो गया।
फूल-फूल मधु से ओत-प्रोत हो गया।
पृथ्वी का ओर-छोर सजीव हो उठा।
सुधाकर ने भूख प्यास हर ली।
यौवन की रात्रि में शरद की पूर्णिमा आई।
उस एक तिथि के पश्चात्, हे सखि, सब समाप्त हो गया है,
एक एक कर यह राज-वेश उतार देना होगा।
अब आँखों में काजल लगा कर क्या होगा।
मुँह ढंकने वाला ज़री का आँचल
काले केशों का सुबन्धन, सब व्यर्थ है।
उस एक तिथि के बाद सब समाप्त हो गया है।
जितनी रात व्यतीत होती है उतना ही अन्धकार बढ़ता जाता है।
पाण्डुर मुख पर अब चन्द्रमा की वह शोभा नहीं दिखाई पड़ती।
गम्भीर निशीथ में चन्द्र प्रेत-सम दिखाई पड़ता है।
आकाश के कोने में क्षीण हँसी हँसता है।
जीवन में क्या सुख है जिसके लिए कमर बाँधूँ।
जितनी रात व्यतीत होती है उतना ही अन्धकार बढ़ता जाता है।
पूर्णिमा के साथ ही सब गान समाप्त हो चुके,
अब चन्द्रहीन रात में जाग कर क्या करेंगे?
क्या प्राणों में जो आलोक की प्यास है कभी मिटेगी?
तारामय आकाश अन्धकार पूर्ण हो चला।
अब विदा लेनी होगा।

हैदराबाद

अनुवादक—बैजनाथ चतुर्वेदी, एम्.ए.
साहित्यरत्न.

ग्वालियर की डायरी

(३)

७ मार्च १८५२ के दिन मामा साहब ने सभी मन्त्रियों को महाराजा के सम्मुख उपस्थित होने के लिए निमन्त्रित किया । उसी दिन सायंकाल ब्रिटिश प्रतिनिधि बाड़े में आया और महाराजा से बातें कीं । ब्रिटिश प्रतिनिधि के मीर मुंशी ने एक घोषणा-पत्र पढ़ा । उसका सारांश है कि मामा साहब ने अपनी इच्छा से अपने पद से त्याग-पत्र दिया है । उन्होंने मंत्रियों से प्रार्थना की है कि वे महाराजा का अभिनन्दन करें और जब ग्यारह महीने बाद महाराजा पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लेते हैं, तब से उनके विश्वासपात्र बने रहें ।

आशा की जाती है कि मामा साहब की खरी सेवाओं का ध्यान रखते हुए, महाराजा मामा साहब और उनके परिवार के लिए पर्याप्त कर देंगे ।

ब्रिटिश प्रतिनिधि की स्वीकृति के बिना महाराजा को देश से निकाले हुए व्यक्तियों को वापस बुलाना उचित नहीं। उपस्थित कर्मचारियों से ही काम चलाना चाहिए ।

दरबार का कार्यक्रम समाप्त हुआ । आज ही सायंकाल डाक्टर ने मामा साहब के पेट से आठ सेर पानी निकाला । मामा साहब को चार दस्त हुए और वे बहुत बेचैन हुए ।

८ मार्च—हक वारिस अली ने मामा साहब से घर जाने की आज्ञा मांगी किन्तु मामा साहब ने उसे अपने बिछाने के पास कुछ और दिन रोकना चाहा ।

महाराजा अब दरबार के कामों में व्यस्त हैं[1] । महारानी के बालिग (वयस्का) होने का उत्सव धूमधाम से मनाया गया ।

आजकल रेज़ीडेन्सी का मुंशी बड़ा शक्तिमान् हो गया है इसलिए सभी लोग उसके चारों ओर भीड़ लगा रहे हैं । उसके कहने या पत्र का बड़ा प्रभाव पड़ता है।

पहले मामा साहब का भान्जा महाराजा के साथ रहता था अब उसकी जगह पर अप्पा साहब अङ्गरैय्या का पुत्र नियुक्त हुआ है ।

एक दिन मामा साहब सोने-चाँदी से तोले गए और सब दान में दे दिया गया ।

कुछ अफसर मामा साहब के पास उनकी राय और आदेश प्राप्त करने जाते हैं । महाराजा को यह दुहरा प्रबन्ध अच्छा नहीं लगता । इसलिए बहुत तंग आकर महाराजा ने भरे दरबार में उन अफसरों और कुलीन सज्जनों को मामा साहब के पास जाने से निषेध किया है । यदि वे इन आज्ञाओं का उल्लंघन करेंगे तो दण्डित होंगे या राज्य से बाहर निकाल दिए जायेंगे ।

राज्याधिकारी राघोबा को जो मामा साहब का दीवान है गिरफ्तार करना चाहते हैं ।

मामा साहब की प्रार्थना पर महाराजा और उनके मंत्रिगण मामा साहब से मिलने आए । बिना भय या कृपा के मामा साहब ने सबको फटकारा । उन्होंने यह भी कहा कि मैंने अपनी शक्ति और योग्यता भर राज्य की सेवा की । अब मेरे जीने की आशा नहीं है और हवा बदलने के लिए मैं रेज़ीडेन्सी जाने का विचार कर रहा हूँ । यदि जीवित रहा तो फिर महाराजा का अभिवादन करने आऊँगा । सम्भवतः यह महाराजा से मेरी अन्तिम भेंट है इसलिए मैं बिदा लेना चाहता हूँ । अपनी सच्चाई और ईमानदारी के होते हुए भी राज-काज चलाने में मुझसे कुछ त्रुटियों हुई होंगी इसलिए मैं उनके लिए महाराजा से क्षमा चाहता हूँ । मैं अपनी स्थिति और पद अच्छी तरह समझता हूँ । मैंने सात रुपए मासिक वेतन पर काम करना आरम्भ किया और धीरे धीरे उच्च से उच्च पद प्राप्त किया । मुझे

---

[1] अखबार-ए-मालवा १३ मार्च १८५२.

राज्य चलाने का सम्मान और आनन्द भी मिला। अब मेरे हृदय में कोई महत्वाकांक्षा नहीं रह गई। आवश्यकता पड़ने पर अपने प्यारे मालिक के लिए मैं अपनी सब धन-सम्पत्ति त्याग करने के लिए तैयार हूँ। उनकी आवाज़ उनकी आँखों के आसुओं से भारी हो रही थी जब उन्होने महाराजा से विनति की कि उनकी मृत्यु के बाद वे उनके परिवार को अपनी शरण में ले लें।

फिर सरदारों की ओर मुख कर उन्होंने ने कहा कि वे महाराजा के विश्वासपात्र सेवक बनें और अपने महान् स्वामी के लिए अपनी जान तक देने के लिए तैयार रहें।

मामा साहब की बातों का महाराजा पर बहुत प्रभाव पड़ा। उन्होंने प्रार्थना की कि मामा साहब राज्य छोड़ कर बाहर न जाँय। इसीलिए मामा साहब ने अपना छावनी जाना स्थगित कर दिया।

महाराजा स्वयं राज्य का प्रबन्ध कर रहे हैं। इस सम्बन्ध में दरबार ने भारत-सरकार से महाराजा को पूरे राज्याधिकार देने की प्रार्थना की है। ऐसा समझा जाता है कि अगले वर्ष के प्रारम्भ से ही महाराजा पूर्ण शासनाधिकार प्राप्त कर लेंगे।

मालवा के सूबेदार के सुपुत्र को मुख्तारगिरी का पट्टा दिया गया है। मन्देसौर से दाजी अनन्त लश्कर पहुँचे हैं। उन्हें छावनी में नियत स्थान पर रखा गया है और उनके कतिपय सम्बन्धियों को छोड़ कोई उनसे मिल नहीं सकता। न्याय विभाग में नौकरी प्राप्त करने के उद्देश्य से एक शास्त्री यहाँ आया है किन्तु उसे सफलता शायद ही मिले। इस विभाग के लिए विशेष शिक्षा प्राप्त लोगों की आवश्यकता है।

अजमेर से एक पीरज़ादा आए हैं। उन्होंने महाराजा का अभिवादन किया और दुर्गा जी का पवित्र प्रसाद दिया। महाराजा ने उनको बहुत उत्तम राजकीय वस्त्र और १५००) की थैली पुरस्कार में दी।

पहले मामा साहब की तबीयत बहुत खराब हो गई थी। ईश्वर को धन्यवाद है कि अब वे कुछ अच्छे हैं। डाक्टर ने फिर उनकी परीक्षा ली और उनके पेट से ९ बोतल पानी निकाला।

२९ मार्च १८५२ को मामा साहब की मृत्यु हुई।[2]

बाबा हिन्दुराव के लिए डाक का प्रबन्ध किया गया। न जाने वे कब यहाँ आवेंगे।[3]

लगान वसूल करने वाले अफसरों (मामलतदारों) को चेतावनी दी गई है कि समय पर अपनी निश्चित किश्त सरकारी कोष में पहुँचा दें।

मुसाहिब खाँ कामदार को जो सरकारी दुकानदार है चेतावनी दी गई है कि जिन बातों से उसका सम्बन्ध न हो उनमें हस्ताक्षेप न करे।

कुछ समय पहले हमने लिखा था कि राघवेन्द्राचारी यहाँ न्यायालय विभाग में नौकरी खोजने के लिए आया है। वह लश्कर में ठहरा था। महाराजा ने उसे राजकीय वस्त्र और धन दिया। लोगों का कहना है कि महाराजा के ध्यान में उसके योग्य कोई पद है।

एक दिन महाराजा घोड़े से गिर पड़े। ईश्वर को धन्यवाद है कि उनको चोट न लगी। दरबारियों ने ईश्वर की कृपा समझ दान किया। उन्होंने भेंट दे कर महाराजा को इस दुर्घटना से बचने के लिए बधाई दी।

ब्रिटिश प्रतिनिधि एक दो बार महाराजा से मिलने और शासन-सम्बन्धी वार्तालाप करने के लिए आया।

राम खिया भाज को राजकीय वस्त्र देकर रेज़ीडेन्सी का वकील नियुक्त किया गया है।

थीप्पादारवाला नामक व्यक्ति को शिवपुर, सबलगढ़ और साकरदारी महाल का सूबेदार नियुक्त किया गया है।

दाह महाल के सूबेदार की मृत्यु हो जाने के कारण काशीराव सींधिया उस पद पर नियुक्त हुए हैं।

नारायणराव सूबा को निलम्बित कर उनके स्थान पर नारायणराव भगन्तराव को नियुक्त किया गया है।

---

[2] दिल्ली डई अखबार ४ अप्रैल १८५२

[3] पूर्वेक्त ७ अप्रैल १९५२

शाहजहाँपुर—महाराजा ने अपनी माता जी को एक पत्र लिखा है। बाई साहिबा २३ अप्रैल तक ग्वालियर में ठहरेंगी। महाराजा ने ताराबाई को शाहजहाँपुर से लाने के लिए राजकीय वस्त्र देकर मधुराव फलकिया को २०० सवारों के साथ और अद्‌बाजी घाटेका को १०० सवारों के साथ भेजा है।[4]

६ मई को महाराजा की सास गज्जाबाई उज्जैन से ग्वालियर आई हैं। बाई साहिबा के साथ अप्पा साहिब पारनकर कुछ दूर तक आए थे।[5]

गज्जाबाई साहिबा ने दो बार यात्रा में विश्राम लिया। पहली बार माक्षी में और दूसरी बार शाहजहाँपुर में जहाँ १८ मई को पहुँच कर वे दो दिन ठहरीं और ग्वालियर के लिए प्रस्थान किया।

बाई साहिबा ताराबाई ने २३ मई को ग्वालियर जाने का निश्चय किया है। अभी तक यात्रा का प्रबन्ध पूरा नहीं हुआ है इसलिए चार पाँच दिन की देर भी हो सकती है।

माधवराव फलकिया यहाँ आठ दिन से प्रतीक्षा कर रहे हैं। ताराबाई ने उन्हें एक हाथी; एक घोड़ा, आभूषण और पाँच परचे का राजकीय वस्त्र पुरस्कार में दिया है। चालीस मनकारी अफसरों को भी ५ पर्चा का राजकीय वस्त्र मिला। अब उनको ग्वालियर के लिए प्रस्थान करने के सभी प्रबन्ध पूरे हो गए।

उज्जैन—बाई साहिबा ने सिपाहियों को ६ मास का वेतन वितरित किया है। नीलगंगा के किनारे उनकी आज्ञा से एक कुंआ खोदा जा रहा है जिसमें २०००) रुपये का व्यय होगा। उन्होंने रुपया दे दिया है।[6]

अम्मा जी दमोदर की सीपेरी और नरूर का सूबेदार नियुक्त किया गया है। मालवा के लिए भी एक सूबेदार का प्रबन्ध किया गया है लेकिन इसका अभी निश्चय नहीं हुआ है।

महाराजा चाहते हैं कि महालों को खालसा में बदल दिया जाय।

बाबा आप्टे का भाई महाराजा से मिला। ऐसा मालूम पड़ता है कि उसने अपने भाई के लिए ९००० मांगे।

मई १८५२—अपने मंत्रियों की राय से महाराजा ने आज्ञा दी है कि प्रत्येक सूबे में न्याय करने के लिए सुशिक्षित और अनुभवी एक नायक सूबा और एक फारसी में निपुण मुत्सद्दी नियुक्त किए जाँय ताकि सब के साथ समान न्याय हो सके। जनता को अब कोई कष्ट या असुविधा न होगी क्योंकि अपने सूबे में ही उन्हें निर्णय प्राप्त हो जाएगा।

दाह महाल सूबे की देखभाल के लिए अंगरेजी जानने वाला ईश्वरी प्रसाद नामक लेखक २००) मासिक वेतन पर नियुक्त हुआ है। मुंशी शिवराम मन्दसौर की अदालत के लिए नियुक्त हुए हैं।

पहले अदालत का काम काका साहब की देखभाल में होता था। अब आज्ञा हुई है कि अदालत शहर में लाई जाय। लश्कर के मुकदमें भी अब प्रधान न्यायालय में ही देखे जाएँगे।

मामा साहब की अधीनता में जो पैगाह सेना थी उसको शेख दाऊद की अधीनता में रक्खा गया है जो तोपसेना का उपनायक है।

विधि के विधान के कारण मन्दसौर में रुपए में दो आना और नहर में रुपए में छः आना लगान में छूट देने की घोषणा की गई है।

मामा साहब के समय में एक ज्योतिषी जो जेल में रक्खा गया था अब मुक्त कर दिया गया है। महाराजा ने उसे १००० और राजकीय वस्त्र पुरस्कार में दिए हैं।

मामा साहब के समय महाराजा के अत्यन्त प्रिय अभय महाराज दक्खिनी को राज्य से बाहर चले जाने की आज्ञा हुई थी। महाराजा ने उसे बुलाया और आने पर उसका स्वागत किया।

---

[4] पूर्वोक्त अखबार २२ मई १८५२

[5] " " ५ जून १८५२

[6] पूर्वोक्त अखबार १८५२

बुंदेलखण्ड के ब्रिटिश प्रतिनिधि बुश्बी साहब का स्वागत करने के लिए, जो ग्वालियर आरहे हैं महाराजा यहाँ से गए हैं । [7]

पहले हमने खबर दी है कि बाबा आप्टे मालवा के सूबेदार नियुक्त हुए हैं । महाराजा ने उनको राजकीय वस्त्र दिया और बाबा आप्टे इन्दौर की ओर चल पड़े । हम जानते हैं कि इस नियुक्ति का सारे ग्वालियर में स्वागत किया जाएगा । सब लोग बहुत प्रसन्न हैं क्योंकि सबके हृदय में उनके प्रति आदर था ।

अपनी सेवाओं के कारण तोपखाने के नामक हसन खाँ को ब्रिगेडियर मेजर बना दिया गया है ।

ऐसा सुना जाता है कि सवारों को अपने घोड़े स्वयं संभालने होंगे जिससे के लिए उन्होने २२) अतिरिक्त मिलेगा । आजकल शेख दाउद घुड़सवारों का उपनायक है ।

एक तोप-वाहिनी की टुकड़ी छावनी में आ गई है ।

१५० सवार और अनेक प्यादे पैगाह के दीवान जी दिनकर राव की अधीनता में रक्खे गए हैं ।

तोपखाने का दारोगा बलवन्तराव दुःखी है कि उसकी अधीनता में रहनेवाली फौज की टुकड़ी उससे ले ली गई है । अब उसको भी सेना की चार टुकड़ियों का भार दिया गया है ।

सांभाजी कड्गरिया के सुपुत्र आपाजी साहब याकूम के सरदार नियुक्त हुए हैं । दीवान जी के शासन के कारण पंडित लोग बहुत नाराज हैं और उनकी सेना में रहना अपना अपमान समझते हैं । [8]

दाजी आनन्दी मन्दसौर के सूबेदार नियुक्त हुए हैं और १५ मई १८५२ को ग्वालियर से चले गए हैं ।

बाबा आप्टे को महाराजा से राजकीय वस्त्र के अतिरिक्त एक अच्छी नस्ल का घोड़ा और ५००० रुपए प्राप्त हुए हैं ।

तीन व्यक्तियों को जेल भेजा गया जिन्होंने बाबा आप्टे की झूठी शिकायतें की थीं ।

बाबा आप्टे ने मालवा आना स्वीकार नहीं किया और महाराजा से मिलना चाहा । महाराजा ने उनको मिलने की स्वीकृति नही । हम हृदय से चाहते हैं कि बाबा आप्टे यहाँ आएँ ।

गोवर्धन दास की दूकान से एक बन्दर २०००) मूल्य का गहनों का बक्स उठा ले गया । उसका पीछा करने से भी कुछ लाभ न हुआ । वह रामसेठ के पास वाले ऊँचे वृक्ष पर बैठा है । यहाँ से कुछ गहने और कीमती पत्थर उसने गिरा दिए । पुलिस को आज्ञा मिली है कि खोए हुए सामान का पता लगाए ।

एक सर्कस यहाँ आया है । महाराजा ने सर्कस का पहला खेल देखा । [9]

ग्वालियर उसका प्रधान केन्द्र होने के कारण रामराव गोविन्द यहाँ आया है । अब यहीं अदालत दीवानी और फौजदारी बैठेंगी ।

ऐसी खबर है कि दीवान जी दिनकर राव सारे राज्य में थाना और मुन्सफी खोलेंगे । इसलिए बहुत से प्रार्थी नौकरी खोजने के लिए यहाँ इकट्ठे हो रहे हैं ।

महाराजा की सास गज्जाबाई साहिबा लश्कर से यहाँ पधारी हैं । ब्रिटिश प्रतिनिधि उनके स्वागत में शामिल नहीं हुआ ।

ब्रिटिश प्रतिनिधि का खरीता कि महाराजा अब स्वयं शासन भार संभालें यहाँ प्राप्त हुआ है । मैलकोम बहादुर उनके सलाहकार नियुक्त हुए हैं । [10]

ब्रिटिश प्रतिनिधि अपने कर्मचारियों के साथ यहाँ आया है । उसने महाराजा से मुलाकात की, सर्कस का खेल देखा और पान और इत्र लेकर बिदा हुआ ।

जून १८५२—स्वर्गीय मामा साहब के जागीर की सनद उनके पुत्र बापू साहब के नाम से कर ही गई

---

[7] पूर्वोक्त अखबार २८ मार्च १८५२
[8] „ „ ९ जून १८५२

[9] पूर्वोक्त अखबार १६ जून ३८५२
[10] „ „ १६ जून १८५२

है। सदा की भाँति राज-दरबार का प्रबन्ध बलदेवसिंह हवालदार के अधीन है।[11]

ऐसा सुना जाता है कि महारानी ताराबाई का स्वागत करने के लिए महाराजा सिपारी तक जाएँगे। सम्भवतः ताराबाई साहिबा फूलबाग़ में ठहरेंगी।

ऐसा कहा जाता है कि पहले नाज़िमों से न्याय अधिकार और कार्य भार ले लिया गया है और बाबा आप्टे साहब को सौंपा जाएगा अब यह देखना है कि बाबा आप्टे उसको स्वीकार करेंगे या नहीं।

दीवान दिनकर राव तब तक शासन प्रबन्ध चलाएंगे जब तक महाराजा स्वयं पूर्ण अधिकार प्राप्त नहीं कर लेते। उसे पूरा अधिकार है कि वह नए अफ़सर और पुरानों को निलम्बित करे या निकाल दे।

हम पहले लिख चुके हैं कि कि सीपारी में ताराबाई से मिलने के पश्चात् महाराजा ग्वालियर लौट आए। किन्तु सच तो यह है कि बहुत वर्षा और बाढ़ के कारण वह जून तक सीपारी में ही ठहरे थें।

ऐसा कहा जाता है कि महाराजा ने गज्जाबाई साहिबा के लिए ६००० रुपये मासिक का व्यय स्वीकृत किया है।

१० जून को ताराबाई ग्वालियर पहुँच कर फूलबाग़ में ठहरीं। महाराजा बहादुर, चिमनेराजा और गज्जाबाई ने उनका स्वागत किया।

१२ और २० जून के बीच महाराजा दो बार रेज़ीडेन्सी में गए।

पिछले दिन फूलबाग में एक दरबार हुआ। पहले महाराजा ताराबाई से मिले और फिर मैलकोम बहादुर ने उनसे भेंट की।

बाई साहिबा ताराबाई राजमहल में नहीं आना चाहतीं। शायद उनको इच्छानुसार महल में प्रबन्ध नहीं हुआ है।

ऐसी अफवाह है कि बाबा आप्टे मालवा आ रहे हैं। रुपए की कमी से सिपाहियों को दशहरा पर वेतन मिलेगा।[12]

महाराजा शीघ्रता से चलते हुए सीपारी से ग्वालियर पहुँचे। केवल दो नौकर ही इतना तेज उनके साथ आ सके। इन दोनों को उन्होंने पुरस्कार दिया।

किसी ने दिनकर राव के विरुद्ध घृणा या द्वेष के कारण मुक़दमा खड़ा किया किन्तु उसका कुछ नतीजा नहीं हुआ।

ताराबाई शिवपुरी पहुँची हैं। महाराजा बाबा आप्टे को साथ लेकर डाक बंगले पहुँचे और उनका स्वागत किया। शिवपुर के सेनानायक ने उनके स्वागत मे परेड कराया और तोपों से आवाज़ कर उनके पहुँचने की सूचना दी।

आजकल किसी तरह के झगड़े या उत्पात नहीं होते क्योंकि लोग दीवान जी से बहुत डरते हैं। वे जानते हैं कि दीवान जी को सब तरह के अधिकार प्राप्त हैं और वे किसी को भी राज्य से बाहर निकाल सकते हैं।

बाबा मेहरगुरु को बख्शी की पदवी के साथ राजकीय वस्त्र दिए गए हैं। सभी राज्य कर विभाग के अफ़सरों को उनकी आज्ञा मानने के लिए आदेश दिया गया है।

कुछ दिन पहले हमने सूचना दी थी कि धौलपुर के लोग ग्वालियर राज्य की सीमा पर उत्पात मचा रहे हैं। दीवान स्वयं वहाँ गए और उन्होंने शान्ति स्थापित की। अब इस क्षेत्र में पूर्ण शान्ति हैं।[13]

जुलाई १८५२—तीसरी जुलाई की खबरों से मालूम होता है कि निम्नलिखित सैन्य दल स्थानान्तरित किए गए हैं:—

तोपखाने की दूसरी टुकड़ी आगरा भेजी गई। आगरा तोपखाने की तीसरी टुकड़ी ग्वालियर आई। पैदल सैनिकों की एक टुकड़ी ग्वालियर से सीपारी भेजी गई। पैदल सैनिकों की दूसरी टुकड़ी (ग्वालियर पैदल सेना) आगरा भेजी गई और आगरा पैदल सेना की तीसरी टुकड़ी ग्वालियर आई।[14]

---

[11] पूर्वोक्त अखबार १६ जून १८५२

[12] ,, ,, ३१ जुलाई १८५२

[13] पूर्वोक्त अखबार १४ जुलाई १८५२

[14] ,, ,, १७ जुलाई १८५२

दीवान राज्य सीमा की अशान्ति दमन करने के बाद ग्वालियर लौट आए। महाराजा ने दीवान दिनकर राव और बाबा आप्टे के मनकुराव को दूर कर आज्ञा दी कि दोनों ही मिलकर राज्य की उन्नति के लिए प्रयत्नशील हों।

गोपालराव शास्त्री को निलम्बित कर दिया गया। अपील और पुलीस का सरिश्ता जो आजतक बन्द था बाबा आप्टे के हवाले किया गया। एक सैन्य दर कम कर दिया गया और उसके सिपाहियों को अन्य दलों में शामिल कर लिया गया।

बलदेवसिंह हवलदार ने ठाकुरदीन से मनमुटाव होने के कारण उसे निलम्बित कर दिया। ठाकुरदीन पर बहुत ऋण हो गया था और साहूकारों ने उसे इतना तंग किया कि उसने आत्महत्या कर ली। ऐसा कहा जाता है कि ठाकुरदीन पुराना अनुभवी सिपाही था।

पुराने लाञ्छित दीवान रघुपन्त के मकान पर सरकारी पहरा रहता है। उसने एक पैसा नहीं चुकाया और ग़बन स्वीकार भी नहीं किया। दीवान दिनकर राव आजकल हिम्मतजी बाग़ में रहते हैं। [15]

एक चित्रकार को जिसने घोड़े पर सवार महाराजा का एक सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है २००० और राजकीय वस्त्र का पुरस्कार दिया गया।

राज्य के विभिन्न स्थानों में दीवान जी ने मुन्सिफ़ नियुक्त किए हैं। बहुत से प्रार्थी इस सम्बन्ध में आवेदन पत्र लाए थे।

बैजाबाई साहिबा के प्रधान सलाहकार की, जो ग्वालियर आ रहा था मृत्यु हो गई। सच तो यह है कि वह ब्रिटिश सरकार का नौकर था और बैजाबाई की प्रार्थना पर उसने पूना से छुट्टी लेकर ग्वालियर के लिए प्रस्थान किया। इसी बीच में उसकी मृत्यु हो गई। दादा खासजीवाला के पुत्रों के वकील ने दादा साहब के परिवार को वापस लाने की दरबार से आज्ञा चाही और प्रमाण पत्र प्राप्त करने के लिए दो लाख रुपए का नज़राना भी दिया।

ताराबाई अभी तक राजमहल में नहीं पधारीं वे फूलबाग में ठहरीं हैं और अपनी शर्तों के विषय में विचारविनिमय कर रही हैं। [16]

चेमनाराव पण्डित दादा खासजीवाला ने दो लाख नज़राना दिया है। सरकार ने आज्ञा दी है कि उसका एक पुत्र काशी से बुला लिया जाय और इसी विषय का एक पत्र भी भेजा गया है। खासजी का काम तत्कालीन अफ़सरों से लेकर उसके पुत्र चेमनाराव को सौंपा जाएगा।

दीवान जी ने ठेके देना बन्द कर दिया और इस तरह २०,०००) रुपये बचा लिए लेकिन ठेकेदार बहुत नाराज़ हो गए हैं। अब सिवा सन्तोष करने के वे कर ही क्या सकते हैं।

सरकारी माँग पर ध्यान न देते हुए दीवान चारखोड़ रघुजी ने अपने एक लाख देने में से एक पैसा भी नहीं चुकाया है। उसका कहना है कि इस धन के लिए वह जिम्मेदार नहीं। यदि सरकार यह सिद्ध कर सके कि उसकी जिम्मेदारी है तो वह देने के लिए तैयार है। उसका कहना है कि उसको परेशान करने के लिए सरकारने यह नीति अपनाई है। [17]

गोविन्द फलसियावाला को आज्ञा दी गई है कि वे राज्य का ऋण चुका कर सीमा से बाहर चले जांय।

रघुजी पाठक को ड्योढ़ी पर पहरा देने के काम से अलग कर दिया गया है। उसके स्थान पर गंगाधर आप्टे नियुक्त हुए हैं।

ग्वालियर की सूबेदारी ढाकोलसिंह ठाकुर चौहान को दी गई है जो दीवान जी का सम्बन्धी है और राम गोविन्द को उसका सहायक नियुक्त किया गया है।

बाबा आप्टे को चेतावनी दी गई है कि वे मालवा चले जाएँ किन्तु महाराजा से विशेष परिचय होने के कारण वे अभी तक नहीं गए।

—श्री क़ासिम अली सजनलाल, एम. ए.

हैदराबाद

---

[15] पूर्वोक्त अखबार ४ अगस्त १८५२

[16] ,, ,, ४ अगस्त १८५२

[17] पूर्वोक्त अखबार ११ अगस्त १८५२

श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा : भारत के प्रथम क्रांतिकारी

ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने व्यापार के लिए अपनी कोठियाँ स्थापित कीं, लेकिन धीरे-धीरे व्यापार का स्थान साम्राज्य स्थापित करने की भावना ने ले लिया और देखते ही देखते भारत पर अंगरेज़ों का आधिपत्य हो गया था। १ नवम्बर १८५८ को प्रयाग में भारत के तात्कालिक गवर्नर-जनरल लार्ड केनिंग ने महारानी विक्टोरिया की ओर से एक ऐतिहासिक घोषणा पढ़ कर सुनाई थी। उसके बाद अर्थात् सन् १८५८ से १८९२ तक कुछ वैधानिक कार्य किये गए, लेकिन सुधार चाहे कुछ हुआ हो या नहीं, देश में राष्ट्रीय भावना का बहुत तेज़ी से विकास हुआ। सन् १८९२ में इंडियन कौंसिल एक्ट पास हुआ था, जिसका क्रमिक सुधार सन् १९०९ में मार्ले-मिण्टों के सुधार में हुआ था।

देश में निरन्तर नवीन चेतना जागृत हो रही थी। असंतोष के कारण सन् १८८५ में ही अखिल भारतीय काँग्रेस का जन्म हुआ था। प्रारम्भ में यह सामाजिक संस्था थी, किन्तु फिर राजनीतिक संस्था के रूप में अवतीर्ण हो गई। जैसे-जैसे समय तथा परिस्थितियों में हेर-फेर होता गया, कांग्रेस की नीति तथा उसके कार्यों में भी परिवर्तन होता गया। इन परिवर्तनों में सरकार की नीति और कार्यों, अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति और भारतीय नेताओं का विशेष हाथ रहा है। सन् १९०५ में अंगरेज़ों द्वारा उठाये गये बंगाल-विभाजन के प्रश्न से पूरे भारत में विद्रोह की एक भयंकर आग फैल गई थी। वंग-भंग के कारण कांग्रेस में एक नये दल का जन्म हुआ था, जिसके नेता लोकमान्य तिलक, श्री विपिनचन्द्र पाल, गोपालकृष्ण गोखले आदि थे। यह गरम दल कहलाता था और ये सरकार की नीति के बिलकुल विरुद्ध थे तथा क्रांतिकारी भावना के सहारे आगे बढ़ना चाहते थे। शेष, नरमदल वाले उदारनीति से राष्ट्रीयता को आगे बढ़ाना चाहते थे।

क्रांतिकारी दल की स्थापना

मार्ले-मिण्टों सुधार (१९०९) के कारण यही हुआ कि गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी सभा में प्रथम बार एक भारतीय को स्थान मिला। परन्तु देशवासियों को इतने से क्योंकर संतोष होता? विद्रोह तथा क्रांतिकारी भावनायें बढ़ती गईं। देश में अब तक अनेक गुप्त संस्थाओं का जन्म हो चुका था। गोखले तथा सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के उद्योग ने देश की आत्मा में प्रगति ला दी थी और उस समय बंगाल क्रांतिकारियों का क्षेत्र बन रहा था। भारत ही नहीं, भारत के बाहर भी क्रांति की लपटें लहरा रही थीं। श्री श्यामजी वर्मा ने, जो उस समय इंग्लैण्ड चले गए थे, प्रवासी भारतीय विद्यार्थियों के हृदय में क्रांति की ज्वाला प्रज्वलित की। उस समय बंगाल के युवकों में वारीन्द्रकुमार घोष और

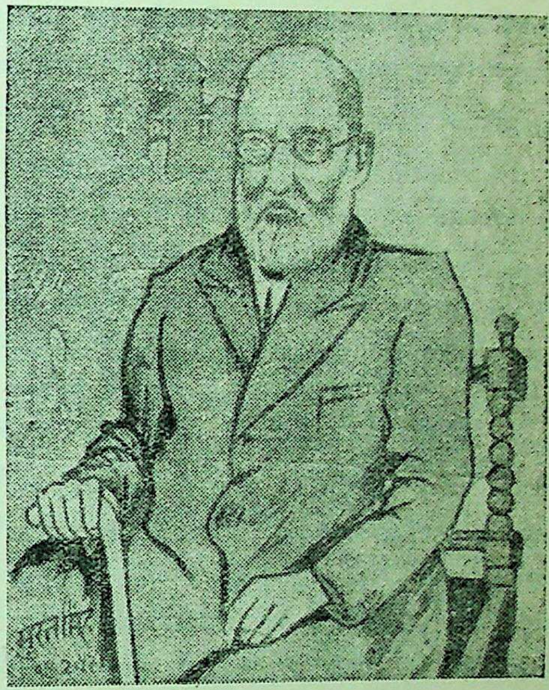

श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा : भारत के प्रथम क्रांतिकारी

महाराष्ट्र के सखाराम गणेश देउस्कर उसी प्रभाव के विचार फूंक रहे थे । यह समय का प्रभाव है कि आज भारत की नई पीढ़ी इन शहीदों से परिचित नहीं है ।

भारत के होमरूल आन्दोलन की प्रसिद्ध नेत्री श्रीमती डा. एनी बेसेण्ट ने एक बार कहा था कि "महर्षि दयानन्द सरस्वती ही प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने भारतीयों के लिये भारत की घोषणा की ।" दयानन्द ने 'स्वराज्य' की सुन्दर व्याख्या की थी और यही नहीं, वे अपने समय के 'स्वराज्य' के एक बहुत बड़े स्वप्न-द्रष्टा भी थे तथा इसके लिए भी उन्होंने अपने कई शिष्य तैयार किये थे, जिनमें भारत के सर्वप्रथम क्रांतिकारी नेता पंडित श्यामजी कृष्ण वर्मा का नाम उल्लेखनीय है ।

श्यामजी का बाल्यकाल व शिक्षा

जब श्यामजी कृष्ण वर्मा पहले पहल स्वामी दयानन्द से मिले, उनकी अवस्था १७ वर्ष की थी और उनका साक्षात्कार बम्बई की भाटिया धर्मशाला में हुआ था । वैसे तो श्यामजी का जन्म ही भारतीय स्वातंत्र्य के प्रथम प्रभावशाली आन्दोलन (या अंगरेजों के कथनानुसार ग़दर ; सन् १८५७ में) के समय सौराष्ट्र (काठियावाड़) के भूतपूर्व कच्छ-भुज राज्य के माण्डवी नामक गांव में गुजरात की भंसाली जाति में हुआ था । इस जाति के लोगों का मुख्य पेशा खेती वाड़ी तथा मेहनत-मजदूरी करना है और अपने को ये सूर्यवंशी क्षत्रिय वंश से बताते हैं । श्यामजी का जन्म एक निर्धन परिवार में हुआ था और उनके पिता बम्बई में मेहनत-मजदूरी करके पेट पालते थे, किन्तु जब वे केवल १० वर्ष के ही थे, पिता ने भी इस संसार से कूच कर दिया । माता तो बचपन में ही चल बसी थीं । तब अपनी नानी से ही उन्हें शिक्षा का सहारा मिला तथा बाद में सेठ मथुरादास जीवाजी भाटिया उन्हें सुशील और मेधावी जान माण्डवी से बम्बई ले आये और भाटिया धर्मशाला में रख कर उनके अंगरेजी तथा संस्कृत पढ़ाने का प्रबन्ध भी कर दिया । वे बड़े कुशाग्रबुद्धि थे और इसीलिए अपनी कक्षा में सदैव प्रथम रहा करते थे ।

ऋषि दयानन्द के सम्पर्क में आने पर तो श्यामजी के जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन आगया । ऋषि ऐसे मेधावी विद्यार्थी को देख कर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने उसके संस्कृत के विशेष अध्ययन का प्रबन्ध करा दिया । बम्बई में ही उनकी प्रारम्भिक शिक्षा विल्सन स्कूल तथा एलफिंस्टन हाईस्कूल में हुई थी । श्यामजी ऋषि दयानन्द के साथ लम्बे समय तक रहे और उनके विचारों से नई प्रेरणा ग्रहण करते रहे । ऋषि की कृपा से ही उन जैसे अनाथ व्यक्ति का विवाह बम्बई के सेठ छबीलदास द्वारकादास भंसाली की १३ वर्षीय सुपुत्री कुमारी भानुमति से होगया था । हाईस्कूल में पढ़ते हुए ही द्वारकादासजी के पुत्र रामदास से उनकी मित्रता होगई थी और उस विवाह का एक कारण यह भी था ।

उच्चशिक्षा के लिये विलायत-यात्रा

साधारणतः लक्ष्मी और सरस्वती का वैर प्रसिद्ध है । धनी घर में शादी होने से श्यामजी की स्थिति बहुत अच्छी होगई थी, किन्तु उनकी ज्ञान-पिपासा बहुत तीव्र थी तथा दूसरे ऋषि की इच्छा यह थी कि श्यामजी यूरोप में संस्कृत का शिक्षण देने जायें । ऋषि के मित्र प्रो. मोनियर विलियम के प्रयत्न से उन्हें २५ अप्रैल १८७९ को ऑक्सफर्ड विश्वविद्यालय में प्रवेश भी मिल गया तथा १५ अक्तूबर से वे वहीं संस्कृत के प्राध्यापक भी होगए और साथ-साथ अंगरेजी की उच्च शिक्षा भी लेते रहे । श्यामजी ही प्रथम भारतीय थे जिसने ऑक्सफर्ड से सर्वप्रथम ससम्मान एम्.ए. पास किया ।

श्यामजी ने लन्दन में रहकर ऋषि दयानन्द के निरन्तर निर्देशनों के आधार पर कई ऐसे महत्व पूर्ण कार्य किये, जिनसे भारत के विषय में—यूरोपियनों के भ्रमों के निवारण में पर्याप्त मदद मिली । उन्हें प्रो. मोनियर विलियम की सहायता से कच्छ-भुज राज्य की छात्रवृत्ति भी मिल गई और वे इनर टेम्पल में बैरिस्टरी की पढ़ाई करने लगे । उन्होंने "भारत में लेखन-कला का उदय" शीर्षक एक निबन्ध पहली बार, लन्दन की रॉयल एशियाटिक सोसायटी में पढ़ा । जिसकी सबने प्रशंसा की तथा उसी के कारण तत्कालीन भारत-मंत्री लार्ड हार्टिंगटन द्वारा उन्हें सन् १८८१ में बर्लिन (जर्मनी) में होने वाली "प्राच्य विद्या परिषद्"

में भारतीय प्रतिनिधि के रूप में भाग लेने भी भेजा गया। सन् १८८३ में जब उस परिषद् का अधिवेशन लन्दन में ही हुआ, तब भी वे ही उसी प्रतिष्ठा के साथ, भारतीय प्रतिनिधि के रूप में सम्मिलित हुए।

भारत-आगमन

ऋषि दयानन्द की मृत्यु से श्यामजी को बड़ा धक्का पहुंचा। उनकी मृत्यु के लगभग दो माह बाद (सन् १८८३ में ही) वे भारत में लौट आये और कुछ समय तक आर्य्य-समाज के क्षेत्र में कार्य करते रहे। किन्तु उन्होंने बैरिस्टरी की पढ़ाई पूरी कर लेने का विचार किया तथा सन् १८८४ में वे अपनी पत्नी को लेकर लन्दन वापस चले गए और नवम्बर में 'इनर-टेम्पल' से बैरिस्टर बन गए तथा अगले वर्ष (१८८५) पुनः भारत लौटकर उन्होंने बम्बई में बैरिस्टरी शुरू कर दी। किन्तु शीघ्र ही वे एक हज़ार रुपये मासिक वेतन पर रतलाम राज्य के दीवान नियुक्त होगए और उस पद पर ३ वर्ष तक कार्य करते रहे। तदनन्तर वह पद त्याग कर अजमेर में वकालत करने लगे तथा वहाँ के म्युनिसिपल कमिश्नर भी चुने गए। सन् १८९३ के आरम्भ में वह उदयपुर की राज्य-सभा के मंत्री निर्वाचित हुए और सन् १८९५ में डेढ़ हज़ार रुपये मासिक पर जूनागढ़ (काठियावाड़) राज्य के दीवान बन कर अपने ही प्रदेश में लौट आये।

लेकिन अगले ही वर्ष (१८९६) ब्रिटिश सरकार ने भारत को कठिन शिकंजों में कसने की नीति धारण कर ली। श्यामजी अपनी मातृभूमि को भूले नहीं थे। भारतीयों में सरकार के विरुद्ध विद्रोह की ज्वाला ज़ोर पकड़ने लगी थी। २२ जून १८९७ को प्लेग कमिश्नर मि. रैण्ड की हत्या छप्पेकर बन्धुओं ने कर डाली। यह घटना पूना में दामोदर और बालकृष्ण छप्पेकर द्वारा हुई, क्योंकि रैण्ड के प्लेग संबंधी कार्यों के कारण जनता में बहुत ही असंतोष था। ठीक उसी समय 'केसरी' के सम्पादक, लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक को राजविद्रोही ठहरा कर सजा दे दी गई।

लन्दन में क्रांतिकारी संगठन

देश की वैसी भयंकर स्थिति में कोई भी देशभक्त चुपचाप कैसे बैठ सकता था। श्यामजी ने उस स्थिति पर गंभीरतापूर्वक विचार किया और निश्चय किया कि भारत के बाहर रहकर भारत के लिये, क्रांतिकारी प्रकृति के प्रसार से अधिक लाभ होगा और जुलाई १८९७ में बम्बई से वे लन्दन चले गये। कुछ समय तक तो वे चुपचाप इस कार्य को संगठित करते रहे, किन्तु १८ फरवरी १९०५ को उन्होंने लन्दन में ही 'भारत स्वराज्य सभा' (इण्डिया होमरूल सोसाइटी) की स्थापना कर दी और स्वयं ही उसके प्रधान बने। सभा की ओर से एक मासिक मुख-पत्र "इण्डियन सोशियालोजिस्ट" का प्रकाशन भी प्रारम्भ कर दिया। प्रचार के लिए उस पत्रिका का मूल्य एक आना मासिक ही रखा तथा यह १८ वर्षों तक अर्थात् १९२३ ई. तक निकलती रही। श्यामजी के शब्दों में सभा और पत्रिका का उद्देश्य "भारत के लिए स्वराज्य प्राप्त करना और यथासम्भव हर तरह से विलायत में वास्तविक भारतीय प्रचार करना था। इस प्रकार "स्वराज्य" का बिगुल बजाने वालों में श्यामजी पहले भारतीय थे। यहाँ यह संस्मरणीय है कि भारत में दादाभाई नौरोजी ने ही दिसम्बर १९०६ में कांग्रेस के रंगमंच से 'स्वराज्य' शब्द कहा था। लोकमान्य तिलक ने सन् १९१६ में लखनऊ-कांग्रेस के अवसर पर "स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है" की घोषणा की थी।

श्यामजी ने अपने मिशन के प्रचार और लन्दन में, भारतीय विद्यार्थियों के निवास की सुविधा के लिए, "हाईगेट" नामक क्षेत्र में एक मकान भी खरीद लिया और इस प्रकार १ जुलाई १९०५ को "इण्डिया हाउस" (भारतीय भवन) की स्थापना उन्होंने की थी। सन् १९०६ और १९०७ में इण्डिया हाउस राजविद्रोहियों का नामी केन्द्र बन गया था। यहाँ तक कि जुलाई १९०७ में इसके विषय में पार्लमेंट में एक प्रश्न द्वारा सरकार का पंडित श्यामजी कृष्ण वर्मा के बारे में मत भी पूछा गया था। इसके कुछ समय बाद वे पेरिस चले गए

और वहीं से राजविद्रोह का कार्य और भी खुले ढंग से करने लगे। लन्दन में कार्य उन्होंने संगठित कर दिया था और अपना पत्र (इण्डिया सोशियोलोजिस्ट) पेरिस में रहते हुए भी लन्दन से ही छपवाते रहे।

जुलाई सन् १९०९ में "इण्डियन सोशियालोजिस्ट" के प्रकाशक पर मुकदमा चला और सजा हुई। तब छपाई का भार एक अन्य व्यक्ति ने अपने जिम्मे ले लिया, परन्तु उसी वर्ष सितम्बर में, उस पर भी मुकदमा चला और एक वर्ष की कैद की सजा भी मिली। इसके बाद वह पत्र पेरिस में ही छपने लगा। श्यामजी ने पेरिस के सरदारसिंह राणा द्वारा इण्डिया हाउस के साथ सम्बन्ध बनाए रखा और वे उसके कार्यक्रम को चलाते रहे थे।

'इण्डिया हाउस' की प्रवृत्तियाँ

जैसा कि लिख चुके हैं, श्यामजी ने १९०५ में ही लन्दन में 'इण्डिया हाउस' की स्थापना की थी और उसमें २५ भारतीय विद्यार्थियों के निवास की व्यवस्था की थी। मकान की पहली मंजिल में वाचनालय व सभागृह थे और शेष दो मंजिलों पर विद्यार्थियों के रहने का प्रबन्ध किया गया था। दिसम्बर १९०५ में श्यामजी वर्मा ने योग्य भारतीयों को विदेश-भ्रमण के लिए एक-एक हजार के ६ वजीफे देने की घोषणा की थी, जिससे कि भारत के लेखक, सम्पादक आदि अमेरिका और यूरोप का अध्ययन कर भारत में राष्ट्रीय एकता और स्वाधीनता के विचार फैलाने में समर्थ हो सकें। इसी प्रकार श्यामजी ने अपने व्यय से 'हर्बर्ट स्पेंसर ट्रैवलिंग फेलोशिप' और 'दयानन्द फेलोशिप' आदि छात्रवृत्तियाँ स्थापित की थीं और अपने मित्र, गुजरात की धर्मपुर रियासत के पेरिस-प्रवासी व्यापारी और बैरिस्टर श्री सरदारसिंह राणा के धन से भी दो-दो हजार की तीन ऐसी ही छात्रवृत्तियाँ—'राणा प्रताप,' 'छत्रपति शिवाजी' आदि के नाम से चालू की थीं।

इन्हीं छात्रवृत्तियों के सहारे श्यामजी ने लन्दन में अपने मिशन के प्रचारार्थ कुछ रंगरूट जमा कर लिये थे। उस समय इण्डिया-हाउस के निवासियों में भाई परमानन्द, श्रीमती कामा, लाला हरदयाल, धर्मवीर, सेनापति बापट, सावरकर आदि थे। इस प्रकार सारा इण्डिया हाउस क्रांतिकारियों की हलचलों का प्रधान केन्द्र बना हुआ था और ये लोग अपने विचारों का प्रचार न्यूयार्क की आयरिश रिपब्लिकन संस्था के मुख-पत्र "गीलिक रिपब्लिकन" द्वारा भी किया करते थे।

सन् १९०८ की १० मई को इण्डिया हाउस में सन् १८५७ के गदर अथवा स्वातंत्र्य-संग्राम का स्मृति-दिवस मनाया गया था। उस उत्सव में ब्रिटिश द्वीपों के विभिन्न भागों से लगभग एक सौ भारतीय विद्यार्थी सम्मिलित हुए थे। इसके कुछ समय बाद भारत में 'ऐ शहीदो!' शीर्षक पर्चा बँटा था, वह स्वतंत्रता के लिये किये गए उस युद्ध की ही स्मृति में, श्यामजी के आदेश से छपा और वितरित किया गया था। इण्डिया हाउस में उपस्थित हुए उन व्यक्तियों को भी वह पर्चा और 'घोर चेतावनी' नामक एक दूसरी पुस्तिका की प्रतियाँ मुफ्त दी गईं थीं ताकि वे लोग भारत में अपने मित्रों को वह साहित्य भेज सकें। इण्डिया हाउस में प्रति रविवार सभा होती थी और इस मार काट की नीति का प्रचार हुआ करता था। उसी समय एक अधिवेशन में श्रीमती कामा (पारसी महिला) ने भारत के राष्ट्रीय झण्डे को फहराया था, जिसमें नागरी-लिपि में 'वन्दे मातरम्' अंकित था। वह ऐतिहासिक झण्डा अब भी पूना में सुरक्षित रखा है।

समय की स्थिति को ध्यान में रखते हुए क्रांतिकारियों ने चाल से काम लेने का निश्चय किया। उन्होंने अपनी कूटनीति प्रकट करते हुए लिखा कि भारतवर्ष में आन्दोलन खुल्लम-खुल्ला नहीं करना चाहिए तथा अंगरेजी अफसरों के पहले देशी अफसरों को ही वश में करना पहले आवश्यक है। यह सच है कि श्यामजी के ही उद्योग से विदेशों से सम्बन्ध रखने वाले सभी षडयंत्रों का केन्द्र 'इण्डिया हाउस' था। श्यामजी ने स्थिति की गंभीरता को देख कर उस संस्था को बन्द कर दिया तथा वह मकान भी बेच डाला। तब तक क्रांतिकारी आन्दोलन भारत में भी बहुत जोर पकड़ गया था।

नवयुवकों के आदर्श

कोई कुछ भी कहे, इस बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि क्रांतिकारी आन्दोलनों ने भी देश की स्वधीनता का पथ प्रशस्त किया । सच पूछिए तो अनेक लोगों की कुर्बानियों से हमें आजादी हासिल हुई है, जिनमें से अधिकांश का हमें आज नाम भी मालूम नहीं । लेकिन उन्होंने इस देश का इतिहास बनाया है । पंडित श्यामजी कृष्ण वर्मा का महान् त्याग और अपने आदर्श की बलिवेदी पर मर मिटने का अदम्य उत्साह भारत के नवयुवकों के लिए एक प्रेरणा की चीज रहा है और रहेगा । आप मानें या न मानें, उन्हीं जैसे वीरों की बदौलत आज यह देश पराधीनता की शृंखलाओं से मुक्त हुआ है । आजादी सदैव खून मांगती है और ऐसे लोगों ने देश की आवाज पर अपना खून दिया । उन शहीदों को हम क्या कभी भूल सकेंगे ? उन शहीदों ने जिस खून से खेत को सींचा था, उस खेत में लगे फलों को आज हम आजाद हिन्दुस्तान में चख रहे हैं ।

श्यामजी कृष्ण वर्मा सच्चे देशभक्त थे और उनके हृदय में देश के लिए कुर्बान होने की अमिट भावना विद्यमान थी । सन् १९१५ में जब फ़्रान्स की राजनीति ने भी इंग्लैण्ड का पल्ला पकड़ा, तो श्याम जी को पेरिस भी छोड़ना पड़ा । उसी वर्ष २ जुलाई को वहाँ से वे स्विटजरलैण्ड चले गये और अपने जीवन के अंतिम दिन उन्होंने अपनी पत्नी सहित जिनेवा नगर में ही काटे । सन् १९२६ ई. में जब सोवियट रूस के दसवर्षीय उत्सव में भाग लेने के लिए श्री पं. मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू और श्रीनिवास शास्त्री रूस गये तब लौटते हुए पं. जवाहरलाल नेहरू श्यामजी से मिलने जिनेवा पहुँचे थे । जिनेवा में ही इस देशभक्त का देहावसान ७३ वर्ष की अवस्था में सन् १९३० की ३१ मार्च संध्या के समय हुआ । वहीं २ वर्ष बाद ७१ वर्ष की उम्र में उनकी पत्नी का भी देहान्त होगया । उनके कोई संतान नहीं हुई, लेकिन श्यामजी की कीर्ति अमर रहेगी । श्यामजो की धन-राशि से उनकी स्त्री ने एक शिक्षा-ट्रस्ट बना दिया था, जो विदेश पढ़ने जाने वाले विद्यार्थियों को अब भी छात्रवृत्ति देता है ।

पिलानी (राजस्थान)

—अखिलविनय

तेलुगु

उप्पु कप्पुरंबु नोक्क पोलिकनुंडु : कपूर और नमक दोनों आकार में एक ही प्रकार के होते हैं ।
चूड चूड रुचुल जाड वेरु : लेकिन स्वाद में दोनों भिन्न हैं
सज्जनुलगुवारि जाडलु वेरया : सज्जन और दुर्जन भी देखने में एक जैसे होते हैं परन्तु उनके चरित्र भिन्न होते हैं ।

विश्वदाभिराम विनुरवेम

—वेमना

तेलुगु का शतक–साहित्य

तेलुगु साहित्य के इतिहास में 'शतक-साहित्य' का उसके परिमाण एवं विशेषता से निस्संदेह महत्वपूर्ण स्थान है। साहित्य की यह शाखा आंध्र वाङमय के आरंभ काल से भी पुष्ट रूप में विद्यमान हो कर, इस प्रवाद को कि साधारणतया प्राचीन कवि सामाजिक या राजनैतिक जीवन पर ध्यान नहीं देते थे, निराकृत कर देती है और इस परम सत्य की स्थापना कर देती है कि प्राचीन काल से भी तेलुगु के कवि सामाजिक, ऐतिहासिक तथा राजनीतिक जीवन से प्रभावित हो कर अपनी रचनाओं में उनका जीता जागता चित्रण करते थे।

शतक-साहित्य में अपनी विशेषताएँ पाई जाती हैं। संस्कृत अथवा हिंदी साहित्य में भी शतकों की रचना हुई है परन्तु रचना-प्रणाली में तेलुगु के शतक साहित्य की अपनी ही कुछ विशेषताएँ हैं। हिन्दी में शतकों की अपेक्षा सतसई की परंपरा ज्यादा चली है। हाँ, हज़ारा, नौसई आदि की परंपरा थोड़ी बहुत चली है। संस्कृत में सप्तशतियों की और शतकों की रचना हुई है। तेलुगु में सप्तशती की परंपरा का अभाव है। शतकों की रचना तो पहले भी हुई और अब भी हो रही है। इन शतकों के दो विभाग किए जा सकते हैं (१) आत्मपरक और (२) बाह्यवस्तुपरक। आत्मपरक शतकों को हम भक्ति के शतक कह सकते हैं। इन शतकों में कवि पुलकित मन और तन से अपने इष्टदेव के सामने व्यक्तिपूर्णवाणी से आत्मनिवेदन करने लगता है। अपनी तुच्छता का अनुभव तथा परमात्मा की महान् विभूति का दर्शन करके वह गद्‌गद् हो जाता है, और विनम्र वाणी से भगवान् से क्षमा की याचना करके अपने पाप पंक को प्रक्षालित करने का प्रयत्न करता है। अतः इन शतकों की रचना के लिए कवि में मनोनैर्मल्य तथा अनुभूति की तीव्रता की परम अवश्यकता है। जिस कवि में ये दोनों गुण विद्यमान न हों वह शतक नहीं लिख सकता।

दूसरे वर्ग में बाह्यवस्तुपरक कविता है। ऐसे शतकों में कवि तटस्थ समालोचक की भाँति सामाजिक भलाइयों या बुराइयों की छानबीन करके या तो निर्णय सुनाता है या निर्वेद अथवा ग्लानि प्रकट करता है। कुछ समयों में लोकज्ञता से भरी हुई सूक्तियों के द्वारा समाज के सुधार के लिए उपदेश देता है और अन्य समयों में गहन विषयों की पुष्टि लोक वृत्त में पाई जानेवाली घटनाओं अथवा लोकोक्तियों के द्वारा करता है जिससे उनकी बात को साधारण से साधारण जन भी हृदयंगम कर लेता है। इस प्रकार के 'शतकों' में दर्शन, चिंतन और वैराग्य की मर्मभरी बातों का उद्‌घाटन होता है।

कई बार कवि सामाजिक कुरीतियों या ऐतिहासिक दुर्घटनाओं पर भगवान् की आड़ में खड़े हो व्यंग्य के ऐसे छींटे डालता है जो पाठक के हृदय पर मार्मिक आघात पहुँचाए बिना नहीं रहते। अन्य समयों में कवि उचित स्वतंत्रता के साथ भगवान् के बारे में भी व्यंग्य के बाण छोड़ता है। इन रचनाओं में कवि की निस्सहायता के साथ साथ लघु हास्य भी मिला रहता है। इनको हम व्यंग्य शतक कह सकते हैं।

शतक में, चाहे वह उपयुक्त प्रकारों में से किसी प्रकार का क्यों न हो, किसी इष्टदेव का संबोधन हर एक पद्य के अंत में दिखाई देता है, यह बात संस्कृत में अथवा हिन्दी में लक्षित नहीं होती। हाँ, इस नियम के अपवाद रूप में, तेलुगु में कुछ शृंगारी शतक हैं जिनमें कांता का संबोधन है और कुछ वैराग्य-शतक हैं जिनमें आत्म या मानस का संबोधन किया गया है। परन्तु ऐसे शतकों की संख्या बहुत कम है। शतकों में साधारणतया किसी एक ही छंद का प्रयोग होता है। कारण यह है कि कवि अपने इष्टदेव के संबोधन के रूप में वह शब्द अथवा शब्दों का समूह रख लेता है जो किसी एक प्रकार के

छंद में ही प्रयुक्त हो सकता है। कवि अपने इष्ट देव का संबोधन हर एक पद्य में एकरस रखता है, कभी इसमें परिवर्तन नहीं करता। इससे किसी एक छंद का ही प्रयोग करना पड़ता है। कभी सजातीय दूसरे छंद का भी प्रयोग होता है, जिसमें संबोधन का शब्द बिठाया जा सकता है। मगर ऐसा कम जगहों में ही हो पाता है। शतकों में पद्यों की संख्या प्राय: एक सौ आठ की होती है। इस संख्या के पीछे निश्चय ही एक धार्मिक भावना काम कर रही है। साधारणतया, इष्टदेव की उपासना में अष्टोत्तर शत नामावली का जप हुआ करता है।

इसी परिपाटी के अनुसार शतकों में पद्यों की संख्या भी प्राय: नियत है। इसके अपवाद रूप में भी कुछ शतक ऐसे अवश्य हैं जिनमें पद्यों की संख्या एक सौ आठ से या तो कम हो या अधिक हो। तेलुगु के कवियों में प्राय: यह परिपाटी अद्यावधि दिखाई देती है कि जो कविता लिखना चाहते हैं वे पहले अपनी अभ्यास दशा में इष्टदेव का संबोधन करते हुए कोई शतक लिखा करते हैं और प्रौढ़ काव्यों की रचना अनंतर दशा में करते हैं। ऐसा कोई कड़ा नियम नहीं है क्योंकि ऐसे सफल शतक कवि भी हैं जिनका कोई काव्य उपलब्ध नहीं है और ऐसे कवि भी बहुत हैं जिनकी काव्य के अतिरिक्त, कोई शतक-रचना प्राप्त नहीं होती।

शतकों की वस्तु पर विचार करने पर निष्कर्ष यह निकलता है कि वह शत प्रति शत मुक्तक रचना है। इनमें हर एक पद्य एक स्वतंत्र भाव को लेकर विकसित होता है और अपनी समग्रता एवं संपूर्णता से पूर्ण प्रतीत होता है। भक्तिपूर्ण शतकों में कवि के आत्मनिवेदन के साथ भगवान् के लीला-वैभव की प्रशंसा यथेष्टमात्रा में प्राप्त होती है। अन्य वर्ग के शतकों में ऐतिहासिक घटनाओं की ओर मर्म संकेत मिलते हैं।

शतकों की शैली प्राय: सरल है परन्तु उसमें प्रभावोत्पादक शक्ति पूर्णरूप से मिलती है। काव्य अथवा प्रबंधों में पाए जानेवाले कलापक्ष की अधिकता शतक-शैली के प्रतिकूल है। अत: कवि हृदयपक्ष पर ही अधिक ध्यान दे कर शतकों के कविकर्म में सफल होता है। कवि की एकमात्र इच्छा यह होती है कि सरल तथा मार्मिक भाषा में अपने मनोगत भावों को जनता तक पहुँचाए।

हम देखते हैं कि तेलुगु साहित्य के इतिहास में प्राचीन काल से भी शतक साहित्य का एक अक्षय भंडार है। जो ग्रामीण जनता काव्य पुराण आदि नहीं पढ़ सकती वह इस सरल शतक साहित्य के अध्ययन अथवा श्रवण से ही जीवन के अनमोल संदेशों को और ऊँचे आदर्शों को अपना सकती है और अपने को सुशिक्षित नहीं तो सभ्य अवश्य बना सकती है। इस प्रकार शतक साहित्य, शिक्षित समाज और ग्रामीण जनता में सांस्कृतिक सामंजस्य बना रखनेवाला एक अद्भुत साहित्यिक प्रयोग है। ऐसे साहित्यिक प्रयोग का इतना विस्तृत भंडार शायद ही हमें दूसरी देश भाषाओं के साहित्य में मिले।

१. भक्ति शतक :—

पहले तेलुगु साहित्य में शिव भक्ति से भरे शतकों की रचना हुई। सर्वप्रथम शतकों में से यथावाक्कुल अन्नमय्य का लिखा हुआ 'सर्वेश्वर शतकम्' है। सन् १२४२ ई. में यह लिखा गया था। कवि जिला गोदावरी के 'पट्टेसमु' ग्राम के वीरभद्र स्वामी के भक्त थे। श्रीशैल क्षेत्र में इन्होंने शतक को लिखा। इनके भाव स्वच्छ एवं स्वच्छंद हैं अत: सबों को मान्य हैं। निम्नलिखित पद्य में उनके भाव कैसे महत्व रहे हैं देखिए :—

> "भवदीयार्चन सेयुचो प्रथमपुष्पंबन्न सत्यंबु, रें
> डव पुष्पंबु दयागुणंबितिविशिष्टं बैकनिष्ठा समो
> त्सव संपत्ति तृतीय पुष्पमदि भास्वद्यक्ति संयुक्तयो
> गविधानं बवि लेनि पूजलु महिं गैकोक सर्वेश्वरा"

> "हे सर्वेश्वर तेरी सेवा में प्रयुक्त होने योग्य पुष्प इस प्रकार हैं। पहला पुष्प सत्य है, दूसरा कुसुम विशिष्ट दयागुण है, तीसरा पुष्प भक्तिसहित योग भाव से परिणत दृढ निष्ठा है। बग़ैर इनके पूजाओं को तू स्वीकार नहीं कर सकता॥"

'वृषाधिपशतकमु' की रचना पालकुरिकि सोमन्न ने की। इस में शैवधर्म के प्रवर्त्तक बसवेश्वर का संबोधन है। सोमन्न में शैव धर्म की प्रगाढ़ निष्ठा थी। अत:

कहीं कहीं अन्य धर्मों की अवहेलना भी इसमें प्राप्त होती है। सोमन्न का प्रवेश कन्नड़ और महाराष्ट्र भाषाओं में भी था। अतः इन भाषाओं में एक एक पद्य इन्होंने लिखा। साथ ही 'मणिप्रवाल शैली' में भी इन्होंने कुछ पद्य लिखे। 'मणिप्रवाल शैली' में दो पृथक् भाषाओं का प्रयोग एक ही छंद में होता है। ऐसे साहित्यिक प्रयोग के लिए मलयालम् भाषा अधिक प्रसिद्ध है। अलावा इस शतक के सोमन्न ने बत्तीस संख्या में 'चेन्न-मल्लुसीसमुलु' लिखे। इनमें वीर शैव धर्म का प्रतिपादन गंभीर विश्वास के साथ किया गया। शैवधर्मावलंबी कवि तेलुगु साहित्य के इतिहास में दो बातों के लिए पथ-प्रदर्शक हैं। 'द्विपदा' छंद को अपनाने वाले पहले कवि ये ही हुए। दूसरी सराहनीय बात यह है कि ये शतक साहित्य के प्रथम रचयिताओं में से थे।

देवकी नदंन शतकमु :—

यह एक प्राचीन शतक है। यह श्रीकृष्ण के संबोधन पर रचा गया है। भाव सरल और सरस हैं। इसके कवि के विषय में निश्चितरूप से नहीं कहा जा सकता।

ओंटिमिट्ट रघुवीरशतकमु :—

जिला कडपा में बसे हुए 'ओंटिमिट्ट' नामक ग्राम में विराजमान श्रीरघुवीर पर लिखा गया भक्तिपूर्ण शतक है। रचयिता प्रसिद्ध कवि अय्यल राजू रामभद्र कवि थे। शतक में कवि भगवान् के साक्षात्कार का अनुभव करके आत्मनिवेदन करने लगते हैं, मानों वे भगवान् से स्वयं बोल रहे हों। शतक में अनोखा भाव प्रवाह और अलंकारों की मीठी योजना भी है।

"मुनु ना केन्नडु दोसमुल् गलवु ना ग्रोलन् भयंबंदके
यनिनन् गालुनि पोटु बंटुलिक नन्नापेरु ना पेरुपे
ट्टिनवाणि वरलोक दुरुडनि पट्टे देहु पोंडंचुबो
रन रम्मायियुडड्डुगिप रघुवीरा जानकी नायका"

"हे रघुवीर! जानकीनायक! तू कहता है कि मुझ में ऐब कभी नहीं हो सकता। तू घबरा मत। मगर इधर यम के विकट भट मुझे सता रहे हैं। अतः हे भगवन्! तू आकर इनको रोक और पूछ कि तुम लोग स्वनाम धेय व्यक्ति को परलोक से वंचित कर सकते हो" कविका नामधेय रामभद्र है और संबुद्ध भगवान् रघुवीर हैं। अतः ऐसी प्रार्थना की गई है।

महाकवि धूर्जटि ने 'काल हस्तीश्वर शतकमु' लिखा। यह दक्षिण-काशी, 'श्रीकाल हस्ति' क्षेत्र में विराजमान महादेव को संबोधन कर लिखा गया शतक है। भाव बड़े ही मर्मस्पर्शी हैं। रचना साफ़ और प्रभावोत्पादक है। कवि में जगह जगह पर स्वतंत्र प्रवृत्ति का अच्छा परिचय मिलता है। रचना में निर्वेद, असहायता आदि भाव भी भक्ति के साथ मिलते हैं।

"कायलगाचे वधूनखाग्रमुलचे गायंबु वक्षोजमुलु
रायन्रापडे रोम्मु, मन्मथविहार क्लेशविभ्रांति चे
व्रायं बायेनु बट्टगट्टेदल चेप्पन् रोत संसारमे,
चेयंजाल विरक्तुजेय गदवे श्रीकाल हस्तीश्वरा"

"हे ईश्वर! मेरा यह शरीर कांताओं के नख स्पर्श से श्लथ हुआ, मेरा वक्षस्थल उनके कुचों के आघातों से कठिन बन गया, सारी उम्र तो मन्मथ विकारों की चिंता में कट गई, इन सब विषयों से जी उचट गया है, क्या कहूँ। यह पारिवारिक झंझट ही घृणापूर्ण है! अतः हे भगवान् मुझे इस संसार के प्रति विरक्त बनाओ"

दाशरथी शतकमु—रचना महाभक्त रामदास के द्वारा हुई। गोलकोंडा के नवाब तानाशाह के राजत्व काल में ये वर्त्तमान थे। कहते हैं कि ये भद्राचल में रहते हुए सरकारी मालगुजारी को भक्तों तथा पीड़ितों की सेवा में बाँट देते थे। नवाब रूठ गए और उसने भक्त रामदास को जेल में डाल दिया। जेल में रहते हुए भी रामदास अपने इष्टदेव श्रीरामचन्द्रजी के ध्यान में रत थे। श्रीराम और लक्ष्मण ने तानाशाह के पास नौकरों के भेष में जा कर सरकारी रक़म को अदा कर दिया। इस पर तानाशाह को बड़ा अचंभा हुआ और उसने रामदास को छुड़वा दिया। रामदास से पूछताछ करने पर मालूम हुआ कि वे स्वयं इस विषय से अनभिज्ञ थे। इस पर रामदास की भक्ति की महिमा सबों को विदित हुई रामदास का असली नाम कंचर्ल गोपन्न था। परन्तु श्रीरामचन्द्र जी के परम भक्त होने

से वे रामदास कहलाते थे । समर्थ रामदास आदि अन्य संतों से पृथक् करने के लिए वे भद्राचल रामदास कहलाते हैं । इन्हीं ने 'दाशरथि शतकमु' लिखकर भक्ति का अतुल प्रवाह बहा दिया । रचना इतनी रुचिर मालूम पड़ती है मानों दूध में शर्कर घुला मिला हो । राम की रूप माधुरी पर भक्त कैसे लट्टू हैं देखिए :—

"चिक्कनि पालपैमिसिमि जेंदिन मीगड पंचदारतो
मेक्किन भंगि मीविमल मेचक रूपसुधार संबुना
मक्कुव पल्लेरंबुन समाहित दास्यमनेटि दोयिटन्
दक्केनटंच् जुर्रेदनु दाशरथी ! करुणापयोनिधि ।"

"हे दाशरथि ! अपार कृपा के समुद्र में आपके स्वच्छ श्यामल सौंदर्य्यरूपी अमृत को प्रेम पात्र में रखकर, दास्य भाव रूपी अंजलि से जी भर पान करूँगा जैसे कोई गाढ़े दूध पर जमी हुई मलाई को शर्करा से मिला कर खाता है"

इस प्रकार महान् भक्त रामदास भगवान् की रूप सुधा को पीना चाहते हैं । भक्त की कैसी मनोरम लालसा है ।

वैसे ही कृष्ण शतकमु और लक्ष्मी शतकमु नरसिंह शतकमु, आदि भी भक्ति के शतक हैं । हाँ, यत्र तत्र नीति की सूक्तियाँ भी इनमें मिलती हैं ।

२. नीति वैराग्य शतक :—

वैराग्य और वेदांतपरक शतकों में 'नारायण शतकमु' 'राम राम शतकमु' 'शिवमुकुंद शतकमु, 'संपंगि मन्न' आदि शतक प्रसिद्ध हैं ।

'नारायण शतकमु' 'राम राम शतकमु' गीत-रूप में हैं । परमानंद यति ने 'शिवमुकुंद शतकमु' की रचना की । परमानंद यति सोलहवीं सदी के अंत में थे । इस शतक की विशेषता यह है कि हरि और हर में अभेदभाव की प्रतिपादना सम्यक् रीति से हुई ।

'संपंगिमन्न शतकमु' में अद्वैत वेदांत का निर्देश सरल ढंग पर हुआ है और साथ ही सामाजिक दंभ और कुरीतियों की निन्दा भी हुई है ।

"सन्न्यासुलमनि शास्त्रो
पन्न्यासमु सेयनंदुफल मेमिमन
स्सन्न्यासमु दोरकनिया
सन्न्यासमु कूटि कन्न संपगिमन्ना"

"हे संपंगि मन्न ! केवल सन्यास कहलाकर शास्त्रों में कही गई बातों को रटने से क्या लाभ है ? जब तक मन में सच्ची सन्यास-भावना नहीं दृढ़ होती तब तक वेषमात्र का सन्यास पेट भरने के लिए है ।"

सदानंदयोगि का लिखा हुआ 'सदानंदयोगि शतकमु' भी दार्शनिकता का पुट लिए हुए है । ये मूर्तिपूजा के विरुद्ध थे ।

ताडेपल्लि पानकालराम कवि ने 'मानसबोध शतकमु' को लिखा । ये अठारहवीं सदी में वर्तमान थे । इस में कवि हर एक पद्य में अपने मन को भक्ति के बारे में तक़ाज़ा करते थे । भक्ति की सर्वोत्कृष्टता का क्या ही सरल ढंग से सफल प्रतिपादन किया गया है ।

"इटुनटु पालुंद्रावि परुवेत्रुट कंटेनुनिल्चि नीरु ग्रोलुट कडु मेलु मेलनेडु लोकहितोक्ति गणिंचि चाल मि

क्कुटमगु कर्म बंधमुल गासिल कच्युतु चेरमंटि, वे ।
सट वडकिक नैन मनसा हरि पादमुलाश्रयिंकमा ।"

"हे मन दौड़ धूप करके दूध पीने की अपेक्षा शांत चित्त से खड़े हुए पानी पीना बेहतर है । इस लोकोक्ति को ध्यान में रख कर कर्म बंधनों में मत फँस जाओ । श्रीहरि के चरणों की शरण लो ! कम से कम अब से मेरी सलाह मानो ! इसी में तेरा श्रेय है ।"

नीतिपरक शतकों में सबसे उत्तम स्थान 'सुमति शतकमु' को प्राप्त है । प्रायः नीतिशतकों में सामाजिक जीवन का प्रतिबिंब होता है । समाज में पति, पत्नी, माता पिता, पुत्र, गुरु राजा आदि के प्रति जो उचित व्यवहार होना चाहिए उसका उचित उपदेश मिलता है । शौर्य्य, सत्य, दया, धन, दारिद्रय आदि विविध विषयों पर कवि सम्यक् प्रकाश डालता है । निस्संदेह, नीतिपरक शतकों के अध्ययन से मनुष्य लोकज्ञ एवं व्यवहारविद् बनता है । 'सुमतिशतकमु' की प्रशस्ति झोंपड़ी से लेकर महल तक है ।

तेलुगु प्रांत में कोई भी ऐसा शिक्षित आदमी या बालक न होगा जिसे इस शतक में से दो चार पद्य ज़बानी याद न हों। खेद का विषय है कि इसके रचयिता का पता अभी निश्चित रूप में नहीं लग सका।

'एरकुमी कमुगायल
दूरकुमी बंधुजनुल दोसमु सुम्मी
पारकुमी रण मंदुन
मीर कुमी गुरुवुलाज्ञ मदिनि सुमति'

"हे अच्छे मन वाले! तुम कच्चे कच्चे फलों को मत तोड़ो। रिश्तेदारों की मौके बेमौके निंदा मत करो। रण में से भाग मत निकलो और अपने गुरुजनों की आज्ञा का उल्लंघन कभी मत करो।"

अन्यान्य नीति शतकों में 'भास्कर शतकमु' शरभांकलिंग शतकमु, वेंकटेश शतकमु, चंद्र शेखर शतकमु, रामलिंगेश्वर शतकमु, कुक्कुटेश्वर शतकमु आदि बड़े ही प्रसिद्ध हैं।

'भास्कर शतकमु' में कवि ने अपनी उक्ति की पुष्टि दृष्टांत अलंकार की सहायता से हर एक पद्य में की। वेंकटेश शतकमु की रचना ताल्लपाक पेदतिरुमलार्य ने सन् पन्द्रहवीं सदी के अंत में की। ताल्लपाक कवियों की विशिष्टता प्रायः इस बात में है कि शृंगारी प्रबंध काल में जन्म लेकर इन कवियों में से किसी ने भी न भक्ति एवं नीतिपथ को छोड़ा और न किसी राजा के आश्रय में जाने की उत्सुकता दिखाई। निष्कर्ष यह है कि इन कवियों ने स्वतंत्र मनोवृत्ति का विशद परिचय दिया। समय की हवा इन कवियों को छू तक न गई। 'वेंकटेश शतकमु' से परवर्ती कवियों में सूर कवि तथा कूचिमंचि कवि के क्रमशः 'रामलिंगेश शतकमु' तथा 'कुक्कुटेश शतकमु' की रचना के लिए प्रशस्त पथ मिला। ये दोनों शतक नीति शतकों के उत्तम उदाहरण हैं।

'चन्द्रशेखर शतकमु' में कवि ने ग्रामीण बोली की सहायता से हास्य का पुट मिला दिया। 'कुमारी शतकमु' 'कुमार शतकमु' आदि अन्यान्य सैकड़ों शतक उपादेय हैं।

३. व्यंग्य शतक :—

व्यंग्य शतकों को हम व्याजस्तुति शतक भी कह सकते हैं। इनमें व्याजस्तुति अलंकार का अधिक प्रयोग होता है। व्याजस्तुति में ऊपरी तौर पर भगवान् की निंदा होती है, व्याज में भगवान् की स्तुति होती है। कुछ समयों में इसका विपरीत भी देखा जाता है। भगवान् की निंदा ही सार भूत विषय होता है। ऐसे शतकों में प्रायः ऐतिहासिक दुर्घटनाओं का ज़िक्र कर भगवान् की अकर्मण्यता पर कवि व्यंग के बाण छोड़ते हैं। ये शतक तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था और इतिहास पर अच्छा प्रकाश डालते हैं। पहले वर्ग के शतक जिनमें अंततोगत्वा स्तुति की प्रधानता है, बाह्यरूप से भगवान् की लीलाओं में स्थूलतः पाई जानेवाली कमजोरियों पर, कवि मर्म भरे आघात करता है और अंत में अपने मन चले बरताव के लिए क्षमा की याचना करता है। ऐसे शतकों की रचना के लिए कवि में अलबत्ता भावुक भावना की कुशलता तथा वचनवक्रता की विदग्धता परम वांछित हैं। नीचे इस वर्ग के प्रमुख शतकों का वर्णन किया जाता है।

सिंहगिरि नारसिंह शतकमु :—

इसके रचयिता गोगुलपाटि कूर्मनाथ कवि थे। रचना काल सन् १७५० के आस पास था। अठारहवीं सदी में भारत देश में सर्वत्र संक्षोभ का राज्य था। विदेशी लोग आपस में और देशी राजाओं के खिलाफ देश पर अपनी धाक जमाने के लिए लड़ रहे थे। मुसलमानों में तो राज्य की देखभाल की शक्ति का लोप हो चला था परन्तु उनमें देश में यत्र तत्र उपद्रव मचाने की निंद्य शक्ति तो बची रही थी। उपर्युक्त शतक में ऐसे ही एक उपद्रव का वर्णन करके कवि भगवान् से रक्षा की प्रार्थना व्यंग्य रूप में करते हैं। रचना आरंभ से अंत तक करुण रस से आर्द्र है।

भद्रगिरि शतकमु :—

रचयिता भल्ला पेरय्य कवि थे। औरंगजेब गोलकोंडा के राज्य के विनाश पर तुले हुए थे। इस काम में मदद देनेवाला इब्राहीम खाँ था। इब्राहीम खाँ का एक अनुचर

धंसा उन दिनों वरंगल के प्रांत में एक किला बना कर इर्द गिर्द के हिन्दुओं के मंदिरों पर धावा बोल देता था। एक बार वह बढ़ता बढ़ता भद्राचल रामचन्द्र के मंदिर पर भी आक्रमण करने वाला था कि पुजारियों ने स्वामी जी की रक्षा करने के लिए भगवान् की मूर्ति को 'पोलवरमु' तक जहाज पर ले जा कर सुरक्षित रक्खा। पेरटच कवि रामचन्द्र की दुर्बलता पर हँसी मजाक़ करने लगे। जो राक्षसों के संहारक थे वे एक मुसलमान से भयभीत हो हजारों भक्तों को छोड़ कर कहीं जा छिपे। इस शतक में ऐतिहासिक सामग्री बहुत कुछ है। पोलवरमु में चार बरस तक रामचंद्रजी की मूर्ति की रक्षा हुई। देशद्रोही राजा, धंसा के सहायक बने। इनके नाम भी शतक में दिए गए हैं। स्वामिभक्त राजाओं ने लड़ते लड़ते अपने प्राण गँवाएं फिर अंग्रेजों की सहायता से, विजयनगरम् राजाओं की मदद से श्री रामचंद्र की पुनः प्रतिष्ठा भद्राचलम् में हो सकी।

आंध्र नायक शतकमु :—

इसके रचयिता कासुनल पुरुषोत्तम कवि थे। श्री काकुल में आंध्र विष्णु का मंदिर कवि के काल में शोभा विगलित हो गया था। इस पर कवि का दिल दहल उठा। व्यंग्य वाणी की वर्षा भगवान् पर होने लगी। कहते हैं कि इस शतक को सुन कर तत्कालीन चल्लपल्लि संस्थान के नेता यार्लगड्ड चेत गए और उन्होंने मंदिर की मरम्मत करवाके सुसज्जित किया। इसमें बाह्य रूप से निंदा होने पर भी सारभूत विषय स्तुति ही है। भगवान् की लीलाओं का व्यंग्यपूर्ण वर्णन किया गया है। अंत में कवि ने क्षमा की याचना की है। काव्य में जो व्यंग्यवैभव होना चाहिए, वह इस शतक के हर एक पद्य में दर्शनीय तथा अनुभाव्य है।

आधुनिक काल में भी इने गिने कवियों ने शतक लिखे हैं। कारण जो कुछ भी हो, शतक साहित्य की सर्जना की उत्सुक प्रवृत्ति आजकल घटती जा रही है। फिर भी निराश होने की गुंजाइश नहीं है। आधुनिक शतककर्ताओं में श्रीविश्वनाथ सत्यनारायण कवि का लिखा हुआ 'विश्वेश्वर शतकमु' अति प्रसिद्ध है। इस में पद्यों की मस्तानी चाल, भावों का अनूठा विन्यास और प्रदर्शित आर्द्र भावुकता प्रशंसनीय हैं। इनकी कविता की विशिष्टता इस बात में भी देखी जाती है कि संबोधनों के प्रयोग में कमाल कर डालते हैं।

"अंहो वारण कुंभशाटन कलोद्यच्छ्रेत भूभृद्दरी,
सिंह स्वामि! भवत्प्रगर्जनल दिक्सीमल् प्रति-
ध्वानता,

रंहः खेदमुनोंदि भीति मेयि तत्रत्युल् नरादुल्नचा,
हे हंतव्य यटंचु व्रालेदरु भार्यल् काल्ल विश्वेश्वरा।

"हे विश्वेश्वर! हे पापरूपी हाथियों के कुंभस्थलों को विदीर्ण करने के लिए हिमाचल के गह्वरों में खड़े रहने वाले भीषण सिंह! तेरे गर्जनों से सारी दिशायें प्रतिध्वनित हो उठी हैं। उस समय वहाँ के राक्षस 'मुझे न मारो न मारो' कहते हुए अपनी भार्याओं के चरणों में आश्रय लेते हैं।"

इन पंक्तियों के लेखक ने भी 'शांकरी शतकमु' को लिखा। इस में जगदंबा की महिमा की अनुभूति सर्व वस्तुओं में दर्शाई गई। अंबा के प्रति निरीह भक्ति इसके हरेक छंद में उमड़ पड़ी है।

"नीकंटेन्पर लेरु नाकु जगतिन् निद्रिपं मेल्कांच, न
स्तोक श्रीपद नीरजांकितमु वोल्युन् जीविता
ध्वम्मु, गं

गाकूलंकत सागिवच्चिनदि नीकै काव्यमै, नित्य वा,
ष्पाकीर्णम्मभिषेचनम्मु पनिकै सर्वेश्वरी शांकरी।"

"हे शांकरी! तेरे बिना मेरे लिए क्या जागृति में, क्या सुषुप्ति में और कोई नहीं है। यह मेरा जीवन पथ तेरे दिव्य पदपद्मों की रेखाओं से अंकित है। गंगानदी ही मेरी कविता के रूप में तेरे अभिषेचन के लिए निकल आई है। यह मेरी कविता भी गंगा की तरह बाष्पों (दुःख के) से संकुल है।"

इस प्रकार तेलुगु साहित्य में शतक साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण विशिष्ट स्थान है।

[इस लेख में प्रसिद्ध तत्वदर्शी और साधक श्री वेमन्न का ब्यौरा जान बूझ कर ही छोड़ा गया क्योंकि आम तौर पर उनके रचित छंद 'वेमनशतकमु' नाम से व्यवहृत होने पर भी वास्तव में उन छंदों की संख्या हज़ारों में है --लेखक ।]

तिरुपाती

--हनुमच्छास्त्री 'अयाचित' एम. ए.

ooo

गद्यगीत

अर्चना के पुष्प

हे देवता !

प्रदोष बेला में जब झिलमिलाती स्वर्ण किरणें प्राची वधू का घूंघट खिसका कर सोने से चौक पूर देती हैं, और कोमल कलिकाएँ हृदय स्पन्दित कर, सौरभ के रस कलश छलका देती हैं, और चराचर अंगड़ाई लेकर जीवन की पूजा के लिए तत्पर हो उठते हैं। तब--

मेरी वेदना के आंसू---ओसकण बन कर तेरे पांव पखारते हैं। और मन के आवेग–गीत बन कर तेरा अभिनन्दन करते हैं।

हे देवता ! मेरी अर्चना के अकिंचन पुष्पों को स्वीकार कर--- मेरी वेदना के आंसू से, जगती तल के दग्ध हृदयों को शान्ति दो; और मेरे गीत की गुंजार से उनकी व्यथा विह्वलता का शमन करो।

हे मेरे देवता !

चाँदा

---कमला दीक्षित

कशमकश

(होटल का वातावरण । खन्ना चाय पीता हुआ अखबार के पन्ने उलट रहा है)

जीवन--(प्रवेश करते हुए) एक स्पेशल चाय ।

बैरा--एक स्पेशल और देना ।

(जीवन कुर्सी खींचकर बैठ जाता है और सिगरेट का टिन खोलता है)

जीवन--आज का अखबार नहीं आया? (खन्ना की ओर देखकर) ओह! आप पढ़ रहे हैं? अगर तकलीफ़ न हो तो बीच के पन्ने मुझे दे दीजिये ।

खन्ना--जी नहीं, इसमें तकलीफ की क्या बात । लीजिये । (अखबार देता है, अचानक आंखें मिलती हैं और कुछ हिचक से) माफ़ कीजियेगा, ऐसा लगता है, जैसे आपको कहीं देखा है ।

जीवन--(ध्यान देते हुए) मुझे भी आपकी शक्ल जानी पहचानी लगती है---लगता है, आप---आप कपूरचन्द खन्ना तो नहीं?

खन्ना--(उल्लसित स्वर से) अरे जीवन! बहुत दिनों में मिले यार ।

जीवन--(कुछ मज़ाक और कुछ शिकायत के लहज़े से) अरे ज़ालिम । गले तो मिल ले । ज़रा कलेजा ठंडा हो ।

खन्ना--(हंसकर) जीवन । तू वैसा ही है, बिलकुल, वैसा ही । ज़रा भी परिवर्तन नहीं हुआ तुझ में ।

जीवन--लेकिन तू बहुत बदल गया । सहसा पहचान पाना भी मुश्किल है । यह तो यारों की निगाहें थीं कि पहचान लिया ।

खन्ना--तीन साल का अरसा बहुत बड़ा होता है, भाई । इस बदलती दुनिया में हर चीज़ अपना नक्शा बदल देती है, इन्सान के चेहरे की तो बात ही क्या ।

जीवन--तुझ में एक ही चीज नहीं बदली है और वह है ज़िन्दगी के हर पहलू को 'फ़िलासफ़िक एंगिल' से देखने की आदत । (दोनों हंसते हैं)

बैरा---(आकर) एक स्पेशल ।

जीवन---देखो! एक और लाओ ।

खन्ना---नहीं यार । मैं तो पी ही रहा हूं । छोकरा! तुम जाओ । और सुनाओ जीवन! क्या हाल है? इन तीन सालों में ही मैं यहां इतनी तब्दीलियां पा रहा हूं । मालूम होता है जैसे इस शहर में मैं अजनबी हूं ।

(दोनों हंसते हैं)

जीवन---अभी तुमने ही नहीं कहा कि ज़िन्दगी के तीन साल कम नहीं होते! अपना रास्ता तो वही पुराना है । तुम बताओ, इतने दिनों तक किस गुफ़ा में बैठकर साधना कर रहे थे? एकाएक बिना कहे सुने तुम यहां से भाग खड़े हुए । किसी को कानोंकान खबर तक न दी । ऐसी जल्दी क्या पड़ी थी?

खन्ना---(ताज्जुब से) तुम्हें मेरे बारे में किसी ने नहीं बताया?

जीवन---कौन बताता । तुम तो बिना कहे सुने प्रेम का पगहा तुड़ाकर भाग खड़े हुए । यहां कहां ठहरे हो? अपने ही यहां न?

खन्ना---(सूखी हंसी हंसकर) इस दुनियां में अपनी कही जानेवाली कोई चीज़ नहीं है । अब कहां का अपना घर?

जीवन---पहेलियां न बुझाओ यार । सीधे सीधे बात करो ।

खन्ना---मैं तो खानाबदोश हूं । अपना घर तो बेचबाच कर गया था । बाप दादों की वह निशानी मेरी अभिलाषाओं की बलि चढ़ गई ।

जीवन---हूं, पर तुमने ऐसा क्यों किया । अपने तीन

पुश्तों की निशानी को यों न खोना था तुम्हें, खन्ना ! ऐसी भी क्या ज़रूरत आ पड़ी थी ?

भले आदमी ! मुझ से तो कहा होता कम से कम । जो कुछ बन पड़ता, मैं ही करता ।

खन्ना---इसीलिये तो नहीं कहा । खैर छोड़ो ।

जीवन---ठीक ही कहते हो । यहां कब आये ?

खन्ना---ज्यादा दिन नहीं हुए, कोई एक हफ्ता पहले ।

जीवन---(ताज्जुब से) एक हफ्ता ? और मुझे खबर तक नहीं । खूब दोस्ती निभाई तुमने ।

खन्ना---(सूखी हंसी हंसकर) एक तो मुझे यह ही निश्चित रूप से मालूम नहीं था कि तुम यहां हो और दूसरे मैंने तुम्हारे पुराने ठिकाने पर तलाश भी की, पर कुछ पता नहीं चला । तब यह सोचकर संतोष कर लिया कि संयोग की जिस आंधी ने हमें मिलाया था, उसने अब जुदा भी कर दिया ।

जीवन---(कुछ झेंपकर) हां भई, पुराना मकान तो बदल दिया है । जगह की कमी से अड़चन पड़ती थी । तो ठहरे कहां हो । किसी होटल में ।

खन्ना---हां फ़िलहाल तो होटल में ही ठहरा हूं---जल्दी ही किसी धर्मशाला की तलाश करनी पड़ेगी ।

जीवन---अच्छा, कर क्या रहे हो ?

खन्ना---(हंसकर) सोच रहा हूं कि क्या करूं ? यह भी कोई कम महत्वपूर्ण कार्य तो है नहीं । बिना नक्शे के मकान नहीं बनते । ऊषा की लाली के साथ नये उत्साह और जोश के साथ उठता हूं और सूरज की किरणों के साथ बुझ जाता हूं । रोज पांच सात अखबारों के 'वांटेड कालम' देखता हूं । तुम्हारे आने के पहले यही कर रहा था । तुम क्या करते हो ?

जीवन---बिजनेस । तुम तो जानते हो, अपने राम मस्त मौला आदमी हैं । नौकरी अपने से होती नहीं । शुरु से ही बिज़नेस में दिलचस्पी है ।

खन्ना---अगर ख़बरदारी से काम न करो तो तुम्हारे जैसा सरल और निश्छल आदमी फ़ौरन धोखा खा सकता है ।

जीवन---इसीलिये तो मैं एक विश्वस्त आदमी की तलाश में हूं । एक सलाह मानोगे ? मेरा बिज़नेस बहुत बड़ा है ।

खन्ना---नहीं दोस्त । मैं तुम्हारे यहां नौकरी नहीं करूंगा ।

जीवन---नौकरी थोड़े ही है यह-----

खन्ना---नौकरी को चाहे जो शाब्दिक आवरण पहना दो, रहती गुलामी ही है । और मैं तुम्हारी नौकरी करूं ? एक दोस्त की खिदमत बजाऊं ? मुझे भूखों मरना क़ुबूल है, पर दोस्त की नौकरी करना नहीं ।

जीवन---(अप्रतिभ) मैं तुम्हें नौकरी थोड़े ही दे रहा था । एतराज़ न हो तो पार्टनरशिप कर लो । मैं तैयार हूं ।

खन्ना---नहीं दोस्त । तुम्हारी सहृदयता के लिये धन्यवाद । मैं कोई न कोई काम ढूंढ ही लूंगा । अपनी दोस्ती को बिज़नेस में मत घुसेड़ो नहीं तो दोनों तबाह हो जाएँगे ।

जीवन---खैर, तुम तो शुरु से ही ज़िद्दी और अपनी धुन के मस्त हो । कभी किसी की बात मानी भी है जो आज मानोगे । भई वाह ! तुमने यह तो बताया ही नहीं कि तुमने, ये तीन साल कैसे, कहाँ और किस हालत में गुज़ारे ।

खन्ना---तुम सच कह रहे हो कि किसी ने तुम्हें मेरे बारे में नहीं बताया ।

जीवन---बताता कौन ? घंटे भर से तुमसे पूछ रहा हूं मगर एकदम ख़ामोश हो ।

खन्ना---मैं इन दिनों अमेरिका में था ।

जीवन---अच्छा जी । इतने दूर की उड़ान मार आये और यहां खबर तक नहीं । अमेरिका में क्या कर रहे थे ?

खन्ना---रिसर्च कर रहा था । डाक्टरेट लेकर आया हूं ।

जीवन--वाह भई । खूब रही । हां, यह तो बताओ, कालेज जीवन की याद भुला तो नहीं बैठे ।

खन्ना--(एक सांस लेकर) वे भी क्या भुलाई जा सकती हैं जीवन! जिन्दगी के वे ही तो कुछ रंगीन वर्ष थे ।

जीवन--मुझे याद है जब हम अंतिम बार मिले थे । तुम बड़े परेशान और उद्विग्न से थे । मैं बार बार तुमसे पूछना चाहता था, पर तुम कतरा जाते थे । याद है न तुम्हें ?

खन्ना--उसी दिन मैंने एकाएक बाहर जाने का विचार कर लिया । इसके बारे में तारा को बता दिया था । उसने तुम्हें नहीं बताया ?

जीवन--(ताज्जुब से लगभग चीखकर) तारा को ? मगर उसने मुझ से तो एक शब्द भी नहीं कहा ।

खन्ना--(सूखी हंसी हंसकर) शायद भूल गई हो । मैं ही बताये देता हूं । उस दिन सचमुच मैं बड़ा परेशान था । दिल-ओ-दिमाग़ दोनों से । मुझे याद है तुम हंसी मजाक कर मेरा मन बहलाने की कोशिश कर रहे थे । मेरा ध्यान बटाने का प्रयत्न कर रहे थे । मुझे समझा रहे थे ।

(फ़्लेश बैक । कालेज के लान पर जीवन और खन्ना टहल रहे हैं)

जीवन--यार खन्ना! मेरी समझ में नहीं आता कि कालेज की बदक़िस्मती है या मेरी । जब मैं कालेज नहीं आता तो तमाम प्रोफ़ेसर्स आ धमकते हैं और जिस दिन बन्दे का दिल आराम करने का होता है, किसी साहब के सर तक में दर्द नहीं होता, जुकाम या बुखार तो दूर की बात है । (थोड़ा हंसने का प्रयत्न करता है) अरे, तुम इतने चुपचाप क्यों हो? कौन सी मुसीबत का पहाड़ आ टूटा है जनाब के सर पर ?

खन्ना--(चौंकता हुआ) कोई खास बात नहीं है । तुम कहे जाओ, मैं सुन रहा हूं ।

जीवन--वही तो मैं जानना चाहता हूं कि हुजूर ने क्या सुना ?

खन्ना---तुम जुकाम या बुखार की बात कह रहे थे न? ज़रा सावधानी से रहो । मौसम बड़ा खराब है ।

जीवन---(ठठाकर हंसता हुआ) खूब सुना आपने । मौसम वाक़ई बहुत खराब है । लोगबाग ऐसे मौसम में पागल हो जाते हैं । जरा सम्हल कर रहा करो । ऐसा मौसम तुम्हारे जैसे दार्शनिकों के लिये वाकई खतरनाक है ।

खन्ना---(बात बदलते हुए) आज कालेज आना फिजूल हुआ । तीन तीन प्रोफ़ेसर गायब हैं । आज... नहीं नहीं, कुछ नहीं ।

जीवन---हम तो फिजूल नहीं कह सकते । कालेज आकर दिल बहल जाता है । आज मिस सुजा और तनूजा वग़ैरह दिखाई नहीं पड़ीं । तुमने देखा है क्या । अयँ! तुम तो फिर विचारों के गोते मारने लगे । क्या बात है खन्ना? खन्ना!

खन्ना---(चौंक कर) अयँ? क्या पूछ रहे हो?

जीवन---तुम्हें क्या हो गया है?

खन्ना---मुझे? कुछ भी तो नहीं ।

जीवन---मुझ से कुछ छिपा रहे हो?

खन्ना---यह तुमने कैसे जाना?

जीवन---बातें करते करते तुम चौंक पड़ते हो, कभी एक दम गंभीर हो जाते हो, कभी एकदम व्यथित जैसे कोई बात तुम्हारे होठों तक आकर फिर वापस चली जाती है ।

खन्ना---तुम सच कह रहे हो जीवन! दिमाग में तूफ़ान उठ रहा है, मन में भयानक संघर्ष हो रहा है । लगता है, मैं पागल हो जाऊँगा जीवन! मैं पागल हो जाऊंगा ।

जीवन---इसलिये कि तुम मन की बातों को बाहर नहीं निकालते । ज्वालामुखी का विस्फोट हो जाना ही अच्छा है, खन्ना, नहीं तो खतरा बराबर बना रहता है । ज्वालामुखी पर मकान बनाकर कोई सुरक्षित नहीं रह सकता ।

खन्ना---लेकिन मेरी जुबान उन्हें कहने में हिचकती है ।

जीवन---यह तुम्हारी कमज़ोरी है, तुम्हारे व्यक्तित्व का दोष है । इसलिये तुम इस मानसिक उथल पुथल में पड़े हो । मुझे देखो, हमेशा मेरे होठों पर हंसी नाचती है, आंखों में खुशी के फूल खिले रहते हैं जो विचार मेरे मन में आते हैं, मैं फौरन कह देता हूं ।

खन्ना--तुम ठीक कहते हो जीवन, लेकिन यह मेरे लिये मुश्किल है ।

जीवन---चाहो तो तुम भी खुश रह सकते हो । मन की भावनाओं को बाहर निकाल दो । अन्दर ही अन्दर मत सुलगो ।

खन्ना---यह तो मेरी प्रकृति बन चुकी है जीवन ।

जीवन---इस प्रकृति को बदल डालो । मानसिकव्यथा का जो कांटा तुम्हारे मन में खटक रहा है जब तक वह नहीं निकलेगा, तुम्हें चैन न मिलेगा । पुरुष हो, सबल बनो । बुद्धिमान् हो, सही निर्णय करने की ताक़त पैदा करो । फिर देखो, संसार तुम्हारे सामने कैसे नहीं झुकता ।

खन्ना---मैं मैं. . .

जीवन---हां हां तुम ।

खन्ना---मैं तारा से कुछ बातें साफ़ साफ़ पूछना चाहता हूं, पर. . . .

जीवन---(हंसकर)पर ज़बान नहीं खुलती । भई वाह । खूब मर्द हो, एक औरत के सामने जाकर गूंगे हो जाते हो । मैंने समझा था, कोई बहुत बड़ी बात होगी, लेकिन खोदा पहाड़ और चुहिया भी नहीं निकली । जाकर कह डालो न, इसमें कौन सी अड़चन है । वह बहुत 'रोज़नेबिल' लड़की है ।

खन्ना---कह दूं ?

जीवन---हां हां, इसमें क्या है । अरे, आज तो मैंने उसे दो घंटे लेक्चर दिया है । सारी बातें दिल खोलकर कह दीं ।

खन्ना---नहीं यार । हिम्मत नहीं होती ।

जीवन---तो फिर घुलते रहो इसी तरह । जीवन भर इस मकड़ी के जाल से छुटकारा नहीं मिलेगा ।

जीवन---मैं तुम्हें बता दूं कि उससे क्या कहने वाला हूं. . . . ?

जीवन---भले आदमी, तुम जिस तरह मेरे सामने यह सब कह सकते हो, उसको ही जाकर कह दो । (पीरियड की घंटी बजती है) लो पीरियड शुरु हो गया । प्रिंसिपल साहब का पीरियड है, नहीं तो चाट मार देता और तुम्हारा साथ देता । मैं जाता हूं ।

खन्ना---तारा इस पीरियड में खाली है ?

जीवन---हां, वह देखो, सरला के साथ आ रही है । कर लो उससे बात ; (प्रस्थान) ।

खन्ना---(एक विचित्र उलझन में फंसा हुआ, जाकर) हलो मिस तारा । हलो मिस सरला ।

तारा---हल्लो खन्ना साहब । पीरियड में नहीं गये ।

खन्ना---कुछ मूड नहीं था ।

सरला---आज कल आपका मूड कुछ ठीक रहता भी नहीं ।

खन्ना---(चौंककर) सरला देवी ! आप को किसी ने कुछ . . .आपको किसी ने कुछ बताया तो नहीं ।

सरला---(चकित होकर) जी ? हमें कौन बताता, इन्सान के चेहरे से हृदय के भाव साफ़ साफ़ जाने जा सकते हैं (हंसकर) बशर्ते आँखें हों उन्हें देखने की ।

खन्ना---ऐसी तो कोई बात नहीं है, आपको ग़लत फ़हमी हुई है ।

तारा---संभव है, पर कम से कम आज तो, आप विशेष रूप से परेशान नज़र आ रहे हैं । चेहरे पर अंकित रेखाएं कुछ बोलना चाह रही हैं ।

खन्ना---(फिर उलझन में पड़कर) मिस तारा । मैं आपसे कुछ कहना चाहता हूं ।---कुछ ज़रूरी बातें हैं ।

तारा---हां हां, कहिए ।

खन्ना—ऐसी कोई जरूरी बात भी तो नहीं..फिर कभी कह दूंगा ।

सरला—(हंसकर) देखिये, यह साबित कर दिया न, आपने कि मुझे ग़लतफ़हमी नहीं हुई है। निश्चय ही आप आजकल परेशान हैं । मेरी समझ में नहीं आता कि आप इस तरह क्यों झर रहे हैं ?

खन्ना—(झुंझलाकर) और आपकी समझ में न भी आए तो कोई हर्ज नहीं । निर्झर की स्वाभाविक गति पर यदि किसी को एतराज़ हो तो बेचारे निर्झर का क्या दोष । यह तो आपकी समझ का कुसूर है सरला देवी !

तारा—मैं समझती हूं आपकी कठिनाइयाँ मिस्टर खन्ना ! आपकी वृत्तियां शुरू से ही अन्तर्मुखी बन गई हैं। इसमें आपका कोई दोष नहीं । पर आपको जो कुछ कहना हो निःसंकोच कह डालिये । यदि मैं आपकी भावनाओं की कद्र न कर सकी तो निरादर भी न करूंगी ।

खन्ना—मैं धन्यवाद देता हूं । मैं...मैं...यह कहना चाहता था मिस तारा कि आपको...कि आपको मैं..जी, मेरा, मतलब..आपको.. अंग्रेज़ी तसवीरें अच्छी लगती हैं या हिन्दुस्तानी । (सरला ठठाकर हँस पड़ती है और खन्ना अप्रतिभ हो जाता है)

सरला—(हंसी को रोककर) देखिये खन्ना साहब ! अगर आपको एतराज़ न हो तो एक सलाह दूं ?

खन्ना—कहिये ।

सरला—आपके लिये अपनी भावनाओं को व्यक्त करना सर्वथा असंभव है । इसलिये मेरी तो यह सलाह है कि आप तारा को एक पत्र लिखकर उसका उत्तर मंगा लीजिये । आप में और जीवन में बहुत फ़र्क़ है ।

खन्ना—क्या फ़र्क़ है ?

सरला—वह सीधा सच्चा और स्पोर्टिंग आदमी है । जो भावनाएं उमड़ती है, फौरन ज़ाहिर कर देता है । आज ही उसने तारा से ऐसी बात कह दी जो इतनी जल्दी शायद दूसरे न कह पाते ।

खन्ना—यानी ?

सरला—बड़ा मज़ा आया । आप भी होते तो खूब हंसते । साहब बहादुर हाथ में टेनिस की रेकेट घुमाते आये और फ़रमाने लगे...तारा । तुमसे बहुत ज़रूरी काम है । मैंने पूछा क्या मैं चली जाऊँ । तो हंसकर बोले अजी, हमें झिझक का रोग नहीं । हम तो सीधे सादे जीव हैं । तारा से उसका हाथ मांगने आये हैं ।

खन्ना—सरला..झूठ नहीं । मैं सच कहती हूं । न हो, तारा से पूछ लीजिये ।

तारा—खैर, छोड़ो इन बेकार की बातों को । जीवन साहब भी बस...। हां तो खन्ना साहब ! खन्ना साहब ! (खन्ना चुप है ज़ोर से) मिस्टर खन्ना !

खन्ना—(चौंक कर)आप मुझ से कुछ कह रहीं थीं ?

तारा—आपको क्या हो गया है ?

खन्ना—ओ, कुछ नहीं । मैं कुछ दूसरी बात सोच रहा था।

तारा—आप मुझ से कुछ कहने आये थे न । कहिये न क्या बात है ? कहिए, मैं आपके लिए क्या कर सकती हूँ ?

खन्ना—धन्यवाद । मैं आपसे विदा लेने आया था तारा देवी ।

तारा—(आश्चर्य से) विदा ? आप कहां जा रहे हैं ?

खन्ना—मैं आजकल में, अमेरिका जा रहा हूँ ।

तारा—अमेरिका ? और आजकल में ही ।

सरला—एकाएक ऐसा फैसला कैसे कर लिया आपने ?

खन्ना—एकाएक तो नहीं सरला देवी । इस भावना को न जाने कबसे हृदय में पाल रखा था । आज वह पौधा वृक्ष के रूप में बदल गया है ।

तारा—आपका यह अंतिम निर्णय है ?

खन्ना—जी हां ।

तारा—इसमें रद्दोबदल की बिलकुल गुंजाइश नहीं?

खन्ना---एकदम नहीं।

तारा---एक प्रार्थना स्वीकार करेंगे? नाहीं न करें, इसके पहले मैंने आपसे कुछ भी नहीं मांगा है।..जाने के पहले मुझ से एक बार मिल लेंगे?

खन्ना---यदि संभव हुआ तो। समय बहुत कम है इसलिये चलूंगा। ईश्वर से प्रार्थना है कि आप दोनों खुश रहें..जीवन निःसन्देह योग्य पात्र है।

सरला---आपने तो विवाह के बाजे भी बजवा दिये..मजाक को बहुत सीरियसली ले लिया है आपने।

तारा---अपना वायदा भूल न जाइयेगा, जाने से पहले मिलकर जाइयेगा।

खन्ना---कोशिश करूंगा। नमस्ते।

तारा---नमस्ते।

(तेज़ी से प्रस्थान)

(होटल का वही सीन। जीवन और खन्ना बैठे हुए)

खन्ना---(एक सांस लेकर) और मेरे दोस्त। इस तरह मैंने हिन्दोस्तान छोड़ा और अमेरिका चला गया। वहाँ भी मानसिक संघर्षों के कारण महीना भर कुछ नहीं कर सका। अन्त में अपनी सारी कमज़ोरियों को झाड़कर यूनिवर्सिटी में दाखिल हो गया। जब जीना है, तो कुढ़कर क्यों जीना? और आज तीन साल के बाद फिर यहाँ आया हूं।

(फिर सांस लेता है)

जीवन---(अट्टहास कर) भई वाह, खूब आदमी हो तुम भई..यही बातें हो हमें पसन्द नहीं। अमेरिका जाने के पहले अगर मुझ से मिल लेते तो सारी कठिनाइयां मैं चुटकी बजाते दूर कर सकता था।

खन्ना---आजकल तारा से भेंट होती है या नहीं। न जाने कहां होगी आजकल?

जीवन---अरे! मैं तो लगभग रोज़ ही भेंट कर लेता हूं। तुम्हारी क़सम बिलकुल वैसी है, जैसी पहले थी।

खन्ना---सच? वह खुश तो है?

जीवन---उसके मन की बात तो ईश्वर जाने, पर वैसे कोई खास दुःख तो नहीं है उसको। तुम उससे मिलना पसन्द करोगे?

खन्ना---मैं।..हाँ, हाँ, ज़रूर। पर नहीं, क्या कहूं उससे मिलकर? क्या करती है वह आजकल।

जीवन---शादी हो गई है। बड़ा 'रीज़नेबिल हस्बैंड' पाया है उसने।

खन्ना---लेकिन तुम दोनों में प्रेम जो था, शादी किस के साथ हुई।

जीवन---(हंसकर) तारा मेरी पत्नी है, खन्ना (हंसकर) शादी को साल भर हो गया है। साल भर बीमार रही इसलिये इतनी देर हो गई।

खन्ना---(ज़बरदस्ती की हंसी हंसकर) मुबारक हो। तो मिठाई कब खिलाओगे।

जीवन---कभी भी, किसी भी दिन। चलो, अभी घर चलो और एक दावत लो।

खन्ना---(खिन्नता से हंसकर) अभी नहीं, किसी दिन देखा जायगा।

जीवन---नहीं खन्ना! मैं तुम्हें अब न छोड़ूंगा। तुम्हें मेरे साथ ही रहना होगा।

खन्ना---यह ठीक नहीं है जीवन। मैं बड़े आराम से हूँ। तुम लोगों को किसी तरह की तकलीफ नहीं देना चाहता।

जीवन---तुम शुरू से ही खब्ती और ज़िद्दी हो, लेकिन आज मैं तुम्हें नहीं छोड़ूँगा।

खन्ना---(लाचारी के स्वर में) लेकिन मेरा जाना ठीक होगा?

जीवन---क्यों? पुरानी बात पुरानी हो चुकी। कभी तुम उससे प्रेम करते थे..आज वह मेरी पत्नी है, तुम्हारी भाभी..ठीक है यह? तारा तुम्हें देखकर कितनी खुश होगी। तुम्हारे जाने के बाद बेचारी बड़ी दुःखी थी तुम्हें उससे मिलना ही पड़ेगा। चलो उठो।

खन्ना—जीवन ! सुनो तो ।

जीवन—मुझे तुम पर भरोसा है । चलो भी नहीं तो कंधे पर लादकर ले जाऊंगा । देखने वाले खामखाह तमाशा बनाएंगे । उठो भी ।

खन्ना—(बेबसी से) चलो भाई ।

बैरा—(चिल्लाकर) दो स्पेशल । चार आने ।

जीवन—ठहरो । मैं दिये देता हूं । (चार आने काउन्टर पर फेंकता है) चलो ।

(परिवर्तन)

खन्ना—यहां आए आज दस दिन हो गये हैं तारा, लेकिन काम धंधे का कोई सिलसिला जमता नज़र नहीं आता । सोचता हूं अधिक दिन तुम्हें कष्ट देना कहां तक ठीक होगा ?

तारा—कष्ट काहे का ? आपका घर है...चाय तो पी लीजिये ।..ठंडी हो गई होगी ।

खन्ना—(हंस कर) अरे हां, और तुमने भी तो नहीं पी ।

तारा—ठहरो, दूसरी बनाए देती हूं..(चाय बनाती है । फिर हंस कर) आपका असर पड़ने लगा है ।

खन्ना—हूं ।

तारा—(कुछ ठहर कर) क्या सोचने लगे आप ?

खन्ना—कुछ नहीं, यही नौकरी के बारे में ।

तारा—आपका स्वभाव बदला नहीं ।

खन्ना—मेरा स्वभाव ?

तारा—हां..अन्दर अन्दर घुटते रहना । क्या इससे आपको छुटकारा नहीं मिलेगा ?

खन्ना—छुटकारा ? शायद नहीं...जीवन भर यही घुटन लिए रहना होगा । क्या करूं ?

तारा—एक बात पूछूं ?

खन्ना—क्या ?

तारा—आप विवाह क्यों नहीं कर लेते खन्ना साहब ?

खन्ना—(रुक कर) धन्यवाद..मैं चीनी एक ही चम्मच लूंगा ।

तारा—(हंस कर) आप भी बस..मैं कह रही थी आप विवाह क्यों नहीं कर लेते ?

खन्ना—ओह, क्षमा कीजिए..बात यह है...

तारा—कि आपने किसी अमरीकन युवती से विवाह करने का वादा कर लिया है ? (हंसती हुई) और आप सोच रहे हैं विवाह वैदिक रीति से हो अथवा...

खन्ना—आप तो मज़ाक़ करती हैं (रुक रुक कर कहते हुए) आप तो ज़ानती ही हैं...कि..कि मेरे जैसे आदमी के लिये किसी से प्रेम करना या किसी का प्रेम पाना शायद असम्भव ही है पर मुझे अपनी इसी हालत में सन्तोष है...मैं खुश हूं ।

तारा—सच ?..मैं नहीं मानती..हां यह ज़रूर संभव है कि आप के लिए अपना प्रेम व्यक्त करना शायद असम्भव ही है ।

खन्ना—जी..नहीं तो, ऐसी तो बात नहीं ।

तारा—क्या आपने आज तक किसी से प्रेम नहीं किया ? (ठहर कर) आप मौन हैं..बताइये कौन है वह ।

खन्ना—हां तारा..मैंने किसी से प्रेम किया था ।

तारा—किया था..क्या अब नहीं करते ? बोलिये ।

खन्ना—हां..हां तारा अब भी करता हूं और हमेशा करता रहूंगा ।

तारा—फिर उससे विवाह क्यों नहीं कर लेते ? (ठहर कर) शायद वह गरीब यह जानती भी नहीं होगी कि उसे कोई प्यार करता है ।

खन्ना—हां, गलती मेरी है दिल की बात ज़बान पर आ ही नहीं सकी ।

तारा—भूल सुधार कर जीवन में एक नया परिच्छेद क्यों नहीं आरंभ करते ? अब भी झिझकते हैं ।

खन्ना—अब लाभ ही क्या..अब वह पराई हो चुकी है ।

तारा—कौन है वह ?

खन्ना—बस करो तारा..बस करो ।

तारा—और यदि वह भी तुमसे प्यार करती हो ? अभी तक..?

खन्ना—तारा !

तारा—हां, मैं तुमसे प्यार करती हूं ।

खन्ना—तारा ! तारा !! ..नहीं यह सच नहीं ।

तारा—यह सच है..आज से नहीं बहुत पहले से । (साँस में बोलती हुई) बहुत पहले से ।

खन्ना—तारा !

तारा—मैं जानती थी कि उस दिन तुम क्यों एकाएक देश छोड़कर जाने की ठान बैठे । मैं..जानती थी कि तुम मुझे प्यार करते हो...लेकिन तुम्हारे लिए अपनी भावनाओं को व्यक्त करना शायद सम्भव नहीं था मैं क्या करती अमेरिका जाने से पहले मैंने तुम्हें मिलने के लिए बुलाया था..पर तुम नहीं आए..और..

खन्ना—मेरा दिल टूट चुका था तारा..मेरे मन में एक भयानक तूफ़ान उठा हुआ था । दोष मेरा ही है तारा ।

तारा—साल भर तुम्हारी प्रतीक्षा की, तुम्हारा कोई पता नहीं लगा । क्या करती ?

खन्ना—छोड़ो बीती बातों को..मैं तो केवल यही जानता हूं, यही जानना चाहता हूं कि तुम मुझ से प्यार करती हो..कितना भाग्यशाली हूं मैं..

तारा—खन्ना !

खन्ना—तारा ! चलो यहां से दूर बहुत दूर कहीं भाग चलें आज ही, जीवन के वापस आने से पहले, तारा ! तारा !..

(तारा चुप कुछ सोच रही है)

तारा—चलो, जीवन के आने का वक्त हो ही गया है । उठो...क्या सोचने लगे ?

खन्ना—नहीं, नहीं, नहीं,...नहीं तारा । मैं नहीं जा पाऊंगा..ओफ़ ! मैं क्या करने जा रहा था ?

तारा—खन्ना !

खन्ना—नहीं तारा..मैं अपने मित्र के साथ विश्वासघात नहीं करूंगा । मैं जा रहा हूं तारा, इसी क्षण ।

तारा—मैं भी तुम्हारे साथ जाऊंगी (रोती है)

खन्ना—नहीं..तुम यहीं रहोगी तारा..भूल जाओ मुझे..ईश्वर के लिए मेरे सामने से चली जाओ ।

तारा—खन्ना !

खन्ना—मैं जा रहा हूं, प्रयत्न करूंगा..कि फिर कभी मेरी कलुषित छाया मेरे मित्र के जीवन पर न पड़ सके..यहां से दूर बहुत दूर जा रहा हूं.. जीवन आए तो कहना मुझे नौकरी मिल गई है..

जीवन—(फैडिंग इन) ----: बड़े खुशकिस्मत हो यार..भई ऐसी भी क्या नौकरी की आपने..? गोया नौकरी न हुई, कंम्बख्त मौत का परवाना हो गया । (अपने मज़ाक़ पर खुद ही हँसता है)

खन्ना—मुझे परसों ही 'जौइन' करना है ।

जीवन—छोड़ो यार..अगर तार भेज दो, कि एक दो दिन बाद आऊंगा तो कौन सा फ़र्क पड़ने लगा है ।

खन्ना—नहीं भाँई, नौकरी का मामला है । 'इंटरव्यू'..

जीवन..कभी कहते हो 'जौइन' करना है, कभी 'इंटरव्यू' ?

खन्ना—नहीं इंटरव्यू के लिए उन्होंने पहले बुलाया था, 'कॉल' आज आई है ।

जीवन—नौकरी मिलने की खुशी समाती नहीं । अच्छा प्यारे गुड लक...(पुकारता है) तारा ! कहां चली गई ?

तारा—(भीतर से विगलित स्वर में) अभी आई ।

खन्ना—अन्दर हैं..उन से मैं...आज्ञा ले चुका हूं.. अच्छा 'चेयरयू'....

(आल इंडिया रेडियो नागपुर के सौजन्य से)

—प्रमोद वर्मा बी. ए.

नागपुर

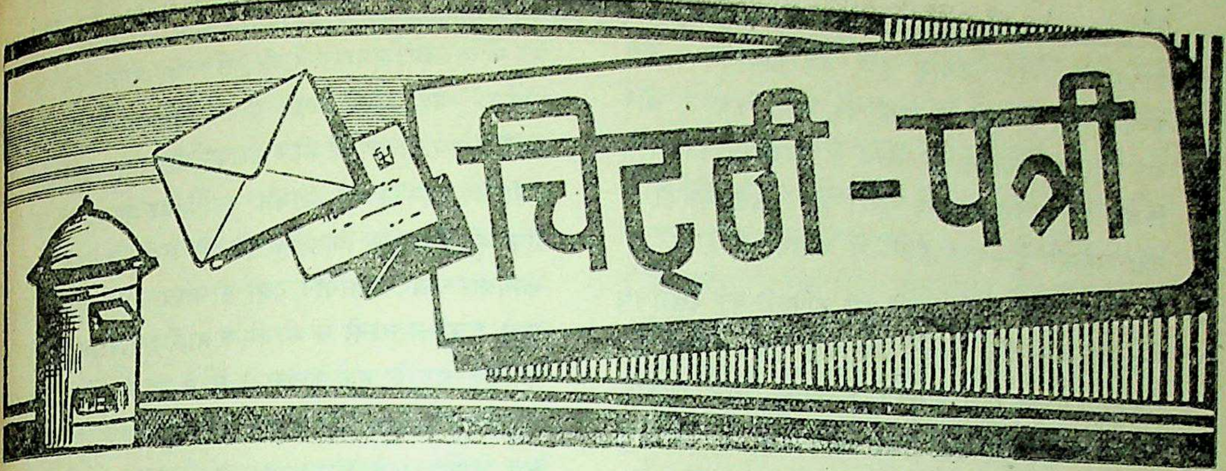

चिट्ठी-पत्री

॥

(१)

दक्षिण और हिन्दी

...मैं तो अभी हिन्दी इतनी नहीं जानता जितनी कि मेरी बहन और पत्नी जानती हैं। मुझे यह देख कर आश्चर्य होता है कि दक्षिण में जिसके विषय में यह कहा जाता है कि वहाँ हिन्दी का विरोध है—महिलाएँ बड़े चाव और प्रेम से हिन्दी का अध्ययन कर रही हैं। यह प्रायः कहा जाता है कि हमारे देश के समाज के सुधार में सब से बड़ी रुकावट इन महिलाओं के द्वारा ही उत्पन्न हुई। यदि उनमें शिक्षा का प्रसार हो जाता तो हमारे देश की कुछ और ही अवस्था होती। यह भी संभव है कि इसका यह भी एक परिणाम हुआ कि हमारा देश पाश्चात्य रंग ढंग में पूर्ण रूप से दीक्षित न हो सका। परन्तु आज तो महिलाएँ अधिकतर हिन्दी पढ़ रही हैं और शायद इसीलिए दक्षिण में बच्चों और नवयुवकों में भी हिन्दी के प्रति प्रेम अभिलक्षित होता है। हिन्दी का विरोध जो कुछ भी है उसका आधार Vested interests ही अधिकतर हैं। आश्चर्य तो यह है कि जो हिन्दी का विरोध करता है वह अपनी मातृभाषा का भी विशेष पक्षपाती नहीं है, वह तो अंग्रेजी का ही समर्थक है। ऐसे लोगों की धारणा यही है कि हमारे देश की भाषा, शिक्षा, विज्ञान और अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों को अंग्रेजी ही हल कर सकती है।..........

मैं एक रेशम की मिल में इंजीनियर हूँ। यह रेशम की मिल भारतवर्ष की रेशम की मिलों में एक बहुत बड़ी मिल है। भारत सरकार ने इस मिल के कार्य को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए एक वर्ष के लिए एक जापानी की नियुक्ति की है। एक व्यक्ति संस्थाओं से भी कितना महान् होता है—यह मुझे उसके सम्पर्क में आने से ज्ञात हुआ और मैं यह कह सकता हूँ कि हमारी मिल यद्यपि बहुत बड़ी है तो भी वह जापानी उस मिल से भी बहुत बड़ा है। मुझे उस जापानी से हिन्दी पढ़ने की प्रेरणा प्राप्त हुई है। वह अंग्रेजी बहुत अच्छी जानता है परन्तु कभी अंग्रेजी में नहीं बोलता और जब बोलता भी है तो उसे किसी प्रकार की प्रसन्नता नहीं होती। मैं जब तक उससे अंग्रेजी में बातचीत करता रहा मुझे... उसका कुछ विशेष परिचय प्राप्त न हो सका। इसलिए मैंने जापानी भाषा सीखी और अब मैं जब उससे टूटी फूटी जापानी भाषा बोलता हूँ तो वह बड़ा प्रसन्न होता है और अब मैं उससे कुछ परिचित हो सका हूँ वह मुझ से खुलने लगा है। एक दिन वह मुझ से कह रहा था.........“तुम्हारे देश में मैंने दो बातें देखी हैं जो मुझे अच्छी नहीं मालूम हुई। एक तो यह कि यहाँ की शिक्षित जनता अंग्रेजी के पीछे बहुत पागल है और दूसरा डिग्रियों और उपाधियों के पीछे पागल है। तुम देखते हो मैं आज भारत सरकार द्वारा निमंत्रित होकर यहाँ एक वर्ष के लिए आया हूँ। मेरे पास एक भी डिग्री नहीं है परन्तु मैंने जापान में कितने डाक्टर उत्पन्न कर दिए हैं।........ये चिट्ठियाँ मेरे शिष्य डाक्टरों की हैं जो मेरे पास सलाह लेने के लिए आती रहती हैं। मेरे पास कौन सी डिग्री है

जानते हो? मेरा दिमाग़ और मेरे हाथ-बस। मैंने अपने जीवन में इसी के द्वारा सब कार्य किया है और कर रहा हूँ। जापान के रेशम के व्यवसाय का आज कितने देश मुकाबला कर सकते हैं...इसे अंग्रेज़ी ने नहीं बनाया है—हम लोगों ने बनाया है...।"

मेरी इच्छा है कि कभी इस जापानी का रेखाचित्र 'अजन्ता' के लिए लिखूँ और कुछ समय मिलने पर लिखूँगा। यह बूढ़ा आदमी है परन्तु उसके विचार, उसकी कार्यक्षमता और उसके जीवन को देखकर मेरा तो अंग्रेज़ी से मोह छूट-सा गया है! मैं समझने लग गया हूँ कि हमें हिन्दी का ज्ञान प्राप्त करना होगा। हिन्दी के द्वारा ही हमारी प्रान्तीयता और संकीर्णता दूर हो सकेगी और हिन्दी के द्वारा ही हम में भारतवर्ष के प्रति प्रेम और भावना उत्पन्न हो सकेगी। आज अंग्रेज़ी के होने पर भी क्या हमारा देश एक हो गया है? यदि ऐसा ही होता—यदि अंग्रेज़ी के द्वारा हमारे देश की जनता में एकता उत्पन्न हो सकती—तो फिर अंग्रेज़ी शिक्षा के फैल जाने के पश्चात् कम-से-कम शिक्षित जनता तो एक हो जाती और शिक्षित जनता में जागृति और एक दूसरे के प्रति सद्भावनाएँ होतीं। परन्तु स्थिति इससे विपरीत है।............

बंगलोर —**कृष्णराव**

॥

(२)

मृत्यु, पुनर्जन्म और पागलपन!

(सत्य-घटना)

एक ही घटनाके तीन विभिन्न परिणाम किस प्रकार घटित हुए वह इस सत्य-वर्णन से विदित हो सकता है:

दक्षिण में रत्नागिरि के निकट ३।४ मील के अंतर पर आसुद नाम का छोटा-सा ग्राम है। वहां की समग्र जन-संख्या ४-५ सौ होगी। एक ओर छोटी-सी नदी बहती है और दूसरी ओर एक टेकड़ी खड़ी हुई है। यही उस छोटे से ग्राम का प्राकृतिक सौन्दर्य है। उसी गाँव में मेरे एक परिवारिक चाचा (काका) रहते थे। उनके घर में वे स्वयं, हमारी चाची और एक जीवन नाम का नौकर, यही तीन प्राणी थे। उसमें भी पिछले कई वर्षों से हमारी चाची को पागलपन की व्याधि होगई थी। इसीलिए उनके घर भोजन बनाने का काम गाँव की एक वृद्धा आकर किया करती थी। सन् १९४३ में मैं कार्यवश जब रत्नागिरि गया तो सोचा कि चलो आसुद जाकर चाचा-चाची से भी मिल आऊँ। और इस विचार को दृढ़ कर के एक बैलगाड़ी से मैं दो घंटे में वहाँ जा पहुँचा। लगभग ८।१० वर्ष पश्चात् मैं वहां गया था, इस कारण मुझे और चाचा को परस्पर पहचानने में भी कठिनाई हुई। क्योंकि चाचाजी की दृष्टि भी अब क्षीण हो चुकी थी और उन्होंने मुझे देखा भी बहुत दिनों के बाद ही था। वहाँ मैं ३।४ दिन ठहरा, किंतु इस बीच चाची के पागल हो जाने का कारण जानने की इच्छा कई बार मेरे मन में उत्पन्न हुई। अंत में वहांसे चलने के एक दिन पूर्व अचानक चाचा ने ही मुझे वह संपूर्ण घटना कह सुनाई।

हम लोग उस दिन रात्रि को भोजन के पश्चात् चाँदनी रात में एक खटिया बिछाकर उस पर बैठे बातें कर रहे थे। इसी बीच मुझे प्यास लगी और पानी पीने के लिए मैं गया, तो सामने ही लेटी हुई चाची ने ज़ोर से चिल्ला कर कहा "पानी पी कर लोटे पर ढक्कन रख देना, खुला न छोड़ देना!" "अरे, तुम जीवित हो? नहीं नहीं, तो क्या तुम सचमुच ज़िन्दा हो?" और इसके बाद ही वे ज़ोर से हँसने लगीं। यह देखकर मैं कुछ डरा और घबरा गया। किंतु चाची के इन शब्दों पर मुझे बहुत ही आश्चर्य हो रहा था। उसी समय मुझे यह सन्देह हो गया कि चाची के पागलपन का संबन्ध अवश्य किसी विशेष घटना से है। मैं पानी पीकर वापस आँगन में आया तो चाचा जी किसी विचार में मग्न हो रहे थे। इसीलिए मैं भी चुपचाप उनसे बातचीत न करके आकाश के तारे गिनने लगा। किंतु थोड़ी ही देर के बाद उन्होंने एक दीर्घ निःश्वास त्यागते हुए कहा उसकी बातें सुनकर तुझे आश्चर्य तो हुआ ही होगा; किंतु उसका सम्बन्ध एक विशेष किन्तु अत्यंत विचित्र घटना से है।

"लगभग २० वर्ष हुए होंगे । इसी ग्राम में एक परिवार रहता था । घर में केवल तीन ही मनुष्य थे । पति, पत्नी और एक नौकर । पति का नाम था विनायक और पत्नी का सावित्री । रात का समय था । विनायक राव कुछ पढ़ रहे थे और पास ही सावित्री बाई बैठी हुई बत्तियाँ बना रही थी । विनायक जी को प्यास लगी और उन्होंने पत्नी से पानी लाने को कह कर फिर पढ़ना आरंभ कर दिया । किन्तु बत्तियाँ बनाने की धुन में वह पानी लाना भूल गई । रात के ग्यारह बज चुके थे अतः विनायक राव ने पुस्तक बंद की । सावित्री बाई पहले ही जा कर सो चुकी थीं । विनायक राव भी दिया बुझा कर बिस्तरे पर लेट गये उस समय उन्हें याद आया कि मुझे प्यास लगी थी ; किन्तु मैं पानी पीना भूल गया । पर अब तो जोरों की प्यास लगी है । फिर भी अब सोने के बाद कौन उठे । जैसे तैसे रात निकल ही जाएगी । यह सोच कर वे सो गए ।

आधी रात का समय हुआ और प्यास के कारण विनायकराव के प्राण व्याकुल हो उठे । किन्तु दिया न होने से कोठरी में घोर अंधकार फैला हुआ था । हवा के कारण किवाड़ खड़खड़ा रहे थे । इस कारण उस गंभीर शान्ति में भयानकता का भास हो रहा था । अंततः प्यास का कष्ट सहन न होने से विनायक राव का 'प्राण' पानी की खोज में बाहर निकला ।"

यहाँ कहते हुए चाचा ने मेरी ओर देखा और गला साफ कर के उस विचित्र घटना को आगे सुनाना आरंभ किया ।

"वह बाहर निकला हुआ जीव (प्राण) धीरे धीरे आगे बढ़ने लगा । देहरी, बीच का कमरा पार कर भोजनालय में जा पहुँचा । वहाँ पहुँचकर वह पानी के बर्तनों की ओर बढ़ने लगा । किन्तु प्रत्येक बर्तन पर ढक्कन रखा हुआ था । केवल कोने में रखी हुई एक छोटी कलसी भूल से खुली रह गई थी । अतः 'जीव' (प्राण) धीरे धीरे उसमें उतरने लगा और थोड़ी देर में प्यास बुझने से जैसे ही वह शान्त होने लगा कि उसी समय तख्ते पर से किसी बर्तन के गिरने का शब्द हुआ । बिल्ली ने छलांग मार कर थाली को नीचे गिरा दिया था । अतएव उस शब्द को सुनते ही सावित्रीबाई जाग पड़ीं और दिया जला कर पतिराज के मुख की ओर देखा तो उस पर पूर्ण शान्ति विराज रही थी । वे आईं और और बिल्ली को भगा कर उन्होंने थाली को फिर तख्ते पर रख दिया भोजनालय में । इस के बाद सामनेवाले कोने में रखी हुई कलसी का मुंह खुला हुआ देखते ही तत्काल अपने स्त्री-स्वभावानुसार एक तश्तरी उस पर रखकर वे फिर सो गईं ।

सवेरे छः बज गये और चारों ओर उजेला फैल गया । यह देख कर सावित्री बाई एकदम चौंक कर उठ बैठीं । क्योंकि आज उन्हें उठने में कुछ देर हो गई थी । वे प्रतिदिन पाँच बजे उठकर विनायकराव के लिए स्नान का पानी गर्म रख देती थीं ; क्योंकि ठीक साढ़े पाँच बजे विनायक राव नियम से स्नान कर लेते थे । उन्होंने पलंग की ओर दृष्टि डाली तो विनायक राव हाथ पैर तान कर सोये दिखाई दिये । उन के मन में शंका उत्पन्न हुई और यह देखने के लिए कि, कहीं उन्हें बुखार आदि तो नहीं आ गया, उन्होंने जैसे ही उनके शरीर को हाथ लगाया तो उसे एकदम बर्फ की तरह ठंडा पाकर वे सन्न रह गईं ।"

मैंने बीच ही में हुंकार ली और उसी के साथ चाचा ने धोती के पल्ले से अपने आँसू पोंछ लिये । कदाचित् उन्हें यह घटना सुनाते हुए कष्ट हो रहा था । किन्तु मैं उस कष्ट का कारण न समझ सका और उस कथा को फिर सुनने लगा—

"प्रति का शरीर एकदम ठंडा प्रतीत होते ही उन्होने एक बार नाक के पास हाथ लेजाकर देखा तो श्वासोच्छ्वास भी बंद था । यह देखते ही वे एकदम जोर से चिल्लाकर धड़ाम से नीचे गिर पड़ीं । उनकी चिल्लाहट सुन कर नौकर भी जाग पड़ा और वह दौड़ कर भीतर आया तो वहां उसे वह भयानक दृश्य दिखाई दिया । तत्काल ही उसने पड़ौसी वासुदेव जी को बुलाया । वे ही उस गाँव के मुख्य वैद्य थे । आते ही उन्होंने विनायक राव की नाड़ी देखी । किन्तु वहां क्या रक्खा था ?

विनायक राव का प्राण तो निकलही चुका था । इस खबर को गाँव भर में फैलते देर न लगी । थोड़ी ही देर में गाँव के लोग आ पहुँचे। सावित्री बाई अभी ही होश में आई थी। दो तीन वृद्धाएँ उनको सान्त्वना दे रही थीं। थोड़ी ही देर में श्मशान यात्रा की तैयारी हुई और विनायक राव के शरीर को उठा कर बाहर लाया गया। इसके बाद उन्हें अंतिम स्नान कराने के उद्देश्य से पानी लेने को एक मनुष्य घरमें गया और उसने उसी कोनेमें रखी हुई कलसी को उठाया । किन्तु उसका ढक्कन हटाते ही कलसी एकदम नीचे गिर पड़ी; क्योंकि ढक्कन हटाते ही किसी मनुष्य के बहुत ही जोर से श्वास लेने जैसी ध्वनि उस कलसी में से निकलती सुनाई दी।

उधर उसी क्षण विनायक राव उठ कर बैठ गए। बस, फिर क्या था? क्षण भर में ही विनायक राव के जीवित होने का हल्ला मच गया। और सचमुच ही नींद में से जागने वाले मनुष्य की तरह विनायक राव ने आलस्य त्यागते हुए नेत्र खोल दिये और उन्हें अपने यहां इतने मनुष्यों को एकत्रित देख कर आश्चर्य हुआ। उधर विनायक राव को एकदम उठ बैठते देखकर लोग भी आश्चर्यान्वित हो रहे थे कि, ये उठ कैसे बैठे? क्या इनका पुनर्जन्म हो गया? कोई भी इस रहस्य को नहीं समझ सका।

किन्तु थोड़ी ही देर में विनायक राव पूर्णतया सावधान होकर उठ बैठे और उन्होंने अपने प्राणके तृषा बुझाने के लिए बाहर निकलने विषयक स्वप्न की घटना सबको कह सुनाई। फिर भी लोगों का समाधान नहीं हो सका। किन्तु विनायक राव अवश्य ही अपने स्वप्न का यथार्थ आशय समझ गये थे। उन्हें उसी क्षण स्मरण हुआ कि रात को प्यास लगने पर भी आलस्यवश पानी न पीने से ही यह गड़बड़ हुई है। किन्तु उनका यह पुनर्जन्म ही सावित्री बाई के पागलपन का कारणीभूत हो गया। पति की अचानक मृत्यु एवं घड़ी भर के बाद ही उनके पुनर्जन्म की परस्पर विरोधी घटनाओं का उनके मन पर गहरा आघात लगा और उसी दिन से वे उस घटना को स्मरण कर पागल की तरह लोगों के सामने बकने लगीं।"

इसके बाद चाचा ने कहा कि 'अब केवल दो ही बातों का खुलासा करना रह जाता है। उनमें से एक तो यह कि सावित्री बाई के अचानक ही उस कलशी पर ढक्कन रख देने से विनायक राव का प्राण उस में रुक गया और ढक्कन हटाते ही फिर बाहर निकल कर उन के शरीर में प्रविष्ट हो गया। और दूसरी का खुलासा करने के लिए—'

तब तक मैं बोला कि "उस दूसरी बात का खुलासा मैं करता हूँ और वह यह कि, आपने जिन विनायक राव का हाल सुनाया है, वे खुद आप ही हैं और सावित्री बाई हमारी चाची। क्यों ठीक है न चाचा जी?"

उज्जैन　　　　अनु०—**गोपीवल्लभ उपध्याय**

≈≈≈≈

वही भेंट सबसे उत्तम है जिस में जीवन का अंश मिला हुआ हो।

—**एमर्सन**

नीर-क्षीर

आलोचना (त्रैमासिक)
सम्पादक—श्री शिवदानसिंह चौहान
प्रकाशक—राजकमल प्रकाशन, दिल्ली
मूल्य—१२) वार्षिक—३) एक प्रति

यह प्रसन्नता की बात है कि हिन्दी साहित्य में एकमात्र आलोचना की दृष्टि से एक त्रैमासिक पत्रिका प्रकाशित होने लगी है। पत्रिका का प्रकाशन अच्छे ढंग से किया जा रहा है। काग़ज़ छपाई आदि सब अच्छे हैं। अभी तक हमारे साहित्य में आलोचना का अर्थ या तो प्रशंसा और बड़ाई समझा जाता रहा है और या फिर निन्दा और तिरस्कार। श्रीयुत पद्मसिंह शर्मा ने 'बिहारी सतसई' की आलोचना में जिस पद्धति का अनुसरण किया है वह एकमात्र प्रशंसात्मक है। उनकी आलोचना को पढ़ते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे कविता या साहित्य एक प्रकार की घुड़दौड़ है—जिसमें बिहारी का घोड़ा सब कवियों से आगे निकल जाता है। इसी प्रकार की आलोचना का दूसरा परिणाम यह होता है कि प्रशंसा के अभाव में एकमात्र निन्दा और निरादर किया जाता है। समालोचना बड़ी सन्तुलित वस्तु होनी चाहिए। जिस प्रकार किसी प्रकार का निर्णय प्रदान करने में आवेश से कार्य नहीं चल सकता उसी प्रकार सन्तुलित आलोचना में भी आवेश को स्थान नहीं दिया जा सकता यद्यपि साहित्य में भावावेश से आविष्ट न होना अत्यन्त कठिन है। साहित्य में भावावेश है परन्तु आलोचना में उससे ऊपर उठना पड़ता है। इससे ऊपर उठे बिना ऐसी आलोचना नहीं हो सकती जो सन्तुलित हो और जो अपने विषय का ऐसा ही निरीक्षण और परीक्षण कर सके जैसा कि एक वैज्ञानिक अपने अणुवीक्ष्ण यंत्र के द्वारा करता है। साहित्य बड़ी कोमल, नाज़ुक और सूक्ष्म-सी वस्तु है—ऐसी सूक्ष्म कि जो ज़रा-से हेर-फेर से या असावधानी से न केवल समझ में नहीं आती परन्तु कुछ दूसरे ही रूप में समझ में आजाती है। जिस प्रकार कविता या कला का अपना व्यक्तित्व होता है उसी प्रकार आलोचना का भी अपना व्यक्तित्व होता है—उसके बिना आलोचना आलोचना नहीं बन सकती।

यह 'आलोचना' पत्रिका का दूसरा अङ्क है। लेखों में आलोचनाविषयक पद्धतियों और सिद्धान्तों के परिचायक निबन्ध हैं। 'साहित्य में प्रयोगवाद' 'कला और साहित्य में प्रयोगवाद,' 'काव्य में प्रयोगशीलता' इस प्रकार एक अङ्क में तीन निबन्ध प्रयोगवाद पर ही हैं। और फिर इस पर सम्पादकीय में 'प्रतीकवाद' की टिप्पणी में भी, जो काफी लम्बी है, प्रयोगशील साहित्य के विषय में बहुत कुछ लिखा गया है। हम समझते हैं कि आलोचना के निबन्धों में पर्याप्त विविधता होनी चाहिए। दृष्टिकोणों में भेद होने पर भी सामग्री बहुत कुछ एक जैसी ही है। 'आलोचना' में कई प्रकाशित निबन्धों में यथोचित सरलता और गम्भीरता नहीं है उनमें लेखक के व्यक्तित्व का अनुभव नहीं होता। श्रीयुत नगेन्द्र जी के 'नव निर्माण' निबन्ध में अपना ही एक विशेष दृष्टिकोण है। निबन्ध पठनीय है। बहुत से लेखों में आलोचना ऐसी शास्त्रीय, रूखी और शब्दाडम्बर में उलझी हुई है कि विषय पूर्णतया न केवल सुस्पष्ट नहीं होता परन्तु उसका सम्बन्ध उतना साहित्य से नहीं रहता जितना कि दर्शन से हो जाता है। साहित्य और कला की आलोचना का सम्बन्ध साहित्य और कला से अविच्छिन्न रहना चाहिए और उसमें कोरी दार्शनिकता और शास्त्रीयता का रूखापन न आने देना चाहिए। आलोचना में पुस्तकों की समालोचना को भी पर्याप्त स्थान दिया जाता है यद्यपि इस में भी अभी आलोचक के व्यक्तित्व का अनुभव नहीं होता। जिस प्रकार 'आलोचना' को प्रकाशित किया गया है उससे हमें आशा है कि हिन्दी साहित्य में 'आलोचना' अपना एक विशिष्ट स्थान बना लेगी और हिन्दी साहित्य को इससे दिशा ज्ञान और शक्ति दोनों प्राप्त होंगे।

—वंशीधर विद्यालङ्कार

हैदराबाद

सामयिक

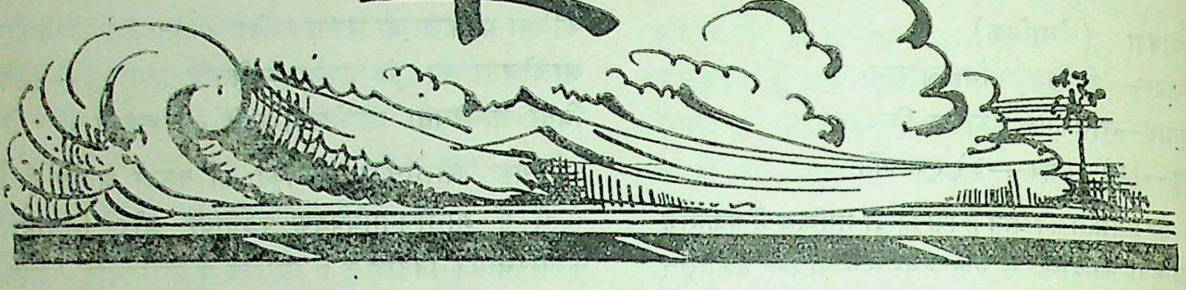

॥

हास्यरसावतार डेविड लो

न्यूज़ीलैण्ड निवासी डेविड लो ने अपने प्रारंभिक जीवन का अधिकांश समय आस्ट्रेलिया में राजनैतिक कार्टून बना कर व्यतीत किया। कलकत्ता के सचित्र साप्ताहिक पत्र 'ओरियण्ट' में आपका 'हास्य' विषयक एक लेख प्रकाशित हुआ है। इसमें आपने आज के और अर्द्धशताब्दि पूर्व के 'हास्य' की तुलना की है।

लोग अपनी हास्य प्रियता का विश्लेषण इसलिए नहीं करना चाहते क्यों कि उन्हें भय होता है कि इससे उन की मूर्खता प्रकट होगी यद्यपि फेफड़े या यकृत् की जँाच कराने के लिए सभी विशेषज्ञों के पास जाते हैं। हास्य सामाजिक महत्व का विषय है। उसे अनुसन्धान का विषय बना कर हमें प्रामाणिक विशेषज्ञों की सम्मति जानना चाहिए।

मैं स्वयं भी व्यवसायी हास्यकार हूँ इसलिए मुझे कौतूहल हुआ जब एक विशेषज्ञ ने बताया कि आज के अंग्रेज़ों का हास्य-विषय क्या है? इससे मुझे स्मरण हो आया कि आज से पचास वर्ष पूर्व की हास्य-सामग्री क्या थी; इन पचास वर्षों में हास्य-वस्तु सम्बन्धी क्या परिवर्तन हुए हैं।

इन विशेषज्ञों के अनुसार आज हास्य के विषय हैं: स्त्री-पुरुष संबन्धी अर्थात लड़के, लड़कियाँ, मुग्धकारी शोभा, प्रेमयाचना, विवाह आदि जो हमें सबसे अधिक मनोरंजक प्रतीत होते हैं। दूसरी श्रेणी के विषयों में बुरा स्वास्थ्य, नकली दांत, गंजा सिर, नाक में सर्दी सिर दर्द और शरीर का भारीपन उल्लेखनीय हैं। तीसरे प्रकार के हास्य के विषय घरेलू जीवन से सम्बन्ध रखते हैं जैसे सास-पतोहू, गृहिणी, बच्चे, सफ़ाई, घर की खोज। फिर विचित्र वेश-भूषा, भोजन, राशन या जीवित उल्लेखनीय पुरुष जैसे चर्चिल, एटली अथवा मदिरा, धन, व्यवसाय, विदेशी, कला आदि का नम्बर आता है। इन सभी से यह स्पष्ट है कि आज के हास्य के विषयों में समय और विचारों के साथ ही बहुत परिवर्तन हुआ है।

मेरा अनुभव है कि विभिन्न विषयों की विशेष शिक्षा हास्य के क्षेत्र को संकुचित कर देती है किन्तु हास्य यदि प्रारम्भिक हुआ तो उसमें विशेष परिवर्तन नहीं होता। मूलरूप से विचित्रता, विपन्नता, अव्यवस्थितता बेहूदगी, मुटापा आदि से सबका मनोरंजन होता है। मनुष्य शरीर, पेटूपना, शराबख़ोरी, आघात, मारपीट, दैवी दुर्घटनाएँ, आदि अपरिवर्तनशील हास्य के विषय हैं।

सर्कस के विदूषक और सस्ते पात्रों के साधारण विनोदों में पिछले पचास वर्षों में कुछ अधिक परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं होते। जहाँ शब्दों का अशुद्ध उच्चारण, ऊट पटाँग बातें, अर्थ का अनर्थ आदि से अब भी वे उसी प्रकार अपना काम चला रहे हैं।

वास्तविक परिवर्तन वैज्ञानिक उन्नति के क्षेत्र में दृष्टिगोचर होते हैं। १९०१ में लोग मूर्खता बिना घोड़े की गाड़ियों, बात करने वाली मशीनों, जहाजों आदि के विषय में हँसने से न रुकते थे वहाँ आज अधिकांश सामाजिक और आर्थिक कारणों से हास्य की सृष्टि हो रही है। उस काल में हमारी हंसी का अधिकांश

भाग उच्च और मध्यमवर्ग के दृष्टिकोण पर निर्भर था, आज हम जनतंत्र के साथ ही नौकरों की प्रवृत्ति, खड़ी कार में बैठे फैशनेबुल लोग, हाज़िर जवाबी, लोमड़ी का शिकार, सहज भाव से कहे हुए कोयलेवाली स्त्री या घुमक्कड़ के शब्दों से अपने हास्य की सृष्टि करते हैं। आज सीधे सादे जन साधारण सरलता से हास्य के विषय बन जाते हैं। मछली लेने के लिए लम्बी कतार, भरी हुई बसें, पड़ोसियों के गलाफाड़ चिल्लाते हुए रेडियो, आधुनिक विषय हैं। अमीरों के लम्बी मेज पर भोजन करते हुए जो हास्यवाक्य सुनने में आते थे अथवा सड़क पर झूमते हुए पियक्कड़ से जो हास्य की सृष्टि होती थी इस राशन और महंगी शराब के ज़माने में अब कहाँ प्राप्त हो सकती है? राजनैतिक उन्नति ने जाति विशेष की विचित्रताओं को हास्य का विषय नहीं रहने दिया। किन्तु अपने जीवन के प्रारंभिक काल में मैं अंगरेज़ों की विचित्रताओं पर कार्टून बनाते न थकता था। मेरे अनुसार अंगरेज गाय दुहने के लिए जानवर के मुँह के पास बैठते थे या खेल की पोशाक में चूहे का शिकार करने जाते थे। उस समय इंग्लैण्ड में उपनिवेशवासियों की भिन्नताएँ हास्य का विषय बनती थीं।

आज हास्य-सामग्री के वितरण में व्यावसायिक बुद्धि ने भी कम परिवर्तन नहीं किए। उनकी कृपा से हास्य व्यापार की वस्तु बन गया है। १९०१ में कोई कल्पना भी न कर सकता था कि हास्य बेचने के लिए बड़ी बड़ी आफ़िसों की इमारतें उठ खड़ी होंगी जिनमें अनेकों टाइपिस्ट और काग़ज़ों से भरी हुई फाइलें देखने को मिलेंगी अथवा अत्यधिक वेतनवाले सिनेमा के अनेक कलाकारों का एकमात्र कर्तव्य होगा लोगों को हँसाना।

एक बार मैं नेशनल कार्टूनिस्ट एसोसिएशन, न्यूयार्क के दफ्तर में गया और वहाँ अबीसीनिया से लेकर फ्रान्स और पेरू सभी देशों के राष्ट्रीय झंडे दीवारों पर लगे देखे। कारण पूछने पर मैनेजर ने एक शब्द में उत्तर दिया राष्ट्र-संघ। बाद को मालूम हुआ कि इन सभी देशों में एसोसिएशन की ३०० शाखाएँ हास्य बेचने का काम करती हैं। भविष्य में सम्भवतः राजनैतिक कार्टून और खबरों के कार्टून जैसे फोटो सिनेमा घरों और टेलिविज़न पर प्रदर्शित किए जाएँगे और वे अखबारों का महत्व बहुत कुछ कम कर देंगे।"

॥

श्री कामाक्षि राव ने मद्रास के मासिक पत्र 'हिन्दुस्तानी प्रचार' मे 'तेलुगु का भक्ति साहित्य' लेख प्रकाशित किया है। उसमें से निम्न उद्धरण दिए जाते हैं:—

"बंगाल के भक्त चैतन्य, महाराष्ट्र के ज्ञानदेव और तुकाराम कर्नाटक के पुरंदर और व्यासतीर्थ, हिन्दी प्रदेश के सूर और तुलसी, आँध्र के जयदेव और त्यागराज ऐसे महान् आत्माओं में से हैं जिन्हें साहित्य और संगीत दोनों में असाधारण प्रतिभा प्राप्त थी।

तेलुगु साहित्य में कोई काल ऐसा नहीं है जो 'भक्ति-काल' जैसे विशिष्ट नाम से अभिहित हुआ हो। हाँ, यह बात अवश्य है कि तत्कालीन परिस्थितियों के प्रभाव से प्रेरित होकर कुछ भक्तजनों ने अपने इष्टदेव का गुण-गान भावपूर्ण ढंग से किया है। लेकिन ऐसा साहित्य किसी एक निश्चित काल की सीमा के भीतर बंधा हुआ नहीं होता है। जो भक्ति-साहित्य तेलुगु में जहाँ तहाँ बिखरा पड़ा मिलता है, वह बड़ा ही उत्तम और सब दृष्टियों से पूर्ण है।

यों तो तेलुगु साहित्य के कई प्रमुख भक्त कवियों के नाम गिनाये जा सकते हैं; लेकिन उनमें दो कवि ऐसे हुए हैं, जो तेलुगु के भक्ति साहित्याकाश में सूर्य और चंद्र की भाँति प्रकाशमान हैं। उनमें एक कवि 'बम्मेर पोतराजु' हैं और दूसरे कवि 'त्यागराज' हैं। ये दोनों कवि-पुंगव तेलुगु प्रांत के घर-घर में अदृश्य रूप से प्रतिष्ठित तो हैं ही; त्यागराज अपने प्रांत की सीमा को भी लांघ कर विशाल भारतवर्ष के कई भागों में प्रवेश कर गये हैं। बम्मेर पोतना (वे आँध्र देश में इस नाम से अधिक प्रसिद्ध हैं।) त्यागराज के कई साल पहले हो गये हैं। इन दोनों में विशेष अंतर यही है कि पोतना ने संस्कृत-गर्भित, पर प्रसाद गुण से पूर्ण शैली में

भागवत-कथा को प्रबंध के रूप में लिखा तो त्यागराज ने प्रेम और भक्तिरस पूरित मुक्तक गीतों की रचना जनसाधारण की भाषा में की ।

पोतना एक महान् ज्ञानी, परम भावुक, भक्त एवं जननायक कवि थे । वे रामचंद्र के अनन्य भक्त थे ; पर अपनी रचना के लिए उन्होंने कृष्ण का चरित्र चुना । पोतना के समय तक तेलुगु में भागवत की रचना नहीं हुई थी । इसलिए पोतना का भक्त हृदय, भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि राम या कृष्ण में से किसी एक के गुण-गान में संतुष्टि पा सका । पोतना का व्यक्तिगत जीवन एक विशेष प्रकार का महत्व रखता है क्योंकि उनके जीवन का प्रभाव उनके सारे काव्य में परिलक्षित है । वे परम ज्ञानी, कर्मयोगी तथा रामचंद्र के अनन्य भक्त थे । जैसे कर्म, भक्ति और ज्ञान का त्रिवेणी-संगम उनके जीवन में पाया जाता है, उनके काव्य में भी इन तीनों का सामंजस्य हुआ है । पोतना हलवाहा थे । राजाश्रय में रहकर वे धन-मान संपन्न बन सकते थे । लेकिन उनको वह ऐश्वर्य पसंद नहीं था जिसके लिए उन्हें अपनी काव्य-कन्या को बेचना पड़े । उनका विचार था कि ऐसा नीच कार्य करने की अपेक्षा अपने बाल-बच्चों के भरण-पोषण के लिए हल चलाना कोई अपमान की बात नहीं है ।

पोतना एक उत्तम कोटि के भावुक कवि थे । संस्कृत के पूर्णज्ञान ने उनके काव्यों की शोभा को और भी बढ़ा दिया है । उनकी कविता में भाव और कला का ऐसा सुंदर सामंजस्य, भाषा और भावों की ऐसी होड़ तथा पांडित्य और चमत्कार का ऐसा अपूर्व मेल दीखता है कि पाठक उनका भागवत पढ़ते पढ़ते रस सागर में खो जाते हैं ।

श्री त्यागराज का जीवन-काल सन् १७७०-१८४७ तक माना जाता है । उन्होंने साहित्य और संगीत की जो गंगा-जमुनी धारा दक्षिण में वहाई है, उस पुनीत धारा के अवगाहन से शायद ही कोई बच सका हो । क्या पंडित, क्या पामर, क्या पुरुष, क्या स्त्री, सभी उनके कीर्तनों के मृदु मधुर संगीत के आस्वादन करने में अनिर्वचनीय आनंद का अनुभव करते हैं । त्यागराज की मातृभाषा तेलुगु थी । लेकिन उनका जन्म और जीवन-काल तमिलनाडु में ही बीता । भाषा का अंतर होते हुए भी तमिल भाषा-भाषी इनके गीतों से आकृष्ट हुए थे ।

त्यागराज श्री रामचंद्रजी के अनन्य भक्त थे । रामतारक-मंत्र का जप करते-करते वे बाह्य जगत् को भूल-से जाते थे उन्हें बचपन में ही संस्कृत की तथा संगीत की अच्छी शिक्षा मिली थी । उनका कंठ भी बहुत मधुर था । भक्ति से परिपूर्ण हृदय, संगीत का शास्त्रीय अध्ययन संस्कृत में वेद-शास्त्रों का अध्ययन, इन सबके समावेश से त्यागराज अपनी मातृभाषा में ऐसे अमर पदों की रचना करने में समर्थ हुए, जो अब तक सब लोगों को मोहित करते रहे हैं और चिर काल तक मोहित करते रहेंगे ।

यद्यपि त्यागराज को किसी देवी-देवता से द्वेष नहीं था, तथापि उपासना में तीव्रता तथा सिद्धि प्राप्त करने के हेतु उन्होंने श्री रामचंद्र को अपना इष्टदेव माना । उन्होंने शिव-केशव में भेद नहीं देखा । "राम" शब्द में उन्होंने शिव-केशव का सामंजस्य देखा और इसलिए 'राम' नाम को अपनाया । वे कहते हैं :

"शिवमंत्रमुनकु 'मा' जीवमु, माधवमंत्रमुनकु 'रा' जीवमु" शिवपंचाक्षरी शिवमंत्र के लिए 'म' प्राणाक्षर है और माधवमंत्र यानी नारायण अष्टाक्षरी के लिए 'रा' प्राण है । इन दोनों अक्षरों से 'राम' शब्द बनता है । स्पष्ट है कि त्यागराज का 'राम' शिव-केशव का समन्वित रूप है ।

यद्यपि त्यागराज जन्म से वैष्णव नहीं थे, तथापि वैष्णव हृदय रखनेवाले भक्त चूड़ामणि थे । वैष्णव संप्रदाय के अनुसार विनय की पूर्णता के लिए 'भूमिका' की आवश्यकता होती है । भूमिका के जो आठ अंग हैं (दीनता, मान-मर्षता, भयदर्शन, भर्त्सना, आश्वासन, मनोराज्य सौशील्य और विचारण) उन सबका सन्निवेश हम त्यागराज के कीर्तनों में पाते हैं ।

संगीत—नादब्रह्म की उपासना भारतीयों की एक विशिष्टता है । बहुतों का विश्वास है कि नाद

केवल संगीत का आधार नहीं है, बल्कि वह संसार का ही आधार है । कुछ लोगों का कहना है कि नाद और परमात्मा में कोई भेद नहीं है, क्योंकि भगवान् ही ओंकार स्वरूप है । इसके आधार पर ही "ओंकारप्रभवा वेदा:," "ओंकारप्रभवास्स्वरा:," "ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म" आदि कहे गए हैं । इस ओंकार ध्वनि का व्यापक रूप ही संगीत है । श्री त्यागराज भी यही विचार रखते थे । इसलिए संगीतोपासना को वे परमात्मा की उपासना मानते थे । वे कहते हैं:--

१. नादोपासन चेसे शंकर नारायण विधुलु वेलसिरि ओ मनसा.

(रे मन ! नादोपासना से ही शंकर, नारायण और ब्रह्म का प्रादुर्भाव हुआ ।)

२. नादलोलुडै ब्रह्मानंद मंदवे मनसा.

(रे मन! नाद की उपासना करके ब्रह्मानंद को पा लो ।)

ऐसा विश्वास रखते हुए त्यागराज ने संगीत की उपासना की । संगीत की पद्धति में भी उन्होंने कई नयी-नयी प्रणालियों को चलाया जो आज के संगीतज्ञों के लिए मार्गदर्शक साबित हुई ।

इस प्रकार तेलुगु प्रांत को निर्मल भक्ति-रस में संप्लावित करते हुए तेलुगु भाषा-भाषियों के लिए साहित्य का एक अनूठा भण्डार खोलनेवाले पोतना तथा त्यागराज सदा तेलुगु भाषा-भाषियों के हृदयों पर राज्य करते रहेंगे ।"

॥

सोवियत संघ की उच्च शिक्षा व्यवस्था

"सोवियत यूनियन के विचार और समाचार" पत्र में "सोवियत संघ में सायंकालीन कालेज की शिक्षा" विषयक एक लेख प्रकाशित हुआ है । इस लेख में से कुछ उद्धरण दिए जाते हैं:--

"सोवियत संघ की उच्च शिक्षा व्यवस्था में सायंकालीन कालेज की शिक्षा महत्वपूर्ण स्थान रखती है जिससे हज़ारों लोग अपना काम करते हुए नियमित रूप से अध्ययन कर सकते हैं ।

सायंकालीन कालेजों तथा दूसरे कालेजों के शाम की शिफ्ट में विशेषज्ञ ट्रेन किये जाते हैं । सोवियत संघ के समस्त टेकनिकल कालेजों में शाम के शिफ्ट होती हैं ।

हर साल सायंकालीन टेकनिकल कालेजों की संख्या में वृद्धि हो रही है । समस्त सोवियत नागरिकों को सेकंडरी स्कूल से पास कर चुकने के बाद सायंकालीन कालेज के में दाखिल होने का अधिकार है और इसमें उम्र की कोई कैद नहीं है । सायंकालीन कालेज छात्रों को निश्चिन्त हो सुचारु रूप से अध्ययन करने के लिए सभी आवश्यक सुविधाएं प्राप्त हैं । कल-कारखानों, दफ्तरों तथा दूसरी संस्थाओं के प्रबन्धक सायंकालीन स्कूल में पढ़नेवाले छात्रों का ठीक समय पर छुट्टी दे देते हैं और उनके अध्ययन के अनुरूप व्यावहारिक रूप में काम करने का उन्हें मौका देते हैं । छात्रों को परीक्षा की तैयारी करने, वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं में अभ्यास करने तथा निवन्ध तैयार करने के लिए अतिरिक्त छुट्टी मिलती है । सायंकालीन कालेज की शिक्षा समाप्त करने पर छात्रों को ठीक वही डिप्लोमा मिलते हैं जो अन्य उच्च शिक्षणालयों से पास करने के बाद मिलते हैं ।

सोवियत संघ में सायंकालीन कालेज की शिक्षा का पूरा पूरा ज्ञान कराने के लिए कुछ ठोस मिसालें देकर हम बताएँगे कि किस प्रकार फैक्टरियों में अपना काम जारी रखते हुए विशेषज्ञ ट्रेन किये जाते हैं ।

मास्को में मशीन निर्माण के सायंकालीन कालेज की स्थापना १९२८ में हुई । तब से इस कालेज से २००० अत्यंत दक्ष इंजिनियर ट्रेनिंग पाकर निकल चुके हैं । नमें आज बहुत से औद्योगिक क्षेत्रों में उच्च पदों पर आसीन हैं । इन में १५ स्तालिन पुरस्कार विजेता तथा बहुत से डिजाईन तैयार करनेवाले कार्यालय तथा विभागों के अध्यक्ष हैं । इस समय इंस्टीट्यूट में राजधानी के विभिन्न कल कारखानों, दफ्तरों तथा संस्थाओं के १३०० से ऊपर श्रमिक अपना काम जारी रखते हुए अध्ययन कर रहे हैं । इंस्टीट्यूट में दो विभाग हैं । एक विभाग में जनरल मशीन, स्टीम तथा डिज़ेल इंजिन

बनाने की ट्रेनिंग दी जाती है तथा दूसरे विभाग में फौंड्री वर्क्स, फौंड्री के साजोसामान, वेल्डिंग तथा वेल्डिंग के साजोसामान तैयार करने की ट्रेनिंग दी जाती है। इंस्टीट्यूट में हर तरह के मिकानिकल इंजीनियर ट्रेन करने के लिए व्यापक रूप में सुविधाओं की व्यवस्था है। अध्ययन करने के लिए सुसज्जित कमरे, प्रयोगशालाएं, पुस्तकालय तथा समस्त दूसरे प्रसाधन छात्रों को सहज ही उपलब्ध हैं। पिछले बीस वर्षों में इस इंस्टीट्यूट ने सैंकड़ों इंजीनियर तैयार किये हैं।

यूक्रेन में नीप्रोजेरझिस्की मेटलर्जिकल इंस्टीट्यूट की स्थापना हुए इक्कीस साल हुए हैं। इस अवधि में १००० से ऊपर श्रमिकों ने अपना काम करते हुए उच्च शिक्षा प्राप्त की है। सिर्फ पिछले साल जेरझिस्की प्लांट तथा शहर के दूसरे कारखानों के लगभग १०० स्तायानोवित इस इंस्टीटयूट से उच्च ट्रेनिंग पाकर निकले।

मेहनतकश लोगों के लिए उच्च शिक्षा का मार्ग प्रशस्त करने के उद्देश्य से सोवियत सरकार ने बहुत से बड़े बड़े कारखानों में सायंकालीन कालेजों की शाखाएं खोलने का निर्णय किया।

उदाहरण के लिए मोलोतोव आटोमोबाइल प्लांट के गोर्की पोलीटेकनिकल की सायंकालीन शाखा बड़ी सफलतापूर्वक चल रही है। यह सायंकालीन स्कूल पिछले बारह वर्षों से चल रहा है। इस अवधि में विविध विषयों के लगभग ८०० मेकानिकल इंजीनियर ट्रेन हो चुके हैं। इस सायंकालीन स्कूल का भूतपूर्व छात्र ब. न. मुर्णवन जिसने स्तालिन पुरस्कार पाया है इस समय मिलिंग मशीन प्लांट का अध्यक्ष है। स्तालिन पुरस्कार विजेता न. अ. युश्मानोव मोतोतोलो आटोमोबिल प्लांट के प्रमुख डिजाइनरों में है। प्लांट के लगभग ५०० छात्र इस सायंकालीन स्कूल में पढ़ रहे हैं।

१ सितम्बर १९५१ का मास्को के "कालिबर" वर्क्स की स्तालिन मशीन-टूल इंस्टीटयूट की सायंकालीन शाखा खोली गयी। इसमें छः साल का कोर्स है। इंस्टीटयूट के प्रोफेसरों और शिक्षकों के सिवा न. अ. रोसिस्की, प. ब. बिकोव, तथा अ. न. गानकारोव जैसे प्रसिद्ध आविष्कार एवं स्तालिन पुरस्कार विजेता विविध विषयों पर भाषण करते हैं।

१ सितम्बर १९५१ को युराल में चेल्या बिंस्क मेटलर्जिकल प्लांट की पोलीटेकनिकल इंस्टीटयूट को सायंकालीन शाखा खोली गयी। इसमें औद्योगिक कारखानों के लिए मेकानिकल और इलेक्ट्रिकल इंजीनियर तथामेटल र्जिकल इंजीनियर ट्रेन किये जाएंगे। प्लांट के १७५ श्रमिक अपना काम करते हुए इस इंस्टीटयूट में ट्रेनिंग पा रहे हैं। प्लांट के सेकंडरी मेटलर्जिकल स्कूल में २४० मेटलर्जिस्ट ट्रेनिंग पा रहे हैं।

किवीशेव हाइड्रो टेकनीकल प्रणाली के निर्माणस्थल पर किवीशेव औद्योगिक इंस्टीटयूट की सायंकालीन शाखा चालू है। कम्युनिजम के महान् निर्माणकार्य में काम करने वाले १५० श्रमिक हाईड्रो टेकनीकल तथा पावर इंजीनियरिंग विभाग में ट्रेनिंग पा रहे हैं। सायंकालीन सेकंडरी हाईड्रो टेकनिकल स्कूल में लगभग २५० छात्र अध्ययन कर रहे हैं।"

* * *

रशिया में महिलाएँ ही अधिकतर चिकित्सक का कार्य करतीं हैं। ब्रिटेन में भी महिला चिकित्सकों की संख्या बढ़ रही है।

साइन्स न्यूज़

सम्पादकीय

ग्राम-सुधार-योजना

उत्तर प्रदेश के प्रशासन के निर्देशन में ग्रामीण जनता में पारस्परिक सहयोग को जागृत करने के लिए तथा उनकी कार्यशक्ति को सुसंगठित करके उनके जीवन को सुखद तथा समृद्ध बनाने के लिए कुछ योजनाएँ बनाई गई थीं इन में से एक इटावा की योजना है। कहते हैं इस योजना के परीक्षण में सफलता प्राप्त हुई है और इस की विदेशियों ने भी प्रशंसा की है। इससे ज्ञात होता है कि यदि ग्रामों में पारस्परिक सहयोग की भावना जागृत हो जाए तो ग्रामों में एक नया जीवन उत्पन्न हो सकता है। इस परीक्षण को अब अन्य ग्रामों में विस्तृत किया जा रहा है। इस योजना को १९४८ में बनाया गया था। इस योजना के अन्तर्गत ४७ ग्राम थे जिनका क्षेत्रफल १०० वर्ग पुट था। ग्रामीणों को आधुनिक हल चलाने की पद्धति, खाद, बुवाई और कृषि के यंत्रों के प्रयोग को सिखाया गया। इसके साथ साथ वहाँ की ग्रामीण जनता को सहयोगी संस्था, ग्राम पंचायत, शिक्षा, स्वच्छता आदि की भी शिक्षा दी गई। जब धीरे धीरे ग्रामीण जनता का ध्यान इधर आकृष्ट हुआ तो ६४०० एकड़ में इस परीक्षण के द्वारा जो खेती हुई उसमें १९५०-५१ में अनाज के उत्पादन में ४० प्रति शत वृद्धि हुई। इस से ग्रामों में अच्छे और स्वास्थ्यपूर्ण मकान, और सड़कों का बनाना प्रारम्भ हुआ; पाठशालाएँ खुलने लगीं और इस प्रकार की सहयोगी संस्थाएँ खुलने लगीं जो किसानों को आवश्यक वस्तुएँ और आधुनिक कृषि के यंत्र उनकी सुविधानुसार दे सकें। इसी प्रकार की दूसरी योजना गोरखपुर जिले में बनाई गई। इसके अन्तर्गत लगभग १०० ग्राम थे। इसमें ग्रामीण जनता को खेती के द्वारा ही ४ लाख का लाभ हुआ है और इससे उनमें नव जीवन और नई जागृति उत्पन्न हुई है। प्रशासन को इसके लिए कुल दो लाख रुपया ही व्यय करना पड़ा। इन परीक्षणों से यह स्पष्ट हो गया है कि अब इन योजनाओं को विस्तृत करने के लिए ग्रामों से ही रुपया लगाया जा सकेगा।

मद्रास राज्य में भी इसी प्रकार की योजना को बनाया गया। इसे फिरका विस्तार योजना कहा जाता है। इस योजना के अन्तर्गत १००० ग्राम थे जिनकी संख्या आगे बढ़ कर १३९४ हो गई। इस योजना का प्रारम्भ १९४६ में किया गया था। इनमें ८४ फिरकों को चुन लिया गया। इस में ग्राम-सुधार के अफसर, ग्राम सेवक और लोक कार्य के (Public Works) सुपरवाइज़र आदि ने मिलकर कार्य किया। जिले के कलक्टर पर इस योजना का पूर्ण उत्तरदायित्व था। दो केन्द्रों में ग्राम-सेवकों को शिक्षा दी गई। १८५ सेवकों को तीन साल की शिक्षा प्रदान की गई, अब इसमें गैर-सरकारी संस्थाओं के सहयोग को प्राप्त करने के लिए उन्हें आर्थिक सहायता प्रदान की जा रही है। इस योजना के द्वारा नए कुएँ खोदे गए, पुराने कुओं की और नहरों की मरम्मत की गई, सड़कें बनाई गई, हरिजनों को मकान बनाने के लिए जमीनें दी गई, लाखों वृक्षों को आरोपित किया गया। कृषि के नए साधनों के प्रयोग की शिक्षा दी गई। किसानों के खेतों में हर प्रकार के प्रदर्शन किए गए जिनमें आधुनिक कृषियंत्रों के प्रयोग, समुचित खाद के परिणाम आदि को प्रदर्शित किया गया। किसानों को कृषि की उन्नति में जितनी सुविधाएँ प्रदान की जा सकती थी दी गई। एकमात्र इन फ़िरक़ों में १७१३ एकड़ भूमि पर जो निरक्षेक पड़ी हुई थी खेती की गई। इन में ३५ नमूने के क्षेत्र बनाएँ गए और २०३ प्रदर्शन-शालाएँ खोली गई। इनका अन्य ग्रामों में विस्तार किया जा रहा है। ग्रामों में पंचायतें और सहयोगी संस्थाएँ बनाई जा रही हैं। प्रारम्भिक पाठशालाएँ, वाचनालय और पुस्तकालय खोले जा रहे हैं। ८० स्कूलों के भवन

बन चुके हैं और २४ और बन रहे हैं। स्वास्थ्य की शिक्षा दी जा रही है। स्नानघर और पाखाने आदि की सफाई की ओर पूरा ध्यान दिया जा रहा है। प्रसूतिगृह और चिकित्सालय खोले जा रहे हैं। किसानों ने इस योजना को सफल बनाने के लिए स्वयं बहुत-सा धन या अनाज दिया है, कुओं और सड़कों को बनाने में इच्छापूर्वक बिना कुछ लिए सहायता दी है। ग्राम ग्राम में ग्राम-सेवा-संघ संगठित हो रहे हैं।

यदि धीरे धीरे ग्रामीण जनता स्वयं इन प्रयत्नों को अपने हाथों में ले लेगी तो यह कार्य बहुत शीघ्र हो जाएगा। ग्राम की सुधार योजना में जहाँ खेती आदि को समुन्नत किया जा रहा है वहाँ ग्रामीण उद्योगों को भी समुन्नत और संगठित करने का प्रयत्न होना चाहिए। जब ग्राम ग्राम में बिजली पहुँच जाएगी तो जहाँ इन उद्योगों में सहायता प्राप्त हो सकेगी वहाँ और भी कई उद्योगों को प्रारम्भ किया जा सकेगा। इन योजनाओं को अधिकाधिक विस्तार किया जाना चाहिए। आशा है कि इन प्रयत्नों के द्वारा ग्रामों में सहयोग के द्वारा नव और संगठित जीवन उत्पन्न हो सकेगा। हमारे देश में प्रत्येक क्षेत्र में नव जीवन ग्रामों में जागृति और प्रत्येक प्रकार के सुधार से ही उत्पन्न हो सकेगा।

राष्ट्र भाषा का स्वरूप

हमारे संविधान में हिन्दी को जब से राष्ट्रभाषा बनाया गया है तभी से कई क्षेत्रों में यह प्रश्न उठाने का प्रयत्न किया जा रहा है कि जो हिन्दी उत्तर प्रदेश में बोली जाती है वह हिन्दी उत्तरप्रदेश की बोली है वह हमारी राष्ट्रभाषा नहीं है। हमारी जो राष्ट्रभाषा है उसका तो अभी निर्माण हुआ ही नहीं। यद्यपि संविधान में हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार किया गया है परन्तु जिस ढंग से उसकी व्याख्या की गई है उसी के कारण यह सब वाद विवाद उठ खड़ा हुआ है। पहले तो हिन्दी को राष्ट्र भाषा स्वीकार करने में ही पर्याप्त समय लगाया गया और जब हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार कर लिया गया तो उसकी परिभाषा और व्याख्या इस ढंग से की गई जिसके कारण हिन्दी के प्रचार और विकास में नई समस्याएँ उत्पन्न होती जा रही हैं। इन व्याख्याओं के द्वारा हिन्दी और उर्दू के पुराने झगड़े को नया रूप दिया जा रहा है। समझा तो यह जा रहा था कि एक बार संविधान में हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार कर लेने के पश्चात् सब झगड़े और विरोध दूर हो जाएँगे और राष्ट्रभाषा के प्रचार और विकास का कार्य प्रारम्भ हो जाएगा। परन्तु हो कुछ और ही रहा है।

यह सत्य है कि राष्ट्रभाषा का अभी विकास होगा परन्तु यह कहना कि उत्तर प्रदेश की हिन्दी संविधान की हिन्दी नहीं है और राष्ट्रभाषा हिन्दी के विकास का तो कहना ही क्या उसका अभी निर्माण भी नहीं हुआ है—ठीक नहीं है। इस से राष्ट्रभाषा के प्रश्न को जटिल बनाया जा रहा है। बम्बई की टेक्स्ट बुक कमेटी ने हिन्दी के विषय में अपना यह निर्णय दिया है:—

"संविधान की हिन्दी उत्तर प्रदेश की हिन्दी से अलग है। यह कोई और भाषा है जिसका निर्माण अभी होना है।"

यदि हिन्दी का अभी निर्माण ही नहीं हुआ है तो अ-हिन्दी भाषा प्रान्तों में राष्ट्रभाषा हिन्दी के नाम से कौन-सी भाषा पढ़ाई जाएगी। अन्ततः कहीं से तो प्रारंभ करना ही पड़ेगा।

माननीय श्री कन्हैयालाल माणिकलाल जी मुंशी ने बम्बई में राष्ट्रभाषा-प्रचार-सम्मेलन के फरवरी १९५२ में हुए अधिवेशन के अपने सभापति के अभिभाषण में कहा:—

"संविधान के अनुच्छेद ३५१ में राष्ट्रभाषा के सम्बन्ध में कहा गया है:—

(१) आधुनिक हिन्दी जो प्रचलित है उसको ही आधार मानना।

(२) ऐसी हिन्दी की आत्मीयता।

(३) इसकी भावी उन्नति, और

(४) इसे समृद्ध करना। समृद्ध इस प्रकार किया जाएगा:—

(क) इसके दूसरे रूप अर्थात् हिन्दुस्तानी से

हिन्दी की आत्मीयता को विकृत किए बिना शब्द आदि ग्रहण करना ।

(ख) अन्य भाषाओं से गौणतः तथा संस्कृत से मुख्यतः शब्द ग्रहण करना ।

यह कहना कि अनुच्छेद ३५१ में उल्लिखित हिन्दी उत्तर प्रदेश तथा विहार की संस्कृत जनता की हिन्दी नहीं है किसी भी वकील की समझ में आना कठिन है ।"

आगे वे फिर कहते हैं—

"उत्तर भारत की हिन्दी और राष्ट्रभाषा हिन्दी के बीच भेद करने का प्रयत्न अनभिज्ञता पर और कुछ भाषाशास्त्रियों के भारत को नई भाषा देने के जोश और अत्यधिक आत्मविश्वास पर आधारित है ।............ यह कहना कि यह भाषा प्रदेश विशेष की है और दूसरे प्रदेश अपनी हिन्दी का स्वयं निर्माण करेंगे—बुद्धिमत्ता की बात नहीं । यह राजा कैन्यूट की तरह यह आशा करने के बराबर है कि सागर उसकी आज्ञा का पालन करेगा और उसके राज्य में प्रवेश नहीं करेगा ।"

भारत को एक राष्ट्र बनाने की विरोधी शक्तियाँ पहले थीं और अब भी हैं । वे समय और स्थिति के अनुसार अपने रूप बदलती रहती हैं । हिन्दी का विरोध पहले हिन्दी और उर्दू के रूप में किया जा रहा था—अब हिन्दी को संविधान में राष्ट्रभाषा स्वीकार कर लेने के पश्चात् उसका विरोध अन्य रूपों में किया जा रहा है । संविधान की इस प्रकार की व्याख्याएँ की जा रही हैं कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का अर्थ ही कुछ न रह जाय और यह झगड़ा किसी न किसी रूप में चलता ही रहे । यदि राष्ट्रभाषा हिन्दी का अभी निर्माण ही नहीं हुआ है और अभी उसका निर्माण होना है तो इसका निर्माण करेगा कौन ? भारतीय केन्द्रीय प्रशासन या प्रत्येक राज्य पहले अपनी अपनी हिन्दी का स्वयं निर्माण करेगा और फिर उन्हें मिलाकर केन्द्रीय प्रशासन उसका एक सामान्य भाषा के रूप में निर्माण करेगा और ये निर्माण कर क्या फिर बिल पेश किया जाएगा और फिर इसके निर्माण में कितने वर्ष लगेंगे ? संविधान में १५ वर्ष की अवधि रखी गई है ? क्या इस अवधि में भाषा का निर्माण किया जाएगा ? हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का अर्थ समस्त भारत की एकता है । हम समझते हैं कि जो लोग इस प्रकार के प्रयत्न कर रहे हैं वे भारत की एकता को—सांस्कृतिक एकता को निकट लाने की बजाय दूर करने का प्रयत्न कर रहे हैं ।

लेखकों की स्थिति

हमारे देश में अभी तक हमारी भाषाओं के लेखक पुरस्कार युग से निकल नहीं पाए हैं, उनका पारिश्रमिक युग में कुछ प्रवेश हुआ है । अभी तक वे ही लेखक मार्केट में चलते हैं जिनके लेख या कविताएँ स्कूलों या कालेजों की कक्षाओं में पाठ्यक्रम में स्थान प्राप्त कर लेती हैं। इनके द्वारा संभवतः उन्हें पर्याप्त रायल्टी मिल जाती है । आप इस रायल्टी को पारिश्रमिक के नाम से कह लें यह दूसरी बात है । हमारी पत्रिकाएँ आदि अब लेखकों को पारिश्रमिक देती हैं परन्तु पत्रिकाएँ स्वयं ऐसी अवस्था में नहीं हैं कि उनके द्वारा दिए गए पारिश्रमिक का कुछ विशेष मूल्य हो सके । यह संभव है कि कुछ समय के पश्चात् हमारे देश की ऐसी अवस्था हो जाय कि हमारे देश में लेखक अपने लेखों के लिए इतना पारिश्रमिक प्राप्त कर सकें कि वे स्वावलम्बी बनें और वे लेखक के कार्य को स्वतंत्र वृत्ति से ग्रहण कर सकें । अभी तक तो प्रायः लेखकों का यह कार्य Secondary गौण ही होता है क्योंकि एकमात्र लिखने के द्वारा ही आजकल के युग में जीवन-यापन करना कठिन है । हम यह मानते हैं कि सुन्दर लेख या कविता आदि का जीविका के रूप में एकमात्र धन से सम्बन्ध जोड़ना उनके महत्व को उच्च दृष्टि से कम करना है परन्तु लेखकों के जीवन के निर्माण और विकास के लिए उन्हें भी तो प्रति दिन के संसार के धरातल पर ही उतरना पड़ेगा और जब तक वे अपने आप को इस स्थिति में नहीं पाएँगे, वे अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिए न समय प्राप्त कर सकेंगे और न साधन ही जुटा सकेंगे । भारतवर्ष में तो अभी अनाज और कपड़े की ही ऐसी समस्या है

कि बहुत कम लोग शारीरिक अवस्था से ऊपर उठ सकते हैं। साहित्य और संस्कृति के प्रश्न तो दूर की बातें हैं। अभी तक स्वावलम्बी बनने के अभिलाषी लेखकों की दृष्टि अंग्रेजी के लेखकों पर पड़ती थी। यह समझा जाता था कि अंग्रेजी के लेखकों की अवस्था ईर्ष्या की वस्तु है। "आर्यन पाथ" में जार्ज गाडविन ने एक लेख प्रकाशित किया है। इसका शीर्षक है—"आज के लेखकों की दयनीय अवस्था"। इस लेख में आज के अंग्रेजी लेखकों की दुरवस्था पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला है। वे लिखते हैं:—

"आज आर्थिक प्रश्नों ने सांस्कृतिक कार्यों को समाप्तप्राय कर दिया है। इसे वे ही लोग अनुभव कर सकते हैं जिन पर इसका प्रभाव प्रत्यक्षरूप से पड़ा है। युद्ध के पश्चात् एक लेखक को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। पुस्तकों की प्रकाशित करने का खर्च एकदम बढ़ गया है; छपाई मँहगी है; काग़ज़ मिलता ही नहीं। प्रकाशक उन्हीं पुस्तको को प्रकाशित करना चाहते हैं जिनकी वे कम से कम दस हजार प्रतियाँ प्रकाशित कर सकें। दूसरी पुस्तकों को वे दुःख के साथ लेखकों को वापस कर देते हैं। इस कारण लेखकों को बाधित होकर अपने लिखने की वृत्ति को छोड़ना पड़ रहा है और आर्थिक कठिनाइयों के कारण अपने सांस्कृतिक कार्यों को बन्द करना पड़ गया है। एक लेखक ने प्लेटो के पुनर्जन्म के सिद्धान्त पर एक पुस्तक लिखी और एक प्रसिद्ध प्रकाशक को भेजा। प्रकाशक ने उत्तर दिया "पुस्तक बड़ी योग्यता से लिखी गई है। मुझे पढ़कर बहुत प्रसन्नता हुई। परन्तु मैं इसकी २००० कापियों से अधिक बेच नहीं सकता और इससे उसके छपाई का खर्च भी नहीं निकल सकता।" इन कठिनाइयों के परिणामस्वरूप प्रकाशकों ने या तो रायल्टियों में कमी कर दी है और या कुछ प्रसिद्ध प्रकाशकों ने पुस्तकों की कीमतें बढ़ा दी है और वे उससे अधिक लाभ उठा रहे हैं परन्तु वे लेखकों को उतना ही देते हैं यद्यपि उनकी आर्थिक कठिनाइयाँ बढ़ गई हैं। पहले अच्छे लेखक अपना एक सेक्रेटरी रख लेते थे और उसे वे प्रति सप्ताह ३ या ४ गिनी वेतन देते थे। आज उस योग्यतावाली कोई लड़की ७ गिनी से कम नहीं लेती। एक लेखक को कागज़ भी पर्याप्त मात्रा में खरीदना पड़ता है। पहले एक रीम कागज के दाम ३ शिलिङ्ग थे, अब १५ शिलिङ्ग हैं। यदि एक लेखक आज ८०,००० शब्दों की एक पुस्तक लिखे और यह पुस्तक कहानी की न हो तो उसे क्या प्राप्त होगा? तीन वर्ष हुए एक लेखक ने एक कन्ट्रैक्ट पर हस्ताक्षर किए। पुस्तक का विषय था 'धर्म का पुनरुत्थान'। उसने पुस्तक की पांडुलिपि वर्ष भर में दे दी। उसे ५० पाउण्ड अगाऊ रायल्टी दी गई। तीन वर्ष के बाद उसे अमेरिकन एडीशन से २८ पाउंड प्राप्त हुए परन्तु इंग्लैण्ड के एडीशन से उसे कुछ नहीं दिया गया क्योंकि जो अगाऊ रायल्टी उसे दी गई थी वह भी उसे विक्री के अनुसार प्राप्त नहीं हो सकती थी।...जनता प्रसिद्ध लेखकों को जानती है परन्तु उसे यह पता नहीं है कि वे अपनी किस प्रकार गुजर करते हैं। इसका परिणाम यह होगा कि मौलिक विचार की पुस्तकें लिखनेवालों की धीरे धीरे कमी होती जाएगी। ऐसे ही लेखक रह जाएँगे जो इधर उधर से कुछ लेकर लिखते रहेंगे। आज ब्रिटेन में लिखने का मानक गिर रहा है। इन दिनों काग़ज़ अप्राप्य है और प्रकाशक और पुस्तकविक्रेता किसी को भी पुस्तकों के द्वारा विशेष प्राप्ति नहीं हो रही है। अभी इस अवस्था में उन्नति की कोई सम्भावना नहीं है इसका परिणाम यह होगा कि ब्रिटेन में लेखन कला का भविष्य आशाजनक नहीं रह जाएगा।"

PRINTED AT THE OSMANIA UNIVERSITY PRESS—HYDERABAD No. 7.

THE PRUDENTIAL CO-OPERATIVE
CENTRAL & URBEN BANK LTD.,
Kingsway, SECUNDERABAD-Dn.

★

BRANCH : **HYDERABAD.** PHONE NO. **7195**

TRANSACTS BANKING BUSINESS
OF EVERY DESCRIPTION.

Office Safety Facilities In Uptodate Underground
Safe Vaults.

A. H. VENKAT RAO B. A., LL. B., *Honorary Secretary.*
L. N. GUPTA, I. A. S. *President.*

टेलीफ़ोन नं. ४१२५ तार का पता-**पेपर**

दी सिरपुर पेपर मिल्स लिमिटेड

व्यवस्थापक
इंडस्ट्रियल ट्रस्ट फण्ड (हैदराबाद सरकार)

विश्वभवन, हिमायत नगर हैदराबाद-दक्षिण
फेक्टरी सिरपुर क़ाग़ज़ नगर, (सेन्ट्रल रेल्वे)

हमारे यहाँ आवश्यकतानुसार हर क़िस्म का
पेपर तैयार होता है।
हमेशा सिरपुर पेपर का ही इस्तेमाल कीजिये,
— क्योंकि —
वह मज़बूत, अच्छा एवं सस्ता होता है और दक्षिण हिन्दुस्तान में ही
बनाया जाता है।

हिन्दी के उत्तमोत्तम

साहित्य की प्राप्ति के लिए

—✻ एकमात्र स्थान ✻—

हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा

नामपल्ली रोड : हैदराबाद—द०

तार—"हिन्दी"

टेलीफोन नं० ५४५०

प्रकाशकः— प्रियबन्धु [illegible] प्रेस, हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद—दक्षिण.

gd. 411

२२-५-५२

अजन्ता

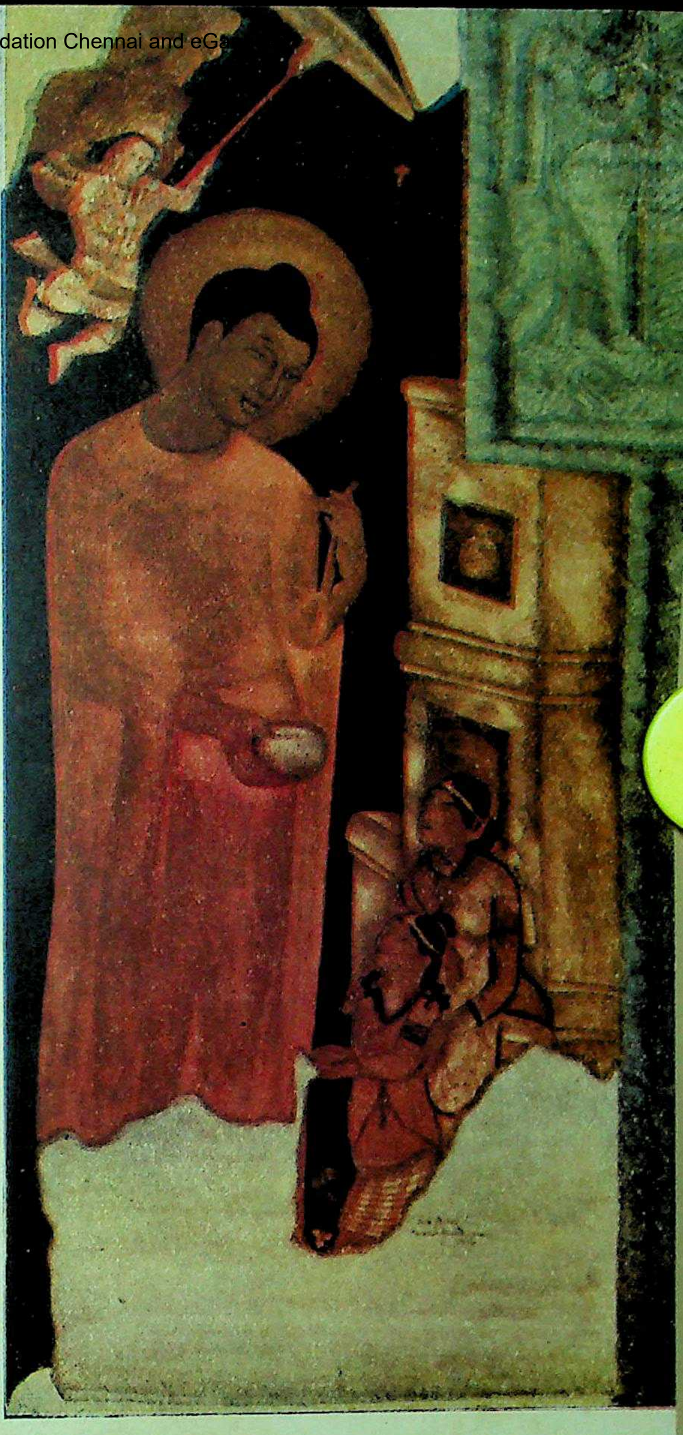

भा

"हिन्दी

वर्ष ४ अप्रैल १९५२ अङ्क

हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभ

इस अङ्क में पढ़िए

श्री उदयशंकर भट्ट
श्री वू. जो. जेन
श्री डा. भगवतशरण उपाध्याय
श्री आदित्य मिश्र
श्री राजेन्द्र यादव
श्री के. सजनलाल
श्रीमती ताराराानी श्रीवास्तव

श्री विनयमोहन शर्मा
श्री सत्यभूषण 'योगी'
श्री 'अंचल', एम. ए.
श्री 'निशंक', एम. ए.

* * * *
* * *
* *
*

अगले अङ्क में पढ़िए

श्री परशुराम चतुर्वेदी
श्री ओ. सी. गांगुली
श्री चन्द्रबली पाण्डेय
श्री अनिलकुमार
श्री अवनीन्द्र विद्यालङ्कार
श्री मातृदत्त एम. ए., साहित्याचार्य

श्री जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द'
श्री 'अंचल' एम. ए.
श्री सत्यभूषण 'योगी'
श्री नवीनचन्द्र 'आर्य'

"अजन्ता" का [illegible]क मूल्य ९) एक अंक का १) (भा. मु.)

दी निजाम शुगर फैक्टरी [लिमिटेड]

स्फाटिकवत्, समरूप, मधुरतम

श्वेत शर्करा

★

जानकारी

विक्रय-विभाग

प्रधान कार्यालय से प्राप्त करें।

* * * *

प्रधान कार्यालय	फैक्टरी
आबिद रोड, हैदराबाद – दक्षिण.	शक्कर नगर निजामाबाद.
केबल तथा तार } "शुगर"	"शुगर" { केबल तथा तार

फोन नं० ४७०४, ४२९६, ४१३७, ४८७६

दी हैदराबाद कन्स्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड

आबिद रोड, हैदराबाद दक्षिण

के

मैनेजिंग एजेण्ट के प्रतिनिधि,

दी निजाम शुगर फैक्टरी लिमिटेड

दी हैदराबाद कन्स्ट्रूक्शन कम्पनी लिसिटेड के लिए विक्रय विभाग

THE

Hyderabad Co-operative Dominion Bank Ltd.

[Estd. MARCH 1915]

Telephone : **4610**

Telegram : **DOMINBANK**

Sub Offices :
PATHER GATTI,
UNIVERSITY BRANCH
(Adickmet)

Head Office :
SHAHRAH-E-OSMANI
HYDERABAD-DECCAN.

Branches :
JADCHARLA (Dt, Mahboobnagar) THUNGABHADRA PROJECT (Munirabad)

1. CURRENT ACCOUNTS are opened free of charge and interest is allowed at ½% per annum.
2. SAVING DEPOSITES are accepted and interest is allowed at 2% per annum.
3. SPECIAL SAVINGS DEPOSITES are accepted and interest is allowed at 1½% per annum.
4. DRAFTS are issued on all important COMMERCIAL CENTERS and within the HYDERABAD STATE.
5. PENSIONS, MANSABS, etc, are collected on commission basis, premiums remitted & all standing instructions on behalf of the customers carried out.
6. SAFE DEPOSIT LOCKERS & VAULUTS are available at HEAD OFFICE.

BANKING BUSINESS OF EVERY DESCRIPTION TRANSACTED

K. SUNDARAVARADACHARI,
GENERAL MANAGER.

RAI DILSUKH RAM,
CHAIRMAN.

FIRE: ACCIDENT: MARINE:

THE HYDERABAD UNITED INSURANCE CO., LTD.,

SPONSORED BY

THE GOVT. OF HYDERABAD.

Post Box No. 164, Abid Road, HYDERABAD-Dn.

Telegram: ***HUICOL***

Telephone: ***5579***

Chairman:
L. N. GUPTA Esq. I. A. S.,

General Manager:
H. D. MEHTA Esq.,

BRANCHES : Bombay, Calcutta, Madras, Nizamabad & Manchirial.

'HIND'

हिन्दी, तेलुगु, मराठी और अंग्रेज़ी की

सब तरह की

उत्तम

★ छपाई ★

के लिए

हमेशा याद रखिये

॥

★ हिन्दी-प्रेस ★

॥

हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा

श्री राम हिन्दी भवन

नामपल्ली ● स्टेशन रोड ● हैदराबाद दक्षिण.

तार का पताः—हिन्दी

टेलीफोनः—५४५०

THE OSMANSHAHI MILLS LTD
NANDED
and
THE AZAM JAHI MILLS LTD
WARANGAL

● ●

SECRETARIES, TREASURERS AND AGENTS
THE INDUSTRIAL TRUST FUND
Government of Hyderabad
HYDERABAD-DECCAN.

Manufacturers of
COTTON FABRICS OF OUTSTANDING QUALITY
AND DURABILITY.

For particulars and price's apply to:—

C. S. TYABJEE, Esqr., O. B. E.,
MANAGING AGENT-
159, Gunfoundry Road, Hyderabad-Dn.
Telegrams: "OSMANSHAHI" "AZAMJAHI"
Telephone: 4738

१९५२

राष्ट्रभाषा

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति का मुखपत्र
संपादक
भदन्त आनन्द कौसल्यायन

विषय सूची

१. राष्ट्रभाषा का वार्षिक मूल्य तीन रुपये और एक प्रति का चार आने है।

२. वी॰ पी. से अंक नहीं भेजा जाता। कृपया मूल्य मनी आर्डर द्वा भेजें।

३. मनीआर्डर-कूपन में 'राष्ट्रभाषा' का चन्दा भेजने का उल्लेख, ग्राहक का नाम एवं पूरा पता सुवाच्य अक्षरों में लिखा रहना चाहिये।

४. 'राष्ट्रभाषा' फरवरी '५१ से प्रतिमास ता. ९, १० को रवाना की जायेगी।

५. पते में परिवर्तन कम-से-कम छः महीनों के अंकों के लिये करना हो तभी उसकी सूचना कार्यालय को दें। अन्यथा अपने पोस्ट आफिसर से स्थानीय व्यवस्था क लेनी चाहिये।

६. पत्र व्यवहार करते समय प्रत्येक पत्र में अपना नाम एवं पूरा पता सुवाच्य अक्षरों में लिखें; प्रमाणित प्रचारक, केन्द्र-व्यवस्थापक, राष्ट्रभाषा के ग्राहक--इन शब्दों के साथ अपनी क्रम-संख्या लिखें।

७. 'राष्ट्रभाषा' में प्रकाशनार्थ समाचार प्रान्तीय संचालकों के द्वारा मिलने पर ही उन्हें पत्र में स्थान दिया जा सकेगा।

—व्यवस्थापक

राष्ट्रभारती

भारतीय साहित्य की प्रतिनिधि पत्रिका

साहित्य-संस्कृति-कला प्रधान पत्रिका **"राष्ट्रभारती"** प्रतिमास आपको भारतीय एवं विदेशी भाषाओं की साहित्यिक-सांस्कृतिक गतिविधि का परिचय देती है। इसमें देश-विदेश के गण्य-मान्य विद्वानों और कलाकारों की श्रेष्ठ चनाएँ और अधिकृत अनुवाद भी रहते हैं। **"राष्ट्रभारती"** को राष्ट्रभाषा हिन्दी और लगभग सभी प्रान्तीय भाषाओं के श्रेष्ठ साहित्यकारों का सहयोग प्राप्त है।

★ आज ही ग्राहक बन कर लाभ उठायें ★

—राष्ट्रभारती प्रत्येक मास की १ तारीख को प्रकाशित होती है—
(वी. पी. भेजने का नियम नहीं है। नमूने की प्रति के लिए ।।=) के डाक टिकट भेजें।)

वार्षिक मूल्य ६) **एक प्रति ।।=)**

पताः— व्यवस्थापक "राष्ट्रभारती"

राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, हिन्दीनगर, वर्धा (म॰ प्र॰)

अजन्ता के विषय
में
कुछ पत्र

मुझे 'अजन्ता' को देख कर परम प्रसन्नता हुई। यह हिन्दी की श्रेष्ठ मासिक पत्रिकाओं में से है। इसमें लेख, कविता आदि का चयन अच्छा है।

—कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी
देहली

. . . .

. . . . . .

अजन्ता को जिस आकर्षक रूप में देख रहा हूँ उसके लिए आपको बधाई देना चाहता था। 'अजन्ता' बहुत सुन्दर निकल रहा है। चोटी के पत्रों में स्थान मानता हूँ। 'अजन्ता' में 'ग्वालियर की डायरी' छप रही है वह बहुत रोचक है...

—सूर्यनारायण व्यास
सम्पादक
विक्रम, उज्जैन

. . . .

. . . . . .

'अजन्ता' को देख कर बड़ी प्रसन्नता हुई। इसके लेखों और कवियों का चयन, प्रकाशन सब ढंग का है और सुन्दर है। पत्रिका उच्च कोटि की है। इसके लिए मेरी बधाई स्वीकार कीजिए।

—चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार
देहली

. . . .

. . . . . .

'अजन्ता' के लिए बधाई। बहुत ही पसन्द आती है।

—गोपीकृष्ण
प्रयाग

पंजाब, हैदराबाद और त्रावणकोर राज्यों के शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत

अजन्ता

मासिक पत्रिका

वर्ष ४ एप्रिल १९५२ अङ्क ४

सम्पादक
वंशीधर विद्यालङ्कार
श्रीराम शर्मा

—: संचालक :—

हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा

अनुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

१. आज—श्री सत्यभूषण 'योगी' १

२. करील—श्री अंचल एम. ए. ४

३. कोयल—श्री वंशीधर विद्यालंकार ५

४. अधखिली कली की तुम सुमधुर मुसकान--श्री निशंक, एम. ए. ६

५. हमारा साहित्य किधर ?--श्री उदयशंकर भट्ट ९

६. नव चीन में ललित कलाएँ—श्री वू. जो. जेन १४

७. 'रामचरितमानस' में सामाजिक द्वन्द्व—श्री आदित्य मिश्र १८

८. सर्वोदय योजना पर एक दृष्टि—श्री उमाशंकर शुक्ल २४

९. जब हम लिखें—श्री राजेन्द्र यादव २६

१०. सौन्दर्य और शैतान—श्री यादवेन्द्रनाथ शर्मा 'चन्द्र' ३१

११. हैफ़ा के सामने—श्री भगवतशरण उपाध्याय, एम. ए. ३५

१२. न्याय—श्री तारारानी श्रीवास्तव ३९

१३. ग्वालियर की डायरी—श्री के. सजनलाल, एम. ए. ४२

१४. कबाड़खाना—(एकांकी नाटक) श्री प्रमोदवर्मा, बी. ए. ४६

१५. अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त प्रथम भारतीय वैज्ञानिक—अनु. गोपीवल्लभ उपाध्याय ५६

१६. पारो—अनु. श्री राधाकृष्ण इन्दाणी ६१

१७. नारी से--दीप्ति ६५

१८. चिट्ठी-पत्री— १. श्री श्यामसुन्दर झुनझुनवाला
  २. ,, फ़तहचन्द शर्मा 'आराधक'
  ३. ,, इन्द्र कुमार ६६

१९. नीरक्षीर— १. श्रीमती ज्ञान अस्थाना
  २. श्री गयाप्रसाद शास्त्री ७०

२०. सामयिक— ७३

२१. सम्पादकीय—श्री वंशीधर विद्यालंकार ७७

सालारजंग की म्यूज़ियम के सौजन्य से **भागमती** अजन्ता, अप्रैल १९५२

वर्ष ४ अप्रैल १९५२ अङ्क ४

आज

आज, आज तुम खुशी मनाओ
बीते कल का सोच करो मत, भावी कल किसने देखा है
इन दोनों के बीच आज की मुसकाती स्वर्णिल रेखा है
यह प्रभात है, प्राची में है ऊषा का स्मिति-उज्वल आनन
ये विहगों की मस्त उड़ानें, वितत व्योम में जीवन-स्पन्दन
तुम भी गाओ, तार मिलाओ
आज, आज तुम खुशी मनाओ

– २ –

आज तुम्हारा अच्छा बीते 'कल यह ही होगा मधु सपना'
यहाँ अनिश्चित सखे, सभी कुछ, केवल आज तुम्हारा अपना
कल, परसों, दो बरस बाद क्या होगा, यह तुम को है चिन्ता
यह जो आज तुम्हारे बस में, ध्यान नहीं है तुमको इसका
नहीं हाथ की चीज़ गँवाओ
आज, आज तुम खुशी मनाओ

— ३ —

यह अनन्त यात्रा है यात्री, हमको बहुत दूर है जाना
जिस दिन सुध आए वह ही दिन, पहला दिन, कैसा घबराना
यह अनन्त है काल विगत की चिन्ता से कुछ लाभ नहीं है
दो दिन पीछे सही पहुँच जाओगे मंजिल जहाँ कहीं है
अगर आज पर क़दम जमाओ
आज, आज तुम खुशी मनाओ

— ४ —

थाम हाथ से सिर तुम बैठे, दैव कर्म दर्शन में उलझे
और आज भी भगा जा रहा, अब कोई तुमको क्या समझे
दर्शन सबसे बड़ा यही है-बढ़ो आज जीवन के पथ पर
डरो न दुख से, रुको न सुख में, लक्ष्य दूर है, बढ़ो निरन्तर
मात्र आज का साज सजाओ
आज, आज तुम खुशी मनाओ

— ५ —

रहो प्रतिक्षण बेसुध फिर भी तुम्हें न पथ की रेखा भूले
जिसका लो प्रभात में सपना, सन्ध्या उसको जाकर छू ले
कापुरुषों-सी वंध्य कल्पना कभी न करना मेरे प्यारे
जिसको इस क्षण सोचो अगले क्षण हों उस पर हाथ तुम्हारे
हँसो हँसाओ बढ़ो बढ़ाओ
आज, आज तुम खुशी मनाओ

- ६ -

करो परिश्रम, मस्तक पर से श्रम की शत धाराएँ छूटें
दृढ़ इच्छा से बढ़ो, भाग्य की पूर्व नियत काराएं टूटें
तुमको अपने आप अकेले ही करना है, जो करना है
मुँह देखो मत किसी अन्य का, आत्माश्रय से ही तरना है
मानव अपने को अपनाओ
आज, आज तुम खुशी मनाओ

— ७ —

इस दुनिया में एक सत्य है-मनुज आज का महाराज है
इसको वह वश कर ले तो प्रस्तुत हीरों का जड़ा ताज है
सखे, आज के इस प्रभात में बने आज की सुदृढ़ योजना
फिर कल आ तुम को खोजेंगे तुम्हें पड़ेगा कुछ न बोलना
स्वर ऊषा के सुनो सुनाओ
आज, आज तुम खुशी मनाओ

– ८ –

अरे भाग्य क्या है, वह तो है पहले ही कर्मों का संचय
वह तो एक गणित का लेखा, उसमें क्या सुख, उससे क्या भय
जो हिसाब में निकले ले लो और आज का महल बनाओ
कम या ज्यादा जो कि हाथ में, उसे बढ़ाओ, मत घबराओ
बढ़ो, न बीते पर पछताओ
आज, आज तुम खुशी मनाओ

– ९ –

दिल बहलाने को पीते हो या दिल तुमको बहलाता है !
कितना बचता हाय, सत्य तो बार बार सम्मुख आता है !!
यहां शान्ति संघर्ष-प्राप्य है, श्रम की बूँदों में शीतलता
यह विरोध ही अलङ्कार है, बनी हुई इससे मानवता
इसको समझो तो मुस्काओ
आज, आज तुम खुशी मनाओ

– १० –

यह पथ है अद्‌भुत जीवन का, बहुत कठिन है, बहुत सरल है
मात्र भेद है दृष्टि विन्दु का, यही अमृत है, यही गरल है
अगर देखना सीख गए तुम लो यह ही तो देवभाव है
महाप्राप्ति है यहां उलझना औ' कायरता ही अभाव है
दर्शन की गुत्थी सुलझाओ
आज, आज तुम खुशी मनाओ

– ११ –

सम्मुख आ कर के उलझो तुम, बचना और टालना निष्फल
बनो विधाता अमृत-युग तुम, प्रिय, विधेयता में है क्या बल
खुले वक्ष पर श्रम की बूँदे, नयनों में सत्योज्वल दर्शन
त्रिभुवन को ललकार हृदय में, चिन्तन-स्मिति से शोभित आनन
क्षण क्षण सावधान हो पाओ
आज, आज तुम खुशी मनाओ

देहली

—सत्यभूषण 'योगी'

करील

वन वन में माँ ! फूट रहा है मधु के निर्झर का उन्मेष
गूँथ रही हैं कलियाँ अपने पवन-प्रदोलित केशर केश
आज तुम्हारे मन्दिर में है उत्सव का मंगल कीर्तन
पुष्पराजि की वादन क्रीड़ा—मधुपों का कलरव गायन
देवि ! तुम्हारी ही लीला-सा चलता मादक मलय समीर
तृण-तरु-पात-मुकुल-द्रुम-द्रुम को बाँट रहा है गन्ध अधीर
बकुल गुलाब अगुरु रसभीनी जुही चमेली मृदु मन्दार
सुरभित, मुकुलित, फलित उच्छ्वसित प्राणों से पूरित कान्तार
कहाँ उधर वह दीपोलोकित बल्लरियों का स्वर्ण—सदन
इधर दुःख जड़ता से पीड़ित मेरा यह मलिन जीवन
आज तुम्हारे वन-मन्दिर में मैं अछूत-सा, भिक्षुक-सा
अवहेलित उत्पीड़ित कुत्सित एक बूँद को भी प्यासा
मैं अपने कातर नयनों में लेकर तृष्णाभरी जलन
दीन हीन देखा करता हूँ यह नव ऋतु का रस प्लावन
तुम कैसे मेरी जननी, मैं कैसा एक तुम्हारा बाल
जब सब की कंचन सी काया क्यों मेरा सूखा कंकाल
मुक्त तुम्हारे कलश पयोधर ये रवि शशि रस के भण्डार
पत्ते पत्ते में भरते हैं जीवन का नव स्रोत अपार
बनदेवी ! होता न कभी फिर क्यों मुझ में रस का संचार
कब तक पड़ा रहूँ मैं एकाकी ले काँटों का संसार

'—अंचल', एम. ए.

जबलपुर

कोयल

कोयल कू कू बोल रही है।
नव बसन्त में नई जवानी का मादक रस घोल रही है।

फूल झूल कर ताल दे रहे
थिरक थिरक कर पवन मृदु बहे
क्या मस्ती में पत्ता पत्ता डाली डाली डोल रही है।

दिशा दिशा में उठें तरङ्गें
हृदय हृदय में उठें उमङ्गें
स्वप्न जगत् की रंग बिरङ्गी आशा-कलियाँ खोल रही है।

एक ओर रख सारा अम्बर
एक ओर धरती को रखकर
दोनों को कर एक बराबर गान तुला में तोल रही है।

हैदराबाद

—वंशीधर विद्यालंकार

अधखिली कली की तुम सुमधुर मुसकान!

अधखिल कली की तुम सुमधुर मुसकान !
मदिर उल्लास लिए
बिखरातीं मादकता अमंद !!
छवि की पुलकन,
सुरभित श्वासें,
अल्हड़ यौवन की चंचलता,
आकर्षण, मधुवर्षण, क्षण-क्षण
मधुपों का आत्मसमर्पण
निज अलसित नयनों में किए बंद !
बिखरती मादकता अमंद !!
तुम नव प्रभात की
अरुण किरण सी
ले अरुणिम भोलेपन को—
करतीं अपना शृंगार सृजन

× ×

तुम मुग्ध हो गईं—
मधुपी के लख अरुण नयन,
तुम झूम उठीं—
पाकर उसका मृदु आलिंगन,
तुम सिहर उठीं-
उसके अधरों से अधर मिला,
तुम पुलक उठीं-
पागल प्रेमी का पा प्रसाद,
तुम बिखर गईं—
बनकर प्रभात के शिथिल स्वप्न

कब बँधीं नयन के डोरों में ?

कब रुकीं पलक की कोरों में ?

तुम बसीं न मेरे गीतों में

कर डाले मेरे मुक्त छंद ?

तुम्हें कब इसका अनुभव हुआ—

रात भर रोया कोई मौन ?

धरा का हरा पिछौरा

अब तक गीला

जिनकी अश्रुधार से ।

अपनी मस्ती में,

तुमने था कब सुना

किसी ने तुम्हें पुकारा

बार बार !!—

स्नेहहीन बाती बनकर

जो रहा जलाता गात रात भर !

जो जीवन की धूप-छाँह की चल छाया में

सुखदुख का व्यापार

न निश्चित कर पाया था ।

× ×

जो मंज़िल पर पहुँच रुक गया
लक्ष्य छुक गया था
यद्यपि उसके चरणों पर
एक एक अरमान
बन गया था उस दिन वरदान
विश्वास—
सफलता की सीमा था माप चुका ।
प्यास को मिली अमरता
और तृप्ति को नित नूतन आल्हाद;
किंतु वह था साधक का सजल गान
जिसकी आहों में पलते हैं आदर्श
बदल दो तुम अपने रंग
किंतु वह एक रूप में रँगा;
उसे इस जीवन से भी
अधिक लग रही
प्रिय
उसकी पहिचान ।।
अधखिली कली की तुम सुमधुर मुसकान...

—निशंक, एम. ए.

लखनऊ

हमारा साहित्य किधर ?

इतना बड़ा संकट इस देश पर शायद ही कभी आया हो। कदाचित् ही आचार का पतन इस देश में इतना कभी हुआ हो। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद तो मनुष्य बीमारी से उठने के बाद भूखे की तरह आपाधापी, स्वार्थ सिद्धि और अपना अपना की रटन में तन्मय हो गया है। उसकी बाहरी आंखों ने भीतर की आंखों को निस्तेज बना दिया है। विकट संकट के इस काल में मनुष्य को मनुष्य बनाने वाले धर्म के बन्धन विश्वासहीन समाज की मर्यादा में क्रियाहीन हो गए हैं। जैसे ईश्वर का भय या उसका अस्तित्व ६ महीने के बच्चे को डराने वाला कोई हौआ हो गया है। जब कोई भी बन्धन, कोई भी मर्यादा और कोई भी सामाजिक-आचार नहीं है तब आखिर मनुष्य को नियम में रखने वाली कौन-सी वस्तु है जिसके आधार पर मनुष्य समाज टिका रहे? या तो शिक्षाजन्य विवेक हो और या फिर हमारी सांस्कृतिक परम्पराएँ जो मृतजातियों में जीवन का संचार करती हैं। ऐसा सब हमारे इस देश में आज कुछ भी नहीं रहा है। जो कुछ है वह क्षीण, एकांगी और निर्बल है। इसी विश्व युद्ध के बाद इंगलेण्ड चाहे अपनी पूर्व स्थिति में न आ गया हो किन्तु उसकी परम्परा ने इंगलेण्ड के जीवन को कुछ अंशों में अवश्य सुव्यवस्थित कर दिया है।

दिल्ली में नई दिल्ली से करोल बाग़ को जाते हुए एक पहाड़ी सड़क है जिसे रिज रोड कहते हैं। वहां मोटर तांगों, रिक्षा और पैदल साइकल ट्रक आदि की अपार भीड़ होने से पुलिस ने तांगे और साइकल वालों के लिये वह रास्ता बन्द कर दिया और उसके साथ जरा हट कर एक और सड़क उनके लिये नियत कर दी। निश्चय ही इस व्यवस्था से सुविधा हो गई। किन्तु साइकल और ताँगे वाले नियम भंग करके पुलिस के न होने पर उसी मार्ग से चलते हैं। उन्हें न तो नियम भंग होने का डर है, न उनमें इतना विवेक ही रह गया है कि वे अपनी सरकार द्वारा बनाये गये उस नियम को भंग न करें। और आश्चर्य तो यह है उस मार्ग से जाने वाले नव्वे प्रतिशत भारत सरकार के वे बाबू लोग हैं जो देश के शासन को सँभालने का कार्य करते हैं; जो नित्य नये कानून बना कर जनता से उसके पालन की आशा करते हैं।

एक दूसरा उदाहरण लीजिये—दुर्घटना रोकने के लिये पुलिस ने साइकलों पर दो आदमियों का चढ़ कर चलना रोक दिया। निश्चय ही यह काम उन्होंने समझदारी का किया और इसे सबको मानना चाहिये क्योंकि इसमें सब का भला है। पर परिणाम कुछ भी नहीं हुआ। जहां पुलिस का डर हुआ वहां तो उतर गये नहीं तो आप, बीबी और एक बच्चा तीनों उस साइकल पर बैठेंगे। और उस दिन तो पहली बार मैंने जो कुछ देखा वह सचमुच आश्चर्य और हंसी का विषय था। एक व्यक्ति आप साइकल पर बैठा था, सामने एक तीन साल का बच्चा, पीछे एक बच्चे को लिये कैरियर पर पत्नी, उस आदमी के सिर पर खाट। विश्वास कीजिये उस दृश्य को देख कर मेरे तो हँसते हँसते पेट में बल पड़ गये। दुःख तो हुआ ही। किन्तु जरा आगे जाते ही सुना बेचारे एक ट्रक से टकरा गये और सड़क पर बेहोश पड़े हैं। यह सब उस समय हुआ जब कि पुलिस ने दो व्यक्तियों के एक साथ साइकल पर बैठ कर चलाने की रोक लगा दी थी। फिर भी लोग इस बन्धन को स्वीकार करने में ढील करते हैं जैसे कानून का न मानना कोई एक खेल हो।

यह है स्वतन्त्र भारत के जन साधारण का नैतिक बल। ऐसे और भी अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं जिनसे ज्ञात होगा कि हममें न मनुष्यता ही का कोई अंश रह गया है और न नैतिक दायित्व का कोई बल। ऐसी दशा में हम क्या करें? यही सब से बड़ा प्रश्न है! मैं मानता हूं इन समस्याओं और प्रश्नों का हल ही आज का हमारा साहित्य होना चाहिये। साहित्य केवल वह ही नहीं है जो शाश्वत समस्याओं का समाधान करे। ध्रुव सत्यों का व्याख्यान करे। साहित्य वह भी है जो जीवन को प्रकाशमान, विवेकमय और उनमें मार्ग प्रदर्शन द्वारा जन कल्याण की भावना पैदा करे।

प्रत्येक साहित्य अपने युग का प्रतिनिधित्व करता है। जिस साहित्य में यह शक्ति नहीं है वह निर्जीव, प्राणहीन साहित्य है। आखिर साहित्य है तो मनुष्य के लिये ही न! फिर जब तक वह अपनी उपयोगिता सिद्ध नहीं करता तब तक जन साधारण उसे पढ़ेगा ही क्यों! जगत् के साहित्य युग चाहे वह यूरोप में ग्रीस का पैराक्लिस युग हो, या रोमन साम्राज्य का वर्जिल होरेस युग अथवा मध्ययुग की मूर्छा से उल्लसित डाण्टे-प्रेट्रार्क का युग हो, विदेशी और स्वदेशी पराक्रम के अमृत सिंचन से प्रकाशमान अलिज़ाबेथ का युग और हमारे देश में देवासुर-संग्रामजन्य वैदिक अथवा रामायण और महाभारत का युग। ये सब अपने काल की समस्याओं का ही तो समाधान करते हैं। वस्तुतः साहित्य मनुष्य का मानसपुत्र है। वही उसमें अपना प्राण सिंचन करके जन योग्य बनता है। अपने बाहरी विग्रह-क्षोभ संघर्ष जीवन द्वन्द्वों को आत्मसात् करके उसके द्वारा ऐसी दिशा का संकेत करता है जिसमें पाठक की ग्राहिका शक्ति अपना मार्ग स्वयं निकाल ले। वस्तुतः साहित्य रजनीगन्धा के पुष्प की सुगन्धि के समान अन्धकार पूर्ण रात्रि मे ही निखरता है। महाभारत अपने काल के संघर्ष के परिणाम हैं। इसी प्रकार अमर ग्रन्थ इलियड, औडेसी, तत्कालीन जीवन संघर्ष के अमृत मन्थित रूप हैं जिनमें विष से अमृत का निर्माण हुआ है। साहित्य विधि, निषेध का मार्ग नहीं ग्रहण करता वह जीवन के पथ का निर्माण करता चलता है।

हाँ, तो हमारे आज इस युग को राजनीति के भयंकर ग्राह से बचाने का यदि कोई उपाय हो सकता है तो वह साहित्य ही है।

वस्तुतः आज राजनीति ने मानव मात्र को जकड़ रखा है। यहाँ तक कि धर्म मंदिर, पूजा स्थान, समाज सेवा की संस्थाओं में भी विशेष हथकण्डों द्वारा अधिकार लिप्सा और उसके द्वारा नेतृत्व की जबर्दस्त आकांक्षा के लिये मार्ग खोल दिया गया है। राजनीति ने जीवन व्यापार के उन तत्वों पर अधिकार कर लिया है जिन्हें आज तक परमार्थ के नाम से संबोधित किया जाता रहा है। इसी तरह साहित्य भी उससे अधूरा नहीं रह गया। जो 'अमृतः आत्मनः कला' के पावन वन में शान्ति परमानन्द की कल्हारिणी का मकरंद प्रसारित करने में जीवन की उपयोगिता का समर्थन करता रहा है। उसमें आज राजनीति के छल, कपट, प्रवंचना, असत्य के तत्त्व आ घुसे हैं। मनुष्य को स्वयं अपना मार्ग प्रशस्त करने और सोचने देने की अपेक्षा प्रोपेगेण्डा द्वारा उसे बलात् उस एक मार्ग पर चलाने को एक ही प्रकार से सोचने को बाध्य किया ज़ा रहा है। जैसे वह भी कलाकार के लिये एक कारण हो। जैसे उसके अतिरिक्त आज उसके लिये और कोई मार्ग ही न हो। मैं मानता हूँ अर्थ का प्राधान्य है। 'अर्थस्य पुरुषो दासः' पुरुष अर्थ का दास है। और अर्थ का ठीक ठीक विभाजन आज के युग की प्रधान समस्या है। शायद पिछले युगों में भी रही हो। फिर भी क्या बाहरी और भीतरी शान्ति का भी वही उपाय है? मैं इन सब समस्याओं के समाधान के लिये साहित्य को ही रामबाण औषधि मानता हूँ। साहित्य सदा से धर्म, वर्ग की संकीर्णताओं से ऊपर रह कर चलता आ रहा है। हममें से हज़ारों नहीं लाखों की संख्या में ऐसे व्यक्ति होंगे जिन्होंने धर्म की संकीर्णता के कारण बाइबल, कुरान ज़िन्दावस्ता नहीं पढ़ी होंगी। धर्मशास्त्रों का अध्ययन नहीं किया होगा किन्तु ऐसे कितने विद्वान् हैं जिन्होंने दांते, मिल्टन, शेक्सपियर, ह्यूम, शेख़सादी, वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, अश्वघोष के ग्रन्थ पढ़ने में जात-पाँत, वर्गसंबन्धी हिचकिचाहट प्रकट की होगी। क्या किसी ने भी फ़ैबियन थ्यूरी को नापसन्द करते डर माना; समाजवादी शक्ति के प्रबल समर्थक और बुर्जुआ रीति रिवाज़ों के प्रबल शत्रु शा के नाटक पढ़ते समय पहले धर्म या जाति का विचार किया? इसीसे मैं कहता हूँ कि सत् साहित्य का निर्माण वर्ग धर्म की संभावित रूढ़ियों से सदा ऊपर रहा है और साहित्य का प्राण सभी को निरंतर एक साथ अमृत पान कराता रहा है। राजनीति के युग में जब कि प्रतिद्वन्द्विता में विजय पाने के हेतु मनुष्य धर्म, अधर्म, वर्ग जाति की महत्ता के सभी हथकण्डे हथिया रहा है मानवता का एकमात्र कल्याणकामी साहित्य का ही क्षेम और प्रेम है।

मैं यह नहीं कहता कि हमें धर्म का एक दम त्याग कर देना चाहिए। किन्तु धर्म को मैं एक विशेष रूप में ले कर ही स्वीकार कर सकता हूँ। मैं धर्म को विवेक मानवता के विकास में सहायक मान कर चलना चाहता

हूँ। वस्तुतः धर्म विस्तृत और विशद हो कर मनुष्य को वहीं ले जाना चाहता है जहाँ साहित्य। हमारे देश का पतन धर्म के वास्तविक रूप को न समझने के कारण हुआ है। उसके फैनेटिक रूप ने हमारी समस्याओं, संकटों को बदला है। साहित्य तो इसीलिए एक दम फैनेटिक नहीं है। वह अमेरिका के नीग्रो के लिये भी वैसा ही रसदायी है जैसा भारत के एक कोने में बसनेवाले मनुष्य को। उसका कारण है साहित्य का निरपेक्ष भाव, उसका विधिनिषेध से एकदम हीन होना।

इसका एक कारण यह भी है कि साहित्य का व्यापार मनुष्य के दैनिक जीवन से प्रभावित रहा है। उसके राग, द्वेष ईर्ष्या, अहंकार का उसकी प्रवृत्तियों, चेष्टाओं, उसकी परंपराओं से जन्म ले कर वह शुद्ध इत्र की तरह छन कर बहता है। वह आचारवाद का उद्घोष चाहे न करे, वह धर्म की डोंडी चाहें न पीटे किन्तु उसमें विशाल प्रवृत्ति आचारपरक और उदारहृदयता धर्मपरक होती है। वह मनुष्य को मनुष्य समझने की प्रवृत्ति प्रदान करता है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' तथा 'सर्वभूतहितेरतिः' उसके ध्येय बनते हैं। प्रसिद्ध कवि और आलोचक टी. एस. इलियट ने कहा है— On the other hand poetry has some thing to do with morals, and with religion, and even with politics perhaps, though we can not say what' यहाँ पोएट्री का तात्पर्य संपूर्ण वाङ्मय से है। हमारे यहाँ के आचार्य मम्मट का जो आज से कई सौ साल पहले अपने ज्ञान चक्षुओं से देख कर काव्य का प्रयोजन लिख गये हैं वह भी तो यही कहते हैं—

"काव्यं यशसेऽर्थकृते, व्यवहारविदे, शिवेतरक्षतये
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मितयोपदेशयुजे।"

मुझे तो ऐसा लगता है सभी विद्वान् चाहे वे भारत के हों या पाश्चात्य देशों के, साहित्य को अक्षुण्ण रखने और जीवन के प्रति उपकारक दृष्टि देने के कारण इसी एक सत्य को स्वीकार किया है। अन्यथा प्लेटो, अरस्तू, होरेस, दान्ते, मिल्टन, शैली, कीट्स तथा मम्मट, दण्डी, जगन्नाथ, अभिनवगुप्त, आनन्द वर्धन सभी एक मत कैसे हो सकते थे। युग विशेष में समस्याओं के विभिन्न होते हुए भी उनके समाधान और समन्वयात्मक परिणाम साहित्य में सदा से एक ही रहे हैं। हो सकता है वैदिक, रामायण काल में लोगों की भाषा, रहने सहने का ढंग आज से भिन्न हो, और आज की तरह वे हिन्दी या अंग्रेजी न बोलते हों, कोट पतलून न पहनते हों, टाई न लगाते हों और यह निश्चित है कि वे ऐसे परिधानों से रहित थे। किन्तु उनके राग द्वेष, हर्ष शोक तो आज जैसे ही थे। यदि उस समय 'श्यालको गृहनाशाय' सत्य था तो आज भी वह उतना ही सत्य है। यदि उस समय—

'एणीदृशो विजयते वेणी पृष्ठविलम्बिनी,
कशेव पंचवाणस्य युवतर्जनहेतवे।'

सत्य था तो आज भी

'खोलो मुख से घूँघट खोलो
हे चिर अवगुण्ठनमयि बोलो
क्या तुम केवल चिर अवगुण्ठन
अपना भीतर जीवन कम्पन
कल्पना मात्र मृदु देह लता
पा ऊर्ध्व ब्रह्म माया विनता

× × ×

तुममें कवि का मन गया समा
तुम कवि के मन की हो सुषमा।

यह सत्य है।

जीवन के आंतरिक व्यापार सदा एक रहे हैं और जब तक मनुष्य मनुष्य है वे इसी प्रकार चलते रहेंगे। केवल बाह्य परिधानों, बाह्य दृष्टिकोणों में समय के अनुरूप अंतर आता रहेगा। हमारे अभिव्यक्ति के ढंग और शैलियाँ बदलती रहेंगी। यही कारण है महान् ग्रन्थों के सत्य आज भी हमारे लिये उपादेय हैं। वस्तुतः वही एक परंपरा है, वे सत्य हैं जो संपूर्ण काल के जीवनों को प्रभावित करते हैं। मनुष्य के पास वही एक अक्षय कोश चला आता है जिसका निरंतर उपयोग करते रहना है, उसके द्वारा अपना मार्ग खोजना है। इतिहास उस मार्ग की खोज में सहायक होता है, अध्यात्म उन प्रवृत्तियों को विकसित करता है। 'चक्रवत, परिवर्तन्ये दुःखानि च सुखानि च' इस वाक्य में दुःख और सुख से तात्पर्य बाह्य व्यापारों द्वारा प्राप्त सुख दुःख यदि लिया जाय तो हमें जीवन के वे विभिन्न दृष्टिकोण दिखाई देंगे

जिनसे हमें सुख दुःख मिलते हैं। वे परिस्थितिजन्य विवशतायें हैं जिनके चक्कर में हम घूमते हैं और निकलने का प्रयत्न करते हुए उस समय तक नहीं निकल पाते जब तक कोई प्रबल शक्ति हजारों और लाखों हाथों से उसे मोड़ न दे। वे हजारों और लाखों हाथ जनता के बल के प्रतीक में से निकलते हैं। वह युग पुरुष होता है। फिर भी कुछ ऐसा होता है कि जनता उसके प्रत्यक्ष फलदायी अपेक्षित बल को स्वीकार करती है और शेष को छोड़ देती है। भगवान् बुद्ध के अहिंसात्मक उपदेशों का आधार लेकर जनता ने उनकी अहिंसा, सत्य प्रेम को ग्रहण करने के बजाय वैदिक लोगों के प्रति घृणा के रूप में अधिक ग्रहण किया। उनके पावन उपदेशों को जीवन का उतना अंग नहीं बनाया। हमारे इस युग ने भी गांधी जी के राजनीतिक रूप का साथ अधिक दिया, उनके धर्मप्राण ईश्वरप्रेम का मार्ग उतना नहीं पकड़ा। आज भी राजनीति में उनका वही पहला रूप अधिक मूर्तिमान् स्वीकार किया जाता है।

इस देश ने गांधी जी के वास्तविक रूप को जितनी जल्दी भुला दिया उतना कदापि किसी भी युग पुरुष की बातों की अवहेलना नहीं हुई होगी। मेरी इस बात की पुष्टि आज की भारतीय जनता अपने चरित्र बल की अनैतिकता द्वारा स्वयं कर रही है। अन्यथा यह देश स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इतना हीन इतना अविवेकी, इतना स्वार्थपरायण न हो जाता। आज तो ऐसा दीख पड़ता है जैसे इस देश का कोई भी राष्ट्रीय चरित्र कभी रहा ही न हो! और यह सब उन दिनों हो रहा है जब गांधी जी की अस्थियाँ अभी पूरी तौर पर ठंडी भी नहीं हो पाई हैं। विश्लेषण से ज्ञात होगा कि गांधी जी का देश के प्रति निदान भारतीय चरित्र की दृष्टि से ग़लत था। जनता ने उन्हें केवल राजनीतिक नेता स्वीकार किया। इस स्वीकृति में प्रेम होते हुए भी उपेक्षा का भाव था। मैं मानता हूँ यदि अन्न, वस्त्र और निवास का इतना संकट न होता तो कदाचित् इतनी घृणित अवस्था न होती। फिर भी गांधीजी की नैतिक शिक्षा उनके राजनीतिक रूप के नीचे दब गई ऐसा आप स्वीकार करेंगे। या फिर हजारों वर्षों की दबी दासता को जड़ मूल से उखाड़ फेंकने के लिये कई गांधी अपेक्षित थे।

हमें मानना चाहिये कि आज के भौतिकवादी जगत् के लिये जिसके विकृत रूप के कारण ही सारा संसार त्रस्त है हमारा प्रयत्न उसी रोग के निदान का हो। साहित्य में इसे प्रगतिवाद कहा जाता है। यह प्रगतिवाद साम्यवाद का साहित्यिक रूप है। जिसका उद्देश्य है साहित्य में आमूलचूल परिवर्तन करना। भाषा, भाव, विचार शैली सभी दृष्टियों से परिवर्तन; प्राचीनता का एकदम बहिष्कार।

विस्तार में जाने की आवश्यकता नहीं है यह भौतिकवाद हमारे यहाँ भी था। कपिल का सांख्यदर्शन। बृहस्पति, चार्वाक के दर्शन भी एक प्रकार से भौतिकवादी थे किन्तु गंगा यमुना नर्मदा के तटों से प्रक्षालित, हिमालय, विंध्य के उत्कर्ष से सुशोभित और वेदों से अभिमंत्रित ऋषियों के तप से अभिभूत इस देश में उनका प्रभाव क्षणस्थायी और अकिंचित्कर रहा।

उस भौतिकवाद ने भारतीय संस्कृति को उखाड़े बिना केवल आकाश बेल की तरह अपनी सत्ता गढ़ी और इसीलिए उसका प्रभाव जल्दी ही नष्ट हो गया। आज के भौतिकवाद का आधार अर्थपरक एवं देश की दुर्दशा में उत्तेजना पा कर पल्लवित हुआ है। बाहर से आने पर भी प्रत्येक के हृदय में उसका बीज निहित हो गया है और उसका कारण हमारी आर्थिक स्थिति के दुष्परिणामस्वरूप उस विचार धारा के लिये क्षेत्र तैयार होना है इसीलिये यह भौतिकवाद तथाकथित और ऊपरी नहीं है। फिर भी इस निदान की इस औषध के प्रति मेरा हृदय शंकाशील है। मार्क्सवादी प्रगतिवाद में मनुष्य के शरीर, मन, पृथ्वी और समाज के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। वह व्यष्टि को नहीं समष्टि को स्वीकार करता है! वह परिवर्तन में विश्वास करता है और जीवन का एक मात्र आधार आर्थिक व्यवस्था को मानता है। ब्रह्मवाद, अध्यात्मवाद, नियतिवाद उसकी दृष्टियों एकदम हेय हैं। नर नारी के प्राकृतिक आकर्षण के अतिरिक्त और किसी भी अन्य रूप में उसे स्वीकार करने को वह तैयार नहीं है। शोषक और शोषित के अतिरिक्त और कोई वर्ग उसकी दृष्टि में नहीं है। जो कुछ प्राचीन है यदि उसमें से कोई उपयोगी सामग्री निकल सके तो ठीक, अन्यथा वह त्याज्य है। सारांश यह, कि प्रगतिवादी को मार्क्सवादी बनना आवश्यक है और मार्क्स का दर्शन प्रत्यक्ष के अति-

रिक्त और किसी को स्वीकार नहीं करता । मुझे ऐसा लगता है मार्क्सवादी के मतानुसार यदि जीवन बन जाय तो मनुष्य की सत्ता जहाज़ में लगी कील की तरह हो जाएगी ।

इधर प्रगतिवादी देशों में आर्थिक समस्याओं के साथ आधिनायक वाद ने जो रूप ग्रहण किया है उसने मनुष्य की बुद्धि पर जो ताला लगा दिया है उसे देखते हुए वह दूसरा नात्सीवाद ज्ञात होता है । सर्वहारा का अधिनायकत्व 'Dictatorship of the Proletariat' के रूप को समझने के लिए और, आस्वर्न की पुस्तक 'मार्क्स एण्ड फ्रायड' से ज्ञात होता है कि हम जिस रोग की बीमारी का इलाज कर रहे हैं उससे अनेक प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रोग उत्पन्न हो गए हैं । उसके कीटाणुओं ने विचारक समाज के हृदय और मस्तिष्क पर शासन स्थापित करने के लिए उन्हें खरीद लिया है । उन्हें एक निश्चित मर्यादा के भीतर चलने की आज्ञा है ।

प्रगतिवादी जिस वीरपूजा का विरोध करता है वही दूसरे रूप से सर्वहारा के अधिनायकत्व में पूर्ण विश्वास रख कर चलता है । वह एक प्रकार की वीर पूजा ही तो है । जिस जनता एवं जनपूजा में वह विश्वास करता है वह भी एक प्रकार का डेमोथीज्म ही है । जनता के नाम पर हिन्दी के प्रगतिवादी जिसे महान् स्वीकार करते आये हैं वह रूसी साहित्य में पर्याप्त आलोचना का क्षेत्र बन चुका है । गोर्की के कन्फ़ैशन में बेरोनोव ने एक जगह इस तत्व के समर्थकों को चेतावनी देते हुए कहा था कि जनता की पूजा आवश्यक नहीं है—आवश्यक है उसका विकास; उसे रूस के दुराग्रह से बाहर निकालना ।

और सब से बड़ी बात जिससे मुझे भय है वह यह है साम्यवादी की विरोधी के प्रति खड्गहस्तता । प्रगतिवादी बनाम साम्यवादी की दृष्टि में उसका विरोधी संसार में रहने योग्य नहीं है । उसे निःशेष होना ही चाहिए । चाहे वह कूट नीति से नष्ट हो या तलवार से । इस असहिष्णुता के शिकार रूस से बाहर और स्वयं उस देश में न जाने कितने व्यक्ति हो चुके हैं । व्लादीमीर मेयोकोव्स्की, येस्सेनिन, बाग्रितस्की, रेडेक, बुखारिन और न जाने कौन कौन ?

आश्चर्य तो यह है प्रगतिवादी रूढ़ियों को विच्छिन्न करते हुए स्वयं रूढ़िग्रस्त है । उसकी हमारे में जो कलाकृति नवीन रूढ़ियों में आबद्ध न हो और अधिकारियों की नीति के अनुसार न हो वह एकदम विकृत त्रात्स्कीवादी और त्याज्य है । वस्तुतः प्रगतिवादी अपने और कलाकार के बीच में नीति को प्रधानता देने के कारण भेद ही नहीं कर पाते । कला उन लोगों की दृष्टि में उनके ध्येय का पूरक बन कर आनी चाहिए ! इसीलिए क्रीत दासी की तरह कला का रूप मज़दूरी बन कर रह गया है ।

यह ठीक है कला को निरुद्देश नहीं होना चाहिए परन्तु वह मिण्ट की तरह निकले रुपये की तरह भी नहीं हो सकती ।

हाँ, तो इन सब बातों के आधार पर मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि हमारा 'मुरारेस्तृतीयः पन्थाः' होना चाहिए । इसलिए नहीं कि हम विरोध के लिए विरोध करते हैं बल्कि इसलिए कि इस विश्व के संकट काल के गड्डालिका प्रवाह में हम भी गतानुगतिक बनकर नष्ट न हो जाएँ । और लोगों के पास वैसी ज्ञानराशि हो न हो किन्तु मेरा विश्वास है मेरे देश के पास इतनी सामग्री है, ऐसी संस्कृति है, इतना विवेकबल है कि वह इस अन्धकार युग में मार्ग तो ज़रूर निकाल सकता है । विश्वविद्यालयों के युवक विद्वान् हमें प्राचीन ज्ञाननिधि से वे रत्न निकाल दे सकते हैं जिसके सहारे न केवल हम किन्तु अन्य देश भी कष्ट से छुटकारा पा सकते हैं । अर्थव्यवस्था का संतुलन करते हुए, वर्गवाद का नाश करते हुए भी साम्प्रदायिकता संकीर्णता की तंग खाइयों को दूर कर विश्वकामी सुख, शान्ति, 'सर्वभूतहिते रतिः' का पाठ पढ़ा सकते हैं और मानवता के विशुद्ध जनकल्याणकारी मार्ग का अवलम्बन कर सकते हैं ।

देहली

—उदयशंकर भट्ट

नव चीन में ललित कलाएँ

किसी भी देश के सांस्कृतिक जीवन में प्रथम ललित कलाएँ विकसित होती हैं। यिन और शान राज्यवंशों (ईस्वी पूर्व आठवी से बारहवीं शताब्दी) की कांसे की कृतियाँ और मूर्तियाँ तथा प्रागैतिहासिक काल के रंगीन मिट्टी के बर्तन अपनी सूक्ष्म कला और उनके निर्माण में प्रयुक्त सूक्ष्म साधनों के अनुमान द्वारा सिद्ध करते हैं कि आज से तीन हज़ार वर्ष से भी पूर्व चीन की ललित कलाओं ने आश्चर्यजनक उन्नति की थी। वक्र रेखाओं द्वारा भावाभिव्यक्ति की चीनी कला-विशेषता का भी इन कला की कृतियों से परिज्ञान होता है।

सरलता से नष्ट न होने वाली कला-वस्तुओं तथा प्राचीन कांसे की कृतियों, मूर्तियों और अन्य वस्तुओं को खनन क्रिया द्वारा भूगर्भ से निकालने के प्रयत्न निरंतर चल रहे हैं। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि चीन अपनी प्राचीन कला को कितना महत्त्व प्रदान करता है तथा चीन के कलाकार उससे प्रेरणा पाने के कितने इच्छुक हैं।

अत्यन्त प्राचीन ग्रन्थों में भित्ति-चित्रों का वर्णन मिलता है। किन्तु इससे अधिक उनके आकार प्रकारादि के सम्बन्ध में कुछ पता नहीं चलता क्योंकि ताग राज्यवंश से पहले के भवन लगभग विनष्ट हो चुके हैं। इस प्रकार बिना किसी आधार के प्राचीन भित्त चित्रों के सम्बन्ध में कोई धारणा बनाना कठिन है। किन्तु परंम्परागत मौखिक वा ग्रन्थ-निबद्ध धारणाओं के अनुसार इतना कहा जा सकता है कि प्राचीन चीनी कलाकार अपनी कला कृतियों में पूर्णता और वास्तविकता लाने का लक्ष्य सामने रखते थे।

अब तक जितने प्राचीन रंगीन चित्रों का पता चला है वे सभी दैनिक व्यवहार की वस्तुओं, यथा मुलम्मा किए हुए डिब्बे, सुरापात्र और मेज़ आदि पर अंकित मिले हैं। ये सभी वस्तुएं ईस्वी पूर्व चौथी से तीसरी शताब्दी के युद्धग्रस्त राज्यों के शासन काल में निर्मित हुई थीं। इन चित्रों से पता चलता है कि उनमें शांग और चू राज्यवंशों (ईस्वी पूर्व १२ वीं से तीसरी शताब्दी तक) की परम्पराओं और पश्चिमी हान राज्यवंश (ईस्वी पूर्व तीसरी से ईस्वी की पहली शताब्दी) की शैली का प्रभाव पड़ा है। हाल ही में हान और चीन राज्यवंशों (ईस्वी के प्रथम में चतुर्थ शतक तक) के खोदे गए अवशेषों से प्राप्त चित्र, मूर्तियाँ व भित्ति चित्र और हज़ार वर्षों से सुरक्षित तुन ह्वांग (ईस्वी के चतुर्थ से दशम शतक) के भिति चित्र, चीनी चित्रों की सजीवता व उत्तम शैली की ओर स्पष्ट इंगित करते हैं। तदन्तर भारतीय बौद्ध चित्र और मूर्तिकला का चीन में प्रवेश हुआ और दोनों कलाओं श्रेष्ठतम विशेषताओं के सन्निवेश से अनेक सुन्दर व अमर कला कृतियाँ प्रगट हुईं।

हान राज्यवंश (ईस्वी का प्रथम शतक) के सम्राट् हिन ती के पश्चिम में बौद्ध धर्म की शिक्षा प्राप्त करने के लिए एक मिशन भेजने के पश्चात् बौद्ध विचार धारा का चीन की कला पर प्रभाव पड़ने लगा। अब मनुष्य की जीवन सफलताओं और गुणों आदि का वर्णन करने के स्थान पर भिति चित्रों में बुद्ध-गाथाओं का अंकन किया जाने लगा। बौद्ध धर्म का अधिक प्रमाण बढ़ जाने के बाद अनेक मन्दिर और मठ बने। पहले जहाँ भिति चित्रों का उपयोग प्रासाद, मंदिर (परम्परागत) और समाधियों के सजाने में या अलंकृत करने में किया जाता था, वहाँ अब वे बुद्ध मन्दिरों की शोभा बढ़ाने लगे।

निसन्देह भारतीय बौद्ध धर्म का चीन की कलाओं पर गहरा तथा सर्वांगीण प्रभाव पड़ा। यह प्रभाव न केवल चित्रों में ही वरन् मूर्तियों में भी लक्षित होता है। यू-काङ्ग, लुन मान आदि गुफ़ाओ में बनी हुई मूर्तियों के अवलोकन से स्पष्ट ज्ञात होता है कि उनमें बौद्ध प्रभाव प्रेरक नए कौशल का मिश्रण है—जिसमें परम्परागत सादगी और सुन्दरता की विशेषता भी दिखाई देती है।

प्राचीन काल में चीन के चित्रकारों और शिल्पियों का बहुत आदर होता था। हान राज्य वंश के परिवारों ने अनेक चित्रकारों को अपनाया और प्रोत्साहन दिया। तांग राज्यवंश के काल में (ईस्वी का सप्तम से दशम शतक) तो अनेक चित्रकारों को दरबारी चित्रकार के रूप में नियुक्त किया गया। सुंग वंश (ईस्वी की दसवीं से तेरहवीं शताब्दी) के काल में राज्य की ओर से इम्पीरियल एकेडमी आफ़ आर्ट्स को बढ़ावा दिया

गया। सम्राटों के शासन के अन्तर्गत चित्रकार वास्तविकता से परे जाने लगे। सुंग आदि य्वान वंशों के अनन्तर पुष्प-लता-पक्षी आदि प्राकृतिक दृश्यों के अंकन में विशेषता प्राप्त की। अब जनता द्वारा अपनाए गए भित्तिचित्रों के स्थान पर कुलीन जनों के पट-चित्र दिखाई देने लगे। यह प्रवृत्ति चिंग वंश के अन्त तक (ईस्वी की १७ वीं शताब्दी से १९११ तक) चली। उस समय चित्रकार प्राचीन कलाविदों के अनुकरण में परस्पर स्पर्द्धा करने लगे। फलतः कला की अवनति होने लगी। हम चीनी कला का तब तक उद्धार नहीं कर सकते जब तक चीन के समाज की पुनर्व्यवस्था न की जाए और लोग बौद्धिक स्वतन्त्रता न प्राप्त करें। तब तक किसी सृजनात्मक विचारधारा का विकास नहीं हो सकता और न ही सृजनात्मक अभिव्यक्ति में सफलता प्राप्ति हो सकती है। इस प्रकार आज चीन की ललित कलाएँ नवारम्भ के द्वार पर खड़ी हैं।

जापानी साम्राज्यवाद से मुटभेड़ लेने से पूर्व लू सिन के साहित्यिक और कलासम्बन्धी विचारों ने हमारे अधिकांश नवयुवक कलाकारों को प्रभावित किया था। इन कलाकारों ने 'कला कला के लिए है!' इस पुराने सिद्धान्त का परित्याग कर वास्तविकता का अंकन करने की ओर लम्बे कदम बढ़ाए और वास्तविक क्रान्ति में योग दिया। उस समय काष्ठकला परिष्कृत हो रही थी और प्रगतिशील कला का अंग बन चुकी थी। तब जापानी साम्राज्यवाद से आत्मरक्षा करने के लिए चीन ने पीकिंग में पहला गोला दागा और सभी कलाकार जो अपनी पितृभूमि और स्वतन्त्रता से प्रेम करते थे, एक सूत्र में बद्ध हो गए। अनेक बाधाओं के होते हुए भी उन्होंने यथार्थता की ओर उत्साह और विश्वास से कदम बढ़ाया। उनमें से कुछ ने कारखानों का, कुछ ने खानों का और कुछ ने गांवों का जीवन चित्र उपस्थित किया। कुछ सीमावर्तीं ज़िलों में गए। जहां उन्होंने राष्ट्र के अल्पसंख्यकों का चित्रण किया। इनमें से राजनीतिक जागृति वाले कुछ कलाकार मेनान चले गये, जो उस समय क्रान्तिकारी शक्तियों का आधार तथा केन्द्र था। जो उस समय प्रगतिशील कलाकार प्रतिक्रियावादी शक्तियों द्वारा संचालित ज़िलों में रहे, वे जनतन्त्री आन्दोलन के संग मिल गए और उन्होंने साम्राज्यवाद के विरुद्ध संघर्ष किया। उन्होंने अपनी काष्ठ-कला और कार्टून कला के द्वारा प्रतिक्रियावादी शासन का और अन्धकार और अव्यवस्थापूर्ण पुराने समाज का भण्डा फोड़ किया। लकड़ी की कलाकृतियों और कार्टूनों की एक प्रदर्शिनी की गई। इन सब प्रदर्शन-वस्तुओं में तिआयो पिंगशुंग की कलाकृति जिसका हिन्दी रूपान्तर नाम 'बिल्लियों के राज्य का इतिवृत्त' था, सबसे अधिक पसन्द की गई।

उस समय के तैलचित्रों और प्लास्टिक की कृतियों द्वारा भी चीन के जापानी साम्राज्यवाद के विरुद्ध किए गए वीरतापूर्ण संघर्ष का परिचय मिलता है। लियु काई-चु द्वारा निर्मित-'नाम हीन नायक' सबसे सुन्दर शिल्प कृति थी। इन चित्रों और शिल्प कला-कृतियों में से अनेक भारत में प्रदर्शित की गई हैं जिनका अनेक लोगों ने स्वागत किया है।

चेयरमैन माओ जी तुंग द्वारा १९४२ में 'लेखक और कलाकारों की सभा' में यह घोषित किए जाने पर कि साहित्य और कला का सृजन मज़दूरों, किसानों और सैनिकों के हित के लिए होना चाहिए, चीन की कला में एक बहुत बड़ा परिवर्तन आ गया है-अब चीन की कला के बाह्य और आभ्यन्तर उभय पक्षों में स्पष्ट परिवर्तन दिखाई देने लगा है। बन्धनमुक्त किए गए क्षेत्रों में माओ जी तुंग के मार्ग दर्शन के कारण नई कला ने नव वर्ष पुस्तकों, नई दर्शक पेटियों, काष्ठ कृतियों, आदि व्यंग्य चित्रों आदि के रूप में मज़दूर, कृषक व सैनिक जनता की हित साधना की। कलाकारों ने अपनी कृतियों को लोकप्रिय बनाने के लिए लोक रुचि के अनुसार नया मार्ग ग्रहण किया। काष्ठ कलाकारों ने अपनी पुरानी शैली बदल डाली। क्यू युन, मेन हा माता, ली चुन, और वांग शीकू ने नई शैली में अनेक आदर्श कृतियां प्रस्तुत कीं। वांग शी कू-की एक काष्ठकृति जिसे अनेक रंगों में अंकित किया जा सकता था तथा जिसका नाम 'रिफ़ार्मिंग दी लोफ़र्स' अर्थात् 'आवारा व्यक्ति का सुधार करण' हुआ, अत्यन्त सफल हुई और व्यंग्य चित्रकारों में हा चुन वू की सबसे अधिक प्रशंसा की गई।

एक निश्चित राजनीतिक दृष्टिकोण के कारण उस समय कला सम्बन्धी कार्य का एक व्यापक क्षेत्र रहा। यद्यपि उस समय कला साधन पर्याप्त रूप में उपलब्ध नहीं थे फिर भी लाखों कला कृतियाँ अस्तित्व में आईं और उनकी

लाखों प्रतिलिपियाँ तैयार की गईं। कलाकारों के सामने अपनी कृतियों को इस रूप में प्रस्तुत करने का लक्ष्य ही नहीं था कि वे मजदूर, कृषक और सैनिकों द्वारा समझी और अपनाई जा सकें वरन् उनका लक्ष्य यह भी था कि वे सर्वसाधारण में कला के प्रति अभिरुचि पैदा करें जिससे कि समस्त जनता कला निर्माण में उचित योगदान दे सके।

त्रिवर्षीय मुक्ति युद्ध में विनय के फल स्वरूप सभी देशभक्त और जनतंत्रीय कलाकार और लेखक जुलाई १९४९ में पीकिंग में हुए चीनी लेखक और कलाकारों के प्रथम सम्मेलन में एकत्रित हुए। इस प्रकार का ऐक्य कलाकारों और लेखकों में पहले कभी देखने में नहीं आया था। माओ जीतुंग के शब्दों में यह सम्मेलन ऐसा था जिसकी ओर समस्त जनता आशा की दृष्टि से देख रही थी। नव जनतन्त्र के झण्डे के नीचे तथा माओ जीतुंग के मार्गदर्शन के कारण अब कलाकारों और लेखकों का संयुक्त मोर्चा दृढ़ता से स्थापित हो गया है।

चीनी एक लम्बे संघर्ष के बाद साम्राज्यवादी शक्तियों के चंगुल से निकला था। नवीन चीन का निर्माण हुआ। इस स्वातंत्र्य-संघर्ष को चिरस्मरणीय बनाने के उद्देश्य से सभी प्रकार के चित्रकार, प्लास्टिक-कलाकार, शिल्पकार और तक्षक इस क्रान्ति का इतिहास अंकित करने में जुट गए। इस ओर जनता को शिक्षित और प्रोत्साहित करने में अनेक उत्साही कलाकार सफल भी हुए।

गत दो वर्षों में हमारे कलाकारों ने जनता के मध्य अपनी कला का विशेष प्रसार किया है। जिसके कुछ प्रमाण यह है—

प्रथम यह कि नव-वर्ष-चित्रों, क्रमिक चित्रों तथा प्रचार-चित्रों का—जिनके प्रकाशन-केन्द्र शंघाई और पीकिंग में हैं— विक्रय निरन्तर बढ़ रहा है। सन् १९५० और ५१ में नव वर्ष के नौ सौ इकसठ विभिन्न चित्र बनाये गए और उनकी दो करोड़ बीस लाख प्रतिलिपियाँ बिकीं। सम्यक् प्रकार से आयोजित क्रमिक चित्रों के विभिन्न प्रकारों की प्रकाशन संख्या सात सौ तक पहुँच गई है। पिछले कुछ ही वर्षों में ६७ प्रकार के विविध प्रचार चित्र सामने आचुके हैं। वास्तव में अभी जितनी मांग है उतने चित्र प्रकाशित नहीं हो रहे।

द्वितीय यह कि सचित्र पत्रों की संख्या और ग्राहक दिन प्रतिदिन बढ़ रहे हैं। 'पीपल्स पिक्टोरियल' नामक सचित्र पत्र सबसे पुराना और सबसे अधिक संख्या में प्रकाशित होनेवाला पत्र है।

तृतीय यह कि देखने के बक्स और मैजिक लैंटर्न से दिखाई जाने वाली स्लाइडों की संख्या पिछले कुछ वर्षों में बहुत बढ़ गई है। इस प्रकार के क्रमिक चित्र जिनके द्वारा स्पष्टतः सुन्दर कहानियाँ आदि सुनाई जा सकती हैं, जनता द्वारा बहुत पसन्द किए जाते हैं। यद्यपि ऐसे चित्रों का प्रचलन अभी चीन के सभी ग्रामों में नहीं हुआ है फिर भी जहाँ जहाँ से दिखाये गये हैं लोगों ने इनकी भूरि प्रशंसा की है और उन्हें हृदय से अपनाया है। उदाहरण के रूप में शसी प्रान्त के ९० % ग्रामों में ये स्लाइड-चित्र आजकल दिखाये जा रहे हैं।

चतुर्थ यह कि कला-व्यापार को अधिक प्रचलित करने के उद्देश्य से अब कला स्वयं जनता में प्रवेश कर रही है न कि वह जनता के उस तक (कला तक) पहुँचने की प्रतीक्षा; जो कला प्रदर्शिनियाँ पहले स्टूडियो और आर्ट गैलरियों में ही देखने को मिलती थीं, अब अपने पुराने स्थान से बाहर निकल कर सर्वसाधारण तक गलियों में आ रही हैं। योजनानुसार अब विशिष्ट स्थानों पर चलती फिरती प्रदर्शिनियों का प्रबन्ध किया गया है। ये प्रदर्शिनियाँ बड़े बड़े नगरों में ही नहीं वरन् कारखानों, स्कूलों, ग्रामों, छोटे छोटे नगरों और ज़िलों में भी दिखाई जा रही हैं। साधारण जनता बड़े उत्साह से इनका स्वागत करती है।

यह ऊपर कहा जा चुका है कि नव चीन में कलाकार का उद्देश्य निर्माण तक ही सीमित नहीं है वरन् उसका कार्य जनता को स्वयं कला निर्माण की ओर प्रेरित करना और उसकी सृजनात्मक शक्तियों को विकसित करना है। कलाकार तो उनके समक्ष आदर्श स्वरूप हैं। इससे भी बढ़ कर आज कलाकार को अपने विचारों और भावों को परिवर्तित करना है जिसके लिए उन्हें जनता के मध्य विचरण करना, उनके विचारों से परिचित होना और उनके अनुभवों का जानना आवश्यक है। तभी उनकी कृतियों का साधारण जनता आदर कर सकेगी और वे उन्हें शिक्षित करने के कार्य में सफल हो सकेंगे।

जो कलाकार जनता के निकट न सम्पर्क में रहे हैं उन्होंने अपने नवोद्देश्य की प्राप्ति में बहुत काफ़ी

सफलता प्राप्त की है। चीन के पीकिंग, मुकडन, शंघाई, पोर्टआर्थर-डैरेन, उत्रैशन, चिंचू, टीण्टलीन, तांगशान, जिंगताओ, क्यूलिन, लिंचो, आदि नगरों के कारखानों में आज मजदूरों ने अपने अपने आर्ट यूनिट (कला-दल) बनाए हैं, वे अपने सचित्र पत्र निकालते हैं तथा प्रदर्शिनियों आदि की व्यवस्था करते हैं। इस दिशा में पोर्ट आर्थर-डैरेन क्षेत्र ने सबसे अधिक प्रगति की है। वहाँ मज़दूरों द्वारा बनाई गई कला कृतियों की संख्या अधिक ही नहीं है वरन् कलादृष्टि से भी वे अच्छी हैं। टीण्टसीन में कला-समिति द्वारा संचालित कला-कक्षाओं में अध्यापन के लिए लगभग ३०० मजदूर प्रतिदिन उपस्थित होते हैं। अनेक कला-समितियों में १० % से अधिक मज़दूर वर्ग के व्यक्ति हैं और कई स्थानों पर प्रदर्शिनियों में ७ % से भी ऊपर कृतियाँ मज़दूर कलाकारों की होती हैं। अनेक क्षेत्रों में ग्रामीण संवाददाता स्वयं अपने सचित्र-पत्र निकाल रहे हैं। इस प्रकार मज़दूर, कृषक और सैनिक वर्गों में जागृति पैदा हो रही है और उन्हें शिक्षण और प्रोत्साहन दिया जा रहा है। कलाओं में उन्नति के लिए नई कला-श्रेणियों की आवश्यकता है। इनमें शिक्षा देने के लिए एक स्पष्ट नीति निर्धारित की गई है। इसमें शिक्षार्थियों को बताया जाएगा कि वे किस प्रकार जनता के हितों की हृदय से साधना कर सकते हैं और कला को लोकप्रिय कैसे बना सकते हैं।

इस नीति के अधीन जो शिक्षा दी जा रही है उसका विगत दो वर्षों का परिणाम बहुत अच्छा रहा है। जिन स्थानों पर कला-शिक्षालय कार्य कर रहे हैं उन स्थानों की जनता कला के प्रति विशेष रूप से जागरुक है। इन शिक्षालयों के स्नातक जहाँ भी उनकी आवश्यकता होती है प्रायः जाते हैं। इसके अतिरिक्त इन शिक्षालयों के अध्यापक और विद्यार्थी आर्थिक पुनर्निर्माण और प्रचार के महत्व की प्रदर्शिनियों के कला संबन्धी कार्य विशेष उत्साह से करते हैं। इन्होंने अपना उत्तरदायित्व निभाने में ही अपने आपको एक बड़ी संगठित शक्ति के रूपमें प्रमाणित नहीं किया है वरन् वे शिक्षा को दैनिक व्यवहारात्मक जीवन के साथ समन्वित कर रहे और शिक्षा में कला के महत्व को प्रदर्शित कर रहे हैं।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि नए चीन में कलाओं की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्हें राजनीतिक हित साधन के साथ जोड़ा गया है। कलाओं का कार्य यह है कि वे जनता में प्रचार करें तथा उसे शिक्षा और प्रोत्साहन दें। कलाकारों का कर्तव्य है कि वे वस्तु स्थिति का परिज्ञान करें और नीतियों को समझें, उनकी कृतियाँ वास्तविक जीवन की अभिव्यंजक हों और जनता की स्वीकृति की भाजन बन सकें।

वृ. जो. जेन

अपनी सुकोमल काव्य-कन्या को,
किसी धनी को बेच कर जीवन निर्वाह
करने की अपेक्षा-अपने बाल-बच्चों
के पोषण के लिए किसान बनना अच्छा है।

—पोतना

'रामचरितमानस' में सामाजिक द्वन्द्व

भारतीय संस्कृति के इतिहास में वेद साहित्य के उपरांत हम अपनी संस्कृति का विकास दो अनुपम ग्रन्थों में पाते हैं। एक रामकथा का साहित्य और दूसरा महाभारत कथाओं की परम्परा। यह सत्य है कि इस साहित्य के प्रणेता भी ऋषि थे। पर इन ऋषियों और वैदिक मंत्रों के द्रष्टा ऋषियों में एक मूल भेद देखने को मिलता है। वैदिक ऋषियों की दृष्टि अपने देवों की महत्ताओं, उनकी गरिमाओं के प्रति सजग है। वे उनके प्रति उतने ही आकृष्ट हैं जितनी उन देवों की सामाजिक सक्रियता है। बरुण के पास असंख्य नेत्र हैं। उसकी दृष्टि से कोई पाप कर्म बच कर नहीं जा सकता। और वह किसी पाप को क्षमा नहीं कर सकता। यह उसकी महत्ता है। ऋषि, बरुण के जीवन की पूरी कहानी नहीं जानता—और अगर जानता भी हो तो उसे मंत्रों में व्यक्त नहीं करता। वह तो सिर्फ़ यही विचारता है कि बरुण पाप देखता है और वह क्षमा नहीं करता। उसका पाश बहुत विकट है—दुर्जेय है। उसी प्रकार से इन्द्र है। समाज के दुश्मनों का सबसे विकट दुश्मन। पूषण भूले हुए व्यक्तियों की राह दिखाता है—खोये हुए जानवरों को घर लौटा लाता है। विष्णु ने तीन पैरों में सब नाप लिया है। सरस्वती की प्रतिभा समाज के दुश्मनों के खिलाफ़ रुद्र का धनुष खींचती है। वैदिक ऋषि की दृष्टि में व्यक्तिगत जीवन नहीं वरन् कुछ महान सामाजिक कर्म घूमते हैं—और उनको वह मंत्रों में व्यक्त करता है।

पर रामायण और महाभारत के आदि प्रणेता कुछ विशिष्ट कर्म नहीं वरन् व्यक्ति खोजते हैं। बाल्मीकि ने नारद से एक दिन पूछा—"तुम मुझे बताओ कि इस समय कौन ऐसा व्यक्ति है जो गुणों से भरा पूरा है—वीर है—धर्म का करने वाला है—सच बोलता है—प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहता है —सब लोगों के कल्याण में जिसकी बुद्धि लगी है—विद्वान् है—रणभूमि में जिसके क्रोध को देख कर देवता लोग भय से काँपते हैं...... ।',

और नारद ऋषि राम की कथा उन्हें सुनाते हैं। वास्तव में अगर वैदिक ऋषि राम के जीवन की गरिमा व्यक्त करता तो इतनी ही कि उन्होंने रावण ऐसे दुराचारी का वध किया जैसे कभी इन्द्र ने वृत्रासुर का किया था।

पर इन्द्र को लेकर हमारे पास कोई महाकाव्य नहीं है और राम को लेकर कोई वैदिक मंत्रों के रूप में रचना नहीं है।

राम और कृष्ण के रूप में हमारे समाज का प्रतिनिधि नया मानव उस काल में प्रस्फुटित होता है। वेदों का देव लोक और यज्ञ पद्धति जैसे क्षीण हो चुके थे। उस काल का आर्य दशु संग्राम नई सामाजिक भूमिका में उतार रहा था। राम और कृष्ण ऐसे व्यक्ति अपने तमाम सामाजिक संबंधों के साथ उसके वाहक के रूप में आए और इस साहित्य में उनका चित्रण वैदिक परंपरा से भिन्न हुआ। वैदिक देवों का मंत्रों में चित्रण उनके सामाजिक और व्यक्तिगत भूमिका में न हो कर उनके कर्मों के संबन्ध में हुआ—जब कि एक ओर कृष्ण का चित्रण उनके सामाजिक, व्यक्तिगत और उस श्रेष्ठ कर्म, इन तीनों की भूमिका में किया गया।

जो लोग राम की आलोचना शम्बूक की हत्या या सीता परित्याग को ले कर करते हैं वे राम की सामाजिक परिस्थितियों को नहीं देखते—और न रावण की पराजय का मूल्य ही ठीक अंकित करते हैं। कृष्ण का जीवन राम के जीवन से कहीं ज्यादा बहुमुखी और तत्वसंकुल है। राम-रावण संग्राम एक ही वंश या गोत्र के दो दलों का संग्राम नहीं है जैसा कि कौरव-पाण्डव संग्राम है। इन दोनों युद्धों में यह तो कहा जा सकता है कि ये दोनों संघर्ष सामाजिक दुराचार और अतिचार के विरुद्ध हैं, पर दोनों की सामाजिक भूमिका का स्तर भिन्न है। इसलिए महाभारत में भीषणता के साथ साथ संघर्ष की अनेकरूपता, कार्यनीति रामायण से अधिक है। राम-रावण युद्ध की कार्यनीति एक सीधो रेखा या सरल सी लगती है अगर उसकी तुलना महाभारत की कार्यनीतियों से की जाए।

पर बाद के साहित्य में राम-कथा और कृष्ण-कथा ने एक विलक्षण प्रभाव बनाए रखा। विविध रूपों में—

अनेक दृष्टिकोणों से संस्कृत के महाकाव्यों से लेकर नाटकों और स्तोत्रों में इस द्वन्द्व का कला द्वारा शृंगार किया गया। यहाँ तक कि व्यक्ति अवतार हो गया।

तुलसी की दृष्टि में-जैसा कि रामचरितमानस में व्यक्त हुआ है-राम उपास्य के रूप में आते हैं। वाल्मीकि की दृष्टि में राम एक सर्वलोकहितकारी व्यक्ति के रूप में। सामाजिक द्वंद्व का यह तीसरा स्तर है। त्रेता नहीं, द्वापर नहीं--यह कलि है। वेद साहित्य को और समाज को नई प्रेरणा नहीं दे पा रहा था, संस्कृत के महाकाव्य विद्वानों की निधि बन कर ही रह गये थे। तो क्या इसका मतलब यह था कि जनता की आशा, उसके स्वप्न सब कुंठित और पराजित हो गये थे? नहीं।

भक्तिवाद का यह सूत्र कि जब जब पापों और अत्याचारों की वृद्धि होगी—एक कोई अवतार ऐसा जरूर आएगा जो पापियों का अन्त कर समाज की रक्षा करेगा—एक और नई आशा का संचार करता है और दूसरी ओर साधारण जन को संघर्ष से विमुख भी करता है। फिर भी अत्याचार, झूठ, और असत्य की भयंकर मृत्यु पर आस्था बनी रहती है। और जन-साधारण का अध्यात्म पतित नहीं होने पाता। क्या नाश होगा और क्या रहेगा यह युग की सामाजिक चेतना के अनुरूप ही निश्चित होता है।

'रामचरितमानस' में हम सामाजिक द्वन्द्व की एक भिन्न तसवीर पाते हैं जिसका आभास तक हमें बाल्मीकि की रामायण में नहीं मिलता।

तुलसी का 'रामचरितमानस' वाल्मीकि की रामायण का अनुवाद क्यों नहीं है—और अनुवाद न होने के कारण तुलसी की रामकथा मिथ्या हो जाती है जो लोग ऐसा प्रश्न उठाते हैं वे कला के सामाजिक पथ का मूल्य नहीं आँक पाते। वास्तव में 'रामचरितमानस' की महत्ता इसी में है कि वह वाल्मीकि रामायण का अनुवाद नहीं है—वह अपने युग की एक विशिष्ट रचना है—और उसमें समाज का एक विशिष्ट युग प्रतिबिंबित है। इस विशिष्ट युग के प्रतिबिम्ब ने 'रामचरितमानस' को वह गरिमा सौंपी है जो समाज में अन्य रामकथाओं को नहीं मिली।

भक्ति की निर्मल चेतना के अन्तर्गत "सीय राम-मय सब जग जानी—करौं प्रणाम जोरि युग पानी" कह कर वे एकात्मवाद का प्रतिपादन तो करते हैं—पर समाज का द्वंद्व उनकी दृष्टि से ओझल नहीं हो जाता।

'दुख सुख, पाप पुण्य, दिन राती,
साधु, असाधु, सुजाति, कुजाती
दानव देव, ऊँच अरु नीचू
अप्रिय सँजीवन, माहुर मीचू।' आदि

और इस द्वंद्व के तट पर खड़े होने की बात को भी वे नहीं विचारते—'संत हँस गुण गहहिं पय, परिहरि वारि विकार' कह कर संत को वे गुण और दोष से परे या ऊँचे उठने की भावना का प्रतिपादन नहीं करते वरन् एक विवेक की गरिमा की प्रतिष्ठा करते हैं। और इस विवेक में सामाजिक संग का एक नया तत्व और जोड़ देते हैं।

'हानि कुसंग सुसंगति लाहू
लोकहु वेद विदित सब काहू।'

विवेक मिथ्या है अगर संगति से उसका विकास न किया जाय। संगति का मूल्य या उसकी गरिमा कभी कभी तो व्यक्ति को एकदम निस्सार कर देती है—

ग्रह भेषज जल पवन पट, पाय कुयोग सुयोग
होय कुवस्तु सुवस्तु जग, लखहिं सुलक्षण लोग

संगति की इस गरिमा का उल्लेख वाल्मीकि की रामायण में नहीं मिलेगा और इसलिए रामचरितमानस में एक नई गरिमा के दर्शन होते हैं जिसकी प्रकृति सामाजिक है। भक्तिदर्शन में और चाहे जितना अंधकार हो पर उसकी यह विशेषता रही है कि उसने सामाजिक भावना को संगठित करने का सांस्कृतिक प्रयास किया है। यह ठीक है कि ये संगठन सम्प्रदाय के रूप में जागृत हुए—आपस में लड़े भी और मिले भी—फिर भी वे ज्ञान के कठोर व्यक्तिवादी अहं से मुक्त थे—जो समाज को मल या घृणित समझ कर चलता था।

इस नई गरिमा के आलोक में 'रामचरितमानस' में राम-रावण के दलों को नये रूप में विभाजित किया गया है।

(१) देवसमाज।
(२) ऋषि समाज।

(३) कर्म क्षेत्र में प्रत्यक्ष उतरा हुआ समाज (राम से लेकर राम की सेना तक)

(४) रावण का समाज या खल-समाज।

१ देव-समाज

'रामचरितमानस' में देव-समाज एक विशेष दशा में अवतरित होता है। सब देवता पराजित हो चुके हैं। रावण और उसकी सेना ने आतंक को इस सीमा तक पहुँचा दिया था कि—

"रावण आवत सुनेउ सकोहा
देवन तकेउ मेरु गिरि खोहा।"

रावण को आते सुन कर देवता मेरु पर्वत की ओर छिपने दौड़ते थे। देवताओं की पत्नियों के गर्भ गिर जाते थे।

रवि-शशि-पवन-वरुण इन्द्र-अग्नि-काल-यम-किन्नर-सिद्ध-मनुज-सुर और नाग सब-जैसे थरथरा उठे थे। देवों की इस पराजय ने ही शायद अवतारवाद को जन्म दिया होगा। कालिदास ने अपने 'कुमारसम्भव' में भी पराजित देवताओं का सफल वर्णन किया है।

पर बाद में रावण के पापों से घबड़ा कर भूमि देव-समाज के पास गाय के रूप में गई।

'निज सन्ताप सुनाइस रोई
काहू से कछु काज न होई।'

पराजित देवता कुछ नहीं कर सके। तब सब लोग ब्रह्मा के घर में गये। उन्होंने आशा दिलाई। तब देवता लोग खोजने लगे कि वह कहाँ मिलेगा जो रावण को पराजित करेगा। तब शंकर ने बताया कि वह सब कहीं है—जैसे आग सब कहीं है—और वह प्रेम से प्रकट होता है।

जब उन्हें आशा हो गई कि वह प्रकट होगा तो देवताओं ने अपना रूप बदल लिया। वनचरों का रूप धारण कर जंगलों में रहने लगे। फिर भी प्रमुख देवताओं की टोली दूसरे काम के लिए रहीं। हमारा मतलब उस टोली से है जिसने मंथरा की बुद्धि को फेरा, चित्रकूट में अयोध्यावासियों पर उच्चाटन चलाया, भरत को पद-स्खलित करना चाहा—सीता को अशोक बाटिका में हव्य खिलाया और राम को रथ तथा सारथी सौंपा। दूसरा दल और यह बहुत बड़ा दल था जंगली जातियों के रूप में राम का सहायक हुआ।

पहले दल की सक्रियता पर तुलसी ने बहुत सुन्दर व्यंग्य भी छोड़े हैं। पर उनका लक्ष्य महान् है इसलिए वे व्यंग्य राम के उपास्य होने में और सहायक होते हैं। पराजित देवता और उनकी पतित रणनीति (!) का आप चाहे जितना मज़ाक उड़ाएँ पर वे लक्ष्य की ओर धीरे धीरे राम को पहुँचाती हैं। राम का राजा होना सबको अच्छा लगता है। अगर किसी को नहीं अच्छा लगता तो देवों को। वे कुचाली हैं। चोर को चाँदनी रात नहीं अच्छी लगती। उसी तरह से वे सरस्वतीके पैरों पर बार बार गिरते हैं-विनति करते हैं कि 'तू जा और कुछ ऐसा कर कि राम राजा न हो सके। उनको वनवास हो जाय। देवताओं का लक्ष्य पूरा हो।' सरस्वती सोचती हैं 'क्या यह भी करना होगा? क्या कमलों के झुण्ड पर मैं पाला बन कर गिरूँगी? क्या कवि लोग फिर भी मेरी ओर आकर्षित होंगे।'

हां होंगे !!

'आगिल काज विचारि बहोरी
करि हैं चाह कुशल कवि मोरी।'

सरस्वती की यह चिन्तना नई है। इस चिन्तना की गहराई और उसके मानवीय पक्ष को 'कला कला के लिए' मानने वाले कवि और आलोचक नहीं समझ सकते। कला हमेशा से कमलों को संवारती आई है—उनके ऊपर तुषार बन कर वह कैसे गिरेगी? पर मानवीय लक्ष्य हर कमल-वन से श्रेष्ठ है।

पराजित देव-समाज बहुमुखी होकर लक्ष्य-परक है। हर शर्त पर वह रावण के समाज का समूल नाश चाहता है। और उसके लिए जितना जो कुछ कर सकता है करता है।

२ ऋषि-समाज

देवों की भाँति यह भी हारा हुआ है। इनके हवन और यज्ञ में राक्षस विघ्न डालते हैं। काँपते हैं, थरथराते हैं। राक्षस इनको मार भी डालते हैं कि ऋषियों की हड्डियों का ढेर राम ने भी देखा था। कोई इनकी सहायता नहीं कर सकता। तपस्वी और अध्ययनशील होने के कारण शस्त्र लेकर निशाचरों का सामना

नहीं कर सकते । राम को देखकर वे आशा से पुलकित हो उठते हैं । जितने आदर से राम इन ऋषियों को देखते हैं—उतना आदर शायद वे देवताओं का भी नहीं करते ।

ऋषियों में रामदर्शन से एक उत्साह फैलता सा लगता है । वे राम को उपदेश नहीं देते । उनका समर्थन करते हैं—और उस दिन की राह देखते हैं जिस दिन रावण मारा जायगा । उनकी बुद्धि निर्मल, हृदय विशाल, और लक्ष्य लोक हितकारी है ।

राम जब भरद्वाज से पूछते हैं कि 'महाराज ! बताइए, हम किस राह से जायँ ? तब भरद्वाज ने हँस कर कहा 'तुम्हारे लिए सब रास्ते आसान हैं ।'

वाल्मीक से राम कहते हैं "ऐसा स्थान बताइए जहाँ मैं वास करूँ—पर यह न भूल जाइएगा कि:—

'मुनि तापस जिनते दुख लहहीं
ते नरेश बिनु पावक दहहीं ।
मंगल मूल विप्र परितोषा
दहै कोटि कुल भूसुर रोषा ॥'

उदारता की यह सीमा है कि वाल्मीकि कहते हैं:—

'जाति-पांति धन धर्म बड़ाई
प्रिय परिवार सदन समुदाई
सब तजि तुमहिं रहैं लवलाई
तिनके हृदय बसहु रघुराई ।'

२ कर्मक्षेत्र का समाज

इस समाज में वे सब चरित्र हैं जिनका सीधा और प्रत्यक्ष सम्बन्ध रावण का विरोध करना है । भक्ति के आवेश में तुलसी ने जिस मृदुता से कर्म की कठोरता को ढँक दिया है उसने रामचरितमानस को समाज में और भी अधिक ग्राह्य बना दिया है । वाल्मीकि के रामायण में कर्मक्षेत्र की यह मृदुता नहीं दिखाई देती । राम की प्रतिमा एक कठोर प्रतिमा है-तुलसी के राम का बाह्य मृदुल और मनोहर है !-'कोटि मनोज लजावन हारे' कह कर वे सम्बोधित होते हैं । सीता, लक्ष्मण आदि सब चरित्र एक अद्भुत मृदुलता, कोमल मर्यादा के मण्डल में चलते फिरते से लगते हैं । कर्मक्षेत्र का यह अन्तर वाल्मीकि और तुलसी के व्यक्तित्व से नहीं फूटा है-और न इस बात से कि कला के स्वरूप के बारे में दोनों मनीषियों में मतभेद था—बल्कि इसलिये कि एक रचना (वाल्मीक की रामायण) उसी युग के उत्थान-काल की रचना है जिसके पतन-काल में 'रामचरितमानस' के रचयिता की दृष्टि असंयमी भी हो गई है—जब कि 'रामचरितमानस' में ज्यादा संयमित, मृदुल और कोमल मर्यादा का पालन किया गया है ।

हमने कहा है कि यह शायद इसलिए हो कि कर्मक्षेत्र ग्राह्य बने । फिर भी इस कोमल और मृदुल स्तर के नीचे कर्म की जो वेगवती दृढ़ धारा बह रही है वह भी 'रामचरितमानस' में कहीं कहीं इस कोमल स्तर को तोड़ कर बही है ।

जिस समय निषाद को यह भ्रम होता है कि भरत सेना लेकर राम को मारने जा रहे हैं—उसकी अवस्था विकट हो जाती है—

'होहु सजग मिल रोकहु घाटा
ठाटहु सकल मरण कर ठाटा ।
सन्मुख लोह भरत सन लेहू
जियत न सुरसरि उतरन देहू ।
समर मरण पुनि सुरसरि तीरा
राम काज क्षण-भंग शरीरा ।' आदि...

वही भ्रम लक्ष्मण को भी होता है । मृदुता और कोमलता को यह भावना तभी तक है जब तक कोई आँच राम तक नहीं आती ।

'राम निरादर तर फल पाई
सोवहिं समर सेज दोउ भाई !'

भविष्य में रावण को समूल नाश करनेवाले का अनादर कौन करेगा ? और अनादर करने के बाद कलंकित नहीं होगा ? इसलिए मृदुलता की एक सीमा है । उस सीमा के आगे सब कठोर और पत्थर है । वाल्मीकि में ऐसी किसी मृदुलता की मर्यादा नहीं है—इसलिए उसकी सीमा का प्रश्न नहीं उठता । राम का अनादर—उनके लक्ष्य का अपमान किसी भी मर्यादा से नहीं बंध सकता । अंगद-रावण संवाद में अंगद कठोर हो जाता है जब रावण के मुख से राम की निंदा सुनता है—

'हरि हर निन्दा सुनहिं जो काना
पाप होय गोघात समाना ।'

शंकर की निन्दा सुन कर इसी प्रकार सती ने भी कहा था—

'काटिय जीभ जो चूत बसाई।'

अगर ताक़त हो तो ऐसे व्यक्ति की जीभ काट डाले। इसलिए बाहर से जो मृदुलता 'रामचरितमानस' में दिखाई देती है उसका अन्तर वैसा ही कठोर है जैसा राम-रावण युद्ध कठोर है। इस समाज का सबसे अधिक कर्मठ व्यक्ति हनुमान् है। लक्ष्य की ओर बढ़ने में उसकी गति अबाध है। तुलसी ने इस कर्मठ व्यक्ति की यह कह कर प्रार्थना की है—

'अतुलितबलधामं स्वर्णशैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम्।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं
रघुपतिवरदूतं वातजातं नमामि।'

सीता की पहली खोज, दुश्मन की नगरी का जलाना, लक्ष्मण को मृत्यु से बचाना और युद्ध में हमेशा ठीक स्थान पर रहना यह इस व्यक्ति की प्रतिष्ठा थी। उसकी दृष्टि के सामने कालनेमि जैसे साधु छिप नहीं सके। विभीषण ऐसा सन्त भी उसकी दृष्टि से ओझल न हो सका। जटायु-सुग्रीव-नल-नील आदि इस प्रत्यक्ष संघर्ष के वीर हैं।

ऊपर से देखने में चाहे जितने मृदुल और कोमल हों पर रावण और उसकी सेना के लिए काल के समान भयंकर और वज्र की भांति कठोर हैं।

४ रावण का समाज और खल समाज

'रामचरितमानस' के रावण ने देवताओं को गुलाम बनाने की एक नई तरकीब निकाली है। आप अगर चाहें तो उसे एक नया अस्त्र भी कह सकते हैं। रावण व्याख्यान देता हुआ कहता है—

'सुनहु सकल रजनीचर यूथा
हमरे बैरी विबुध बरूथा
ते सम्मुख नहिं करहिं लराई
देखि सबल रिपु जाँहि पराई
तिन कर मरण एक विधि होई
कहौं बुझाय सुनहु अब सोई
द्विज भोजन मख होम सराधा
सब कर जाय करहु तुम बाधा
क्षुधा क्षीण बलहीन सुर—सहजहिं मिलिहहिं आय।
तब मारिहौं की छाड़िहौं—भली भाँति अपनाय॥'

यह भूखा रख कर गुलाम बनाने की बात है। अगर किसी को गुलाम बनाना हो तो उसे मारो मत-पीटो मत-सिर्फ़ उसे भोजन से अलग कर दो। वह आज़ादी से मतलब अपने आप गुलामी करने के लिए सुबह अन्नवाले के द्वार पर पहुँच जाएगा। फिर चाहे उसे जिन कठोर नियमों से बाँध दीजिए। आज़ादी से गुलाम होने की बात, असली रावण नहीं सोच सका होगा। यह सामाजिक विकास के एक विशेष क्रम में ही शोषकों का नया हथियार बनता है। हर युग में इसका प्रयोग नहीं हो सकता। रावण का यह अस्त्र कितना प्रभावशाली प्रमाणित हुआ इसका वर्णन नहीं है-क्योंकि बहुत से देवताओं ने वनचरों का रूप धारण कर लिया था—कुछ कोल, भिल्ल और छोटी जातिवाले भी हो गये थे।

फिर भी—

'भुजबल विश्व वश्य करि, राखिस कोउ न स्वतन्त्र।
मण्डलीक मणि रावण, राज्य करहि निज मन्त्र॥

× × ×

बाढ़े बहु खल चोर जुआरी
जे लम्पट पर धन पर नारी
मानहिं मात पिता नहिं देवा
साधुन सो करवावहिं सेवा
जिनके यह आचरण भवानी
ते निशिचर सम जानहु प्रानी।'

रावण के राज्य में चोर और जुआरियों की, दूसरों की मेहनत का फल लूट कर खानेवालों और नारियों को भगाने वालों की उन्नति नहीं होगी तो और किस की होगी? लूट-हत्या-बलात्कार-गुलामी-हिंसा ये रावण-राज्य के लक्षण हैं। "हिंसा पर अति प्रीति, तिनके पापहिं कौन मिति" और यह मत समझिए कि यह रावण तपस्वी नहीं था। धर्म और तपस्या और ज्ञान-रावण इन प्रतिष्ठाओं से हीन व्यक्ति नहीं था। अगर तपस्या, कुल, ज्ञान, धर्म, और धन के दृष्टिकोण से देखा जाय तो रावण का अध्यात्म कम विशाल नहीं था। कला को बहुत मौक़ा था कि रावण की स्तुति में

मुक्तक और प्रबन्ध काव्य लिखे जा सकें। उसके रंग-महल में सुन्दरियों की और उसके शस्त्रागार में शस्त्रों कमी नहीं थी।

पर इन सब चीजों की कसौटी एक है-ये सब निधियाँ जन जन पर अत्याचार करने में प्रयुक्त हो रहीं हैं-उसके शोषण और उसकी जीवन शक्ति को हरने में लगी हुई हैं—या जन-कल्याण के विकास में।

अगर अत्याचार में लगी हैं तो उनका नाश करना आवश्यक हो जाता है। तपस्या, कुल, ज्ञान, धर्म और धन अपने में सिद्ध शक्तियाँ न हो कर समाज के विकास की सहायक हो सकती हैं-अगर ऐसा नहीं है तो वह व्यक्ति बध्य है जिसके पास ये शक्तियाँ जन जन पर वज्र गिराने के लिये हों।

अभिमान, दर्प, सब को तुच्छ समझना, सब को अपना खाद्य मानना इस निशाचर की प्रमुख प्रवृत्ति होती है।

'बाढ़हिं असुर महाअभिमानी।'

कह कर 'रामचरितमानस' में उस रावण के व्यक्तित्व की या व्यक्तिवाद की निन्दा की गई है। वह किसी का कहना नहीं मानता—

"निज भुजबल मैं बैर बढ़ावा
देहौं उतर जो रिपु चढ़ आवा॥"

पर अन्त में भक्तिवाद के अन्तर्गत रावण को यह कह कर तुलसी ने सहानुभूति दी है कि वह राम के हाथों से मर कर मोक्ष पाने का अभिलाषी था। एकात्मवाद की प्रतिष्ठा भक्त इसी तरीके से कर सकता है। मारीच, मेघनाद तथा अन्य सभी राक्षस अन्त समय में अपना वाह्य रूप छोड़ कर निर्मल और शुद्ध दिखाई देते हैं। भक्तिवाद अपने उपास्य की यह अवहेलना नहीं सहन कर सकता कि यथार्थ में द्वैत की स्थिति है। मूल में जो है वह एक ही है। उस एक उपास्य में ही संसार का द्वंद्व तिरोहित होता है। ऊपर से देखने में जो संघर्ष-सा लगता है-भीतर वह एक ही है। केवल उपासना का भेद है। रावण उपासना करता है अपने मरण को पाने के लिए और देवता या ऋषि लोग उपासना करते हैं जीवन की रक्षा के लिए। दोनों अपनी उपासना में दृढ़ हैं।

भक्तिवाद का यह दर्शन स्पष्ट है-वाल्मीकि में नहीं मिल सकता। ऊपरी द्वैत के मूल में एकत्व की स्थापना भक्तिवाद का अपना अध्यात्म है जिसने राम-रावण युद्ध की कटुता को भी मृदुलता और भाग्यपरक बना दिया है।

फिर भी 'रामचरितमानस' में खलों के लक्षणों से अनेक स्थल पूर्ण हैं जिनका उद्धरण देकर हम लेख को और लम्बा नहीं करना चाहते। ये खल बाद में अपने सत्य रूप में प्रकट होते हैं—क्योंकि भक्तिवाद का ईश्वर परम करुणामय है। वह हत्या और जीवन दोनों में करुणा करता है क्योंकि उसके अन्तर में ऐसे किसी द्वंद्व का आभास नहीं होता।

लखनऊ

—आदित्य मिश्र

* * *

इस पृथिवी में तीन रत्न हैं;
जल, अन्न और सुभाषित।
मूर्ख लोग पत्थरों के टुकड़ों को,
रत्न के नाम से पुकारते हैं।

—चाणक्य

सर्वोदय योजना पर एक दृष्टि

विश्ववंद्य गांधीजी ने सिर्फ भारत का ही कल्याण नहीं किया किन्तु समस्त संसार के लोगों को सत्य पथ दिखलाया और यही कारण है कि आज संसार भर में गांधी जी के सत्य और अहिंसा के सिद्धान्तों की प्रशंसा हो रही है और गांधी जी का नाम आदर के साथ लिया जाता है। जान मैकमेर के शब्दों में गांधी जी ने अपनी नैतिक साहस की सहज प्रतिभा द्वारा अपने देशवासियों के जन-सामान्य में आत्मसम्मान का भाव भर दिया है। उनमें अपनी मनुष्यता का विश्वास जगाया है। यह करके उन्होंने इतिहास की धारा को ही बदल दिया है और मानव जाति के एक बड़े भाग के भविष्य को निर्धारित कर दिया है।

गांधी जी जब तक जीवित रहे उन्होंने मानवता के कल्याण के हेतु कार्य किया और उनकी यह इच्छा सदैव रही कि संसार में सुख और शांति की स्थापना हो और उनका यह अटल विश्वास था कि सत्य और अहिंसा द्वारा ही विश्व में भाई चारा, प्रेम, शांति और एकता की स्थापना हो सकती है। सत्य और अहिंसा का जो आविष्करण गांधी जी ने किया उसका साक्षात्कार समाज सेवा के द्वारा ही होगा। गांधी जी की अहिंसा के कुछ समय बाद सेवाग्राम में रचनात्मक कार्यकर्ता सम्मेलन हुआ था। उसमें भारत के कोने कोने से देश के प्रमुख रचनात्मक कार्यकर्ता पधारे थे। सब एक दूसरे के विचार समझे थे और सर्वोदय समाज की स्थापना की गई थी। बापू का यह मूलभूत सिद्धान्त था कि कोई भी मानव इतना पतित, दुष्ट या हीन नहीं जिसका उद्धार न हो सके, जिसका उदय न हो सके। यही अहिंसा का बुनियादी उसूल है। सब लोग सुख से रहें, कोई किसी का शोषण न करे, आपस में प्रेमभाव रहे, इसी भावना की प्रस्थापना जन-जन के हृदय में हो यही सर्वोदय का लक्ष्य है।

सर्वोदय समाज का उद्देश्य है सत्य और अहिंसा पर एक ऐसा समाज बनाने की कोशिश करना जिसमें जात-पाँत न हो, जिसमें किसी को शोषण करने का मौका न मिले और जिसमें समूह और व्यक्ति दोनों को पूरा पूरा सर्वाङ्गीण विकास करने का पूरा अवसर मिले।

उपर्युक्त उद्देश्य की पूर्ति में निम्नलिखित साधनों को काम में लाया जाता है।

साम्प्रदायिक एकता, अस्पृश्यता निवारण, जातिभेद निराकरण, नशाखोरी, खादी और दूसरे ग्रामोद्योग, गांव की सफाई, नई तालीम, स्त्रियों के लिए पुरुषों की बराबरी के अधिकार और समाज में स्त्री पुरुष की बराबरी की प्रतिष्ठा, आरोग्य, स्वच्छता, देश की भाषाओं का विकास, प्रान्तीय संकीर्णता का निवारण, आर्थिक समानता, खेती की उन्नति, हिन्दुस्तानी का राष्ट्रभाषा के तौर पर प्रचार, मज़दूर संगठन, कुष्ठ रोगियों की सेवा, गो सेवा, प्राकृतिक चिकित्सा तथा इसी तरह के दूसरे काम।

गांधी जी ने अपने जीवन में इतना कहा और लिखा है कि उसका अगर हम लोग निष्ठापूर्वक मनन कर कार्यरूप में परिणत करें तो हमारी आज जो दशा है वह सुधर जाय। आज हम देखते हैं समाज में विषमता फैली हुई है। किसी के पास इतना धन है कि वह उसे व्यर्थ के कामों में लुटाता है और किसी के पास चार पैसे भी पेट की भूख शान्ति करने के लिए नहीं हैं। समाज में यह जो विषमता फैली हुई है उसीको सर्वोदय समाज दूर करना चाहता है।

सर्वोदय समाज का तत्वज्ञान समन्वयात्मक है अर्थात् सारे विचारों को एकत्र करने की शक्ति सर्वोदय के विचार में है। हिन्दुस्तान की संस्कृति ही ऐसी है कि सर्वोदय के विचार से हो सकती है। सर्वोदय चाहता है सब का उदय हो, विशिष्टों का उदय नहीं। उसमें सभी बराबर हैं। रचनात्मक कार्य करना है। आज के युग की मांग सर्वोदय है।

आज भारत के गांवों की जो दशा है वह बहुत ही खराब है। लोगों को भरपेट खाना नहीं मिलता, पहनने को पर्याप्त वस्त्र नहीं मिलते, स्वास्थ्य खराब रहता है, रहने के लिए मकान नहीं मिलते और जो

मकान हैं वे भी खराब स्थिति में हैं, शिक्षा की कोई सुचारु व्यवस्था नहीं और ऊँच नीच की भावना व्याप्त है। क्या हम ऐसा ही भारत रहने देंगे? हमारी स्वाधीनता का क्या यही मतलब है कि शहरों में रहने वाले कुछ मुट्ठी भर लोग चैन से रहें और गांवों की जनता कष्ट झेले? इसके लिए हमें गांधीजी के रचनात्मक कार्य का सहारा लेना पड़ेगा।

सन्त विनोबा ने कहा है कि सर्वोदय का आरम्भ अभ्युदय से होगा। आर्थिक विषमता के निवारण का आरम्भ गरीबी के निराकरण से होगा। बापू के क्रान्ति-तन्त्र की यह भी एक विशेषता है। विनोबा जी ने एक बात और स्पष्ट की कि जब बड़ों की बड़ाई का निराकरण होगा और छोटों की छुटाई का निराकरण होगा तभी दोनों का उदय होगा। बड़ों की बड़ाई अक्षुण्ण रख कर दोनों एक सतह पर जब तक नहीं आयेंगे, तब तक दोनों की भूमिका एक नहीं होगी। उत्कर्ष का अवसर दोनों के लिए समान नहीं होगा।

हम किसी को भी ऊँचा और किसी को भी नीचा क्यों समझें? सभी समान हैं। सभी को काम करना चाहिए। आज ऐसा क्यों है कि एक तो विना मेहनत किये लाखों रुपए कमाता है। और दूसरा मेहनत करके भी बहुत नहीं कमा पाता बल्कि यों कहिये कि वह भूखा रहता है। बस यही भावना हमें हटानी है।

सर्वोदय समाज के उद्देश्य तथा बुनियादी सिद्धांतों को मानने वाले सर्वोदय समाज के सदस्य हो सकते हैं। इसकी सूचना सर्वोदय समाज के मन्त्री को देनी पड़ती है और वे फिर रजिस्टर में नाम लिख लेते हैं।

आचार्य विनोबा भावे ने कहा है कि 'सर्वोदय-विचार' की खूबी ही यह है कि वह स्वतन्त्र और भिन्न भिन्न विचारों की गुंजाइश रखता है। विशिष्ट बाह्य आकार का आग्रह नहीं रखना।

चरखा संघ ने एक प्रस्ताव पास किया था। उसमें बताया गया कि प्रत्येक को कम से कम नीचे लिखी बातें करनी चाहिए:—

(१) हर एक नियमित रूप से सूत काते। (२) खुद के कते सूत की या घर में कते सूत की या प्रामाणिक खादी ही पहने। (३) जहाँ तक हो सके ग्रामोद्योग की चीज़ों का इस्तेमाल करे। (४) अपने स्थान पर गाय के दूध का इस्तेमाल करने का प्रयत्न करे। (५) महीने में कम से कम एक रोज़ पाखाना सफाई का काम करे। (६) जहाँ इन्तज़ाम हो वहाँ अपने बच्चों को बुनियादी तालीम दिलाए। (७) नागरी, उर्दू और दक्षिण के प्रांतों की एक लिपि सीखने का प्रयत्न करे।

आचार्य विनोबा भावे ने उपर्युक्त कार्यक्रम को जीवन शुद्धि का कार्यक्रम बताया है और रचनात्मक काम करने वाले संघों के लिए यह ही कर्तव्य की रूप रेखा है। लेकिन सब के लिए भी वह अमल करने के योग्य है। 'सर्वोदय समाज' सेवक की तरह काम करे; तो सर्वोदय समाज आग की तरह चारों ओर फैल जाएगा। ये नियम सिर्फ दिशा दिखाने वाले हैं।

महात्मा जी ने अपने सर्वोदय के विचार द्वारा मनुष्य जाति को एक नई सभ्यता तथा संस्कृति का पावन सन्देश दिया है। सत्य और अहिंसा उस सन्देश के मूलाधार हैं। सर्वोदय समाज से संसार को बड़ी बड़ी आशाएँ हैं और सर्वोदय समाज की सफलता हर व्यक्ति की कार्यवाही पर आश्रित है। सर्वोदय समाज अपने सदस्यों की द्वारा गांधी जी की शिक्षा की ज्योति को प्रज्वलित ही नहीं रख सकेगा अपितु उसके प्रकाश को बहुत दूर तक फैला सकेगा ऐसी आशा है।

—उमाशङ्कर शुक्ल

* * *

महान् वही है जिससे संसार महान् बनता है।

जब हम लिखें

और कलाओं की तरह लिखने को भी शुरू में सभी लोग प्रायः फैशन या शौक़ की तरह ग्रहण करते हैं। बाद में यही उपयुक्त अवसर पाकर हृदय की पुकार और जीवन की आवश्यकता बन जाती है। इसका कारण है कला का वह बाह्य आकर्षण जो सौन्दर्य वृत्ति को निमन्त्रित करता है, और जब हम उसके निकट पहुँच जाते हैं तो अनुभव करते हैं कि हमारी आत्मा की गहरी तहों का ही तो वह उद्घाटन है, जिन्हें हम खोलना चाह कर भी संसार के सामने नहीं खोल पाते। अपने मन की बात कहनेवाला आदमी जिस तरह हमारी सहानुभूति और समवेदना का पात्र बन जाता है ठीक वैसे ही कला को हम अपने हृदय का संगीत और जिन्दगी का साथी मानते हैं।

लिखना बहुत लोग चाहते हैं, लिखना प्रारम्भ करते हैं और लिखते हैं। फिर भी कुछ लिखनेवाले हैं जो सदैव हमारी ज़बान पर रहते हैं, हम उनको समय निकाल कर भी पढ़ते और पसन्द करते हैं। इसके विपरीत इनके पहिले से और बहुत-सा लिखनेवाले लेखक जैसे अकेले में पड़ जाते हैं। क्यों? इस प्रश्न को यों भी पूछा जा सकता है कि अच्छे लेखक बनने के लिए किस वस्तु की आवश्यकता है। जब हम लिखें तो वे कौन-सी बातें हैं जिन्हें हमें ध्यान में रखना होगा!

इस बात को सभी अनुभव करते और जानते हैं कि हम सिर्फ अपने ही लिए नहीं लिखते। जो सिर्फ आत्मसन्तोष के लिए लिखने की बात कहते हैं वे ठीक नहीं कहते। क्योंकि सभी लिखनेवालों की सबसे बड़ी आकांक्षा है चीज़ लिख जाने के बाद जैसे तैसे वह प्रकाशित हो। चीज़ जब प्रकाशित होगी तो हज़ारों लाखों लोग पढ़ेंगे और फिर वह चीज सिर्फ लेखक की ही नहीं रह जाएगी। अतः साफ है कि लिखने के नाम पर हम जो कुछ लिखते हैं वह दूसरों के लिये—अपने पाठकों के लिये।

तो लिखते समय यह बात हमारे सामने बिलकुल स्पष्ट होनी चाहिए कि जो चीज़ हम लिख रहे हैं उसके पाठक कौन लोग होंगे; किस वर्ग के पाठक उसको पढ़ना और आनन्द लेना पसन्द करेंगे? कभी कोई चीज़ विद्यार्थियों को ध्यान में रख कर लिखी जाती है कभी स्त्रियों को, साथ ही हम यह भी जानते हैं कि सभी विद्यार्थी या स्त्रियाँ उसे नहीं पढ़ेंगी। उनमें भी एक दायरा है जो पढ़ना चाहेगा—उन लोगों की समझ और बौद्धिक स्तर का हमें अनुभव होता है। इन पाठकों की संख्या अधिक से अधिक हो, इस बात की हमें कोशिश करनी चाहिए। इसके बिना हम अपनी बात असली और अधिक पाठकों तक नहीं पहुँचा सकते।

यहाँ अपनी बात का आशय भी समझ लेना चाहिए। लोग लिखने का अर्थ लेते हैं सिर्फ अपनी भावनाओं, इच्छाओं और आवश्यकताओं का चित्रण। जो सिर्फ़ अपनी ही बात कहता है, बहुत जल्दी ही उसकी बातें ख़तम हो जाती हैं और उसके पास कुछ कहने को नहीं रहता दूसरे हमेशा अपनी ही और अपने ही बारे में बातें करने वाले को लोग कम पसन्द करते हैं। प्रायः समाज में ऐसे आदमियों का नाम 'बोर' रख दिया जाता है। लिखते समय यही आवश्यक नहीं है कि अपनी बात सुनने वाले अपने पाठक वर्ग को ही हम पहिचाने, यह भी आवश्यक है कि हम हमेशा उन्हें अपनी बात भी लिखा जाना या सुनाना पसन्द करते हैं। हमेशा हमें मीटिंग में बैठे हुए मनुष्य की तरह दूसरों की रुचियों के विषय में सचेत होना चाहिए। यहीं बात साफ़ हो जाती है। अधिक से अधिक मिलनसार आदमी क्यों लोकप्रिय हो जाता है और अपने में ही व्यस्त डूबा हुआ व्यक्ति क्यों समाज से अलग पड़ जाता है।

अधिक से अधिक पाठकों का ध्यान रख कर लिखने वाले लेखक और एक मिलनसार व्यक्ति की तुलना करने पर एक बात और सामने आती हैं। वह मिलनसार व्यक्ति अधूरा या स्वार्थी समझा जाता है जो हँसने खेलने में तो आपके साथ है लेकिन आपके दुख कष्ट या मुसीबत के प्रति बिलकुल उदासीन होकर मुँह फेर लेता है। उस समय स्वयं आपको यह चीज़ चुभती है कि

क्यों अपना समय हमने इस स्वार्थी के साथ हँसने खेलने में व्यर्थ खो दिया । मनुष्य स्वभाव की कमज़ोरी है कि दूसरे की कहने और अपनी सुनने वाले को वह अपना मित्र समझ लेता है—यह भावना इस मित्रता पर एक चोट है । इसलिए मनुष्य समाज में रहनेवाले लेखक के नाते यह हमारा कर्तव्य है कि न सिर्फ अधिक से अधिक व्यक्तियों को हम अपनी बात सुनाएँ बल्कि सच्चे मित्र की तरह उनकी मुसीबतों और समस्याओं को अधिक से अधिक जान कर सहानुभूति से अनुभव करें—उसका निदान सोचें । कभी कभी भावुकता, कल्पनाशीलता, चुहल और विनोद की भी जरूरत होती है: लेकिन इसलिए नहीं कि हम पाठकों को उनकी वास्तविक स्थिति से भगा ले जाँय, कठिनाइयों के हवाई आनन्द को अनुभव कराते रहें । नहीं यह काम शराब ओर अफ़ीम का है इनका नशा जब उतर जाता है तो वास्तविक कठिनाइयाँ या स्थिति दुगुने जोर से काटने को दौड़ती हैं, और आदमी बौखला कर अपनी पत्नी और बच्चों को मारता पीटता है । यह सब हम इसलिए करें कि स्वस्थ मनोविनोद या अच्छे मनबहलाव की तरह हमारे पाठकों को तरोताजा कर दें । उनकी समस्याओं, कठिनाइयों का सामना करने की अधिक से अधिक प्रेरणा दें, शक्ति दें । यह हमें कभी नहीं भूलना है कि आज हमारे प्रत्येक वर्ग के पाठक की अपनी मुसीबतें और समस्याएँ हैं—निश्चिन्त कोई भी नहीं है ।

लेकिन हमारे पुराने विचारक लेखक या कवि को केवल मित्र बना कर ही सन्तुष्ट नहीं रह सकते । उन्होंने उसे इतना सम्मान और महत्व दिया कि उसे दूसरा विधाता माना—''कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः'' कवि विधाता की तरह संसार के कल्याण में सचेत और तत्पर होता है । इस बात को हम स्तालिन के इस वाक्य से और भी अधिक स्पष्टता से समझ जाएँगे—''लेखक मनुष्य की आत्मा का शिल्पी (इंजीनियर है) ।'' लेखक के उत्तरदायित्वों और शक्तियों की व्याख्या कर डालने वाले इससे छोटे वाक्य बन भी नहीं सकते । साधारण इंजीनियर मकान और इमारतों को बनाता है, और उसकी पूरी रूप-रेखा उसके मस्तिष्क में स्पष्ट होती है । एक लेखक जिस रूप में चाहे मनुष्य की आत्मा को ढाल सकता है । लेकिन लेखक इंजीनियर से बड़ा है, एक प्रयत्न में इंजीनियर सिर्फ एक ही वस्तु का निर्माण करता है और लेखक एक प्रयत्न में अगणित आत्माओं को एक ढाँचे के अनुसार बना देता है । वॉल्टेयर और रूसो ने सिर्फ लेखनी से क्रान्ति ही करा डाली । इस सबके लिए जरूरी है कि लेखक मनुष्य की आत्मा को बहुत पास से समझे, उसकी कमजोरियों और शक्तियों का उसे पूर्ण ज्ञान हो तभी तो वह अपने अनुकूल उसे ढाल सकता है । मनुष्य की आत्मा की वर्तमान स्थिति समझने के लिये हमें अधिक से अधिक मनुष्यों के पास और मनुष्यों के बीच में रहना होगा । केवल कमरे में बन्द होकर उनकी समस्याओं पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करने का कोई अर्थ नहीं । यह सब एक मिलनसार आदमी या सामाजिक लेखक ही कर सकता है ।

मानव आत्मा की वर्तमान अवस्था को समझने के बाद जरूरत है उसे गढ़ने की । यहाँ हमें फिर संस्कृत की कहावत याद आती है-''कवयः क्रान्तदर्शनः' कवि क्रान्तदर्शी होते हैं । साधारण मनुष्य की अपेक्षा प्रकाश की, भविष्य की उज्वलता या कल्याणकारी मार्ग को अधिक स्पष्टता और आत्मविश्वास से देख सकते हैं । इस कल्याणकारी मार्ग को देखने और उसीके अनुसार मानव समाज की आत्मा को ढालने के लिये हम मनुष्य के पुराने विकास वर्तमान स्थिति और नई आवश्यकताओं को समझें । मनुष्यसमाज सदैव ही विकास करता और आगे बढ़ता आया है । अपनी पुरानी स्थितियों अवस्थाओं को बचपन के कपड़ों या केंचुलियों की तरह निर्मोह और निर्मम होकर छोड़ने और नई सुविधाएँ प्राप्त करने में कभी भी उसने झिझक अनुभव नहीं की यह एक वैज्ञानिक और ऐतिहासिक सत्य है । आपका कपड़ा यदि पुराना होकर स्थान-स्थान से फट गया है, आपके विकसित होते हुए अंग यदि उसमें समा नहीं पाते, तो न तो उसे पुराने डोरों और थेगड़ियों से सीने से काम चलेगा और न अधिक समय आप अपने अंगों को दबाए रख सकेंगे । प्रकृति के नियमों को आप झुठला नहीं सकते । साँप की पुरानी केंचुली उसके विकासशील अंगों को बाँधे रखने वाली जेल और बोझ ही नहीं होती, वह उसे अन्धा भी बनाए रखती है । यदि वर्तमान समाज में कष्ट, आह, कराह, भुखमरी और नंगेपन के सिवा कुछ नहीं है तो स्पष्ट है

कि समाज की यह स्थिति हमें छोटे कपड़े की तरह कष्ट पहुँचा रही है। मनुष्यसमाज विकसित हो रहा है, उसकी आवश्यकताएँ बढ़ रही हैं और निश्चित रूप से इससे अगली अवस्था चाहता है। हम, जो दूसरे विधाता हैं, सही दृष्टि से देखें कि वह अगली अवस्था कौन-सी है जिसकी इतिहास माँग कर रहा है। इस स्थान पर यह अनिवार्य है कि हमारी दृष्टि विज्ञान, ऐतिहासिक विकासवाद और निष्पक्ष तर्क से नियन्त्रित हो। कहीं हम ज़रा सी भूल और चकाचौंध में आकर किसी पुरानी अवस्था का समर्थन न कर जाएँ। हो सकता है आज उस अवस्था को खींच-खाँच कर हम फिट कर लें, लेकिन शीघ्र ही फिर उसे बदलना होगा। मनुष्य समाज किस अवस्था से ऊब कर अगली अवस्था चाहता है इसे पहचानने का एक तरीका हमारे पास है। लम्बा चौड़ा आदमी उसी समय तक काम कर सकता है, जब तक अपने शरीर के प्रत्येक भाग पर वह अधिकार रखता हो। बुढ़ापे में उसका शरीर तो उसके अधिकार में रहता ही नहीं है। उलटे उस शरीर की लम्बाई चौड़ाई उसके लिए एक बोझ हो जाती है। उसका विशाल विकास उसके लिए शाप हो जाता है, स्वयं अपना नाश करता है। तब हम कह सकते हैं कि शीघ्र से शीघ्र वह अपनी अगली अवस्था चाहता है। मनुष्य समाज की वर्तमान अवस्था जितना अपना विनाश कर सकती थी कर चुकी। विज्ञान, राजनीति, कला सभी क्षेत्रों में सिर्फ़ अधिक से अधिक नाश के उपाय वह सोच सकती है जैसे मनुष्यों के सारे कष्ट दूर हो चुके हैं और अब बस इसीकी कसर रह गई है। शिव का वरदान यदि भस्मासुर के रूप में स्वयं निर्माता का ही बलिदान माँगने लगे तो स्पष्ट है कि उसकी मृत्यु उसके सिर पर है।

पुराने और जीर्ण शीर्ण बन्धनों में बचे मानव समाज की दुरवस्था छटपटा कर चित्रित कर देना हमारा काम नहीं है। यह काम कैमरे जैसी निर्जीव वस्तु मशीन का होता है। मनुष्य जलते रहें, दुःख और कष्टों में कराहते रहें और हम उनका चित्रण भर करते रहें इससे अधिक विश्वासघात मनुष्य समाज के साथ और क्या होगा ? अगर हम अकेले मानव समाज को उस कष्ट से नहीं उबार सकते तो अपनी प्रतिमा और कला की शक्तिशाली आवाज़ से लोगों को इस काम के लिए पुकार सकते हैं। हमारा काम टूटते बन्धनों की ओर संकेत करके मानव समाज को प्रोत्साहित करना और उसकी छटपटाहट, अकुलाहट को शक्ति देना भी है, ताकि वह शीघ्र ही इस केंचुली को जो उसे अंधा किए है छोड़ सके सिर्फ़ इस पर कि एक समय उसकी आवश्यकता थी। उसके मोह में पड़ना मूर्खता है। इसमें भी हमें यह देखना होगा कि इस बदलते हुए युग में या संक्रान्ति काल में समाज का वह कौन सा हिस्सा है जो सबसे अधिक कष्ट में है, जो समाज और राष्ट्र की आवश्यकताओं का उत्पादक और आधार हो कर भी उचित सूचनाएँ नहीं पा रहा। इस वर्ग को पहचानने के पश्चात् हमें यह समझने में कठिनाई नहीं रह जाएगी कि समाज को जीर्ण अवस्था से यही वर्ग छुटकारा दिला सकता है, क्योंकि कपड़ों को वही हिस्सा फाड़ता है जो सबसे अधिक दबाव में किन्तु विलासशील होता है। स्त्रियों की वर्तमान स्थिति इसका एक सशक्त उदाहरण है। केवल कुछ सुखी, अविलासित अंगों की आवाज़ को धर्म, राष्ट्र संस्कृति और अतीत की गवाही दे कर दबाना नहीं है, जो परिवर्तन की सबसे अधिक आवश्यकता में है।

इतने सब का अर्थ है कि हमें पाठकों के विशाल समाज को ध्यान में रख कर उनके सुख दुःख की बातें करनी हैं; उनसे हँसी मज़ाक करना है; उनकी समस्याओं को सोचना विचारना और उनके निदान को वैज्ञानिक एवं युक्तिसंगत ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि पर आंकना है। हम अपने पाठकों का सस्ता मनोरंजन करने वाले विदूषक या बाज़ीगर नहीं है कि हँसाया खिलाया और चल दिए। नहीं हमने धर्म संस्कृतिं और अतीत के नाम पर उनसे वर्तमान वास्तविकता से भुलाए रखने को साहित्य की मधुशाला में साक़ी का काम लिया है। हमारा उद्देश्य सच्चे अर्थों में क्रान्तदर्शी बनने और समाज को अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाने का है। लेखक हम पीछे हैं। मनुष्य समाज के अंग और स्वयं मनुष्य पहले।

लेकिन इतने बड़े उद्देश्य को ध्यान में रख कर लिखने का कभी भी अर्थ यह नहीं है कि हमें अपने को मनुष्यों की कोटि से कुछ ऊपर का समझ कर या एक ओर टीले पर खड़े होकर कहना है। हमें हमेशा पाठकों को यह विश्वास दिलाए रखना होगा कि हम भी समाज के एक अंग हैं और जिन समस्याओं में व्यस्त हैं

उनसे अछूते नहीं है। उनकी मुसीबतें हमारी मुसीबतें हैं, क्योंकि इतना सब होने पर मनुष्यों की एक मनोवृत्ति है, आप लाख सच्ची और अच्छी बात कहिये लोग उसे इसलिए सुनना पसन्द नहीं करेंगे कि वह केवल एक ज़बानी शब्दों का खेल है, जिसमें आपकी आत्मा नहीं बोलती। भूषण के शब्दों में तड़पती आत्मा की दर्दभरी पुकार थी तभी तो लोगों ने उसे सुना। ख़ाली सच्ची और अच्छी बातें बताना लैक्चरबाज़ी है, उपदेश है, जिन्हें लोग सुन तो लेते हैं। हम जो कुछ कहें उसमें हमारे आपके अनुभवों की सचाई बोलती हो। लगता हो कि उसे आप हृदयंगम कर चुके हैं। दुःख के गीत हमें प्रिय क्यों हैं? क्योंकि उनमें हमारी आत्मा का दर्द सच्चे रूप में प्रकट होता हैं। हम में से जिन्होंने पहाड़ नहीं देखे वे सुन सुनाकर पहाड़ की ऊँचाई इत्यादि के विषय में कहाँ तक बता पाएँगे। देखी हुई चीज़ को हम आत्मविश्वास से लिख भी सकेंगे और पढ़ने वाला भी उसे उसी रूप में अनुभव कर सकेगा। इसलिए ज़रूरी है कि हमारे अनुभव विशाल हों।

हममें से जो अधिकांश लिखना प्रारम्भ करते हैं उनके प्रेरणास्रोत बड़े नक़ली होते हैं। सिनेमा देखा कोई उपन्यास कहानी पढ़ी और झट एक अपनी चीज़ लिख दी। इसमें हम सचाई से बड़ी दूर चले आते हैं। उदाहरण के लिये गाँव का चित्रण लें, सिनेमा में जैसे भूखों मरने वाले गरीबों के घर दिखाए जाते हैं, वैसे संसार में कहीं नहीं होते (उन मकानों की खिड़कियों के शीशे ही निकाल कर अगर हीरो साहब बेच आएँ तो कम से कम दो महीने के भोजन से निश्चिन्त हो जाँय।) सत्य का एक भद्दा रूप वह खुद होता है और उससे प्रेरणा लेकर लिखा गया रूप—जिसमें ज़रूर ही लेखक अपनी ओर से कुछ न कुछ मिलाएगा—सचाई से कितनी दूर होगा इसका अन्दाज़ लगाया जा सकता है। हमें इस बात का भी ध्यान रखना होगा कि ख़ाली काल्पनिक बातें ही हम न करते रहें।

अधिकतर चीज़ें जिन्हें हम कह देते हैं कि इनमें जान नहीं है और चित्रण अस्वाभाविक है इसलिये हमारे सामने महत्वहीन हो जाती है कि उनमें अनुभूति की तीव्रता नहीं मिलती। वे जीवन का काल्पनिक चित्र होती हैं वास्तविक नहीं, उनके पात्र हममें से नहीं वरन् लेखक के दिमाग़ी कठपुतले होते हैं। इसलिए आवश्यक है कि हम मनुष्य के चरित्र और छोटी-छोटी मनोवृत्तियों, प्रवृत्तियों का अध्ययन करते रहें।

प्रत्येक लिखने वाला चाहता है कि जब वह कोई चीज़ परिश्रम करके लिखता है तो वह कुछ समय तक जीवित और स्थायी रहे। इसके लिये आवश्यक है कि हमारी रचनाओं का आधार मनुष्य की वे भावनाएँ हों, जो हर कहीं हर समय एक-सी होती हैं। पुरानी भाषा में इसे हमारे यहाँ 'रस' कहा गया है, और आज की भाषा में मानव मनोविज्ञान की मूल प्रवृत्तियाँ–प्रेम क्रोध इत्यादि इन्हीं में आती हैं। इन्हें हम अपने भीतर भी बड़ी आसानी से समझ सकते हैं, और प्रायः अधिकांश कलाकारों ने भावनाओं को नापने का पैमाना अपने आप को ही रखा है। इसमें डर यह है कि आत्मसन्तोष और भावनाओं का सही चित्रण करने का आधार लेकर अधिकांश कलाकार अपने आप में ही डूबे रहे हैं, लिखने के नाम पर अपनी ही उलटी-सीधी बातें लिखते हैं। घोर व्यक्तिवादी और अस्पष्ट होते हैं।

इस तरह लिखना प्रारम्भ करने से पहले यह भी आवश्यक है कि समाज को, अपने पाठकों को धोखा न देने के साथ-साथ हम अपने आप को भी धोखा न देने लगें। जिस चीज़ की हम आवश्यकता अनुभव करते हों, जानते हों कि इस पर हमारा अधिकार है और जिस समय स्वयं ही उसे लिखने का दबाव हम अनुभव करने लगें तभी हमें लिखना चाहिये। चीज़ तभी प्रभावशाली होगी। यह ठीक है कि हमेशा ही पाठकों या समाज की बात नहीं कही जाती, कभी कभी अपनी भी बात कही जाती है, लेकिन वह इतनी अपनी (व्यक्तिगत) न हो कि सुननेवाले या तो समझ ही न सकें या समझ कर लज्जित उठें। अपनी होने का यही अर्थ होता है कि अपनी जैसी स्थिति में हज़ारों की। लिखने में हमें अपने आप को वहीं तक महत्व देना होगा जहाँ तक हम हज़ारों लोगों के साथ हैं, और हमें ब्राउनिंग की तरह यह कहने का मौक़ा न मिले—"जब मैंने यह कविता लिखी थी. तब इसका अर्थ सिर्फ दो आदमी जानते थे, एक मैं और दूसरा स्वयं ईश्वर। सो अब मैं तो भूल गया, ईश्वर जानता

हो तो जानता हो।"

समाज के और अपने अपने उत्तरदायित्वों से मुक्त होने के बाद नम्बर आता है साहित्य की उस धारा का जिसे हमने अपनाया है। मान लीजिये हमने एक उपन्यास लिखा उससे हम पूर्णतया सन्तुष्ट हैं और समझते हैं कि उनमें हम समाज या पाठकों के प्रति भी लापरवाह नहीं है, फिर भी यही बस नहीं है। इसके साथ हमें यह भी देखना है कि अपने कला पक्ष में वह उपन्यास साहित्य को एक देन है या नहीं। नित्य नए प्रयोगों और शैलियों के द्वारा साहित्य सदैव ही विकास करता रहता है। हमें उस सबका भी ज्ञान रखना आवश्यक है। इस दृष्टि से भी हमारी चीज़ अपना एक स्थान रखती हो। हमारी रचना न तो व्यक्तिगत डायरी बनकर रह जाय और न उपदेशक का 'माइक्रोफ़ोन', वह साहित्यिक शैलियों के नवीन रूपों में भी सन्तुलित हो। साहित्य की प्रत्येक धारा की अपनी कला है अपनी सीमाएँ हैं इनमें रोज़ सुधार और सँवार होते रहते हैं। हमारी रचना पचास साल पुराने ढंग की न हो, क्योंकि कला का सब से बड़ा गुण है चीज़ को सुन्दर से सुन्दर ढंग में रखना, इस रूप में रखना कि वह सिर्फ पाठक को आकृष्ट ही नहीं करे बल्कि पाठक के हृदय में भी वही भाव उत्पन्न करे जो कलाकार के हृदय को अभिभूत कर चुके हैं। यह कार्य वही रूप करेगा जो पाठक के मानसिक स्तर को देख समझ कर सामने रखा जाएगा। नानी की कहानी के ढंग पर आज कहानी लिखना साहित्य के विकास और पाठक की समझ दोनों को झुठलाना होगा।

हमारा साहित्य इन्हीं शर्तों को समान रूप से ध्यान में रखने से समाज के लिये शिव व्यक्ति के लिये सत्य और साहित्य के लिये सुन्दर हो सकेगा। जो भी लेखक समाज, व्यक्ति और साहित्य की इन निरन्तर आगे बढ़ने वाली तड़पनों और चेष्टाओं को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में अभिव्यक्त करने में जितना अधिक सफल हो पाए हैं वे हमारे उतने ही अधिक प्रिय लेखक हैं। व्यक्ति अपने आपको समाज की भावनाओं का केन्द्र बनता है और साहित्य कला के द्वारा उन्हें अमर कर देता है। साहित्य वह मसाला है जिसके द्वारा हम अपने समाज की भावनाओं और विचारधाराओं को युगों तक जीवित रख सकते हैं।

—राजेन्द्र यादव

आगरा

* * *

यह समझना बड़ी भूल है कि मुख पर हँसी ले आने से लोग प्रसन्न हो जाते हैं। कुछ चेहरे तो ऐसे होते हैं जो कभी मुसकरा नहीं सकते। मुसकान कभी तो बड़ी मीठी होती है परन्तु साधारणतया वह निर्जीव और अस्वाभाविक होती है। गंभीर चेहरे की मुसकान अत्यन्त मधुर होती है। उसका गहरा प्रभाव पड़ता है।

सौन्दर्य और शैतान

रेतीला सागर जल के सागर से भी उज्वल और शान्त था। न हलचल और न गर्जन। न मौत की अठखेलियाँ और न किनारों से दुर्द्धर्ष संघर्ष। आदि से अन्त तक एक अमर शान्ति और सादगी का आवरण ओढ़े विस्तृत था। उसकी समुद्र जैसी अचंचल और स्तब्ध लहरें पवन के झोकों से अदर्शनीय हरकत करती सी प्रतीत होती थीं।

दूर से रेतीले सागर पर उगे हुए पेड़ लंगर से दीख पड़ते थे और कहीं विस्तृत घास का समूह नाव का भ्रम पैदा कर रहा था। एक विचित्र दृश्य और एक मृत्यु-सी शून्यता फैली हुई थी।

बोल रहा था केवल अन्तर जो ग्रामीणों को लिये अशकुन का प्रतीक माना गया है या बोल रही थी उस सागर से दूर ग्रामीण बालायें जो गीत गाने की सोच रही थी। उल्लू की आवाज़ सुन इमरती ने कहा—"मैं तो नहीं गाऊँगी बहिन, उल्लू बोल रहा है, शकुन अच्छे नहीं हैं।"

सब ने 'बीच में रंग में भंग न हो जाय' सोच कर उस प्रस्ताव को मान लिया और गाना कुछ देर के लिये रोक दिया गया।

चाँद अब नभ मण्डल को पूर्ण दीप्त करने लग गया था। उसके चिर के संगी तारे मस्त तथा बेफ़िक्र बराती होकर रात के ढलने के हर पल के साथ उससे दूर जा रहे थे।

तभी कोकिलकंठियों के कंठस्वर फूट पड़े—मधुर सहस्र निर्झरों की तरह मधुरता लिये, मादकता लिये और यथार्थता की अनुपम सादगी के लिये।

"चाँद चढ़्यो गिगनार किरन्याँ ढल रही जी,
... ढल रही है।
... ...

और इसी गीत की समाप्ति के साथ बालायें अपने घरों को जाने लगी। रेगिस्तान की स्वर्णमयी बालू उड़ उड़ कर उनके अगले दाँतों पर जम चुकी थी जिससे उन पर पीलापन झांक रहा था। कोई कोई अब भी अपना आँचल फटकार रही थी जिसमें से रेल उड़ती सी नज़र आ रही थी।

राधा ने भी अपने कच्चे घर में पैर रक्खा और रखते ही एक चोर की तरह बाबा की खाट की ओर ताका बाबा। सो रहे थे। बाबा की साँस 'खर् र् र्'-'खर् र् र्' कर रही थी, वह भी इतनी तेज़ कि अनजान व्यक्ति सुन कर डर जाय। बाबा की एक और आदत बहुत ही ख़राब थी, वह यह थी कि वे हर करवट के साथ 'हरे राम' शब्द का उच्चारण किया करते थे जैसे वे जाग रहे हैं।

गायें और बछड़े दाना-पानी करके सो रहे थे और छबली नामक गाय अब भी 'जुगाली' कर रही थी। गोरी नामक गाय गर्दन को धरती पर टेके, आँखें मींचे सो रही थी। उसकी गर्दन में बँधा बड़ा घण्टा जिसकी आवाज़ मीलों सुनाई पड़ती थी, एकदम शान्त और निश्चल पड़ा था जैसे वह भी सो रहा हो। राधा गोरी की ओर केवल पंजों के सहारे कदम बढ़ाती धीरे धीरे आई। दोनों ओर से उसने अपने दोनों हाथों के 'छींट' का लहँगा पकड़ कर फैला रखा था साथ ही भय के मारे उसने अपना निचला होठ ऊपर के दाँतों से दबा लिया था। गोरी के समीप पहुँच कर उसने उसे हाथ जोड़ा और झट से उसके 'घण्टे' में हाथ डाल कर एक काग़ज़ का टुकड़ा निकला और दूसरे ही पल बिजली की तरह भाग कर खाट पर आँखें मूँद कर सो गई।

दो मिनट बाद वह उठी और अपनी खाट के एक पाँव के नीचे वह काग़ज़ छिपा कर सो गई। रात बड़ी शान्त थी। पर राधा बहुत ही बेचैन।

× × ×

मुर्गे की 'बाँग' के साथ बाबा 'हरे राम' की एक जोरदार आवाज़ लगाते उठे और कुल्ला करके उन्होंने बड़े धैर्य से पुकारा राधा बिटिया,...अरी ओ राधा, भोर हो गया है, झाड़ू लगा।" राधा फुर्ती से उठी और बिस्तरे को खाट पर समेटती हुई उसने उत्तर दिया—"आई बाबा।"

फिर राधा ने घर साफ़ किया, पशुओं को दाना-पोनी दिया, और इसके बाद पानी की मटकी उठा कर कुएँ की ओर चली ।

गाँव के पश्चिमी छोर पर डाकिया बाबा सन्तराम का मकान था । सन्तराम निःसन्तान होने की वजह से गृहस्थी-चिन्ता से मुक्त था । पैसे का लोभ न होने का कारण वह गाँववालों की चिट्ठियाँ मुफ्त ही पढ़ दिया करता था । राधा भी सीधी सन्तराम की ओर दौड़ कर जाने लगी । बाबा ने उसे दूर से देख कर फाटक बन्द कर लिया । राधा दरवाजा खटखटाती रही और अन्त में खीझ कर राधा ने कहा—"बाबा अगर फाटक खोलते हो तो खोलो वरना मैं तो चली ।"

और उसी क्षण फाटक खुल गया । बाबा आँखें मल रहा था जैसे-सोया हुआ उठ कर चला आ रहा हो ।

"सवेरे सवेरे आ जाती हो तंग करने ।"-बाबा ने जम्हाई लेते हुए कहा ।

"और तुम कुम्भकरण बने इतना सूरज चढ़ आने पर भी उठते नहीं ।"-भोलेपन की हँसी हँसते हुए राधा ने कहा ।-"मैं इतने ज़ोर से चिल्ला रही थी कि सारा गाँव जग गया मगर तुम्हारे कानों पर जूँ तक नहीं रेंगी ।"-बड़ बड़ करती राधा ने अपनी मटकी रख दी ।-"रात को किसी 'जागरण' में चले गये थे क्या ?"

"नहीं बेटी, अब यह हड्डियाँ जरूरत से ज्यादा आराम चाहती है ।"

"हाँ बाबा ।"-राधा ने बाबा की ओर देखा और न जाने इतनी क्यों शर्मा गई कि अपनी पलकें ही झुका लीं ।

"हाँ, हाँ, निकालो न चिट्ठी, चुटकी बजाते बजाते पढ़ देता हूँ ।"

राधा ने अपना हाथ काँचली में कम उन्नत उरोजों पर डाला और एक पन्ना निकालते हुए बाबा के हाथ में थमा दिया ।

"तुम जब सवेरे सवेरे आ टपकती हो तो मैं पहले से ही भाँप जाता हूँ कि आज मोहन का सन्देश आया है ।" राधा कुछ भी नहीं बोली । । लज्जा के कारण उसके कपोलों पर क्षीण रक्तिम रेखा खिंच गई ।

बाबा ने कहा-खड़ी क्यों हो, बैठ जाओ ।"

राधा बैठ गई । बाबा ने पढ़ा-राधा, मैं हर रोज कृष्ण भगवान् की तरह सिद्ध बाबा की बगीची के पास तुम्हारी राह देखता रहता हूँ मगर तुम तो न जाने,..! बस, आज आओगी न, देखो,...जरूर आना,...मोहन

"बाबा इसे लिख दो ।"-राधा ने कहा-आज खेत में बहुत काम है । भगवान् की कृपा से तीन साल बाद खेत हरे हुए हैं ।......सच उन्हें देख देख कर मेरी छाती फूल जाती है ।......पाँच सेर खून बढ़ जाता है ।"-और बाबा ने देखा-उस गँवारिन की आँखों में तेज रोशनी और एक अनुपम आस्वाद का अजस्र स्रोत ।

खेत क्या लहलहाये, बालें क्या फूटीं, पेड़ क्या झूमे, मंजरी क्या फूटीं मानों धरती के बेटों का जीवन लहलहा उठा । कठोर धूप में जब वे हाथ में हँसिया लेकर घास काटते तो उस समय उनके पसीने की बूँदे पड़ा करती थीं । और उनके कठोर श्रम से बह कर गिरी पसीने की बूँदे धरती में से सोना ले कर प्रतिफलित हुई । राधा कुछ विचारों में उलझी हुई थी । एकाएक बोली—"लाओ बाबा, गोरी के जाने का समय हो गया है ।"

"लो बिटिया पर एक बात का ध्यान रखना और हो सके तो उस पर अमल करने की भी कोशिश करना । मोहन पराया चरवाहा है, वह भी उस गाँव का जिसमें हमारे ठाकुर की पुश्तैनी दुश्मनी चली आ रही है !"

"लेकिन बाबा मोहन ऐसा कभी जिक्र ही नहीं करता । वह बड़ा ही भोला और भला है । तुम उससे एक बार भी बात कर लो तो अपना बेटा बनाए बिना नहीं छोड़ो ।"

"अच्छा !"—राधा यह सुन कर अपनी पत्र-वाहिका 'गोरी' की ओर दौड़ी ।

× + ×

मोहन टीले पर चहलक़दमी कर रहा था । बार बार टीले पर से पगडंडी की ओर दृष्टि जमाए देख, उसके हृदय की उद्विग्नता का अनुमान लगाया जा सकता था । अन्त में वह टीले पर लेट गया । एकाएक पीछे से किसी ने गुनगुनाया—

"सुण ओ सूतोड़ा म्हारी बात ओलू थाँरी भोत आवे रे"

मोहन का चेहरा खिल उठा। बाहों को फैलाता हुआ बोला—फिर तुमने देर कर दी।

"मैं क्या करती, ठाकुर जो देख रहा था, तुम जानते नहीं कि वह तुम्हारा पुश्तैनी दुश्मन है।"

"मेरा ?"

"नहीं तो, तुम्हारे ठाकुर का।"

"जानता हूँ और कभी कभी डरने भी लगता हूँ"

"डरे मेरी जूती, किसी के तावेदार थोड़े ही हैं। जो जी में आएगा करूँगी, जहाँ चाहे नाचूँगी, कूदूँगी, खेलूँगी, रोऊँगी।

"इतनी हिम्मत !"—मोहन ने राधा की ओर देखा दूध सी गोरी, मक्खन सी मुलायम, बिजली सी चंचल, बच्चे सी बेफ़िक्र।

"दूध पियोगी ?"—मोहन ने पूछा।

"हाँ"

"तो आओ'

"कहाँ"

"उस गाय के पास, वह बड़ी भोली है, तुम उसका स्तन भी चूँग सकती हो।

"बाप रे गाँव का धनी लड़ा तो।"

"नहीं लड़ेगा फिर राधा मैं तो मोहन हूँ—दूसरों की गायों का दूध पीने वाला !"

"मगर मोहन वह जमाना सतजुग का था"

"तो क्या हुआ ?.......मोहन और राधा तो वही है न ?" राधा शर्मा गई। मोहन ने उसकी रोटियाँ छीन लीं।

"मोहन मुझे यह मज़ाक पसन्द नहीं है।"

"तो क्यों करती हो ?"

"उलटा चोर कोतवाल को डाँटे।"

"चोरी की चोरी ऊपर से सीनाजोरी।"

"मोहन।" कड़क कर राधा ने कहा। उसका चेहरा 'ग्रहण' लगे सूरज की तरह था सुन्दर और भयभीत।

"पहले दूध पीओ चल कर।" राधा दूध पीने लगी। कभी कभी मोहन दूध की फौव्वार उनके मुँह पर भी छोड़ देता था जिससे राधा रोष में आ कर अंट संट बक दिया करती थी।

× × ×

"तुम्हारा ठाकुर मेरा खानदानी दुश्मनी है और तुम मेरे गाँव की बहू बेटियों को बुरी नज़र से देखते हो। तुम्हारे भी बहु बेटियाँ होंगी।"

"है मगर क्या आप अपनी बहू बेटियों को देख कर आँखे बन्द कर लिया करते हैं ?"

"खामोश, निर्लज्ज कही के ! झुम्मन ! इसे 'गोडा लकड़ी' दे दो, गाँववालों के समक्ष इसकी दुर्दशा करो।" राधा के गाँव के ठाकुर का आधिपत्य भरा स्वर गूँज उठा। ग़रीब किसान डरे। स्त्रियाँ पहले से चक् चक् कर रही थी।—"बेचारा अब नहीं बचेगा।......दुश्मनी ठाकुर ठाकुर में मर रहा है बेचारा यह।"

"दो पाटों के बीच में घुन भी पिस जाता है।" एक बुढ़िया ने कहा।

मूर्ख गाँववाले बनावटी हँसी हँस रहे थे शायद ठाकुर को राज़ी करने लिए।

बूढ़ा डाकिया देख रहा था—पाशविकता, अत्याचारों का नंगा नृत्य, आत्मा का हनन, प्रेम पर बलात्कार।

और मोहन चारों ओर से रस्सी में जकड़ा तड़प रहा था। उसका अंग प्रत्यंग फट सा रहा था। उसके चाँद से सुन्दर चेहरे पर लगे चोटों के दाग़ कलङ्क से प्रतीत हो रहे थें। फिर भी उसकी दृष्टि ढूँढ रही थी—राधा को जो पहले से ही ठाकुर की आज्ञा से कोठरी में बन्द कर दी गई थी क्योंकि गाँव की इज्जत का प्रश्न खड़ा हो गया था। बूढ़े बाबा की आँखे भर आईं। तड़पते हुए उन्होंने अपनी विवश आत्मा से कहा—मोहन ! यह भारत है जहाँ प्रेम की अजस्र धाराएँ बहती बहती सूख गई हैं। आर्थिक विषमता, विवशता, झूठी इज्जत, खोखले दम्भ ने प्यार के गुलाब को हमेशा के लिए बरबाद कर दिया है। तुम भोले हो तभी तो तुम राधा को भगा कर नहीं ले जा सके अन्यथा तुम भी कह सकते थे आखों में दो आँसू भर कर "राधा मैं तुमसे व्याह करना चाहता हूँ। यह संसार भले ही नहीं हमारे व्याह के

बराती ये चाँद और सितारे होंगे । हमारे मिलन की साक्षी यह धरती और आकाश होंगे । लेकिन तुम्हारा प्यार ये सब कुछ भी नहीं जानता । वह भी तुम्हारी तरह भोला है ।......मगर इस तरह मिट जाओगे तो तुम्हारी मौत भी बेमिसाल कहलायेगी ।......बनो विद्रोही मृत्यु को देख कर पलायन मत करो ।

"मोहन......"

"राधा"

"राधा,......राधा" ठाकुर ने गरज कर कहा—"गाँव का ठाकुर गाँव वालों का पिता होता है, उसकी इज्जत होती है और तुम......उसकी इज्जत से खेलना चाहती हो ।"

"घर का भेदी लंका ढाहता है ठाकुर साहब, भूमि का राजा प्रजा से बैर नहीं करता, सागर का मालिक पानी से संघर्ष नहीं करता ।"—न जाने कौन सी प्रेरणा से प्रेरित हो कर राधा बोल रही थी । आँखों के आँसू प्यार का प्रणाम दे रहे थे ।

"राधा ! यह सांप का बेटा है ।"—ठाकुर ने कहा । राधा ने चारों ओर देखा वहशी दरिन्दे खड़े थे ।

"फिर कुचलते क्यों नहीं ?

"राधा..."

"दुश्मन हमेशा सांप हुआ करते हैं ।"

राधा के पल पल परिवर्तन से मोहन नितान्त अभिज्ञ रहा फिर भी एक घृणा उसके हृदय में पैदा हो गई थी ।

"झुम्मन !"--ठाकुर ने कहा—"इसे खोल कर बैलगाड़ी के पहिए के नीचे दे कर मारो, उसका भेजा कुचल डालो ।"—ठाकुर ने अट्टहास करते हुए कहा ।

राधा सिहर उठी ।

पथरा सी गई ।

फिर उसके आगे मोहन के कुचले मुख का दृश्य घूम रहा था—सलोने चाँद-सा मुखड़ा कुचला जाकर कितना भयानक और बीभत्स हो गया है ।

राधा चीख उठी । कड़क कर बोली—"मोहन! तो लो यह छुरा...कटार......।"

सारे लोग बस खड़े के खड़े ही रहे ।

मोहन ठाकुर पर झपट पड़ा । वह कहे जा रहा था—ग़रीबों की खून से अपने मर्यादा की रक्षा करने वाले कमीने आखिर इस विवश और सुप्त खून में उबाल आ ही गया ।

रक्त की धारा शान्त गति से धरती पर पड़ रही थी । सौन्दर्य का शैतान, मानवता का दुश्मन तड़प रहा था ।

लेकिन आज भी मोहन राधा और प्रेरणामय डाकिया संसार के चप्पे चप्पे में भ्रमण कर जीवन की दो तसवीरें बता रहे हैं—इन्सानियत की और हैवानियत की, सौन्दर्य की और शैतान की, स्वर्ग की और नरक की ।

—यादवेन्द्रनाथ शर्मा 'चन्द्र'

बीकानेर

◆

मैं देख फूलों को हँस रहा हूँ,
वे देख काँटों को रो रहे हैं ।
भला जो हँसने से समझें रोना,
तो उनकी किनमें शुमार होगी ॥

हैफ़ा के सामने

प्रातः पौने पाँच बजे ही नींद खुल गई, उठा, मुँह-हाथ धोया और लिखने बैठ गया। पिछले दो दिन सिवा पत्रों के अपनी दिनचर्या प्रायः नहीं ही लिख पाया था। जब जहाज़ बन्दर में पहुँचता है तब एक अजब उथल-पुथल सी मच जाती है, दोनों में, बन्दर के निवासियों कर्मचारियों में भी, यात्रियों खलासियों में भी, चाहे परिणाम में कुछ न हो पर एक अजब तेज़ी, जिज्ञासा, सक्रियता उमड़ पड़ती है।

उसीसे मैं भी आक्रान्त हो गया था। और पिछले दोनों दिन एक प्रकार से निष्क्रिय बीते थे। मैं सुबह ही पिछले दो दिनों की आपबीती लिखने बैठा। लिखा और काफ़ी लिख गया। लिखना समाप्त कर स्नानादि से निवृत्त हुआ और कपड़े पहन—एक पैन्ट और और बुशशर्ट डाल--डेक पर पहुँचा। डेक सूना था। लोग निकले जरूर थे, तभी उनकी जूतियों की आवाज़ नीचे से सुन पड़ी थी। पर अब वे अपने केबिनों को लौट गये थे।

मैं खड़ा रहा। यह भू मध्य सागर है, मेडिटेरेनियन सी, प्राचीन संसार के बीचो बीच जिसकी स्थिति कभी मानी जाती थी और उस भ्रम के दूर हो जाने पर भी जिसकी वही संज्ञा आज भी प्रचलित है। देखा दूर तक हलके नीले रंग की जलराशि गुम सुम पड़ी है, गुम सुम क्योंकि उसमें एक भी कहीं लहर नहीं। जहाज़ इसी से जरा जुम्बिश नहीं खाता। समुद्र का इतना चुप रहता कभी न देखा था। शान्त भू मध्य सागर कहीं हिलता तक न था। लगता था कि आक्षितिज नीलाभ जल की किसी ने चादर फैला ही है।

और लगता था, आकाश मण्डल मानों उसके ऊपर अपनी छाया डाल रहा है। श्रीमती राका की एक पंक्ति याद आई--'अम्बर ने मही धरा पर डाली छाती की छाया'—पर, हाँ, यहाँ धरा न थी सुषुप्तनिर्वात अम्बुधि था। धरा दूर तक कहीं न थी, वैसे ही जैसे अरब सागर पर कहीं नहीं थी, और एक बार फिर जहाज़ ऐसे समुद्र पर चल रहा था जिसके ओर-छोर कहीं दिखाई नहीं पड़ते थे। जहाज़ अरब सागर की भाँति उसकी धरती पर हल भी यहाँ नहीं चला रहा है। चुपचाप जैसे छलकता जाता है, अविराम, अविकल। ऊपर व्यापक आकाश है, नीचे अगाध सागर और बीच में हमारा जहाज़ अकेला। क्षितिज तक नज़र फैलाने पर भी कुछ दिखाई नहीं पड़ता। आकाश और सागर के बीच कहीं-कहीं सफ़ेद बादल के चिटके टुकड़े आवारा फिरते हुए दिखाई पड़े और तत्काल मित्रवर रामनरेशजी त्रिपाठी के 'पथिक' की पंक्तियाँ मूर्तिमती हो गईं—

"नीचे नील समुद्र मनोहर ऊपर नील गगन है
घन पर बैठ बीच में विचरूँ यही चाहता मन है।"

इस भू मध्य सागर ने चिरकाल तक मानव प्रयास और प्रगति का साक्ष्य किया है। इसके तट पर महान् प्राचीन सभ्यताओं का जन्म, विकास और निधन हुआ है। इसी से संभवतः इसे कुछ कहना शेष न रहा। जिसमें ज़र्फ़ अधिक होता है उसमें शब्द की इतनी महिमा नहीं होती। भू मध्य सागर का कृतित्व असाधारण है।

इसीके दक्षिणी तट पर उस मिस्री सभ्यता ने आज से प्रायः सात हज़ार वर्ष पहले आँखें खोलीं जिसके अभ्रंलिहाग्र शिखर आज भी बियाबाँ में एक रहस्य-सा छिपाये खड़े हैं यद्यपि अपने भीतर का भेद उन्होंने कब का खोल कर बाहर कर दिया है। इसी सागर में उस प्राचीन क्रीट की राजधानी क्नोसस अवस्थित थी जिसका इतिहास गतनृपति मिनोस अपने स्वर्गभार से प्रसिद्ध हो गया है और जिसके नाम ने प्रसिद्ध मिनोअन सभ्यता को आज से प्रायः पाँच हज़ार वर्ष पूर्व सनाथ किया था। प्रायः तभी इसके उन फिनीशी माँझियों ने चतुर्दिक् व्यापार का राज्य स्थापित किया था जिनकी लिपि ने पिछली अनेक सभ्यताओं की कहानी लिखी। इसी फिनीशी संस्कृति का नेता सागर के दक्षिणी तट पर कार्थेज के नाम से ई० पू० ८०० के लगभग ही खड़ा हुआ जो तत्कालीन संसार का सबसे बड़ा और सम्पन्न नगर था और जिसके लाड़ले सेनापति हैनिबल ने स्पेन, दक्षिण फ्रान्स और इटली को रौंद डाला, यद्यपि वह

अपने उसी विजय-विस्तार में ज़ामा के प्रसिद्ध युद्ध में कार्थेज के साथ ही मिट गया। इसी सागर के पूर्ववर्ती तट पर इब्रानी जातियों की सभ्यता खड़ी हुई। बाइबिल के यहूदी और इस्माइली यहीं जेरूसेलम में कनान और फिलिस्तीन में बसे; जहाँ हज़रत मूसा के साथ मिस्र से आए नरपुंगवों ने उस जूडिया का विस्तार किया; जहाँ के स्वतन्त्र विचारकों ने पहले पहल धनियों के विरुद्ध गरीबों की आवाज़ उठाई, यही वह उत्तरी तट है, उत्तरी तट का पूर्वी प्रसार, जहाँ डोरियन ग्रीकों ने उत्तर पूर्व से आ कर क्रिटनों को बरबाद कर दिया और मिकीनियन सभ्यता त्रास के साथ ही खो गई, वहीं ग्रीकों ने अपनी वीरता और ज्ञान का परिचय के उस सभ्यता की नींव डाली जिसका सारा यूरोप आज ऋणी है, उस सागर पर काल क्रम से रोम ने अपनी शक्ति बढ़ाई और कार्थेज को नष्ट कर सभ्य जगत् पर अपना साम्राज्य कायम किया। मिस्र के तट पर इसी सागर में सिकन्दरिया का वह बन्दर बना जो आज भी जीवित है और जो कभी सुन्दरी क्लियोपात्रा की विलासिता का केन्द्र था। इसी के पूर्वी तट से थोड़ी ही दूर पर कालान्तर में उस क्राइस्ट ने अपने उपदेश किए जिसका धर्म आज संसार में इतना जनप्रिय हो रहा है। इसी सागर के उत्तरी कोना में वह वेनिस का नगर बसा है जो एक बार मध्यकाल में भू मध्य-सागर की तटवर्ती भूमि पर अपना साम्राज्य खड़ा कर चुका है। उसी सागर के वक्ष पर हमारा जान बाके चुपचाप चला जा रहा है—फिलिस्तीन के बन्दरगाह हैफ़ा की ओर।

पोर्ट सैयद से हैफ़ा लगभग १६५ मील है, उत्तर-पूर्व की ओर। सागर तट पर स्वेज-नहर की बाईं ओर पोर्ट सैयद है। प्राचीन काल में, जैसा आज भी है, मिस्र और फिलिस्तीन मिले हुए थे। इसी से मिस्री राजाओं का फिलिस्तीन और दजला-फ़रात का द्वाब और बाबुली तथा ईरानी राजाओं (ग्रीक और रोमन भी) का मिस्र जीतना इतना आसान हो गया था। बन्दर (नहर) की बाईं ओर पोर्ट सैयद है और दाहिनी ओर से उत्तर-पूर्व की ओर १६५ मील चल कर जहाज हैफ़ा पहुँचता है।

सुबह जब डेक पर गया तब हम उत्तर पूर्व की ओर जाते हुए मालूम पड़े, सूर्य को दाहिने छोड़ते हुए। पर तीसरे पहर हम सीधा पूर्व की ओर जा रहे थे क्योंकि सूर्य प्रायः पीछे हो गया था। आशा थी कि हैफ़ा ६ बजे शाम के लगभग पहुँच जाएँगे। तीसरे पहर ही बाइबिल-प्रसिद्ध कारमेल पर्वत और उसकी श्रेणी दिखाई पड़ने लगी। यह पर्वत प्रायः बारह मील की शृंखला बनाता समुद्र के तट में घुस पड़ा है। इसकी ऊँचाई करीब ११०० फ़ीट है। चार बजे ही जब यह दिखाई पड़ा इसके शिखर और ऊपरी प्रसार पर सफ़ेद मकानों की कतारें ऊपर नीचे दिखीं। बाइनाकुलर से जो देखा तो जान पड़ा कि एक विशाल नगर दूर तक पर्वत की ऊँचाई से नीचे तट तक उतरता पड़ा है। पूछा तो मालूम हुआ कि हैफ़ा यही है।

धीरे-धीरे अँधेरा होने लगा और जैसे-जैसे अँधेरा बढ़ा हजारों लाखों बल्ब ऊपर से नीचे पर्वत पर झिलमिलाने लगे। प्रायः १५ मील दूर से ही वे चमकने लगे थे। फिर हमने वह दृश्य देखा जो जीवन में कभी नहीं देखा था। लाखों की तादाद में विद्युत्प्रकाश पर्वत की ढाल पर इतने सुन्दर लग रहे थे कि उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। मैं नगर की यह छवि देख कर दंग रहा गया। शिमला भी सुन्दर लगता है और सामने से उसके बल्ब भी ऊपर नीचे आकाश के तारों से प्रतीत होते हैं पर वह नगर अभाग्यवश समुद्र से नहीं देखा जा सकता। हैफ़ा की छटा अद्भुत है। उसके बल्ब ऐसे लगते हैं जैसे अंधकारमय पृष्ठभूमि में जड़े अनन्त-अनन्त हीरक, अनन्त-अनन्त रत्न स्फटिकवत चमक रहे हों!

देर तक डेक से नगर की छटा देखता रहा। मैं भी और अन्य सहयात्री भी। कुछ देर के बाद देखता हूँ कि जहाज़ की गति बन्द सी होती जा रही है। फिर एक कर्मचारी से ज्ञात हुआ कि चूँकि पाइलट बन्दर से नहीं आया (उसका आना बन्दर में प्रवेश करने की अनुमति है) हमें यहीं बन्दर से प्रायः दो मील की दूरी पर लँगर डाल कर रात बितानी होगी। फिर याद आया कि प्रातः ही जहाज़ पर सभी प्रकार के वांछित-अवांछित व्यक्तियों की भीड़ लग जाएगी तड़के ही उठना पड़ेगा।

इसलिए भी कि सबकी इच्छा जेरूसेलम जाने की है और मेरी तो इच्छा पोर्ट सैयद में तट पर न जा सकने के कारण प्रतिज्ञा में बदल चुकी थी। हाँ यह तभी हो

सकता है कि वहाँ जाने की अनुमति अधिकारियों द्वारा मिल जाय। उस सब का प्रयत्न करना है, इससे जल्दी सो जाना अच्छा है। यह विचार कर के दिन चला आया। आज के सम्बन्ध में कुछ लिखना बाकी था। अब तक लिखता ही रहा हूँ। प्रायः दो पृष्ठ आध घण्टे में लिखा है और सोने की तैयारी की सोच ही रहा था कि याद आई कि ब्रेजिल की राजधानी रायो डि जेनेरो की एक आवश्यक पत्र लिखना है। अब वह पत्र टाईप करके ही सोऊँगा। जिसमें उसे और हिन्दुस्तान जानेवाला पत्र जो कल लिखा था, एक साथ डाक में छोड़ने के लिए कल साथ ही प्रातः दे सकूँ। (३–१०–'५०)

आज अक्तूबर की चार तारीख है और हम हैफ़ा में हैं। परन्तु अभी तक हम किनारे नहीं पहुँच सके, जहाँ पिछली रात लँगर डाला था वहीं खड़े हैं। ऊपर डेक पर जो गया तो देखता हूँ कि हम बिलकुल वहाँ भी नहीं हैं, कुछ आगे और हट कर नगर के और पास आ गए हैं। पर नगर दिखाई नहीं पड़ता, कुहरे की एक मोटी चादर से ढका हुआ है, जैसे बादल की एक मोटी दीवार खड़ी कर दी गई है।

कुछ भी देख नहीं सकते, न नगर, न नगर की पृष्ठ-भूमि पर्वत की ढाल, न बन्दर में खड़े बड़े जहाज़। जहाँ रात लाखों झिलमिलाते तारों से पर्वती ढाल टाँके हुए थी वहाँ इस समय प्रातः केवल दूध सी पर कुछ धूमिल कुहरे की दीवार है और न हम वहाँ की चहल–पहल देख पाते हैं न मकानों या पहाड़ की चोटियाँ।

नौ बजे के बाद कुछ जुम्बिश हुई, जहाज़ कुछ हिला। चारों ओर हड़हड़-पड़पड़ होने लगी और देखते ही देखते लंगर उठ गया। सूरज के निकलने से भाप के बादल पिघल गए थे और शहर उसकी किरणों में चमक उठा था, सुबह का ताज़ा शहर, सोकर उठा जमहाई लेता अंगड़ाता शहर जिसका मुँह देख जहाज़ अपना शकुन बनाते हैं, अपने शुभ दिन का आरम्भ करते हैं।

जहाज़ सरका, क्योंकि पाइलट आ गया था और उसने जान बाके को बन्दर में दाखिल होने की इजाज़त दे दी थी। बाईं तरफ़ उस जहाज़ के मस्तूलों को छोड़ते हुए, जो कुछ दिनों पहले लड़ाई के समय डूब गया था, उस बाँध के पीछे की ओर चले जहाँ जाने को रात से ही मन मँडरा रहा था। जहाज़, जिन्हें बन्दर में घुसने की अनुमति मिल जाती है, इसी बाँध के पीछे खड़े होते हैं। अब भी वहाँ अनेक जहाज़ सैनिक सौदागर यात्री, सभी प्रकार के खड़े थे। हमारे जहाज़ के लिए भी जगह कर दी गई थी और अपने नियत स्थान पर जाकर खड़ा हो गया।

लोग आने लगे, पाइलट, उसके सहकारी, अन्य कर्मचारी, पुलिस, जहाज़ के एजेण्ट, सभी जहाज़ पर आ गए। पुलिस ने हमारे पासपोर्ट देखें और बताया कि हमें फ़िलिस्तीन घूमने की अनुमति मिल जाएगी। इस संवाद ने हमें अत्यन्त पुलकित कर दिया। पिछले दो सप्ताहों से निरन्तर यह इच्छा बनी रही थी कि इधर की ही यात्रा में एक बार जेरूसेलम, बेथेलहेम, नज़ारथ आदि देखने को मिल जाय तो बड़ा अच्छा। और इधर पोर्ट सैयद से हैफ़े के १६५ मील के रस्ते का तो घण्टा घण्टा इस स्वप्न में ही बीता था। वही स्वप्न अब सत्य होता जान पड़ा। यह बड़े आह्लाद का कारण हुआ।

मेरे साथ एक दिक्कत और थी। मेरे पासपोर्ट में रूस और फ़िलिस्तीन के नाम दरज न थे। रूस जाने की इजाज़त तो उत्तर प्रदेश की सरकार ने ही देनी अनुचित समझी थी पर फ़िलिस्तीन का पासपोर्ट पर दर्ज होना ग़लती से रह गया था। वह ग़लती स्वयं मेरी थी। उसमें तुर्की, इराक़ और मिस्र के नाम तो है पर लेबेनान, सीरिया, इज़रेल (इस्राइल) और ट्रान्सजार्डन के नहीं। और पासपोर्ट में छपा है कि फ़िलिस्तीन के लिए अलग और स्वतन्त्र वीज़ा चाहिए साथ ही पासपोर्ट भी जिनके बिना प्रवेश नहीं हो सकता। इसने मेरे लिए एक सर दर्द पैदा कर दिया था। और जब तक अफ़सर पासपोर्ट देखता रहा मेरे मन में एक अजब बेचैनी और परेशानी बनी रही।

मैंने उससे पूछा—'फ़िलिस्तीन के ऐतिहासिक या धार्मिक स्थानों को क्या हम जा सकेंगे?'

उसने कहा—'हाँ, आप लोगों के पासपोर्ट दफ्तर में रख लिए जाएँगे और इनकी जगह पास मिल जाएँगे। जब आपका जहाज़ जाने लगेगा तब आप पास लौटा कर अपने पासपोर्ट वापस ले लेंगे।'

बड़ी शक्ति मिली और यह निश्चित हो गया कि हम इस्राइल में जहाँ चाहें घूम सकेंगे। अफ़सर पासपोर्ट

लेता गया और थोड़ी देर में पास भी जहाज़ पर आ गए। साथ ही यह सुना कि जहाज़ इस बाँध और जेटी के बीच न रहकर बिलकुल जेटी या शहर की तट से लगी सड़क से लगा दिया जायगा। इससे किनारे जाने में और आसानी हो जायगी वरना श्री जेम्स को केमरों के पासों के लिए जहाज़ से जेटी तक मोटर बोट से जाना पड़ा था तो एक एक ओर का एक एक डालर भाड़ा लग गया था, महज़ आधा फर्लांग पानी लाँघने के लिए।

कहाँ तो जहाज़ रात भर समुद्र में मीलों दूर बन्दर की झिलमिलाती बत्तियों को ताकता खड़ा रहा था और कहाँ अब उसको सुविधा पर सुविधा मिलने लगी थी। इसका एक विशेष कारण है, इस्राइल को छोड़ मध्यपूर्व के सारे राज्य अरबों के हैं। ईराक़, मिस्र (उत्तरी आफ्रिका), सीरिया, लेबनान, ट्रान्सजार्डन, यमन, अरब सभी। अकेला इस्राइल यहूदी है। सारी अरबी रियासतें एक ओर हैं इस्राइल अकेला है। अभी हाल तक उनमें लड़ाई होती रही है और अब भी भीतरी लड़ाई जारी है और किसी दिन भी बारूद में आग भड़क सकती है। अरबी रियासतों और इस्राइल सब में लड़ाई की चर्चा बराबर चल रही है और किसी विदेशी का वहाँ सम्भल कर बात न करना खतरे से खाली नहीं है। बम्बई से चलने के दो चार दिन बाद ही यह बात हमें सुझा दी गई थी और हम मिस्रियों आदि से सिवा मौसिम के कोई बात न करते थे।

जहाज़ का हैफ़ा जाना भी इसी कारण अरबी रियासतों को पसन्द न था। मिस्र इन रियासतों का अगुआ है इससे उसे जहाज़ों का विशेषकर गल्ला ढोनेवाले जहाज़ों का इस्राइल के बन्दरगाह हैफ़ा जाना बिलकुल ही पसन्द नहीं। और चूँकि अन्तर्जातीय उसूलों से बँधे होने के कारण मिस्र उनका इस्रायल जाना या स्वेज़ नहर से गुजरना तो नहीं रोक सकता। पर जहाँ तक हो सके उनका खाना पीना अपने असहयोग से यथासम्भव बन्द कर ही सकता है। उसने भी यह सुनते ही कि जहाज़ हैफ़ा जा रहा है, और माल या गल्ला ले जा रहे हैं उस पर रोक-टोक लगा दी। उसका शहर से खाने पीने का सामान लेना मना कर दिया और पीने का पानी तक न लेने दिया। एक जहाज़ की तो वहाँ पूरी खानातलाशी भी होने लगी और हम भी सहमें कि यदि ऐसा ही हमारे साथ भी हुआ तो यद्यपि हमारे पास कुछ है नहीं पर समय की हानि तो काफ़ी हो जाएगी। किन्तु ऐसा हुआ नहीं और केवल साधारण 'चेकिंग' से ही छुटकारा हो गया। हाँ जहाज़ का नाम 'काली-लिस्ट' पर ज़रूर दर्ज कर लिया गया।

हैफ़ा आने-जानेवाले सारे जहाज़ों के नाम मिस्र में लिख जाते हैं। और वहाँ नाम लिख जाने का मतलब होता है, जैसा ऊपर लिखा जा चुका है, अन्न जल का न मिलना। इससे हमारा वहाँ रुकना भी बेकार था और यद्यपि पुलिस अफ़सर ने हमें गीज़ा और काहिरा जाने की अनुमति दे दी थी, हमने कम से कम इधर की यात्रा में पोर्ट सैयद की ज़मीन पर उतरना मुनासिब नहीं समझा।

गरज़ कि हमारा बान बाके भी मिस्री 'काले लिस्ट' पर दर्ज है। पर भाग्यवशात् हमें उसका लाभ ही हुआ क्योंकि इसी कारण हमें यहाँ हैफ़ा में सुविधाओं पर सुविधाएँ मिलती गईं और हमारा जहाज़ जेटी पर भी आ लगा। बिलकुल उस तट से जो नगर की सागरवर्ती सड़क बन जाती है।

भगवतशरण उपाध्याय
एम. ए.

* * *

ऋत और सत्य उग्र तप से उत्पन्न होते हैं।

—वेद

न्याय

इहीं-हीं-हीं आँ आँ ओं–कमला धाड़ मार कर खड़ी-खड़ी रोने लगी, उसके बाद चिल्लाई "हरामी के बच्चे सुअर।" और फिर धप से बैठ कर सिर थाम लिया–"हे भगवान्! मैं क्या पागल हो रही हूँ?" उसने अपने पीले सुघड़ हाथ को गोरे–किकटे गाल पर रहम से फिराया–" नहीं, मैं पागल नहीं हो रही हूँ लेकिन यह साफ़ है कि धैर्य नाम की वस्तु अब मेरे पास नहीं है। ज़िन्दगी की बंजर-भूमि में इन्सानियत का पौधा सूख गया अब रहा मुरझा, मरा डंठल। उसने एक बार और अपने मुँह पर हाथ फिराया–" ज़रा सी बात थी कि बच्चों ने मेरे रहने की जगह पर पाखाना कर दिया था और साफ़ करने को कहने पर उनकी मातायें झगड़ने लगी थीं। इसीके लिए रोने-चिल्लाने की क्या ज़रूरत थी और असभ्य की तरह गाली तक बक दिया ऐं? मैंने गाली दी है? हाँ मैंने ही जिसका नाम कमला है और जो अपनी सहनशीलता और सभ्यता का अभिमान करती थी?

आज मेरे अभिमान के टूटने पर सभी किस तरह कटाक्षपूर्ण दया दिखा रही हैं? एक दूसरे से फुसफुसाकर कहती हैं–"कमला ने गाली दी है और विचारी धाड़ें मार कर रो भी रही है"। कमला रो रही है–इससे सभी को सुख मिल रहा है? यह सुख कितना घृणित है? लेकिन यही होता है, शराबी, शराबियों को देख कर प्रसन्न होता है जुआरी-जुआरी को और दुःखी, दुःखी को देख कर सन्तुष्ट होता है। साधारण औरतों की तरह आज मैं भी अपनी दुःख दैन्य परेशानी पर चीखी चिल्लाई हूँ; दूसरों को कोसा है इसमें उन्हें आनन्द आया है, जिन्हें नित्य अपने जीवन में इस तरह का काण्ड करना पड़ता है। बात यह तनिक सी है यह भी क्या कोई सोचने जैसी चीज़ है, लेकिन मेरे जैसा मनुष्य का कितना बड़ा पतन है?

हाँ मेरे जैसा मनुष्य का? मैं क्या कुछ औरों से भिन्न हूँ! असाधारण हूँ? ऊँह, असाधारण कोई नहीं होता, हाँ, रहन-सहन, शिक्षा–दीक्षा से कुछ भिन्नता होती है, लेकिन जब रहन-सहन जीवन–यापन एक ही तरह का हो फिर आचरण भिन्न कैसे रह सकता है। मुझे जब इन्हीं मरे बैलों के साथ जुत कर लाश घसीटनी है तब इन्हीं की तरह पागुर करना और चीख़ना चिल्लाना भी पड़ेगा। कमला के आंसू सूख गये और मुँह पर मुर्दनी छा गई। उसे लगा कि अब प्राण गए। जैसे उसकी सारी जीवन–शक्ति कोई हाथ लगा कर मरोड़ रहा है। उसने सिर को झटक कर यह अनुभव करना चाहा कि वह जीवित है कि उसकी सारी हरकतें बन्द हो गई हैं? सिर भारी था गर्दन टूट रही थी और हाथ–पैर ऐंठने लगे, वह उठ कर घसीटती हुई बाहर के सहन में आ गई। उसने बिजली के खम्भे का सहारा लिया सामने युवतियों का एक झुण्ड चटकता–किलकता जा रहा था। ये युवतियां उन घरों की होंगी जिनके पास पैसा है और जिन्हें जंगली दंगे की आंच नहीं लगी है और कमला?

उसका अब अपना कहने को रहा क्या? माता–पिता उसके इन्हीं आंखों के सामने भेड़–बकरियों की तरह हलाल कर दिये गये। छोटा भाई मुकेश उसके देखते–देखते पत्थर पर पटक दिया गया और कमला जलती हुई आंख लिये भाग निकली थी। उस दिन ये आँसू कहां थे? क्या मनुष्य का अपना सुख–दुःख ही सब कुछ है, माता-पिता नन्हा प्यारा भाई कुछ भी महत्व नहीं रखता था? उस दिन न कमला चीखी न चिल्लाई न रोई, चुपचाप अपना सती–धर्म बचाने के लिये भाग निकली ताकि मुसलमान गुण्डे उसे स्पर्श न करें।

कमला ने पागलों की तरह दांत पीसे और ये हिन्दू गुण्डे कुल्हड़ भर दूध पर ही जिन्दगी का सारा मज़ा लूट लेना चाहते हैं। कुत्ते लप लप जीभ निकाले फिरते हैं किसी की भूख से पीड़ा से निर्दय खिलवाड़?

पिशाचों के मारे जीना मुश्किल है कितनी स्त्रियाँ गले में फाँसी डाल कर मरेंगी और नहीं मरेंगी तो जीवन की शर्तबन्दी कितनी भयानक है? कहाँ गया सती धर्म जब कि मुट्ठी भर अन्न दो हाथ सिर छिपाने की ज़मीन और चार गज़ कपड़ा पर स्त्रियाँ टके सेर बिक रही है, इसी पुन्य भूमि भारत वर्ष में और धर्म के ठेकेदारों के हाथ ही यह पुण्य कार्य सम्पन्न हो रहा है, ऊपर से धर्म की दुहाई, छिः।

धर्म ? यह तो सीधी लूट है । राजनीतिक पैंतरेबाज़ी है, बहुतों को हलाल कर शोषण और दोहन कर कुछ लोग गुल छर्रे उड़ाते हैं । पाकिस्तान और हिन्दुस्तान के लाखों ग़रीबों को क्या मिला !!!

कमला का गला सूखने लगा, उसने ओठ पर जीभ फिरा कर थूक निगलना चाहा, किन्तु मुँह सूख कर कांटे की तरह हो गया था । वह आज तीन दिन से अल्पाहार कर रही थी और आज सुबह से कुछ भी नहीं खाया था । सड़क के नल पर पानी पीने जाने के इरादे से आगे बढ़ी लेकिन सिर घूम गया वहीं धम्म से बैठ गयी । बाज़ार जाते हुए एक सिपाही ने पास जाकर कहा—"अरे, यह तो बेहोश है ।" सिपाही उत्तर बिहार का था और बिहार के दंगे में उसने मुसलमानों का वध खुले दिल से किया था लेकिन आज शरणार्थी बेहोश कमला को उठाते हुए उसका हाथ कँप गया, उसकी आँखों के सामने वे स्त्रियाँ आ गईं जो इसी तरह घर-बार, बन्धु-बान्धवहीन पाकिस्तान में मारी-मारी फिर रही होंगी, क्या वे भी इसी तरह कहीं बेहोश होती होंगी ! फिर हज़ारों हिन्दुओं ने मुसलमानों का वध क्यों किया था और हज़ारों मुसलमानों ने हिन्दुओं को हलाल क्यों किया था ? क्या इन दुःखी पीड़ितों की आकृति एक ही नहीं है ?

एक ही है । फिर पागलों की तरह एक दूसरे की हत्या करके मिला क्या ? स्वर्ग का सुख और बहिश्त की मज़ा कहाँ अटक कर रह गया ? ग़रीबी, जीवन के कोढ़ में खाज उत्पन्न हो गया ? हाय रे !

कमला होश में आ गई थी, सिपाही ने पूछा—"कौन जात हो ?" कमला ने विरक्ति से कहा "आदमी की जात हूँ, भला दुखियों की भी कोई जात होती है ? और वह सिपाही की ओर देखे बिना रेंगती हुई एक तरफ़ चली गई । सिपाही भी दीर्घ उसांस छोड़ कर दूसरी तरफ़ चला गया । उसका सिर भन्ना रहा था । "आदमी की जात हूँ, भला, दुखियों की भी कोई जात होती है ।" सिपाही ने दोनों हाथ से सिर का नस मसला—"यह लड़की ठीक कहती है, घोड़े के जात के सभी घोड़ा-घोड़ी । गदहा के जात के सभी गदहा और गदही और आदमी जात के सभी आदमी, औरत हो या मर्द । ऐं ? फिर यह हिन्दू, मुसलमान, सिख, पारसी, तुर्क जाने क्या न क्या छप्पन कुड़ी हिन्दू कहाँ से आये ? भत् तेरे की । वह एक फेरीवाले से टकरा गया और गिरा—लेकिन आज उसे किसी से झगड़ने की फ़ुरसत नहीं थी । धूल झाड़ कर एक तरफ़ सिर झुकाए चला गया । कमला उसी तरह रेंगती हुई कई दफ्तरों की खाक छान आई लेकिन शाम होने को आई कोई काम नहीं मिला । कमला बी ए. पास है उसके प्रोफेसर पिता ने काम करके खाने लायक बना दिया है लेकिन काम कहां मिलता है ? साहब और बाबू उसे इस तरह घूरते हैं जिस तरह चील सड़े मांस को घूरा करती है ? क्या आफ़त है प्रीत और प्रणय की सारी सार्थकता इन मांसभोजियों के भक्षण बन जाने में है ! छीः ।

कमला ने चारो तरफ़ देखा वह खुले मैदान में चौपाटी पर खड़ी थी लेकिन उसे लग रहा था कि वह एक ऐसी बन्द कोठरी में बन्द है जहां नाम मात्र को हवा नहीं, चारों तरफ़ सूचिभेद्य दीवार है जिससे उसका सिर भयानक रूप से टकरा रहा है । हाय ! वह मरी-नहीं, उसे जीने का अधिकार है । वह भी मनुष्य की तरह पैदा हुई है उसे वह सब सुख प्राप्त करने का अधिकार है जो मनुष्य सुलभ कर चुका है । कौन उसका गला घोंट रहा है ? किसने जीना हराम कर दिया है ? उन सभी ज़ालिमों से बदला लेगी । निश्चित वह बदला लेगी । वह जीवित रहेगी किसी भी मूल्य पर जीवित रहेगी । किसी भी मूल्य पर !!! जीवित ऊँह, क्या जीवित रहना ही सब कुछ है । लेकिन मर जाने से कौन सी समस्या हल होगी ? हज़ारों स्त्रियाँ मर गई, कमला भी उनमें एक और होगी । नहीं, नहीं, कमला उनमें नहीं होगी ।

शरणार्थियों का एक झुण्ड सेक्रेटरियट की ओर जा रहा था । कमला उनमें जा मिली । शरणार्थी-महकमे के साहब ने बारी-बारी से सभी से कुछ कहा जिससे सभी उत्तेजित थे लेकिन कमला को उसने ऐसा कुछ नहीं कहा, सिर्फ चपरासी को इशारा किया और चपरासी ने उससे कहा—"बगल वाले रूम में बैठिए, साहब आपके लिये बन्दोबस्त कर देंगे ।" बगल वाले रूम में बैठते ही कमला को उसका रहस्य मालूम होगया । इस तरह के कई मौके आए थे उसके इन दो वर्षों के शरणार्थी जीवन में और जिससे वह छलछन्द करके बचती रही थी लेकिन आज उसमें छलछन्द की प्रवृति कतई नहीं थी वह दफ्तर के बाहर निकल आई और पागल की तरह चिल्लायी रोटी दो या गोली मारो,

ज़िन्दगी या मौत। पीछे से झुण्ड में खड़े शरणार्थी सिमट आए और वे भी चिल्लाए रोटी दो या गोली मारो, ज़िन्दगी या मौत। भारतीय प्रजातान्त्रिक सरकार का सिंहासन डगमगाने लगा भूखों के लिये-उसके पास रोटी नहीं गोली ही थी। सरकार के जवाँमर्दों ने बन्दूकें तानी निहत्थे भूखे भारतीय सर्वहारों का वह दल पके फल की तरह ज़मीन पर गिरने लगा। कमला के सिर में गोली लगी और वह मुँह खोले औंधे गिर गई।

दूसरे दिन पूँजीवादी अखबारों ने प्रजातांत्रिक सरकार की सराहना में मोटे-मोटे अक्षरों में निकालाः—

"दिल्ली की मुख्य सड़क पर शरणार्थी धर्मोन्माद में बलवा करना चाहते थे, फलतः गोली चली। उसमें एक लड़की मारी गई जो बलवे को उकसा रही थी।" और कमला के कैम्पवालों ने उसके चार हाथ ज़मीन पर इतमीनान से विस्तरा डाल कर थके पैरों को सीधा करते हुए कहा। "सबेरे बच्चों पर चीख़ रही थी, रो रही थी, इस समय चलती बनी? यही संसार में होता है, गोया। यह सभी कुछ स्वाभाविक था।"

—तारारानी श्रीवास्तव

* * *

सब से महान् पुरुष वे हैं जिनके विषय में कोई कुछ नहीं जानता।

एक मोटरवाला अपनी गाड़ी को बहुत तेज़ चला रहा था। उसे पेट्रोलमैन ने रोक दिया। मोटरवाले ने पूछा—"क्या मैं गाड़ी बहुत तेज़ चला रहा था?"

पेट्रोलमैन ने उत्तर दिया—"नहीं। आप बहुत धीरे उड़ रहे थे।"

ग्वालियर की डायरी

(४)

महाराजा ने ताराबाई को जो अब भी फूलबाग़ में रहती हैं तीस हज़ार रुपए भेजे हैं। वे राजमहल नहीं गईं।

अद्वाजी खाखिया की, जो पुराना सरदार बख़्शी था, मृत्यु हो गई। राजकमल के सामने जो मकान खड़े हैं वे गिरा दिए जाएँगे। इस विषय की राजाज्ञा जारी हुई है। यहाँ का चौक और बाज़ार इन्दौर के नमूने पर बनाया जाएगा।

पूर्व सूचना के अनुसार दीवानजी ने ठाकुर दिनकरसिंह को ग्वालियर का सूबेदार नियुक्त किया है। अब उसने अपने पद का काम भी सम्भाल लिया है।

अगस्त १९५२: सरकार ने फ़क़ीरों को दान देना बन्द कर दिया है। इससे अधिक बचत न होते देख कर दान देने का नियम फिर से लागू कर दिया है।

राजा के महलों से इस वर्ष ३५ लाख रुपए इकट्ठे हुए हैं। लगान की कुल आमदनी इतनी ही है। लेकिन राज्य का खर्च इसके ठीक दूना है। यदि यह २।३ साल तक यही अवस्था रही जो राज्य की क्या हालत होगी?

ताराबाई राजमहल में आई और कुछ दिन रहीं अब फिरने फूलबाग़ लौट गई हैं।[1]

पहले प्रचीन परिपाटी के अनुसार राजसेवकों को श्रावण के दिन नक़द रुपए मिलते थे। अब इस प्रथा को बन्द कर कुछ बचत की गई है।

इस वर्ष महाराजा दशहरा जैसी शान शौक़त के साथ मुल्ला मुहम्मद गौस ग्वालियरी की दरगाह पर मेला देखने गए। नगर में चर्चा है कि बहुत दिनों के बाद महाराजा इस तरह के शान शौक़त वाले जुलूस में सम्मिलित हुए।

ऐसा सुना जाता है कि गोविन्दराव फलसियावाला चम्बल पार देश के बाहर भेजा जाने वाला है।

ऐसा कहा जाता है कि भूतपूर्व दीवान रघुपन्तजी पर ७०,०००) राज्य का ऋण है। ज्यों ही यह रुपया वसूल हो जाता है उन्हें लश्कर से बाहर चले जाने के लिए कहा जाएगा।

ऐसी आशा है कि सरकार तम्बाकू, अफ़ीम और शराब पर कर बढ़ा देगी और अन्य वस्तुओं पर से कर कम कर दिया जायगा।

बनारस से दादा ख़ासजीवाला के सम्बन्धियों ने दरबार को सूचित किया है कि वे शीघ्र ग्वालियर के लिए रवाना हो रहे हैं।

बाबा आप्टे एजेण्ट से मिलने झाँसी गए थे। अपना काम पूरा कर वे लौट आए और मालवा जाने की तैयारी कर रहे हैं।[2]

भूतपूर्व दीवान रघुपन्नजी ने खजाने में ५०,०००) जमा कर दिए। और धौलपुर पहुँच कर २२,०००) और देने का वादा किया है। धौलपुर से मथुरा भी जाएँगे। दिनकरराव ने उन पर से ग़बन का मुक़दमा उठा लिया है।

दीवान जी का काम बाबा आप्टे को दे दिया है किन्तु रामचन्द्रराव भाऊ सहायक काम करेंगे।

बाबा आप्टे का खेमा शहर से बाहर होने से बड़ी कठिनाई होती है। बाबा आप्टे गनपतराव भगत के के साथ मालवा आ रहे हैं। शासन सम्बन्धी काम का भार गणपतराव पर होगा।

सुना जाता है कि दीवान रघुपन्तराव ने सरकारी ख़ज़ाने में ७०,००) जमा कर दिया है और अब उनको विदा देने की तैयारी हो रही है। इसी बीच में झाँसी के रईस का पत्र आया है कि दीवान रघुनाथराव पर उसका भी कुछ ऋण है। कभी तक इस विषय में कुछ निश्चय नहीं हुआ है किन्तु जैसे ही कुछ निश्चय होगा हम अपने पाठको को सूचित करेंगे।

---

[1] मालवा अखबार २५ अगस्त १८५२।

[2] पूर्वोक्त समाचारपत्र, ४ सितम्बर १८५२।

गोविन्दराव फलासमा को लश्कर से निकाल दिया गया।

ऐसा कहा जाता है कि महाराजा सीपारी जाकर एजेण्ट से मिलने का विचार कर रहे हैं।

अद्वाजी खाकिया के पुत्र को राजकीय वस्त्र और आभूषण मिले हैं।

एक नर्त्तकी के भाई कल्लू का विवाह हुआ है और सरकार ने विवाह के लिए कई हजार रुपए दिये हैं।[३]

सराम में एक नर्त्तकी की हत्या कर दो सिपाही भाग गये।

पिछले महीने ग्वालियर में अच्छी वर्षा हुई।

सितम्बर १८५२ : अभी तक ताराबाई ने महलों में रहना स्वीकार नहीं किया। हम नहीं जानते कि वे यहाँ रहेंगी या वे शाहजहाँपुर चली जाएँगी। उन्होंने अपनी शर्तें प्रकाशित की हैं।

आन्त्री के लोगों ने सरकार के विरुद्ध, नए कर लगाने के कारण, गहरा असन्तोष प्रकट किया है।

उनका कहना है कि सरकार को ऐसा करने का अधिकार नहीं है। महाराजा ने दीवान को जाँच करने का आदेश दिया है। दीवान दालजी के मामले की सी जाँच कर रही है।

बाबू साहब घोड़पड़े ने सरकार को अपने मुक़दमे का निर्णय करने की प्रार्थना की है[४]। उसको सूचना दी गई है कि जैसे ही ताराबाई का निश्चय हो जाए उसके मुक़दमे का भी निर्णय कर दिया जाएगा।

बाबा आप्टे को पाँच पर्चे की ख़िलअत (राजकीय वस्त्र) और दो बहुमूल्य आभूषण प्रदान किए गये हैं। उन्होंने मालवा के लिए प्रस्थान किया।[५]

गजाबाई साहिबा और मुन्ना राजा उज्जैन २५ सितम्बर को उज्जैन गये। ऐसा कहा जाता है कि दशहरा के पश्चात् महाराजा भी वहीं जाएँगे। उज्जैन में अनेक उत्सव होंगे।

बाबा आप्टे ग्वालियर से इन्दौर के लिये चल पड़े जहाँ उम्मीद है वह शीघ्र ही पहुँच जाएँगे।

बाबा हिन्दूराव को दशहरा के पहले लश्कर लौट आने को कहा गया है। हैदरखाँ वकील के लड़के को उन्हें अगवानी कर लाने के लिए भेजा गया है।

दीवान दिनकर का वेतन बढ़ा दिया गया है और अब उन्हें ५०००) प्रतिमास मिलेगा। बलवन्तराव को झाँसी का भार सौंपा गया है।

महाराजा ने एजेण्ट से प्रार्थना की है कि उनकी पुरानी तोपें ले ली जाँए और उसके बदले में ग्वालियर के किले में जो तोपें हैं दे दी जाँए। ग्वालियर किले की तोपें अच्छी हालत में हैं, मज़बूत और काम के योग्य हैं।[६]

बाई साहिबा बीमार थीं। अब वे अच्छी हैं महाराजा के उज्जैन आने की ख़बर सुन कर वे बहुत प्रसन्न हो रही हैं।[७]

हम मुन्ना राजा और गजाबाई के आगमन की सूचना पहले दे चुके हैं।

महाराजा की तबीयत अच्छी नहीं हैं और आजकल लग्न भी अशुभ है इस लिए बाई साहिबा का प्रस्थान स्थगित कर दिया है। महाराजा की आँख में फोड़ा हुआ है।

राज्य के प्रसिद्ध रईस और देशमुख बाबा साहब सातोवेला की मृत्यु हो गई।

बाबा हिन्दूराव को लाने के लिए एक सौ सवार भेजे गए हैं।

बैजाबाई के सेक्रेटरी बापूजी साहब भगवन्त चले गए। ज्योतिषी नाना को दूसरी बार देश से निकाला गया है।

५ ज़िलहाज को महाराज बहुत बीमार हो गए। उस समय सभी अफ़सरों ने सारी रात उनकी सेवा में व्यतीत की।

---

[३] पूर्वोक्त पत्र, ८ सितम्बर १८५२।

[४] पूर्वोक्त पत्र, १५ सितम्बर १८५२।

[५] पूर्वोक्त अख़बार २५ सितम्बर १८५२।

[६] ,, ,, ६ अक्तूबर १८६२।

[७] पूर्वोक्त अख़बार ६ अक्तूबर १८५२।

[८] पूर्वोक्त : १३ अक्तूबर १८५२।

अक्तूबर १८५२ : दीवान जी राज्य का खर्च घटाना चाहते थे । अब उनको खर्च ६७ लाख से ४२ लाख लाने में सफलता मिली है । उज्जैन के सेठ घासीराम के पुत्र की जिसका पाँच महीने पहले विवाह हुआ था, मृत्यु हो गई ।

एक दिन महाराजा स्कूल देखने गए । यहाँ उन्होंने सिर्फ स्कूल ही नहीं देखा किन्तु बच्चों की परीक्षा ली और पुरस्कार भी दिए ।

सरकार से अजमेर के मीरजादा को ५००) मूल्य की ख़िलअत मिली ।[८]

महाराजा की तबीयत अच्छी हो रही है । केवल कुछ ही दिन पहले उन्हें बुख़ार हो गया था ।

बाबाजी पाटनवीस महाराजा से मिलने आए । उनको पाँच पर्चे का राजकीय वस्त्र और आभूषण प्रदान किए गए ।

बाबा हिन्दूराव की अगवानी करने के लिए कुछ लोग भेजे गए हैं । इस समय तक वे लश्कर में आ गए होंगे ।

हम पहले सूचना दे चुके हैं कि दीवानजी का वेतन बढ़ा दिया गया । किन्तु झांसी स्थित एजेन्ट ने उस पर अपनी स्वीकृति नहीं दी । इसलिए जितना वेतन उन्हें मिलता है उससे अधिक नहीं ले सकते ।

बाई साहिबा का सेक्रेटरी चला गया । जौरा और गुलशनाबाद का नवाब आज सबेरे यहाँ पहुँचा है ।[९]

महाराजा हिन्दूराव १२ अक्तूबर १८५२ को आगरा पहुँचे और खण्डरी बाग़ में ठहरे हुए थे ।

उज्जैन : बाई साहबा का सेक्रेटरी चला गया । आज जौरा के नवाब उज्जैन आए हैं और आशा है कि वे कल इन्दौर के लिए प्रस्थान करेंगे ।[१०]

मेजर मैलकोम और ब्रशबी बहादुर ग्वालियर पहुँचे । उन्होंने महाराजा बहादुर और ताराबाई साहिबा से मुलाकात की । गजाबाई साहिबा ने अपना उज्जैन जाना स्थगित कर दिया ।

बाबा आप्टे इन्दौर जाना चाहते थे । उनका सामान भेजा गया लेकिन उनका स्वास्थ्य अच्छा न होने के कारण उन्होंने जाना स्थगित कर दिया ।

जौरा के नवाब उज्जैन छोड़ इन्दौर गए । उन्होंने बाई साहिबा से मुलाक़ात की और पांच अशर्फ़ियाँ भेंट में दीं । बाई साहिबा ने उसको पांच पर्चे का राजकीय वस्त्र और आभूषण दिए ।

बाई साहिबा दुःखी और उदास हैं क्योंकि महाराजा ने अपना उज्जैन आना स्थगित कर दिया ।

आम तौर से असलाहदारों के वेतन में से १० दिन का वेतन ले लिया जाता था । अब इसी कारण उन्होंने अपना वेतन लेना स्वीकार नहीं किया ।

नवम्बर १८५२ : ताराबाई के विषय में अभी तक कोई निर्णय नहीं हुआ । अब उनके साहूकार उनको रुपए के लिए कड़े तकाज़े कर रहे हैं । यदि ऐसी हालत रही तो वे शाहजहाँपुर लौट जाएँगी ।[११]

नरूर के इलाके में, एक गढ़ी के ज़मींदारों ने विद्रोह किया और सरकारी लगान देने से इनकार किया । उनको दण्ड देने के लिए फ़ौज की दो टुकड़ियाँ, २ तोपें और १०० सवार भेजे गए हैं ।

जब बाबा हिन्दूराव लश्कर में पहुँचनेवाले थे, तो महाराजा चार पाँच सभासदों के साथ १० मील घोड़े पर गए और उनकी अगवानी की । वे बाबा हिन्दूराव को महल के प्रांगण में लाए और उन्हे हीरक हार जो स्वयं पहने हुए थे और अपनी कमरबन्द भेंट दीं । बाबा हिन्दूराव जैकोब की कोठी में ठहरे है ।

मौलवी महम्मद नासिर साहब जो रेज़ीडेन्सी के मीर मुंशी हैं अदालत के अस्थाई जज बनाए गए हैं । अब सुना जाता है कि सभासदों और दूसरे लोगों ने पोलिटिकल एजण्ट से प्रार्थना की है कि उन्हें दीवानी और फौज़दारी का प्रधान न्यायाधीश बना दिया जाए और १५००) वेतन दिया जाए । उन लोगों ने अपने आवेदन में यह भी लिखा है कि जब वे अवकाश ग्रहण

---

८ पूर्वोक्त : १३ अक्तूबर १८५२ ।

९ ,, समाचारपत्र २७ अक्तुबर १८५२ ।

१० पूर्वोक्त समाचारपत्र १८ नवम्बर १८५२ ।

११ पूर्वोक्त समाचारपत्र, ८ नवम्बर १८५२

करें तो उन्हे ५००) की पेन्शन दी जाय। हम नहीं जानते कि एजण्ट ने क्या फैसला किया है।

महाराजा पूर्ण स्वस्थ हैं।[12]

मीर मुंशी अदालत का काम बहुत सन्तोषजनक ढंग से चला रहे हैं।

बलदेवसिंह हवालदार के जिम्मे फ़ौज की जो टुकड़ी थी उसका भार बलवन्तराव जी झाँसी वाले को दिया गया है।

महादेवराव अम्भाजी की बीमारी के कारण, नरुर के सूबे का भार संभालने के लिये, उनके स्थान पर गोविन्दराव नियुक्त हुए हैं।

ताराबाई के विषय में अब भी कोई निर्णय नहीं हुआ। और कोई नया समाचार नहीं है।

दिसम्बर १८५२ : हकीम शेख़ हवीबुल्लाह के घर में, जिनके पूर्वज धौलपुर सरकार की सेवा में थे, उन्हीं के नौकर द्वारा चोरी हुई। अभी तक उनकी वस्तुओं का पता नहीं चला।[13]

महाराजा दौरे पर हैं। जब वे दीवान के साथ नरुर पहुँचे, दीवान एक दुर्घटना में आहत हुए। वे अपने घोड़े से गिर पड़े और उनकी उनके हाथ में गहरी चोट लगी।

ताराबाई ने जो शाहजहाँपुर जानेवाली थीं, अब अपना वहाँ जाना स्थगित कर दिया।

ऐसी अफ़वाह है कि सिपाही लोग विद्रोह करने का षड्यन्त्र कर रहे थे।

आजकल बाबा हिन्दूराव का महाराजा पर विशेष प्रभाव है दीवान जी बाबा हिन्दूराव में अब भी नहीं बनती है।

मौलवी नासिर अदालत की देख भाल कर रहे हैं। उन्हें १५००) मासिक वेतन मिलता है। वे रामपुर के रहनेवाले हैं।[14]

उज्जैन—पिछले मंगलवार को रेजीडेण्ट अपने अफ़सरों के साथ उज्जैन पहुँचा। आपा साहब पाठणकर अपने कुछ सभासदों के साथ उसकी अगवानी के लिए गए। तीसरे पहर दरबार हुआ। सभी सरदार उपस्थित हुए। रेज़ीडेण्ट बाई साहिबा से मिला।

रेज़ीडेण्ट २६ दिसम्बर तक रहने के बाद २७ दिसम्बर को उज्जैन से प्रस्थान करेंगे।

मन्दिर में पूजा महोत्सव के उपलक्ष में कई दिनों तक दो हजार ब्राह्मणों को भोजन कराया गया। इनमें से ३२ ब्राह्मणों को १००), १६ को ५०) और १६ को ५०) प्रत्येक साधरण पुरुष ब्राह्मण को ५) और ब्राह्मणी को १) तथा बच्चे को आठ आना दक्षिणा में मिले।

हमारी पूर्व-सूचना कि ताराबाई सीपरी चली गई, असत्य सिद्ध हुई। उन्होंने अभी तक जाने का निश्चय नहीं किया है। केवल इतना निश्चित है कि वे यहाँ रहना नहीं चाहतीं और जाने के लिए तैयार हो रही हैं।

बुन्देलखण्ड के एण्जेट एलिस साहब पहाड़ से अपने स्थान को लौट आए। उनके स्थान पर जो अफ़सर काम करता था चला गया।

महाराज बहादुर ईसागढ़ से मलण्डे और सहायक एजेण्ट के साथ शीघ्र ही ग्वालियर पहुँचने वाले हैं।

जिन असलाहदारों ने अपना वेतन नहीं लिया था अब कष्ट का अनुभव कर रहे हैं। उन लोगों ने एक मनुष्य को अपना प्रतिनिधि बनाकर महाराजा के पास भेजा है।

मौजा चंखूटी और शावाद इलाके के गाँवों के जमींदार कुछ स्त्रियों के पीछे आपस में लड़े। उनको गहरी चोट आई। उनमें से १७ को गिरफ्तार कर सूबेदार मालवा के सामने उपस्थित किया गया।

आजकल अदालत दीवानी और फौजदारी के मुकदमे तेज़ी से देख रही है। थोड़े समय में ही २०० मुकदमों का फैसला हुआ और ५०००) सरकारी ख़ज़ाने में जमा हुआ। तारावाई ने फौजी की दो टुकड़ियों को निलम्बित कर दिया और उनकी जगह पर नए जवान भर्ती किए।

---

[12] ,, ,, नवम्बर १८५२

[13] पूर्वोक्त समाचारपत्र ४ दिसम्बर १८५२।

[14] पूर्वोक्त समाचारपत्र ३ दिसम्बर १८५२।

[15] पूर्वोक्त १६ जनवरी १८५२।

संभाव्य (Contingent) सेना के ब्रिगेडियर जनरल चन्देरी में शिकार खेलने के लिए आए हैं ।

महाराजा भेलसा, वामासुदा, और मल्हारगढ़ इत्यादि का दौरा करने के बाद ग्वालियर पहुँचने वाले हैं ।

सोलहवीं रब्बुल अवल के दिन महाराजा अर्जुनबाबा और बापू अकोलगुर को साथ लेकर उनकी गाड़ी जंग तालाब पर पहुँचकर उलट गई । अपने सरदारों के साथ महाराजा भी गिर पड़े । महाराजा को तो चोट नहीं लगी पर अकोलगुर के पैरों में साधारण चोट लगी ।

तांते पखेरी ने महाराजा को सूचना कि गी ताराबाई ने उसको मोदीखाने के काम से अलग लर दिया है । महाराजा ने उसे उत्तर दिया कि ताराबाई के भी कुछ अधिकार हैं ।

बाबा हिन्दूराव अभी लश्कर से दूर हैं ।

२७ तारीख को महाराज ताराबाई से मिले और उन्हीं के साथ भोजन किया ।

भाऊ पाटनवीस को बुलाने का निश्चय किया गया है ।[१६]

हैदराबाद **के. सजनलाल,** एम. ए.

बिखरे फूल

उनकी पलकों में मद है, मेरी आँखों में झरना ।
उनको चढ़ना आता है, मुझको रह रह कर गिरना ॥

× × ×

मिलने की आतुर घड़ियाँ, जब आँखों में खो जातीं ।
सपनों की सेज सजा क्यों, तुम आ मुझ में खो जातीं ॥

× × ×

संस्मृति की विस्मय-छाया, ऊषा से उन्मिल मुख को ।
भरती पराग-आभा से, हरती है मेरे सुख को ॥

× × ×

'उनकी' स्मृति में बसती है, मेरी विस्मृति की रेखा ।
'इंगित' क्या तोल रही है, लेती है किसका लेखा ?

—विनयमोहन शर्मा,
एम. ए.

नागपुर

---

[१६] पूर्वोक्त समाचारपत्र १८ जनवरी १८५३ ।

एकाङ्की

कबाड़खाना

[दो दोस्त सुधीर और मदन एक व्यस्त सड़क से होकर गुज़र रहे है ।]

मदन—मेरी समझ में नहीं आता सुधीर, कि तुम मुझे हॉस्टेल से खींच खाँच कर फिर इस कोलाहल में क्यों ले आते हो । मेरा तो यहाँ जैसे दम घुटने लगता है।

सुधीर—मदन !

मदन—हाँ ?

सुधीर—तुम्हें मेरे साथ रहते कितने दिन हुए ?

मदन—(सोच कर) ये...ये...चौथा बरस है शायद ।

सुधीर—हाँ तो तुम्हें मेरी सोहबत का सौभाग्य आज चार साल से प्राप्त हो रहा है—क्यों ? और तुम जानते हो कि यदि चार साल तक गदहे को भी मला घिसा जाय तो वह भी घोड़ा बन जाता है, लेकिन एक तुम हो कि......

मदन—(बात काट कर थोड़ी नाराज़गी से) सुधीर ! होल्ड योर टंग ! जरा जबान सम्हाल कर बोला करो । सबके सामने भरे बाज़ार में इस तरह मेरी बेइज्ज़ती करने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं है । जब होता है तुम ऐसे ही...

सुधीर—(उसे जैसे खींचता हुआ) अरे भाई ! नाराज़ होते समय सड़क पर चलने के नियम न भूला करो, नहीं तो किसी मोटर या रिक्शे की चपेट में आ जाओगे । मुफ्त में तकलीफ़ हमें होगी । लाद कर दस्पताल ले जाना पड़ेगा और ईश्वर न करे यदि...

मदन—(बात काट कर नाराज़गी से) सुधीर ! मैं कहता हूँ...

सुधीर—मैं भी तो कहता हूँ मेरे यार ! यों नाराज नहीं हुआ करते । अभी तुम रिक्शे के नीचे आ गये होते तो ?

मदन—तुम्हारी बला से !

सुधीर—बड़े गुस्सैल हो यार ! चंचल और भोले भी । लेकिन दुनिया में भोला बना रहना गुनाह है प्यारे ! जरा सम्हल कर चला करो ।

मदन—मैं तो खुद ही कोलाहल और शोर गुल से दूर भागता हूँ पर तुम्हें न जाने क्यों खुली हवा में घूमने की बजाय गुलज़ार सड़कों में चहलक़दमी करना अच्छा लगता है ?

सुधीर—दुनिया बड़ी छोटी है मदन ! कम्बख्त घूम फिर कर फिर चौराहे पर आ जाती है । यहाँ तुम एक से एक चीज़ देख लो, जिससे मिलना हो, मिलो । जो ख़रीदना है ख़रीद लो ।

मुझे कुछ ख़रीद फ़रोख्त करना नहीं है ।

सुधीर—मैंने तो एक बात कही थी यार ! तुम्हीं बताओ, इस जगह से बढ़ कर दिल बहलाने का कोई स्थान है ? यहाँ एक्टरों की तरह बने ठने जवान देखो, शो केस में खूबसूरत से खूबसरत चीजें देख लो......

मदन—और अपने पर्स के पैसे भी देख लो !

सुधीर—(हँस कर) हाँ. वह भी जरूरी है । उधर सिनिमा में बड़ी भीड़ है भाई ! दीखता है, कोई नई तसवीर लगी है । चलते हो ?

मदन—अमाँ, गोली मारो तसवीरों को । आगे क़दम बढ़ाए चलो । उधर खुली जगह है , ज़रा चैन की साँस ली जाय । तुम्हें तो दिन रात पिक्चरों की सूझती है । सच पूछो तो उसी ने तुम्हारा दिमाग़ ख़राब कर दिया है ।

[सड़क का शोरगुल थम-सा जाता है ।]

सुधीर—कहाँ खींच कर ले आए भाई ? न यहाँ बिजली का प्रकाश, न बाज़ार की रौनक और न ट्रैफिक का शोर ही ।

मदन—जरा खुली हवा में भी तो साँस लिया करो । दर असल घूमने जाने का मतलब तो यही है ।

सुधीर—वह पुराना मतलब था ! नए जमाने में रहते हो नए जमाने की बातें सीखो । अरे, उधर कहाँ ?

मदन—चलो, उस कबाड़खाने की चीजें देख आएँ ।

सुधीर--नानसेंस ! अगर ऐसी ही चीज़ों का शौक़ है तो किसी दिन म्यूजियम चले चलेंगे । उस ग़रीब की छोटी सी दूकान में ऐसा क्या आकर्षण भरा है ?

मदन—कभी कभी गुदड़ी में लाल मिल जाते है ।

सुधीर—लेकिन यार, वहाँ जाना अपनी पोज़ीशन के ख़िलाफ़ है ।

मदन—तों तुम्हें तुम्हारी पोज़ीशन मुबारक । मैं चलता हूँ ।

सुधीर—अरे मदन ! रुको यार ! तुम्हारा तो जैसे नाक में गुस्सा रहता है ।

मदन--तुम बातें ही वैसी करते हो । यह बताओ अगर तुम बचपन में मेले में गुम हो कर रईस लखपतराय के हाथ न पड़ किसी गरीब के हाथ लग गये होते तो क्या होता ?

सुधीर--तुम तो बच्चों जैसी बातें करते हो ! इस बेहूदे तर्क का तो कोई जवाब ही नहीं ।

मदन—और मान लो तुम मेले में गुम न हुए होते और अपने ग़रीब माँ बाप के पास ही होते तो ?

सुधीर—तो आप मुझसे यह प्रश्न कैसे पूछ सकते थे । ? तब हमारी दोस्ती तो हुई न होती ! चुगद हो एकदम । थोड़ी सी बात पर बहस करने पर आमदा हो जाते हो । तुम लोगों को तो बहस करने का मर्ज़ है, मर्ज़ ! चलो कहीं चलते हो ? बन्दा जहन्नुम तक साथ चलने को तैयार है ।

मदन—(हँस कर) नाराज़ हो गये ?

सुधीर--तुमसे ? क्यों भाई, क्या इरादा है ? इस दुनिया में रहने दोगे या नहीं ?

मदन--अच्छा तो चलो अरे, तुम ठिठक क्यों गये ?

सुधीर--(एकाएक) अरे मदन ! देख देख, उस दूकान की तरफ़ देख ।

मदन—कहाँ क्या ?

सुधीर—अरे परदा हटा कर कोई लड़की उस बूढ़े कबाड़ी से बातें कर रही है । देखा ?

हाँ देख लिया । तो क्या हुआ ? वह उसकी लड़की होगी ।

सुधीर--तो मैं कब कहता हूँ कि वह उसकी कुछ और है ! मेरे कहने का मतलब······काफ़ी खूबसूरत है वह लड़की ।

मदन—हाँ, है तो सही । पर हमें इससे क्या !

सुधीर—(कुछ ताने और खोज से) हाँ, हमें इससे क्या ? ······तुझे उस बिसाती से कुछ खरीदना है न ? चल, जल्दी चलें, नहीं तो शायद वह दूकान बन्द कर देगा ।

मदन--उँह ! करने दो । किसी दिन म्यूजियम चले चलेंगे । (हँसता है)

सुधीर--(हँस कर) अब तू मेरे हाथों पिटेगा। कम्बख्त नख़रे कर रहा है । चल जल्दी ।

(पदचाप)

सुधीर---बाबा ! आपके पास शायद पुरानी चीज़ों का स्टाक है ?

बिसाती--हाँ बाबू कुछ चीज़ें पड़ी तो ज़रूर हैं, पर आपके काम की तो क्या होंगी······

सुधीर--ऐसा न कहिए बाबा ! कभी-कभी धूल में हीरे पड़े मिल जाते है । हमारे इन साथी को पुरानी चीज़ों के संग्रह का ज़रा शौक है । बड़ा स्टाक जमा कर रखा है इन्होंने । इसीलिए आपकी तरफ़ आ गए ।

बिसाती—बड़ी कृपा की बाबूजी आप लोगों ने। अपने दिनों में मुझे भी यही ख़ब्त थी और एक अच्छा ख़ासा म्यूज़ियम था मेरे यहाँ । (साँस लेकर) अब तो इमारत ढह गई है । खण्डहर ही रह गये हैं । (सचेत होकर) बैठिये न, आप लोग खड़े क्यों हैं ?

मदन—हमारी चिन्ता मत कीजिये । हम आराम से हैं । यह सिक्का तो काफी पुराना जान पड़ता है !

बिसाती—जी हाँ, जहाँ तक मेरा ख़याल है, यह चन्द्रगुप्त मौर्य के जमाने का है । इसे मैंने कभी

मुश्किल से हासिल किया था। लगातार आठ दिन खुशामद की थी, तब जाकर पाया।

मदन—बड़ी अच्छी चीज़ है।

सुधीर—इसमें क्या शक? बाबा! आप तो काफी पढ़े लिखे दिखाई देते हैं?

बिसाती—(साँस लेकर)-पुराने ज़ख्मों को न कुरेदना ही अच्छा है बाबू!...ये मूर्ति देखिये। कारीगर ने पत्थर को तराश कर किस खूबी से शिव का तांडव नृत्य दर्शाया है।

मदन—वाक़ई बड़ी अनूठी मूर्ति है। मेरा इस दूकान में आना सार्थक हो गया।

सुधीर—अरे, अभी तो और कितनी चीज़ें होंगी। एक एक कर देखते जाओ। बाबा! बड़े ज़ोरों की प्यास लगी है। पानी मिल सकता है?

बिसाती—अरे वाह! क्यों नहीं! ये भी कोई बात हुई? (पुकार कर) कल्पना! और कल्पना!

अन्दर से—आई बाबा!

बिसाती—अरी बेटी, दो गिलास पानी ले आ।

सुधीर—तो यों कहिये, पूरा परिवार है आपका यहाँ?

बिसाती—परिवार के नाम पर अब हम दो बाप बेटी ही रह गये हैं। बाबू! बाक़ी सब अपनी अपनी जगह पर हैं। इस लड़की के कारण अब तक गृहस्थ बना हुआ हूँ। देखूँ, कब छुटकारा पाता हूँ।

कल्पना—(आकर)-बाबा, यह लो पानी!

बिसाती--इन्हें दो बेटी! लीजिए बाबू साहब!

सुधीर--(हाथों के स्पर्श हो जाने के कारण कुछ धीमे स्वर से) ऐं, माफ़ करना: (पीता हुआ) धन्यवाद! बड़े ज़ोरों की प्यास थी।

कल्पना—बाबा और पानी चाहिए?

सुधीर—(बिसाती के बोलने से पहले ही) जी नहीं, शुक्रिया।

बिसाती—अब कुछ नहीं चाहिए बेटी! जाओ, अपना काम करो। (कल्पना चली जाती है)

सुधीर--तो यों कहिए कि इस दुनिया में आपको अपना कहनेवाला इस लड़की के सिवा और कोई नहीं?

बिसाती--यों इस दुनिया में अपनी कही जाने लायक चीज़ ही क्या है बाबू! पर हाँ, ममता के नाम पर एक यही रह गई है। इसकी बड़ी चिन्ता है।

मदन--इस दूकान से ही गुजर बसर करते हैं आप?

बिसाती--हाँ, आजकल तो आमदनी का यही एक ज़रिया है, जिससे आमदनी तो खैर क्या होती है, पर हाँ, भूखे नहीं मरते। एक कबाड़खाने की क्या आमदनी?

सुधीर--आपको तो दिन भर यहाँ बैठना पड़ता होगा, क्या जाने कब कोई ग्राहक आ जाय?

बिसाती—हाँ, ग्राहक आये न आये, दूकान तो खुली रहना चाहिए। दोपहर को दो घंटा बेचारी कल्पना को बैठना पड़ता है। समय का फेर है जो उसे यह काम करना पड़ रहा है। अपना बेटा रहता तो ये दिन क्यों देखने पड़ते?

मदन--रात के बाद दिन और सुख के बाद दुःख--यह तो परिवर्तनमय जगत् का नियम है बाबा! अच्छा तो हमें इजाज़त दीजिए। फिर कभी दर्शन करेंगे। ···हाँ ये सिक्का और मूर्ति तो आपने बेचने के लिये ही रक्खा है न?

बिसाती--(साँस ले कर) हाँ, अब तो बेचने के लिए ही रक्खा है।

मदन--इनकी क़ीमतें क्या हैं?

बिसाती—(अन्यमनस्क सा हो कर) कुछ भी दे दीजिए।

मदन—मैं आपका मतलब नहीं समझा।

बिसाती—मैंने तो इन्हें बेशक़ीमती समझ कर ही रक्खा था बाबू! उनकी कीमतों का मुझे अन्दाज़ नहीं।

सुधीर—(बीच में ही) वाक़ई बेशक़ीमती हैं ये चीजें। यों तो ये सौ रुपए भी उनके लिये कम हैं पर अफ़सोस है, इस वक्त इससे ज्यादा हमारे पास नहीं हैं······

बिसाती—(आश्चर्य से) क्या कहते हैं इन दो चीज़ों के सौ रुपए ?

सुधीर—क्यों ? क्या बहुत कम हैं ? तब फिर ···तब फिर बाक़ी कल ला देंगे ।

बिसाती—लेकिन बाबू !···इस कबाड़खाने की चीज़ों को आप इतने महंगे दामों में क्यों ले रहे हैं ? सौ रुपयों में तो शायद मेरी पूरी दूकान खरीदी जा सकती है ।

सुधीर—सौ रुपए इन ऐतिहासिक चीज़ों के लिए कुछ नहीं बाबा ! हम इतिहास और पुरातत्व के विद्यार्थी ही इनका मूल्य आँक सकते हैं । आप दूसरों को अपनी ये अनमोल चीजें न बेचा कीजिए ।

बिसाती—बेशक इन चीज़ों की कीमत रुपयों से नहीं आँकी जा सकती लेकिन आज मेरे गर्दिश के दिनों में······

मदन—चिन्ता न कीजिए । सब के दिन फिरते हैं । अच्छा अब हम चलते हैं । नमस्ते ।

सुधीर—नमस्ते बाबा !

बिसाती—नमस्ते बाबू जी ! फिर दर्शन दीजिएगा ।

मदन और **सुधीर**—ज़रूर, ज़रूर ।

[पदचाप । वे दूकान से निकल सड़क पर आते हैं । धीमे धीमे कोलाहल बढ़ता जाता है ।]

सुधीर—क्यों मदन ! क्या ख़याल है ?

मदन—किसके बारे में ? बूढ़े के ?

सुधीर—अरे नहीं, उसकी लड़की के बारे में । वाह ! जैसा सुन्दर नाम है, उसके अनुरूप गुण भी हैं । वाक़ई वह कल्पना लोक की परी है ।

मदन—आपको कविता सूझने लगी ! अरे, उनकी हालत पर तरस खाओ । अपने प्रेम का जाल कहीं दूसरी जगह फैलाओ न । क्यों उन मुसीबतज़दों पर बिजली बन कर टूट रहे हो ?

सुधीर—अच्छा जी ! तो आपके मन में भी सहानुभूति का स्रोता उमड़ पड़ा है ।

मदन—लेकिन लड़की को देख कर नहीं, उनकी हालत को देख कर ।

सुधीर—मदन !···एक बात बताऊँ ? न जाने क्यों उस लड़की को देख कर मेरे मन में कम्पन होने लगा है । मैं······मैं यह महसूस कर रहा हूँ जैसे······जैसे वह मेरी कोई खोई सहचरी हो, साथिनी हो ।······न जाने मुझे ऐसा क्यों हो रहा है ?

मदन—तुम बहुत 'पोएटिक' हो रहे हो !

सुधीर—वाक़ई, मैं सच कह रहा हूँ । और तो और, मैं उस बूढ़े से भी बड़ा प्रभावित हुआ हूँ ।

मदन—(व्यंग से) तुम तो अब उस गली की धूल से भी प्रभावित होगे ।······अच्छा, अब जल्दी क़दम बढ़ाओ । रात हो चली है ।

[उनकी पदचाप की आहट होती है और माइक्रोफोन दूर होता है । धीरे धीरे फेड आउट होता है ।]

परिवर्तन

[दूसरे दिन कल्पना दोपहर को दूकान देख रही है । सुधीर आता है ।]

सुधीर—अरे ! बाबा कहीं गए हैं क्या ?

कल्पना—जी हाँ, खाना खाने बैठे हैं । कहिए तो बुला दूँ ?

सुधीर—नहीं नहीं, यह भी कोई बात हुई कि कोई खाना खाने बैठा हो और उसे बुला दिया जाय ? मैं इन्तज़ार कर सकता हूँ । और फिर तुम जो हो यहाँ पर ! मेरा समय मज़े में कट जायगा । (एक क्षण चुप रह कर) अरे तुम तो कुछ बोलती ही नहीं ?

कल्पना—क्या बोलूँ !

सुधीर—कुछ तो बोलो, पर बोलो तो सही । नहीं तो मेरा समय कैसे कटेगा ?

कल्पना—मुझे ज्यादा बोलने की आदत नहीं है ।

और मुझे बहुत बोलने का मर्ज़ है । है न अजीब बात ?······अच्छा तुम्हारा नाम क्या है······ अरे ! तुम तो एकदम मौन साधे बैठी हो ।

कल्पना—आपने मुझसे पूछा क्या ?

सुधीर—और नहीं तो क्या दीवारों से ?

कल्पना—मैंने समझा था, आप अपने आप से बातें कर रहे हैं ।

सुधीर—क्या अपने आपसे भी बातें की जा सकती है ।

कल्पना—क्यों नहीं ? मैं तो अक्सर अपने आप से ही बातें करती हूँ । कोई बात करनेवाला मिलता नहीं तो क्या करूँ ? बाबा दूकान में रहते हैं और मैं भीतर ।

सुधीर—लेकिन अब तो तुम अकेली नहीं हो । मैं जो जीता जागता इन्सान तुमसे बातें करने के लिए मौजूद हूँ ।

कल्पना—आप मेरा नाम नहीं जानते ?

सुधीर—जानता तो पूछता क्यों ?

कल्पना—झूठ बोलते है आप ! कल बाबा ने आपके सामने मुझे नहीं पुकारा था ?

सुधीर—ओह ! तो तुम्हें याद है ? (हँस कर) मान लो, मैं तुम्हारे मुँह से सुनना चाहता था ?

कल्पना—इससे लाभ क्या ?

सुधीर—यही कि तुम्हारी ज़बान तो खुली रहेगी ।

कल्पना—(हँस कर) आप बड़े दिलचस्प हैं ।

सुधीर—सच ?

कल्पना—हाँ । यह बताइए आपको क्या चाहिए ?

सुधीर—तुम दे सकती हो ?

कल्पना—क्यों नहीं ? बाबा की ग़ैर हाजिरी में मैं आठ सालों से दूकान सँभालती आई हूँ ।

सुधीर—पर बाबा की जिम्मेदारी तो नहीं !

कल्पना—ख़ैर छोड़िए, आपसे बहस करने की न मुझमें योग्यता है और न ताब ही । आपके दोस्त नहीं आए ?

सुधीर—उसने मुझे मौक़ा दे दिया ।

कल्पना—मौक़ा ? किस बात का ?

सुधीर—तुमसे बातें करने का ।

कल्पना—(थोड़े कड़े स्वर में)-देखिए बाबू ! इस क़िस्म की बातें मैं हरगिज़ पसन्द नहीं करती । आपको ऐसा कहने का कोई अधिकार नहीं है । आख़िर आप अपने को समझते क्या हैं ? क्या इस दूकान को आपने अपने मनबहलाव का जरिया समझ लिया है ?

सुधीर—अरे, तुम तो ख़ामख़ाह नाराज़ हो रही हो । मैंने तो एक मज़ाक किया था ।

कल्पना—मैं ऐसा मज़ाक नहीं पसन्द करती ।

सुधीर—तो न सही । लो, मैं मुंह बन्द किए लेता हूँ ।

कल्पना—आपको चाहिए क्या ?

सुधीर—मैं बाबा से भेंट करना चाहता हूँ ।

कल्पना—मैंने बताया नहीं कि वे खाना खा रहे हैं !

सुधीर—मैंने भी तो कहा कि मैं इन्तज़ार कर सकता हूँ ।

कल्पना—लेकिन......लेकिन यह नहीं हो सकता ।

सुधीर—भाई वाह ! क्यों नहीं हो सकता ! इसमें तुम्हें क्या एतराज है ?

कल्पना—उनके आने तक मुझे दूकान पर बैठना पड़ता है-यह आप जानते हैं ?

सुधीर—बख़ूबी जानता हूँ । तो मैं तुम्हें रोकता तो हूँ नहीं । शौक़ से बैठो । जगह काफ़ी है, दोनों आराम से बैठ सकते हैं ।

कल्पना—लेकिन मैं आपके साथ नहीं बैठ सकती ।

सुधीर—ये क्यों ?

कल्पना—आप फिर कोई न कोई शिगूफ़ा छोड़ेंगे, कुछ न कुछ चर्चा करेंगे ।

सुधीर—तो तुम जवाब न देना । यों ही गुम सुम बैठी रहना ।

कल्पना—(खीझ कर)-ओफ़ ओह ! अब मैं आपको किस तरह समझाऊँ ?...मैं हाथ जोड़ती हूँ, परेशान मत कीजिए । जो कुछ लेना हो, लीजिये और

अगर बाबा से ही मुलाक़ात करनी है तो थोड़ा ठहर कर आइए ।

सुधीर—(गम्भीरता से)-हाँ, मुझे लेना तो है मगर तुमसे नहीं, बाबा से ही । तुम न दे सकोगी ।

कल्पना—सो क्यों ? क्या मुझमें दूकान सँभालने की योग्यता नहीं ? क्या मैं बच्ची हूँ ?

सुधीर—नहीं तुम तो बूढ़ी बुज़ुर्ग हो । तुम्हें बच्ची कौन कहता है ? तो तुम से जो मैं मांगूँगा, दोगी ?

कल्पना—हाँ, अगर इस दूकान में हुई तो ।

सुधीर—हाँ हाँ, वो इस दूकान में ही है । मैं... मैं तुम्हें चाहता हूँ !

कल्पना—(रोष से)-ये क्या बेहूदगी है ! इस तरह का मज़ाक़ मुझे बिलकुल पसन्द नहीं, मैं साफ़ साफ़ कहे देती हूँ मिस्टर ! अगर बड़े आदमी होगे तो अपने घर के । निकल जाओ, इस मकान से, फ़ौरन निकल जाओ ।

बिसाती—(प्रवेश करके)-अरे ! किस पर बिगड़ रही है तू ?...ओह ! आप हैं वाह री !...पगली ! इनपर क्यों नाराज़ हो रही थी ? ये तो...ये तो...ये बाबू तो (झेंप कर हँसता है) अरे, मैं तो आपका नाम भी नहीं जानता ।

······पगली नादान है बाबू ! क्यों बिगड़ रही थी री इन पर ?

कल्पना—बाबा !....बाबा !....इन्होंने बेहूदा बातें की थीं । बाबा !...ये...ये...ये कह रहे थे...ये कह रहे थे......

(शरमा कर चल देती है)

बिसाती—आप क्या कह रहे थे बाबू ?

सुधीर—मैं कल्पना से वह बात नहीं कहना चाहता था बाबा ! आप से ही अर्ज़ करने आया था ।

बिसाती—(कुछ कड़ाई से) पहेलियाँ न बुझाइये, साफ़ साफ़ कहिए । हाँ, अगर आपने कोई बेहूदा बात कही हो तो इससे पहले कि इस बूढ़े बिसाती का खून खौल उठे, आप दूकान से चले जाइए । आप सौ रुपयों में हमारी इज़्ज़त नहीं ख़रीद सकते । अगर मैं आपका इरादा कल जान गया होता तो उन रुपयों को आपके मुंह पर मार कर बाहर निकाल देता ।

सुधीर—आप फ़िज़ूल नाराज़ हो रहे हैं बाबा ! मैं आपसे प्रार्थना करने आया हूँ कि मुझे अपना बेटा बना लीजिए ।

बिसाती—(चौंक कर)-क्या कहते हो ?

सुधीर—ठीक कह रहा हूँ बाबा ! मैं कल्पना को देख कर न जाने क्यों उसकी ओर खिंच गया हूँ । लगता है, कोई ताक़त मुझे ज़बरदस्ती उसकी ओर ढकेल रही है । वह मेरे जीवन की समस्या का समाधान बन गई है बाबा ।

बिसाती—(सूखी हँसी हँस कर)-क्यों ? क्या पिछले रोमांस से तबीयत भर गई जो इस ग़रीब की बेटी की तरफ़ निगाहें डाल रहे हो ? तुम्हें शर्म आनी चाहिए । मैंने तुम्हें एक शरीफ़ आदमी समझा था, लेकिन इन बूढ़ी आँखों ने धोखा खाया । ख़ैर हुई जो बात कहीं नहीं, अब कृपा कर यहाँ से तशरीफ़ ले जाओ ।

सुधीर—बाबा ! मैं आपसे सच कहता हूँ, मैंने जीवन में प्रथम बार कल्पना को चाहा है । मेरी क़िस्मत, मेरी जिन्दगी, मेरा सुख, आपके जवाब पर निर्भर करता है । मेरे पास भगवान् का दिया सब कुछ है । जीवन-नौका को खेने के लिये पतवार की ज़रूरत है । मैं रात भर उधेड़बुन में पड़ा रहा बाबा ! मैं इस दुनिया में भटक गया हूँ, गुमराह हो गया हूँ । मुझे सहारे की ज़रूरत है, प्रेम की ज़रूरत है ।

बिसाती—अच्छी बात है । मैं सोच कर उत्तर दूँगा । यदि तुम्हारी बातों में सचाई है और कल्पना को तुम पसन्द हो तो यह ग़रीब बिसाती अपनी बेटी के लिये दूसरा अच्छा वर कहाँ पा सकता है ?

सुधीर—आपने तो जैसे मुझे जिला लिया ! आप अच्छी तरह सोच लें, मेरे बारे में दरयाफ्त भी कर लें और कल्पना की राय भी जान लें । एक बात कहे जाता हूँ कि मेरे ख़िलाफ़ फ़ैसला होने पर शायद मैं ज़िन्दा न रह सकूँगा ।

(प्रस्थान)

बिसाती—(अपने आप से) अजीब बात है ! भगवान् न जाने कैसे संयोग ला खड़ा कर देता है ! (पुकार कर) कल्पना !

कल्पना—क्या है बाबा !

बिसाती—मेरे पास आ बेटी ! देख, आज मैं तुझसे एक जरूरी सवाल पूछना चाहता हूँ। शरमाना मत। (एक साँस लेकर) आज अगर तेरी माँ होती तो यह सवाल मुझे न पूछना पड़ता। पर क्या करूं ?

कल्पना—मैं तो तुम्हें माता पिता दोनों समझती आई हूँ बाबा ! आज से नहीं जमाने से। पूछो, क्या पूछना है ?

बिसाती—क्या····क्या तुझे सुधीर पसन्द है ? उससे शादी करोगी।

कल्पना—(शरमा कर) बाबा ! तुम तो······

बिसाती—शरमा मत बेटी ! यह तेरे जीवन का सब से महत्वपूर्ण कार्य है। बोल, जवाब दे।

कल्पना—बाबा ! मैं तुम्हारी हूँ। तुम मुझे जिसके हाथ सौंपोगे, मैं उसीमें खुश हूँ। तुम्हारी खुशी मेरी खुशी है बाबा, तुम्हारा चुनाव मेरा चुनाव है।

बिसाती—मेरी !

—परिवर्तन—

[दस दिन बाद सुधीर और कल्पना की शादी के दिन]

सुधीर—आज हमारी शादी है कल्पना ! अगर··· अगर दस दिन पहले किसी ने मुझसे यह कहा होता कि तुम्हारी शादी होने जा रही है तो मैं कभी यक़ीन न करता। ये तो जैसा जादू का खेल हो गया।

कल्पना—सच कह रहे हैं आप ?

सुधीर—हाँ कल्पना ! इसमें सन्देह नहीं कि तुमने मेरे जीवन को आ कर उसे एक नया रूप और रंग दे दिया। नहीं तो मुझे खुद को पता नहीं था कि कब तक इस तरह लावारिसों की जिन्दगी गुज़ारता। अब मुझे बाबा मिल गए, तुम मिल गईं।—मेरा मतलब मिल-जाओगी। कल्पना ! तुम भी तो मुझे पसन्द करती हो न ?

कल्पना—हाँ सुधीर ! मुझे ऐसा लगता है जैसा मेरा आपका परिचय इन दस दिनों का नहीं, बहुत पुराना है····बहुत पुराना····उतना जितनी दूर मेरी स्मृति भी नहीं दौड़ती।

सुधीर—हम जन्म जन्मान्तर से एक दूसरे को जानते हैं कल्पना ! (बिसाती के खाँसने की आवाज़ आती है) अरे ! बाबा आ रहे हैं ?

(बिसाती का प्रवेश)

बिसाती—अरे सुधीर ! तुम यहाँ बैठे हो और मैं तुम्हें सब जगह ढूँढ़ता फिर रहा था।

सुधीर—मैं····मैं भी आपको ढूँढ़ता ढूँढ़ता इस तरफ़ आ निकला था बाबा !

बिसाती—क्यों, कल्पना ! कहां चली ?

कल्पना—आती हूँ बाबा ! आप लोग बातें कीजिए। (प्रस्थान)

बिसाती—आज मेरी बेटी की शादी है। एक बाप के लिए इससे ज्यादा खुशी का दिन और क्या हो सकता है ? इस समय...इस समय ऐसा लगता है सुधीर कि संसार की तमाम निधियाँ तुम पर न्योछावर कर दूँ, लेकिन अब देने को मेरे पास रह ही क्या गया है ?

सुधीर—ऐसा न कहिए बाबा ! आपके पास संसार की सबसे अमूल्य निधि है—वह है आपका प्यार और आशीर्वाद। सच पूछिए तो बाबा, जीवन भर में प्यार का भूखा रहा हूँ। आपके समीप आ जाने से मन में एक अजीब प्रकार की शांति आ जाती है।

बिसाती—लेकिन हर बाप की उमंग होती है बेटा बेटी की शादी पर चाँद सितारे तक बलिहार कर दे। काश ! मेरे गुज़रे दिनों में यह शादी हुई होती।

सुधीर—अतीत की प्यार में आंसू बहाने से वह वापस तो न आएगा बाबा !

बिसाती—यह मैं भी जानता हूँ बेटा, पर क्या करूँ ? वे कम्बख्त आँसू मानते जो नहीं। हम बूढ़ों को न जाने क्यों अतीत इतना प्यारा लगता है। सुधीर ! मैं तुम्हें और कुछ तो नहीं दे सकता, हां अपने परिवार की आखिरी निशानी तुम्हें उपहार में दे डालूँगा। ले देकर यही एक स्मृति चिन्ह पड़ा है मेरे पास। आओ, ये लाकेट तुम्हारे गले में डाल दूँ।

सुधीर-बड़ा अन्दर और क़ीमती लौकेट है। बाबा इसमें बड़ा क़ीमती हीरा जड़ा जान पड़ता है।

बिसाती—हां सुधीर ! हीरा है तो सच्चा ।

सुधीर—(जैसे अपने आपसे) बिलकुल...बिलकुल वैसा ही है । एकदम उसी की तरह ।

बिसाती—(चौक कर)-किसकी तरह? तुम किस लौकेट की बात कर रहे हो ?

सुधीर—एक है बाबा । बिलकुल ऐसा ही । जरा भी फ़र्क नहीं । जैसे दोनों जुड़वी सन्तानें हों ?

बिसाती—(कापते स्वर से)- सुधीर ! कहां देखा है तुमने ऐसा लौकेट ? जल्दी बताओ । जल्दी बताओ सुधीर !

सुधीर—इसमें आतुरता की क्या बात बाबा ! ऐसा ही लौकेट मेरे पास भी है बचपन में जब मैं मेले में गुम हो गया था तब वह मेरे गले में पड़ा था आज तक उसे अपने पास रक्खे हुए हूँ। सोचता हूँ, क्या जाने उसका क्या इतिहास हो। आपके इस लौकेट को देख कर बचपन की वह स्मृति उभर आई।...अब उसका जोड़ा मिल गया ।

बिसाती—सुधीर !

सुधीर—हां बाबा ! एक मैं पहनूँगा, दूसरा कल्पना के गले की शोभा बढ़ाएगा।...तो मैं चलता हूँ बाबा ! बरात के साथ आऊँगा । समय हो गया है ।

बिसाती—तुम्हारा लौकेट तुम्हारे साथ है सुधीर ?

सुधीर—हां बाबा ! यह देखिए...मिलाइए... है न दोनों एक समान ?...कितनी अनोखी बात है बाबा (अद्भुत संयोग)...

असाती—(बात काट कर, उत्तेजित हो कर चिल्ला कर)-सुधीर...सुधीर ! यह शादी नहीं होगी । यह शादी नहीं हो सकती सुधीर !...यह शादी नहीं हो सकती............

[उत्तेजित बिसाती—यह शादी नहीं हो सकती" कहते कहते भीतर जाता है, आवाज़ दूर होती जाती है, माइक उससे दूर होता जाता है, स्तंभित सुधीर खड़ा रहता है और धीरे धीरे फेड आउट होता है ।]

—परिवर्तन—

[उसी दिन शाम को सुधीर मदन के यहां जाता है ।]

सुधीर—मदन !

मदन—कौन सुधीर ! तुम यहां, इस वक्त! आज तो तुम्हारी शादी है न ? कैसे आए ? ख़ैरियत तो है ?

सुधीर—(गम्भीरता से) ख़ैरियत होती तो आता क्यों ?

मदन—क्यों ? क्या बात हुई ?

सुधीर—तुम क्यों नहीं आए ?

मदन—(सूखी हँसी हँसकर)-तबीअत कई दिनों से ख़राब है सुधीर ! चाह कर भी तुम्हारी शादी में शरीक़ न हो सका । बस...यहीं से दुआएँ देता रहा।

सुधीर मदन ! मैं...मैं तुझसे कुछ मांगने आया हूँ । उम्मीद है, खाली हाथ न लौटाओगे ।

मदन—सुधीर ! तुम होश में तो हो ? आज तुम्हारी बातों का सिलसिला कुछ समझ में नहीं आ रहा है । तुम मुझसे क्या चाहते हो ?

सुधीर—तुम...तुम कल्पना को पसन्द करते हो न ?

मदन—क्या बेहूदा और बेमानी सवाल करते हो ?

सुधीर—तुम कल्पना को पसन्द करते हो न ! इनकार न करना ।...मैं जानता हूँ, तुम कल्पना को चाहते हो, पर मेरे कारण तुमने अपने आपको उस रास्ते से हटा लिया । बोलो, यह सच है या नहीं ?

मदन—तुम्हारा दिमाग़ तो नहीं ख़राब हुआ ? आज ऐसी ऊल जलूल बातें क्यों सूझ रही हैं तुम्हें ?

सुधीर—मेरी बातों का जवाब दो मदन ! क्या तुम कल्पना को पसन्द नहीं करते ।

मदन मगर मेरी पसन्दगी का सवाल ही नहीं पैदा होता ।

सुधीर—मगर हमारी इज्जत का सवाल जो पैदा हो गया है । मदन ! मैं तुम्हारे हाथ जोड़ता हूँ। मेरे साथ चलो । दरवाजे पर बाजे बज रहे हैं, ब्राह्मण पूजा के सामान जुटा रहे हैं, मेहमान आ गये हैं, अगर आज कल्पना की शादी न हुई तो......

मदन—लेकिन कल्पना की शादी होगी क्यों नहीं? क्या तुम इसके लिये तैयार नहीं?...सुधीर! यह बहुत बुरी बात है। इस तरह उन ग़रीब और बेकस जीवों को अपमानित करने का तुम्हें अधिकार नहीं था। उन्हें शादी की लालच दे फिर ऐन शादी के दिन धोखा देना तुम्हें शोभा नहीं देता। शर्म करो...शर्म करो सुधीर!

सुधीर--(तेज़ आवाज़ से)--मदन! तुम क्या बक रहे हो? कल्पना...कल्पना मेरी छोटी बहन है, मैं उसका मेले में खोया भाई राजू हूँ। बिसाती हमारे पिता राजनाथ हैं।

मदन—(आश्चर्य से) क्या कहते हो?

सुधीर—ठीक कहता हूँ मदन!

मदन—मगर इस बात का पता कैसे चला?

सुधीर—मेरा मतलब है कि कबाड़खाने की वह लौकेट मिल गई मदन! मेरी पीठ के घाव ने भी इसकी गवाही दी। मेरी प्रार्थना स्वीकार न करोगे?

मदन—तुम्हारा मतलब...

सुधीर— मेरा मतलब है कि कबाड़खाने की वह लौकेट तुम्हारे गले की शोभा बढ़ाए। तुम्हें कोई एतराज़ तो नहीं?

मदन— मुझे, मुझे तो सिर्फ़ एक बात पर एतराज़ है?

सुधीर—(चौंक कर) वह किस बात पर?

मदन—(हँस कर) कि तुम्हें तो कोई एतराज़ नहीं? [दोनों हँसते हैं। प्रस्थान]

(शहनाई की धुन के साथ साथ फेड आउट होता है।)

—प्रमोद वर्मा,
बी. ए.

नागपुर

* * *

सदा समय पर अपना बिल
चुका दो;
अपनी निर्धारित नियुक्तियों
में एक मिनट की भी देरी मत करो;
कभी भावों के आवेश में
कोई कार्य मत करो।

—श्रीमती रुज़वैल्ट

—

चाहे कुछ हो जाए सदा मुसकराते रहो।

—प्रेज़ीडेण्ट रुज़वैल्ट

अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त प्रथम भारतीय वैज्ञानिक

विभिन्न समयों में भिन्न भिन्न देशों से जो अनेक जनसमूह भारत में आकर यहाँ के स्थायी निवासी बन चुके हैं और जिन्होंने इस भारतभूमि को मातृभूमि मान कर कई शताब्दियाँ यहाँ बिता दी है, उन्हीं में एक प्रमुख जाति पारसियों की है। उन्होंने इस देश के सम्पूर्ण सुख दुःख में पूर्ण बन्धुभाव से यहाँ के निवासियों की ही तरह समान रूप से भाग लिया है; यही नहीं वरन् उनमें के कई महान् व्यक्तियों ने अपने कुछ स्वाभाविक विशेष गुणों के कारण इस देश की प्रगति में भी बहुमूल्य सहायता दी है। पारसी लोगों की दानवीरता के नाते सर्वत्र ही विशेष ख्याति है। किन्तु यहाँ एक विशेष उल्लेखनीय महत्वपूर्ण घटना यह है कि भारत की विविध क्षेत्रों में कीर्त्तिवृद्धि करनेवालें सुपुत्रों में भी पारसी व्यक्तियों ने ही प्रायः प्रथम स्थान प्राप्त किया है। स्वर्गीय दादाभाई नौरोजी, दिनशा वाछा, मेडॅम कामा, सर जमशेदजी, टाटा, वी. पी. वाडिया, के. एफ. नरीमन आदि के नाम इस दृष्टि से सहज ही हमारे दृष्टिपथ में उपस्थित हो जाते हैं। किन्तु इन राजनीतिक अग्रगामियों की तरह आधुनिक विज्ञान जगत् में भी उन्होंने अग्रपूजा का सम्मान प्राप्त किया है जो इस लेख से सिद्ध होगा।

प्रसिद्ध भारतीय गणितज्ञ श्रीनिवास रामानुजन् का नाम कौन नहीं जानता? उनके वृद्धि-सामर्थ्य पर और विशेष शिक्षा प्राप्त की न करते हुए भी गणित जैसे दुर्गम विषय में की हुई उनकी विशेष खोज अथवा अन्वेषण पर पाश्चात्य विद्वानों को भी सहसा आश्चर्यमुग्ध हो जाना पड़ा; इतना ही नहीं वरन् इंग्लण्ड की रायल सोसाइटी ने उन्हें सन् १९१९ में अपना सदस्य चुन कर विशेष रूप से सम्मानित किया। उस समय तक यही समझा जाता था कि यह सम्मान भारतीय वैज्ञानिक को प्रथम बार ही प्राप्त हुआ है, किन्तु सन् १९४४ में रायल सोसाइटी के मन्त्री प्रो. ए. वी. हिल ने जब पत्रकारों के सम्मुख एक विशेष निवेदन प्रस्तुत किया तो यह भ्रम सहज ही दूर हो गया। उन्होंने बतलाया कि बम्बई के एक प्रसिद्ध यन्त्रविशारद और वैज्ञानिक अर्देशिर कर्सेटजी को यह सम्मान लगभग सौ वर्ष पूर्व ही अर्थात् स. १८४१ में ही प्राप्त हो चुका था। अर्थात् रायल सोसायटी के वे ही सच्चे और प्रथम भारतीय सदस्य थे।

सदस्य चुनते समय उनका नाम जेम्स वाकर ने सूचित किया और डब्ल्यू. केंबेट ने उसका समर्थन किया था। इसी प्रकार जान मेक्मिल आदि सात सदस्यों ने उसका अनुमोदन किया था। यह सूचना उपस्थित करते समय अर्देशिर कर्सेटजी की यन्त्र-विज्ञान-कुशलता एवं उनके नाविक ज्ञान तथा अन्य तत्सम वैज्ञानिक उद्योगों का अत्यन्त गौरवपूर्वक सम्पूर्ण उल्लेख किया गया था। साथ ही उन हस्ताक्षर करनेवालों ने उस विषय में विश्वस्त जानकारी होने का भी उल्लेख किया है। इस प्रकार वैज्ञानिक जगत् में सर्वश्रेष्ठ समझी जानेवाली इस संस्था के सदस्य के नाते २७ मार्च सन् १९४१ को उनका निर्वाचन हुआ था।

अर्देशिर कर्सेटजी ने प्रसिद्ध लोवजी वाडिया परिवार में जन्म लिया था। स्वतः वाड़िया सन् १७३६ ई. में सूरत से बम्बई आकर बसे थे और उस समय वे जहाज या व्यापारिक बोट निर्माता के नाते प्रसिद्ध थे। उन्होंने सर्वप्रथम बम्बई के 'धक्के' (बन्दरगाह) निर्माण करवाये दे। उन्हीं के वंश में ६ अक्तूबर सन् १८०८ को अर्देशिर का जन्म हुआ। कर्सेटजी (१७८८-१८६३) सन् १८४४ से १८५८ तक बम्बई धक्के पर सब से मुख्य पोत-निर्माता के नाते प्रसिद्ध रहे। किन्तु कुमार अर्देशिर तो केवल १४ वर्ष की अवस्था में ही सन् १८२२ में उस धक्के पर होनहार इंजीनियर के नाते काम पर लग चुका था। उसकी शिक्षा के विषय में विशेष जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी है। फिर भी उस समय प्राप्त होनेवाली शिक्षा की दृष्टि से उच्च कोटि की ही शिक्षा अवश्य उसे प्राप्त हुई होगी। उसकी खुद की लिखावट पर से ऐसा जान पड़ता है कि सन् १८३० के लगभग भाप के एंजिन का औपपत्तिक और प्रायोगिक अध्ययन उसने आरंभ किया था। इसी प्रकार नौ-स्थापत्य के परिशीलन में भी वह अपना विशेष समय व्यतीत करता था।

इसके बाद बम्बई की टकसाल के प्रमुख इंजीनियर केप्टन मेकमिलवरी के आधीन सरकारी अनुमति से उन्हें काम पर नियुक्त किया गया, वहाँ कुछ दिन काम करने के पश्चात् इस यांत्रिक--विभाग में उन्होंने प्रवीणता प्राप्त कर ली। उन्ही के शब्दों में कहा जाय तो "केवल विज्ञान के विषय में मेरी अत्यधिक अभिरुचि के कारण ही बिना किसी की सहायता के मुझे अनुमानतः एक अश्वशक्ति का भाप का एंजिन बनाने में सफलता प्राप्त हो गई। इसी प्रकार अपने देश-बान्धवों को बाष्प (भाप) की प्रकृति एवं गुणधर्मों का परिचय करने के लिए भी मैंने पूरा पूरा प्रयत्न किया। यहाँ तक कि इसके लिए यथेष्ट द्रव्य लगा कर भाप का एक नौयन्त्र भी मैंने इंग्लैण्ड से बनवा कर मँगवाया और एक लोहार की सहायता से अपने बनाए हुए एक जहाज़ पर उसे लगा दिया। "वह स्टीमर लगभग साठ टन का था। और उसका नाम 'इंडस' रखा गया। १६ अगस्त सन् १८२३ ई. को वह पहली बार पानी में उतारा गया। उस समय ईस्ट इंडिया कम्पनी के लिए नौरोजी जमशेदजी नाम के प्रमुख जहाज़ निर्माता द्वारा बम्बई में ही निर्मित 'ह्य लिन्से' नाम का केवल एक ही जहाज़ था। किन्तु अर्देशिर ने उसी लोहार को बिना किसी यूरोपियन की सहायता के उस जहाज को चलाने और यन्त्र (मशीनरी) को व्यवस्थित रखने तथा उस पर प्रकार की देखरेख का काम भी अच्छी तरह से सिखा दिया था और उस विश्वस्त कारीगर ने भी सचमुच ही उस जहाज़ को एंजिन में बिना किसी दुर्घटना या किसी प्रकार की टूट फूट अथवा गड़बड़ के पाच वर्ष से अधिक समय तक बराबर चलाया। उसे बाद में बम्बई सरकार ने खरीद लिया।

नवयुवा अर्देशिर की स्थापत्य के विषय में अत्यधिक अभिरुचि होने के कारण बम्बई में गैस की लैम्पों का भी प्रथमतः उन्हींने श्री गणेश किया। १० मार्च सन् १८३४ को अपने रहने के बँगले में ही सर्व प्रथम उन्होंने गैस के लैम्प लगाये थे; जिन्हें देखने के लिए खुद बंबई के गवर्नर 'दि अर्ल ऑफ क्लेअर' भी वहाँ उपस्थित हुए थे। इसी प्रकार बंबई-बन्दर पर याफ सेचन वाला पंप भी आर्देशिर ने ही सर्व प्रथम लगाया था।

यहाँ मुख्यतः ध्यान देने की बात यह है कि इन सब विविध प्रकार के यंत्र एवं तत्संबन्धी आवश्यक सामग्री निर्माण करने के लिए ढलाई की भट्टी अथवा अन्य कार्य ठीक ढंग से कर सकने की सुविधा उस समय नाम को भी नहीं थी। फिर भी उनके बनाये हुए यंत्र बिलकुल इँग्लैण्ड में बने हुए यंत्रों की ही तरह उत्कृष्ट एवं परिपूर्ण होते थे। इस परिस्थितियों ढलाई का संपूर्ण ज्ञान कराने के लिए उन्होंने अपने मज़गाँव वाले बंगले के अहाते में ही एक छोटी-सी भट्टी स्वतः चलाई और विभिन्न जहाजों के लिए आवश्यक कोटे की अनेक टाँकियाँ तो इतनी बड़ी थीं, जिनमें एक एक हज़ार गैलन से भी अधिक पानी आ सकता था।

बंबई में एल्फ़िन्स्टन् इन्स्टीट्यूशन स्थापित होते ही वहाँ शिक्षा देने के लिए इँग्लैण्ड से विवध विषयों के विशेषज्ञ खास तौर पर बुलवाये गये थे। उनमें प्रो. आर्लेबार नामक गणिताध्यापक से अर्देशिर का परिचय हो गया और उसने अर्देशिर के यंत्र-शास्त्र-विषयक विशेषतः प्रायोगिक ज्ञान को देख कर स्वय ही बंबई सरकार से निवेदन किया कि, 'मुझे अपने विद्यार्थियों को यांत्रिक और रसायनिक विषयों की शिक्षा देते समय अर्देशिर कर्सेटजी से सहायता लेने के लिए विधिवत् सुविधा दी जाए' और इसे सरकार ने तत्काल स्वीकार भी कर किया था।

इसके बाद सन्. १८३७ में अर्देशिर को इँग्लैण्ड की रॉयल एशियाटिक सोसायटी का अन्य स्थानीय सदस्य चुना गया।

उस सयय तक बड़े बड़े जहाज़ों को भाप के द्वारा चलाने विशयक शास्त्र बहुत कुछ उन्नत हो चुका था और भारतवर्ष में उनकी दुरुस्ती करना अधिकाधिक कठिन होता जा रहा था। साथ ही कुछ इंजिनियरों को भारत का जलवायु भी अनुकूल नहीं होता था और कुछ स्थानों में उपद्रव भी हो गये थे।

ऐसी स्थितिमें मनुष्य की समस्त आधुनिक सुख-सुविधा बढ़ाने के लिए भाप की शक्ति का अधिकाधिक उपयोग किस प्रकार किया जा सकता है; इसका ज्ञान प्राप्त करने के लिए उन्होंने विशेषरूप से इँग्लैण्ड जाने का निश्चय किया और सन् १८३८ में बम्बई सरकार से अनुमति प्राप्त कर उन्होंने इँग्लैण्ड जाने की तैयारी भी कर ली; किन्तु अचानक ही बीमार पड़ जाने के कारण वे नहीं जा सके। फिर भी अगले वर्ष अर्थात् १२ सितंबर

१९३९ में वे घर से चले और भारतीय जल सेना के कप्तान केनाल के साथ 'बर्निस' जहाज पर सवार हुए। अगले दिन जहाज़ ने बंबई बंदर से प्रस्थान किया और वे यथासमय इँग्लैण्ड पहुँच गए।

इसके बाद सन् १८४१ में उन्होंने अपने लेख में इस यात्रा का वर्णन तथा अपने वर्ष भर के इँग्लैण्ड में रहने का सुंदर विवेचन किया है। उस समय तक पारसी लोगों में भी कितने ही धार्मिक-बन्धन और विचित्र धारणाएँ विद्यमान थीं। उदाहणार्थ फारसी को छोड़ कर अन्य किसी के हाथ का पकाया हुआ भोजन किया जाय।' इत्यादि। इन सब कारणों से उन्हें अपने साथ सब जगह अपना रसोइया, नौकर आदि लेजाना पड़ता था और इस प्रकार उनका यात्रो का व्यय बहुत बढ़ जाता था। साथ ही और भी अनेक प्रकार की असुविधाएँ उठानी पड़ती थौ। यहाँ तक कि कितनी ही बार तो उन्हें अपने बैठने के कमरे में ही भोजन आदि बनवाना पड़ता था। इस प्रकार इँग्लैण्ड में रहने तक उन्होंने पारसी को छोड़ अन्य किसी के हाथ का अन्न नहीं खाया। इसी कारण अंगरेज़ मित्रों द्वारा दिये गये भोजन के कई निमन्त्रण वे स्वीकार नहीं कर सके। 'लंदन-टाइम्स' के संचालक मि. वाल्टर ने जब मि. जान सीवर्ड नामक सहयोगी के साथ उन्हें अपने यहाँ रहने के लिए निमंत्रित किया, तब भी वे अपना रसोइया साथ ले गए थे।

२ दिसम्बर को अर्देशिर 'ग्रेवसेण्ड' पहुँचे और दूसरे दिन 'ब्लैक वौल' गये। ६ दिसम्बर को इंडिया हाउस में गये और वहाँ ईस्ट इंडिया कंपनी के चेअरमैन 'सर रिचर्ड जेन किन्स' और सेक्रेटरी 'जेम्स कॉस्मास' मेल विल' से परिचय हुआ। हिज़ मेजेस्टीस नेवी के सर्वेअर विलियम साय मॉड्स् के नाम वे पत्र लाये थे और अगले अध्ययन एवं अन्य समस्त कार्यक्रम की रूपी रेखा भी उनके ही द्वारा निश्चित की जाने वाली थी। इसीलिए अगले दिन उनसे भेंट थी। लंदन पहुँचने के बाद उनकी सर्वप्रथम यदि किसी से खानगी मुलाकात हुई हो तो वह दिसम्बर को सर चार्लस कोवर्स (बाँर एटला) से उनके किटज़राय स्क्वोपर वाले निवास स्थान में। वे भारत के एक प्रसिद्ध निष्ठावान् प्रेमी ही कहे जा सकते थे। अत एव जबतक अर्देशिर वहां रहे इनसे उन्हें पूरी-पूरी सहायता मिली।

कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स की सम्मति ने प्रथम मेसर्स भी वर्डस के आधीन अर्देशिर को काम सीखना पड़ा! उनका कारखाना टेम्स नदी के तट पर होने के कारण उस समय नदी के किनारे एवं उसके पात्र में चलने वाले अनेक प्रचार के निर्माण-सुधार कार्य प्रत्यक्ष देखने का सुयोग भी इन्हें प्राप्त हुआ। इसी प्रकार कोर्ट आफ डायरेक्टर्स ने इन्हें इँग्लैण्ड में रखने तक बंबई में मिलने वाले वेतन के सिवाय ३०० रुपये मासिक और देना स्वीकार किया। इस कारण अर्देशिर ने अत्यन्त उत्साहपूर्वक कार्यारंभ किया। नौस्थापत्य एवं तत्सम अन्य शाखाओं के विशेषज्ञ बनने के लिए आवश्यक सब विषय आत्मसात् करने के लिए वे अपने समय का अधिक से अधिक उपयोग करने लगे। अनेक कारखानों एव गोदामों काम करके उन्होंने वहां के प्रत्येक उच्च अधिकार से उत्तम प्रमाण पत्र भी प्राप्त किये थे।

अपने इंग्लैण्ड में रहने तक उन्होंने अनेक सेवानिवृत्त अंग्रेज़ों से भेंट की। उनमें से माउण्ट स्टूअर्ट एलफिन्स्टन्, लार्ड क्लेअर, जनरल ब्रिग्ज आदि के सिवाय अन्य कई बड़े आदमियों का समावेश भी किया जा सकता है, जिनके नाम प्रिंस अल्वर्ट, ड्यूक ऑफ केंब्रिज, ड्यूक ऑफ वेलिंगटन आदि थे। रॉयल सोसायटी के प्रेसिडेण्ट, दि मार्किचस ऑफ नार्थम्पटन् ने ११ अप्रैल १८४० को सोसायटी की सभा के लिए अर्देशिर को अपने घर बुलाया था। उस समय प्रिंस अल्बर्ट, सर रॉबर्ट पील, दि ड्यूक ऑफ आरगिल, दि ड्यूक ऑफ बक्लॉ, आदि सोसाइटी के सदस्यों से भी इनका परिचय कराया गया था।

१० फरवरी १८४० को महारानी विक्टोरिया के विवाह-समारोह में उपस्थित रहने का सुयोग भी इन्हें प्राप्त हुआ और उस समय की रोशनी भी देखने को मिली। उस समय लगाये गये असंख्य दीपकों में केवल रंगीन काँच में लगे हुए दीपक ही सब से अधिक प्रकाशमान दिखाई देते थे। एक लेवी के समय स्वयं महारानी से भेंट करने का सम्मान भी इन्हें प्राप्त हुआ था। उसका उल्लेख करते हुए अर्देशिर ने लिखा है कि "उस दिन लगभग दस बजे हम सर चार्ल्स् फोर्ब्स नामक परम मित्र के घर गए तो वहां उन्होंने मेरी और मेरे नौकर की पोशाक के विषय में पूछताछ कर लगभग एक बजे अपनी गाड़ी मेरे सुपुर्द कर दी। उसी में बैठ कर

हम वहां से सीधे सेण्ट जेम्स नामक राजप्रासाद में जा पहुँचे। वहां थोड़ी देर ठहरने के बाद 'सर जॉन हॉब हाउस' हमें मुलाकात वाले कमरे में ले गये और औपचारिक रीति से महारानी से मेरा परिचय कराया। उस समय वे बैठी हुई थीं और उसी के पास बाईं ओर प्रिंस अल्बर्ट तथा दाहिनी ओर अर्ल ऑफ ऑक्सब्रिज (लार्ड चेम्बरलेन) खड़े हुए थे।

९ जून १८४० को इन्हें हाउस ऑफ कामन्स की एक बैठक में उपस्थित रहने का अवसर भी प्राप्त हुआ और वहा जाने पर उस समय के प्रधान चर्चास्पद अफ़ीम के प्रश्न पर अपनी अभिरित (बयान) देना पड़ा था, किन्तु इस वक्तव्य में अर्देशिर ने अपना मत ईस्ट इण्डिया कम्पनी के ध्येय के विरुद्ध प्रकट किया था। इस विषय में अर्देशिर ने लिखा है कि सर चॉर्ल्स फोर्वण्डस मुझ से पूर्णतया सहमत थे।

इस प्रकार इंग्लैण्ड में रहते समय ६ मई सन् १८४० को इन्हें 'सोसाइटी ऑफ आर्ट्स एण्ड साइंस' नामक संस्था का सदस्य चुन लिया गया था। और उसी वर्ष सितम्बर में एसोसियेशन के यांत्रिक विभाग का भी इन्हें सदस्य बना लिया गया।

इसके बाद नवयुवा अर्देशिर अपना अध्ययन समाप्त करके जैसे ही बम्बई लौटने को तैयार हुए कि, कम्पनी के कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स ने बम्बई में कम्पनी की स्टीम फेक्टरी के लिए चीफ इंजिनियर और इन्स्पेक्टर ऑफ मशीनरीज़ की आवश्यकता के लिए १० जुलाई १८४० के लन्दन टाइम्स में एक विज्ञापन छपाया। अतः अर्देशिर ने तत्काल ही अपनी अर्जी उनके पास भेज दी। अन्त में आई हुई अन्य सब अर्जियों पर विचार करने के बाद अर्देशिर की ही उस स्थान पर नियुक्ति हुई। इस प्रकार जिन दिनों भारतीयों के लिए वैज्ञानिक शिक्षा की कुछ भी सुविधा नहीं थी, उस समय अर्देशिर जैसे उत्साही युवक का पाश्चात्यों के देश में जाकर सब प्रकार से पूर्ण यश एवं सफलता प्राप्त करना कोई साधारण बात नहीं कहा जा सकता। अन्ततः सन् १८४१ के आरम्भ में अर्देशिर 'बकिंघम शायर' नाम के जहाज-द्वारा बम्बई आए और १ अप्रैल से अपने नए पद पर प्रतिष्ठित हुए।

किन्तु बम्बई बन्दरगाह पर अर्देशिर की यह नियुक्ति 'टाम्स ऑफ इण्डिया' को बिलकुल नहीं रुची जब कि बम्बई गज़ट ने इसके लिए कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स की प्रशंसा ही की। बम्बई टाइम्स ने लिखा कि "किसी नेटिव (देशी) को कितनी ही शिक्षा क्यों न प्राप्त की हो अथवा वह कितना ही कर्तृत्ववान् क्यों न हो, बम्बई की स्टीम फेक्टरी जैसे कारखाने के उच्च पद पर आरूढ़ होकर वहां के अनेक अंग्रेज़ कारीगरों को मार्ग दर्शन करने तथा उनके काम पर देखरेख रखने और उन्हें अपने अधीन रखने के लिए वह कहां तक योग्य सिद्ध होगा, यह शंकास्पद ही है!" बम्बई गज़ट ने लिखा कि "इन महानुभाव को अपने गुणों और कर्तृत्वदक्षता के कारण ही अनेक उम्मेदवारों में से सफलतापूर्वक चुने जाने पर यह पारितोषक प्राप्त हुआ है। भारतीय जनता के लिए यह सम्मान कम महत्वपूर्ण नहीं है।" इन दोनों परस्पर विरोधी मन्तव्यों के प्रकट करने में टाइम्स के विरोध का कारण यह था कि सचमुच ही उस समय सौ से अधिक कारीगर अर्देशिर के अधीन काम कर रहे थे। तथापि १ अगस्त सन् १८५७ को कार्य मुक्त होने तक अर्देशिर अपने पद पर भलीभांति कार्य करते रहे।

कुछ विषयों में अर्देशिर वाडिया के विचार बड़े ही विचित्र और मनोरंजक थे। अपने इंग्लैण्ड-सम्बन्धी अनुभवों का वर्णन करते हुए उन्होंने एक स्थान पर लिखा है "लन्दन के गाड़ीवाले तथा सार्वजनिक वाहनों के चालक बड़े ही अभिमानी एवं दिवालिये होते थे। मुख्यतः विदेशियों से तो वे अधिक लाभ उठाते थे।" वहां का दूसरा कष्ट यह था "कि सड़कें बहुत ही गन्दी, कमसे कम बम्बई की अपेक्षा तो हर तरह घृणित एवं निकम्मी ही थीं!" इसी प्रकार दूकानदार और व्यापारियों के विषय में उन्होंने लिखा है कि 'उन्हें एक दूसरे के लिए अपशब्द का प्रयोग करने या निन्दास्पद वचन कहने की आदत सी पड़ी हुई है और प्रायः सर्वत्र मिथ्यात्व अथवा धूर्तता का ही व्यवहार देखने में आता है। इसी कारण उनके लिए अविश्वास उत्पन्न होकर उनसे व्यवहार करना विदेशियों के लिए अत्यन्त कठिन एवं कष्टप्रद हो जाता है।" इसी प्रकार इँग्लैण्ड की रॉयल मिण्ट (टकसाल) देख कर तो उन्हें बहुत ही असंतोष हुआ; क्योंकि बम्बई की टकसाल की अपेक्षा वह बहुत ही निम्न कोटि की थी।

सन् १९५१ के सितम्बर में वे दूसरी बार इंग्लैण्ड गए। उस समय कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स की अनुमति से विभिन्न प्रकार की नवीन यांत्रिक सुधारणाएँ देखने के लिए उन्हें अनेक नगरों का भ्रमण करना पड़ा। इतना ही नहीं वरन् वे अमेरिका भी गए और अपने बम्बई वाले कारखाने के लिए वहाँ से लकड़ी चीरने के कुछ यंत्र भी ले आए।

सन् १८५५ में उन्हें 'जस्टिस आफ पीस' की उपाधि प्राप्त हुई। सेवा-निवृत्त होने पर सन् १८५९ में उन्होंने तीसरी बार विलायत यात्रा की। इसके बाद सन् १८६१ ई. में कराची की इंडस फ्लोरिल्ला कम्पनी में इन्हें सुप्रिन्टेण्डिङ्ग इंजिनियर बनाया गया और इस पद पर दो वर्ष तक कार्य करने के पश्चात् अस्वस्थता के कारण उन्हें त्याग पत्र देना पड़ा। इसके बाद ये रिचमण्ड (इंग्लैण्ड) जा कर वहीं स्थायी रूप से रहने लगे और अन्त में वहीं १६ नवम्बर सन् १८७७ ई. को परलोकवासी हुए।

'वाङ्मय शोभा' (पूना) से

अनु. गोपीवल्लभ उपाध्याय

* * *

मानव भगवान् का मानस पुत्र है। हमारा प्रत्येक महान् कार्य मन से उत्पन्न होना चाहिए। एक कलाकार को प्रारंभ से उसी वस्तु को अभिव्यक्त करना चाहिए, जिसे वह स्वयं देखता या अनुभव करता है। मन की शिक्षा को कला की पूर्णता तक स्थगित नहीं करना चाहिए। प्रारम्भ से ही पक्षी उड़ने का प्रयत्न करता है अन्यथा उसके पंख निरर्थक हो जाते हैं। तूलिका के उपयोग की पूर्णता और कल्पना की पूर्णता दोनों एक कलाकार को बनाते हैं........

—श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुर

पारो

" कहाँ से आरहे हो ?"

" ग्रांट रोड ?"

" कहाँ जाओगे ?"

" चिंचपोकली—"

ठौर ठौर इस प्रकार प्रश्नोत्तर हुए। पान के ठेले के पास बैठा हुआ, पटरी पर दांत कुरेदता हुआ, या जल्दी में ट्राम की ओर लपकता हुआ, कोई यों ही पूछ लेता। मन ही मन रुपयों का हिसाब लगाते, या मुँह से कोई चौपाई गुनगुनाते हुए रामशरण उसी बेपरवाही से कह देता, चिंचपोकली—

"चिंचपोकली, चिंचपोकली। हम किस पोकली या शून्य में जा रहे हैं, यह तनिक भी पारो की समझ में नहीं आ रहा था। कहाँ और कितनी दूर वह ठिकाना है, उसे कुछ भी अनुभव नहीं हो रहा था। रुक कर और पीछे मुड़ कर देखना ज़रा भी नहीं बन पाता था। आगे आगे रामशरण चल रहा था और पीछे से उसका साथी आँख रखे हुए था। दोनों के बीच पारो की खींचतान और मिट्टी पलीद हो रही थी। दो दिन से यह बखेड़ा लगा हुआ था। गोरेगाँव से ग्रांट रोड और ग्रांट रोड से चिंचपोकली। "कहाँ जावत हौ?" किसीने टोका और रामशरण रुक गया। उसके अपने देश का आदमी था। बीच राह उन दोनों की बातचीत शुरू हुई। पारो को भी रुक जाना पड़ा। उनकी बातें उसे समझ नहीं आ रही थीं। पर वह किसी बूचड़ के घर की ओर नहीं जा रही है, इतना वह बूझ सकी। उतना ही उसे संतोष हुआ। आस पास की बड़ी बड़ी इमारतों, खाने पीने की चीज़ों से भरी हुई दुकानों, टेढ़े-मेढ़े चलनेवाले पशुवत् मनुष्यों, और पंछियों की तरह उड़नेवाले वाहनों को देखती हुई, वह उसी तरह अकड़ाव में खड़ी रही। वह कितना अलग और विचित्र वातावरण था सब! उस आश्चर्यमय संसार को देखकर लगभग वह पगला गई और उस आवेग में, जाने अपना क्या हो, इस भय से उसकी आँख डबडबा आईं।

सहसा एक मोटर चीखी और पारो के पैरों के पास ठिठक गई। बिदक कर पारो ने उछलने की चेष्टा की। वह रामशरण का हाथ झिंझोड़ कर बेतहाशा दौड़ने लगी। छलाँगें लगती हुई, मनुष्यों से दूर चली जाय, जंगल में जाकर खोजाय यह विचार उसके मन में कौंध गया। पर चारों ओर दिखने वाले लोग और मोटरें देखकर तो वह और भी सहम गई। तीव्र इच्छा होते हुए भी वह उसी तरह ठिठकी रही। उसकी आँखें पुनः तर हो गईं और हलक सूखा पड़ गया। ज़ोर से चिल्लाने की भी उसे सुधि न रही।

इतने में रामशरण ने चालाकी से उसके गले की रस्सी का सिरा थाम लिया। एक गाली देकर वह रस्सी खींचने लगा। पिछले आदमी ने उसकी पूँछ मरोड़ी और उसे आगे ठेल दिया। मकानों की खिड़कियों से कपड़ों से लैस नन्हे बालक, और बड़े बड़े लोग भी कुतूहलवश भैंस का यह तमाशा देख रहे थे।

पारो चुपचाप चल रही थी। पीटने को उद्यत लोगों और दहाड़ने वाली मोटरों से उसे बड़ा डर लग रहा था। गोरेगाँव से आते समय ऐसी असंख्य गाड़ियों से उसके हृदय में भय उत्पन्न हुआ था और ग्रांट रोड के बाज़ार में शोख तबीअत लोगों ने उससे छेड़ छाड़ की थी। एक-एक बात याद करके अपने चारों पैर वह तेज़ी से उठाने लगी।

एक मेहराबी दरवाज़े के पास रामशरण रुक गया। ठिकाना आगया, यह पारो भाँप गई। अचानक उसे भैंसों की बू आई। कई भैंसों की बू। उनके गोबर की, थनों की, गरदनों की बू। उनके सामने के चारे-सानी की बू। शायद कोई बड़ा घोष था! बाज़ार नहीं था, और बूचड़खाना तो जरूर ही नहीं था। पारो को खुशी हुई। वह मनोयोग और मुक्तकंठ से चिल्लाई। उस पुरानी बड़ी कमान में से वह खींच कर ले जाई गई। दोनों ओर अँधेरे दरबे थे, और उसमें कबूतरों की तरह लोग ठुँसे हुए थे। पारो को लगा, जैसे वे लोग मुर्दा हैं। दरअसल कीड़ों की तरह वे कुलबुला रहे थे। इन दरबों को पार करते ही बड़ा घोष पड़ता था। ऊपर छप्पर पड़ा हुआ था। दोनों ओर घास की गंजियाँ खड़ी थीं, और बीच की जगह

में सैकड़ों मोटी-मोटी भैंसें बँधी हुई थीं ।

पारो देखती ही रह गई । जिस प्रकार वे मनुष्य मृतवत् जान पड़े, उसी तरह ये भैंसे भी फूस की भरी हुई थीं । पर ये सजीव थीं । चुपचाप जुगाली कर रही थीं । किसी की भी आँखों में चमक शेष नहीं थी, किसी के भी अंगों में शक्ति नहीं जान पड़ती थी । फिर भी वे भैंसें मरी हुई नहीं थीं । पारो ने एक परिक्रमा लगाई । उसे उस प्रकार घुमाया गया । कहाँ, किस तरह बांध रखें, यह देखने के लिए, कोने में सूखे फर्श पर खाटें लगा कर पौढ़े हुए अन्य पुरबियों को दिखलाने के लिए ।

रामशरण उसकी सराहना कर रहा था । उसके सींग पर लगा हुआ सरकारी नम्बर बता रहा था । उसके शरीर पर थाप मार कर दूध का अनुमान बाँध रहा था, और हुक्का गुड़गुड़ानेवाले और खाटों पर फैले हुए उसके साथी यह सब सुन रहे थे, पारो को देख रहे थे । उनके विकारहीन चेहरे देख कर परो बेचैन होगई । गोरेगांव के पास के देहात के, पहली बिदाई के समय बलैया लेने वाली दादी और लसलसा बालक उसे याद हो आये । ग्रांट रोड के बाज़ार में उसकी सँभाल रखनेवाला सीधा-सादा पुरबिया उसके सम्मुख फिर गया । और अब यह रामशरण और उसके साथी ! सब बूचड़ के मौसेरे भाई । किसी को भी कुतूहल नहीं था, उससे सहानुभूति नहीं थी । पारो ने गर्दन घुमाकर अपनी सहेलियों को देखा । वे भी परायों की तरह देख रही थीं । कुछ देहली की थीं । कुछ सूरत की । सभी मानो गोबर की बनी हुई थीं । इनके साथ बाँधे जाने के विचार से वह सहम गई । कान फड़फड़ाती करुण दृष्टि से रामशरण को देखने लगी !

जाने रामशरण को क्या मालूम हुआ । उसने बातें बन्द की, बीड़ी बुझाई गई और उसे ले चला । पारो को पानी की गन्ध आई । नथने फुरफुराती हुई वह आतुरता से चली गई । लगकर ही पाँच कदमों पर, एक बछिया के परिमाण का चहबच्चा था । उसी पर, ऊँचे, पानी की एक बड़ी टाँकी थी जिसमें संग्रह किया हुआ पानी था । वह उथला चहबच्चा और बासी पानी देख कर पारो की प्यास बुझ गई । बड़े तालाब की बहती हुई धारा का, डोल से निकाला हुआ कुए का दूध के जैसा पानी कहाँ और यह कुनकुना, काला कूड़ा-करकट मिला पानी ! वह इसे पीएगी ? पारो ने मुँह फेर लिया । खीज कर उसने बच्चे के नन्हे से किनारे पर सींग पटके । कहीं और देखनेवाले रामशरण को सुध आई । पारो को वापिस खींचने लगा ।

अचानक प्रचण्ड ध्वनि हुई । शोर बढ़ता ही गया । और पास ही, सामने से विशाल अजगर की तरह एक रंगीन गाड़ी तेज़ी से आई । उड़ते हुए पक्षी और भी ऊँचे उड़ गये और ज़मीन पर के पत्थर इधर-उधर उछल पड़े । विद्युत् की तरह गाड़ी निकल गई । असंख्य मृत मानवों को लेकर विलीन हो गई ।

पारो चौफाल कूदी । भय से उसके दाँत बैठ गए और आँतें सिकुड़ने लगीं । भाग जाऊँ इस विचार से वह छटपटाने लगी ।

पर रामशरण ने उसके गले की रस्सी कस कर पकड़ रखी । एक व्यक्ति आया और उसकी गर्दन मरोड़ने लगा । उसके गले में एक और रस्सी आ पड़ी । कोने में लेटे हुए पुरबिये ज़ोर से हँस दिये । उनकी हँसी में छिपा उपहास पारो को ज्ञात हुआ । तो ऐसे शोर और ऐसे अजगर नित्य के ही थे ! काँप कर शरमा कर वह मालिक के पीछे हो ली ।

पारो को घोष के चौतरे पर चढ़ाया और एक ऐसे रिक्त स्थान पर कस दिया गया । रिक्त स्थान ! वास्तव में पहले ही सौ की जगह व्यर्थ छोड़ी नहीं गई थी । और ज्यादह जगह थी भी नहीं । दोनों ओर ऊँची और मज़बूत दीवारें खड़ी थीं और घोष के सामने रेल का लोहमार्ग फैला हुआ था । घोष के ऊपर एक बौना सा छप्पर था, और उसी के उदर में पुरबिये लोगों के सोने की खाटें लटक रही थीं । सब कुछ जैसे एक दूसरे से सटा कर, एक दूसरे पर रच कर रखा हुआ था । पारो को रुँधा-रुँधा सा लगा कि सामने से दौड़नेवाली गाड़ियाँ अपने शरीर पर चली आ रही हैं, खाटें सिर पर गिर रही हैं । उसके प्राण कसकसाने लगे । किसी हिंस्र पशु की दाढ़ में या बूचड़ की छुरी के नीचे गर्दन दे देना उसे बेहतर जान पड़ा । पर उस जगह थोड़ी देर भी ठहरना असंभव था । दारुण भय के कारण उसके खुर कांप उठे । पैर सिकोड़ कर वह झट से बैठ गई ।

उसी क्षण उसके दोनों ओर की देहली वाली भैंसें उठ खड़ी हुईं । पारो ने देखा, ठीक उसी क्षण

पड़ोसियों के पास की भैंसें बैठने लगीं। यह कौन सी क़वायद है, उसकी समझ में नहीं आ रहा था।—धीरे धीरे समझ में आया। जगह इतनी थोड़ी थी कि सभी का एक साथ खड़ा रहना असम्भव था। एक खड़ी है, तभी तक उसकी पड़ोसिन को पास की ख़ाली जगह में बैठ लेना चाहिए। इस तरह पारी पारी से बैठना और खड़े रहना हो सकता था।

पारो का सारा देह रोमांचित हुआ। वह तन कर खड़ी रही पड़ोसियों के देह उससे टकराने लगे। आँखों में प्राण लाकर उसने दोनों की ओर देखा। पर उनमें चेतना भी शेष नहीं थी। दीवार की तरह वे खड़ी थीं। भीड़ सहती हुई, दुख सहती हुई। उनकी मधु-सी आँखों की मिट्टी हो गई थी, सींगों की तड़पन टूट चुकी थी। पारो को तो उनका डर लगा। इनके साथ रहना पड़ेगा, इनकी तरह बन जाना पड़ेगा, इस विचार से वह सन्न हो गई।

सामने रामशरण ने सानी ला रखी। पारो को उतना ही छुटकारा मालूम हुआ। काफ़ी भूसा और बिनौला खा लेने पर उसे चुस्ती मालूम हुई। कल्ला हिलाते हुए, जुगाली करते हुए, उसने जाने कब, आँखें बंद कर लीं।

उसकी बंद आँखों के सामने बड़े बड़े पहाड़ खड़े रहे। सब ओर बड़ी बड़ी झाड़ियाँ और हरे भरे चरागाह थे। पहाड़ों के उस पार से धूप की चादरें लहरा रही थीं और पहाड़ों के ऊपर ज़ोर की हवा चल रही थी। तलहटी के जलाशय में पारो डूब उतरा रही थी। पानी की लहरें उसके नथनों और कानों को गुदगुदा रही थीं। फिर वह पानी के बाहर गर्दन निकालकर तैरने लगी। बीच में चारों खुर जमा कर कीचड़ उछालने लगी। उसकी पीठ पर सफ़ेद बगला था। और उसे मेंढकों का स्वर सुनाई दे रहा था। जब उसकी काली चमड़ी मँज चुकी, वह उठी। लगातार हरी हरी घास में जंगलों में घूमने लगी। बगले और कौए उसका पीछा कर रहे थे। सामने गिरगिट और टिड्डियाँ उछल कूद कर रही थीं। दुम उठा कर, कान फड़फड़ाती हुई वह चौफाल कूद रही थी। बीच ही में रुक कर कोमल दूब के कल्ले कुतर लेती। एक ठौर मौन खड़े रहकर रोमंथ करने में तो बड़ा आनंद था! उसकी गर्दन सुरसुरा रही थी, जठर गरमा रहा था, और थन छलक आये थे। कहीं से उसका बछड़ा लपक आया और थनों को झंझोड़ने लगा। सुदूर क्षितिज से उसका चरवाहा आया! गले की घंटियों को रणरणाती हुई साथिनें आईं। सारा सुख असह्य हो उठा उसने आँखें बंद करलीं।

पारो ने चौंक कर आँखें खोलीं। वह कहाँ खड़ी है, उसे यह सूझ ही नहीं रहा था। उसने कान फड़फड़ाये, पूँछ उठाई·········ना! पैरों में बछड़ा अटक नहीं रहा था, गले में घंटी लटक नहीं रही थी। सामने पर्वतमालाएँ तो थीं ही नहीं। फिर सारी स्थिति उसकी समझ में आ गई। दोनों ओर देहलीवाली भैंसें भीड़ कर रही थीं, और सिर पर चरवाहा हुक्का गुड़गुड़ा रहा था! सामने लोहे की पटरियों पर साँपिनें सुरसुराने लगीं। और फिर उसके भी पार के काले गोल विशाल हौज़ से धुआँ निकलने लगा। धुएँ से सांपिनों की अनेक आकृतियाँ बनीं, और आकाश में की भैंसों से टकराने लगी। चारों ओर रहस्यमय अन्धकार फैला हुआ था! किसी गुहा से चमकनेवाली आँखों की तरह देख पड़नेवाले लट्टुओं से तो भयानकता और भी बढ़ चुकी थी।

पारो की ज़बान अन्दर खिंच गई, और आँख के डेले बाहर झाँकने लगे। छुटकारे या भाग जाने का चैतन्य भी उसमें शेष न रहा।

अचानक उसकी रस्सी ढीली पड़ी, और उसे छोड़ दिया गया। उसका उदास मन उल्लसित हुआ। उसकी छः साथिनों को छोड़ कर घोष से बाहर लाया गया। पारो को लगा, इन नई दोस्तों को सींगों से गुदगुदाया जाय। पर सभी चुपचाप खड़ी थीं। वह चौंकी, और उन्हीं की तरह दीन बनकर चलने लगी। पर अधिक न चलना पड़ा। पूर्व के चहबच्चे के पास सबको लाया गया। फिर अपनी अपनी जगह कस दिया गया।

इतनी सी सैर, इतनी सी छुट्टी! घंटी बजाते हुए चरागाह में मनमाना घूमना नहीं, ऊपर से ढुलकते हुए उतरना नहीं और धूप खाते हुए अचेत बैठे रहना नहीं। घोष की कारा में पारो फूस से भरी वस्तु की तरह खड़ी रहकर आँसू बहाने लगी! किसी के गले में घंटी नहीं थी। रेलों का, मोटरों का, मनुष्यों का कर्कश कोलाहल

अव्याहत गति से चल रहा था। वहाँ घण्टी से गूँजने वाली मधुर ध्वनि कहाँ से आती उस ध्वनि के लिए वह व्याकुल हो उठी।

सब के गले सूने तो थे ही, किसी के पट्टे पर मालिक की लकड़ी का निशान भी नहीं था। किराये के टट्टू हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे और मशीन की तरह पशु रोमंथ कर रहे थे। पारो त्रस्त हो गई, दुःखी होने लगी। उसकी दूर दूर की पर्वत-श्रेणियाँ देखने की इच्छा तीव्र हो उठी। पानी के पास की नरम मिट्टी सूँधे घाँस की सलाइयों पर फुदकनेवाले टिड्डीदल को खदेड़े, पीछे गर्दन घुमा कर अपने बछड़े को—सभी समाप्त हो गया था। सामने के धुएँ के बादल, विद्युत् से निकलनेवाले वाहन और भैंसों की श्रेणियाँ, इनके सिवा कुछ भी शेष नहीं रह गया था।

किसी समय उसे जान पड़ा कि पूरी रात हो चुकी है। सिर पर टँगी हुई खाटों पर वे बूचड़ खुर्राटे भर रहे थे। उनके लिए यह रात ही थी। कई तरह के शब्द सुनाई दे रहे थे। ठौर ठौर बत्तियाँ जल रही थीं। पारो को पहली रातें याद हो आईं। देहात के उस घोष में रात को भी कितना मज़ा था। झिल्लियों की झीं झीं, शाख़-पत्तों की मरमराहट, किसी के सींगों की खड़ खड़ ध्वनि! और यहाँ छाया की तरह खड़े रहना भर! आवाज़ सुनते और रोशनी देखते हुए। अँधेरा और रौशनी, मालिक और सहेलियाँ, घोष और गाड़ियाँ—किसी में भी कोई अर्थ शेष नहीं था।

पारो रोमांचित हो उठी। विचार आया कि, शेष शक्ति बटोरे, दाँतो से रस्सी चबा दे, और इस कारा से मुक्त हो! सामने की पटरियों पर मर जाय, धुएँ में तैर चले, चौकाल कूदती हुई कहीं निकल जाय! वह व्याकुल हुई, छटपटा गई। पर सभी अचल और स्थिर था। इतनी सब होकर, इतना बड़ा झुण्ड होकर......उसने सींग पटक कर, पूँछ उड़ा कर पड़ोसिन को इशारा किया। पर पड़ोसिन में जान थोड़ी ही सी शेष थी। आँखों में आँसू भरकर वह पारो की ओर देखने लगी। पारो बच्ची—अब तुम्हें छुटकारा नहीं। आठ सेर से कम तुम्हारा दूध हुआ कि तुम्हें बूचड़ के घर भेज देंगे। तब तक यहीं रहना होगा। व्यर्थ ऊधम न करो। दिन में से दो बार, पाँच क़दम पर पानी पीने के लिए जाना, दिन में से दो बार पाँच सेर दूध देना दूसरे झमेले में मत पड़ो। काफ़ी खाने को मिल जाता है, यही ग़नीमत समझो। सामने से मनुष्यों के जीवित शवों का जो लगातार जुलूस सा चला करता है, उनसे हम अधिक सुखी हैं......

पारो की आत्मा जल भुन गई। अपनी यह दशा होगी, यह जानकर वह बौरा गई। पिछले बायें खुर से बगल खुजलाते हुए, वह दूसरी पड़ोसिन की ओर देखने लगी। वही दिलासा देगी, मार्ग बताएगी! पर उसके खुर लकड़ी के कुन्दे बन चुके थे और सिर मिट्टी का लौंदा मालूम हो रहा था। पारो के छेड़ते ही उसमें थोड़ा चेत आया और वह आहें भरने लगी।

मालिक उँगलियों से दूध निकालता है, यही क्या कम है? कहीं कहीं तो सुना है, काँच का बरतन थनों को चिपकाया जाता है। थनों से ख़ून निकलता है।

पारो अब विकल हो उठी, सींग खड़खड़ाने लगी। खुरों से ज़मीन खड़खड़ाने लगी। पर घोष के सभी पशु हलचल करना भूल चुके थे। किन्तु पारो तो चुनौती दे रही थी, चीत्कार कर रही थी।

आख़िर वह थक कर, रुक गई। उसके अरण्य रोदन की कहीं दाद न मिली। सभी पाषाणवत् रोमंथ कर रही थीं। पारो की छटपटाहट से उन मशीनों का रोमंथ अधिक स्पष्टतापूर्वक चल रहा था, समाप्त होनेवाला नहीं था। पारो की गर्दन अकड़ गई और खुरों की दरारों से ख़ून निकल गया। उसे लगा, अपने थनों से ख़ून आ रहा है, अपनी पीठ की चमड़ी उधेड़ कर उसके चप्पल बजाते हुए पुरबिये लोग घूम रहे हैं, अपनी गर्दन से सर अलग होकर मोटर से चिपक गया है, फिर उसे क्या हो रहा है, क्या चाहिए, धीरे इसकी भी चेतना जाती रही।

पिछली रात, ऊपर लेटे हुए पुरबिये पंखविहीन पक्षियों की तरह नीचे उतर आये। ज़ख़्म पर चोंच मारने वाले कौओं की तरह थन खींचने लगे। बछड़े की अस्पष्ट स्मृति से, वन-श्री की अधूरी याद से, पारो करुण शब्द से चीत्कार कर उठी। पर अन्तिम बार। उस क्रन्दन में उसकी आत्मा उड़ गई......

फिर न जाने रुकनेवाली गाड़ियों की तरह दिन

जाने लगे। दो बार पानी पीना, दो बार दूध देना ! चार खुर, चारा, जठर, और चार थन, इनके अतिरिक्त कुछ भी शेष नहीं रह गया था। शीघ्र ही वह भी चुक गया। हिलता हुआ जवड़ा, और भरनेवाला उदर, इनकी सन्धि से बना हुआ एक यन्त्र तैयार हो गया जो गैस के धुएँ के सामने और विद्युत् की गाड़ियों के सामने अव्याहत रूप से कार्य करता रहा।

सिकन्दराबाद

अनु : राधाकृष्ण इन्दाणी

* * *

नारी से

गा सकोगी प्रीत के क्या गीत सजनी !
यदि, तुम्हीं ने प्यार में लुटना न जाना ?

रूप की देवी, कला की साधिका आराधिका तुम,
शरद-शशि की ज्योत्स्ना-सी, स्वप्न की उपहार सी तुम,

किन्तु, प्रिय पर विजय पाता सखि तुम्हारा-
लाज से आरक्त हो पलकें झुकाना।

साज के श्रृंगार से जब गूँज उठते स्वर सजीले,
याद बरबस दिला देते बाँस की उस बाँसुरी के-
कदम की छाया तले, देखे गये सपने सुनहले,

किन्तु, 'उनको' मुग्ध करता अलि तुम्हारा-
उँगलियों से उलझना, कुछ कह न पाना।

दृग-गगन में व्यथा के घन, अश्रु की बरसात सुन्दर,
अरुण अधरों पर मचलती, रेशमी मुसकान मनहर,
चिर महाकवि की अमर साकार कविता, कृति सुघरतम-
शुभे ! तेरी साँस की हर लहर सुरभित, सरस, सुखकर;

किन्तु, प्रियतम के निकटतम देवि तेरा-
तिमिर में ध्रुव तारिका बन झिलमिलाना।

—दीप्ति

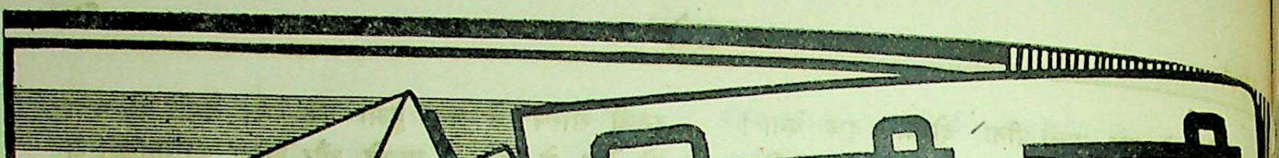

चिट्ठी-पत्री

(१)

प्रतीक्षा किस तरह करें

"यदि आप प्रतीक्षा करना जानते हैं तो समय पाते हैं।" साधारणतः, जब आप कुछ करने को होते हैं आपकी प्रवृत्ति यह रहती है कि आप उस कार्य की ओर भाग पड़ें और जल्दी से उसे पूरा कर दें, उस कार्य के विचार और पूरा करने के बीच आप कोई अवकाश नहीं छोड़ना चाहते। आपको यह जल्दी लग जाती है कि वह चीज़ पूरी हो जाय। आप में यह सावधानी नहीं रहती कि आप कुछ ठहरें और अपने चारों ओर देखें, अवस्था और परिस्थितियों को देखें और तोलें, लक्ष्य को प्राप्त करने का उत्तम मार्ग सोच निकालें। इस उतावलेपन का परिणाम होता है विफलता, बहुधा प्रायः पूर्ण विफलता। आपको फिर से आरंभ करना होता है। और यदि आपने इसका पाठ नहीं सीखा तो आपको फिर बार बार आरम्भ करना पड़ सकता है। स्पष्ट है कि आप समय खोते हैं, शक्ति खोते हैं, सफलता खोते हैं। इसके विपरीत, करना आपको यह चाहिए कि काम करने के पहले आप उस पर कूद न पड़ें वरन् समझें कि इसका क्या अर्थ है और इसके अन्दर क्या है, आपको जो बीड़ा उठाना है उसका स्पष्ट रूप या ढांचा अपने मन की दृष्टि के सामने रखें, न कि इसका कोई अस्पष्ट और अनिश्चित विचार रख कर वह कार्य करें, यह सोच कर कार्य करें कि ज्यों ज्यों आप आगे बढ़ते जाएँगे वह चीज रूपायित होती जायगी, वह स्वयं अपना ख़याल रख लेगी। आपको तो अपने कार्य का स्पष्ट रूप अपने सामने खड़ा कर लेना होगा, और उसके लिए बिलकुल ठीक ठीक विधियों और साधनों को भी ढूंढ़ लेना होगा, अपने हाथों में संभवतया अच्छे से अच्छे औजारों को रखना होगा। जब आप आवश्यक साधनों से पूरी तरह सज्जित हो जाएँगे तभी आप समय या शक्ति के अपव्यय के बिना सफलता पाने के लिए निश्चित हो सकते हैं।

और तब, हर एक चीज़ का एक समय होता है, एक अनुकूल शुभ घड़ी होती है। कोई चीज़ जब चाहें किसी भी समय नहीं की जा सकती, नसकी अपनी नियत घड़ी होती है, उस मुहूर्त के पहले सैकड़ों बार प्रयत्न करने पर भी आप सफल नहीं हो सकेंगे। किन्तु जब समय परिपक्व हो जाता है, वह चीज कितनी आसानी से पूरी होती दिखाई देती है! समय की यह परिपक्वता किस में निहित है? इस शुभ घड़ी के क्या चिह्न हैं? ऐसा होता है तब जब उचित यन्त्र आपके पूरे अधिकार में रहते हैं और जब परिस्थितियों की दशा ऐसी रहती है कि विघ्न और बाधा न देकर वे सहायक होती हैं और उस कार्य को पूरा करना चाहती हैं। किन्तु यह किस तरह पहचानें या पता पायं कि ऐसी स्थिति आ गई है? अपने मन या बाह्य तर्कशीलता के द्वारा नहीं। यह आवश्यक है कि आप स्थिति को एक सम्बोधिमूलक, सहज दृष्टि से जान सकें। इसका संकेत सदैव आपकी चेतना की स्थिति में ही रहता है, अर्थात् जब वह एक महान् प्रशांति, विश्वास और भरोसे से, एक ज्योतिर्मय एकाग्रता से परिपूर्ण रहती है।

—श्यामसुन्दर झुनझुनवाला

(श्री अरविन्द आश्रम के मन्त्री श्री नलिनीकान्त गुप्त ने श्री मां से वार्त्तालाप किया था। उन्हीं बातों के आधार पर यह लिखा गया है।)

(२)

सहृदय महाकवि निराला

कई वर्ष बीते बनारस की एक वसंत पंचमी पर महाकवि "निराला" की वर्ष गांठ मनाने का निश्चय किया गया था। महाकवि "निराला" अस्वस्थ होते हुए भी इस आयोजन में शरीक हुए थे। लम्बा चौड़ा शरीर स्वागत के परिधानों से सजा बड़ा आकर्षक दीख रहा था और लगता था कि हिन्दी में नया 'वसंत' आज से शुरू होने जा रहा है। महाकवि "निराला" आज से ५६ वर्ष पूर्व जन्म लेकर हिन्दी साहित्य के लिए एक नया मार्ग अनेक विघ्न बाधाओं और भारी तूफानों के बीच बना सके हैं।

लेकिन वह पराधीन भारत की मेरी कल्पना इस स्वाधीन भारत में भी पूरी होती नहीं दीख रही। 'महाकवि' वर्षों से रोगी हैं। उनकी चिकित्सा के लिए कोई ऐसा साधन अभी तक नहीं जुटाया जा सका जो उन्हें आराम तथा आरोग्य देने के लिए पर्याप्त हो। यदि हिन्दी संसार अपने ऐसे रत्नों की भी परवाह नहीं करता तो वह दिन दूर नहीं जब हिन्दी साहित्य के वे महारथी जिन्होंने तूफानों के बीच भी हिन्दी साहित्य की नाव को अपने पुरुषार्थ की पतवार से सँभाले रखा है, विस्मरण के अन्धकार में विलीन हो जाएँ।

मानवीय हृदय

महाकवि निराला में कवि-हृदय के साथ एक ऐसे बड़े इन्सान का दिल है जो हर समय दूसरों के दुःख-दर्द में शरीक रहता है। यही क़ारण है कि "निराला" राह चलते उन गरीबों को अपने शरीर के कपड़े उतार कर दे डालते हैं जो शीत में सिकुड़ते उन्हें दिखाई देते हैं। यही हाल उनकी जेब का रहता और रहा है। उसमें जब भी पैसे आये पहले वे उन्हें नहीं भूले जो उनके सामने अर्थाभाव से ग्रस्त दिखाई दिये।

उदारता के प्रतीक

महादेवी वर्मा ने उन्हें 'अपरा' पर मिले २१०० रु० के पुरस्कार की चर्चा करते हुये एक स्थल पर लिखा है कि वे उस पुरस्कार में से ५० रु० प्रति मास स्व० मुन्शी नवाजिदलाल की विधवा को देते रहे। महादेवी वर्मा ने इस प्रसंग में लिखा है कि जब उनसे वह धन अपने पर खर्च करने को कहा गया तो उन्होंने सरल विश्वास के साथ कहा कि वह तो संकल्पित धन है। अपने लिए उसका उपयोग करना अनुचित होगा।

इस प्रकार बहुत से ऐसे उदाहरण हैं। जब वे दानियों की परम्परा में बड़े से बड़े दानी को मात कर देते हैं। इन पंक्तियों के लेखक को स्वयं निराला जी की इस दानशीलता का एक उदाहरण याद है जब उन्होंने अपनी जेब में पड़े ४१ रु० की सम्पूर्ण निधि बनारस के हास्य रस के प्रसिद्ध कवि 'बेधड़क बनारसी' को एक कविता के उपहार में भेंट कर दी थी। 'बेधड़क बनारसी' ने लाख बार मना किया पर 'निराला' अपना दिया पुरस्कार कब लौटाने चले थे। एक नहीं ऐसे सैकड़ों उदाहरण महाकवि निराला के हैं जब उन्होंने अपनी जेब दूसरों के लिये खाली कर दी।

निराला का बजट

कविवर निराला के साथियों ने कई बार उनकी असीम दानशीलता को रोकने के लिये उनकी आय का बजट बनाया है। पर अन्त में उन्हें इस रास्ते से हट जाना पड़ा है।

इस सम्बन्ध में एक और मजेदार घटना है कि निराला जी का पारिवारिक बजट बनाने के लिये महादेवी वर्मा ने एक बार जिम्मेदारी ली। इस बजट में नाई से लेकर उनके समस्त कामों की सूची तैयार की गई थी लेकिन उनकी अर्थ मंत्रिणी महादेवी वर्मा महाकवि के बजट का एक सप्ताह कायम रखने में ही घबरा गईं। जब उन्होंने ५० रु० किसी विद्यार्थी की सहायता के लिये और अन्य मांग किसी रोगग्रस्त साहित्यकार तथा किसी तांगेवाले की माता की सहायतार्थ मांगा इस प्रकार उनका जमा किया हुआ धन तीन दिन में बँट गया।

सहृदयता

महाकवि निराला का सबसे बड़ा गुण उनकी सहृदयता है। जिन्हें घरवाले भी इतनी आत्मीयता से याद नहीं करते निराला उनकी चिताओं पर जाकर फूल चढ़ाते हैं। इस सम्बन्ध में पं० जवाहरलाल के बहनोई श्री आर० एस० पंडित का स्मरण हो आता है जिनका कई वर्ष हुए जब निधन हो चुका है उस दिन रात को

८ बजे जब महाकवि निराला को पता चला कि पण्डितजी का शव त्रिवेणी के श्मशान घाट पहुँचाया गया है तो वे चल पड़े। निराला जी के निकटवर्ती ने उन्हें यह कह कर रोकना चाहा कि शवयात्रा है जानेवाले लौट चुके होंगे लेकिन निराला टस से मस नहीं हुए और बोले "सब लोगों" से क्या करना है चल कर चिता देख आएँ।'

रात को ६ बजे सुनसान रात में निराला आर० एस० पण्डित की अधजली देह की चिता पर रात भर पहरा देते रहे जब कि आर० एस० पण्डित के सगे कहलाने वाले सब लोग घण्टों पूर्व चिता शव पर रख कर वापस लौट गए थे। निराला ने उस दिन उपवास रख कर एक श्रद्धांजलिमय कविता तैयार की जो अगले दिन प्रभात के 'भारत' में छपी थी।

एक घटना नहीं और भी अनेक घटनाएँ ऐसी हैं जब निराला ने तारे गिन कर रात पूरी की हैं।

पन्त जी के रोग से व्यथित

एक दिन निराला जी को पता चला कि सुमित्रानन्दन पन्त दिल्ली में टाइफाइड ज्वर से पीड़ित हैं। इस सम्बन्ध में एक अखबार में पन्त जी के निधन का समाचार भी छप गया। इस समाचार ने निराला जी को बेचैन कर दिया और उनका शरीर पन्त जी की इस वेदना से छटपटा उठा। इस सम्बन्ध में निराला जी महादेवी वर्मा के दिये गये तार का इन्तजार रात भर पार्क में बैठ कर करते रहे।

इसी प्रकार महाकवि निराला ने जब मेरठ की कवयित्री होमवती देवी के निधन का समाचार सुना तो निराला के आंसू वह निकले।

आज सारे हिन्दी संसार में दूसरों की वेदना पर यदि किसी महाप्राण के आंसू बहे हैं तो वे हैं सहृदय निराला के।

अतिथि सेवा

इन सब बातों के अलावा निराला आज अशक्त होते हुए परिचित अपरिचितों का अतिथि सत्कार करने में सबसे आगे हैं। निराला जी का अतिथि उनके हृदय से सत्कार पाता है, उसके बाद भी यथाशक्ति साधन जुटाने में वे पीछे नहीं रहते हैं।

एक बार आप कविवर मैथिलीशरण गुप्त को अपने घर ले गये थे। वहां उन्होंने अपने अल्प स्थान पर ही उनके लिये सुव्यवस्था की थी। निराला जी का मेहमान दूसरे के घर पर नहीं जाता। वे अपने मेहमान की रसोई जुटाने में झूठे बर्तन तक मांजते हैं।

निस्पृहता

इन बातों के अतिरिक्त सबसे बड़ी निराला जी की अपनी विशेषता निःस्पृहता है जिसने उन्हें आज तक अपनी स्वाभिमान जिन्दगी बिताने की प्रेरणा दी है। निराला जी कभी अपने सिद्धान्तों से डिगे नहीं हैं।

इस दृष्टि से वे सचाई के पारखी हैं। सच्चाई के लिये उनकी जान न्यौछावर है। परन्तु अपने सिद्धान्त की खातिर वे पहाड़ से भी टक्कर लेने को तैयार रहते हैं।

महात्मा जी से टक्कर

इन्दौर के साहित्य सम्मेलन में महात्मा गान्धी ने अपने भाषण में हिन्दी में कोई भी रवीन्द्रनाथ न होने की चर्चा की थी। इस चुनौती को महाकवि निराला नहीं सह सके और उन्होंने उसी वर्ष महात्मा जी से यह सवाल किया कि आपके उस भाषण का हिन्दी के साहित्यकारों पर क्या प्रभाव पड़ेगा। उत्तर में महात्मा जी ने कहा कि मैं तो हिन्दी कुछ भी नहीं जानता। निराला जी ने गान्धी जी से कहा कि जब आप हिन्दी साहित्य की बाबत जानते ही नहीं फिर आपका यह आक्षेप ठीक नहीं।

हिन्दुस्तानी की बात

एक बार रेलगाड़ी में कहीं जाते हुये निराला जी को पं० नेहरू दिखाई दे गये। पं० नेहरू ने उन दिनों भाषा के सम्बन्ध में कुछं विचार प्रगट किये थे। इन विचारों से हिन्दुस्तानी का समर्थन होता था।

निराला जी ने हंसते हुये पं० नेहरू से कहा कि आप मेरे हिन्दी के कुछ शब्दों का हिन्दुस्तानी में अनुवाद कर दें। इस बात पर नेहरू जी ने लाचारी दिखाई। निराला जी ने कहा कि हमने भी कुछ विचार इस सम्बन्ध में निर्धारित कर रखे हैं। हमारे विचार में हिन्दुस्तानी की पहुँच साधारण बोलचाल के महकमे तक ही है और

राजनीति में संस्कृत, अरबी, अंग्रेज़ी के बिना वह लंगड़ी होजाती है। हिन्दुस्तानी का साहित्यिक अस्तित्व है ही नहीं।

निराला जी की प्रतिभा से हिन्दी साहित्य समृद्ध हुआ है और उनका स्फूर्तिप्रद व्यक्तित्व हिन्दी के युवा साहित्यकारों के लिये एक आदर्श...एक प्रतीक...रहा है। हिन्दीभाषियों का तथा उत्तर प्रदेश सरकार का कर्तव्य है कि इस महान् एवं महान् मानव की सुविधा की उचित व्यवस्था करें।

फ़तहचन्द शर्मा 'आराधक'

देहली

(३)

कृत्रिम नाटक में सच्चा नाटक

......मैं रज़ाकारों के दिनों की बात लिख रहा हूँ। उन दिनों 'स्वतन्त्र हैदराबाद' के लिए प्रेस और प्लैट-फ़ार्म से प्रत्येक प्रकार का प्रोपैगण्डा किया जा रहा था। रेडियो से 'स्वतन्त्र हैदराबाद' के गाने और ध्वनि रूपक प्रसारित किए जाते थे। न जाने उर्दू में नाटक और गाना लिखनेवालों ने इससे कितने रुपये कमाए थे। स्टेज के लिए भी नाटक लिखे जाते थे जो किसी-न-किसी थियेटर में स्टेज किए जाते थे। मैं एक इसी प्रकार के नाटक के विषय में यह पत्र अपनी स्मृति के आधार पर लिख रहा हूँ। यह नाटक 'सागर टाकीज़' के थियेटर में खेला गया था। इस नाटक का नाम क्या था यह तो मुझे स्मरण नहीं रहा।

......उस दिन थियेटर में बड़ी ज़बर्दस्त भीड़ थी। स्वतन्त्र हैदराबाद के गानों के पश्चात् खेल प्रारम्भ हुआ। नाटकों में इस प्रकार के दृश्य दिखाए जाते थे जिससे कांग्रेस का परिहास हो। प्रथम दृश्य में यह दिखाया गया कि एक कांग्रेसी हिन्दू महोदय जिन्होंने खद्दर के कपड़े और गान्धी टोपी पहनी हुई थी-एक सिक्ख से बातें कर रहे थे। दिखाया यह जा रहा था कि कांग्रेसी हिन्दु सिक्खों को किस प्रकार भड़का कर मुसलमानों और सिक्खों में लड़ाई पैदा करा देते हैं। दोनों में कुछ इसी प्रकार की उत्तेजनापूर्ण बातचीत होती है और उसके बाद कांग्रेसी हिन्दु स्टेज से हँसते हुए चले जाते हैं और दूसरी ओर से प्रवेश होता है एक अरब का। नीचे रंगीन तोहमत बँधा हुआ है बाज़ू में जम्भिया और तलवार लटक रही है। अरब और सिक्ख में स्टेज पर बातचीत प्रारम्भ होती है जो धीरे धीरे गरमागरम हो जाती है और अब दोनों में स्टेज पर लड़ाई होना ही चाहती है कि एक विचित्र-सा दृश्य उपस्थित हो जाता है। मैं इस दृश्य को समस्त जीवन नहीं भूल सकता। इस दृश्य को देखने से मेरा मानव प्रकृति की आधारभूत अच्छाई में विश्वास बढ़ गया है। सारा थियेटर खचाखच भरा हुआ था-कोई जगह ख़ाली नहीं थी। सब उत्सुकता पूर्वक स्टेज की ओर देख रहे थे। इतने में......

सागर टाकीज़ का एक दरबान अरब था। वह दरवाज़े के एक ओर खड़ा हुआ यह दृश्य देख रहा था। स्टेज पर जो दृश्य दिखाया जा रहा था वह तो कृत्रिम था परन्तु इस अरब के हृदय में जो भावनाएँ उठ रही थीं वे बिलकुल सच्ची थीं। उससे रहा न गया। वह भीड़ को चीरता हुआ बेधड़क स्टेज पर पहुँच गया और उसने अपने पैर से जूता निकाल कर वहीं उस स्टेज पर के अरब के सिर पर जूते लगाने प्रारम्भ कर दिए। उसने कहना प्रारम्भ किया—"नालायक कहीं के। तुम अरबों को इतना जंगली समझते हो। उनका क्या यही काम है कि जहाँ मारपीट और लड़ाई की ज़रूरत होती है वहाँ अरबों को ले जाया जाय। नहीं अरब ऐसे नहीं होते। उनमें भी सभ्यता है; वे मारकाट और लड़ाई झगड़े को पसन्द नहीं करते। वे हिन्दु-मुसलमानों के झगड़े को नहीं पसन्द करते-तुम उन्हें क्यों स्टेज पर इस प्रकार दिखाते हो...।" वह यह कहता चला जा रहा था और अरब को जूतों से पीटना चला रहा था।......किसी की मजाल न हुई कि चूँ कर सके।......मैं उस अरब की हिम्मत और वीरता पर आश्चर्यचकित था। समस्त थियेटर हाल में तमाशा देखनेवाले आदमियों में से एक की भी यह हिम्मत न हुई कि वह स्टेज पर जाए और उस अरब को पकड़ ले। वहाँ पोलिस के भी कुछ जवान थे परन्तु वे भी सब ऐसे खड़े थे जैसे उन्हें लकवा मार गया हो। कृत्रिम नाटक में यह सच्चा नाटक हो गया और फिर इसके बाद इस प्रकार के कृत्रिम नाटकों को दिखाने का जोश भी कुछ ठण्डा पड़ गया......।

हैदराबाद **इन्द्रकुमार**

नीर-क्षीर

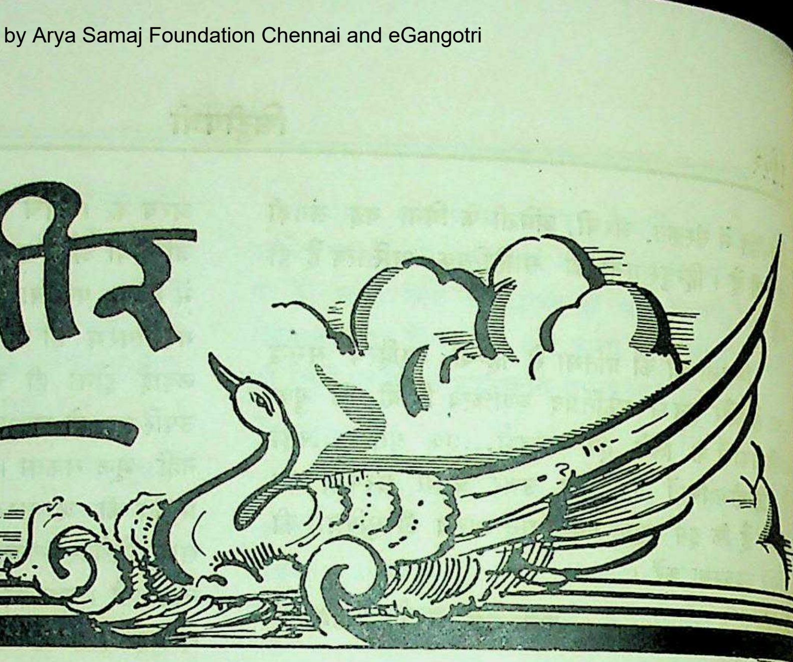

।।

व्यावहारिक हिन्दी

लेखक—श्री ना. नागप्पा, एम. ए.

प्रकाशक—दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास।

मूल्य—४)

श्री नागप्पा जी ने व्यावहारिक हिन्दी लिख कर हिन्दी प्रचार के लिए एक प्रशंसनीय कार्य किया है।

विधान सभा द्वारा हिन्दी के राष्ट्रभाषा स्वीकृत हो जाने से हिन्दी का महत्व बहुत बढ़ गया है। दक्षिण भारत के आज की अधिकांश जनता ऐसी है जो हिन्दी से अनभिज्ञ है। इन लोगों के लिए हिन्दी सीखने में यह पुस्तक अवश्य ही काफ़ी सहायक सिद्ध होगी।

इस पुस्तक के चार खण्ड हैं—हिन्दी के प्रारम्भिक पाठ, पत्र-व्यवहार के नमूने, हिन्दी से अंग्रेज़ी और अंग्रेज़ी से हिन्दी में वाक्यों और शब्दों के अनुवाद तथा विशिष्ट विषयों पर हिन्दी और अंग्रेज़ी में निबन्ध। अन्त में दैनिक व्यवहार में आने वाले हिन्दी और अंग्रेज़ी शब्दों की एक सूची भी है।

लेखक ने भाषा सीखने के मूल नियमों के चक्कर में न पड़ कर व्याहारिक भाषा को ही अधिक महत्व दिया है।

पहले भाग में छोटे छोटे शब्द और वाक्यों के हिन्दी और अंग्रेज़ी में रूपान्तर हैं। ये सब शब्द और वाक्य प्रायः प्रतिदिन की बातचीत में आते हैं।

दूसरे भाग में प्रकाशक और सम्पादक के नाम पत्र, आवेदन पत्र विज्ञापन आदि के नमूने हैं जिनका अनुवाद अंग्रेज़ी में भी दिया गया है। ये पत्र वास्तव में बड़े महत्त्व के हैं। बहुत से हिन्दी जाननेवालों के लिए भी ये व्यावसायिक पत्र उपयोगी सिद्ध होंगे।

तीसरे भाग में पूँजी और परिश्रम, खेती की उपज, बाज़ार, बिक्री के साधन, कर बैंक आदि विषयों पर लगभग १६ छोटे छोटे निबन्ध हैं। निबन्ध के ये सब ही विषय आज के महत्व पुर्ण विषय हैं। अंग्रेज़ी में इस प्रकार की जानकारी के लिए बहुत-सी अंग्रेज़ी कि पुस्तकें हैं परन्तु हिन्दी में भी अब इस ढंग की पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं यह देख कर प्रसन्नता होती है।

चौथे भाग में हर समय बात चीत में आने वाले शब्दों की सूची है।

यह पुस्तक प्रायः उन्हीं के उपयोग की है जो अंग्रेज़ी जानते हैं और उन्हें हिन्दी सीखने में इस पुस्तक से बहुत सहायता मिलेगी।

नागप्पा जी ने अंग्रेज़ी के प्रत्येक शब्द का हिन्दी में रूपान्तर दिया है जिनमें से बहुत से ऐसे रूपान्तर हैं जो उपयुक्त नहीं हैं। जैसे—वायरलेंस=बेतार का तार; इन्टरवल=आराम का समय; लाइसेन्स=अनुज्ञप्ति। ये शब्द ऐसे हैं जो एक एक साधारण मनुष्य भी इनके अर्थ अंग्रेज़ी में समझता है। लाइसेन्स शब्द जितना प्रचलित है उतना अनुज्ञप्ति नहीं।

इसी प्रकार 'स्टेशन' हमारी ज़बान पर ऐसा बढ़

गया है कि उसे हम अंग्रेजी शब्द समझते ही नहीं। इन शब्दों को उनके इन्हीं रूपों को अपना लेने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए! रूपान्तर ऐसे होने चाहिए जो अर्थ-गर्भित और कर्ण प्रिय हों!

कहीं कहीं पुस्तक में कुछ रूपान्तर ज़रा लम्बे और अनावश्यक भी हो गए हैं। जैसे पत्र की पहुँच अवश्य लिखें की अपेक्षा "पत्र प्राप्ति की सूचना दें अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। इसी प्रकार (Enclosed) के लिए 'नत्थी गई हैं' कुछ सुन्दर नहीं लगता। कोई उपयुक्त शब्द न मिलने तक हम केवल "साथ हैं" लिख सकते हैं। पुस्तक उपयोगी है और बहुत परिश्रम से लिखी गई है।

—ज्ञान अस्थाना

||

"बृहदासवारिष्ट संग्रह" (आसवारिष्ट रत्नमाला)

लेखक-श्री पं. कृष्णप्रसाद जी त्रिवेदी बी. ए. आयुर्वेदाचार्य
प्रकाशकः-वैद्य श्री हरिशङ्कर जी, वैद्य कार्यालय, मुरादाबाद
मूल्य ४)

समालोच्य पुस्तक का यह तीसरा संस्करण है। पुस्तक की उपादेयता का यह सब से बड़ा प्रमाण है। इस बार यह पुस्तक दो भागों में विभक्त की गई है। पूर्वार्ध में "अ" से "द" तक के और उत्तरार्ध में "ध" से "क्ष" अक्षरों तक के आसवारिष्टों का संकलन किया गया है। केवल ५८६ पृष्ठों की एक वैज्ञानिक पुस्तक का यह अंग-भंग युक्ति युक्त नहीं प्रतीत होता। पुस्तक का विभाजन उस समय और भी असंगत सा प्रतीत होता है, जब कि महत्वपूर्ण तथ्यों से भारी हुई पुस्तक की भूमिका पूर्वार्ध में है और अकारादि क्रम से रोगों की क्रमाङ्क तालिका पुस्तक के उत्तरार्ध में है। पुस्तक के ये दोनों महत्वपूर्ण अंग परस्पर सापेक्ष हैं। अतः किसी भी दृष्टि से पुस्तक को दो भागों में विभक्त करना न्यायसंगत नहीं प्रतीत होता। अच्छा होता, इस ग्रन्थ को रॉयल साईज़ में मुद्रित करके एक ही भाग में प्रकाशित किया जाता?

आयुर्वैदिक चिकित्साविधि में आसवारिष्टों का प्रयोग कब से आरम्भ हुआ। कुछ निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। किन्तु चरक और सुश्रुत से पूर्व भारतीय आयुर्विज्ञानवेत्ता आसवारिष्टों का महत्व जानते थे और अनेक रोगों में इनका सफल प्रयोग भी करते थे। यही कारण है, वेदों और ब्राह्मण ग्रन्थों में यत्र तत्र आसवों का वर्णन पाया जाता है। पौराणिक काल में भी शक्ति-संवर्धन और रोगनिवारण दोनों ही प्रयोजनों के लिए आसवों का उपयोग होता था। आसवारिष्ट भारतीय चिकित्सा शास्त्र की अपूर्व निधि हैं, इस तथ्य को आंखों से ओझल नहीं किया जा सकता। आसवारिष्टों के अनेक योग आयुर्वेदिक ग्रन्थों में इतस्ततः बिखरे हुए पड़े थे। उन आसवारिष्टों में आई हुई औषधियों की नाप-तौल भी प्राचीन मान परिभाषा के अनुसार होने से आधुनिक मान से मेल नहीं खाती थी। ऐसी दशा में आसवारिष्टों के एक ऐसे स्वतन्त्र ग्रन्थ की बड़ी आवश्यकता थी, जिसकी रचना या संकलन आधुनिक पद्धति या आवश्यकता के अनुकूल हो। आसवारिष्ट संग्रह ने इस अभाव की बहुत अंशों तक पूर्ति की है। विद्वान् लेखक ने इस ग्रन्थ में न केवल प्राचीन आयुर्वैदिक ग्रन्थों के प्रसिद्ध आसवारिष्टों के योगों का ही आधुनिक पद्धति के अनुसार संग्रह किया है। भारतीय वैद्यों में चिरकाल से परिचित, प्रचलित तथा अनुभूत आसवारिष्टों के योगों का भी इस ग्रन्थ में संकलन किया गया है। इसके अतिरिक्त लेखक ने कितने ही संवर्धन योगों का भी इसमें समावेश किया है। इस तीसरे संस्करण में पहले दोनों संस्करणों की अपेक्षा कुछ परिवर्धन किया भी गया है। लगभग २०० नए प्रयोगों का समावेश किया गया है। पुस्तक वैद्य समाज तथा आयुर्वेद-प्रेमियों के लिए संग्राह्य हैं। लेखक तथा प्रकाशक दोनों ही इस संस्करण के लिए बधाई के पात्र हैं।

||

वैद्य बाबा का बस्ता (सरल सिद्ध योग संग्रह)

लेखकः-प्रो. वैद्यराज श्री वंसरीलाल जी साहनी
प्रकाशकः-वैद्य कार्यालय मुरादाबाद,
मूल्य......?

प्रस्तुत पुस्तक में कुल ७६५ सरल प्रयोग हैं। ये सभी योग मुरादाबाद से निकलने वाले मासिक पत्र 'वैद्य' के "सिद्ध योगाङ्क" नाम के विशेषांक में प्रकाशित हो चुके हैं। उन्हीं भोगों को सर्व साधारण वैद्यों की सुविधा के लिए

पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया गया है। अधिकांश प्रयोग सरल और लाभकारी हैं।

॥

'विक्रम का कालिदास श्रंक'

विक्रम, उज्जयिनी और कालिदास इन तीनों की ऐसी त्रिपुटी या त्रिवेणी है, जिसके आगे किसी भी सहृदय स्वाभिमानी भारतवासी का गर्वोन्नत मस्तक स्नेह सम्मान एवं श्रद्धा से झुके बिना नहीं रह सकता। स्वतन्त्र भारत की महा महिमामयी उज्जयिनी से प्रकाशित होनेवाले सांस्कृतिक मासिक पत्र 'विक्रम, ने विगत कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को मनाई गई "कालिदास जयन्ती" के पुण्य पर्व पर अपना विशेषाङ्क **'कालिदास श्रंक'** प्रकाशित करके सब साहित्यिकों को एक बार फिर उस पवित्र त्रिवेणी में अवगाहन करने के लिए सुन्दर अवसर प्रदान किया है। जिन लोगो ने "**विक्रम**" का निरन्तर अवलोकन किया है, वे लोग जानते हैं, विक्रम का जन्म एक विशेष उद्देश को लेकर हुआ है। उसकी अपनी एक शैली है और है अपना एक नया पथ। भारतीय संस्कृति, साहित्य और राजनीति के इस जागरूक एवं सजग प्रहरी की अपनी एक नई विचार धारा है और है नया दृष्टिकोण। शतियों की परतन्त्रता ने भारत को स्वाभिमानशून्य बना दिया था। वह अपने घर में सूचीभेद्य अन्धकार के अतिरिक्त प्रकाश की क्षीण रेखा को भी देखने की शक्ति खो बैठा था। वह अपने शकारि विक्रम के विक्रम और उनकी राजसभा के उज्वल रत्न, विश्ववन्द्य महाकवि कालिदास की कविता को भी भूल गया था। जिसने भारत के मस्तक को विश्व की काव्यकला में सब से ऊँचा उठाया है। अपने देश के इन महामानवों की उपेक्षा या विस्मृति उचित तो नहीं कही जा सकती है। हर्ष है कि "विक्रम" के विद्वान् सम्पादक श्री० पं० सूर्यनारायण जी व्यास का ध्यान सब से पहले अपने राष्ट्र के रत्नों तथा अतीत गौरव की ओर गया। विक्रम और कालिदास जैसे भारतीय राष्ट्र के चमकते हुए रत्नों को विस्मृति के महासागर से निकालने का श्रेय श्री व्यास जी को है। विक्रम द्विस हस्राब्दीय-महोत्सव-आन्दोलन की प्राण-प्रतिष्ठा के अनन्तर "कालिदास-अंक" उसी शृंखला की एक सुनहली कड़ी है। इस विशेषाङ्क में १६ पृष्ठों के सम्पादकीय के अतिरिक्त कुल १३ लेख और कविताएँ हैं। विशेषाङ्क के नाम के अनुरूप सभी लेख और कविताएँ एकमात्र कालिदास से सम्बन्धित हैं। इस अंक में कोई भी ऐसा लेख और कविता नहीं है जो विषय से असम्बद्ध हो और केवल पत्र का कलेवर बढ़ाने के लिए प्रकाशित की गई हो। सम्पादकीय कालिदास के सम्बन्ध में उपलब्ध सम्पूर्ण साहित्य तथा ऐतिहासिक तथ्यों के गम्भीर अध्ययन के बाद लिखा यगा है और उसमें कोई भी ऐसी बात छूटने नहीं पाई है, जो कविकुलगुरु कालिदास के सम्बन्ध में ज्ञातव्य हो। यद्यपि इस विशेषाङ्क की सम्पूर्ण सामग्री ही अर्थभरित और अपने अपने स्थान पर विशेष महत्व रखती है। फिर भी "**मेघदूत का एक अध्ययन**", "**कालिदास के समय का भारतवर्ष**" "**मेघदूत की सृष्टि में**" तथा "**अलका**" रूपक विशेष रूप से पठनीय हैं। श्री वासुदेवशरण जी ने कालिदास की कृतियों का गम्भीर अध्ययन किया है। उनकी सूझ बूझ भी अनोखी है। उन्होंने मेघदूत तथा कुमारसम्भव के आधार पर अपने लेख में जिस "शिवस्वरूप" का चित्रग किया है, वह उनकी नवनवोन्मेषिणी प्रतिभा का द्योतक है। लेखकों तथा कवियों ने प्रमुखतः मेघदूत तथा सामान्यतः रघुवंश इन दो कृतियों की कमनीय कुसुमावलियों से ही कविकुलगुरु की समर्थना की है। अच्छा होता यदि उनके विश्वप्रशंसित "अभिज्ञान शाकुन्तल" पर भी गम्भीर प्रकाश डाला जाता। फिर भी उज्जयिनी के "विक्रम" का यह विशेषाङ्क "कालिदास-अङ्क" सभी दृष्टि से स्पृहणीय तथा संग्रहणीय है। विशेषाङ्क के रूप में हिन्दी वाङ्मय को दी हुई इस सुन्दर भेंट के लिए श्री व्यास जी सर्वथा धन्यवाद तथा बधाई के पात्र हैं।

गयाप्रसाद शास्त्री 'श्रीहरि'

हैदराबाद

* * *

सामयिक

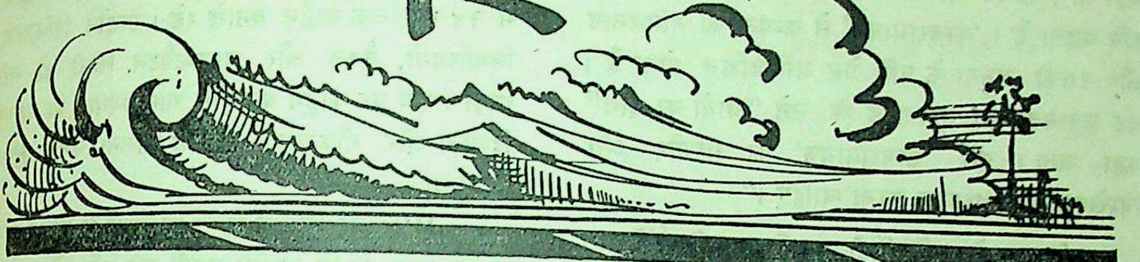

॥

कम्बरामायण

करैकुडी में कुछ दिन पूर्व "कम्बन उत्सव" मनाया गया था। इसके अध्यक्ष थे डा. षण्मुखम् चेट्टियर, अनम्मलाई यूनिवर्सिटी के वाइस चान्सलर। उन्होंने इस उत्सव में कहा कि अनम्मलाई यूनिवर्सिटी ने "कम्बरामायण" के प्रामाणिक संस्करण को प्रकाशित करने की योजना बनाई है। जिस प्रकार उत्तर प्रदेश में तुलसीदास की रामायण प्रसिद्ध है, जिस प्रकार बङ्गाल में कृत्तिवास की रामायण प्रसिद्ध है उसी प्रकार तमिलनाड में कम्बन की रामायण प्रसिद्ध है। इस उत्सव में कम्बन और उनकी रामायण के विषय में डा. षण्मुखम् चेट्टियर ने कहा:—

"महाकवि भारती ने लिखा है कि कम्बन के जन्म से तमिलनाड को गौरव प्राप्त हुआ है। कम्बन की रामायण एक महान् ग्रन्थ है। जनता में उसका बहुत आदर और प्रचार है। उसमें कविता है, कला है और धर्म-नीति है। वाल्मीकि ने राम को मनुष्य के रूप में उपस्थित किया है परन्तु कम्बन ने उन्हें साक्षात् परमेश्वर के रूप में माना है। इतिहास के दृष्टि से अध्ययन करनेवाले प्रायः यह प्रश्न पूछते हैं कि क्या यह सत्य हो सकता है। परन्तु ऐतिहासिक दृष्टि ही तो एकमात्र दृष्टि नहीं है। कम्बन की रामायण एक महाकाव्य है-ऐसा महाकाव्य जिसकी संसार के किसी भी महाकाव्य से तुलना की जा सकती है। कई आलोचक यह कहते हैं कि यह रामायण वाल्मीकि की रामायण का अनुवाद है। वे कहते हैं कि यह कोई मौलिक काव्य नहीं है। यदि हम इस दृष्टि से देखें तो कोई भी काव्य मौलिक नहीं हो सकता क्योंकि कविता का कुछ न कुछ आधार तो अवश्य होना ही चाहिए; कविता निराधार तो हो ही नहीं सकती और इस आधार के मौलिक होने की आवश्यकता नहीं है। यह सत्य है कि कम्बनं ने अपने काव्य का आधार वाल्मीकि से लिया है परन्तु उसने अपने इस महाकाव्य में तमिलनाड का बड़ा सुन्दर चित्र अंकित किया है। यह सम्भव है कि वाल्मीकि से पूर्व भी रामायण की कथा जनता में प्रचलित हो-वाल्मीकि ने उस कथा को अपनी कविता द्वारा अमरत्व प्रदान कर दिया। कम्बन ने तमिलनाड में रामायण की जिस कथा को जनता में प्रचलित पाया उसे अपनी कविता में महान् बना दिया। कम्बन और वाल्मीकि दोनों की रामायण में बहुत भेद है। "कम्बरामायण" में ऋषि विश्वामित्र राम और लक्ष्मण को मिथिला के बाजारों से ले जाते हैं। जिस समय राम और लक्ष्मण मिथिला के बाजारों में से जा रहे थे-सीता कुञ्ज में खड़ी हुई थीं और उन्होंने राम को देखा और राम ने उनको देखा। देखते ही दोनों में प्रथम दृष्टि में प्रेम हो गया। कम्बन ने सीता के असाधारण सौन्दर्य का अत्यन्त मनोहर वर्णन किया है और इसका राम के हृदय पर बड़ा रोमांचकारी प्रभाव पड़ा। यह तमिल संस्कृति है-शुद्ध और सादी परन्तु वाल्मीकि की रामायण में राम और सीता विवाह-बन्धन से पूर्व एक दूसरे से सर्वथा अपरिचित थे। धनुष के भंग से पूर्व दोनों में किसी प्रकार साक्षात्कार नहीं हुआ। कम्बन के हृदय में सीता के प्रति इतनी महान् भक्ति थी कि वह रावण को किसी भी अवस्था में सीता के शरीर का स्पर्श नहीं होने देता। वाल्मीकि ने लिखा है कि रावण सीता को उठा ले गया परन्तु कम्बन ने लिखा है कि रावण उस पृथ्वी के टुकड़े के साथ सीता को उठा कर ले गया। सीता के सतीत्व का इतना महान् तेज था कि वह उसके

शरीर का स्पर्श नहीं कर सकता था इसलिए उसने उसे उस पृथ्वी के टुकड़े के साथ उठाया जिस पर कि सीता खड़ी थीं। कम्बन वाल्मीकि को सच्चा कवि और दिव्य कवि कहता है। 'कम्बरामायण' से कम्बन का तमिलनाड और उसकी जनता के प्रति प्रेम अभिलक्षित होता है। यह कृतघ्नता और मूर्खता है कि उसे "आर्यों का दास" कहा जाए। हमें 'कम्बरामायण' का गम्भीर और विश्लेषणात्मक अध्ययन करना चाहिए।"

[त्रावणकोर यूनिवर्सिटी का तमिल का रिसर्च विभाग कम्बरामायण का एक प्रामाणिक संस्करण तैयार कर रहा है। अडयार (मद्रास) की महामहोपाध्याय डा. वी. स्वामिनाथ ऐयर लाइब्रेरी ने कम्बरामायण के दो काण्ड प्रकाशित किए हैं और पत्रों ने इनकी प्रशंसा की है। दूसरे काण्ड भी शीघ्र ही प्रकाशित होने वाले हैं। अन्य कई लेखकों और प्रकाशकों ने कम्बरामायण के कई संस्करण प्रकाशित किए हैं जिनका अब नवीन संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है]

||

कार्टूनकार शंकर

मद्रास के प्रसिद्ध अंग्रेज़ी साप्ताहिक पत्र "स्वतन्त्र" में श्री ईसन का भारत प्रसिद्ध कार्टूनकार शङ्कर पर एक लेख प्रकाशित हुआ है। यह लेख १५ मार्च, १९५२ के 'स्वतन्त्र' में प्रकाशित हुआ है:—

"शंकर भारतवर्ष के इस समय के सब से बड़े राजनैतिक कार्टूनकार हैं। सत्य तो यह है कि वे संसार के एक श्रेष्ठ कार्टूनकार हैं। शंकर भारतवर्ष में होनेवाली घटनाओं के तीव्र और कटु आलोचक हैं। वे नेहरू से लेकर छोटी से छोटी पार्टी से सम्बद्ध व्यक्ति को भी नहीं छोड़ते। वे किसी पार्टी विशेष के नहीं हैं; उनका कोई प्रिय नहीं है; वे सब पार्टियों की एकसमान आलोचना करते हैं। मज़ा तो यह है कि वे जिस पर कार्टून बनाते हैं वही उसको सबसे अधिक पसन्द करता है। यही उसके कार्टूनों की सब से बड़ी विशेषता है।

जब वे चित्र बनाने बैठते हैं तब वे यह समझते हैं कि समस्त विश्व एक अस्तव्यस्त-सी वस्तु है और सब लोग मूर्ख हैं। शंकर की १८ वर्ष की लड़की कहती है कि जब उसके पिता कार्टून बनाते हैं तब वे भयानक रूप से मुँह बनाते हैं। कभी तो यह प्रतीत होता है कि वे बहुत गुस्से में हैं और कभी वे अट्टहास करने लग जाते हैं। आप उनके चेहरे को देखकर यह भाँप सकते हैं कि वे कौन-सा कार्टून बना रहे हैं। वे 'हिन्दुस्तान टाइम्स' में १४ वर्ष तक कार्टून बनाते रहे। उन्होंने विलिङ्डन, लिनलिथगो, वैवल और माउण्टबैटन किसी को नहीं छोड़ा। सब पर कार्टून बनाए। साम्राज्यवाद का भद्दापन दिखाना और नौकरशाही की पोल खोलना उनका मुख्य लक्ष्य था।

······सर स्टैफोर्ड क्रिप्स को शंकर के कार्टून इतने पसन्द आए थे कि उन्होंने उनकी मूल प्रति को शङ्कर से माँगा था। शङ्कर ने क्रिप्स के १४ कार्टूनों को अच्छी एक सुन्दर जिल्द बँधवाकर क्रिप्स को भेंट में दिया था। उसने वेवल को लगभग १०० कार्टूनों को भेंट में दिया था।

ब्रिटिश अधिकारियों ने शङ्कर को समस्त स्वतंत्रता के संग्राम में उसके इन कटु आलोचनापूर्ण कार्टूनों के लिए जेल की सज़ा नहीं दी। शंकर कहता है—"यह मनोविज्ञान है। जब आप कार्टून के द्वारा उनका मज़ाक बनाते हैं तब वे आप को अपना मित्र बनाने का प्रयत्न करते हैं। वे आप को जेल में नहीं डाल देते। लार्ड लिनलिथगो ने एक बार शङ्कर से प्रश्न किया—"शंकर! यदि हम तुम्हारे देश को छोड़ कर चले जाएँ तो क्या तुम अपने देशवासियों का भी ऐसा मज़ाक बनाओगे जैसा कि अब तुम हमारा बनाते हो?" शंकर ने इस प्रश्न पर विचार किया और यह निर्णय किया कि एक कार्टूनकार की दृष्टि से उसका यह धर्म है कि जिनके हाथ में भी शासनसूत्र हो वह उनकी मूर्खताओं का मज़ाक बनाए।

वह कहता है—"मैं इस प्रकार सोचता हूँ। वहाँ स्टेज है और मैं उसके सम्मुख बैठा हुआ हूँ। जो उस स्टेज पर आता है मैं उसे ध्यानपूर्वक देखता रहता हूँ और मैं उसके मूर्खतापूर्ण कार्यों का परिहास बनाता हूँ। शङ्कर नेहरू पर कठिनाई से ही कोई कार्टून बना पाता है। बात यह है कि वह उसके प्रशंसकों में है। वह अपने आप को नेहरू के साथ एक समझता है। एक बार उसने कहा था।—"कार्टूनकार की दृष्टि से मैं एक निषेधात्मक व्यक्ति हूँ। मैं यह तो बता सकता हूँ कि क्या चीज़ भद्दी और ठीक नहीं है परन्तु मैं यह नहीं बता

सकता कि कौन-सी वस्तु ठीक है। कभी कभी मुझे नेहरू भी इसी प्रकार के प्रतीत होते हैं। हृदय में वे भी एक कलाकार हैं। परन्तु वे प्रशासक भी हैं और इसलिए वे शायद समझते हैं कि कौन-सी बात ठीक है।"

शंकर का नेहरू एक छोटा-सा बच्चा है। वह अपने चारों ओर के जंगल में भटक रहा है। शंकर उसके निर्णय की अक्षमता, दिशा के अज्ञान और बँटे हुए व्यक्तित्व पर परिहास बनाता है। उसने अपने एक कार्टून में ३० नेहरू बनाए हैं और एक नेहरू दूसरे नेहरू के विरुद्ध कार्य कर रहा है। नेहरू की कोठी के बरामदे में इस कार्टून का मौलिक चित्र टँगा हुआ है। शंकर कहता है—"राजनैतिक कार्टूनकार को सदा वामपक्षीय ही रहना पड़ता है। आप कभी अच्छे राजनैतिक कार्टूनकार नहीं बन सकते यदि आप पूँजीवादी बन जाएँ।" उसका व्यक्तिगत विचार है कि अमेरिका के राजनैतिक कार्टूनकार भी वामपक्षीय हैं। शंकर के विचारों में कार्टून के क्षेत्र में अमेरिकन अभी बच्चे ही हैं। बहुत से लोग और नेता शंकर से कहते हैं कि कार्टून इस प्रकार के बनाए जाने चाहिएँ कि जिनसे किसी का दिल न दुखे परन्तु शंकर का विचार है—"यह एक दम्भ है। प्रत्येक प्रकार के कार्टून से दिल का दुखना आवश्यक है। मात्रा का भेद हो सकता है।" जब शंकर ने अपने 'शंकर वीक्ली' पत्र को निकालना प्रारम्भ किया उस समय न तो उसका कोई सहायक था, न संगठन था और न उसके पास धन था। कुछ मित्रों ने सहायता दी और उसका काम चल निकला।... सप्ताह के अधिक दिनों में वे राजनैतिक कार्टून बनाने में ही लगे रहते हैं। प्रातःकाल ७ बजे से रात के १० बजे तक वे काम करते हैं और उसके बाद वे अपना निरामिष भोजन करते हैं। शंकर सदा बहुत अधिक कार्य करते हैं क्योंकि उनको अपना पेशा बहुत प्रिय है।"

||

चीन की कविता

मार्च १९५२ के 'मौडर्न रिव्यू' में श्रीयुत धर्मभानु एम. ए. का एक लेख 'चीन की कविता की एक झलक' प्रकाशित हुआ है। उसमें से निम्न उद्धरण दिए जाते हैं:—

"साधारणतया चीन की कविता तीन शीर्षकों के अन्तर्गत की जा सकती है (१) प्राचीन शैली की (२) वर्तमान शैली की या सांकेतिक कविता (३) संक्षिप्त या मुक्तक कविता।

प्राचीन शैली में पर्याप्त स्वतन्त्रता है; उसमें नियमों का ऐसा कठोर बन्धन नहीं है जैसा कि सांकेतिक कविता में। चीन की प्राचीन शैली की कविता सबसे पुरातन शैली की कविता है। यद्यपि इस शैली में नियमों का इतना बन्धन नहीं है तो भी इस शैली में इतनी कविताएँ नहीं लिखी गई हैं जितनी कि संक्षिप्त या मुक्तक शैली में। आधुनिक कविता या सांकेतिक शैली की कविता का यह अर्थ नहीं है कि उसका ढाँचा, शैली या छन्द नवीन हैं। यह प्राचीन शैली के समान ही पुरानी है। इसमें लोच नहीं है, यह बँधी हुई है। वर्ण, विषय, अलंकार, वृत्त एक्सैण्ट आदि को जो अच्छी कविता के लिए आवश्यक हैं कविता की पंक्तियों में संतुलित करना पड़ता है। चरण की लम्बाई, वर्णों का क्रम, स्वर, तुक आदि का प्रयोग सर्वथा नियमों के अनुसार ही करना पड़ता है। एक पंक्ति से दूसरी पंक्ति से वर्ण का लम्बाई, स्वर और तुक आदि का पूर्ण मिलन होना आवश्यक है। एक ही समय में उन्हीं अक्षरों की पुनरावृत्ति नहीं होनी चाहिए। ऊपर की पंक्ति में संज्ञा, विशेषण और क्रिया जिस क्रम और ढंग से आई हैं दूसरी पंक्ति में पुनरावृत्ति न करते हुए ठीक उसी ढंग से संज्ञा, विशेषण और क्रिया आनी चाहिएँ। इन बन्धनों के कारण आधुनिक चीनी कविता में एक कवि के लिए अपने भावों और विचारों को लिखना अत्यन्त कठिन है। समय के साथ इस शैली में बन्धनों की इतनी कठोरता हो गई कि कविता लिखना ही असम्भव हो गया। इस प्रकार की कविता में पांडित्य की छटा और शब्दों का आडम्बर है।

मुक्तक कविता में किसी कहानी को नहीं लिखा जाता परन्तु उसके द्वारा ऐसी मनोदशा को उत्पन्न किया जाता है कि उसमें कवि अपने एक ही भाव को विकसित करता है। इस प्रकार की कविता की अंग्रेज़ी के गीतिकाव्य (Lyric) से तुलना की जा सकती है। चीन की सबसे अधिक कविता इसी शैली में लिखी गई है। जिस प्रकार अंग्रेज़ी का गीतिकाव्य अत्यन्त लोकप्रिय है उसी प्रकार यह मुक्तक कविता चीन में अत्यधिक लोकप्रिय है। प्रायः सभी कवि इस शैली में अपनी कविताएँ लिखते हैं। प्राचीन कवियों में ली पो, तू फ़ू और पो चु-ई का

नाम बहुत प्रसिद्ध है और नवीन कवियों में त-आ ओ यू आन मिंग. यू यिङ-जेन, चेकुं चीक, चु ह् सी और प्रो. लू चिङन का नाम बहुत प्रसिद्ध है ।

लि पो अपने अधिकांश जीवन में इधर उधर भटकता रहा । उसने चीन की सुन्दरता पर बड़े सुन्दर गीत लिखे हैं । वह विलासी था और उसका जीवन स्वच्छन्द था । वह प्रकृति के सौन्दर्य का, पर्वतों, नदियों और समुद्र का प्रेमी था । उसकी कविता हृदय से निकली हुई है; वह बिलकुल स्वाभाविक है । उसकी कविता में परिश्रम, बनावट या कृत्रिमता नहीं है । उसकी कविता में वह माधुर्य और संगीत नहीं है जो ली पो की कविता में है । यद्यपि उसने कविता के बन्धनों को तोड़ दिया है तो भी उसकी कविता में अपना ही एक सौन्दर्य है । पो चु-ई ने कन्फ्यूशस साहित्य में शिक्षा प्राप्त की थी । उसकी कविता में नैतिकता और उपदेश है । हाँ, कुछ कविताएँ रोमांसी भी हैं और वह उपदेश की कविताओं द्वारा नहीं अपितु अपनी रोमांसी कविताओं द्वारा ही अमर हो गया है । जनता में सभी वर्ग के लोगों में उसकी कविता शौक़ से पढ़ी जाती है । चीन की कविता या तो भावों और विचारों से या शब्द-रचना चातुरी से या वर्णन की स्पष्टता और यथार्थता से सुन्दर प्रतीत होती है और हृदय पर अपना प्रभाव उत्पन्न करती है । कुछ कविताएँ प्रेरणात्मक हैं । चीन के कवियों ने अपनी कविता में धर्म और सदाचार का उपदेश दिया है । बहुत से देशों की कविता में इसे पसन्द नहीं किया जाता ।

चीन के लोगों के प्रेम के विषय में विचार यूरोपियन और भारतीयों से भिन्न है । चीन उसी प्रेम को आदर्श समझते हैं जो धीरे धीरे परिपक्व होता है और जीवन की कठिनाइयों का सामना करता हुआ अन्त में विजयी होता है । उनकी दृष्टि में वही प्रेम सच्चा प्रेम है जो जीवन के संघर्ष में बना रहता है और जिसका भविष्य सदा उज्ज्वल होता है । चीनियों के लिए प्रेम यौवन की ही एक क्षणिक और चंचल वृत्ति नहीं है—वह तो आग से खेलता है और बुढ़ापे तक एकरस बना रहता है । स्पष्टता से यों कहा जा सकता है--"यूरोपियन कवि भावुक प्रेमी होता है, भारतीय कवि दार्शनिक भक्त और चीन का कवि मित्रतापूर्ण साथी । तू फ़ू अपने एक गीत में लिखते हैं:—

"मित्रों का आपस में मिलना उतना ही
कठिन है जितना कि प्रातःकाल और
सायंकाल तारों का मिलना कठिन होता है ।"

युआन चेन एक गीत में लिखते हैं:—

"बन्धु, मैं पर्वत के नीचे तुम्हारी प्रतीक्षा
करता रहा हूँ
अब अंधेरा हो गया है ।
मैंने अपनी
फूस की कुटिया को बन्द कर दिया है;
बसन्त में घास हरे भरे रूप में फिर वापस आएगी
परंतु मेरे प्रिय मित्र क्या तुम भी इसी प्रकार वापस आओगे"

चीन के प्रेमगीत विरह के गीत हैं जिनमें अपने प्रेमी के प्रति आदर अभिव्यक्त किया गया है ।

चीन के कवियों में प्रकृति का प्रेम बहुत अधिक है । वैसे भी चीन की जनता का प्रकृति का प्रेम प्रसिद्ध है । चीनियों का जीवन सरल है उनकी आवश्यकताएँ कम हैं और उनका जीवन संयमपूर्ण है । चीन के कवियों में चीनी जनता की ये भावनाएँ प्रतिबिम्बित हैं । ता ओ युआनमिंग ने अपनी एक कविता में लिखा है:—

"कितने वर्षों से मैं यहाँ आकर निवास करना चाहता था,
अब अन्त में मैं यहाँ आकर रह सका हूँ ।
मुझे अपनी छोटी-सी कुटिया के विषय में
तब तक कोई चिन्ता नहीं जब तक कि
उसमें चटाई बिछाने के लिए पर्याप्त स्थान है ।"

लड़ाई के कारण चीन की जो हानि हुई है उसको भी बहुत से कवियों ने अपनी कविता में लिखने का प्रयत्न किया है । इस कविता का चीन की कविता में एक अपना विशिष्ट स्थान बन गया है और २० वीं सदी की चीनी कविता की यह एक मुख्य शाखा है । सात आठ युद्ध के कवि अत्यन्त प्रसिद्ध हैं ।

* * *

सम्पादकीय

अनाज पर प्रतिबन्ध

श्रीयुत कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी ने प्लैनिंग कमीशन के सम्मुख जो रिपोर्ट प्रस्तुत की है उसमें इस बात को बिलकुल स्पष्ट कर दिया गया है कि जब तक अनाज पर से प्रतिबन्ध नहीं हटेगा तब तक हमारे देश में अनाज पर्याप्त मात्रा में उत्पन्न नहीं हो सकेगा। देश में अनाज की उत्पत्ति को बढ़ाने के लिए सब प्रकार के प्रयत्न किए जा रहे हैं परन्तु अभी तक अनाज की समस्या की विकटता में कुछ विशेष अन्तर नहीं पड़ा। हमारे देश में विदेशों से अनाज प्रचुर मात्रा में मँगवाना पड़ता है और यदि अनाज न आए तो हमें बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। इस समय देश के बहुत-से भागों में अन्न प्राप्त नहीं हो रहा है। भारतीय प्रशासन भारत में अन्न के उत्पादन को बढ़ाने के लिए प्रत्येक प्रकार के प्रयत्न कर रहा है और उसमें कुछ सफलता तो प्राप्त हो रही है परन्तु वह सफलता ऐसी नहीं है जिससे हम अन्न के विषय में निश्चिन्त हो सकें। युद्ध की समाप्ति के पश्चात् इस बात का प्रयत्न किया गया कि अनाज पर से प्रतिबन्ध हटा लिए जाएँ परन्तु ज्यों ही ये प्रतिबन्ध हटाए गए अवस्था और भी अधिक ख़राब हो गई और परिणाम यह हुआ कि सरकार को यह अनुभव हुआ कि यदि देश में अनाज पर से प्रतिबन्ध हटा लिए गए तो इस बात की संभावना है कि अनाज मार्केट से सर्वथा ग़ायब हो जाएगा और साधारण मनुष्य के लिए अनाज का प्राप्त करना एक विकट समस्या बन जाएगी। इसलिए अनाज पर फिर प्रतिबन्ध लना दिए गए और अब इस बात की कल्पना करना तक कठिन हो गया है कि निकट भविष्य में अनाज पर से प्रतिबन्ध हटाया भी जा सकता है। श्रीयुत मुंशी जी ने बड़े साहस के साथ इस प्रश्न को प्लानिङ्ग कमीशन के सम्मुख प्रस्तुत किया है। उनका विचार है—"हमारे देश में अन्न की बहुत कमी है। परन्तु प्रतिबन्धों से यह समस्या हल नहीं हो सकती। वर्तमान प्रतिबन्ध-व्यवस्था से किसी प्रकार का विशेष लाभ नहीं है और न निकट भविष्य इससे कोई विशेष में लाभ होने की संभावना है—ऐसी अवस्था में क्यों न इन प्रतिबन्धों को हटा दिया जाए। हमें देश को दो भागों में विभक्त कर देना चाहिए। एक तो वह भाग जहाँ राशन हो और दूसरा वह जहाँ राशन न हो। देश की बत्तीस करोड़ जनता में राशन नहीं होगा केवल चार करोड़ जनता में ही राशन रखा जाएगा। बत्तीस करोड़ जनता अपने अन्न को सीधा मार्केट से ख़रीदेगी। जब तक वर्तमान प्रतिबन्धों की प्रणाली रहेगी तब तक न तो अनाज के उत्पादन में जनता विशेष प्रयत्नशील होगी और न वह मार्केट में अधिक परिमाण में आएगा। आवश्यकता इस बात की है कि सर्वसाधारण यह अनुभव करें कि यह एकमात्र सरकार का ही कर्तव्य नहीं है कि वह देश में अन्न की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करे—जनता को भी इसमें अपने उत्तरदायित्व को समझना चाहिए और यदि जनता अपने इस उत्तरदायित्व को नहीं समझेगी तो हमारे देश में अन्न के उत्पादन में विशेष सफलता प्राप्त नहीं हो सकेगी। यदि किसान को अनाज के लिए अच्छे दाम मिलें तो मार्केट में अन्न की प्राप्ति होती रहेगी और इस प्रकार यह प्रश्न सरकार से हट कर समस्त जनता के हाथों में चला जाएगा और इससे अन्न के उत्पादन में वृद्धि हो सकेगी। इस प्रकार देश के अधिकांश भाग में अन्न की समस्या हल हो जाएगी। देश के उस हिस्से में जहाँ राशन रहेगा—अन्न बाहर से मँगवाया जा सकेगा।

श्री मुंशीजी ने अनाज के प्रश्न को जिस सरलता से हल करने का प्रयत्न किया है—यद्यपि यह प्रश्न उतना सरल नहीं है तो भी इससे अनाज के उत्पादन में सहायता प्राप्त हो सकती है। मुनाफ़ाख़ोरी की वृत्ति ने इस प्रश्न को जटिल बना दिया है—यदि यह वृत्ति न रहे तो हम समझते हैं कि अन्न की समस्या इतनी विकट नहीं रह जाएगी। जो देश भी अन्न समस्या को हल कर सके हैं उन्होंने पहले मुनाफ़ाख़ोरी को रोकने में सफलता प्राप्त की है। हमारी सरकार ने अनाज पर प्रतिबन्ध हटा लिए और हटा लेने के पश्चात् यह देखा कि जनता को अन्न की प्राप्ति ही नहीं होती और इस कारण प्रतिबन्धों को फिर से लगाना पड़ा क्योंकि प्रतिबन्धों के कारण अनाज सब को मिल जाता है। क्या हमारा प्रशासन कोई ऐसी व्यवस्था नहीं बना सकता कि जिससे व्यापारी एकमात्र धनप्राप्ति को ही अपना एकमात्र लाभ न समझें। यदि हमारे देश से यह वृत्ति दूर हो जाए तो श्री मुंशी जी ने जो सुझाव रखे हैं

उन्हें क्रियात्मक रूप में परिणत किया जा सकता है और उसके द्वारा धीरे धीरे ऐसी स्थिति उत्पन्न हो सकती है कि अनाज पर से सब प्रतिबन्ध हटा लिए जाएँ। दूसरे शब्दों में प्रतिबन्धों का रखना इस बात का प्रमाण है कि हमारी सरकार मुनाफ़ाखोरी की वृत्ति पर अभी किसी प्रकार काबू नहीं पा सकती अन्यथा प्रतिबन्धों की आवश्यकता न रह जाती।

अंग्रेज़ी और जनता

अमेरिका के प्रसिद्ध पत्र "लाइफ़" में एक लेख "दो संसारों के बीच में भारत" प्रकाशित हुआ है। इस लेख को पढ़ने से यह ज्ञात होता है कि अमेरिका में हमारे अंग्रेज़ी के मोह को किस दृष्टि से देखा जाता है। संसद् में और विधान सभाओं में जहाँ जनता के प्रतिनिधि जाते हैं-अंग्रेज़ी में भाषण और विवाद किए जाते हैं। यदि ये सब भाषण आदि जनता के लिए किए जाते हैं तो कितनी जनता उनके इन अंग्रेज़ी के भाषणों को समझती है। तमाशा यह है कि जिनकी वोट पर वे संसद् या विधान सभा के सदस्य बनते हैं-उनमें से अधिकांश उनके भाषण को नहीं समझते। संसद् और विधानसभाओं में जब तक अंग्रेज़ी को प्रधानता दी जाएगी वे जनता की प्रतिनिधि संस्थाएँ पूर्ण रूप से बन ही नहीं सकतीं। "लाइफ़" के इस लेख की निम्न पंक्तियों की ओर हम अपने पाठकों का ध्यान आकर्षित करते हैं:—

"भारतवर्ष के लोग १५ भिन्न भिन्न मुख्य भाषाएँ और २१० उपभाषाएँ बोलते हैं। क्योंकि भारतीय एक दूसरे की भाषा को समझ नहीं सकते इसलिए वे आपस में एक दूसरे के विचारों को समझने के लिए अंग्रेज़ी में बोलते हैं। संसद् में वाद विवाद और सेना की आज्ञाओं के लिए तथा समस्त शासनपत्रों में अंग्रेज़ी का ही व्यवहार किया जाता है। जब भारतवर्ष के प्रधान मन्त्री किसानों के लिए अपना भाषण रेडियो पर प्रसारित करते हैं तो वह भी अंग्रेज़ी में ही होता है—जिस भाषण को अंग्रेज़ी में १०,००० किसान भी समझ नहीं सकते।"

एक ओर तो हम जनता में जागृति उत्पन्न करना चाहते हैं और दूसरी ओर जो संस्थाएँ जनता के मत और उनके लाभ के लिए ही बनाई गई हैं वहाँ हम अपने विचारों को ऐसी भाषा में अभिव्यक्त करते हैं जिन्हें कि देश की अधिकांश जनता ठीक तरह समझ ही नहीं सकती। हम समझते हैं कि इस अवस्था में उस समय तक कोई विशेष परिवर्तन नहीं हो सकेगा जब तक जनता स्वयं इस बात की माँग नहीं करेगी कि कम-से-कम जनमत की प्रतिनिधि संस्थाओं में तो जनता की भाषा का ही प्रयोग होना चाहिए। जनता के प्रतिनिधि, जनता के द्वारा निर्वाचित संसद् और विधान सभा आदि में जनता की भाषा में न बोलें यह जनता की भाषा का नहीं जनता का उपहास है। इसका सीधा सादा यह अर्थ है कि ये संस्थाएँ सच्चे अर्थों में जनता की संस्थाएँ नहीं बन सकतीं क्योंकि अधिकांश जनता न इनके विचारों को पूर्णतया समझ सकती है और न इस भाषा में अपने विचारों को अभिव्यक्त कर सकती है। यदि हम जनता का सच्चा प्रतिनिधित्व करना चाहते हैं, यदि हम इन संस्थाओं को सच्चे अर्थों में जनता को बनाना चाहते हैं तो हमें इन संस्थाओं में अंग्रेज़ी के प्रयोग और मोह को छोड़ देना पड़ेगा।

हिन्दी पुस्तकों पर पुरस्कार

इस वर्ष उत्तर प्रदेश के प्रशासन ने जिन हिन्दी के लेखकों को उनकी पुस्तकों पर पुरस्कार प्रदान किया है उनका हम अजन्ता की ओर से हार्दिक अभिनन्दन करते हैं। अन्य राज्यों के प्रशासनों को अपने अपने राज्यों की भाषाओं के लेखकों को प्रोत्साहन प्रदान करने के लिए उत्तर प्रदेश के प्रशासन का अनुकरण करना चाहिए। लेखकों को सच्चा प्रोत्साहन तो पाठकों के द्वारा प्राप्त हो सकता है। जिस पुस्तक के जितने अधिक पाठक होंगे उस पुस्तक का उतना ही अधिक प्रचार होगा और उसके प्रचार से लेखक को पारिश्रमिक और सम्मान उतना ही अधिक प्राप्त होगा। इस समय हमारे देश की कुछ ऐसी अवस्था है कि पुस्तकों की-साहित्यिक और सांस्कृतिक पुस्तकों की-स्वतंत्र रूप से बिक्री कम होती है। स्वतन्त्र रूप से लिखने का हमारा यह अर्थ है कि पाठकों का पुस्तकों को पढ़ने के लिए अपने शौक़ से खरीदना। अभी तो साहित्यिक और सांस्कृतिक उन्हीं पुस्तकों का अध्ययन होता है जो किसी न किसी हाइस्कूल या कालेज के पाठ्यक्रम में आ जाती हैं। जो पुस्तकें पाठ्यक्रम में आ जाती हैं उन्हें अपने प्रचार के लिए कुछ अवसर प्राप्त हो जाता है। अधिकांश सांस्कृतिक और साहित्यिक पुस्तकें कम और बहुत धीरे धीरे बिकती

हैं। किसी देश के मानसिक स्तर का इस बात से पता लगाया जा सकता है कि उस देश में किस प्रकार की पुस्तकें कितनी संख्या में शौक़ से पढ़ी जाती हैं। लेखन कला उसी देश में उन्नत हो सकती है जहाँ लेखक अपने विचारों को स्वतन्त्र रूप से अधिकांश जनता के सम्मुख विचार करने के लिए प्रस्तुत कर सकते हैं। लेखकों को जब यह अनुभव हो जाता है कि पाठक उनके विचारों को पढ़ते हैं और उनमें दिलचस्पी लेते हैं तो उन्हें लिखने के लिए सच्चा प्रोत्साहन प्राप्त होता है। पुरस्कार से लेखक को प्रोत्साहन अवश्य प्राप्त होता है परन्तु सच्चा प्रोत्साहन पढ़नेवाली जनता के द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। हमारे देश में अभी पुस्तकों को विशेष कर साहित्यिक और सांस्कृतिक पुस्तकों को पढ़नेवालों की संख्या बहुत कम है। पुस्तकें प्रायः लाचारी में ही अधिक ख़रीदी जाती हैं-शौक़ से कम और जो शौक़ से ख़रीदते भी हैं वे उन्हें बहुत ही कम पढ़ते हैं और यदि पढ़ते भी हैं तो बिलकुल सरसरी तौर पर-ध्यान और विचारपूर्वक नहीं। इसका परिणाम यह होता है कि लेखक यह समझ नहीं पाता कि उसके विचारों पर कुछ विचार आदि हो रहा है या नहीं। विचार और आलोचन (आलोचना नहीं) के द्वारा ही लेखक को अपने विचारों का सही अन्दाज़ा होता है और उसीसे उसको लिखने की प्रेरणा और प्रोत्साहन प्राप्त होता है। ज्यों ज्यों हमारे देश में पढ़ने का शौक़ बढ़ता जाएगा और लोग जो कुछ पढ़ेंगे उस पर विस्तृत और यथार्थतया विचार और आलोचन होगा तभी वास्तव में लेखकों को अपने लिखने का सच्चा पुरस्कार प्राप्त होगा।

ट्यूनीशिया और संयुक्त राष्ट्रसंघ

संयुक्त राष्ट्रसंघ की सुरक्षा परिषद् में इंग्लैण्ड और अमेरिका ने अपना मत नहीं दिया। उन्होंने इस विषय में अपनी तटस्थता प्रदर्शित की। डीन अचेसन ने परिषद् में जो कुछ कहा उसका यह आशय था—"ट्यूनीशिया के प्रश्न को सुरक्षा परिषद् में लाने से कोई फ़ायदा नहीं। परिषद् में इसका निर्णय नहीं हो सकता।" संयुक्त राष्ट्र संघ का यह उद्देश्य है कि वह राष्ट्रों के पारस्परिक झगड़ों का न्याय और शान्तिपूर्वक निर्णय कराए। राष्ट्रों के पारस्परिक झगड़ों को वाद विवाद और शान्ति से निपटाया जा सके इसीलिए तो संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना की गई है-अन्यथा आए दिन राष्ट्रों के झगड़े एक महायुद्ध और विश्वयुद्ध में परिणत हो सकते हैं। यदि अब अंग्रेज़ और अमेरिका जैसे राष्ट्र जिन्होंने संयुक्त राष्ट्रसंघ के बनाने में नेतृत्व किया है यह कहें कि राष्ट्रसंघ में इन प्रश्नों का निर्णय नहीं हो सकता तो फिर इसका यही अर्थ हो सकता है कि संयुक्त राष्ट्रसंघ का भी वही हाल होगा जो कि लीग आफ़ नेशन्स का हुआ था। इंग्लैण्ड और अमेरिका की इस मनोवृत्ति पर काफ़ी टीका टिप्पणी हो रही है-यहाँ तक कि श्रीमती रूज़वैल्ट ने भी इसकी निन्दा की है। फ़ेनर ब्रॅकवे ने इसके विषय में यहाँ तक लिख दिया है—"इससे संयुक्त राष्ट्रसंघ की निष्पक्षपातता को ही धक्का नहीं पहुँचेगा परन्तु उन समस्त मनुष्यों के हृदयों को धक्का लगेगा जो अन्तर्राष्ट्रीय मनोवृत्ति के हैं। ब्रिटेन में लाखों लोग इस बात पर लज्जित हैं कि उनके नाम पर ट्यूनीशिया के लोगों के प्रजातन्त्रीय अधिकार कुचले जा रहे हैं।"

"इस विषय में ट्यूनीशिया ने जो कुछ किया है वह बहुत ही संयत और शिष्टाचारपूर्ण है और उनकी माँगें ऐसी नहीं जो किसी को असंगत प्रतीत हों। उनके नए दस्तूर के नेता ने कहा—हम फ्रांस की और अटलांटिकवालों की ट्यूनिस में जो आवश्यकताएँ हैं उन्हें समझते हैं। हम तो एकमात्र आन्तरिक स्वतन्त्रता चाहते हैं। अब भी जब कि हमने सुरक्षा परिषद् को अपना मामला सुपुर्द कर दिया है हम फ्रान्स से सीधी बातचीत करके पारस्परिक समझौता करना चाहते हैं। हम फ्रेंच लोगों को किसी प्रकार का कष्ट नहीं देना चाहते। हम फ्रेंच लोगों की सहायता चाहते हैं और सहायता के लिए जो कीमत देनी पड़े वह भी देने के लिए तैयार हैं।"

आज जब कि स्वतन्त्रता की लहर समस्त संसार में-विशेषतया एशिया में ज़ोर शोर से चल रही है और ब्रिटिश जैसे साम्राज्यवादी देश को उसके सामने घुटने टेकने पड़े हैं-ट्यूनीशिया की माँग तो बहुत ही नम्र और सीमित है। उसमें किसी प्रकार की बढ़ चढ़ कर बातें नहीं की गई हैं। उसकी नम्रता और संयम से उसकी शक्ति का अनुमान किया जा सकता है क्योंकि नम्रता और संयम दुर्बलता का निशानी नहीं हो सकती। इसके उत्तर में फ्रांस की सरकार ने 'नए दस्तूर' के नेताओं को पकड़ कर

जेल में डाल दिया है। इससे यह ज्ञात होता है कि फ्रांस यद्यपि पिछली लड़ाई में जर्मनी से हार गया तो भी उसकी आँखें अभी खुली नहीं है। वह नए ज़माने की आवश्यकताओं और शक्ति को नहीं पहचानता। वह पुराने युग की भाषा में ही बातचीत करना चाहता है। इंग्लैण्ड और अमेरिका यद्यपि संसार के सामने इस बात की घोषणा करते हैं कि वे साम्राज्यवाद और पाशविक शक्ति के विरोधी हैं परन्तु वे अन्दर ही अन्दर फ्रांस की सहायता करना चाहते हैं और वे दुर्बल देशों को पहले तो स्वतन्त्र ही नहीं होने देना चाहते और यदि वे किसी प्रकार स्वतन्त्र हो जाएँ तो उन्हें किसी प्रकार की शक्तिशाली नहीं होने देना चाहते। संयुक्त राष्ट्रसंघ की सुरक्षा परिषद् में ट्यूनीशिया के मामले में इंग्लैण्ड और अमेरिका ने यह कह कर कि इसका निर्णय संयुक्त राष्ट्रसंघ नहीं कर सकता-अपने पक्षपात को स्पष्टतया प्रदर्शित कर दिया है। यदि संयुक्त राष्ट्रसंघ इसका निर्णय नहीं दे सकता तो फिर कौन दे सकता है! क्या इसका सीधा सादा-सा यह अर्थ नहीं है कि वे ट्यूनीशिया पर फ्रांस के प्रभुत्व को स्थिर रूप से रखना चाहते हैं। यही कारण है कि आज स्वतन्त्रता और शान्ति को चाहनेवाले देशों की इंग्लैण्ड और अमेरिका से सहानुभूति हटती जा रही है। यह सत्य है कि आज अमेरिका की शक्ति संसार में सब से बड़ी है परन्तु विचारों की शक्ति उससे भी महान् होती है। यह तो स्पष्ट ही है कि आज विचारों के क्षेत्र में अमेरिका संसार में अपने नेतृत्व को खो चुका है। यदि इंग्लैण्ड और अमेरिका प्रजासत्तात्मक राज्यप्रणाली के पक्षपाती हैं तो उन्हें शब्दों द्वारा नहीं क्रियात्मक रूप से इसका प्रमाण देना पड़ेगा अन्यथा अब उनके निर्जीव शब्दों से किसी पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ सकता।

ग्वालियर की डायरी

हम 'अजन्ता' में जनवरी के अंक से उस्मानिया विश्वविद्यालय के इतिहास-विभाग के लेक्चरर श्रीयुत के. सजनलाल जी का 'ग्वालियर की डायरी' लेख प्रकाशित कर रहे हैं। यह लेख इस अंक में समाप्त होता है। यह लेख ऐतिहासिक परिपत्रकों के और अंग्रेज़ी में प्राप्त सामग्री के आधार पर लिखा गया है इस कारण स्थानों और अन्य नामों में भूलें हो गई हैं। हम 'विक्रम' के सम्पादक श्री सूर्यनारायण व्यासजी के कृतज्ञ हैं कि उन्होंने हमारा ध्यान इन भूलों की ओर आकर्षित किया है। हम नीचे उनके पत्र को अविकल रूप में प्रकाशित कर रहे हैं।

"......अजन्ता में 'ग्वालियर की डायरी' छप रही है। वह रोचक है किन्तु अनुवादक को इधर के नामों से परिचय नहीं है। इसलिए प्रायः ग़लती हो गई है; पिछली बार भी हुई थी। इसमें पर्याप्त भूलें हुई हैं। जैसे पृष्ठ ४३ पर आरम्भ ही में 'शाहजहांपुर' है यह 'शाजापुर' है। शाहजहाँपुर तो यू. पी. में है, शाजापुर मालवा में है जो उक्त राज्य का ही अंग रहा है। उसी में 'घाटे का' आ गया है वह घाडगे है। 'मधुराव फुलदिवा' श्री माधवराव फालके है। 'गज्जना बाई' न होकर 'गजराबाई' है; माक्षी गाँव लिखा है वह 'मक्षी' है; 'चालिस-मनकारी' लिखा है वह 'मानकरी' है। इसी तरह सिमेरी, सिप्रां शिवपुरी है। नरूर नरवर है। पृष्ठ ४४ पर कंगरिया लिखा है वह सम्भाजी आंग्रे है; दूसरे कालम में मैलबम साहब फ्रेञ्च था, पृष्ठ ४५ दूसरे कॉलम के आखिर में आगरा भेजने का उल्लेख है वह आगर (मालवा) की छावनी थी। सिपारी-सीपरी-शिवपुरी है। पृ० ४६ पर मानकराव है। दादा खासगीवाले हैं। ये अंग्रेज़ी के अनुवाद से भ्रम हुआ लगता है। बाक़ी डायरी बहुत रोचक एवं उपयोगी है......।"

श्री सूर्यनारायण जी व्यास स्वयं मध्य भारत में रहते हैं और मध्य भारत के इतिहास से अच्छी तरह परिचित हैं इसीलिए उनका स्थानों और अन्य ऐतिहासिक नामों का ज्ञान प्रामाणिक है। ये सब भूलें अंग्रेज़ी के कारण हुई हैं। हम श्री व्यास जी का हृदय से आभार प्रदर्शन करते हैं और इन गलतियों के लिए 'अजन्ता' के पाठकों से क्षमा चाहते हैं।

भूल सुधार

'भागमती' चित्र के नीचे "सालारजङ्ग म्यूज़ियम के सौजन्य से" छपा है। इसके स्थान पर "हैदराबाद म्यूज़ियम के सौजन्य से" होना चाहिए।

THE PRUDENTIAL
CENTRAL & URBE
Kingsway, SECUNDE

★

BRANCH : HYDERABAD.

TRANSACTS BANKING
OF EVERY DESCRI

Office Safety Facilities In Upto
Safe Vaults.

A. H. VENKAT RAO B. A., LL. B.,
Honorary Secretary.

TELEPHONE NO. 5322

HYDERABAD CO-OPERATIVE
Insurance Society Ltd.
BASHIR BAGH ROAD, HYDERABAD-Dn.
(ESTABLISHED 1935)

16 YEARS PROGRESS

FIGURES as on 1st APRIL 1952
Business in Force ..... More than Rs. 3 Crores
Life Fund ..... More than Rs. 73 Lacs

Claims paid more than 12 Lacs.
Low expense Ratio to
renewal preminm 15.8 percent
Bonus declared in all the 4 valuations.

CONSULT
FOR ALL TYPES OF INSURANCE.

है कि फ्रांस
या तो भी
जमाने की
नता । व
चाहता है
ने इस बा
र पाशवि
दर फ्रांस
ों को प
दि वे वि
र की श
च की सु
ौर अमे
क्त राष्ट
प्रदर्शि
ीय नहीं
सका
ा पर
यही
निवाले
ती ज
क संसा
ी भी
ा के क्षे
का है ।
प्रणाली
मक रूप
नके निर्
ा ।

उस्मानिय
श्रीयुत
ख प्रकाशि
है । यह ले
सामग्री

क उत्तमोत्तम

हित्य की प्राप्ति

के लिए

कमात्र स्थान *—

। हिन्दी प्रचार सभा

ड : हैदराबाद-द०

तार—"हिन्दी"

। प्रेस, हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद-दक्षिण.

अजन्ता

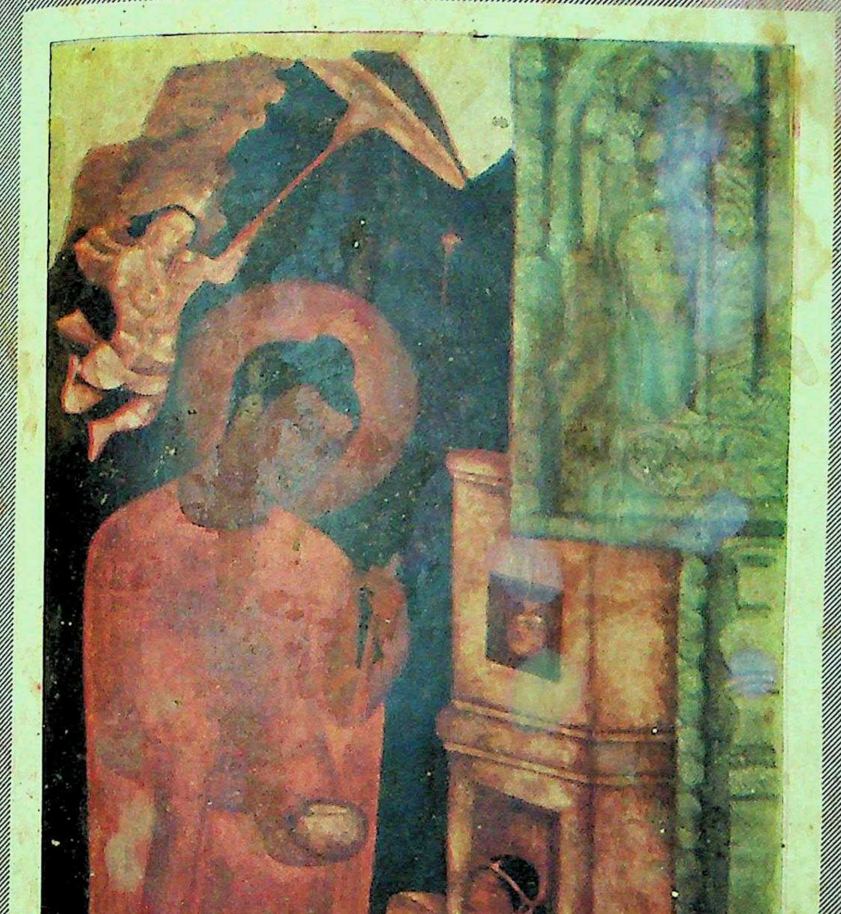

वर्ष ४ सितम्बर १९५२ अङ्क ९

हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा

इस अङ्क में पढ़िए :

श्री रोहिताश्व विद्यालंकार
श्री चन्द्रबली पाण्डे
श्री भगवतशरण उपाध्याय
श्री क़ासिम अली सजनलाल
श्री पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'
श्री स्टीफ़न ज्विग

श्री डा. सुधीन्द्र
श्री शम्भुनाथ शेष
श्री नीरज
श्री राजेन्द्र यादव

❀

अगले अङ्क में पढ़िए :

श्री ओ. सी. गांगुली
श्री परशुराम चतुर्वेदी
श्री सन्तराम बी. ए.
श्री सूर्यनारायण व्यास
श्री भास्कर रामचन्द्र भालेराव
श्री अनिल कुमार

श्री इक़बाल बहादुर श्रीवास्तव
श्री रमाशंकर मिश्र
श्री राजेन्द्र यादव
श्री अंचल

एक अङ्क का :— १) भा. मु.

"अजन्ता" का वार्षिक मूल्य :— ९) भा. मु.

वि. सू.—नमूने की प्रति के लिए रु० १) भा. मु. मनि ऑर्डर द्वारा अग्रिम भेजिए।

दी निजाम शुगर फैक्टरी
[लिमिटेड]

स्फटिकवत्, समरूप, मधुरतम
श्वेत शर्करा

★

जानकारी

विक्रय-विभाग

प्रधान कार्यालय से प्राप्त करें।

* * *

प्रधान कार्यालय	फैक्टरी
आबिद रोड,	शक्कर नगर
हैदराबाद – दक्षिण.	निजामाबाद.
केबल तथा तार "शुगर"	"शुगर" केबल तथा तार

फोन नं० ४७०४, ४२९६, ४१३७, ४८७६

दी हैदराबाद कन्स्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड
आबिद रोड, हैदराबाद दक्षिण
के
मैनेजिंग एजेण्ट के प्रतिनिधि,
दी निजाम शुगर फैक्टरी लिमिटेड
दी हैदराबाद कन्स्ट्रक्शन कम्पनी लिमिटेड के लिए विक्रय विभाग

वार्षिक चंदा मनी आर्डर से ६ रु० * **नमूने की प्रति १० आना**

यह भारतीय साहित्यक का प्रतिनिधित्व करनेवाली एक ऊँचे दर्जे की सुन्दर साहित्यिक और सांस्कृतिक मासिक पत्रिका है। प्रतिमास १ तारीख को प्रकाशित होती है।

'राष्ट्रभारती' भारतवर्ष के उत्तर-दक्षिण के पूर्व-पश्चिम के आपस के साहित्यिक और सांस्कृतिक आदान-प्रदान का बहुत अच्छा माध्यम है।

(१) इस पत्रिका को, राष्ट्रभाषा हिन्दी के तथा लगभग सभी भारतीय साहित्य और संस्कृति को बल व प्रेरणा पहुँचानेवाले प्रान्तीय भाषाओं के श्रेष्ठ विद्वान् साहित्यकारों का सहयोग प्राप्त है। (२) इस में देशी-विदेशी विद्वानों के भी ज्ञानपोषक और विविधमनोरंजक लेख रहते हैं। (३) प्रमुख कवियों की कविताएँ और कहानीकारों की श्रेष्ठ कहानियाँ। (४) "एकांकी" नाटक, रेखाचित्र और शब्द-चित्र। बंगला, मराठी, गुजराती, उड़िया, पंजाबी, काश्मीरी, राजस्थानी, उर्दू, तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम आदि आदि भारतीय भाषाओं का रसास्वाद करानेवाले सुन्दर हिन्दी-अनुवाद भी इसमें रहते हैं।

हिन्दी-प्रेमीमात्र से हमारा अनुरोध है कि आप 'राष्ट्रभारती' को अपनाइए और राष्ट्रभाषा के प्रचार में हमें शीघ्रातिशीघ्र सक्रिय सहयोग दीजिए।

राष्ट्रभारती

संपादक

मोहनलाल भट्ट

हृषिकेश शर्मा

आशा है "राष्ट्रभारती" के प्रचार में हिन्दी-प्रेमी सज्जन अवश्य हमारा हाथ बटायेंगे।

वार्षिक चन्दा भेज कर आज ही ग्राहक बन जाइये।

पता:— **"राष्ट्रभारती"** C/o राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, पो० हिन्दीनगर वर्धा (म० प्र०)

अग्नि संजीवन साल्ट

नीचे आये हुए रोगों की अचूक दवा
है बदहज्मी, पेटदर्द, वायु-गोला,
अजीर्ण, तिल्ली, बद्ध-कोष्टता,
अरुचि, कब्ज, भूख की कमी
मदाग्नि तथा परदेश में
पानी लगना, वायु
साफ़ न खुलना,
बादी का दर्द
आदि।

●

दाम १ शीशी—१० आने
डाक खर्च अलग

पता:—

अर्जुन मिश्र, पी, कल्याणपुर.
(दरभंगा)

कल्पना मासिक

पढ़िये

जिसमें उच्चकोटि के साहित्यिकों और कलाकारों की रचनाएँ आपको मिलेंगी।

प्रत्येक अङ्क में एक रंगीन चित्र

स्थायी स्तम्भ:—

कलाप्रसंग—*विनोद बिहारी मुकर्जी*

सांस्कृतिक टिप्पणियां—*दिनकर कौशिक*

साहित्य धारा—*इस स्तम्भ के अन्तर्गत पाठकों लेखकों आदि द्वारा उठाए गए साहित्यिक प्रश्न आदि हैं।*

पुस्तक समालोचना—*कल्पना अपनी निर्भीक समीक्षा के लिए प्रसिद्ध है।*

वार्षिक मूल्य १२) * एक प्रति का १)

पृष्ठ संख्या ८०

८३१, बेगम बाज़ार, हैदराबाद

THE
Hyderabad Co-operative Dominion Bank Ltd.
[Estd. MARCH 1915]

Telephone : 4610
Telegram : DOMINBANK

Sub Offices :
PATHER GATTI,
UNIVERSITY BRANCH
(Adickmet)

Head Office :
SHAHRAH-E-OSMANI
HYDERABAD-DECCAN.

Branches :
JADCHARLA (Dt, Mahboobnagar) THUNGABHADRA PROJECT (Munirabad)

1. CURRENT ACCOUNTS are opened free of charge and interest is allowed at 1½% per annum.
2. SAVING DEPOSITES are accepted and interest is allowed at 2% per annum.
3. SPECIAL SAVINGS DEPOSITES are accepted and interest is allowed at 1½% per annum.
4. DRAFTS are issued on all important COMMERCIAL CENTERS and within the HYDERABAD STATE.
5. PENSIONS, MANSABS, etc, are collected on commission basis, premiums remitted & all standing instructions on behalf of the customers carried out.
6. SAFE DEPOSIT LOCKERS & VAULUTS are available at HEAD OFFICE.

BANKING BUSINESS OF EVERY DESCRIPTION TRANSACTED

K SUNDARAVARADACHARI,
GENERAL MANAGER.

RAI DILSUKH RAM,
CHAIRMAN.

FIRE: ACCIDENT: MARINE:

THE HYDERABAD UNITED INSURANCE CO., LTD.,

SPONSORED BY
THE GOVT. OF HYDERABAD.
Post Box No. 164, Abid Road, HYDERABAD-Dn.

Telegram: HUICOL
Telephone: 5579

Chairman:
L. N. GUPTA Esq. I. A. S.,

General Manager:
H. D. MEHTA Esq.,

'HIND'
BRANCHES : Bombay, Calcutta, Madras, Nizamabad & Manchirial.

जीवन साहित्य ही क्यों पढ़ें ?

इसलिए कि

"विचार के लिए एक अच्छा खाद्य दे रहा है।"—**विनोबा**

"जीवन साहित्य को मैं ध्यान से पढ़ता हूँ। गान्धी विचार धारा का इसे मैं एक ऊँचा मासिक पत्र मानता हूँ इस पत्र के जैसे स्वस्थ तथा विचारपूर्ण लेख अन्यत्र देखने में कम मिलते हैं। इस पत्र ने शुरू से ही जो यात्रापथ पकड़ा है, वह निःसन्देह हमारे राष्ट्र तथा मानव जाति के लिए श्रेयस्कर है।"—**वियोगी हरि**

"मैंने पिछले चार वर्षों के अंक मंगाकर ध्यानपूर्वक पढ़े। यह देख कर मुझे हर्ष और आश्चर्य भी हुआ कि कितना उपयोगी सात्विक मानसिक भोजन जीवन साहित्य दे रहा है। निःसन्देह वह उच्च कोटि का मासिक पत्र है।"—**बनारसीदास चतुर्वेदी**

"जीवन साहित्य उन गिनती के पत्रों में है, जिनसे हिन्दी का मान ऊँचा है। सामग्री के चयन में उसकी एक अपनी मर्यादा है। उस मर्यादा के पालन में वह निर्लोभ है और निर्मोह। प्रामाणिकता इसकी विशेषता है।"—**जैनेन्द्र कुमार**

यह मासिक पत्र वर्ष भर आपके समूचे परिवार के लिए सुपाठ्य सात्विक।

* मानसिक आधार देगा।

* इसके ग्राहक होने पर 'मण्डल' की पुस्तकें रियायती मूल्य में मिलेंगी।

* उसके विशेषांकों की पाठकों ने भूरि भूरि प्रशंसा की है।

वार्षिक शुल्क ४ रुपये ::: आज ही ग्राहक बन जाइए

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ
सचित्र-सांस्कृतिक-साहित्यिक मासिक

विक्रम

सम्पादक-संचालक
श्री सूर्यनारायण व्यास

"विक्रम" ने अपने प्रकाशन के अल्प काल में जो लोकप्रियता प्राप्त की है, वह आश्चर्यकारक है। इसके १६ पृष्ठों में लिखी जानेवाली संपादकीय टिप्पणियाँ अपनी सजीव शैली और चुभती हुई भाषा के लिये सर्वत्र विख्यात हैं। इसमें हिन्दी के श्रेष्ठ कलाकारों की रचनाएँ प्रतिमास प्रकाशित होती हैं—देश के अनेक विद्वानों और लेखकों ने इसकी मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की है।

हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान् और आचार्य **श्री पं. हजारीप्रसाद द्विवेदी**—'मैं **विक्रम** में प्रकाशित विद्वत्तापूर्ण, ऐतिहासिक, लेखों को बड़े चाव से पढ़ता हूँ, उनसे मेरी ज्ञान-वृद्धि होती है। मेरा विचार है कि **'विक्रम'** अपने ढंग का अकेला हिन्दी-मासिक है।

सुप्रसिद्ध कवि-साहित्यिक **पं. श्री माखनलाल चतुर्वेदी**—"विक्रम अपनी गति में अत्युत्तम ढंग से बढ़ रहा है। उसके लेख कविताएँ, उसके विचार और उसका दृष्टिकोण सब मानों उज्वल भविष्य और निर्मल भविष्य की सूचना देते हैं।"

सुप्रसिद्ध उपन्यासकार **श्री पं. वृन्दावनलाल वर्मा**—"अंक पूरा आद्योपान्त पढ़ डाला। विद्वत्ता और शोधों से भरी, विचारों को उत्तेजना देनेवाली सामग्री भरी पड़ी है। व्यास-उवाच का तो कहना ही क्या? बहुत ही कम पत्रों में ऐसी सम्पादकीय टिप्पणियाँ पढ़ने को मिलती हैं।"

यदि आप आज तक ऐसे पत्र के ग्राहक नहीं बने हैं तो शीघ्र ही ६) भेजकर वर्ष भर के लिए ग्राहक बन जावें।

विज्ञापनदाताओं के लिए स्वर्ण-अवसर

"विक्रम कार्यालय उज्जैन" (म० भा०)

१६५६

Education
Start - in - Life
Marriage of your children
Assured without any embarrassment
Beside a comfortable old age for you

for All Types Of Insurance

Consult:-
THE HYDERABAD CO-OPERATIVE INSURANCE SOCIETY Ltd.
Bashir Bagh Road, Hyderabad-Dn.

Telephone No. 5322

Hyderabad Co-operative Insurance Society Ltd.
Bashir Bagh Road, Hyd.Dn.
(Established 1935)

Figures as on 1st July 1952.

Business in force .... More than. Rs. 3¼ Crores
Life Fund....More than Rs. 75 Lacs
Claims paid more than Rs. 12 Lacs.
Bonus declared in all the (4) valuations.

Consult:-
For ALL TYPES OF INSURANCE.

मनोविज्ञान

काशी मनोविज्ञान शाला का मासिक पत्र

"यह मनोविज्ञान शाला काशी, का मुखपत्र है। दर्शन और मनोविज्ञान के सम्मिलित स्वरूप का दर्शन कराने वाला अपने ढंग का यह एक ही पत्र है। सितम्बर के अंक में अनेक मननीय एवं पठनीय लेख हैं। जिनमें जर्मन मनोविज्ञान की आधुनिक प्रवृत्ति तथा भारत की मनोवैज्ञानिक देन विशेष उल्लेख्य हैं। मनोवैज्ञानिक खोज के स्तम्भ में बहुत ही ध्यान देने योग्य सामग्री है। अभिभावकों तथा अध्यापकों के लिए यह बड़े महत्व की है।"

'आज', सितम्बर १०' ५२

सम्पादकः
लालजीराम शुक्ल

वार्षिक मूल्य
४) रुपए

मिलने का पताः **व्यवस्थापक 'मनोविज्ञान' ६१/२५ सिद्धागिरी बनारस**

पश्चिमोत्तर भारत की प्रमुख हिन्दी मासिक पत्रिका

विश्व ज्योति

सम्पादक-(१) **श्री विश्वबन्धु शास्त्री**, M. A., M. O. L. (पं) O. d' A. (फ्रॉं.) Kt. C. T. (इट.)
(२) **श्री सन्तराम**, बी. ए.

संचालक-**श्री विश्वेश्वरानन्द**, वैदिक संस्थान,-साधु आश्रम, होश्यारपुर.

गत मार्च से प्रारम्भ कर छः मास में ही इस पत्रिका ने अपनी विशेषताओं के कारण हिन्दी-जगत् में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है।

विश्व हित की साधना के लिए :—

(क) शुद्ध सांस्कृतिक साहित्य का सृजन, (ख) प्राचीन और नवीन ज्ञान-विज्ञान का समन्वय, (ग) बौद्धिक क्रांति और नई चेतना का जागरण, (घ) अन्याय-पूर्ण सामाजिक विषमताओं का दूरीकरण, (ङ) सभी प्रकार के विचारों का निष्पक्ष अध्ययन और आलोचन करना ही **विश्व ज्योति** का लक्ष्य है।

इसे तुरन्त मँगाइए और लाभ उठाइए। **वार्षिक चन्दा— ८) रुपए भा० मु०**

परन्तु १०) रुपए वार्षिक चन्दा देकर विश्वेश्वरानन्द वैदिक संस्थान के सदस्य बन जाने पर भेंट के रूप में मुफ्त।

पत्र व्यवहार का पता :—

व्यवस्थापक, विश्व ज्योति, साधु आश्रम होश्यारपुर, (पंजाब)

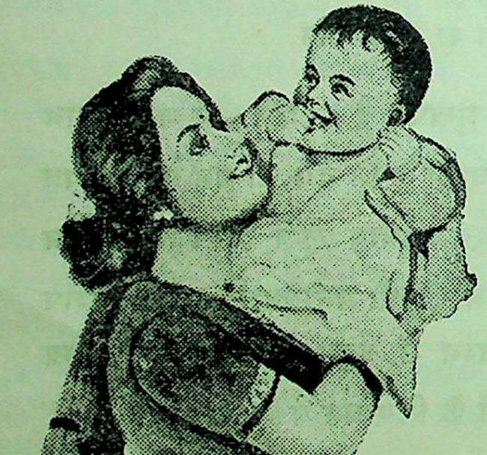

INFANTONE

बच्चों के सब प्रकार के पेट के रोगों पर सर्व परीक्षित लाभदायक औषधि

Keeps baby cheerful

हैदराबाद केमिकल अँड फारमास्युटिकल वर्क्स लि०
आज़माबाद, हैदराबाद (दक्षिण)

मिश्रा

पंजाब, मध्यप्रदेश, हैदराबाद, मैसूर और त्रावणकोर राज्यों के शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत

अजन्ता

सचित्र मासिक पत्रिका

वर्ष ४ सितम्बर १९५२ अङ्क ९

सम्पादक
वंशीधर विद्यालङ्कार
श्रीराम शर्मा

—: संचालक :—

हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा

अनुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

१ सपनों में आया न करो—डा० सुधीन्द्र १
२ बजे बाँसुरी—श्री शम्भुनाथ शेष ३
३ गीत—श्री नीरज ५
४ युग प्रभाती—श्री पुष्प, एम. ए. ६
५ मेघ—श्री जगदीशचन्द्र जोशी, एम. ए. ७
६ तुम्हें गा रहा हूँ—श्री आसाराम वर्मा ८
७ नालन्दा—श्री क़ासिमअली सजनलाल, एम. ए. ९
८ साम्यवाद—श्री रोहिताश्व विद्यालङ्कार, एम. ए., एल् एल्. बी. १५
९ रघुवंश के काव्य कौशल का आधार—श्री चन्द्रबली पाण्डे १९
१० "क्वीन एलेज़ाबेथ"—श्री भगवतशरण उपाध्याय २५
११ एक तारा—श्री राजेन्द्र यादव २८
१२ वैष्णवों की परमाराध्या राधा रानी—श्री व्रजभूषण मिश्र २९
१३ हिन्दी पत्रकारिता की समस्या—श्री कृष्णदत्त ३२
१४ प्रसिद्ध जर्मन कवि हाइनरिख़ हाइने—श्री मंगलकिशोर पाण्डेय ३६
१५ झूठी मनुहारें—श्रीमती कमला दीक्षित ३८
१६ कवि चन्द्रकुँवर—डा० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, एम. ए., डी. फिल, डी. लिट्. ३९
१७ प्रोफ़ेसर इन्द्र विद्यावाचस्पति—श्री पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश', एम. ए. ४१
१८ महाकवि भारती—श्री र. वेंकटरत्नम् 'उदयसूर्य', बी. एस सी. ४९
१९ अंधेरे गली में—श्री स्टीफ़न ज़्विग; अनु:—श्री प्रकाशचन्द्र चतुर्वेदी, एम. ए. ५३
२० साहित्य चर्चा—श्री कृष्णशंकर व्यास ६३
२१ चिट्ठी-पत्री (१)—श्री र. वेंकटरत्नम् ६५
(२)—श्रीमती आर. माधवी
(३)—र. राजेन्द्रकुमार मित्तल
(४)—श्री राजकिशोर पाण्डेय, एम. ए.
२२ नीरक्षीर—श्री हरिकृष्ण पुरोहित एम. ए. ६८
२३ सामयिक ७२
२४ सम्पादकीय—श्री वंशीधर विद्यालंकार ७७
—श्री श्रीराम शर्मा

चित्र

बीदर की मार्केट ... ... श्री एम. रहीम
तीन तरुस्कन्ध ... ... श्री मधुसूदनराव
मूर्त्तिकार ... ... श्री बी. सत्यनारायण
गान्धीवाद ... ... सईद बिन मुहम्मद
शहर से दूर ... ... अक़बरअली हुसैन

हैदराबाद म्यूज़ियम के सौजन्य से

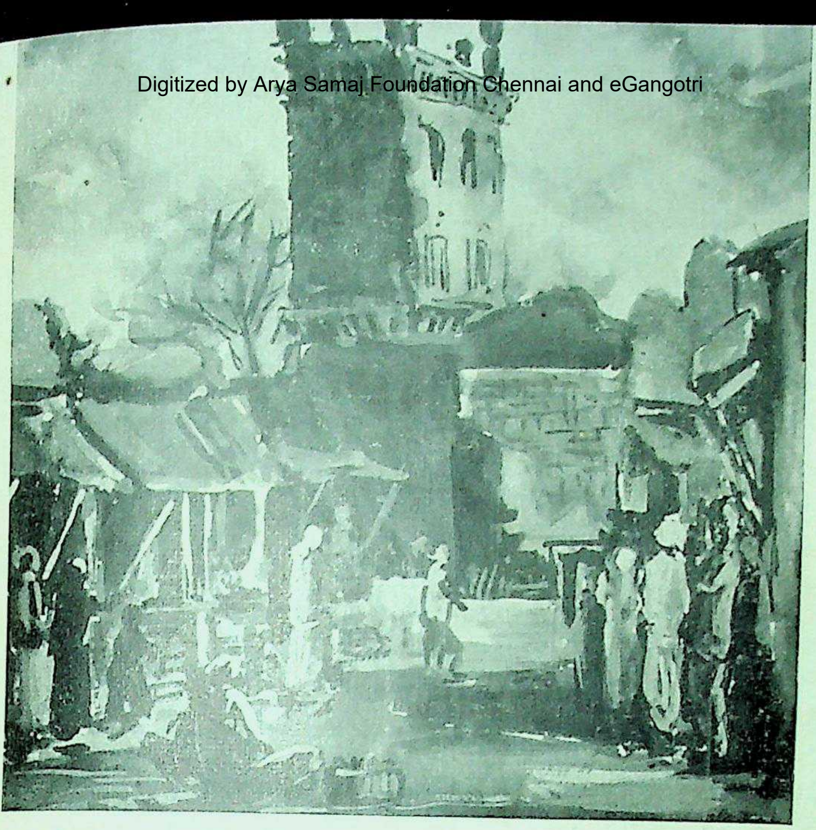

बिदर की मार्केट चित्रकार : एम. ए. रहीम

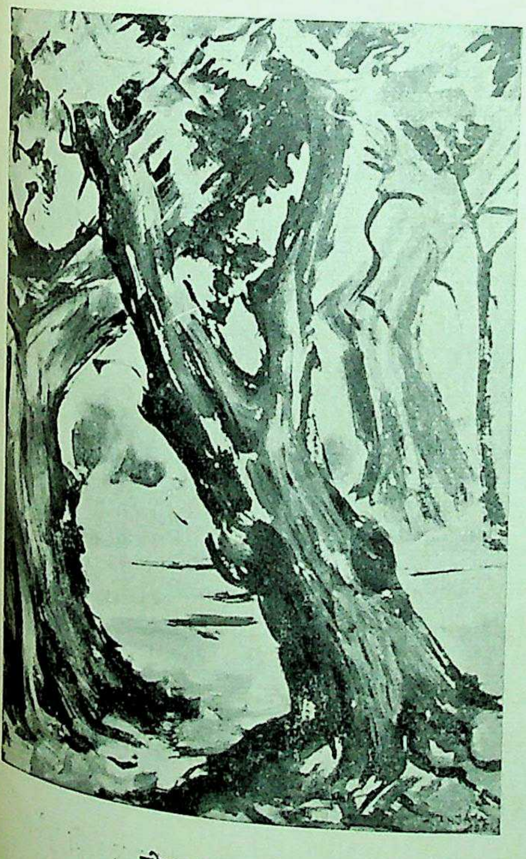

तीन तरुस्कन्ध

चित्रकार : मधुसूदन राव

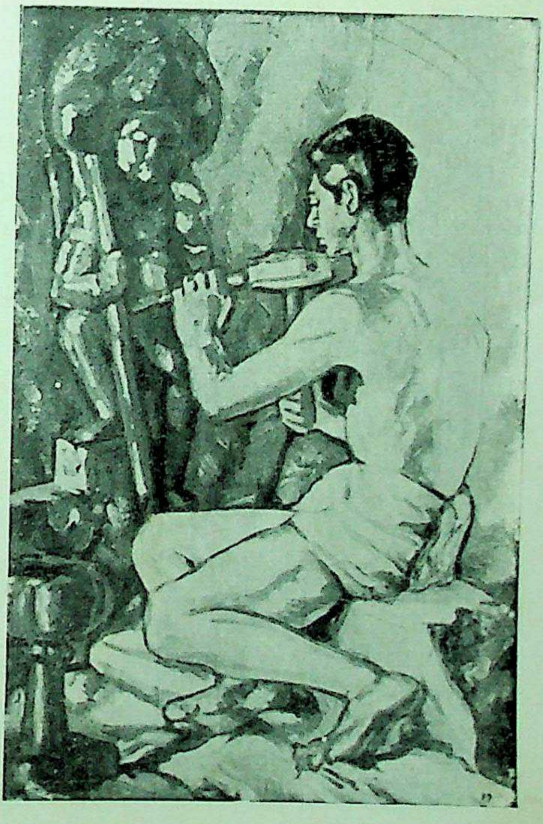

मूर्तिकार

चित्रकार : बी. सत्यनारायण

हैदराबाद म्यूज़ियम के सौजन्य से

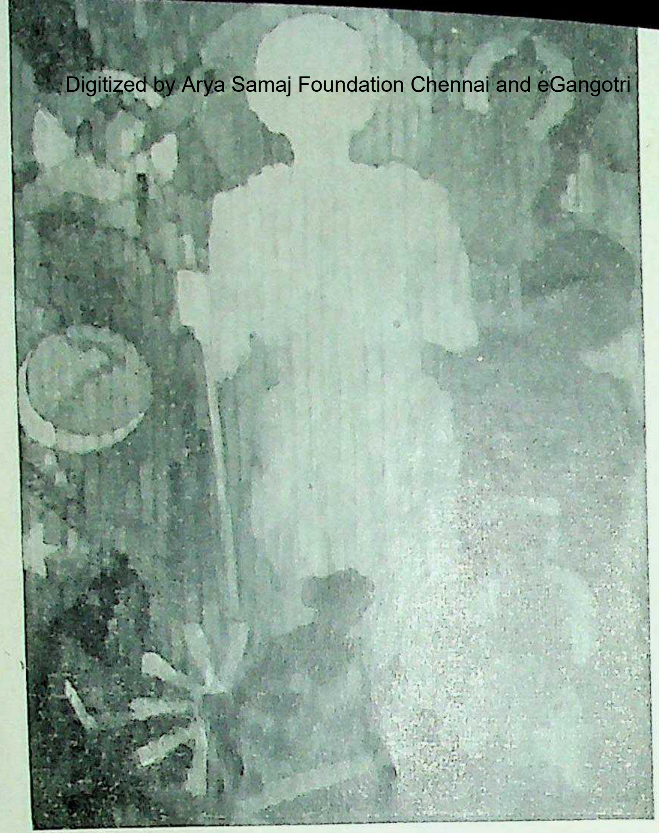

गान्धीवाद चित्रकार : सईद बिन मुहम्मद

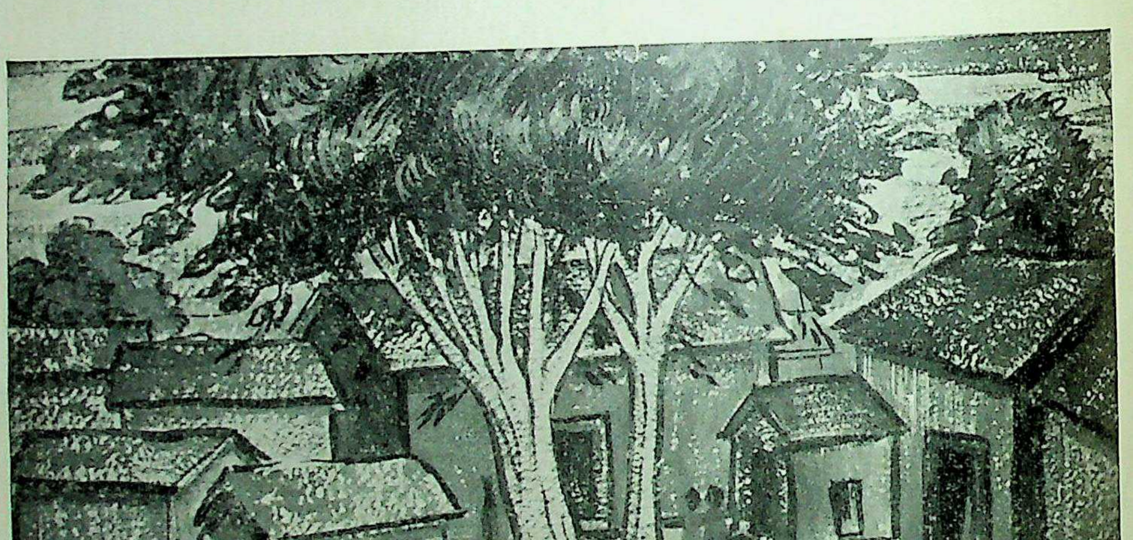

शहर से दूर चित्रकार : अकबर अली हुसैन

हैदराबाद म्यूज़ियम के सौजन्य से

अजन्ता

वर्ष ४ सितम्बर १९५२ अङ्क ९

सपनों में आया न करो

यदि तुम सचमुच में आ न सको
तो सपनों में आया न करो !
यदि सपनों में ही आ जाओ,
तो आकर यों जाया न करो !

जब तुम आते हो, फूल
कामनाओं के खिल खिल उठते हैं,
चलने की चर्चा चला उन्हीं
फूलों को मुरझाया न करो !

मधु गीत मिलन का सुन मेरी
वीणा झंकृत हो उठती है,
तारों को भंग करे ऐसा
तुम विरह गीत गाया न करो !

तुम इधर मुसकराओ, देखो
संकट में सारे झेलूँगा,
मुख मोड़ रूठ कर प्राणों पर
पर्वत दुख का ढाया न करो।

जीवन के इस दुर्गम पथ पर
कैसे चल पाऊँ एकाकी ?
तुम साथ न रह कर सुधियों से
प्राणों को बहलाया न करो !

जीवन यह लम्बा हो जाए
यदि तुम मेरे ही साथ रहो
रह दूर एक पल, जीवन पर
घन घोर प्रलय-छाया न करो।

इन मुख-आवरणों में तुमको
मैं प्रतिपल खोजा करता हूँ
तुम छिपे इंगितों से मुझ को
इस जग में भटकाया न करो।

वनस्थली —डॉ० सुधीन्द्र

बजे बाँसुरी......

अमृत ढालती कल्पना-सी नवीना
बजे बाँसुरी प्राण अमराइयों में !

—

बहुत पी चुका मैं ज़हर ज़िन्दगी का,
रहा प्राण सा प्राण प्यासी नदी का,
मनों फूल भव पर चढ़ाता रहा मैं
मिटा शूल अब तक न पर बे-बसी का !
जलन है कि घटती नहीं एक पल को,
चुभन है कि मिटती नहीं एक पल को,
विकल मन कहाँ शान्ति पाए सुनयने,
अलक-साँवली-स्निग्ध-परछाइयों में !
अमृत ढालती कल्पना-सी नवीना
बजे बाँसुरी प्राण अमराइयों में !

—

तुम्हारे निपट मौन से पा सहारा,
सितारों-घिरे चाँद को जब पुकारा,
यही एक आवाज़ आई गगन से—
कभी मौन के रूप को भी निहारा !
वही मौन जो प्राण की रागिनी है,
वही मौन जो गीत की चाँदनी है,
वही मौन फिर आज मुखरित हुआ है
हृदय की प्रभापूर्ण गहराइयों में !
अमृत ढालती कल्पना-सी नवीना
बजे बाँसुरी प्राण अमराइयों में !

—

न अब प्यार की बात छिपती छिपाए,
न अब रोक पाता नयन छलछलाए,
विरह-पीर में अब कहाँ वह मधुरता,
कि जिसमें हलाहल-भरे युग बिताए,
लगे हैं नयन युग-मिलन के क्षितिज पर !
कि अब सिन्धु से चांद निकला उतर कर !
पुलक भर रहा ध्यान से है तुम्हारे
मधुर कल्पनापूर्ण तरुणाइयों में !
अमृत ढालती कल्पना-सी नवीना
बजे बाँसुरी प्राण अमराइयों में !

शरद् पूर्णिमा खिल रही फिर सुहानी,
नयन में रही झूल वह रात रानी,
कि जब प्यार था जागरित, रूप निद्रित
अधर पर रुकी साध की शेष वाणी,
स्वतः दूर वह आवरण हो चुका है।
मगर प्यार का गीत ही क्यों रुका है !
उषा-सी ललक जागती हाँ सुनहली
पुलकपूर्ण-अनुराग-अरुणाइयों में !
अमृत ढालती कल्पना-सी नवीना
बजे बाँसुरी प्राण अमराइयों में !

—शम्भुनाथ 'शेष'

नई दिल्ली

गीत

कहते कहते थके कल्प, युग, वर्ष, मास, दिन,
पर जीवन की राम कहानी अभी शेष है।

सौ सौ बार उठा जुड़ कर सपनों का मेला,
सौ सौ बार गया मंज़िल तक प्राण अकेला,
बूँद बूँद घन हुए हज़ारों बार नयन के,
ढहे करोड़ों बार महल चाँदी-कंचन के,
पर है यह इन्सान कि फिर भी जिसके मन में,
नीड बसाने की नादानी अभी शेष है।
कहते कहते थके कल्प, युग, वर्ष, मास, दिन
पर जीवन की राम-कहानी अभी शेष है॥

छिन छिन क्षीण हो रहा श्वास-कोष जीवन का,
छिन छिन बढ़ता जाता है व्यापार मरण का,
हुए जा रहे टूक टूक सब चांद-सितारे,
बने जा रहे मरु दिन दिन सागर-सरि सारे,
पर है यह आश्चर्य कि मट्टी की आंखों में–
एक बूँद आंसू का पानी अभी शेष है।
कहते कहते थके कल्प, युग, वर्ष, मास, दिन
पर जीवन की राम-कहानी अभी शेष है॥

‘आज’, आज का वर्तमान, कल का अतीत है,
और भविष्यत सिर्फ़ भूत का मूक गीत है,
आता बन कर जन्म, मरण बन जाता हर पल,
बस चुटकी भर ख़ाक ज़िन्दगी भर की हलचल,
लेकिन बुझी बुझी प्राणों की हर धड़कन में–
किसी चोट की पीर पुरानी अभी शेष है।
कहते कहते थके कल्प, युग, वर्ष, मास, दिन
पर जीवन की राम-कहानी अभी शेष है॥

कानपुर

नीरज

युग प्रभाती

वह अँधेरा भागता है
यह उजाला जागता है
औ' उजाले की प्रभाती
आज कण कण गा रहा है—
अब नया युग
आ रहा है !

वह पुराना दौर जर्जर
आज अन्तिम सांस लेकर
रात के पिछले पहर की
कालिमा-सा
जा रहा है !

औ' युगान्तर की
डगर पर
अब नया जीवन
चरण धर
सभ्यता के शून्य नीरव
विस्मरण को याद करता
इस पुरानी धूल में से
अब नई संस्कृति उगेगी
भव्य वातावरण में से
नया मानव साँस लेगा
पीठ सीधी कर सकेगा
साँस ठंडी भर सकेगा ।

भग्न इस अवशेष में हम
आज गहरे हल चलाएँ
बीज बोयें साम्य का
सद्भावना की खाद डालें
प्रेम जल से सींच लें
शान्ति का अंकुर उगायें,
शून्यता का सुप्त, निश्चल
दिल धड़कता जा रहा है
अब नया युग आ रहा है !

—'पुष्प', एम. ए.

जम्मू

मेघ

नयन में प्रिया की तरल सिसकियाँ ले,
कि बादल घुमड़ता चला जा रहा है।

उसाँसें थकीं जो सुहाने अधर में,
चरण में हुए थिर अनायास नूपुर,
प्रिया यक्ष की जब जली दीप-सी थी,
उठाये हृदय में विरह के ज्वलित सुर,
नशीली तड़ित् में वही साधना ले,
अंधेरे गगन में उड़ा जा रहा है,

कि प्यासी धरा में अँगारे सँजो कर,
उभरता क्षितिज के पुलिन चाँद आता।
कि आशा मिलन की विरह बन गई है,
युगों से विलख कर पपीहा सुनाता,
अंधेरी निशा में उसी का रुदन सुन,
कि शायद सजल सा हुआ जा रहा है,

अतल में पड़ी सीप ने क्षुब्ध होकर,
अजाने विरह में हृदय चीर देखा,
कि सागर व्यथा से हहर कर उठा तब,
विभा में प्रलय की खिंची क्षीण रेखा,
कि निस्पन्द-सी सीप को प्राण देने
सुधा घट सँजोये चला जा रहा है,

विरह को विरह का संदेशा सुनाने,
कि रिमझिम गगन से बरस आज आया,
कि प्रोषित-प्रिया की छलकती निगाहें,
ढुलक कर बनी बाढ़ आषाढ़ आया
मचलते नयन में तुम्हारी छटा दे
कि सन्देश-वाहक चला जा रहा है।

पिलानी

—जगदीशचन्द्र जोशी, एम-ए.

तुम्हें गा रहा हूँ

तुम्हें गा रहा हूँ।
तुम्हें गा रहा हूँ॥

स्वरों की संजो कर
सखे दीप माला,
तुम्हें खोजता हूँ
सदा गीत ही में,
कहूँ जागरण या—
कहूँ स्वप्न तुम को
कहूँ सत्य, या फिर
कहूँ कल्पना ही;
नहीं हो निकट तुम
नहीं दूर भी हो
तुम्हें तो स्वरों की
नहर में लहर-सा—

सदा पा रहा हूँ—
सदा पा रहा हूँ।
तुम्हें गा रहा हूँ—
तुम्हें गा रहा हूँ॥

तुम्हें भूल सकता
नहीं हूँ—नहीं हूँ
सुरीले-सुरीले
नुकीले-नुकीले
स्वरों के शरों से
विरह—वेदना की
घटा चीर करके
मिलन-यामिनी के
प्रणय-चन्द्रमा में
तुम्हें देखने को
चकोरा बना-सा
स्वरों के परों से—

उड़ा जा रहा हूँ
उड़ा जा रहा हूँ।
तुम्हें गा रहा हूँ—
तुम्हें गा रहा हूँ॥

सखे, स्मृति तुम्हारी
बनी काव्य-कृति है,
तुम्हें छन्द में, मैं,
बिठाकर कि जैसे
रजत हँसिनी-सी
प्रगति के उषा की
सुनहली सु-नौका
कनक-से किरण की
चपल-डंडियों से
गगन से धरा से
किनारे-किनारे--
लिये आ रहा हूँ-

तुम्हें गा रहा हूँ-
तुम्हें गा रहा हूँ॥

—आसाराम वर्मा

नालन्दा

(१)

नालन्दा का, जिसे हम आज बड़गाँव (संस्कृत बड़ग्राम-बरगद के पेड़ वाला गाँव) कहते हैं, उल्लेख प्रारम्भिक जैन और बौद्ध साहित्यों में बहुतायत से मिलता है। जैन ग्रन्थों द्वारा ज्ञात होता है कि नालन्दा राजगृह का अत्यन्त वैभवशाली उपनगर था और महावीर ने चौदह चौमासे यहाँ बिताए थे। नालन्दा राजगृह से सात मील दूर है। बौद्ध पुस्तकों में इसको दो नगर माने गए हैं और इसके मध्य के क्षेत्र को 'अन्तर च राजगहम अन्तर च नालन्दम्' कह कर वर्णन किया गया है। इन ग्रन्थों में अनेकों बार वर्णन आया है कि बुद्ध और महावीर ने वहाँ एक ही समय पदार्पण किया। जब कभी बुद्ध नालन्दा पधारते थे, पवारिका नामक आम्रकुञ्ज उनके ठहरने का स्थान होता था। 'महापारिनिब्बानसुत' के अनुसार अनेक शिष्यों के साथ बुद्ध ने नालन्दा की ओर अपनी अन्तिम यात्रा की। बुद्ध के एक प्रधान शिष्य का जन्म और मृत्यु स्थान नालग्राम निस्सन्देह नालन्दा ही है। जहाँ मुद्गलायन नामक दूसरा शिष्य पैदा हुआ वह भी इसके पड़ोस में ही है।

नालन्दा ग्राम और आम्रकुञ्ज, जो बुद्ध के ठहरने के स्थान थे ह्वेनसांग द्वारा वर्णित एक किम्बदन्ती के विषय हैं। "जनश्रुति है कि नालन्दा विहार के दक्षिण में आम्रवन के भीतर एक तालाब में नालन्दा नामक अजगर रहता था उसी के नाम पर विहार का नामकरण हुआ। पर सच तो यह है कि इस स्थान को राजधानी बना कर जूलय नामक राजा राज्य करता था। उसको इसलिए नालन्दा की उपाधि मिली क्योंकि वह दयालु और उदार था और उसे 'दान देने से कभी सन्तोष नहीं' होता था। इसी उपाधि के कारण समीपवर्ती विहार का नाम नालन्दा पड़ा। प्रारम्भ में विहार के नीचे की भूमि आम्रवन थी जिसे ५०० सेठों ने दस करोड़ स्वर्ण मुद्राओं से खरीद कर बुद्ध को दान में दी।" ह्वेनसांग का कहना है कि नालन्दा विहार आगे चल कर वहीं स्थापित हुआ जहाँ आम्रवन अनेकों बार बुद्ध के ठहरने से पवित्र हो चुका था।

इस प्रकार ह्वेनसांग विहार के नाम की उत्पत्ति तालाब में रहने वाले अजगर से नहीं मानता बल्कि बुद्ध के पहले जन्म में राजा होकर अपरिमित दान देने से प्राप्त हुई उपाधि से मानता है। शैविनीज़ ने लिखा है कि यह नाम 'न-अलम्-दा' अर्थात् 'पर्याप्त दान नहीं', इस प्रकार बना है। कुछ चीनी ग्रन्थकारों के अनुसार पाँच राजकुमारों से परम्परा द्वारा प्राप्त विहार की स्थापना के लिए धन देने के कारण है जिसके सम्बन्ध में कुछ विवरण नीचे दिया जा रहा है।

ह्वेनसांग के जीवनी-लेखक ने उस समय तक प्रचलित सभी-किम्वदन्तियों का वर्णन किया है और विहार की भूमि के स्वामी के बारे में भी कुछ ज्ञातव्य बातें बताई हैं। इससे पता चलता है कि दन्तकथाओं के आधार पर इतिहास लिखने की क्रम से जितनी चेष्टाएँ हुईं, उतना ही किम्वदन्तियों का विस्तार हुआ है। यह स्थान आम्रकुञ्ज से अमर नामक सेठ का उद्यान हो गया और जिन पाँच सौ सेठों ने उस उद्यान को ख़रीदने के लिए धन दिया उन्हें यथाविधि पुरस्कार मिला और वे अर्हत हो गए। ह्वेनसांग के जीवनी-लेखक का वर्णन इस प्रकार है: 'नालन्दा विहार से अभिप्राय 'निरन्तर दान देने वाला' विहार है। वृद्ध लोगों से इस प्रकार की कथा सुनने में आती है कि आम्रवन के मध्य में एक तालाब था। इस तालाब में नालन्दा नामक नाग निवास करता था। अत एव उस स्थान पर जो विहार बना वह नालन्दा कहलाया। दूसरी कथा है कि बोधिसत्व की दशा में त्तत्तघट्ट (तत्वघट) एक राजा था जिसने अपने विशाल राज्य की राजधानी यहाँ बनाई। वह अनाथों और असहायों पर बड़ी दया करता था। अपने इस स्वभाव के कारण उनकी भलाई के लिए उसने अपना सर्वस्व दे दिया। राजा के दानी होने के कारण इस स्थान का नाम 'निरन्तर दान देनेवाला' हुआ। यह स्थान प्रारम्भ में अमर नामक सेठ का उद्यान था। पाँच सौ सेठों ने इसे दस लाख स्वर्ण-मुद्राओं में ख़रीदा और बुद्ध को भेंट में दिया। यहाँ बुद्ध ने तीन महीने तक धर्म का उपदेश दे दिया। फलस्वरूप अधिकांश सेठ अन्य लोगों से पहले अर्हत्व को प्राप्त हुए।

इतसिङ्ग नाग की कहानी को प्रधानता देता हुआ लिखता है: "यह चे-लि-ना-लन-तोओ मो-हो-पि-हो-लोओ

की आकृति है। चीनी भाषा में अनुवाद करने पर इसका अर्थ होगा 'पवित्र नाग का आनन्दमय महानिवास'। चीन से पश्चिम के देशों में जब वे किसी राजा या उच्चाधिकारी या किसी मन्दिर के विशाल भवनों के विषय में वार्त्तालाप करते हैं तो सदैव प्रारम्भ में चे-लि (श्री) उपसर्ग जोड़ देते हैं जिसका अर्थ होता है भगवान् और आनन्दमय। ना-लन-तोओ (नालन्दा) एक नाग का नाम है जो कहीं पास में ही रहता था। सच तो यह है कि ना-किया-लन-तोओ (नाग्र-लन्दा) नामक नाग रहता था। उसी के नाम से नालन्दा नाम पड़ा। पि–हो–लोओ (विहार) का अर्थ है निवास-स्थान। जो लोग मन्दिर लिखते हैं वे ठीक अनुवाद नहीं करते।"

विहार की स्थापना की ठीक तिथि का निर्णय करना कठिन है। फ़ाहियान इस विषय में कुछ नहीं लिखता। जिसका यह अर्थ लगाया गया है कि उसके भ्रमणकाल के बाद यह विहार अस्तित्व में आया। लेकिन इस में सन्देह किया जा सकता है क्योंकि ह्वेनसांग और इत्सिङ्ग जैसा कि आगे चल कर पता चलेगा इसको अति प्राचीन मानते हैं और ऐसा ही तारानाथ का मत है यद्यपि तारानाथ का समय बहुत बाद में है और उनके लेख अधिक प्रामाणिक नहीं। फ़ाहियान का मौन यदि सचमुच इस विषय में मौन है—तो वह केवल इस बात का परिचायक है कि इस स्थान ने विद्या के केन्द्र के रूप में उस समय अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त न की थी। बौद्ध-धर्म की पुस्तकों में अनेकों बार नालन्दाविषयक उल्लेख पाया जाता है। ह्वेनसांग और इत्सिङ्ग की यात्रा के बहुत पहले बुद्ध-द्वारा पवित्र किए हुए उस स्थान पर अनेक स्मारक खड़े किए गए थे जिनसे बुद्ध के वहां ठहरने और शिक्षा देने की स्मृति बनी रहे और इन 'गन्ध कुटियों' का दर्शन करने के लिए अनेक भक्त इस पवित्र देश में अपनी तीर्थ-यात्रा के क्रम से यहाँ आए होंगे। जिन दो यात्रियों से हमको नालन्दा के विषय में अनेकों ज्ञातव्य बातें प्राप्त हुई हैं उन्होंने इस विषय में सन्देह के लिए कुछ नहीं छोड़ा है। कठिनाई केवल यह निश्चित करने में है कि नालन्दा कब विहार और विद्यालय बना जहां पर अनेकों कमरे और मण्डपों में शिक्षा दी जाने लगी और जो सातवीं शताब्दि और उसके पश्चात् बौद्ध-शिक्षा-संस्कृति के प्रधान केन्द्र के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। अनुमान से ईसा की तीसरी या चौथी शताब्दि में नालन्दा शिक्षा और अध्यात्मिक खोज की ओर उन्मुख हुआ होगा जिससे आगे चल कर वह सारे भारतवर्ष में और सारे संसार में बौद्ध ही नहीं वरन् सभी तरह की विद्याओं का महान् केन्द्र बन गया होगा।

अब नालन्दा का इतिहास यात्रियों के मुख से ही सुनिए। ह्वेनसांग लिखता है "बुद्ध के निर्वाण प्राप्त करने के कुछ ही दिन पश्चात् शक्रादित्य ने, जो पहले इस देश का राजा था और त्रिपिटक में विश्वास करता था एक विहार बनवाया। उसके उत्तराधिकारी पुत्र बुद्धगुप्त ने अपने पिता के कार्य की निरन्तरता क़ायम रखते हुए इस विहार के दक्षिण में एक और विहार बनवाया। इसके पूर्व में राजा तत्तघट्टगुप्त ने तीसरा, और राजा बालादित्य ने चौथा विहार बनवाया। अन्तिम विहार के उद्घाटन समारोह में राजा द्वारा निमन्त्रित सभी देशों से अनेकों बौद्ध मतावलम्बी भिक्षु भिक्षुणी आदि आए जिनमें दो चीनी यात्री भी थे। जब राजा इन दोनों से मिलने गया तो किसी गुप्त रीति से ये दोनों अन्तर्ध्यान हो गए। इस घटना से राजा पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह राज्य को त्याग कर अपने बनवाए हुए विहार में भिक्षु बन कर रहने लगा। किन्तु विहार के पद-ज्येष्ठता के नियमों के अनुसार उसका पद सबसे नीचे था और अपनी सामाजिक स्थिति का यह परिवर्तन उसके लिए असह्य हो उठा। उसने यह प्रश्न अभिषिक्त भिक्षुओं के सम्मुख उपस्थित किया जिन्होंने निर्णय किया कि जो भिक्षु पूर्ण अभिषिक्त नहीं उनकी पद-ज्येष्ठता आयु के अनुसार होगी। इस तरह की व्यवस्था इस विहार को छोड़ अन्य विहारों में नहीं पाई जाती। इस विहार के पश्चिम में बालादित्य के उत्तराधिकारी पुत्र राजा वज्र ने एक और विहार बनवाया। अंतिम विहार के उत्तर में मध्य प्रदेश के किसी राजा ने एक विशाल विहार का निर्माण कराया। उसी समय सभी विहारों को सिंहद्वार से संयुक्त ऊँची प्राचीर के द्वारा एक घेरे में लाया गया।"

"ह्वेनसांग की जीवनी में भी ऐसा ही विवरण मिलता है, किन्तु इसमें बालादित्य और चीनी पुरोहितों का जो वर्णन आया है, वह ह्वेनसांग द्वारा वर्णित कथा से अधिक ठीक प्रतीत होता है। इसके अनुसार "उत्तर पूर्व में बालादित्य ने एक संघाराम का निर्माण कराया। तत्पश्चात् राजा चीन से धार्मिक शिक्षा लेने के लिए आए हुए भिक्षुओं को देख कर बहुत आनन्दित हुआ और राज्य को त्याग स्वयं भी भिक्षु बन गया।"

इत्सिङ्ग ने यद्यपि बहुत संक्षिप्त विवरण दिया है तो भी उसने प्रारंभिक निर्माण के विषय में कुछ नवीन बातें भी बताई हैं— "महाबोधि मंदिर के उत्तर पूर्व में सात योजन से कुछ अधिक दूरी पर नालन-तूलो का मंदिर है। इसे पहले राजा शेली-शेकि-लोओ-तीति (श्री शक्रादित्य) ने उत्तर भारत के पित्सु (भिक्षु) हो लोओ-शेपान्से (राजवंश) के लिए बनवाया। यह मंदिर अपने पूर्व क्षेत्र में पचास फ़ीट वर्गभूमि पर बना था। पश्चात् परम्परा से जो राजा आए उन्होंने इसे विस्तृत करने में बड़ी स्पर्धा प्रदर्शित की। फलस्वरूप आज यह मंदिर जम्बू द्वीप में सबसे सुन्दर है।" ह्वेनसांग ने शक्रादित्य को ही स्थापक माना है किन्तु उसने भिक्षु राजवंश या मंदिर के आदि आकार-विस्तार के बारे में कुछ नहीं लिखा। ह्वेनसांग द्वारा वर्णित राजाओं के विषय में जो वादविवाद चला आ रहा है उसका उल्लेख यहां न करना ही समीचीन होगा।

ह्वेनसांग ने कुल छः विहारों का उल्लेख किया है किन्तु इत्सिंग ने आठ का। ह्वेनसांग ने कतिपय विहारों का विस्तृत वर्णन किया है और चैत्यों और मठों के स्थापत्य के विषय में भी लिखा है। उसके अनुसार "परम्परागत राजाओं द्वारा निर्मित इन विहारों का स्थापत्य पूर्ण और सुन्दर है। शक्रादित्य द्वारा निर्मित चैत्य में बुद्ध की एक मूर्ति है जिसके सम्मुख स्थापक की उदारता की स्मृति में चालीस भिक्षु प्रतिदिन भोजन करते हैं।" वैटर्स ने इस प्रकार लिखा है: "संभव है शक्रादित्य का विहार ह्वेनसांग की यात्रा के समय खण्डहर हो गया था और चालीस भिक्षु दूसरे विहार से वहां जलपान करने के लिए भेजे गए थे जिससे स्थापक का नाम लुप्त न हो जाय।" आइचिंग के समय में तो इस विहार की केवल नींव ही रह गई थी। इस विषय में अधिक विवरण प्राप्त नहीं होता।

ह्वेनसांग के वर्णन में विशाल विहार के चारों ओर जो पवित्र चिन्ह मिलते हैं और जिन अद्भुत कथाओं का वर्णन है उनसे यह निस्सन्देह सिद्ध होता है कि यह विहार पवित्र भूमि पर खड़ा है।

"नालन्दा के चारों ओर सौ पवित्र चिन्ह मिलते हैं जिनमें से दो या तीन का संक्षिप्त वर्णन यहाँ किया जाता है। पश्चिम में एक मन्दिर था जहाँ बुद्ध भगवान् आकर ठहरते थे और देवों और मनुष्यों को उपदेश देते थे। इसके दक्षिण में सौ क़दम की दूरी पर एक स्तूप था जहाँ बुद्ध से एक विदेशी भिक्षु मिला था। इस भिक्षु ने बुद्ध के आगे ज़मीन पर लेट कर प्रार्थना की कि पुनर्जन्म में वह विश्वविजयी सम्राट् हो। बुद्ध ने दुःखी होकर कहा कि इस मनुष्य में अनेकों गुण हैं और इसका विश्वास भी अटल है यदि यह चाहता तो स्वयं बुद्धत्व प्राप्त कर सकता था। अब इसके भूमिशायी होने के स्थान से लेकर "स्वर्ण-चक्र" तक जितने अणु हैं इसे उतनी बार सम्राट् के रूप में जन्म लेना होगा। सांसारिक सुख की इच्छा होने के कारण अर्हत्व का पवित्र फल उससे बहुत दूर चला गया। इस स्तूप के दक्षिण में वुआन्-त्जू-त्साई पूसा की खड़ी मूर्त्ति है जो कभी कभी धूप-पात्र हाथ में ले कर बुद्ध के मन्दिर की प्रदक्षिणा करती हुई देखी गई है। इस मूर्त्ति के दक्षिण में एक ओर स्तूप था जिसमें तीन मास से एकत्रित बुद्ध के नख और कटे हुए बालों की लटें रक्खी गईं थीं। जो भक्त इस स्तूप के चारों ओर प्रदक्षिणा करते थे उनके सभी रोग दूर हो जाते थे। तालाब के पास प्राचीर के बाहर एक स्तूप था जहाँ एक तीर्थिका ने हाथ में एक पक्षी लेकर बुद्ध से जीवन-मरण के विषय में प्रश्न पूछे थे। इससे पचास क़दम की दूरी पर प्राचीर के भीतर दो भागों में विभक्त एक वृक्ष था जो कुछ हस्तलिपियों के अनुसार ८० या ९० फ़ीट और कुछ दूसरी हस्तलिपियों के अनुसार ८ या ९ फ़ीट ऊँचा था। यह वृक्ष जो सदा समान ऊँचाई रखता था बुद्ध द्वारा फेंकी हुई दातुन से उगा था। इस दातुन के पेड़ के पूर्व में २०० फ़ीट से भी अधिक ऊँचा एक विशाल मन्दिर था जहाँ बुद्ध ने उपदेश दिया था। इसके उत्तर में १०० क़दम पर एक मन्दिर था जहाँ वुआन् त्जू-त्साई पूसा की मूर्त्ति थी जिसे विश्वासी भक्तों ने भिन्न भिन्न स्थानों पर परिवर्त्तित वेश-भूषा में देखा था।"

ह्वेनसांग ने बालादित्य के मन्दिर, हर्ष और समसामयिक अन्य राजाओं द्वारा बाद में जोड़े हुए मन्दिरों के विषय में विस्तृत विवरण उपस्थित किया है। "उत्तर में राजा बालादित्य द्वारा बनवाया हुआ ३०० फ़ीट ऊँचा विशाल मन्दिर है। विस्तार, स्थापत्य तथा बुद्ध की मूर्त्ति की आकृति में, यह मन्दिर बुद्ध गया के मन्दिर से मिलता जुलता है। बालादित्य के मन्दिर के उत्तर-पूर्व में एक स्तूप है जहाँ बुद्ध ने उपदेश दिए और उत्तर पश्चिम में चार बोधिसत्वों के बैठने के स्थान हैं। दक्षिण में शिलादित्य द्वारा एक काँसे के मन्दिर का

निर्माण हो रहा है। इसके पूर्व में राजा पूर्णवर्मा द्वारा निर्मित बुद्ध की ८० फीट ऊँची मूर्त्ति है जिसकी स्थापना के लिए छः तले वाला मन्दिर बनाया गया है। इससे दो या तीन मील उत्तर में एक ईंट का मन्दिर है जिसमें तारा पूसा की मूर्त्ति है जिसकी पूजा जनसाधारण में प्रचलित है। प्राचीर के दक्षिण वाले फाटक के पास एक बड़ा कूप है जो बुद्ध के समय में चमत्कार द्वारा पैदा किया गया।''

इससे पता चलता है कि हर्ष का कांसे का मन्दिर ह्वेनसांग की यात्रा के समय तैयार नहीं हुआ था। अन्य स्थान पर इस यात्री ने लिखा है कि पूर्णवर्मा अशोक के वंश का राजा था जिसने गौड़ के अन्यायी राजा शशाङ्क द्वारा भग्न बुद्ध गया के मन्दिर का पुनर्निर्माण करवाया।

ह्वेनसांग के इस वर्णन की पुष्टि उसके शिष्य हुई-ली ने अपने गुरु की जीवनी लिखने के क्रम में बड़ी योग्यता से की है।

''सारे मठ को चारों ओर से घेरती हुई ईंट की दीवारें हैं। इनमें एक फाटक तो विशाल विद्यालय के लिए है। संघाराम के बीच में इस विद्यालय से अलग आठ बड़े मण्डप हैं। यहाँ खचित मीनारों और परियों सी सुन्दर अटारियों का समूह पहाड़ों की तिकोनी चोटियों जैसा सुशोभित है। नीचे की वेधशालाएँ जब प्रातःकालीन कुहासे से छिप जाती हैं तब भी ऊपर के कमरे बादलों से ऊपर उठे हुए दृष्टिगोचर होते हैं। खिड़कियों से हवा और बादलों का परिवर्त्तन देखा जा सकता है और ऊँचे उठे हुए कंगूरों के ऊपर सूर्य और चन्द्रमा का योग देखा जा सकता है। गम्भीर, अर्धपारदर्शी तालाबों में गहरे लाल रंग के कनक के फूलों के साथ नील कमल उगे हुए हैं और थोड़ी थोड़ी दूरी पर आम्र-कुञ्ज अपनी छाया इन तालाबों के जल के ऊपर तक फैलाए हुए हैं।

बाहरी ओर के प्रांगण, जिन से लगे हुए बौद्ध पण्डित-पुरोहितों के निवास करने के कमरे हैं चार दालानों से संयुक्त हैं। इन दालानों में सर्पाकार आकृतियाँ बाहर की ओर बनाई गई हैं और इनकी वलभियाँ रंगीन हैं, स्तम्भ प्रवाल के हैं जिन पर नक्काशी की गई है, लघुस्तम्भों की पंक्तियाँ बहुत सजाई गई हैं और छत चमकीले खपरैल की है जो प्रकाश को अनेकों तरह से प्रतिबिम्बित करती है। इन वस्तुओं से स्थान का सौन्दर्य द्विगुणित हो उठता है।''

इत्सिङ्ग ने जो नालन्दा में दस वर्ष रहा, नालन्दा मठ की इमारतों का, उनकी रचना और जिन कमरों में भिक्षु रहते थे उनके विस्तार और सजावट के विषय में विस्तृत विवरण दिया है। इन कमरों में प्रसन्नता के अभाव पर उसने विशेष ज़ोर दिया है और उसके वर्णन और उसके पूर्व के ह्वेनसांग के नीरस वर्णन में बहुत कुछ साम्य है। उसीसे मिलता जुलता उसकी जीवनी और यशोवर्णन सम्बन्धी शिलालेख के लेखक का अधिक सजीव वर्णन नीचे दिया जाता है:

''यह मठ पृथ्वी की भांति वर्गाकार है। चारों ओर छत का सीधा और बाहर निकला हुआ हिस्सा दालानों का निर्माण करता है जो सभी इमारतों में चारों तरफ़ पाया जाता है। इमारतें ईंटों की बनी हैं और तीन तले की हैं। प्रत्येक तला, १० फीट ऊँचा है। तिरछी धरनें लोहे के पत्थरों से जोड़ी गई हैं और ईंट से मण्डपाकार छत का निर्माण हुआ है--बल्लियों और खपरैल की आवश्यकता नहीं पड़ी। चैत्यों की रचना-विन्यास सब तरह से पूर्ण हैं और हम एक हिस्से से दूसरे में सरलता पूर्वक आ जा सकते हैं। अंतिम इमारत की एक दीवार प्राचीर या परकोटे की दीवार से संयुक्त है। ईंट की दीवारें ३० या ४० फ़ीट ऊँची हैं और उनके ऊपर स्वाभाविक आकार में मनुष्य के मस्तक बनाए गए हैं।

प्रत्येक तरफ़ भिक्षुओं के रहने के ९ कमरे हैं जिनमें से प्रत्येक २० वर्ग गज़ का है। भीतरी तरफ़ एक खिड़की है जो छत से लगी हुई है। यद्यपि दरवाजे ऊँचे हैं फिर भी उन्हें इस तरह बनाया गया है कि कमरे के भीतर का सब कुछ दूर से ही देखा जा सकता है। उन पर पर्दे लगाने की मनाई है। बाहर से एक दृष्टि में कमरों के चारों ओर देखा जा सकता है और इस प्रकार परस्पर एक दूसरे की रखवाली करते हैं। इस अवस्था में कुछ भी गोपनीय कैसे रखा जा सकता है? इन इमारतों के ऊपर के एक कोने से चैत्य के ऊपर जाने का रास्ता है और चारों कोनों पर चार बड़े कमरे ईंटों के बने हुए हैं जिनमें विद्वान् और श्रद्धेय भिक्षु रहते हैं।

चैत्य का सिंहद्वार पश्चिम ओर है। इसका अंतिम तला आकाश में इतना ऊँचा है कि सामने के मैदान से देखनेवालों का सिर चकरा जाता है।

चैत्यों की दीवारों पर अद्भुत खुदी हुई मूर्त्तियाँ हैं जिनमें सजावट की पराकाष्ठा है। यह द्वार मुख्य इमारत से भी सम्बन्धित है। यह इमारत कहाँ से प्रारम्भ हुई है यह ठीक ठीक समझ में नहीं आता। द्वार पर पहुँचने के लिए दो सीढ़ियां हैं और उसके सामने चार ऊँचे स्तम्भ हैं। यह द्वार बहुत ऊँचे नहीं हैं पर फाटक बहुत मज़बूत लकड़ियों के बने हैं। जब कभी भोजन का समय होता है, दरवाज़ों के पट अलग कर दिए जाते हैं। सम्भवतः इस पवित्र धर्म में गुप्त कार्यों के लिए स्थान नहीं है।

मठ के भीतर ३० कदम से अधिक चौड़े रास्ते ईंटों से बनाए गए हैं। छोटे रास्ते पाँच से दस फ़ीट चौड़े हैं और कमरों के फर्श भी ईंटों से ही बने हैं। छत पर, बरामदों के सामने भी रहने की जगह के सारे फ़र्श रामत्ताल् के बराबर की ईंटों के टुकड़ों में से बने एक तरह का चिपकनेवाला गारा मिला कर कूट देने से बने हैं। परिसीमा चूने से अंकित की जाती है। पाट के टुकड़े, पुराने चमड़े की कतरन आदि को भिगो कर और उसमें तेल मिला कर एक तरह का लेप तैयार कर लिया जाता है जिसे ईंटों से बने हुए फ़र्श के ऊपर फैला दिया जाता है। फिर उसके ऊपर पौधे या पत्ते रख देते हैं। तीन दिन के बाद आकर देखते हैं कि फ़र्श सूख गया या नहीं। फिर चमकीले पत्थरों से उसे रगड़ते हैं और लाल रंग का एक पदार्थ उस पर डालते हैं और एक तैलयुक्त प्रलेप से फ़र्श को चिकना और दर्पण की भांति चमकनेवाला बना देते हैं। सभी बड़े कमरों और सीढ़ियों को इसी प्रकार बनाया जाता है। आने जानेवाले वर्षों तक अपने पैरों से घिस कर भी इस तरह के फ़र्श को कुछ हानि नहीं पहुँचा सकते और न धूप से सूखने पर इनमें दरार ही पड़ते हैं। यह चूने जैसा नहीं है कि पानी पड़ने पर गीला होकर लगता हो।

इस प्रकार कम से कम आठ मन्दिरों का निर्माण हुआ है। उनके ऊपर की छत समतल है और उस पर घूमा जा सकता है। आकार विस्तार में प्रायः सभी बराबर हैं। प्रत्येक मन्दिर के पूर्व में एक छोटी इमारत बनी है जो किसी में साधारण और किसी में तीन भागों में है। इसमें बुद्ध की मूर्त्ति की स्थापना हुई है। किसी किसी मन्दिर की दिशा में वेधशाला का चबूतरा है जिस पर बुद्ध की मूर्त्ति प्रतिष्ठित की गई है। मन्दिर के पश्चिम में बड़े घेरे के बाहर अनेकों स्तूपों और चैत्यों की स्थापना हुई है। उनकी संख्या लगभग एक सौ है। यहाँ पवित्र चिन्ह इतने पास पास हैं कि उनकी गिनती करना कठिन है। सोने और कीमती पत्थरों से पच्चीकारी का काम हुआ है। सत्य तो यह है कि ऐसी कारीगरी की पूर्णता बहुत थोड़े स्थानों में पाई जाती है।''

इस शाब्दिक वर्णन से ही सन्तोष न कर इत्सिंग ने मठ का मानचित्र भी प्रस्तुत किया जिससे पाठक वर्णनों को भली भाँति समझ सकें। दुर्भाग्यवश वह मानचित्र अप्राप्य है लेकिन यहाँ उसके परिचय का कुछ अंश दिया जाता है जिसका उद्देश्य था कि चीन में भी ऐसी ही संस्था स्थापित हो।

''यद्यपि मैं मन्दिर के आकार विस्तार का दुबारा वर्णन कर रहा हूँ फिर भी मुझे भय है कि इसमें कुछ अस्पष्टता है इसलिए मैंने इस मानचित्र को खींचा है। आशा है कि देख कर यह सरलतापूर्वक समझा जा सकता है। यदि इस ढाँचे पर चीन के सम्राट् एक मन्दिर बनवा सकें तो कुशाग्रपुर और चीन के राजभवन इसी तरह सुन्दर हो जाएँगे।

इसके अतिरिक्त लम्बी सांस लेकर मैंने कहा ''अनेकों सत्कार्य पूर्व की भाँति आज भी मनोहर हैं। सभी प्रसिद्ध पुरुष बूढ़े हो गए। स्पष्ट है कि जीवित लोग मृतक लोगों से अलग हैं। यह सोच कर हृदय चिन्तित क्यों न हो?''

इत्सिङ्ग ने मानचित्र के साथ जो वर्णन दिया है वह उल्लेखनीय है क्योंकि उससे भिन्न इमारतों का पारस्परिक स्थिति-सम्बन्ध स्पष्ट हो जाता है। उससे बालादित्य के एक स्तूप की स्थिति पर प्रकाश पड़ता है और पच्चीकारी का सजीव वर्णन प्राप्त होता है।

''एक मन्दिर को देखने के बाद यह समझ लेना चाहिए कि बाकी मन्दिर समान हैं। अभी छत ठीक है और इस पर लोग चल फिर सकते हैं।

मठ की आकृति का निरीक्षण पश्चिमी बाह्य भाग से करना उचित है। फाटक के बाहर पश्चिम तरफ़ से जानेवाले को पूरे मठ की आकृति सरलता से समझ में आ जातीहै।

फाटक से २० कदम दक्षिण, सड़क के किनारे एक स्तूप है जो १०० फीट से अधिक ऊँचा है। यहीं पूर्व काल में लोक ज्येष्ठ के गर्मी के तीन महीने विश्राम करने में व्यतीत किए। इस महल का संस्कृत नाम 'मूल गन्ध कुटी है जिसका चीनी भाषा में अर्थ होगा कि जो

मण्डप प्रारम्भ में बनाया गया।

फाटक के पचास कदम से कुछ अधिक उत्तर की ओर एक दूसरा स्तूप है जो पहले से भी अधिक ऊँचा है। इसको राजा बालादित्य ने बनवाया था। दोनों ही ईंटों से बने हैं। इन पर बड़ी सुकोमल कारीगरी पाई जाती है। समर्पणसम्बन्धी वस्तुएँ अद्भुतरूप से सुन्दर हैं। मध्य में तत्तघट की मूर्त्ति है जो नियमों का चक्र घुमा रही है। आगे चल कर उत्तर पश्चिम में १० फ़ीट ऊँचा एक चैत्य है। यहीं हाथ में पक्षी लेकर एक ब्राह्मण ने बुद्ध से कुछ प्रश्न किए थे। इसी चैत्य को चीनी भाषा में "ओरियोल का पगोडा" कहते हैं।

मूलगन्ध कुटी के पश्चिम में वह वृक्ष है जिसे बुद्ध ने दातुन के लिए उपयुक्त बतलाया था। यह सरपत का पेड़ नहीं है।

इससे भी पश्चिम में सड़क के किनारे निवरण-वेदी है। यह १० फीट से भी अधिक लम्बी है इसके ऊपर २ फीट ऊँची ईंटों की दीवार का एक घेरा है। इस वेदी के मध्य में ५ इंच ऊँची वेदी है। जिसके ऊपर एक चैत्य बना हुआ है। वेदी के पूर्व से चैत्य-मण्डप के एक किनारे तक एक छतवाला रास्ता बुद्ध के आने जाने के लिए बनाया गया है जिसका निर्माण ईंट की पंक्तियों से हुआ है। यह दो बालिश्त चौड़ा, चौदह या पन्द्रह बालिश्त लम्बा और दो बालिश्त से कुछ अधिक ऊँचा है। रास्ते की छत के ऊपर सफ़ेद चूने से कमल के फूल की आकृतियाँ बनाई गई हैं जिन्हें रंगा नहीं गया है। ये फूल भी दो बालिश्त ऊँचे और एक फुट चौड़े हैं। इनकी संख्या चौदह या पन्द्रह है। ये बुद्ध के पैरों के चिह्नों के परिचायक हैं।

हैदराबाद

—क़ासिम अली सजनलाल
एम. ए.

सच्ची जनसत्ता !

कुछ समय हुआ मेरे एक अमेरिकन मित्र ने मुझ से कहा था—"अब मुझे वास्तव में निश्चय हो गया है कि अंग्रेज़ जाति सचमुच भाषण की स्वतन्त्रता में विश्वास रखती है। मैं एक दिन अपनी कार को हाइड पार्क में से ले जा रहा था। मैंने एक व्याख्याता को भाषण देते हुए सुना। वह पुलिस की नृशंसता और भ्रष्टाचार की निन्दा कर रहा था। मैंने भाषण सुनने के लिए अपनी कार को रोक लिया परन्तु इंजन को चालू रक्खा। मैंने उसी समय देखा कि "नृशंसता और भ्रष्टाचार का" एक सदस्य हमारी ओर चला आ रहा है। मैंने सोचा कि अब कोई मज़ेदार कांड होगा। परन्तु जब वह हमारे पास आ गया तो मुझे आश्चर्य हुआ कि उसने व्याख्याता को तो कुछ नहीं कहा और वह मुझ से कहने लगा—"क्या आप कृपया अपनी कार के इंजन को बन्द कर देंगे जिससे लोग व्याख्याता के व्याख्यान को ध्यानपूर्वक सुन सकें।"

—सर आर्थर साल्टर
(इंगलिश डाइजेस्ट)

साम्यवाद

रूस की वर्तमान साम्यवादी विचारधारा का प्रारम्भ मार्क्स और एंजेल्स के उन लेखों और विचारों से हुआ जिनका सम्बन्ध सामाजिक समस्याओं के सुलझाने से था। "समस्याएँ क्या हैं और उनको किस प्रकार से समझें और सुलझाएँ; कहां से आरम्भ करना चाहिए, किन उपायों से हमारे ध्येय पूरे हो सकेंगे" इत्यादि। विचारधारा के इस पहलू को हम दर्शन की रीति (Method of philosophy) कह सकते हैं। मार्क्स के इन विचारों को क्रियारूप में लाने वाला लेनिन था। लेनिन मार्क्स के समान दार्शनिक और तीक्ष्णबुद्धि का तो न था, पर विचारों में इतना दृढ़ था कि उसने संसार की अन्य सभी विचारधाराओं को अपने दृष्टिकोण से सोचने के लिए बाधित कर दिया। साम्यवाद अब रूस की चार-दीवारी तक ही सीमित नहीं रह गया अपितु दुनिया में सर्वत्र वादविवाद का विषय बन गया है। आधी दुनिया ने इस विचार के अनुसार जीवन को बदल लिया। कुछ देशों में सामाजिक संगठन और शासन को इसी विचार के अनुसार बदलने का संघर्ष चल रहा है।

मार्क्सवाद लेनिन के विचारों में कुछ और विकसित हुआ। स्टालिन ने इसे न केवल परिपूर्ण किया अपितु क्रिया में प्रवृत्त करके जारशाही रूस का रूपान्तरण करके वर्तमान रूप को समृद्ध, समुन्नत और सबल बनाया। स्टालिन एक वास्तववादी विचारक (Realist and philosopher) ही नहीं अपितु विचारों को प्रत्यक्ष क्रियारूप देने वाला प्रथम महापुरुष है। इस महापुरुष ने अपने गुरु लेनिन की कुशल नीतिज्ञता और दार्शनिक विचारों की सत्यता को भलीभांति समझा और उनको बड़ी चतुराई और दृढ़ता के साथ व्यवहार रूप दिया। लेनिन और स्टालिन सच्चे मार्क्सवादी हैं या नहीं, इस बात पर संभव है वादविवाद चलता रहेगा, पर यह बात सत्य है कि ऐतिहासिक और आध्यात्मिक दृष्टि से वर्तमान रूसी विचारों की जड़ें मार्क्सवाद में हैं। वास्तव में साम्यवाद के आदि प्रवर्तक मार्क्स और एंजेल्स हैं।

साम्यवाद के उन दार्शनिक सिद्धान्तों को, जिनका समाज से सीधा सम्बन्ध है, ऐतिहासिक भौतिकवाद (Historical Materialism) कह सकते हैं। ऐतिहासिक भौतिकवाद किसी दैवीय और पारलौकिक कारणों को नहीं मानता अपितु मानव समाज के इतिहास की व्याख्या आर्थिक और स्वाभाविक कारणों के द्वारा करता है। समाजों, देशों और उनकी सभ्यताओं के उद्भव विकास तथा ह्रास के वास्तविक कारणों का यह पता लगाता है। समाज की छोटी संस्थाओं, वर्गों और इकाईयों के परस्पर सम्बन्धों को ढूंढता है और इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि सामाजिक विकास का आधारभूत कारण उत्पादन-शक्तियाँ (Forces of production) हैं। समाज में आर्थिक सम्बन्धों का एक ऐसा जाल है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति, समूह और संस्था एक दूसरे से बंधे हुए हैं और उत्पादन और उपयोग की कारणभूत शक्तियों पर प्रभाव डालते हैं। उत्पादन-बल में यान्त्रिक उपकरण और मानवश्रम भी गिना गया है। इसको हम "उत्पादन-सम्बन्ध" (Relation of production) के नाम से जानते हैं।

उत्पादन-सम्बन्ध के मूलभूत कारणों में कभी परिवर्तन नहीं होता क्योंकि ये कारण समाज में शक्तिशाली वर्ग के निहित स्वार्थ को बतलाते हैं और वास्तव में यही स्वार्थ निहित वर्ग उत्पादन का नियन्त्रण करता है। उत्पादन-शक्तियों की विशेषता के अनुसार समाज का आर्थिक सम्बन्ध भी बदलता रहता है। समय के साथ साथ उत्पादन के तरीके और साधन भी बदलते रहते हैं। मनुष्य अपने आप को इन बदलती हुई परिस्थितियों में ढालने का यत्न करता है। अनुकूल बनाने की यह क्रिया हमेशा शान्तिपूर्ण नहीं होती और यही कारण है कि विरुद्ध स्वार्थों में संघर्ष बना रहता है। इसे हम वर्ग-संघर्ष (Class Struggle) कहते हैं। मनुष्यों के उस समूह को-जिसके आर्थिक संबन्ध-उत्पादन के साधनों के प्रति एक समान हों-वर्ग कहते हैं। इस शक्तिशाली वर्ग का स्वार्थ उत्पादन तथा सम्पत्ति में इतना निहित होता है कि वह उनके विद्यमान-सम्बन्धों में परिवर्तन का भरसक विरोध करता है। विरोधी-शक्तियाँ इतनी प्रबल होती हैं कि कुछ न कुछ परिवर्तन के बिना शान्त नहीं होतीं। यह परिवर्तन समाज

को कुछ और आगे बढ़ाता है। यह इतिहास की गतिशीलता है।

इस प्रकार उत्पादन-शक्तियाँ समाज में एक ऐसा "आर्थिक प्रतिरूप" (Economic Pattern) बना देती हैं जो कि समाज का "आधार" होता है। इस आधार पर विज्ञान, कानून, शासन, नैतिकता, दर्शन, धर्म और अन्य सांस्कृतिक संस्थाओं का निर्माण होता है।

वर्तमान समाज के पीछे बहुत लम्बा इतिहास है। इसमें कोई भेद नहीं है कि हम समाज का अध्ययन करें या इसके इतिहास का। दोनों का एक ही अर्थ है। परिवर्तन विकास का दूसरा नाम है और यह इतिहास का अन्तर्हित गुण है। हर वस्तु के समान इतिहास भी परिवर्तनशील है और साथ ही समाज का ढांचा भी। एक स्थिति से दूसरी में परिवर्तन बहुत धीरे धीरे विरोधी शक्तियों के संघर्ष से होता रहता है। यह विकासोन्मुख क्रिया द्वन्द्वात्मक (Dialectical) होती है। इतिहास साक्षी है कि आदिवासी जातियों में दास प्रथा विद्यमान थी। ग्रीक के समुन्नत वैभवशाली काल में दास प्रथा विधि संगत थी। मध्य युग में सामन्तों और दास भृत्यों का भेद सर्व विदित है। कुछ और विकसित होकर इसने वर्तमान पूंजीवाद और श्रमिक वर्ग का रूप धारण किया। कोई भी अवस्था स्थायी नहीं है अतः अब यह पूँजीवाद क्या रूप धारण करेगा? मार्क्स या साम्यवाद का निश्चित मत है पूँजीवाद-वैयक्तिक या सामूहिक-समाजवाद में रूपान्तरित होगा।

वैयक्तिक पूंजीवाद बहुत शक्तिशाली और ज़िद्दी होता है परन्तु परिवर्तन के अटल नियमों के कारण इसका निरन्तर ह्रास हो रहा है। इसका कारण समाज में बढ़ती हुई बेकारी और ग़रीबी है जिनका सुलझा सकना पूंजीवाद के लिए कठिन हो गया है। ग़रीबी का कारण वस्तुओं में कमी नहीं अपितु उत्पादन के साधनों का राष्ट्रीयकरण न होना है; ये साधन कुछेक व्यक्तियों के हाथों में हैं अतः समाज का आर्थिक स्वरूप योजनाबद्ध नहीं होता। परिणाम स्वरूप उद्योगों का समन्वय नहीं होने से ऐसे बाज़ारों के लिए स्पर्धा होती है जहाँ एकाधिपत्य हो और मनचाहा लाभ मिल सके। जिस दर से श्रम को ख़रीदता है उससे कई गुना अधिक दर से बेच कर पूँजीपति धन कमाना चाहता है। इसके दुष्परिणामों से यथाशक्ति कृत्रिम उपायों का सहारा लेकर उत्पादन के नियन्त्रण द्वारा वह अपनी रक्षा करता है। जनता में या तो बेकारी फैलती है या पैसे की इतनी कमी हो जाती है कि जीवन निर्वाह के लिए अत्यावश्यक वस्तुओं का ख़रीदना कठिन हो जाता है। अतः समाज के इस आर्थिक स्वरूप में परिवर्तन अनिवार्य हो जाता है। यह आवश्यक हो जाता है कि निजी-स्वामित्व के स्थान पर उत्पादन के साधनों को राष्ट्र या समाज के हाथों में सौंप दिया जाय ताकि सामूहिक पैमाने पर योजनाबद्ध उत्पादन के द्वारा जनता मात्र का कल्याण हो सके। रूस ने इस विचार धारा को व्यावहारिक रूप दिया है। उत्पादन समाज की आवश्यकतानुसार-न कि व्यक्ति या वर्ग विशेष के लाभ के लिए-किया जाता है। लाभ की भावना न होने के कारण काम से जी चुराने अथवा बाधित होकर काम करने का अवसर नहीं आता। सामूहिक रूप से सम्पूर्ण लाभ को समाज में वितरित कर दिया जाता है।

समाजवाद न केवल शोषण और मुनाफ़ाख़ोरी का ही अपितु बेकारी के साथ उत्पन्न होने वाले आर्थिक संकट का भी अन्त चाहता है। राजनैतिक दृष्टि से ऐसे राज्य की स्थापना चाहता है जहाँ श्रमिकों का प्रभुत्व हो। श्रमजीवियों का शासन होने पर जातीय भेदभाव को विधि द्वारा हटा दिया जायगा। वर्गीय भेदभाव आर्थिक स्वार्थों में संघर्ष को उत्पन्न करता है अतः समाज वर्गहीन बनाया जायगा। धर्म, सम्प्रदाय और लिंग भेद का बिना विचार किए राज्य की ओर से शिक्षा और सांस्कृतिक उन्नति के साधन समानरूप से सबको दिये जायेंगे।

समाजवाद की इस समुन्नत अवस्था को साम्यवाद कहते हैं। स्पष्ट है कि समाजवाद साम्यवाद से कम उन्नत और निम्न प्रकार की अवस्था है। समाजवाद प्रत्येक श्रमिक को काम के प्रकार और मात्रा के अनुसार वेतन देना चाहता है। क्योंकि अधिक और अच्छा काम करने से अधिक लाभ होने का प्रेरक भाव कभी काम की मात्रा और प्रकार में ह्रास न होने देगा। अतः यह सम्भव है कि विभिन्न हैसियत और स्तर के लोगों की आय और बचत भी अलग अलग होगी। वैयक्तिक रूप से कमाए गए लाभ को संचित करने देगा पर उस संचित धन से उत्पादन के साधनों को ख़रीद कर उन पर एकस्वामित्व की अनुमति नहीं देगा—क्योंकि पूँजीवाद के विरुद्ध इन्हीं बातों के लिए लड़ाई लड़ी गई थी।

साम्यवाद एक कदम आगे बढ़ता है। कर्म और योग्यतानुसार बँटवारे के स्थान पर आवश्यकतानुसार वस्तुओं का वितरण करेगा। इससे पूर्व कि इस सिद्धान्त को लागू कर सकें राज्य में धन का अत्यधिक होना आवश्यक है। राज्य की उत्पादन शक्ति अधिकाधिक होनी चाहिए, ताकि प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकतानुसार सभी वस्तुओं को प्राप्त कर सके। अतः मार्क्स ने भी संसार भर में साम्यवादी संगठन व क्रान्ति का एक साथ होना आवश्यक समझा।

लड़ाई, पाप और अपराध का मूलकारण आर्थिक कमी है। आर्थिक समृद्धि में मनुष्य शान्तिपूर्वक अच्छा जीवन व्यतीत करेंगे। ग्रामों और शहरों के मध्य संस्कृति के पिछड़ेपन, मनोवैज्ञानिक शत्रुता और आर्थिक भेद को समाप्त किया जायगा। इसके अतिरिक्त शारीरिक श्रम और बौद्धिक श्रम में कमी अथवा विरोध को नहीं रहने दिया जायगा। साम्यवाद एक ऐसे आदर्श राज्य की स्थापना चाहता है जहाँ हाथ और बुद्धि का सामंजस्य बना रहे ताकि व्यक्तित्व के विकास में केवल श्रम या केवल भावना का ही प्राधान्य न रहे। व्यक्तित्व के विकास में दोनों ही आवश्यक हैं।

लेनिन का मत है कि इस प्रकार राज्य एक संघठित बल (Organised Force) होगा जिसमें पुलिस, सेना, बन्दीगृह आदि की कोई आवश्यकता न रहेगी। बल प्रयोग के बिना ही जनता स्वयमेव जीवनस्तरों में अर्हित-प्रमाणों (Valued Standards) के अनुसार रहना सीख जाएगी। शासन प्रयोजनहीन हो जाने से स्वतः समाप्त हो जायगा। समाज वर्गहीन होगा। श्रमिकों की तानाशाही इसी ध्येय को प्राप्त करने के लिए आरम्भ में आवश्यक होगी पर प्रयोजन पूरा हो जाने पर इसका अस्तित्व न रह जायगा। इस सम्पूर्ण क्रिया को "राज्य का अन्त होना" (Withering away of the state) कह सकते हैं।

मार्क्स एक साथ सर्वव्यापी आन्दोलन के बिना साम्यवाद की स्थापना में सन्देह करता है। इस बात को स्तालिन ने अशुद्ध कर दिखाया है। एक ही राज्य क्षेत्र में न कि विश्व भर में, और राज्यशक्ति के रहते हुए भी साम्यवादी सिद्धान्तों को सफलता पूर्वक लागू किया गया। उदाहरणार्थ वर्तमान रूस को लिया जा सकता है। इस स्थान पर साम्यवाद के अनुसार लोकतन्त्र और स्वाधीनता का ठीक अर्थ जान लेना उचित होगा। लोकतन्त्र केवल वाह्यरूप से दिखावा मात्र नहीं जीवन का गहरा सिद्धान्त है। न केवल राजनीति में वरन् सामाजिक जीवन के प्रत्येक पहलू में यह सिद्धान्त लागू होता है। आर्थिक लोकतन्त्र की नींव पर सांस्कृतिक और राजनैतिक ढांचा खड़ा रह सकता है। अतः साम्यवाद का पहला ध्येय आर्थिक प्रचुरता और स्वाधीनता है। इसके अभाव में लोकतन्त्र आडम्बर मात्र होगा। इतिहास बताता है कि सामाजिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं और कालों के अनुसार लोकतन्त्र का अर्थ भी बदलता रहा है। इसका अर्थ बहुत जटिल और लचीला है। यही लोकतन्त्र प्राचीन ग्रीक में दासप्रथा को न्याय समझता रहा। वर्तमान अंग्रेज़ी लोकतन्त्र में भी श्रीमन्तों के विशेषाधिकार विधिसंगत माने गये। साम्यवाद लोकतन्त्र का आधार "आर्थिक" मानता है। धनधान्य की विपुलता में स्वाधीनता और समानता सम्भव है।

वर्तमान रूस में जातियों और प्रान्तों में भेदपूर्ण व्यवहार, पृथक्करण (Segregation), निवास पर प्रतिबन्ध, नियुक्ति का पूर्वाधिकार और विशेष सुविधाओं को विधिविरुद्ध और दण्डनीय घोषित किया गया है। शासन की दृष्टि में जातीय समानता मुख्य वस्तु है। इस प्रकार के लोकतन्त्र को राज्य में जीवित जागृत रूप में हम तभी देख सकते हैं जब कि राज्य में बहुत से राजनैतिक दल न हों। यह आवश्यक है कि आधारभूत आर्थिक सम्बन्धों को न्याय मान कर बलप्रयोग द्वारा उसकी रक्षा की जाय। साम्यवाद केवल सिद्धान्त ही नहीं अपितु इसे लागू करने का यन्त्र भी है। यही कारण है कि श्रमिक वर्ग के प्रभुत्व में ही निर्धनों के लिए लोकतन्त्र सम्भव हो सकता है।

वर्तमान रूस में जनता को शिक्षित बनाने के लिए प्राथमिक शिक्षा को निःशुल्क एवं अनिवार्य किया गया है। १७५ विभिन्न जातीय समूहों में संख्या की दृष्टि से केवल ४० जातियों का ही महत्त्वपूर्ण स्थान है। स्कूलों में इनके साथ समान व्यवहार किया जाता है। लगभग ७५ भाषाओं का अध्ययन अध्यापन शिक्षणालयों में होता है और पुस्तकों का प्रकाशन लगभग १०० भाषाओं में किया जाता है। कुछ भाषाओं की अपनी वर्णमाला नहीं थी उनकी वर्णमालाएँ बनाई गई हैं। ऐसी भाषाओं की संख्या ४० से कम नहीं हैं।

गृहजीवन में भी पहले की अपेक्षा अब बहुत कुछ सुधार हो गया है। स्त्रियों को आर्थिक कठिनाइयों से छुटकारा मिल गया है। एंजेल्स के अनुसार आर्थिक परिस्थितियों ने स्त्रियों को पुरुषों का दास बना रखा है। स्त्रियों के समानाधिकारों को वर्तमान पूँजीवाद भी मानता जा रहा है पर आर्थिक पक्षपात इतना है कि उनका मानना या न मानना कोई क़ीमत नहीं रखता। स्त्रियां पुरुषों के लिए एक सम्पत्तिरूप ही चली आई हैं। पुरुष उनके भाग्य का निर्माण करने वाला है। स्त्रियों की कोई अपनी आवाज़ नहीं। पूँजीवाद तलाक और वेश्यावृत्ति को विधिसंगत ठहराने का यत्न करता रहा। वर्तमान रूस इस प्रकार के झूठे और ढोंगयुक्त लोकतन्त्र और स्वातंत्र्य का दावा नहीं करता। स्त्रियों को इस बात की सुविधा दी जाती है कि जीवन के प्रत्येक पहलू में और हर धन्धे में अपने आपको दक्ष बना सकें। स्त्रियों के लिए किस प्रकार का कार्य और व्यायाम लाभप्रद होगा इसका विशेष ध्यान रखा जाता है। प्रसूति के लिए कम से कम ७७ दिन का वैतनिक अवकाश दिया जाता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक होने वाली मां को, यदि वह लाभ उठाना चाहे तो, शिशु-पालन की प्रत्येक सुविधा राज्य ओर से निःशुल्क दी जाती है। जवान बालिकाओं के लिए यह समस्या नहीं है कि वे परिवार में ही रहें या स्वतन्त्र धन्धों को अपनाएँ। इसका कारण है कि स्त्रियां अपने आपको छायारूप दासियां ही नहीं समझतीं।

इस प्रकार साम्यवाद आर्थिक बन्धनों से मुक्ति को स्वाधीनता समझता है। विचार, लेखन और वाक्स्वातंत्र्य का यह अर्थ नहीं कि विद्यमान सामाजिक नीति और व्यवस्था के प्रतिकूल आचरण किया जाय अपितु इस व्यवस्था में रह कर ही स्वाधीनता पूर्वक उन्नति करें। पूँजीवाद बलशाली राज्य से डरता है क्योंकि उसके व्यापार और मनचाहे लाभ पर प्रतिबन्ध लग जाएँगे। साम्यवाद के लिए राज्य एक निष्क्रिय पुलिस नहीं अपितु एक सक्रिय सत्ता है जो समाज के निर्माण में निश्चित् रूप से भाग लेता है। व्यक्ति का उतना ही महत्व है जितना कि समाज का। एक का दूसरे के लिए बलिदान नहीं किया जा सकता।

नागपुर

—रोहिताश्व विद्यालंकार
एम. ए., एल् एल्. बी.

—

जैसे को तैसा

किसी अहम्मन्य नाटककार ने अपने नए खेल की प्रथम रात्रि के लिए दो टिकट मिस्टर विन्स्टन चर्चिल को भेजे। इन टिकटों के साथ उसने एक पत्र भेजा जिसमें लिखा था:—"पहला टिकट आपके लिए है और दूसरा टिकट आपके मित्र के लिए यदि आपका कोई मित्र हो।" मिस्टर चर्चिल ने शिष्टतापूर्वक उत्तर दिया—"मुझे बड़ा दुःख है कि मैं खेल को देखने के लिए प्रथम रात्रि में उपस्थित न हो सकूँगा परन्तु दूसरी रात्रि में आने का प्रयत्न करूँगा—यदि आपका खेल दूसरी रात हो सका।"

—यौर्क शायर पोस्ट

'रघुवंश' के काव्यकौशल का आधार

कविकुलगुरु कालिदास के काव्यकौशल की चर्चा कहाँ तक की जाय जो चित्त को शान्ति मिले? कहने को तो 'गुरु' स्वयं कहते हैं अपने काव्यशिरोमणि ग्रन्थ रघुवंश की प्रस्तावना में :

मन्दः कवियशः प्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम् ।
प्रांशुलभ्ये फले लोभादुद्बाहुरिव वामनः ॥३॥

किन्तु कहीं नाम नहीं लेते उन यशस्वी कवियों का जिनका यश उनके सामने है। 'दृश्य' के क्षेत्र में तो उन्होंने स्पष्ट कहा था "मालविकाग्निमित्र" की प्रस्तावना में :

प्रथितयशसां भासकविपुत्रसौमिल्लकादीनां
प्रबन्धानतिक्रम्य वर्तमानकवेः
कालिदासस्य क्रियामिमां
द्रष्टुं कथं परिषदो बहुमानः ?

परन्तु यहाँ कुछ ऐसा नहीं कहा। और कहा भी तो यही कि—

अथवा कृतवाग्द्वारे वंशेऽस्मिन्पूर्वसूरिभिः ।
मणौ वज्रसमुत्कीर्णे सूत्रस्येवास्ति मे गतिः ॥४॥

किन्तु इसका सम्बन्ध तो—

क्व सूर्यप्रभवो वंशः क्व चाल्पविषया मतिः ।
तितीर्षुर्दुस्तरं मोहादुडुपेनास्मि सागरम् ॥२॥

ये है न? फिर कवि के 'मन्दः कवियशः प्रार्थी' का भाव क्या? क्यों उसे ऐसे अपार सूर्यवंश की सूझी? उसका समाधान है :

रघूणामन्वयं वक्ष्ये तनुवाग्विभवोऽपि सन् ।
तद्गुणैः कर्णमागत्य चापलाय प्रचोदितः ॥९॥

कवि के हृदय की स्थिति तो स्पष्ट हो गई। रघुवंश की रचना का कारण भी प्रगट हो गया और वास्तव में इस प्रकार यह भी सिद्ध हो गया कि वस्तुतः वह 'सूर्यवंश' कितना महान् होगा जिसके एक 'रघु' का 'वंश' इतना विशाल है और जिसकी महिमा इतनी अपार है। तो फिर निरे रघु का ही गुणगान क्यों न हो? कवि ने कहा भी है—

सोऽहमाजन्मशुद्धानामाफलोदयकर्मणाम् ।
आसमुद्रक्षितीशानामानाकरथवर्त्मनाम् ॥५॥
यथाविधिहुताग्नीनां यथाकामार्चितार्थिनाम् ।
यथापराधदण्डानां यथाकालप्रबोधिनाम् ॥६॥
त्यागाय संभृतार्थानां सत्याय मितभाषिणाम् ।
यशसे विजिगीषूणां प्रजायै गृहमेधिनाम् ॥७॥
शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम् ।
वार्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम् ॥८॥
रघूणामन्वयं वक्ष्ये......

जन्म से मरण तक कवि के सामने एक आदर्श है। उस आदर्श के मानव रूप का नाम है 'रघु'। कवि उसी 'रघु' का साक्षात्कार राष्ट्र को कराना चाहता है और यह स्फुट कर दिखाना चाहता है कि जीवन में 'जन्मशुद्धि' और 'तनुत्याग' का महत्त्व क्या है, तथा किस मार्ग से उसकी उपलब्धि होती है। रघुवंश के चरितनायक 'रघु' ही हैं और उन्हीं के नाते उसमें उनके वंश का भी गुणगान है। यहाँ तक कि 'राम' के प्रति भी कवि का वह भाव नहीं जो 'रघु' के प्रति है। कारण वे अवतार जो हैं। 'अवतार' को मानव 'आदर्श' के रूप में कहां तक देख सकता है? स्मरण रहे इसीसे रघु के जन्म अवसर पर कवि कहता है—

दिशः प्रसेदुर्मरुतो ववुः सुखाः
प्रदक्षिणार्चिर्हविरग्निराददे ।
बभूव सर्वं शुभशंसि तत्क्षणं
भवो हि लोकाभ्युदयाय तादृशाम् ॥१४॥३॥

और उधर राम के उदय से—

रघुवंशप्रदीपेन तेनाप्रतिमतेजसा ।
रक्षागृहगता दीपाः प्रत्यादिष्टा इवाभवन् ॥६८॥१०॥

राम के उदय से रघुवंश सचमुच उजागर हो गया, किन्तु फिर भी बना रहा वह 'रघुवंश' ही। कभी उसको भूल

कर भी 'रामवंश' नहीं कहा गया। कारण कुछ तो होगा ही। देखिए न, स्वयं रघुवंश काव्य की स्थिति क्या है? राम तक उसका चरम उत्कर्ष है। राम को पा कर वह धन्य हो गया है। किन्तु उनके उपरान्त की स्थिति क्या है? 'कुश' से ले कर 'अग्निवर्ण' तक उसकी वही स्थिति है जो दिन के उपरान्त रात्रि की होती है। सूर्योदय की आशा में ही तो 'गर्भ' का अभिषेक किया गया है? अस्तु, मानना पड़ता है कि कविकुलगुरु कालिदास के 'कवियशः प्रार्थी' का कुछ अर्थ है और ऐसा अर्थ है जो मानव के अभ्युदय में सभी प्रकार से सहायक है। परन्तु इस की पकड़ कहाँ जो 'सौन्दरनन्द' महाकाव्य के इस कथन पर ध्यान दे और भली भांति जान ले कि अश्वघोष का इष्ट क्या है? 'शाक्यवंश' भी मूलतः 'इक्ष्वाकुवंश' ही है तो और भी अच्छा; किन्तु वह 'रघुवंश' से बढ़ कर है यह भला किसी कालिदास को मान्य कहां? स्मरण रहे, इसी के आगे अश्वघोष कृपा कर इतना और भी कह जाते हैं—

> स तेषां गौतमश्चक्रे, स्ववंशसदृशीः क्रियाः।
> मुनिरूर्ध्वं कुमारस्य, सगरस्येव भार्गवः॥२५॥

अश्वघोष ने 'कुमार सगर' का उल्लेख क्या जान कर किया है, इसमें मतभेद हो सकता है, पर कौन नहीं कह सकता कि कवि की दृष्टि यहां 'शाक्य' को महत्त्व देने की ही है? ध्यान से पढ़ें तो—

> अर्हरूपा ह्यनर्हस्य महात्मानश्चलात्मनः।
> प्राज्ञाः प्रज्ञाविमुक्तस्य भ्रातृव्यस्य यवीयसः॥२०॥

फिर भी ऐसे योग्य बड़े भाइयों ने 'अनर्ह', 'चलात्मा', 'प्रज्ञाविमुक्त' छोटे भाई को राज्य क्यों सौंप दिया इसका कारण है—

> मातृशुल्कादुपगतां ते श्रियं न विषेहिरे।
> ररक्षुश्च पितुः सत्यं यस्माच्छिश्रियिरे वनं॥

विमाता के मोह के कारण 'शाक्यों' को बनबास मिला तो कोई बात नहीं, परंतु इसीके कारण उसका पुत्र भी इतना अयोग्य निकला, यह विचारणीय अवश्य है। और यदि 'सगर' ही वह छोटा पुत्र है तो कहना पड़ता है कि इसका लक्ष्य भी छोटा नहीं। कारण, यह 'रघु' का पूर्वज जो है। देखिए न, तभी तो इन्द्र भी ललकार कर कहते हैं—

> हरिर्यथैकः पुरुषोत्तमः स्मृतो,
> महेश्वरस्त्र्यम्बक एव नापरः।
> तथा विदुर्मां मुनयः शतक्रतुं,
> द्वितीयगामी न हि शब्द एव नः॥४९॥
> अतोऽयमश्वः कपिलानुकारिणा,
> पितुस्त्वदीयस्य मयापहारितः।
> अलं प्रयत्नेन तवात्र मा निधाः
> पदं पदव्यां सगरस्य संततेः॥५०॥
>
> (रघुवंश, तृतीयसर्ग)

और यदि इससे स्थिति स्फुट नहीं होती तो कृपया यहीं इतना और भी टांक लें कि 'रामाभिधान हरि' की वाणी में—

> वैदेहि! पश्याऽऽमलयाद्विभक्तं,
> मत्सेतुना फेनिलमम्बुराशिम्।
> छायापथेनेव शरत्प्रसन्न,
> माकाशमाविष्कृतचारुतारम्॥२॥
> गुरोर्यियक्षोः कपिलेन मेध्ये,-
> रसातलं संक्रमिते तुरंगे।
> तदर्थमुर्वीमवतारयद्भिः,
> पूर्वैः किलायं परिवर्धितो नः॥३॥१३॥

'सगर' के प्रति कालिदास का इतना अनुराग है कि समय आने पर उनका उल्लेख अवश्य करते हैं। अश्वघोष ने शाक्यवंश के कुछ व्यक्तियों के कीर्तन में अपने को धन्य समझा तो कोई बात नहीं। इससे किसी कालिदास को क्या? किन्तु नहीं। कालिदास को अश्वघोष का यह प्रयत्न अच्छा न लगा। उन्होंने देखा कि इक्ष्वाकुवंश में बालवैराग्य की प्रतिष्ठा कर अश्वघोष वर्णाश्रम को नष्ट किया चाहते हैं और बड़े अभिमान से स्थापित किया चाहते हैं कि 'इक्ष्वाकुवंश' में संन्यास ही सब कुछ है। निदान वे सावधान हो 'रघुवंश' की रचना में लग गए और सभी प्रकार से दिखा दिया कि वास्तव में 'इक्ष्वाकु' का 'कुलव्रत' क्या है। खिलती हुई स्त्री को छोड़ कर तपोवन में घिर रहना इक्ष्वाकु का कुलव्रत नहीं। नहीं, वह तो है—

> अथ स विषयव्यावृत्तात्मा यथाविधि सूनवे
> नृपतिककुदं दत्त्वा यूने सितातपवारणम्।

मुनिवनतरुच्छायां देव्या तया सह शिश्रिये ।
गलितवयसामिक्ष्वाकूणामिदं हि कुलव्रतम् ॥७०॥३॥

यह और कुछ नहीं । वास्तव में 'सौन्दरनन्द' की इस शिक्षा का समाधान है—

राजर्षिवध्वास्तव नानुरूपो,
धर्माश्रिते भर्तरि जातु शोकः ।
इक्ष्वाकुवंशे ह्यभिकांक्षितानि,
दायाद्यभूतानि तपोवनानि ॥३९॥६॥

इतना ही नहीं । अश्वघोष ने अपने काव्य सौन्दरनन्द के अन्त में यह भी स्फुट कर दिया—

इत्येषा व्युपशान्तये न रतये मोक्षार्थगर्भा कृतिः
श्रोतृणां ग्रहणार्थमन्यमनसां काव्योपचारात्कृता ।
यन्मोक्षात्कृतमन्यदत्र हि मया तत्काव्यधर्मात्कृतं
पातुं तिक्तमिवौषधं मधुयुतं हृद्यं कथं स्यादिति ॥६३॥१८॥

कालिदास ने इसे 'काव्य' का उपहास समझा और रघुवंश के मंगलाचरण में ही कह दिया—

वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये ।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ ॥१॥१॥

हने का तात्पर्य यह कि कालिदास ने अश्वघोष के 'काव्योपचार' को ठीक नहीं समझा और उसे शुद्ध काव्य बनाने के हेतु ऐसा संकल्प किया । अश्वघोष ने अपने काव्य में शुद्धोदन, गौतमबुद्ध और सुन्दरनन्द को लिया । कालिदास ने अपने काव्य को दिलीप से अग्निवर्ण तक फैला दिया । स्त्री की निन्दा कहीं नहीं की, किन्तु खुल कर दिखा दिया कि उसके अतिसेवन का परिणाम है क्षय । अस्तु, रघुवंश में व्यक्ति की अपेक्षा वंश को अपनाने का फल यह भी हुआ है कि एक ही क्षेत्र में विविधता का बोध भली भाँति हो जाता है । सब से पहले जन्म को ही लीजिए । दिलीप को छोड़ कर सभी के जन्म का उल्लेख प्रायः पाया जाता है । हाँ, पात्रों में केवल अग्निवर्ण ही ऐसा है जिसके जन्म को कोई महत्व नहीं दिया जाता है । उसके बारे में झटके में कह दिया गया है:—

अग्निवर्णमभिषिच्य राघवः,
स्वे पदे तनयमग्नितेजसम् ।
शिश्रिये श्रुतवतामपश्चिमः,
पश्चिमे वयसि नैमिषं वशी ॥१॥१९॥

अग्निवर्ण का बचपन किस प्रकार बीता और उसके जन्म के समय प्रकृति की क्या स्थिति रही, इसका कुछ पता नहीं; परन्तु रघु के जन्म के समय उसकी स्थिति यह थी :

ग्रहैस्ततः पञ्चभिरुच्चसंश्रयै—
रसूर्यगैः सूचितभाग्यसंपदम् ।
असूत पुत्रं समये शचीसमा,
त्रिसाधना शक्तिरिवार्थमक्षयम् ॥१३॥
दिशः प्रसेदुर्मरुतो ववुः सुखाः
प्रदक्षिणार्चिर्हविरग्निराददे ।
बभूव सर्वं शुभशंसि तत्क्षणं,
भवो हि लोकाभ्युदयाय तादृशाम् ॥१४॥
अरिष्टशय्यां परितो विसारिणा,
सुजन्मनस्तस्य निजेन तेजसा ।
निशीथदीपाः सहसा हतत्विषो,
बभूवुरालेख्यसमर्पिता इव ॥१५॥३॥

प्रकृति की इस व्यापक प्रसन्नता को दृष्टि में रख कर देखें यह कि मर्यादा पुरुषोत्तम राम के जन्म की स्थिति क्या है—

विभक्तात्मा विभुस्तासामेकः कुक्षिष्वनेकधा ।
उवास प्रतिमाचन्द्रः प्रसन्नानामपामिव ॥६५॥
अथाग्रयमहिषीराज्ञः प्रसूतिसमये सती ।
पुत्रं तमोपहं लेभे नक्तं ज्योतिरिवौषधिः ॥६६॥
राम इत्याभिरामेण वपुषा तस्य चोदितः ।
नामधेयं गुरुश्चक्रे जगत्प्रथममंगलम् ॥६७॥
रघुवंशप्रदीपेन तेनाप्रतिमतेजसा ।
रक्षागृहगता दीपाः प्रत्यादिष्टा इवाभवन् ॥६८॥१०॥

'रघुवंशप्रदीप' राम और स्वयं रघु के जन्म की स्थिति से ही जाना जाता है कि वास्तव में उनका भेद क्या है । प्रथम 'विभु' है तो दूसरा 'प्रभु' किन्तु फिर भी कवि को सच्चा उल्लास हुआ है प्रभु रघु के जन्म में ही । राम के नामकरण की उतावली प्रत्यक्ष है । पर रघु के नामकरण में होता है कितना विलम्ब कारण, उसका इतना उछाह जो है । कहते हैं—

जनाय शुद्धान्तचराय शंसते,
कुमारजन्मामृतसंमिताक्षरम् ।
अदेयमासीत्त्रयमेव भूपतेः
शशिप्रभं छत्रमुभे च चामरे ॥१६॥

निवातपद्मस्तिमितेन चक्षुषा,
नृपस्य कान्तं पिबतः सुताननम् ।
महोदधेः पूर इवेन्दुदर्शना,-
द्गुरुः प्रहर्षः प्रबभूव नात्मनि ॥१७॥
स जातकर्मण्यखिले तपस्विना,
तपोवनादेत्य पुरोधसा कृते ।
दिलीपसूनुर्मणिराकरोद्भवः
प्रयुक्तसंस्कार इवाधिकं बभौ ॥१८॥
सुखश्रवाः मंगलतूर्यनिस्वनाः
प्रमोदनृत्यैः सह वारयोषिताम् ।
न केवलं सद्मनि मागधीपतेः
पथि व्यजृम्भन्त दिवौकसामपि ॥१८॥३॥

उधर राम के जन्म का उत्सव है—

निर्दोषमभवत्सर्वमाविष्कृतगुणं जगत् ।
अन्वगादिव हि स्वर्गो गां गतं पुरुषोत्तमम् ॥७२॥
तस्योदये चतुर्मूर्तेः पौत्रस्त्यचकितेश्वराः ।
विरजस्कैर्नभस्वद्भिर्दिश उच्छ्वसिता इव ॥७३॥
कृशानुरपधूमत्वात्प्रसन्नत्वात्प्रभाकरः ।
रक्षोविप्रकृतावास्तामापविद्धशुचाविव ॥ ७४ ॥
दशाननकिरीटेभ्यस्तत्क्षणं राक्षसश्रियः ।
मणिव्याजेन पर्यस्ताः पृथिव्यामश्रुबिन्दवः ॥७५॥
पुत्रजन्मप्रवेश्यानां तूर्याणां तस्य पुत्रिणः ।
आरम्भं प्रथमं चक्रुर्देवदुन्दुभयोदिवि ॥७६॥
संतानकमयी वृष्टिर्भवने चास्य पेतुषी ।
सन्मंगलोपचाराणां सैवादिरचनाऽभवत् ॥७७॥१०॥

निश्चय ही पुरुषोत्तम राम के जन्म से जो आनन्द सुरपुर में छा गया है वह नरपुर में नहीं । और असुरपुर में तो अमंगल ही ठन गया है । भला दशरथ का उल्लास कभी दिलीप के उल्लास की समता कर सकता है ? दशरथ को तो पुत्रदर्शन के पहले ही पुत्रवियोग का शाप मिल चुका है न ? फिर वह उल्लास उन्हें कहाँ से मिल सकता है जो इतनी साधना के उपरान्त दिलीप को प्राप्त हुआ है ? दूसरे राम का जन्म तो रावण संहार के हेतु दशरथ को निमित्त बना कर हुआ है न ? अतएव उसका उल्लास भी वैसा ही है । उसमें 'अवतार' का आनन्द है 'जन्म' का आमोद नहीं, 'उदय' का उछाह नहीं । रघु और राम के जन्मोल्लास के सामने लवकुश का जन्मोल्लास ही क्या ? फिर भी उसका भी महत्त्व है । अतः कवि ने भी सोच समझ कर लिख दिया—

तस्यामेवास्य यामिन्यामन्तर्वत्नी प्रजावती ।
सुतावसूत संपन्नौ कोशदण्डाविव क्षितिः ॥१३॥१५॥

मुनि के आश्रम में परित्यक्ता की सन्तान का उछाह ही क्या ? तो भी भाग्य से उस दिन शत्रुघ्न वहीं थे । हो सकता है, इसी हेतु उस रात्रि वहीं ठहर भी गए हों । कारण कि प्रातःकाल—

सन्तानश्रवणाद्भ्रातुः सौमित्रिः सौमनस्यवान् ।
प्राञ्जलिर्मुनिमामन्त्र्य प्रातर्युक्तरथो ययौ ॥१४॥१५॥

भाभी की सन्तान से इस अवस्था में देवर का प्रसन्न हो जाना, यही क्या कम ? नामकरण पर भी तो ध्यान दीजिए—

स तौ कुशलवोन्मृष्टगर्भक्लेदौ तदाख्यया ।
कविः कुशलवावेव चकार किल नामतः ॥३२॥१५॥

वाल्मीकि मुनि ने 'कुश' और 'लव', 'दर्भ' और 'गोपुच्छलोम' से गर्भ का उपद्रव दूर किया, फलतः नाम भी हो गया एक का कुश और दूसरे का लव । 'कोशदण्ड' की व्याख्या कदाचित् समीचीन न होगी तो भी प्रसंगवश इतना कह देने में कोई क्षति नहीं कि इसी में आगे का सारा इतिहास समेट कर रख दिया गया है ।

जी । अच्छा होगा, यहीं कुश के पुत्र के जन्म की भी सुन लें । कालिदास कहते हैं—

अतिथिं नाम काकुत्स्थात्पुत्रं प्राप कुमुद्वती ।
पश्चिमाद्यामिनीयामात्प्रसादमिव चेतना ॥१॥
स पितुः पितृमान्वंशे मातुश्चानुपमद्युतिः ।
अपुनात्सवितेवोभौ मार्गा वुत्तरदक्षिणौ ॥२॥१७॥

चेतना का यह प्रसाद दोनों कुलों का उजागर हुआ, यही बहुत हुआ । नहीं तो ढलती हुई परम्परा तो प्रतिदिन गिरती ही जा रही थी । प्रकृति को प्रफुल्ल करने की वह क्षमता अब उसमें कहाँ जो 'रघु' और 'राम' के समय में थी ! दिलीप से लेकर कुश तक कवि ने क्या कुछ दिखाया, इसका लेखा पंक्ति में नहीं लिया जा सकता । पोथियाँ भी इस के लिये पूरी पड़ जाएँगी, इसमें सन्देह है । कारण, अपनी अपनी दृष्टि और अपने अपने अध्ययन से लोग उसका लेखा लेते ही रहेंगे । किन्तु जो बात सरलता से यहाँ कही जा सकती है वह है यही उभय कुलों के

११५२

उजागर की बात । नागकुल की कुमुद्वती से कवि को इतना नेह क्यों ? क्या कवि का नागवंश से कुछ गहरा लगाव था ? स्मरण है न, श्री प्रभावती गुप्त की माता का नाम था श्री कुबेरनागा ।

हाँ, तो कालिदास ने जन्म को जात के महत्त्व की दृष्टि से देखा है और रघुवंश के प्रत्येक शासक को किसी विशेष उद्देश्य से चुना है । दिलीप को 'क्षात्र धर्म' का प्रतीक माना है तो रघु को 'लोकाभ्युदय' अथवा धीर का। अज को 'कुमारकल्प' कहा है तो दशरथ को 'वीर' । राम 'पुरुषोत्तम' है ही । फिर पुरुष का आदर्श उनसे बढ़कर और क्या हो सकता है ? रहे कुश, सो उन्हें 'क्लेशहारी' शूर मान लीजिए और फिर इस 'राजा' अतिथि को लीजिए । सो इनके विषय में विशेष बात यह है कि इन्हें 'युवराज' का पद न मिला । सीधे से 'कुमार' से ही 'अधिराज' बन गए । कालिदास कहते भी हैं—

बभौ भूयः कुमारत्वादाधिराज्यमवाप्य सः ।
रेखाभावादुपारूढः सामग्र्यमिव चन्द्रमाः ॥३०॥१७॥

और फलस्वरूप—

प्रसन्नमुखरागं तं स्मितपूर्वाभिभाषिणम् ।
मूर्तिमन्तममन्यन्त विश्वासमनुजीविनः ॥३१॥१७॥

'विश्वास' के रूप में प्रतिष्ठित इस अतिथि को 'राजाधिराज' का प्रतीक समझें और कृपया भूल न जाएँ कि इसके पहले के किसी भी शासक को कालिदास ने इस दृष्टि से अंकित नहीं किया है । 'राज्याभिषेक' के बिना तो कोई राजा बना नहीं, पर ध्यान रहे कि इसी के राज्याभिषेक का कवि ने लिखा है—

तमात्मसंभवं राज्ये मन्त्रिवृद्धाः समादधुः ।
स्मरन्तः पश्चिमामाज्ञां भर्तुः संग्रामयायिनः ॥८॥
ते तस्य कल्पयामासुरभिषेकाय शिल्पिभिः ।
विमानं नवमुद्वेदि चतुःस्तम्भप्रतिष्ठितम् ॥९॥
तत्रैनं हेमकुम्भेषु संभृतैस्तीर्थवारिभिः ।
उपतस्थुः प्रकृतयो भद्रपीठोपवेशितम् ॥१०॥

उसका राज्याभिषेक जिस विधि से हुआ उसके वर्णन की यहाँ आवश्यकता नहीं । प्रयोजन यहाँ इतना भर है कि हम इस निर्देश से भली भाँति जान सकें कि वास्तव में 'राजाधिराज' के रूप में हमें साक्षात्कार होता है 'अतिथि' का ही । 'राजाधिराज' का अभिषेक किस प्रकार होता था और उसका शासन किस नीति से कैसा सफल होता था आदि को जानना है तो हमें 'अतिथि' का अवगाहन करना होगा । हम उसकी उपेक्षा कर कवि का मर्म नहीं पा सकते । कारण, कवि ने कहा भी है उसे 'राज्यश्री-वधूवर' उस की छटा तो देखिए—

आमुक्ताभरणः स्रग्वी हंसचिह्नदुकूलवान् ।
आसीदतिशयप्रेक्ष्यः स राज्यश्रीवधूवरः ॥२५॥१७॥

अतएव इस 'राज्यश्रीवधूवर' के स्वरूप का बोध भी पूरा होना चाहिए ही । सो इसकी नीति के विषय में कवि का कथन है—

कातर्यं केवला नीतिः शौर्यं श्वापदचेष्टितम् ।
अतः सिद्धिं समेताभ्यामुभाभ्यामन्वियेषसः ॥४७॥१०॥

और दिलीप के विषय में कहना यह—

भीमकान्तैर्नृपगुणैः स बभूवोपजीविनाम् ।
अधृष्यश्चाभिगम्यश्च यादोरत्नैरिवार्णवः ॥१६॥१॥

और अज की नीति ठहरी--

न खरो न च भूयसा मृदुः पवमानः पृथिवीरुहानिव ।
स पुरस्कृतमध्यमक्रमो नमयामासनृपाननुद्धरन् ॥९॥८॥

अधिक कहने से लाभ नहीं । इतने से ही देखा जा सकता है कि व्यक्ति की अपेक्षा 'वंश' को काव्य का विषय बनाने से कवि को अपना कौशल दिखाने का कितना अवसर मिल गया । अश्वघोष ने तो 'बुद्ध' को ले 'बुद्धचरित' की रचना की और 'सुन्दरनन्द' को ले 'सौन्दरनन्द' की । परन्तु कालिदास ने न जाने कितनों को एक ही 'रघुवंश' में समेट लिया । कालिदास और अश्वघोष के सम्बन्ध में जाने कितने दिनों से यह विवाद चला आ रहा है कि इनमें से किसने किसने क्या लिया । कोई कालिदास को ऋणी समझता है तो कोई अश्वघोष को । परन्तु मानते हैं प्रायः सभी कि इनमें से कोई ऋणी है अवश्य । हमारी धारणा है कि लेने का काम किया है कालिदास ने ही । क्यों किया है ? इसका भी कारण स्पष्ट है । उन्होंने कहा भी तो है--

शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम् ।
वार्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम् ॥८॥

रघूणामन्वयं वक्ष्ये तनुवाग्विभवोऽपि सन् ।
तद्गुणैः कर्णमागत्यं चापलाय प्रचोदितः ॥९॥
तं सन्तः श्रोतुमर्हन्ति सदसद्व्यक्तिहेतवः ।
हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकापि वा ॥१०॥१॥

अस्तु, 'सदसद्व्यक्ति' का विचार ही मुख्य ठहरा । अश्वघोष को इससे कोई प्रयोजन नहीं । उनका तो आग्रह है मोक्ष । कहते भी हैं—

प्रायेणालोक्य लोकं विषयरतिपरं मोक्षात्प्रतिहतं ।
काव्यव्याजेन तत्त्वं कथितमिह मया मोक्षः परमिति ॥
तद्बुद्ध्वा शामिकं यत्तदवहितमितो ग्राह्यं न ललितं ।
पांसुभ्यो धातुजेभ्यो नियतमुपकरं चामीकरमिति ॥६४॥१८॥

'चामीकर' को 'पांसु' से अलग कर अश्वघोष ने बड़ा काम किया, पर काव्य में धर दिया तो दोनों को एकत्र ही । कालिदास ने कहा कि यहां 'पांसु' तो है ही नहीं । जो कुछ है 'चामीकर' ही है । पर वस्तुतः वह है कैसा, इसे सन्त लोग परख लें ।

'राम' और 'बुद्ध' की तुलना से कोई लाभ नहीं । परन्तु परिस्थिति के बोध के लिए रामजन्म के साथ ही यहां इतना और भी जान लें कि बुद्धजन्म की स्थिति क्या है । अश्वघोष लिखते हैं 'सौन्दरनन्द' में--

तस्य सत्त्वविशेषस्य जातौ जातिक्षयैषिणः ।
साचला प्रचचालोर्वी तरंगाभिहतेव नौः ॥५२॥
सूर्यरश्मिभिरक्लिष्टं पुष्पवर्षं पपात खात् ।
दिग्वारणकराधूताद्वनाच्चैत्ररथादिव ॥५३॥
दिवि दुन्दुभयो नेदुर्दीव्यतां मरुतामिव ।
दिदीपेऽभ्यधिकं सूर्यः शिवश्च पवनो ववौ ॥५४॥
तुतुषुस्तुषिताश्चैव शुद्धवासाश्च देवताः ।
सद्धर्मबहुमानेन सत्त्वानां चानुकम्पया ॥५५॥
समाययौ यशःकेतुं श्रेयः केतुकरः परः ।
बभ्राजे शान्तया लक्ष्म्या धर्मो विग्रहवानिव ॥५६॥
देव्यामपि यवीयस्यामरण्यामिव पावकः ।
नन्दो नाम सुतो जज्ञे नित्यानन्दकरः कुले ॥५७॥२॥

'नन्द' का 'बुद्ध' से पहले का सम्बन्ध जो भी रहा हो, पर राम के साथ शेष भाइयों का सम्बन्ध है—

विभक्तात्मा विभुस्तासामेकः कुक्षिष्वनेकधा
उवास प्रतिमाचन्द्रः प्रसन्नानामपामिव ॥६५॥१०॥

जी । अश्वघोष के 'बुद्धचरित' की अपेक्षा उसके 'सौन्दरनन्द' काव्य को ही अधिक महत्त्व दे यहां दिखाया गया है कि कवि कालिदास को 'रघुवंश' की क्यों सूझी । सच तो यह है कि अश्वघोष न 'शाक्यवंश' को इतना सराहता और न कालिदास 'रघुवंश' की चिन्ता में पड़ता । 'इक्ष्वाकु' का 'कुलव्रत' किस में खरा उतरा यही तो प्रश्न है ? उत्तर की आवश्यकता नहीं । आवश्यकता है अध्ययन की । यदि इस प्रयत्न से इस क्षेत्र में कुछ सहायता मिली तो अच्छा है, नहीं तो अपना विचार तो है ही ।

—चन्द्रबली पाण्डे

बनारस

—

घमण्डी मनुष्यों का कोई मित्र नहीं होता । सम्पत्ति के समय वे किसी की परवाह नहीं करते और विपत्ति के समय कोई उनकी परवाह नहीं करता ।

—सिडनी स्मिथ

बहुत उच्च गुण मनुष्य को प्रायः सोसाइटी के लिए अयोग्य बना देते हैं । हम मार्केट में सोने की सिल लेकर नहीं जाते परन्तु छोटे सिक्के लेकर जाते हैं ।

—चैम्फ़ोर्ट

“क्वीन एलिज़ाबेथ”

न्यूयार्क का बन्दर अभी दूर है। पर बहुत दूर नहीं, थोड़ी ही दूर, इतनी कि हम यहाँ से उसे देख लेते हैं। एक धुँधली रेखा दूर के क्षितिज पर उठती और आकार धारण करती जा रही है। दूरबीन के सहारे तो लिबर्टी का वह स्टैच्यू (स्वतन्त्रता की प्रतिमा) भी दीख रहा है जो समुद्र के ऊपर उठता आसमान के बीच जैसे खड़ा है, प्रतीकतः सुन्दर पर सावधि पृष्ठभूमि का मिथ्या रूप।

जहाज़ जो अब तक तेज़ी से चलता जा रहा था सहसा रुक गया है। बन्दर में ले जाने के लिए शायद पाइलट आनेवाला है और यहीं शायद पुलीस के कर्मचारी और इमीग्रेशन अफ़सर भी आयेंगे। वे यात्रियों के पासपोर्ट देखेंगे और ब्रूकलीन के बन्दरगाह में प्रवेश करने की हमारे जहाज को इजाजत देंगे ! यह रवैया हर बन्दर का रहा है; न्यूयार्क का तो निश्चय विशेष है क्योंकि इस देश में आनेवाले विदेशियों पर इधर कुछ हफ्तों से खास नजर रखी जाने लगी है। कुछ ही दिनों पहले अमेरिका ने ऐलान किया कि जो यात्री ग्यारह अक्तूबर के पहले के वीज़ा लेकर दाख़िल होंगे उनके साथ पुलिस कार्रवाई होगी और उनको लानेवाले जहाज़ों पर भारी जुर्माना होगा।

मेरे पास भी वीज़ा पुराना है पर मैं विशेष शंकित नहीं हूँ। आगे का कुछ इन्तज़ाम सोच और कर लिया है और अब डेक पर खड़ा फैले समुद्र की ओर देख रहा हूँ, जहाँ क्षितिज पर एक धुँधला बिन्दु धीरे धीरे गहरा होता जा रहा है। डेक पर और लोग भी हैं, उनमें से अनेकों के पास भी अपनी अपनी दूरबीनें हैं। हम सब उस बिन्दु के बढ़ते हुए आकार को तन्मयता से देख रहे हैं।

बिन्दु बढ़ा, बढ़ चला, बढ़ता जा रहा है। बिन्दु से वह धुँधला धब्बा हुआ; वह धुँधला धब्बा अब फैले आकार में बढ़ चला। गोल ज़मीन दूर के जल तल को जैसे ऊपर उठाये हुए है, एक ऊँचाई के रूप में जिसमें पीछे से यह धब्बा बढ़ता आ रहा है। अब उसने आकृति धारण करली है, काफी बड़ी, और चारों ओर से आवाज़ आ रही है, एलिज़ाबेथ।

एलिज़ाबेथ आ रहा है, इसका अन्दाज़ किसी को न था परन्तु क्षितिज पर उठते हुए उस आगन्तुक जहाज़ का आकार बादल-सा बड़ा होने के कारण सहज ही उसे एलिज़ाबेथ की संज्ञा मिल गई है। और यह संज्ञा झूठी भी नहीं। पाइलट जो अभी अभी हमारे डेक से कप्तान के कमरे की ओर गुज़रा है बताता जा रहा है कि एलिज़ाबेथ खाड़ी में अब दाख़िल ही होने वाला है। हम स्वयं भी उसके सैकड़ों हज़ारों गवाक्ष की-सी उन खिड़कियों से यह अन्दाज़ लगा सकते हैं जो अब धीरे धीरे दृष्टिपथ में उठने लगी हैं। उस जहाज़ का विशाल आकार अब क्षितिज के एक भाग को जैसे भर रहा है और पानी की ज़मीन को रौंदता-सा हमारी ओर तीव्र गति से बढ़ता आ रहा है।

एलिज़ाबेथ। प्रायः दो हज़ार से ऊपर यात्री। प्रायः दो हज़ार से ऊपर माँझी, ख़लासी, कर्मचारी और अफ़सर। कुल प्रायः पाँच हज़ार प्राणी। और उनके अपने बोझ के साथ अपने सामान का भार। परन्तु यह दूसरा जहाज़ भी नहीं स्वयं एलिज़ाबेथ है जो एक महान् साम्राज्य का प्रतीक है जिसका नाम इंग्लैण्ड की उस शासिका से सम्बद्ध है जिसने अंग्रेज़ी साम्राज्य के निर्माण में पहला क़दम उठाया था।

एलिज़ाबेथ जहाज़ को अपना नाम देने वाली साम्राज्यवादिनी सम्राज्ञी एलिज़ाबेथ। वह नाम कुछ साधारण नहीं जो एक ओर अरमाडा की ओर संकेत करता है दूसरी ओर शेक्सपियर की ओर, और जो महान् अकबर का समकालीन है। रानी ने, कहते हैं, तप का जीवन बिताया था, तप का जीवन कि उसने वैधव्य के सारे लक्षण अपने ऊपर लागू किए, जिसने विवाह की तृष्णा पास फटकने तक न दी, जिसने स्टाकलैण्ड, फ्रान्स, स्पेन के राजाओं को अपने चरित, नीति और भय से अपनी सीमाओं में रुके रहने को मजबूर किया।

एलिज़ाबेथ जिसकी रोमानी प्रवृत्तियों की ओर शेक्सपियर ने जहाँ तहाँ इशारा किया है, जिसके अभिमत कटाक्ष के लिए तत्कालीन अंग्रेज़ी दरबार के वीर

छैले अपने कन्धे रगड़ते रहते थे, जिसकी रूह में एसेक्स का प्यार उन्माद बनकर पैठा और जो निकला तो उस आकर्षक सामन्त की जान लेकर, जिसकी अनाकर्षक स्पष्टतः भोंडी आकृति की लौ पर अनेक उदीयमान बाँके शलभ बन कर टूटे, जिसके नाम पर भय को चुनौती देते मांझियों ने विकराल समुन्दर लांघा, पृथ्वी की परिक्रमा कर ली, जिसने अपने डाकुओं को, डाकू जहाज़ों को अपनी संरक्षकता की छाया दी और स्पेन के अमेरिका से लौटते चांदी सोने से भरे जहाज़ों को लूटने के लिए उत्साहित किया, जिसने अपने डाकू जहाज़ों की तैयारियों से धन जन से सहायता की और जिनकी लूट में उसने हिस्सा बटाया।

उसी एलिज़ाबेथ का नाम इस तेजी से हमारे पास पहुँचते विशाल जहाज़ के आगे और बाजू पर लिखा है। यह जहाज़ यात्रियों के स्वप्न का जहाज़ है। अनेक यात्री सालों इस पर चढ़ने के सपने देखते हैं और इससे सफ़र कर अपने को धन्य मानते हैं। यही वह एलिज़ाबेथ है जो प्रायः पांच दिनों में इंग्लैण्ड के साउथैम्पटन से चल कर एटलान्टिक लांघ अमेरिका में न्यूयार्क पहुँचता है, जिसके भण्डार पेय और खाद्यों से भरे हैं। न्यूयार्क और लन्दन में शायद खाद्य पेयों की कभी कमी हो जाय पर इस जहाज़ के गोदामों में उनकी कमी कमी नहीं हो सकती। मदिरा--पोर्ट, ह्विस्की, शैम्पेन, शैरी, शीराज़ और क्या क्या; दूध—उसके बीसियों विकार; फल--उसके अनन्त प्रकार; साग—असंख्य और विविध अन्न—विभिन्न और प्रभूत--क्या नहीं जो उस एलिजाबेथ में मौजूद नहीं और बराबर उसके विस्तृत भोजनागार की मेज़ों पर परसा न जाता हो।

और माँस के उसके भाण्डार तो जैसे शिकागो के कसाईखाने ही इस जहाज के अन्तराल में खुल पड़े हों। कितने प्रकार के, कितनी मात्रा में माँस का इस जहाज़ के कोठारों में संचय है, कहना मुश्किल है। पर इतना सही है कि कितने प्रकार के प्राणियों का मनुष्य अपने उदरार्थ हनन करता है·यह यदि किसी को जानना हो तो इस जहाज़ पर चला जाय और जिन जानवरों के उसने नाम तक न सुने हों उनकी अन्तराकृति वह नंगी आँखों देख लेगा। जिन प्राणियों का स्मृतियों के भक्ष्याभक्ष्य प्रसंग में विचार नहीं, जिनका उल्लेख अशोक की निषेध तालिका में नहीं वे तक एलिज़ाबेथ की खाद्य सूची में मिल जायेंगे। मनुष्य विशेषतः जो इन माँसों का आहार नहीं करता अथवा वह भी जो इनका आहार करके भी प्राणियों की वैयक्तिक चेतना को समझ सकता है अनेक बार चकित हो पूछता है—क्या सचमुच यह सारा मनुष्य का आहार है, प्राणी का आहार प्राणी!

पर प्राणी का आहार क्या प्राणी नहीं हैं? ऋषि ने कहा था—आहार अच्छा बुरा कुछ नहीं, आहार केवल एक है, मूर्ख का और वह है बुद्धिमान् का। सो प्राणी प्राणी का आहार है और उसका सबसे बड़ा प्रतीक यह एलिजाबेथ है। इग्लैण्ड का वह छोटा-सा देश, प्रकृति की देन के समक्ष वह अभागा देश जिसे के चारों ओर समुद्र टकराता है, अपनी छोटी दुनिया से निकल कर फैली दुनिया का स्वामी बन बैठा--शायद इसीलिए क्या प्राणी होकर उसने प्राणी को आहार बनाने की चिन्ता की थी। अपने इसी अध्यवसाय में जहाज़ों के बेड़े तैयार किए, वे छोटे बेड़े जिन्होंने दुनिया की जलथल की शक्तियों की हस्ती मिटा दी, जिसने पृथ्वी की प्रदक्षिणा कर उन अभागे देशों को जकड़ा जिनकी पीठ पर उसकी प्रभुता क़ायम हुई।

प्राणी प्राणी का आहार दो तरह बनता है। दो प्रकार से उसको मूढ़ बना लिया जाता है। उसे मूढ़ बना लेना आवश्यक है क्योंकि जागृत और जीवित को खाया नहीं जा सकता, कम से कम खाकर हज्म नहीं किया जा सकता। मकड़ी जब अपना शिकार डकार जाना चाहती है तब पहले वह उसे अपने तन्तुओं में कसती है और एक बार उसे बाँध लेने पर वह निरन्तर अपना तन्तु ओटती जाती है। जब तक कि उसका शिकार सर्वथा शिथिल बेबस और मरणोन्मुख नहीं हो जाता। सो प्राणी को मार कर ही या कम से कम उसे मूर्छित करके ही आत्मसात् किया जा सकता है। इग्लैण्ड भी बराबर इसी प्राकृतिक आचरण का पोषक रहा है। उसकी व्यथा बराबर गिरे हुओं को देख कर बढ़ती रही है और अपने अधिकार के लम्बे जीवन में उसने बराबर अनुकम्पा तथा दायित्व से काम लिया है! मूढ बनाने का एक तरीक़ा तो सीधा छिपकली या मकड़ी की तरह प्राणी को मार कर बेबस कर देना है, दूसरा तरीक़ा उसको अपनी प्रभा, प्रतिभा से चकित-चमत्कृत कर देना है। इंग्लैण्ड ने बराबर दोनों में से किसी एक नीति का उपयोग किया है। एलिजाबेथ यद्यपि उसे दूसरी नीति अधिक प्रिय रही है।

उसी देश का जहाज़ है, उसी साम्राज्य का जहाज़, साम्राज्य की उस पहली निर्मात्री रानी एलिज़ाबेथ का नामधारी जिसने न केवल खाद्य प्राणियों को अपना आहार माना है वरन् अपने समान विचार और मान्यताएँ रखने वाले मनुष्य तक को और जिसने न केवल व्यक्तिगत मनुष्यों को ही बल्कि समूचे राष्ट्रों को ही उदरस्थ कर लिया है। एलिज़ाबेथ उसी साम्राज्य की संज्ञा है और अब इस समय उसे हम अमेरिका के समुद्र पर पुरानी और नई दुनिया के बीच खड़ा देख रहे हैं। उसके पीछे इतिहास के सबसे बड़े साम्राज्य इंग्लैण्ड का विस्तार छूटा है, उसके आगे भविष्य का विश्वव्यापी साम्राज्य का स्वप्न देखनेवाले अमेरिका का सम्पन्न बन्दर न्यूयार्क खड़ा है।

यह एलिज़ाबेथ है, सात मंज़िलों का ऊँचा जहाज़। लगता है जैसे विशाल महल पानी पर डोल रहा हो। महल कहना वास्तव में उसकी शान में बट्टा लगाना है, उसकी आकृति नगर की है, उसकी जन संख्या छोटे मोटे नगर से कम नहीं, और यह जन संख्या साधारण नगर की-सी नहीं चुनी हुई अधिकतर दूध की धोई मानवता की है, बड़े से बड़े नए से नए शक्तिमान् से शक्तिमान् नगर के मक्खन सी-श्री। नों की।

श्रीमानों की, जिनकी चाल में अजब बोझ है, जिनके पहनावे में कहीं सिकुड़न नहीं, जिनकी गर्दनों के कालर फ़ौलाद-से कड़े हैं और जिनकी ठुड्डी के नीचे आधी दर्जन ठुड्डियाँ बनी हुई हैं। यही संसार के भाग्यविधाता हैं। संसार के बाज़ार इन्हीं के इशारों पर नाचते हैं, अपने पट खोलते और बन्द करते हैं और इन्हीं के आक्रोश से दुनिया के दूर दूर के रहने वाले अपनी जीवन लीला समाप्त कर देते हैं। इनके तेवरों में मृत्यु का उतना ही घना निवास है जितना कि इनकी मुस्कानों में।

फ़र्स्ट क्लास के केबिनों से लगा लगा यह फैला क़ीमती 'लोंज' है जहाँ शराब दुनिया से तिगुनी क़ीमत पर मिलती है, जहाँ तम्बाकू और सिगरेट अपनी क़ीमत पर बिकती है और जहाँ मनुष्य की जन्मदात्री माँ नंगी होकर इन आधी दर्जनों ठुड्डियों वाले अति-मानवों के इशारे पर नाचती है। लोंजों में शराब ढलती है, ताश जमता है, जुआ चलता है और घर बसाए-बिगाड़े जाते हैं। उसी लोंज में नाचने का हॉल है, बीच में रस्सियों से घिरा जहाँ भीतर से घिनौने लोग ऊपर से चमकते हाथों के सहारे प्रेयसियों का संचालन करते हैं और जब जोड़े आर्केस्ट्रा की आवाज़ का सहारा पालेते हैं, जिस आवाज़ में आसपास की आवाज़ खोई रहती है और जिसकी गूँज बैठे लोगों के कानों को भर देती है—तभी जोड़े अपनी वासना के सूत्र हलके से एक दूसरे को सरका देते हैं जिनका अन्त कहाँ होता है नहीं कहा जा सकता। और उसी लोंज में उसी ज़मीन पर जहाँ लकड़ी के फ़र्श पर जोड़े छलकते हैं, घुड़दौड़ होती है, घुड़दौड़—जो सच्चे घोड़ों की नहीं झूठे घोड़ों की है जिस पर श्रीमानों के मन बहलाव के लिए दाँव लगाए जाते हैं। दाँव प्रगटतः नगण्य हैं पर भीतर भयानक जिनसे घर बरबाद तक हो सकते हैं पर घर बरबाद न होने के ठेकेदार कुछ ये ही घोड़े हैं, ऐसा उनका विश्वास है।

और वह उधर डेक पर जो अनगिनत जीवन-रक्षिका नावें रखी हैं उनकी कहानी भी अद्भुत है। सही, उनकी अपनी अपनी कहानी है, अपने अपने भेद हैं क्योंकि ये खूबसूरत बड़ी नावें वास्तव में इतना जीवन की रक्षा नहीं करतीं, (क्योंकि जहाज़ अक्सर नहीं डूबा करते) जितनी भेदों की रक्षा करती हैं। और इन भेदों की क्या चर्चा की जाय। चर्चा करते जीभ ऐंठ जायेगी क्योंकि लन्दन का सारा हाइड पार्क, पेरिस का समूचा शाँजेलीज़े, रोम का कोलोसियम के सामने वाला सविस्तार खण्डहर सभी सिमट कर उन नावों के पीछे आ जाते हैं जब कामुकों के निःस्पन्द जोड़े उधर सरक जाते हैं। गोधूलि नगरों में, ग्रामों और जनपदों में धूल उड़ाती आती है और उस धूल पर रात अपने अन्धियाले की छाया डाल देती है, रात जो थके व्यक्तियों पर अपने स्पर्श से नींद का जादू डाल देती है। एलिज़ाबेथ की गोधूलि में धूल नहीं उसकी साँझ में फेनिल समुद्र का अट्टहास है। नीले आकाश के नीचे नीले समुद्र का उन प्राणियों के प्रति धिक्कार है जो लाखों और हज़ारों जानों से खेल कर इस जहाज़ में दम लेने आते हैं।

वास्तविक दम तो वे पेरिस के क्लबों में लेते हैं जहाँ धन पानी की तरह बहता है। उनका धन जिसकी कोई क़ीमत नहीं जो खुद अनेक अनेक प्राणियों की क़ीमत है। और ये प्राणी! पेरिस के क्लबों में दिन की सी चमकती रात के उजाले में कमनीय नग्न मूर्त्तियाँ जो तपस्वी को भी बेबस करदें, घिरती हैं, स्वच्छन्द डोलती हुई बोलती हैं, पर क्या बोलती हैं या तो वे नहीं जानती

और यदि जानती भी हैं तो उसका अर्थ नहीं समझ पातीं। उनका डोलना बोलना सब उनकी तनख्वाह का परिणाम है और यह तनख्वाह उनके स्वामियों के ज़रिए एलिज़ाबेथ के श्रीमान् न्यूयार्क के वालस्ट्रीट और पार्क-स्ट्रीट के श्रीमान् सम्पन्न करते हैं क्योंकि अपने भरे जीवन की थकान से ऊब कर दम लेने वे यहाँ आते हैं, उस पेरिस में। पेरिस वालों का कहना है कि वे विवश हैं क्योंकि धारासार सम्पत्ति के सामने उनकी क़समें टिक नहीं पातीं, और सच ही जो वे टिक पातीं तो उस पार के ये श्रीमान् भला वहाँ कैसे टिक पाते ?

यह एलिज़ाबेथ है, वही एलिज़ाबेथ जो साउथैम्पटन और न्यूयार्क के बीच निरन्तर चक्कर लगाया करता है और जो आज इस समय, इस अँटकी साँझ के समय हमारे सामने खड़ा हमारे उठते और फैलते स्वप्नों को रूप दे रहा है। मेरे आसपास खड़े लोग, नर और नारी, ख़ुदा के बन्दे, पादरी और भिक्षुणियाँ बस एक स्वप्न देख रही हैं एलिज़ाबेथ में कभी सफ़र करने की। पर मेरे सामने तो एलिज़ाबेथ केवल यह शृंखला है जिसने पश्चिम को पूर्व से जोड़ा है और जिसकी जोड़ने वाली शृंखला में कड़ियों के रूप में सारे पूर्वी देश जकड़ गए हैं।

इलाहाबाद

—भगवतशरण उपाध्याय

●

एक तारा !

एक तारा चन्द्रमा के पास हँसता !

चाँदनी सी खिल उठी हैं, चाँद की बिखरी कथाएँ
बाँधता वह अंक में, लघु रश्मि की फैला भुजाएँ !
हृदय में उठती हिलोरें, नयन में भर प्यास हँसता !

एक तारा चन्द्रमा के पास हँसता !

वह युगों से टिमटिमाता, चन्द्रमा का बन पुजारी
शून्य की चुप लहरियों में, झाँकता तूफ़ान भारी !
परिधि को संकीर्ण करता, तम नियति का व्यास हँसता

एक तारा चन्द्रमा के पास हँसता !

प्रेरणा यदि बन सको तुम, प्रगति का उन्माद लेकर
मैं प्रलय में बढ़ चलूँगा, एक तेरी याद लेकर !
इस अँधेरे में दमक कर, प्यार का विश्वास हँसता

एक तारा चन्द्रमा के पास हँसता !

—राजेन्द्र यादव

आगरा

वैष्णवों की परमाराध्या राधा रानी

माधुर्य्ये मधुरा राधा महत्त्वे राधिका गुरुः ।
सौन्दर्ये सुन्दरी राधा राधैवाराध्यते मया ॥
जिहिं उर-सर राधा-कमल, बसौ लसौ बहुभाय ।
मोहन भौंरा रैन-दिन, रहे तहाँ मँडराय ॥

मधुरता में राधा मधुर है; महत्वपूर्ण वस्तुओं में राधा ही महत्वपूर्ण है । सुन्दर पदार्थों में राधा सर्वसुन्दरी है, इसलिए राधा ही मुझसे पूजी जाती है ।

जिसके हृदय-सरोवर में राधा-सरसिज अत्यन्त भाव के साथ बसा हुआ शोभित होता है वहाँ श्रीकृष्ण भौंरों के समान रात दिन मँडराया करते हैं ।

व्रज में और विशेष कर वृन्दावन में आते ही व्रजेश्वरी राधा का नाम ही सर्वत्र सुनाई देता है । बुलाने-के लिए 'राधे' आने के लिए 'राधे' सर्वत्र राधा का ही साम्राज्य है। यह राधा क्या है ? श्रीमद्भागवत में इसका नाम तक नहीं है । अशरीरी कामदेव-सा यह कौन-सा पदार्थ है ? अलक्षित होकर तो उसका इतना प्रभाव है और यदि कहीं वह जानकी-सी प्रत्यक्ष होतीं तो क्या कमाल न कर डालतीं ? राधा–मदनमोहन को लेकर हिन्दी साहित्य का एक अंग बहुत ऊँचा उठ गया है। साहित्यिकों को कुछ वर्ष पूर्व 'सरस्वती' में 'राधा स्वकीया या परकीया' पर चले विवाद का स्मरण होगा । यहाँ राधा का विवेचन उस दृष्टिकोण से अभीप्सित नहीं है ।

ऋग्वेद के उपनिषद् भाग में राधिकोपनिषद् है, जिसमें स्पष्ट है—'कृष्णेनाराध्यतेति राधा' [कृष्ण से आराधित होने के कारण राधा] 'कृष्णं समाराधयतीति राधिका' [कृष्ण की सम्यक् आराधना करने के कारण राधिका] । उसमें राधा के २८ नाम दिये हुए हैं, जिनके नित्य नियमित पाठ से मुक्ति मिलती है । * कृष्णचन्द्र राधा की आराधना क्यों करते हैं ? उनकी हैं अनेक शक्तियाँ आह्लादिनी, संधिनी, ज्ञानेच्छा, आदि, जिनमें प्रधान है आदि ।

कृष्ण के आह्लादे ताते नाम आह्लादिनी ।
सेइ शक्ति द्वारे सुख आस्वादे आयनी ॥
सुख रूप कृष्ण करे सुख आस्वादन ।
भक्तगणे सुख दिते ह्लादिनी कारन ॥
ह्लादिनीर सार अंश तार प्रेम नाम ।
आनन्द चिन्मयरस प्रेमेर आख्यान ॥
प्रेमेर परमसार महाभाव जानी ।
सेइ महाभावरूपा राधा ठकुरानी ॥

राधामाधव में किसकी श्रेष्ठता है इस पर 'उज्ज्वल-नीलमणि' नाटक का मत देखिये—

तयोरप्युभयोर्मध्ये राधिका सर्वसाधिका ।
महाभावस्वरूपेयं गुणैरति वरीयसि ॥

उन दोनों में सब पूरा करनेवाली महाभाव-स्वरूपा राधा ही अति गुणवती है ।

भगवान् को अपने ऐश्वर्य दिखलाने के अनेक अवसर संसार और स्वर्ग में मिलते हैं, पर मधुर भाव का अवसर तो केवल व्रजलीलासाधिका राधिका द्वारा ही संभव है, अतः अपनी लीला की पूर्णता के लिए अपनी गोइयों (साथी) के रूप में श्री कृष्ण ने राधा को रखा है । बराबर में मानमनौवल होता ही है । समस्त विश्व की समस्त चिन्ताओं से युक्त भगवान् को प्रसन्न करनेवाली हैं श्री राधारानी, अत एव श्री राधा की प्रधानता होने से इनकी प्रधानता है, अन्य की लीलाएँ अन्य की सहायता से संभव थीं परन्तु रासलीला तो बिना लाड़िलीजू के कभी हो ही नहीं सकती थी । रासलीला है महत्त्वपूर्ण अतः उपेक्षणीय नहीं ।

---

* राधा रासेश्वरी रम्या कृष्णमन्त्राधिदेवता ।
सर्वाद्या सर्ववन्द्या च वृन्दावनविहारिणी ॥
वृन्दाराध्या रमाऽशेषगोपीमण्डलपूजिता ।
सत्यासत्यपरासत्यभामा श्रीकृष्णवल्लभा ॥
वृषभानुसुता गोपीमूलप्रकृतिरीश्वरी ।
गांधर्वा राधिका रम्या रुक्मिणी परमेश्वरी ॥
परात्परतरा पूर्णा पूर्णचन्द्रनिभानना ।
भुक्तिमुक्तिप्रदा नित्यं भवव्याधिविनाशिनी ॥

दूसरा अर्थ राधिकोपनिषत् में इस प्रकार का है कि जो कृष्ण की समाराधना करे । यहां यह स्पष्ट कह देना चाहिए कि श्री राधावल्लभ संप्रदाय उन दोनों का संबंध शक्ति और शक्तिमान् रूप में एक दूसरे के अंतर्गत नहीं मानता । दोनों का समान अस्तित्व है । महाप्रभु श्री हित-हरिवंश जी की गोद में दोनों खेलते हैं । गौड़ीय संप्रदाय में श्रीकृष्ण के लिए राधा की आतुरता प्रधान है । यदि इस भाव पर विचार किया जाय तो राधारानी साधिका के रूप में भक्त के सामने आती हैं । अतः राधा चिन्तन का अर्थ है साधक की चेष्टाओं की स्पष्टाभिव्यक्ति । प्रिय को प्रसन्न करने के लिए स्वयं कष्ट उठा कर भी सब कुछ करने को तयार हो जाना राधिका के बूते की बात है । राधा को इष्ट तो है कि भगवान् कृष्ण यहां आवें पर वह हँस के द्वारा संदेश भेजती हैं कि आप गोकुल मत आइए क्योंकि यहां की लताएँ विषमयी हो गई हैं । इसकी व्यथा का स्वाद रूप गोस्वामीकृत खण्ड काव्य 'हँसदूत' में देखिए—

त्वया नो गंतव्यं कथमपि हरे गोष्ठमधुना—
लताश्रेणी वृन्दावनभुवि यतोऽभूद्विषमयी ।
प्रसूतानां गन्धं कथमितरथा वातनिहितम्—
भजन् सद्यो मूर्च्छा वहति निबहो गोपसुदृशाम् ॥

अब तुम कृष्ण इतै जनि आयेहु गोकुल में कोउ भांती ।
वृन्दविपिनमहि में भइ विषमय सकल लताकर पांती ॥
नाहित वायु झकोर जबै इत सुमन सुगन्ध उड़ाती ।
सूँघत ही तेहि गोपवधूगन जाहि अचेत दिखाती ॥

इस प्रकार स्वयं कष्ट सह कर दयित को सुखी बनाने की अनेक मार्मिक उक्तियाँ भावुक कवियों ने कही हैं । जिस किसी दृष्टि से भी देखा जाय राधा की उपासना ही साधक के लिए सार है ।

ऋग्वेद में एक स्थान पर आता है "राधाया माधवो देवो माधवेन च राधिका विभ्राजन्ते जनेष्वा ।" एक दूसरे के पूरक हैं आन्योन्याश्रय भाव से प्रांजल हैं । राधा का यदि इस प्रकार का अर्थ लिया जाय तो भी कोई हानि नहीं । मधुर लीला तो परस्पर दो की ही चीज़ है जिसमें प्रधान, उभैण, उत्तम, कनिष्ठ का कोई भेद नहीं होता ।

श्रीमद्वेदव्यास जी ने भागवत का अभिप्राय कहते हुए श्री मद्भागवत-माहात्म्य में कहा है—

आत्मा तु राधिका तस्य तयैव रमणादसौ ।
आत्मा राम इति प्रोक्तो मुनिभिर्गूढ़वेदिभिः ॥

उसी स्थान पर प्रिया कालिन्दी के मुख से कहलाया गया है—

आत्मारामस्य कृष्णस्य ध्रुवमात्मास्ति राधिका ।
तस्या दास्यप्रभावेन विरहोऽस्मान्न संस्पृशेत् ॥

इस प्रकार राधा का अर्थ आत्मा है । इसकी पुष्टि रास के प्रसंग में 'आत्मारामोऽप्यरीरमत्' से भी होती है ।

जो कुछ भी अर्थ हो, जिसको जो भाव रुचै जिसकी जो परम्परा हो, जिसको गुरु का जो उपदेश हो भक्ति में राधा का अपना महत्त्व अक्षुण्ण है । ब्रह्माण्ड पुराण में कहा है—

श्रृणु गुह्यतमंतात नारायणमुखाद्द्रुतम् ।
सर्वैश्च पूजिता देवी राधा वृन्दावने वने ॥

इस प्रकार अत्यन्त संक्षेप में राधारानी का महत्त्व उपासना में प्रकट करने का प्रयत्न किया गया है ।

अब देखना है कि ऐसे राधामाधव ने हिन्दी साहित्य को क्या दिया है ? राधा भाव से साधारण रूप से लोगों के हृदय में श्रृंगार रस की बात आ जमती है । पर वास्तव में बात ऐसी नहीं है । श्रृंगार रसराज है इसके अन्तर्गत जितने संचारी आ सकते हैं उतने अन्य में नहीं । वह श्रृंगार हेय है जो नीच वृत्तियों को उत्तेजित करता है । ऐसी भी कविताएँ हैं जो हम परिवार में सबके सामने निःशंक नहीं पढ़ सकते । इसके अतिरिक्त ऐसे छन्दों का अभाव नहीं जिनमें भावों की गाढ़ता है, अर्थ की गम्भीरता है, उक्ति का चमत्कार है । नीचे ऐसे कतिपय पदों का संग्रह दिया जा रहा है जिसमें श्री राधा को प्रधानता दी गई है:—

बन्दौं राधिका पद पदमु ।
परमकोमल सुभग सीतल कृपायुत सुख कदमु ॥
चरणचिंतत अमल उरसिज जगत सब ही छदमु ।
भाल पर अच्छर अनयास सोहै होत परसंत रदमु ॥
कृष्ण अलंकृत स्वहस्तपूजन निगम नूपुर रदमु ।
रसिक जन जीवन समूली अग्रसर वसु सदमु ॥

× × ×

कुँअरि चरण अंकित धरणि देखत जिहि जिहि ठौर ।
प्रिया चरणरज जानिकै लुटत रसिक सिरमौर ॥

× × ×

ब्रह्म में ढूँढ्यौ पुराण में ढूँढ्यौ
वेद ऋचा पढ़ि चौगुनो चाइन ।
जान्यौ नहीं कबहूँ वह कैसो है
कैसे सरूप है कैसे सुभाइन ॥
हेरत हेरत हार परयो
रसखानि बतायो न लोग लुगाइन ।
देख्यो कहाँ वह कुंज कुटीर में
बैठो पलोटत राधिका पाइन ॥

× × ×

भज मन राधिका के चरण ।
सुभग सीतल परम कोमल कमल कैसे वरण ॥
क्वणित नूपुर शब्द उचरत विरह सागर तरण ॥
ताहि परमानन्द बलि बलि स्याम जाकी सरण ॥

× × ×

राधेजू के चरण पलोटत मोहन ।
नीलकमल के दलन लपेटे अरुण कमलदल सोहन
कबहुँक लैलै नयनन लावत अलिधावत ज्यों गोहन ।
जै श्री भट्ट छबीले राधे होते जगेते छोहन ॥

उदाहरणों की अधिकता भावशबलता का कारण न हो अतः कतिपय पंक्तियाँ ही उद्धृत की गई हैं। इनको पढ़ कर पाठक स्वयं अनुभव कर सकते हैं कि कविता तो भावोद्गार है। उसमें बन्धन की स्वीकृति कविता में सुगन्धि का अभाव या उसके प्रति निरादर प्रगट करती है।

अतः वैष्णवों की परमाराध्या राधा ने भारतीय संस्कृति में एक नई लहर पैदा की है। रसमयी राधा ने साधनारत साधकों में रस पैदा कर उन्हें अधिक सरस बनाया है। साहित्य का क्षेत्र उनसे अछूता नहीं। तात्विक दृष्टिकोण से राधा का उपर्युक्त विवेचन उचित है।

मथुरा

—व्रजभूषण मिश्र

●●●

[1]मायूसियों में मौत का चर्चा न कीजिए
[2]तकदीर के बिगाड़ का [3]शिकवा न कीजिए
है ज़िन्दगी [4]अज़ाबे मुसलसिल तो हो, मगर
रो रो के उसकी आन को [5]रुसवा न कीजिए ॥

हैदराबाद

—'कमलप्रसाद' कमल

---

[1] निराशाओं [2] भाग्य [3] शिकायत [4] लगातार कष्ट [5] खराब

हिन्दी पत्रकारिता की समस्या

सन् १८३६ ई० में निकलने वाले प्रथम हिन्दी पत्र "उदन्त मार्तण्ड" के संचालकों को कदाचित् इस बात की कल्पना भी नहीं होगी कि उनके पत्र की भाषा, हिन्दी एक दिन भारत की राज-भाषा बनेगी। इस नाते हिन्दी समाचार पत्रों की इस समय जिम्मेदारी, शक्ति और क्षेत्र में बहुत अधिक विस्तार आ गया है। हमें यह मानना होगा कि हिन्दी पत्रों का अभी वह स्थान और स्थिति नहीं है, जो हमारे ही देश के कुछ अंग्रेज़ी पत्रों की है। इसका एक विशेष कारण भी है। अंग्रेज़ी या अन्य विदेशी पत्रों को अपना अस्तित्व बनाए रखने में काफ़ी संघर्ष (Competition) करना पड़ा है और रेडियो, समाचार-फ़िल्मों इत्यादि के मुक़ाबले में उन्हें अपनी कमज़ोरियों को दूर करना पड़ा है। इसके अतिरिक्त टेलिप्रिंटर, मोनोटाइप और लिनोटाइप तथा मुद्रण संबन्धी अनेक यान्त्रिक सुधारों और अविष्कारों के कारण भी विदेशी पत्रों की उन्नति तीव्र-गति से हुई। उन पत्रों को अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए अपने अन्दर विविधता, आकर्षण तथा वैज्ञानिक सुधारों को ग्रहण करना पड़ा। विदेशी-पत्रकारों ने अपने इस व्यवसाय को एक व्यवस्थित शास्त्र (Science) का स्वरूप दिया और सचित्र पत्रकारिता के इस पेशे को एक शास्त्रीय कला में बदल दिया। हिन्दी-पत्रों को इन परिस्थितियों में से गुज़रने का अवसर अब मिला है। इसीलिए पत्रकारिता के अन्य अंगों की भाँति सचित्र-पत्रकारिता के क्षेत्र में भी हिन्दी पत्रों को उन्नति करने की बहुत गुंजाइश है। कुछ ही पत्रों को छोड़ दिया जाए तो हिन्दी में विदेशी-पत्रों की तुलना में अच्छे-पत्र बहुत कम हैं।

यहाँ सचित्र-पत्रकारिता की आवश्यकता और उपयोगिता की ओर ध्यान देना उचित होगा। कुछ वर्षों पूर्व तक तो अपने क्षेत्र में समाचर-पत्रों का कोई प्रतिस्पर्धी नहीं था, किन्तु अब ऐसा जान पड़ता है कि रेडियो, समाचार-फ़िल्मों और टेलीविज़न की समाचार पत्रों के साथ प्रतिद्वन्द्विता बढ़ जाएगी। अपनी स्थिति को बनाए रखने के लिए समाचार-पत्रों को अपनी कुछ दुर्बलताओं और त्रुटियों को दूर करना होगा। रेडियो की अपेक्षा समाचार-पत्रों की गति सुस्त है। इसी तरह समाचार-फिल्में पत्रों की अपेक्षा अधिक सजीव, वास्तविक और प्रभावजनक होती हैं। उनकी आकर्षण शक्ति भी बढ़ी हुई होती है। लेकिन देखा यह जाता है कि रेडियो पर समाचार सुनने के बाद भी लोग समाचार-पत्रों की आवश्यकता अनुभव करते हैं। क्या देश और क्या विदेश में रेडियो के साथ-साथ पत्रों का प्रचार और प्रसार भी बढ़ रहा है। इसका कारण यह है कि रेडियो पर सुने समाचारों के आधार पर उन पर सफल विवेचना करना हमारे लिए कुछ कठिन हो जाता है। उन पर मनन और चिन्तन करने का हमें अवसर नहीं मिलता। इसीलिए रेडियो पर सुने हुए समाचारों को लिपि-चित्र के रूप में पढ़ने की मनुष्य की स्वाभाविक लालसा होती है। इसकी पूर्त्ति समाचार-पत्र कर देते हैं। किन्तु रेडियो की तेज़ी का मुक़ाबला करने के लिए समाचार-पत्रों को चाहिए कि कोई उपाय ढूँढ निकालें। चुनांचे अच्छे पत्र प्रातःकालीन और सायंकालीन संस्करणों को प्रकाशित करके अपनी इस त्रुटि को एक हद तक पूरा कर लेते हैं।

रेडियो और पत्रों में एक भेद है। जिस प्रकार सचित्र पत्र और उसके विषय तथा लेखक हमारे लिए चाक्षुष या मूर्त्तिमान (Personal) होते हैं उस प्रकार रेडियो की ध्वनि साकार नहीं होती। चाक्षुष या मूर्तिमान चीज़ों का प्रभाव अमूर्तिमान (Impersonal) चीज़ों की अपेक्षा अधिक सुलभ और प्रभावपूर्ण होता है। यह भी एक कारण है जिसके द्वारा समाचार-पत्र अपने स्थान को अक्षुण्ण बनाए हुए हैं।

यही हाल समाचार-फ़िल्मों का है। फ़िल्म देखते समय जब हमारे सामने कोई दृश्य आता है तो पूर्व इसके कि हम उस पर कोई विचार बना सकें हमारी आंखों के सामने अनेक दृश्य आ जाते हैं। फल-स्वरूप हम जो कुछ देखते हैं उस बारे में कोई निश्चित मत नहीं बना सकते और हमें पुनः समाचार पत्रों की ओर झुकना पड़ता है।

रेडियो और समाचार-फ़िल्मों में एक और बाधा यह है कि दोनों समाचारों और घटनाओं के महत्त्व पूर्ण और

१६५२

विशेष अंगों पर ही प्रकाश डालते हैं ; समाचार पत्रों की भाँति उनके विस्तृत रूप को हमारे सामने नहीं रखते। फिर भी हम रेडियो की तेज़ गति और समाचार-फ़िल्मों की आकर्षण शक्ति को भुला नहीं सकते, जो समाचार पत्रों में नहीं होती।

मनुष्य का स्वभाव है कि वह रेडियो पर जो कुछ सुनता है और समाचार-फ़िल्म में जो कुछ देखता है, उसके बारे में हर दृष्टिकोण से दूसरों के विचार, उसकी स्वतन्त्र आलोचना, उसके बारे में स्वतन्त्र टीका-टिप्पणी करे तथा उनको विस्तार से पढ़े। इस इच्छा को समाचार पत्र ही पूरा कर सकते हैं। रेडियो प्रायः सरकारी नियन्त्रण में चलते हैं इसलिए उनसे जनता की यह इच्छा पूरी नहीं हो सकती। समाचार देने में रेडियो की तेज़ी का मुक़ाबला पत्र अपने विस्तार और विविधता के कारण कर सकते हैं और सचित्र पत्र अपने चित्रों की आकर्षण-शक्ति तथा स्थिरता के बल पर समाचार-फ़िल्मों के होते हुए भी अपना महत्त्व बनाए रख सकते हैं।

एक अच्छा और कला-पूर्ण चित्र छोटे से व्यास में अपने अन्दर एक विस्तृत निबन्ध की सामग्री या एक गूढ़ विषय को छुपाए रखता है। सुज्ञ दर्शक उसको देखते ही उन सभी बातों को क्षण भर में समझ लेता है, जो एक लम्बे चौड़े निबन्ध के पढ़ने के बाद उसके सामने प्रकट होती हैं। हम किसी युद्ध के दृश्य का उल्लेख, किसी भूचाल की भीषणता का वर्णन, अणुबम की विध्वंसकारिता का चित्रण या किसी महान् घटना को बयान करने में पृष्ठ पर पृष्ठ भर देते हैं फिर भी उनकी वास्तविकता को पाठकों के हृदय पर अंकित नहीं कर सकते; किन्तु कुछ ही इंचों के व्यास में चित्र द्वारा उनको यथार्थ रूप में दर्शा सकते हैं, जिसको पाठक पूर्ण-रूप से न केवल समझ सकता है बल्कि उसके असली-भावों को हृदयंगम भी कर लेता है। १९४२ में 'भारत-छोड़ो' के नारे को उठाते हुए राष्ट्र पिता म० गान्धी ने जिन भावनाओं को अपनी मुद्रा और भाव-भंगियों द्वारा श्रोताओं पर प्रगट किया था उनको पृष्ठ के पृष्ठ भर कर भी ज्यों का त्यों नहीं दर्शाया जा सकता। इसके विपरीत उस समय के उनके एक छोटे से चित्र में कई निबन्धों की सामग्री भरी हुई होगी। आज दुनिया बहुत व्यस्त है। अपनी इस व्यस्तता के कारण वह हर चीज़ में 'संक्षेप' और कम से कम समय व्यय करना चाहती है। रेडियो और यातायात के अन्य सुलभ साधनों के कारण आज प्रत्येक व्यक्ति संसार के सभी देशों और उनकी सभी बातों को जानना चाहता है। अतः वह इन सभी चीज़ों को कम से कम समय देकर अधिक से अधिक जानने के लिए उत्सुक रहता है। किसी महान् व्यक्ति की किसी प्रसिद्ध नेता के साथ भेंट का दृश्य या वृत्तान्त समाचार के रूप में पढ़ने की अपेक्षा छोटे से छाया-चित्र में देखने की अभिलाषा और आवश्यकता समय की गति के अनुरूप ही है। सचित्र-पत्र इस अभिलाषा या आवश्यकता को सरलता और उत्तमता के साथ पूर्ण कर सकते हैं।

भारत को लक्ष्य में रख कर सचित्र-पत्रों की आवश्यकता और उपयोगिता यों भी बढ़ जाती है, क्योंकि भारत में शिक्षितों की संख्या कम है और यह बहुसंख्यक जनता ग्रामीण तथा किसान है। सचित्र-पत्र जहाँ अपने में चमत्कारिक आकर्षण शक्ति रखते हैं वहां कम शिक्षितों और ग्रामीण जनता की, जो प्रायः किसान ही हैं, अपने व्यवसाय को आधुनिक साधनों द्वारा उन्नत बनाने तथा उनके परिणामों को दर्शाने, स्वास्थ्यरक्षा के नियमों के पालन की प्रेरणा तथा उनसे प्राप्त होनेवाले मधुर फल को प्राप्त करने की उनमें लालसा उत्पन्न करने और देश-विदेश की सामान्य जानकारी द्वारा उनके साधारण-ज्ञान में अभिवृद्धि करने में जितनी सफलता सचित्र-पत्रों को प्राप्त हो सकती है उतनी सफलता अन्य प्रकार के पत्रों को नहीं मिल सकती। क्योंकि जिस प्रकार नाटक या ड्रामा दृश्य-काव्य होता है उसी प्रकार सचित्र पत्र दृश्य-ज्ञान है।

किन्तु सचित्र-पत्रकारिता का उद्देश्य इससे भी महान्, सूक्ष्म, सर्वस्पर्शी और सर्वदर्शी है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, रेडियो अपनी तेज़ गति के कारण अधिकतर श्रोताओं के कानों का विषय है और केवल चित्र या समाचार-फिल्म प्रायः दर्शक के नेत्र का व्यापार है; किन्तु किसी पत्र का एक सचित्र-पृष्ठ अपने शीर्षक के साथ एक ओर हमारे नेत्रों को सहसा आकर्षित करता है और दूसरी ओर मस्तिष्क के लिए सामग्री देता है। इसी प्रकार सचित्र वृत्तान्त और सचित्र जानकारी (Information) अपने चित्रों के कारण पाठकों के लिए जहाँ आकर्षक होते हैं वहाँ हमारे समाचार कोष और दृष्टिकोण (News and views) में

अभिवृद्धि और परिवर्त्तन करते हैं। आकर्षण पाठकों में जिज्ञासा-बुद्धि (Inquisitiveness) पैदा करता है और वार्त्ता तथा दृष्टिकोण (News and views) से पाठक की बुद्धि में सञ्चालन या उत्तेजन (Stimulation) उत्पन्न होता है। इस प्रकार सचित्र-पत्रों से पाठकों में जिज्ञासा-पूर्ण संचालन-शक्ति का संचार होता है और सहज ही उनकी ज्ञान-पिपासा की तृप्ति होती है। अतः सचित्र-पत्रकारिता को केवल साधारण शिक्षितों या अशिक्षितों के लाभ की ही वस्तु समझना भूल है।

सचित्र-पत्रकारिता के तीन प्रकार या भेद हैं। पहला छाया-चित्र (Photography) द्वारा वस्तु, दृश्य, विवरण इत्यादि का उल्लेख जिसमें प्रतिभा-विषयक (Image) या बाह्य-पदार्थ-विषयक (Objective) वर्णन होता है। किसी व्यक्ति के रूप या किसी स्थान का दृश्य या किसी दुर्घटना के कारण उत्पन्न हुई बातों को या किसी विध्वंसकारिता का हाल हम ज्यों का त्यों जितनी सुन्दरता के साथ छाया-चित्र द्वारा रख सकते हैं, किसी अन्य साधन से नहीं। दूसरा भेद रेखांकित-चित्रों (Diagram) द्वारा वर्णन है, जिसमें किसी कार्य या घटना के निरन्तर उतार-चढ़ाव या उत्थान-पतन का उल्लेख होता है। ऋतुओं, किसी वस्तु के उत्पादन, व्यापारिक परिवर्त्तन आयात-निर्यात की स्थिति, जनन-निधन का वर्णन रेखांकित-चित्र (Diagram) द्वारा थोड़े से स्थान में और पूरे सही तौर पर किया जा सकता है। तीसरा भेद मान-चित्र या नक्शा (Map) है। इसके द्वारा वर्णनात्मक जानकारी दी जा सकती है। जैसे, भारत में कौनसी वस्तु कहाँ-कहाँ उत्पन्न होती है, किसी देश की कौन-कौन सी नदियाँ कहाँ और कैसी बहती हैं, कौन-सा प्रदेश या प्रान्त कहाँ है, इसको दर्शाने का उत्तम साधन मानचित्र (Maps) ही हुआ करते हैं। संसार की किसी भी घटना, रूप, परिवर्त्तन, वर्णन, इत्यादि को अत्यन्त सुलभतम उत्तम रीति से चित्रकारिता के इन तीनों भेदों में से किसी एक के द्वारा ही दर्शाया जा सकता है।

सचित्र-पत्रों से जो मनोवैज्ञानिक परिणाम निकलते हैं और हमारी इन्द्रियों, ज्ञान तथा बुद्धि के विकास पर इसका जो सुप्रभाव पड़ता है तथा किसी चीज़ को कम से कम समय और व्याप में जिस तरह यथार्थ रूप में समझने या समझाने में इससे सहायता मिलती है, उसका सब से अधिक लाभ और सद्-परिणाम बालकों और विद्यार्थियों पर होता है। यही कारण है कि कुछ अच्छे हिन्दी पत्रों में बालकों और शिशुओं के लिए पृथक सचित्र पृष्ठ सुरक्षित किए जाते हैं। अनेक पत्र बालकों की जिज्ञासा को बढ़ाने या उनकी बुद्धि को संचालित करने या उनके मनोरंजन के लिए चित्र-कथाएँ (Picture stories), व्यंगचित्र (Cartoon) तथा बाल-चित्रावली प्रकाशित करते हैं। बाल-साहित्य तथा बच्चों के मासिकों को तो अनिवार्य रूप से सचित्र होना चाहिए। यदि ऐसी पत्र-पत्रिकाएँ रंगीन हों तो उनकी आकर्षण-शक्ति बढ़ जाती है। बालकों के ऐसे सचित्र-पत्रों के सम्पादक या संचालक केवल पत्रकारिता और चित्रकला के ही ज्ञाता न होकर उन्हें बाल मनोविज्ञान का तथा बालकों की अभिरुचि का पर्याप्त अध्ययन और अभ्यास होना आवश्यक है।

विज्ञापन-क्षेत्र में सचित्र-पत्रों की उपयोगिता समाचार-क्षेत्र से किसी तरह कम नहीं है। रेडियो और समाचार-फ़िल्में विज्ञापन-दाताओं को अपनी ओर निरन्तर आकर्षित करती जा रही हैं। अपनी दीर्घकालीन स्थिरता के कारण इनका मुक़ाबला सचित्र-पत्र ही कर सकते हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि समाचार-पत्रों को जीवन प्रदान करने और उनका पालनपोषण करके उन्हें पुष्ट बनाने में अधिक भाग विज्ञापनों का ही होता है। अतः विज्ञापन दाताओं को समाचार-पत्रों की ओर ही आकर्षित बनाए रखने में सचित्र पत्रकारिता से बहुत सहायता मिल रही है। एक सचित्र-पत्र जनता में बहुत ही शीघ्र सर्व प्रियता प्राप्त कर सकता है और एक सर्व-प्रिय पत्र ही विज्ञापन दाताओं को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है।

पत्रों के सञ्चालन और प्रचार में उसके पृष्ठों की बनावट और सजावट बहुत महत्वपूर्ण होती है। अनेक अच्छे पत्र जिनकी बनावट और सजावट आकर्षक नहीं होती प्रायः असफल रहते हैं। पाठक उनकी ओर अधिक ध्यान नहीं देते। चित्र पत्रों की बनावट और सजावट के लिए आभूषण का काम देते हैं।

सचित्र पत्रों की इन सभी विशेषताओं से हिन्दी-पत्रों को लाभ उठाना चाहिए। हिन्दी-पत्रों को प्रत्येक क्षेत्र की भांति इस क्षेत्र में इसलिए भी अधिक प्रयत्नशील होना चाहिए क्योंकि वह भारत की राजभाषा है, जिसका प्रभाव भारत की अन्य भाषाओं और उनकी पत्रकारिता पर

पड़े विना नहीं रहेगा। विदेश के उन्नत पत्रों की श्रेणी में आने के लिए हिन्दी-पत्रों को पत्रकारिता की इस महत्वपूर्ण कला को भी बनाना आवश्यक है।

सचित्र पत्रकारिता की प्रगति निश्चित रूप से छायाचित्रकला (Photography) की प्रगति का कारण बनेगी। साथ ही ब्लाक निर्माण कला तथा मुद्रण कला इससे प्रकाशित हुए विना नहीं रह सकती। विदेशों में इन कलाओं की विस्मयजनक प्रगति का कारण बहुत हद तक सचित्र-पत्रकारिता की बढ़ती हुई मांग ही है। पत्रों को जिस प्रकार अपना सम्पादक मण्डल रखना पड़ता है उसी प्रकार चित्र-विभाग के सम्पादकों की पृथक नियुक्ति करनी होगी। यह चित्र-सम्पादक जहां चित्र-कला में निपुण होंगे वहां पृथक-पृथक विषयों की भी पूरी जानकारी रखनी होगी। जैसे बाल विभाग या बाल पृष्ठ के चित्र-सम्पादक को बाल मनोविज्ञान तथा बाल-रुचि का ज्ञाता होना आवश्यक है इसी प्रकार विज्ञापन विभाग के चित्र सम्पादक को व्यापार-व्यवसाय तथा अपने पाठकों की अभिरुचि, सामान्य स्थिति और वातावरण का सामान्य ज्ञान होना आवश्यक होगा। अस्तु। इन चित्र-सम्पादकों का कार्य यह होगा कि वे उपयोगी चित्रों का चुनाव करें, विषयों और प्रसंगों के अनुसार उनका निर्माण तथा पृष्ठों में उनकी सजावट करें। यह चित्र-सम्पादक-मण्डल अन्य सम्पादकों से पृथक होगा किन्तु दोनों में पूर्ण सहकारिता के विना कार्य नहीं चल सकता।

समाचार-पत्रों को आवश्यक चित्रों के प्राप्त करने के लिए चित्र-एजन्सियों और स्थानीय चित्रकारों के अतिरिक्त पृथक चित्र-दाताओं और प्रतिनिधियों को नियुक्त करना होगा। अच्छे विदेशी पत्र अपने चित्र-प्रतिनिधियों पर काफ़ी धन व्यय करते हैं। सुदूर देश में पहुँच कर, युद्ध-क्षेत्रों में जाकर, देश-विदेश और प्रान्त-प्रदेश का प्रवास करके वहाँ की आवश्यकता जानकारी के साथ जरूरी छाया-चित्र-रेखांकित-चित्र या मानचित्र इकट्ठे किए जाते हैं। सामान्य संवाददाता भी चित्र प्रतिनिधी का काम कर सकते हैं।

सचित्र पत्रकारिता को अधिक उन्नत और आकर्षक बनाने के लिए रंगीन-चित्रकारिता (Coloured Photo-engraving) को भी ग्रहण करना जरूरी है। इन सभी कार्यों के लिए उन्नत पत्र अपना पृथक कर्मचारी मण्डल नियुक्त करता है।

प्रश्न यह है कि हिन्दी-पत्र जिनमें से अधिकांश की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं तथा जिनके संचालन में अनेकों व्यावहारिक बाधाएँ हैं, क्या अपने आपको सफलता के साथ सचित्र बना सकते हैं? कुछ ही पत्रों को छोड़ कर अन्य हिन्दी पत्र अपनी आर्थिक कठिनाइयों के कारण मुद्रण-प्रकाशन तथा समाचार प्राप्ति के आधुनिक साधनों को पूर्ण रूप से काम में नहीं ला सकते। तार, टेलिप्रिन्टर, प्रमुख समाचार-एजेन्सियों के हिन्दी में न होने के कारण हिन्दी-पत्रों को समय का साथ देने में अधिक व्यय उठाना पड़ रहा है। आज तक अंग्रेजी भाषा के पत्रों के अधिक प्रचलन के कारण ग्राहक-संख्या की दृष्टि से हिन्दी-पत्र अधिक प्रगति और लोक प्रियता प्राप्त नहीं कर सके। फलस्वरूप पाठक और विज्ञापन-दाता हिन्दी-पत्रों की ओर से प्रायः उदासीन रहे। भारत में पत्र के पढ़ने और विज्ञापन पर अधिक व्यय करने की प्रवृत्ति विदेशों की अपेक्षा कम है। पत्रों के पोषण और उन्हें पुष्ट करने में विज्ञापन का हाथ अधिक रहता है। हिन्दी के राजभाषा घोषित होने के बाद से कुछेक हिन्दी पत्रों की प्रगति सन्तोषजनक हो रही है। और उनके पाठकों की संख्या में वृद्धि हुई है तथा विज्ञापन-दाताओं की दृष्टि भी हिन्दी-पत्रों की ओर जा रही है। किन्तु सामान्यतः इस समय हिन्दी पत्रों के सामने सचित्र पत्रकारिता एक समस्या ही है। चाहे जो हो हिन्दी पत्रकारों और हिन्दी पत्रों के पाठकों तथा विज्ञापनदाताओं को हिन्दी पत्रकारिता तथा उसके सचित्र विभाग को पुष्ट और उन्नत बनाना अत्यंत आवश्यक है।

पत्र की शक्ति महान् और उसका क्षेत्र विस्तृत है। एडमण्ड बर्क के शब्दों में समाचार-पत्र चौथी रियासत (Fourth state) है। समाचार पत्र मनुष्य की कृति और विचार को लिपि-चित्र में चित्रित करने का साधन है। और सचित्र-पत्र संसार को देखने के लिए झरोखा है। हिन्दी-पत्र यदि अपनी इस स्वाभाविक शक्ति और तद्-जन्य विस्तृत क्षेत्र को अक्षुण्ण बनाए रखना चाहते हैं और संसार की उन्नत पत्रकारिता से लाभ उठाना चाहते हैं तो उन्हें हर बाधा का मुक़ाबला करके भी समय का साथ देना होगा और आधुनिक सभी वैज्ञानिक और शास्त्रीय साधनों से सज्जित होना होगा।

—कृष्णदत्त

प्रसिद्ध जर्मन कवि हाईनरिख़ हाईने

१८ वीं शती के अंत में जर्मनी के काव्याकाश में एक ज्योतिष्क नक्षत्र का उदय हुआ जिसने अपनी आभा से जर्मनी के लोगों का मन मोह लिया। इस महाकवि ने अपने राष्ट्र में नए जीवन का संचार किया। उन दिनों जर्मनी एकबद्ध राष्ट्र नहीं था, वरन् कई छोटे छोटे राज्यों में बँटा था। कवि के ही शब्दों में :

'Deutschland ist noch ein Kleines Kind,
Doch die Sonne ist Seine amme,
Sie Saugt es nicht mit Stillermilch,
Sie Saught es mit wilder flamme.'

'इस समय जर्मनी एक छोटा बच्चा है और इसकी धाय सूरज है। यह धाय अपने बच्चे को दूध का घूँट नहीं देती वरन् आग का घूँट देकर पाल रही है।' जर्मन भाषा में 'सूरज' शब्द स्त्रीलिंग है यही कारण है कि धाय की उपमा सूरज से दी गई है।

इतिहासकारों के बीच और बातों में मतभेद चाहे भले ही हो परन्तु इस विषय में मतैक्य है कि जर्मनी जाति को वस्तुतः 'आग का घूँट' दिया गया है। यदि देखा जाए तो एक तरह से यूरोप के पिछले एक सौ वर्षों का इतिहास जर्मन राष्ट्र का इतिहास है। इन पंक्तियों की रचना के काफ़ी अर्से बाद जर्मनी के राजनीतिक गगन में विस्मार्क नामक नक्षत्र निकला, जिसने जर्मनी के छोटे छोटे स्वतन्त्र राज्यों को मिला कर एकबद्ध राष्ट्र के रूप में संगठित किया। विस्मार्क जिसके नाम से सारे युरोप में कँपकँपी फैल जाती थी, विस्मार्क जिसकी कूटनीति ने यूरोप का नक्शा बदल दिया, विस्मार्क जिसका सिद्धान्त था 'लहू और लोहा'।

महाकवि भविष्य द्रष्टा होने के साथ साथ युगस्रष्टा भी होते हैं। हाईनरिख़ हाईने की कविताओं ने जर्मन जाति की सूखी नसों में नए रक्त का संचार कर दिया। उसके अदम्य आशावाद ने उनके आध्यात्मिक सम्बल का काम किया। नीचे की पंक्तियों में आशावाद किस तरह प्रगट होता है :

'Herz, Mein Herz, Sei nicht beklommen,
Und ertrage dein geschick,
Neuer Fruhling giebt Zuruck,
Was der winter dir genommen.'

अर्थात् 'मेरे हृदय, शोकाभिभूत न होओ। अपने भाग्य के थपेड़ों को सहन करो। शीत काल बीत रहा है और नव वसन्त अपनी मादकता के साथ बस अब आने ही वाला है।

कवि सुन्दर भविष्य की कल्पना में भावविभोर हो जाता है, उसका मनमयूर नाच उठता है आनेवाले पावस की श्याम घटाओं को याद कर। ऊपर की पंक्ति में रहीम की 'जब नीके दिन आइ हैं बनत न लगिहैं देर' की कुछ कुछ गन्ध आती है।

हाईने की सबसे लोकप्रिय कविता है 'लोरेलाई' हमारे जर्मन मित्र कहा करते थे कि ऐसा शायद ही कोई जर्मन होगा जिसे यह कविता कण्ठस्थ न हो। इस कविता का आरम्भ इस तरह होता है :

'Ich weis nicht, was sollesbedeuten
Dass ich So traurig bin;
Ein marchen ausalten Zeiten
Das Kommtmir nichtaus dem Sinn.'

'न मालूम क्यों मुझे इतना उदास मालूम होता है। इसकी वजह शायद कोई पुरानी कहानी हो जिसकी याद मुझे ठीक नहीं आ रही है।' आगे चल कर :

'Die luft ist kuhl und es dunkelt,
Und ruhig fliest der rhein;
Der gipfel des Berges funkelt
Im abendsonnenschein.
Die Schonste jungfrau Sitzet
Dort oben Wunderbar
Ihr goldnes geschmeide blitzet
Sie Kammt ihr goldnes haar'

'ठण्डी ठण्डी हवा चल रही है, गोधूलि का समय है, राईन नदी शान्तभाव से प्रवाहित हो रही है। सायंकालीन सूर्य की रश्मि में पहाड़ की चोटी चमक रही है। उस भव्य पर्वत शिखर पर एक अत्यन्त सुन्दर तरुणी बैठी है। इसकी सोने की बालियाँ बिजली के समान

चमक रही हैं और वह अपने सुनहले बालों को झाड़ रही है। इसके आगे की पंक्तियाँ हैं :

'Sie Kammt es mit goldenem Kamme,
Und Singt ein lied dabei;
Das hat eine Wundersame
Gewaltige melodei'

'वह सोने की कंघी से बाल साफ़ कर रही है और साथ ही एक ऐसा सुन्दर गीत गा रही है जो बरबस मन को मोह लेता है।'

इन पंक्तियों में हाईने ने इतना सुन्दर चित्र खींचा है, जिसमें प्रातःकालीन शबनम की ताज़गी तथा इन्द्रधनुष की धारियाँ हैं। हाईने ने सौन्दर्य का मानो रस उण्डेल दिया है। एक एक शब्द जैसे बोलता हुआ चित्र है और जादू का-सा असर करता है। ऐसा मालूम होता है मानों इस कवि के अन्तर में काव्य के एक से एक बहुमूल्य मोती भरे हुए हैं और वह उन्हें अन्धाधुन्ध निकाले जा रहा है। स्वयं कवि के ही शब्दों में :

"Mein herz gleicht ganzdem meere,
hat sturmundebb undfluth,
und manche Schone Perle,
In Seiner tiefe ruht.

'मेरा हृदय समुद्र के समान है और इसमें समुद्र की तरह ज्वारभाटा उठता रहता है। तथा इसके अंतर में एक से एक सुन्दर मोती छिपे हैं।'

गोयते और हाईने जर्मनी के महाकवि हैं। जर्मन जाति को उन पर भारी गर्व है और होना भी चाहिए। लेकिन इन महाकवियों की कृतियों में समस्त मानवता की आत्मा प्रतिध्वनित होती है, जो देशकाल की परिस्थिति से परे हैं—"ऐसी चीज़ें हैं जो चिर नवीन हैं और रहेंगी।" यही कारण है कि महाकवियों की कृतियाँ सदा आदर से पढ़ी जाती हैं। शेक्सपीयर, ह्यूगो, गोयते, हाईने, कालिदास, तुलसीदास, पुश्किन, गोगोल समस्तकाल और समस्त विश्व के कवि हैं। ये नाम उस लम्बी मंज़िल के संकेतचिह्न हैं जो मानवता ने अब तक तय की है। ये प्रकाशस्तम्भ हैं, जो अनन्तकाल तक मानवता का पथप्रदर्शन करते रहेंगे। काल के अनन्त प्रवाह में न मालूम कितने धन, यौवन, गर्व, मान विलीन हो गए लेकिन ये नाम तब तक बने रहेंगे जब तक आकाश में सूर्य, चन्द्र और तारे हैं, जब तक मानवता क़ायम है।

हाइनरिख़ हाइने का जन्म १३ दिसम्बर १७९७ को जर्मनी के डुस्सेलदोर्फ़ नामक स्थान में हुआ था। इसका परिवार यहूदी मत का माननेवाला था। स्कूली शिक्षा समाप्त करने के बाद वह फ्रेंकफोर्ट आन दी मेन शहर में किसी बैंक में किरानी का काम करने लगा। जब किरानीगिरी से उसकी तबीयत ऊब गई तो वह हैमबुर्ग में कमीशन एजेण्ट का काम करने लगा। लेकिन इसमें भी वह असफल रहा।

इसके बाद उसने विश्वविद्यालय में उच्च शिक्षा प्राप्त करने का निश्चय किया। गौटिनगेन विश्वविद्यालय से उसने डाक्टर आफ ला की डिग्री हासिल की। इसी अर्से में उसने यहूदी मत को छोड़ कर लुथेरन चर्च की दीक्षा ले ली।

इसके बाद उसने लन्दन, म्युनिख, इटली, बर्लिन और हेलगोलैंड की यात्रा की और ३ मई १८५१ को पेरिस पहुँचा।

१८५१ से लेकर १७ फरवरी १८५६ तक अर्थात् मृत्यु तक वह पेरिस में रहा। पेरिस में ही उसकी प्रतिभा का विकास हुआ। वह 'आउसबुर्ग गज़ेट' नामक पत्र का विशेष संवाददाता था तथा विभिन्न फ्रेंच पत्र-पत्रिकाओं में बराबर लिखा करता था। तत्कालीन जर्मनी की सरकार ने उसकी कुछ रचनाओं पर बैन लगा दी लेकिन फ्राँस की सरकार उसे बराबर पेन्शन देती थी। बालजक, ह्यूगो, गीयते, मिशैल, दम्यूत्ने आदि प्रसिद्ध फ्राँसीसी लेखक और कलाकार उसके अंतरंग मित्रों में थे। १८४३-४४ में वह जर्मनी आया। १८४५ में उसे लकवे की बीमारी हो गई। १८४६ में उसने पिरेनीज़ पहाड़ की यात्रा की। १८४८-५६ तक पेरिस में बीमार रहा और १७ फरवरी १८५६ को वहाँ उसका जीवन-प्रदीप बुझ गया। लेकिन हाइनरिख़ हाइने मर कर भी अमर है। उसकी कोमलकांतपदावली आज भी हम में नूतन स्फूर्त्ति भरती है। हाइनरिख़ हाइने ने अपने क़ाव्य में उन जीवन्त तथ्यों को उभार कर रखा है जो चिर-नवीन हैं और रहेंगे। नीचे की पंक्तियों में हाइने ने कितने सुन्दर ढंग से पार्थिव वैभव विलास की क्षणभंगुरता का चित्र खींचा है :

'Noch bluhtmein Sommer,
dennocheing ebracht

have ich die Ernte
Schon in Meine Scheuar
Und jetzt Soll ich Verlassen, was so theur
So lieb und theuer mir the Welt gemacht

'इस समय हमारा वसन्त अपने चरम उत्कर्ष पर है, मैंने अपने खेतों से गेहूँ की फसल बटोर कर खत्तों में भर दिया है। लेकिन इसी समय ये तमाम चीजें जो मुझे जान से भी ज्यादा प्यारी हैं छोड़ देनी होंगी।'

आगे की पंक्ति पर भी जरा ग़ौर कीजिए :

'Der hand entsinkt das Saitenspiel.
In Scherben Zerbricht das glas, das ich
So frohlich eben
An meine ubermuthgen lippen presste.'

'मेरा हाथ आप से आप वीणा के तारों से अलग हो जाता है। मैं खुशी में भर कर जिस गिलास को अपने होठों से लगाना चाहता था उसके टुकड़े टुकड़े हो जाते हैं।'

कभी कभी इन पंक्तियों का लेखक सोचता है कि किनना अच्छा होता यदि गोयते, शीलर, हाईने की कृतियों का मूल से हिन्दी में अनुवाद हो जाता। लेकिन इस महान् कार्य के लिए अवकाश किसे है। सब अपने अपने रागरंग में मस्त हैं। "पण्डित सोई जो गाल बजावा।"

नई दिल्ली

—मंगलकिशोर पाण्डेय

झूठी मनुहारें

जीवन जलता है जलने दो
मैं डरता नहीं अंगारों से

कर सकता निर्मित नव प्रभात
मैं इन जीवन की हारों से

घनघोर घोर रव करती उल्का
का भी आलिङ्गन कर सकता हूँ

प्रलयङ्कर के प्रलय नृत्य की
लय में अनुरंजन भर सकता हूँ

किन्तु विकल हो उठता हूँ
जग की झूठी मनुहारों से

नव पल्लव-सा काँप काँप उठता हूँ
मैं जग के झूठे भारों से

चाँदा

—कमला दीक्षित

कवि चन्द्रकुँवर

वास्तव में चन्द्रकुँवर बड़थ्वाल यदि जीवित रहते तो वे हिन्दी साहित्य की आधुनिक प्रगति में विशेष योग देते, वैसे उन्होंने जो कुछ लिखा है वही उन्हें आधुनिक कवियों में श्रेष्ठ स्थान दिलाने के लिए यथेष्ट है। खेद है ऐसा प्रतिभाशाली कवि इतनी शीघ्र ही हम लोगों के बीच से उठ गया। उनकी 'नन्दिनी' शीर्षक रचना वास्तव में एक अमर सन्देश ले कर हिन्दी पाठकों के सामने आई है। साहित्यिक तथा दार्शनिक दोनों ही दृष्टियों से उसकी गणना, कुछ अन्तर रहते हुए भी, स्वर्गीय श्री जयशंकर 'प्रसाद' कृत 'प्रेम-पथिक' की परम्परा में की जा सकती है। कवि के जीवन प्रभात का यौवनोचित प्रेम, प्रकृति-प्रेम और अन्त में प्रेम की वासना में परिणति न हो कर, अखिल विश्व की कल्याण भावना में परिणति होना, ये सब बातें 'नन्दिनी' को हिन्दी की एक निश्चित परम्परा में उच्च स्थान प्रदान करती हैं। कलात्मकता की दृष्टि से उसमें मनोहरता एवं आकर्षण है और एक सजीव हृदय की गाथा होने के कारण वह एक श्रेष्ठ गीति रचना है। इस रचना की सब से बड़ी विशेषता यह है कि निविड़ अन्धकारपूर्ण क्षणों में भी कवि ने जीवन के प्रति आस्था नहीं छोड़ी, आस्तिकता कवि का सब से बड़ा संबल है। उसके हृदय की ज्योति मन्द नहीं दिखाई पड़ती। कवि के प्रेम में उच्छृंखलता के स्थान पर संयम और परिष्कार करनेवाली शक्ति है। जीवन को विकृत बनाने के बजाय वह उसके विराट् रूप को सामने रखनेवाला है, अहंभाव के स्थान पर 'सब का हो कल्याण, मुझे अब सब भाते हैं' का पाठ वह देता है। 'नन्दिनी,' सुख दुःख में समता करना सिखाती है, केवल दुःखदायक स्मृति के स्थान पर जीवन के कल्याणमार्ग के प्रति अग्रसर करती है, जीवन निर्झरिणी के शीतल जल को पीने के लिए आमन्त्रित करती है और विश्वात्मा के प्रति आत्म-समर्पण की ओर संकेत करती है। वास्तव में 'नन्दिनी' पढ़ने के बाद पाठक का मन आनन्द अंबुधि में अवगाहन करने लगता है।

'कंकड़-पत्थर' में बड़थ्वाल 'चरैवेति चरैवेति' के कवि हैं। वास्तव में उनका यह रूप उनकी प्रत्येक रचना में मिलता है और 'कंकड़-पत्थर' का कवि, 'नन्दिनी' के कवि से भिन्न नहीं हैं। दोनों में व्यापक और प्रगतिशील दृष्टिकोण है। 'कंकड़-पत्थर' में कवि ने जीवन के सामाजिक, धार्मिक, शिक्षा-सम्बन्धी, राजनीतिक, आर्थिक, वर्गगत आदि क्षेत्रों के अभावों पर कहीं व्यंगपूर्ण दृष्टि से और कहीं व्यथित हृदय से दृष्टिपात किया है। और फिर कवि की दृष्टि स्वदेश तक ही सीमित न रह कर अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र तक विस्तृत है। 'कंकड़ पत्थर,' 'बाँस का लट्ठ,' 'काँटा,' 'अल्लाह की जबान,' 'गधे के प्रति,' 'ब्रिटेन के प्रति,' 'विजयादशमी,' 'राम-नाम की गोलियाँ,' 'कवि-पशु,' 'बंगाल का दुर्भिक्ष,' 'मैकाले के खिलौने,' 'भूखे-किसान,' 'ओ-स्वदेश,' 'मानव हूँ मैं' आदि रचनाएँ कवि की तीक्ष्ण दृष्टि का परिचय देती हैं। उसने जीवन का अर्थ पहिचाना है। 'आज अपनी देख सूरत' में मानव के वर्तमान निन्दित जीवन का सुन्दर चित्र वह प्रस्तुत करता है—

"आज अपनी देख सूरत काँप मैं डर से उठा,
आज अपनी प्रेत छाया देख कर मैं डर गया,
आज से मुझ को न जीवन से प्रयोजन रह गया।"

इसलिए उसने 'चरैवेति, चरैवेति,' 'लानी है कीर्ति नई, अब न और अधिक लुटो', का सन्देश देते हुए, सदा धनिकों के हार गूँथनेवाले 'कवि पशु' की भर्त्सना की है;

"लानत तुम पर, तुमने सरस्वती के सेवक
हो कर, गूँथे हार सदा धनिकों के,
तुम ने गान किए उनके जो निन्दित पशु थे,
गिरे वज्र उस जगह जहाँ तुम खड़े दुष्ट हो,
तुम्हें नरक भी न हो नसीब, तुम्हें हे कवि पशु!
करे न कोई याद भूल कर भी पल भर को!"

इस प्रकार की रचनाओं से सिद्ध हो जाता है कि कवि बड़थ्वाल एक जागरूक कवि थे और छायावादी कवियों के करुण विलाप के स्थान पर उनमें कर्मठता और सक्रियता थी। नवीन वैज्ञानिक युग और उसमें निहित शक्तियों को पहिचानने और तदनुसार जीवन क्रम में परिवर्तन करने का पक्षपाती यह कवि है।

'प्रणयिनी के गीत' नन्दा, पुरूरवा-'उर्वशी' और 'देवगुरु' का अभिशाप (सोम को), नामक छोटे छोटे एकांकियों में बड़थ्वाल ने हृदय की विविध सूक्ष्म दशाएँ चित्रित की हैं। उनके प्रेम में व्यथा और मार्मिकता का समन्वय है और प्रणयिनी नाम सार्थक है। देवगुरु के अभिशाप में सोम को वरुण ने शाप दिया कि प्रतिसंध्या तुम्हारे जीवन पर मृत्यु की छाया पड़ती जाएगी। किन्तु देवगुरु ने वरदान दिया कि तुम्हारी मृत्यु नहीं होगी। इसमें कितनी सुन्दर व्यंजना है! यह वरदान है या अभिशाप, पाठक यह स्वयं सोच सकते हैं।

'गीत माधवी' और 'छोटे गीत' में कवि का काव्यमय व्यक्तित्व पूर्ण रूप से प्रस्फुटित हुआ है। इन छोटे छोटे छन्दों में कवि ने अपने हृदय की सूक्ष्मतम अंतर्दशाएँ अभिव्यक्त की हैं और यही कारण है कि उनमें माधुर्य, आकर्षण शक्ति और सच्चापन सभी का समन्वय है। प्रेम के कारण उत्पन्न व्यथा को कवि ने प्रकृति के विराट् सौन्दर्य की शीतलता में अवगाहन कराया है। इस संबंध में उनकी कल्पनाएँ वास्तव में श्लाघनीय हैं। पार्वत्य प्रदेश में पालित पोषित होने के कारण प्राकृतिक सौन्दर्य की ओर उन्मुख होना कवि के लिए स्वाभाविक था। प्रकृति का सौन्दर्य उसके प्रणय को जब और भी तीव्र कर देता है तब वह कहता है—

"मैं हँसते हँसते सहता हूँ इनके ये उत्पीड़न,
इन्हें ज्ञात क्या! देख चुके हैं तुमको मेरे लोचन!"

किन्तु कवि ने अपनी भावनाओं को व्यापक रूप देते हुए कहा है:

तुम मेरी ही नहीं अकेली, तुम प्रिय हो स्वर स्वर की,
मेरी प्राची की सुकुमारी, तुम हो लहर लहर की!

वास्तव में 'गीत माधवी' में कवि की प्रकृतिगत जो सौन्दर्य चेतना है वह विशाल और विराट है। सच तो यह है कि कवि बर्त्वाल ने किसी सीमा की परिधि में बँधना सीखा ही नहीं। उन्मुक्त गति से ऊँची उड़ान भरी है।

—डा. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय
एम. ए., डी. फिल, डी. लिट्.

इलाहाबाद

संसार में सकारण मित्र बहुत मिलते हैं परन्तु अकारण मित्र नहीं मिलते। परन्तु इसके विपरीत सकारण शत्रु नहीं मिलते परन्तु अकारण शत्रु बहुत मिलते हैं।

—

यश भाफ़ है। लोकप्रियता एक आकस्मिक घटना है। धन को पंख लग जाते हैं। संसार में एक ही वस्तु निश्चित है और वह है विस्मृति।

—होरेस ग्रीले

—

ऐसे समय आते हैं जब कि नमक और शक्कर का एक ही भाव हो जाता है।

प्रोफ़ेसर इन्द्र विद्यावाचस्पति

४ जून की बात है। दोपहर के ११ बजे होंगे। दिल्ली के भारतविख्यात हिन्दी अंग्रेज़ी पुस्तकों के प्रकाशक आत्माराम एण्ड सन्स की दुकान पर बैठा था कि अचानक भाई श्री क्षेमचन्द्र सुमन ने कहा "इन्द्र जी आए हैं, चलो मिल लें।"

मैं इस बार उनसे मिलने का निश्चय करके ही दिल्ली गया था। इसलिए मैं सुमन जी के साथ दुकान के पीछे के हिस्से में, जहाँ सुमन जी बैठते हैं, बाहर आया। एक छः फुट लम्बा, दुबला पतला, लगभग ६० वर्ष की उम्र का व्यक्ति जिसका सिर नंगा, बदन पर खद्दर की धोती और कुर्ता, तथा पैरों में चप्पल थीं, आत्माराम एण्ड संस के हिन्दी विभाग के प्रबन्धक श्री भीमसेन जी से किसी पुस्तक के विषय में बात कर रहा था। उससे सुमन जी ने मेरा परिचय कराते हुए बताया, "ये ही इन्द्र जी हैं, जिनसे तुम इण्टरव्यू के लिए मिलना चाहते थे।"

मैंने उन्हें प्रणाम किया और अपनी "मैं इनसे मिला" नामक इण्टरव्यू की पुस्तक उन्हें भेंट करते हुए उनसे प्रार्थना की कि वे इण्टरव्यू के लिए कोई समय और दिन निश्चित कर दें और पुस्तक पर सम्मति भी दें। उस समय मेरा यह ख़याल था कि वे दोनों कामों के लिए शीघ्र तैयार हो जाएँगे, लेकिन उन्होंने इण्टरव्यू का समय तो किसी भी दिन प्रातःकाल रखने के लिए कह दिया पर सम्मति के लिए कहा कि मैं इस पुस्तक को देख कर ही कुछ कह सकता हूँ। उनकी इस स्पष्टवादिता से मुझे यह अनुभव हुआ कि यह व्यक्ति निःसन्देह ऐसा पत्रकार रहा होगा जो स्पष्ट मत के प्रदर्शन में कभी नहीं झिझका होगा।

उस दिन उनसे वहाँ और कोई बातचीत नहीं हुई। दो दिन बाद मैं प्रातःकाल ६-३० बजे उनके निवासस्थान (चन्द्रलोक, जवाहर नगर, मल्कागंज रोड) दिल्ली पर पहुँचा। पहाड़ी धीरज से पैदल गया था। आशा तो न थी कि समय से पहले पहुँच जाऊँगा पर अनदेखी जगह का अन्दाज़ न होने से मैं जा पहुँचा ६-३० बजे। बड़ा संकोच हो रहा था कि समय टेलीफोन से निश्चय किया था ७ बजे का और पहुँच गया आधा घण्टे पहले। हिम्मत करके आवाज़ दी तो एक बालिका (जिसके विषय में पीछे मुझे इन्द्र जी ने बताया कि वह उनकी पुत्री उषा है तथा उनकी प्राइवेट सेक्रेटरी भी है) आई और उसने मुझे ले जाकर बैठक के कमरे में बिठा दिया।

उस कमरे में बैठ कर मैं इन्द्र जी की प्रतीक्षा करने लगा। उनके ड्राइंगरूम में केवल एक ही महापुरुष की प्रतिमा शीशे के भीतर से झाँकती दिखाई दी और वह महापुरुष हैं इन्द्र जी के यशस्वी पिता स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज। शेष कमरा बिलकुल सूना है। यदि यह बात सही है कि किसी व्यक्ति की रुचि का पता उसके कमरे की तसवीरों से लगता है तो मैं कहूँगा कि इन्द्र जी में राष्ट्रीयता और समाज के लिए मिटने की भावना ही प्रबल होनी चाहिए।

थोड़ी देर में ही इन्द्र जी आकर कोच पर बैठ गए। उसी वेश में वे घर पर भी थे जिसमें मैंने उन्हें आत्माराम एण्ड संस के यहाँ देखा था। शिष्टाचारवश मैंने अपनी जल्दी आने की बात कही और उनसे क्षमा मांगी तो वे बोले कोई हर्ज की बात नहीं। ७ बजे का समय तो मैंने इसलिए दिया था कि मैं उस वक्त तक तैयार हो ही जाता हूँ। वैसे प्रयत्न यही रहता है कि ६-३० बजे ही दैनिक कार्यों से निवृत्त हो लूँ। आपके जल्दी आने से कोई बाधा नहीं पड़ी।"

मैंने आश्वस्त होकर और यह देख कर कि वे विचारविनिमय के लिए तैयार हैं, उनसे पूछा कि आप तो हिन्दी के एक प्रसिद्ध पत्रकार हैं। फिर आपके नाम के साथ यह "प्रोफ़ेसर" की उपाधि क्यों लगी है?"

उन्होंने कहा कि मेरे जीवन का प्रमुख धंधा तो पत्रकारिता ही है पर मैं गुरुकुल में पढ़ाता रहा हूँ, इसलिए नाम के आगे प्रोफ़ेसर लग गया है। मैंने गुरुकुल में ७-८ वर्ष पढ़ाया है। इस प्रोफ़ेसर बनने की भी एक कहानी है। बात यह हुई कि जब पिता जी ने गुरुकुल की स्थापना की तो मैं और मेरे बड़े भाई हरिश्चन्द्र जी जो सन् १९१४ से राजा महेन्द्रप्रताप के साथ इंगलैण्ड गए और १९२२ रेवोल्यूशन पार्टी में सम्मिलित होकर काम करते हुए कहीं

लुप्त हो गए । दोनों आरम्भ में उसमें भर्ती किए गए । वहीं से हम दोनों स्नातक हुए । यह सन् १९१२ की बात है। सन् १९०० से पूर्व स्वामी जी जालन्धर में वकालत करते थे और वहीं से उर्दू में "सद्धर्म प्रचारक" नाम का अखबार निकालते थे । सद्धर्म प्रचारक का प्रेस भी था । यह पत्र पीछे चलकर हिन्दी में हो गया था । गुरुकुल का काम आ पड़ने पर स्वामी जी ने प्रेस गुरुकुल को ही दे दिया था। यही नहीं, हमारे स्नातक होने के ६ महीने पहले, उन्होंने हमें बुलाकर अपनी कोठी के दानपत्र पर भी हम से हस्ताक्षर करा लिए थे । स्नातक होने के समय हमारे पास कुछ नहीं था । उस समय काम चुनने की बात आई तो मैंने पत्रकार बनने का इरादा प्रकट किया । फलस्वरुप हरिश्चन्द्र जी तो गुरुकुल में अध्यापक हो गए और मैं केवल साप्ताहिक "सद्धर्म प्रचारक" को लेकर दिल्ली आ गया क्योंकि प्रेस गुरुकुल को दिया जा चुका था । स्वामी जी गुरुकुल में ही थे । हरिश्चन्द्र जी स्वतन्त्र विचार के व्यक्ति थे । गुरुकुल में जिन ५२ मन्तव्यों पर हस्ताक्षर करने पड़ते थे उनके सम्बन्ध में मतभेद होने से उन्होंने एक वर्ष बाद ही त्याग-पत्र दे दिया । ऐसी दशा में स्वामी जी ने मुझे गुरुकुल आने का आदेश दिया । मैं हरिश्चन्द्र जी के स्थान पर चला गया और हरिश्चन्द्र जी दिल्ली आ गए । गुरुकुल में मैं तुलनात्मक धर्मशास्त्र और इतिहास पढ़ाता था ।

"उसके बाद आप पत्रकार कैसे बने ?" मैंने प्रश्न किया ।

उनका उत्तर था, "पत्रकारिता मेरे संस्कारों में थी । यदि यह कहूँ कि मैं पत्रकारिता के संस्कारों के साथ ही पैदा हुआ था तो अत्युक्ति न होगी । जब हम छोटे थे तब पिता जी "सद्धर्म प्रचारक" निकालते थे । प्रेस घर में ही था । इसका प्रभाव यह हुआ कि जब मैं आठ वर्ष का था और हरिश्चन्द्र जी १० वर्ष के थे, हम ४ : ४ पृष्ठ के हस्तलिखित अखबार निकाला करते थे । गुरुकुल में पहुँचने पर भी हमारी वह प्रवृत्ति चलती रही । वहाँ भी दोनों दो पत्र निकालते थे, वह भी सचित्र । लेख संस्कृत और हिन्दी में रहते थे । हम दोनों भाइयों को ही पत्रकारिता का शौक़ था । आगे चल कर जब गुरुकुल में सद्धर्म प्रचारक, हिन्दी में निकला तो हम उसमें भी लिखने लगे । तब मैं 'क्ष' इस कल्पित नाम से लिखता था । उस समय की एक मजेदार घटना मुझे याद है । हमारे एक अध्यापक थे श्री शिवशंकर शर्मा काव्यतीर्थ । उन्होंने ब्राह्मण ग्रन्थों पर एक भाष्य लिखा । नये विचारों से युक्त वह अपने ढंग की अनूठी चीज़ थी । उसके विषय में मैंने 'क्ष' के नाम से सद्धर्म प्रचारक में आलोचनात्मक लेख लिखा । पंडित जी ने लेख देखा तो क्लास में उसकी बड़ी कटु आलोचना की । उन्होंने दो सप्ताह बाद उसका जवाब दिया । मैंने फिर उनके जवाब का जवाब लिखा । यों दो तीन लेखों में मेरी उनसे झड़प हुई । कहीं बात खुल न जाय इस डर से कुछ समय पीछे मैंने लिखना स्वयं ही बन्द कर दिया । उस विवाद से मेरा पत्रकार का दृष्टिकोण बना । तब 'सद्धर्म प्रचारक' साप्ताहिक निकलता था । १९११ में दरबार होने के समय १५ दिन वह पत्र दैनिक भी निकला । वह मेरा दैनिक पत्र सम्पादन का प्रथम अनुभव था ।

गुरुकुल से मुझे बाहर निकल कर पत्र निकालने की प्रेरणा लोकमान्य तिलक और उनके 'केसरी' पत्र से मिली । गुरुकुल में हमें स्वाध्याय मण्डल के यशस्वी लेखक श्रीपाद दामोदर जी सातवलेकर चित्रकारी सिखाते थे । वे तिलक-भक्त थे । उनके प्रभाव से मेरी भी श्रद्धा तिलक महाराज और उनके पत्र 'केसरी' के प्रति हुई। १९१२ में जब दिल्ली आकर सार्वजनिक जीवन आरम्भ किया तो मैंने 'विजय' नामक पत्र निकाला । दिल्ली में उस समय 'मार्निंग पोस्ट' नाम का अंग्रेज़ी दैनिक निकलता था जो टोडी पत्र 'पाइनियर' से खबरें लेकर छाप देता था । मैंने एक दैनिक राष्ट्रीय पत्र निकालने का संकल्प करके दैनिक 'विजय' का प्रकाशन प्रारम्भ किया ।

"लेकिन आपको एक सरकार विद्रोही पत्र 'विजय' का डिक्लेरेशन कैसे मिला ?"

इसका श्रेय श्रीमती एनीबेसेंट के साथी श्री तारिणीप्रसाद सिन्हा को है । वे 'मानचेस्टर गार्जियन' के स्टाफ में रह चुके थे । गुरुकुल होकर जब वे दिल्ली आए तो मैंने उनसे 'डिक्लेरेशन' की अपनी कठिनाई बताई। वे बड़ी पहुँच के आदमी थे । कोई काम उनके लिए असम्भव नहीं था । बोले, सायंकाल तक डिक्लेरेशन लेकर आऊँगा, यह कह कर वे कमिश्नर के यहाँ पहुँचे और कहा, हम लोग 'विजय' जिसका अर्थ 'विक्टरी' होता है अर्थात् आपकी विजय (योर विक्टरी) निकालना चाहते हैं । कमिश्नर ने खुश होकर डिक्लेरेशन दे दिया और सायंकाल को वे उसे लेकर मेरे पास आए । आश्चर्य की

बात तो यह है कि आपने खाना भी कमिश्नर के साथ ही खाया। यह तिकड़म मेरे बूते की न थी। मेरा हाल तो यह है कि मैं ऐसे काम कर ही नहीं सकता। मेरे मित्र ऐसे कामों में मेरी मदद करा देते हैं।

यहाँ उन्होंने तत्कालीन न्यूज़ एजेन्सियों की हिन्दी-पत्रों के प्रति मनोवृत्ति पर प्रकाश डालते हुए मुझे बताया कि जिस समय उन्होंने डिक्लेरेशन प्राप्त कर 'विजय' को निकालने का निश्चय किया तो एसोसिएटिड प्रेस के डाइरेक्टर श्री राय ने उनसे कहा, 'मेरे प्यारे बच्चे, दिल्ली से हिन्दी दैनिक निकालने की हिम्मत न करो, यहाँ उसके लिए कोई क्षेत्र नहीं है।' उन्होंने उत्तर दिया, 'मैं पत्र तो अवश्य निकालूँगा।' इस पर राय ने कहा, 'लीडर, पायोनीयर आदि से खबरें लेकर ६ महीने तक पत्र निकाल, उसके बाद न्यूज एजेन्सी से बातें करना।''

इन्द्र जी ने राय की बात नहीं मानी और पत्र निकाल दिया। कितनी सफलता से चला इसका विवरण इन्द्र जी के शब्दों में ही सुनिए। उन्होंने बताया, 'पत्र निकला, पत्र छपता था हैण्डप्रेस पर। पहले दिन ७० कापियाँ बिकीं और वह भी प्रायः हिन्दी पढ़नेवाली लड़कियों ने ही लीं। तीन महीने में उसकी बिक्री १५०० तक पहुँच गई। वह पत्र जितना छपता था सब बिक जाता था। उन्हीं दिनों महात्मा जी ने रौलट एक्ट पर सत्याग्रह की घोषणा कर दी और मुझे दिल्ली की सत्याग्रह कमेटी का मन्त्री बना दिया। उस समय मेरे जोश का यह हाल था कि कलम को मैंने बिलकुल बेलगाम भगाया। 'विजय' की धूम मच गई। पहला राष्ट्रीय पत्र था। खूब बिकने लगा। उस पर सरकार की कोपदृष्टि पड़नी ही थी, ज़मानत मांगी गई और सैंसरशिप लगाया गया। फलतः पत्र बन्द करना पड़ा। लेकिन आश्चर्य की बात यह थी कि मैं बेलाग निकल गया। दो साल चुप रहने के बाद उसी को नाम बदल कर मैंने 'अर्जुन' के नाम से निकाला।

जब मैंने यह कहा कि पीछे का आपका 'अर्जुन' अब तो 'वीर अर्जुन' के नाम से निकलता है तो वे कहने लगे, 'हाँ, पीछे से अर्जुन को 'वीर अर्जुन' करना पड़ा। इसका कारण यह था कि 'अर्जुन' से और मुझ से सरकार परेशान थी। दो हज़ार, पाँच हज़ार और दस हज़ार तक की ज़मानतें हमसे माँगी गई और हमने दी भी। अर्जुन के पाँच सम्पादक न्यूनाधिक समय के लिए जेल में रहे। १९२७ में काश्मीर गया तो मेरे पीछे अर्जुन में कुछ साम्प्रदायिक लेख छप गए जिनके कारण अर्जुन के सम्पादक, प्रिन्टर और पब्लिशर पर मुक़द्दमा चल गया। मुझे साढ़े ५ साल की कड़ी सजा मिली जो सेशन में ६ महीने की रह गई। साथ ही पत्र से पाँच हज़ार रुपए की जमानत भी माँगी गई। इसके पश्चात् ज़मानत के जब्त होने की नौबत भी आ गई। ऐसे संकट के समय हमें यह युक्ति सूझी कि क्यों न नाम बदल दिया जाय। हम ने 'वीर अर्जुन' के नाम से डिक्लेरेशन दिया। सरकार ने यह सोच कर कि अर्जुन का एक प्रतियोगी खड़ा होना अच्छा है, 'वीर अर्जुन' के नाम से डिक्लेरेशन दे दिया। हमने अर्जुन बन्द कर दिया और 'वीर अर्जुन' चलने लगा।

''इसका अर्थ तो यह हुआ कि आपको निरन्तर आर्थिक कष्ट भोगना पड़ा है,'' मैंने कहा।

वे बोले, आप ठीक कहते हैं। मैंने ३० साल की पत्रकारिता में एक पैसा भी नहीं बचाया। सब सरकार ले गई। लेकिन मुझे दुःख नहीं है। मेरी दृष्टि में पत्र सार्वजनिक जीवन के साधन मात्र हैं। कमाने की चीज़ नहीं हैं। मुझे तो प्रसन्नता इसी बात की है कि मेरे प्रयत्नों ने इस बात को सिद्ध कर दिया कि दिल्ली की भूमि में हिन्दी अखबार भी पनप सकते हैं। मेरे पत्र निकालने के बाद दिल्ली में हिन्दी पत्रों की बाढ़ आ गई। जब मैंने दिल्ली में दैनिक पत्र निकाला था उस समय यहाँ अंग्रेज़ी पत्रों के अलावा हिन्दी, उर्दू का कोई पत्र न था। 'विजय' निकलने के कुछ दिन पीछे यह दशा हुई कि मुसलमान तक उसे ख़रीदते और दूसरों से पढ़ा कर सुनते थे। यहीं जब मैंने उनसे पूछा कि आपने 'वीर-अर्जुन' से सम्बन्धविच्छेद क्यों किया तो उन्होंने कहा ''दो साल से पहले यह निश्चय करके कि अब मैं पत्र के प्रबन्ध-कार्य से अलग होकर अधिक समय गुरुकुल तथा अन्य सार्वजनिक कार्यों में लगाऊँगा, मैंने पत्र की संचालक संस्था श्रद्धानन्द पब्लिकेशन लिमिटेड के मैनेजिंग डाइरेक्टर के पद से त्यागपत्र दे दिया था और उस स्थान पर दिल्ली के प्रसिद्ध व्यापारी लाला हंसराज गुप्त चुन लिए गए थे। उस समय यह निश्चय हुआ था कि 'वीर अर्जुन' की नीति में कोई परिवर्त्तन नहीं होगा, वह पूर्ववत् स्वतन्त्र बनी रहेगी। किन्तु, मेरी वह इच्छा पूरी न हुई। पत्र शीघ्र ही संघ के हाथों में जाकर स्वतन्त्रता खो

बैठा। तब मैंने उससे हाथ खींच लिया और उसमें लिखना भी छोड़ दिया।

राजनीतिक पार्टी के सम्बन्ध में मेरा विश्वास है कि मनुष्य को उसका चुनाव उसी प्रकार करना चाहिए जैसे वर वधू का चुनाव किया जाता है। चुनाव से पहले खूब सोच विचार कर लेना चाहिए। परन्तु एक बार चुनाव हो जाने पर, जहाँ तक सम्भव हो, तलाक़ न होना चाहिए। मैंने राजनीति में कांग्रेस को प्रारम्भ से ही अपना लिया था और अब तक उसी में हूँ। इसका यह अर्थ नहीं कि मैं कांग्रेस का गुलाम हूँ। मैं राजनीति के कार्य-क्षेत्र में कांग्रेसी परन्तु पत्रकारिता के क्षेत्र में स्वतन्त्र समालोचक हूँ।"

इसी बीच में बहिन उषा चाय ले आई। मैं चाय पीने लगा। बातचीत का सिलसिला फिर भी जारी रहा। मैंने आज के पत्रकारों की बात छेड़ दी और कहा—"आज तो पत्रकार की अवस्था बड़ी डाँवाडोल है। उनकी सुरक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं है। यदि वे बेचारे ट्रेड यूनियन के आधार पर संगठित होते हैं तो दृढ़ स्थिति वाले या आप जैसे मिशनरी स्पिरिटवाले पत्रकार उनका विरोध करते हैं। ऐसी स्थिति में कैसे वे अपनी आत्मा के अनुसार चल सकते हैं और देश का पथ प्रदर्शन कर सकते हैं?

इन्द्र जी इस प्रश्न पर कुछ देर तक सोच कर बोले "आज तो पत्रकारिता में स्वतन्त्र विचार की हत्या हो गई है। यह कला आज पूँजीपतियों की क्रीतदासी बनती जा रही है। बहुत से हिन्दी पत्रों के सम्पादक तथा उपसम्पादक मेरे पास 'अर्जुन' में कार्य कर चुके हैं। मेरे पास काम करते हुए उन पर किसी प्रकार का बन्धन नहीं था। वे सम्मति प्रकट करने में स्वतन्त्र थे। पेचीदा मामलों में भी स्वतन्त्रता से विचार व्यक्त करते थे। हम वेतन चाहे सौ ही रुपए देते थे लेकिन आत्मा नहीं खरीदते थे। तब ये मिशनरी पत्रकार थे। आज पत्रकारिता में सम्पादकों को चार सौ—पांच सौ रुपए वेतन मिलता है लेकिन मैं जानता हूँ कि उनमें से कइयों को परिस्थिति की परतन्त्रता खल रही है क्योंकि उन्हें वह लिखना पड़ता है जो उनका मालिक चाहता है। पूर्व समय के सत्य के लिए मर मिटने वाले इन सहकारी सम्पादकों की आत्मा पर आज भारी बोझ डाल दिया गया है। स्वतन्त्र पत्रकारिता बड़ी कठिन हो गई है। यदि पत्रकार के भीतर शक्ति और कौशल हो तो वह अपनी मान रक्षा कर सकता है। लेकिन प्रलोभन इतने हैं कि यह बहुत कठिन है। कोई भी योग्य और स्वाभिमानी पत्रकार इस स्थिति में कार्य नहीं कर सकता। उसे अलग होना पड़ेगा। आपके ही यहां के पं० हरिशंकर शर्मा को एक बार 'आर्यमित्र' से अलग होना पड़ा था।

यदि आप चाहें कि "ट्रेडयूनियन" से पत्रकार की स्वतन्त्रता की रक्षा हो जाय तो असम्भव है। ट्रेडयूनियन से आर्थिक प्रश्न तो हल हो जाएगा। पर मन की स्वतन्त्रता या स्वतन्त्र सम्मति के लिए वहां अवकाश नहीं है। पहले पत्र चलाना एक विशेष समाजोपयोगी कार्य था। आज व्यापार अथवा राजनीतिक पार्टियों का प्रचार ही पत्रों उद्देश्य हो गया है। संचालकों को सरकार के इश्तहारों की गुलामी एक दूसरी चोट है। शक्ति के उपयोग की सबको ही चिन्ता है त्याग कोई करना नहीं चाहता है।"

इतना कहते कहते वे देश की वर्त्तमान सरकार, कांग्रेसी नेता और जनता की दशा का विश्लेषण करने लगे। उन्होंने कहा—"यदि आप आत्मा की रक्षा की बात कहें तो इसकी आवश्यकता तो हर क्षेत्र में है। आज राजनीतिक दृष्टि के बदलने से जीवन का दृष्टिकोण ही बदल गया है। जो लोग किसी दिन ५० रु० मासिक में घर का खर्च चलाते थे वे अब १५०० रु० में भी नहीं चला पाते। हमें बहुत से अपने साथियों का हाल मालूम है कि वे कैसे दिन काटते थे पर आज वे मिनिस्टर बनते ही एक रात में बदल गए हैं। वे लौकिकता पर इतना जोर देने लगे हैं कि आश्चर्य होता है। इस समय आवश्यकता है इस बात की कि सरकारी कर्मचारियों, मंत्रिमण्डलों और पत्रकारों तथा जनता सबके चरित्र का स्तर ऊँचा हो। यदि ऐसा न होगा तो यह स्वराज्य ताश के पत्तों के मकान की तरह बैठ जायगा। जो मित्र स्वराज्य से पूर्व ग़रीबी और त्याग के दृष्टान्त समझे जाते थे वे आज धन की हवा में उड़ते हैं। यह हमारा दुर्भाग्य है। यह जो निर्बलता का प्रवाह बह रहा है वह रुकना चाहिए। सब लोग यदि हवाई जहाज में ही चलने लगे और ग़रीब देश का रुपया उड़ाने लगे तो कल्याण कैसे होगा। मुद्राराक्षस में लिखा है कि आचार्य चाणक्य सम्राट चन्द्रगुप्त को वृषल अर्थात् शूद्र कहा करते थे। एक बार कुछ लोगों ने सम्राट को भड़का दिया कि चाणक्य का

सम्राट् को शूद्र कहना अनुचित है। चन्द्रगुप्त क्रोध में आकर चाणक्य के घर गया और देखा कि छप्पर पर पयाल और खूँटी पर लंगोट के सिवा और कुछ नहीं है। उसे देख कर उसके मन में यह बात समा गई कि जो व्यक्ति साम्राज्य का निर्माण करके भी ऐसी निःस्पृह अवस्था में रह सकता है उसे सम्राट् तक को शूद्र कहने से कौन रोक सकता है। हमारे स्वराज्यनिर्माता इस भारतीय उदाहरण को भूल गए हैं। आज उन्हें अपनी प्रतिष्ठा की चिन्ता है। प्रतिष्ठा क्या खाक है! हर व्यक्ति गाली देतां है। यदि हमारे मन्त्री स्वेच्छा से १००० रु० में गुज़ारा करना मान लेते तो देश का खर्च आधा रह जाता और अमरीका से कर्ज़ नहीं लेना पड़ता। आज तो कर्ज़ लेने पर भी आमदनी से खर्च ज्यादा है।"

इस स्थिति से उबारने के उपायों के विषय में पूछने पर उन्होंने कहा, "शिक्षा, दृष्टान्त और प्रचार से ही हम स्थिति को सँभाल सकते हैं। शिक्षा में सुधार हुआ ही नहीं है और उसका होना देश की प्राथमिक आवश्यकता है। नैतिक और आचरणसम्बन्धी बातों के प्रचार की भी आवश्यकता है। फिर सबसे बड़ी चीज़ है दृष्टान्त। जनता वही करेगी जो बड़े करेंगे। लाग ऊपर से ही शुरू होना चाहिए। बिना इसके उपदेश निरर्थक है।"

देश की वर्तमान दशा पर उनके विचारों का परिचय पा लेने पर मैंने एक व्यक्तिगत प्रश्न पूछा। "क्या तीस वर्ष की पत्रकारिता में आपको कभी प्रलोभनों का शिकार नहीं होना पड़ा? यदि होना पड़ा तो कैसे आप बचे?"

इस प्रश्न पर इन्द्र जी ने जो कुछ कहा वह पूँजीपतियों की मनोवृत्ति पर सर्चलाइट फेंकनेवाला है। किस प्रकार पूँजीपति साम, दाम, दण्ड और भेद से पत्रकारों को खरीदना चाहते हैं और न खरीदे जाने पर अपने मित्रों द्वारा स्वतन्त्र पत्रों को मिटाने की चेष्टा करते हैं। ये सब बातें मुझे श्री इन्द्र जी के द्वारा दिए गए इस प्रश्न के उत्तर से मालूम हो गईं। उन्होंने कहा—"प्रलोभन मुझे ऐसे मिले हैं जैसे किसी भी पत्रकार को न मिले होंगे।" यह कह कर उन्होंने अपने तीन दृष्टान्त इस प्रकार सुनाए—"एक बार एक करोड़पति के प्रतिनिधि ने मेरे पास आकर कहा कि "सेठ जी की इच्छा अपने अंग्रेज़ी पत्र के साथ 'अर्जुन' को मिला लेने की है। मैंने कहा कि मैं तैयार हूँ। पर नीति मेरी रहेगी। इस पर सेठ जी तैयार नहीं हुए। इसी बीच सेठ जी के कारखाने में हड़ताल हो गई। हड़ताल का समाचार अर्जुन में छपा। समाचार के छपते ही कारखाने के मैनेजर का टेलीफ़ोन आया कि समाचार ग़लत है। यदि आप इसका प्रतिवाद नहीं छापते तो 'अर्जुन' पर मानहानि का दावा होगा। साथ ही यह भी कहा गया कि हम आपको सार्वजनिक कामों में सहायता देते रहते हैं इसलिए आपको हमारा लिहाज़ करना चाहिए। मैं कड़ा पड़ गया और कह दिया कि आप चाहे जो करें मैं प्रतिवाद नहीं छापूँगा। अभियोग करोगे तो सफ़ाई दूंगा। रही चन्दे की बात, तो मेरा व्यक्तिगत लाभ उससे नहीं होता। वह तो सार्वजनिक कामों में जाता है। उन्होंने वकीलों से उसी समय बातचीत की। पर केस चल नहीं सकता था और बदनामी का भी डर था। तब उन्होंने दूसरा उपाय मुझे झुकाने का सोचा। घाटा सह कर भी एक नया हिन्दी का पत्र निकालने की घोषणा कर दी। कुछ ही दिन बाद 'अर्जुन' से दो पृष्ठ ज्यादा का नया पत्र निकल गया। हमारे चार पृष्ठ थे, उनके छः। जब हमने छः किये तो उन्होंने आठ कर दिये। हमने आठ किये तो उन्होंने दस कर दिये। फल यह हुआ कि हम पर काग़ज़वाले का ४०,००० रु. का कर्ज़ हो गया। हमारे कई हितैषी काग़ज़ के व्यापारी जे. एन. सिंह के पास गये और 'अर्जुन' को ऋण में खरीदने की इच्छा प्रकट की। लेकिन जे. एन. सिंह कम्पनी के चेयरमैन श्री सूर्यनारायण जी ने मेरी लाज रख ली। उन्होंने साफ़ कह दिया कि मेरा रुपया देर से आये या जल्दी से, मिलेगा अवश्य। मुझ पर जो चार बड़े बड़े राजनीतिक मुक़द्दमे चलाये गये उन सब में सरकार की ओर से रायबहादुर सूर्यनारायण ही वकील के तौर पर खड़े हुए। परन्तु मैं यह कह सकता हूँ कि मुझे उनसे कभी शिकायत नहीं हुई क्योंकि उनका व्यवहार सदा शिष्टतापूर्ण रहा। ऐसा उदार हृदय व्यक्ति मैंने दूसरा नहीं देखा जो कि स्वतन्त्र पत्रकार की प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए पूँजीपतियों के सरताजों का तिरस्कार कर सके। वस्तुतः जे. एन. सिंह का सूद सहित सारा ऋण कुछ समय में मैंने चुका दिया। एक दूसरा मामला भी ऐसा ही हुआ। वह धनी सज्जन भी एक हिन्दी अखबार चाहते थे और 'अर्जुन' को लेना चाहते थे। यहाँ भी नीति का प्रश्न आया और बात जहाँ की तहाँ रही। कुछ दिन बाद उनकी चौथी या पांचवीं शादी

होने का समाचार मिला और यह भी पता चला कि वह शादी आर्य समाज के एक पण्डित द्वारा कराई जायगी। मैं उन दिनों सार्वदेशिक सभा का मन्त्री था। मैंने आर्य-वीरदल के कप्तान को बुला कर कहा कि ऐसी शादी से आर्य समाज का सहयोग नहीं होना चाहिए और वह रुकनी चाहिए। विवाह मण्डप सज चुका था और तैयारी में थोड़ी ही कमी थी कि आर्य समाज द्वारा भेजा हुआ सारा सामान वहाँ से हटवा दिया गया। इससे वह सज्जन मुझ से बहुत नाराज़ हो गये। फलतः दिल्ली में एक और हिन्दी दैनिक पत्र का जन्म हुआ जिसने 'अर्जुन' को परास्त करने का भरसक प्रयत्न किया।

तीसरा मामला भी ऐसा ही हुआ। एक स्थानीय मिल की हड़ताल का समाचार 'अर्जुन' में छपा तो मिल मालिक की ओर से दी गई बहुत-सी धमकियाँ यहाँ भी सुननी पड़ीं। मिल का गज़ट हमारे यहाँ छपता था। उसको उनके मैनेजर ने हमारे यहाँ से हटाने की धमकी दी। लेकिन मिल के मालिक समझदार आदमी थे, उन्होंने बाहर से लौट कर सारा मामला समझ लिया और गज़ट हमारे यहाँ ही छपने की आज्ञा दे दी। उनसे मेरे सम्बन्ध आज भी अच्छे हैं।

इसके अतिरिक्त 'अर्जुन' में रियासतों के समाचार बहुत छपते थे। वहाँ से तो अनेक प्रलोभन मिलते रहते थे। एक बार तो सीकर और जयपुर के झगड़े में एक सज्जन रुपयों की पगड़ी देने के लिए भी आये थे, जिन्हें मैंने बहुत ही विनयपूर्वक आफ़िस से नीचे उतर जाने के लिए बाधित किया।

मैंने देखा कि इन्द्र जी को बोलते बोलते काफ़ी देर हो गई है इसलिए कहा कि आज यहीं बातचीत समाप्त हो जानी चाहिए। शेष बातें कल हो जायँगी। वे इस पर राज़ी हो गए।

दूसरे दिन मैं फिर नियत समय पर पहुँच गया। आज मुझे उनकी तनिक भी प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। वे मेरे पहुँचते ही आ गये। मुझे सुमन जी के यहाँ उनकी वे पुस्तिकायें मिल गई थीं जिनमें उनकी बीमारी से लड़ाई का वर्णन है। इसलिए मैंने इसी प्रसंग पर बात छेड़ी। वे सार्वजनिक जीवन की भाँति निजी जीवन में भी बीमारियों से लड़ते रहे हैं और विश्वास के बल पर सफलता प्राप्त की है। इसलिए इस प्रसंग पर बात छिड़ते ही बोले, "मैंने कई भयंकर बीमारियाँ देखी हैं। दो साल की उम्र से मेरी माता जी मर चुकी थीं। उसके पश्चात् मुझे निमोनिया ने धर दबाया। चार साल की आयु में डबल निमोनिया हुआ। १६ साल की आयु में प्लूरसी का आक्रमण हुआ, ३६ साल की उम्र में ब्रांको निमोनिया से पीड़ित रहा। सार्वजनिक कार्य में रत रहते हुए भी और इन बीमारियों का स्थायी इलाज न कराने से और इन सबके मेल से कोई ४६ वर्ष की उम्र में एक नई बीमारी का जन्म हुआ, वह था गोले का दर्द। ज्वर भी रहने लगा डाक्टरों ने कह दिया कि वह बायां फेफड़ा खराब है। डाक्टर अन्सारी ने मेरे स्वास्थ्य की परीक्षा करके सलाह दी कि जैसे एक हाथ के कटने पर दूसरे हाथ से काम करते रहते हैं, पर कम काम करते हैं, ऐसे ही एक फेफड़े से काम लो पर कम। लेकिन मेरे लिए व्याख्यान देना और सार्वजनिक कार्य छोड़ना सम्भव नहीं था। इसलिए काम लेता रहा। दोनों फेफड़ों का एक ही से। दो तीन-बार जेल भी गया। परिणामस्वरूप १९४२ के सत्याग्रह आन्दोलन में अधिक बीमार हो गया। १९४४ में, फिर १ साल तक बीमार रहा। प्रारंभ में ऐलोपैथिक इलाज किया। कलकत्ते से बुला कर डा. विधानचन्द राय को दिखाया। वैद्यक, एलोपैथिक, प्राकृतिक चिकित्सा आदि सब प्रकार के इलाज कराये पर व्यर्थ हुए। इतना होने पर भी मैं एक क्षण को भी निराश नहीं हुआ। सौभाग्य से मुझे डा. आर. एन. बेरी जैसा होम्योपैथिक डाक्टर मिल गया। मुझे रात को महीनों से नींद नहीं आती थी और बुखार रहता था। बेरी साहब के इलाज से ४ दिन में ही नींद आने लगी और कुछ दिन में मैं अच्छा भी हो गया।

तब से मैंने नियमित जीवन बिताना आरम्भ कर दिया है। मैं सभा, सोसाइटियों में व्याख्यान देने से बचता हूँ। बाज़ार और पार्टियों के खाने से दूर रहता हूँ और उपवास तो कभी नहीं करता। उपवास करने से अन्तड़ियाँ वैसे ही कमज़ोर हो जाती हैं जैसे तेज चलती हुई मोटर को सहसा रोकने से उसके पुर्ज़े ख़राब हो जाते हैं। पेट ख़राब हो तो कम खाना खाइये पर खाइये ज़रूर। बिल्कुल खाना न छोड़िए।

इतना कह कर वे अपनी पत्नी श्रीमती चन्द्रवती की प्रशंसा करते हुए बोले, "मेरे स्वास्थ्य का आधार मेरी पत्नी है। वे बराबर मेरे साथ रहती हैं और यात्रा तक में अंगीठी तथा थैला साथ बांधे रहती हैं ताकि मुझे

पथ्य का खाना मिलता रहे। इस कारण मुझे कभी बाहर का खाना नहीं खाना पड़ता। रेल के डिब्बे में भी वे खाना पकाने की व्यवस्था कर लेती हैं।"

जब मैंने दिनचर्या के सम्बन्ध में पूछा तो वे कहने लगे, "मैं चार बजे उठ कर टहलने लगता हूँ। ६ बजे तक नित्य कर्म से निवृत्त होकर प्रातःकाल का नाश्ता करता हूँ। पेय ही मेरा नाश्ता होता है। पतला हलुआ मेरे नाश्ते में रहता है। अकेला दूध मुझे नहीं पचता। आधा दूध और आधी चाय ठीक रहती है। दोपहर को भोजन; वह भी सादा, सायंकाल को ठण्डी चीज़ नहीं लेता। बर्फ़ या खटाई को नहीं छूता। रात को फिर दलिया या दलिये की खिचड़ी। प्रातःकाल ७ बजे निश्चित रूप से काम में लग जाता हूँ और डेढ़ दो घण्टे लिखता हूँ। प्रातः ९ के बाद संसद् या पत्र का कार्य करता हूँ। रात को दस बजे के बाद चाहे कुछ भी हो जागता नहीं। ८ बजे खाना खा लेता हूँ और आराम करता हूँ। कमरे में अंधेरा करके सो जाता हूँ। उस समय मित्र और परिवार के लोग भी मेरे स्वास्थ्य का ध्यान कर मुझे नहीं छेड़ते।

नियमित लिखने की बात चलने पर मैंने उनसे पूछा, आपने कौन कौन सी पुस्तकें लिखी हैं।

उन्होंने कहा, लिखना मेरी हाबी है। यदि मैं सार्वजनिक जीवन में आकर पत्र न निकालता तो बहुत लिखता। अब भी मैंने २४ पुस्तकें लिखी हैं। २२ साल की उम्र में नेपोलियन बोनापार्ट की जीवनी लिखी थी। उसके बाद प्रिन्स बिस्मार्क और गेरीबाल्डी के जीवन चरित्र लिखे। सन् २७ में जेल गया तो 'मुग़ल साम्राज्य का क्षय और उसके कारण' ग्रन्थ लिखा। जेल यात्रा के परिणामस्वरूप 'शाह आलम की आँखें', 'सरला की भाभीः तीन भाग' 'अपराधी कौन' और 'जमीदार' ये छः उपन्यास लिखे। पुस्तकें लिखने में मुझे बड़ा उत्साह रहता है। उस समय मुझे आर्थिक लाभ का ध्यान नहीं रहता। इसीलिए मेरी पुस्तकों में से अधिकांश को दुबारा छपाने का ध्यान ही मुझे नहीं आता। आजकल मैं 'किरातार्जुनीय' के दो चार श्लोकों का रोज़ अनुवाद करता हूँ। संस्कृत ग्रन्थों के अनुवाद मेरी दृष्टि में हिन्दी के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। छात्रावस्था में मैं संस्कृत और हिन्दी में कविता भी करता था। एक बार आचार्य पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी ने हमारी संस्कृत काव्य रचना की परीक्षा भी ली थी। मेरी हिन्दी कविताओं का संशोधन पंडित श्रीधर पाठक किया करते थे। गांधी जी की आश्रम भजनावली में 'हे मातृभूमि तेरे चरणों में सिर नवाऊँ' गाना मेरा ही लिखा हुआ है। लगभग ४० वर्ष से मैंने कविता करना छोड़ दिया है। मुझे अनुभव हुआ है कि मेरे लिए गद्य लिखना ही स्वाभाविक है।

क्या भविष्य में भी आप लिखने की सोचते हैं? मैंने पूछा।

"अवश्य" उन्होंने कहा, "लिखना, जैसा मैं कह चुका हूँ मेरी हॉबी है। गत वर्ष मैंने रघुवंश के आधार पर हिन्दी में सम्राट् रघु का जीवन चरित्र प्रकाशित किया था। अब मैं 'किरातार्जुनीय' के आधार पर "अर्जुन की घोर तपस्या" लिख रहा हूँ। साथ ही मैं भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के उदय और अस्त पर एक बड़ी पुस्तक भी लिख रहा हूँ जो मेरी मुग़ल साम्राज्य सम्बन्धी पुस्तक के ढंग की होगी। ज्योतिषियों का कहना है कि मेरी आयु लगभग ९० वर्ष की होगी। इस हिसाब से अभी मैं ३० वर्ष तक लिखने का कार्य कर सकूँगा।"

समय पर्याप्त हो चुका था और मुझे यह विचार तंगसा करने लगा था कि दो दिन से मैं एक वयोवृद्ध पत्रकार को कष्ट दे रहा हूँ पर मन यह चाहता था कि अभी और बातें करूँ। इसलिए मैंने उनसे सफल पत्रकार बनने के विषय में एक प्रश्न किया, "आपकी दृष्टि में सफल पत्रकार कैसे बना जा सकता है?"

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए उन्होंने बताया "पत्रकार दो प्रकार के होते हैं, एक तो सर्व श्री गणेश शंकर विद्यार्थी, महात्मा गान्धी और लोकमान्य जैसे मिशनरी पत्रकार, दूसरे आर्थिक दृष्टि से सफल पत्रकार। मेरी सम्मति में पत्रकार किसी भी प्रकार के हों, सफलता उन्हीं को मिलेगी जो स्पष्ट और डाइरेक्ट लिखेंगे। अग्रलेख भी छोटा हो, एक या सवा कालम का। दो ढाई कालम का अग्रलेख व्यर्थ है। लिखते समय पत्रकार को ग्राहक का हृदय पकड़ने की कोशिश करनी चाहिए। दूसरी बात यह है कि पत्रकार के लिए अपनी सम्मति की स्वतन्त्रता को बचाना भी आवश्यक है क्योंकि ग्राहक ऐसे प्रभावशाली पत्रकार का आदर करते हैं जो निर्भीकता से सत्य का समर्थन करे। तीसरी बात यह है कि वह जो सम्मति बनाए, खूब सोच समझ कर बनाए और अन्त तक उस पर दृढ़ रहे। कारण, वह जनता का सच्चा पथ

प्रदर्शक है और चंचल बुद्धि होने से वह जनता का विश्वास खो बैठेगा । चौथी बात है, उसका निष्पक्ष होना । उसे किसी पार्टी का वकील नहीं बनना चाहिए। ऐसा करने से वह सन्तुलन खो देगा । और सन्तुलन खो देना मानों पत्रकार की सफलता में सबसे बड़ी बाधा है । विदेशों में पत्रकार का स्थान मिनिस्टरों के बराबर माना जाता है । मैं तो उसे मिनिस्टर से भी ऊँचा मानता हूँ क्योंकि मिनिस्टर सरकार की नीति से बँधा हुआ है और सम्पादक सर्वथा स्वतन्त्र रहता है । जो पत्रकार वकील की तरह चाहे जिस पार्टी का प्रचार करने लग जाता है वह पत्रकारिता के स्तर को नीचा करता है । यदि यही होता रहा और मत्रकार की स्वतन्त्रता लुप्त हो गई तो पत्रकारिता की अन्त्येष्टि समझनी चाहिए । मेरी सम्मति में सफल पत्रकार वही हो सकता है जो निर्लोभ और तपस्वी हो । इसलिए तपस्या सफलता का मूल आधार है ।'

अचानक मेरी दृष्टि घड़ी की ओर चली गई । नौ बज रहे थे। मुझे उनकी दिनचर्या का ध्यान आगया । मैंने अपनी बातचीत बन्द कर दी । दो दिन की बातचीत में इन्द्र जी ने राजनैतिक और पत्रकार जीवन की अनेक ऐसी घटनाएँ बताईं जो उनके चरित्र की महत्ता पर प्रकाश डालती ही हैं और तत्कालीन भारतीय जीवन से भी उनका गहरा सम्बन्ध है । उसमें से दो घटनाएँ ऐसी हैं जिनको मैं कभी नहीं भूल सकता । एक तो इन्द्र जी की एक डिप्टी कमिश्नर से मुठभेड़ से सम्बन्धित है जिसमें अनेक मित्रों के समझाने पर भी वे उसकी कोठी पर मिलने नहीं गए और अपना सिर ऊँचा रखा क्योंकि उन्होंने अंग्रेजों के पास न जाने की प्रतिज्ञा कर रखी थी । दूसरी घटना का सम्बन्ध कांग्रेस से मतभेद होजाने से है । इन्द्र जी निरपेक्ष अहिंसा में विश्वास नहीं रखते और अत्याचारी और आक्रमणकारी का सशस्त्र प्रतिकार करना अपना धर्म समझते हैं । लेकिन कांग्रेस की सदस्यता में पूरी अहिंसा की शर्त थी । एक बार कांग्रेस के फ़ार्म पर हस्ताक्षर करते हुये इन्द्र जी ने फ़ार्म पर यह टिप्पणी दे दी कि अपराधी को दंड देने या आततायी के सशस्त्र प्रतिरोध करने को मैं हिंसा या पाप नहीं मानता । यह मामला गान्धी जी तक पहुँचा । गान्धी जी ने दिल्ली कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष को लिखा कि यदि इन्द्र का मत भेद केवल इतना ही है तो वह कांग्रेस का सदस्य रह सकता है क्योंकि ऐसा मतभेद तो बहुत से कांग्रेसियों का है । यह व्यवस्था आने पर इन्द्र जी ने फ़ार्म पर हस्ताक्षर कर दिये और अपना मतभेद लिखित रूप से प्रकट कर दिया । मैंने ऐसा अनुभव किया कि इन्द्र जी यदि अपने जीवन के अनुभवों को लिखें तो राजनीतिक तथा पत्रकार जीवन के विषय में अनेक उपयोगी बातें प्रकाश में आ सकती हैं । उनके संस्मरण बड़े काम के होंगे । मैंने तो उनसे चलती बार ऐसी प्रार्थना की और उन्होंने विश्वास भी दिलाया है । हम उस दिन की प्रतीक्षा में हैं जब इन्द्र जी के संस्मरण हिन्दी जगत् को पढ़ने को मिलेंगे ।

आगरा

—पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'
एम॰ ए.

••••

कोयले की खान के काले अन्धेरे से अधिक
अन्धेरा कौन सा होता है ?
निराशा का अन्धकार कोयले की खान से भी अधिक काला
होता है ।
सुवर्ण से अधिक सुवर्णमय क्या है ?
सत्य अधिक सुवर्णमय है ।

—महादेवभाई की डायरी से

महाकवि भारती

राजाजी ने एक समय कहा था कि लोकमान्य ने जो बीज बोया, उससे महाकवि भारती की उत्पत्ति हुई। कविवर भारती तमिल के राष्ट्रीय कवि हैं। वे दलितों के साथी हैं। भारती उदीयमान जनता के प्रेरक, युग युग की प्रताडित नारी जाति के सहृदय सहायक, समाज-सेवकों के सहयोगी, प्रगति-पथ के पथिक हैं और वे भारत के परतन्त्रता के युग की अपूर्व देन हैं।

जनता के हृदय में उनका उच्च स्थान है। उनके नाम को सुनते ही जनता में उत्साह और उमंग की लहरें उठने लग जाती हैं। वे राष्ट्रीय भावना के स्रोत हैं। अग्रगामी विचारकों में वे अग्रगण्य हैं। वे इटली देश के राष्ट्रभक्त मेज़िनी की प्रशंसा गाते हैं, नव रूस में ज़ार परम्परा के पतन पर प्रसन्न होते हैं। बेल्जियम देश को अपनी बधाइयाँ पेश करते हुए पद्य रचते हैं, फ़िजी द्वीप में ईख के खेतों में दलित नारी जाति को सान्त्वना देते हैं। अपने ही यहाँ रसोई में बन्दी बन कर रहने वाली बहनों के भी वे सहायक हैं। सामाजिक, राष्ट्रीय और राजनैतिक इन तीनों क्षेत्रों में उनका मन्त्र वाक्य है–"उत्तिष्ठत, जाग्रत, प्राप्य वरान्निबोधत।"

सुब्रह्मण्य भारती ने अपने मोहक पद्यों से द्रविड देश में एक नवजागृति पैदा की, स्वतन्त्रता की नींव डाली, जो उनके जीवनकाल के बाद सफल हुई। उनके शब्द आज तीस-पैंतीस साल पश्चात् भी उतने ही ताज़े और नवीन हैं, जितने कि लिखने के समय थे। उनके विचार बासी नहीं; उनकी कविता दिल और दिमाग़ को ताज़ा कर देती है। उनकी स्मृति परतन्त्रता के दिनों की है फिर भी वह स्फूर्ति और प्रेरणा देनेवाली है।

दक्षिण के तिरुनेलवेली जिले के अन्तर्गत 'एट्टैयपुरम्' नामक स्थान में भारती का जन्म सन् १८८२ ई० कार्तिक मास, मूल नक्षत्र में हुआ। उनके पिता का नाम चिन्नस्वामी एय्यर और माता का लक्ष्मी था। जब भारती पाँच वर्ष के थे, उनकी माता ने अपनी आँखें मूँद लीं। बचपन में ही मातृभाषा तमिल से भारती को अत्यधिक प्रेम था। साथ ही उनमें काव्य सृष्टि की भी स्वाभाविक प्रतिभा थी। इसी कारण वे 'भारती' कहलाने लगे।

चौदह वर्ष की अवस्था में कुमारी चेल्लम्माल से उनकी शादी हुई। भारती तिरुनेलवली हिन्दु-कालेज के तीन वर्ष तक विद्यार्थी रहे। उनका ध्यान सदैव अपनी मातृभाषा की ओर रहता था। कालेज का वातावरण उनकी स्वतन्त्र चिन्तनशील प्रकृति के अनुकूल नहीं था अतः बीच में ही उन्हें कालेज छोड़ना पड़ा। उनकी बुआ उन्हें अपने साथ काशी ले गईं और वहाँ भारती ने अपनी विद्या जारी रक्खी। तमिल भाषाध्ययन की यद्यपि वहाँ सुविधा नहीं थी, परन्तु वहाँ संस्कृत और हिन्दी का उन्होंने अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया।

१९०२ में भारती काशी से लौट आए। वे कुछ समय तक एट्टैयपुरम् के ज़मींदार के आश्रय में रहे। फिर कुछ दिन तमिल पंडित का काम भी किया। अध्यापन छोड़ कर वे 'स्वदेशमित्रन्' पत्रिका के सम्पादकमण्डल में काम करने लगे। उन्होंने 'इण्डिया' नाम का एक राष्ट्रीय पत्र भी निकाला परन्तु सरकार की दमन-नीति के कारण 'इण्डिया' पत्रिका नहीं चल सकी। भारती 'धर्मम्', 'कर्मयोगी', 'बालभारत' आदि पत्रों से भी सम्बन्धित थे।

मद्रास की अपेक्षा पुदुच्चेरी को अधिक अनुकूल समझ कर उन्होंने पुदुच्चेरी को अपना कार्यक्षेत्र चुना। वहाँ आपका महर्षि अरविन्द और महर्षि व. वे. सु. एय्यर से परिचय हुआ। 'शक्ति', 'ज्ञानरथ,' 'कोयल-गीत,' 'पांचाली की शपथ'–आदि दार्शनिक और साहित्यिक रचनाएँ इसी काल में रची गईं।

पुदुच्चेरी में दस वर्ष के प्रवास के बाद कुछ दिन कडैयनल्लूर ग्राम में रह कर वे मद्रास गए और पुनः 'स्वदेशमित्रन्' के सम्पादन कार्य को अपनाया। अन्तिम दिनों में उन्होंने कई क्रान्तिकारी लेख लिखे और ओजस्वी भाषण दिए। १९२० में उनकी गान्धी जी से भेंट हुई। उन दिनों में उन्होंने 'गान्धी पंचकम्' की रचना की।

अगले वर्ष सन् १९२१ में सितम्बर ११ ता. को कवि भारती की आत्मा दिवंगत हो गई। मृत्यु के दस पन्द्रह दिन पहले वे पार्थसारथी मन्दिर गए थे और

वहाँ हाथी ने उन पर हमला किया फलतः उन्हें मर्मान्तक चोट पहुँची और उनकी मृत्यु हो गई ।

भारती तमिल और अंग्रेज़ी के अतिरिक्त फ्रेंच, हिन्दी, संस्कृत, और बंगाली जानते थे । उन्होंने रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कुछ कहानियों का तमिल में अनुवाद किया है । श्री जगदीश चन्द्र वसु की एक वनस्पति-शास्त्र सम्बन्धी पुस्तक का अनुवाद भी उन्होंने किया है तथा उन्होंने श्री बंकिमचन्द्र के सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय गीत 'वन्देमातरम्' के दो अनुवाद किए ।

राजनीतिक क्षेत्र में भी भारती का अपना व्यक्तित्व था । उन्होंने बनारस कांग्रेस अधिवेशन में भाग लिया । उनका लोकमान्य तिलक, निवेदिता बहन, अली भाई, विपिन चन्द्र पाल और नौरोजी से परिचय था । लोकमान्य तिलक जी के प्रति उनके हृदय में अगाध भक्ति थी । वे उन दिनों की दक्षिण की क्रान्तिकारी राष्ट्रीय मण्डली के नेता थे । स्वदेशी जहाज़ कम्पनी के जन्मदाता व. उ. चिदम्बरम् पिल्ले भारती के साथी थे ।

भारती राष्ट्रीय आन्दोलनों में उग्र दल के पक्ष में थे । उन्होंने गोखले, मेहता आदि नरम दल नेताओं के विरुद्ध कुछ पद्य भी रचे । यद्यपि उन्होंने राष्ट्रीय गीतों के अतिरिक्त मानवीय भावनाओं को व्यक्त करनेवाली अन्य कविताएँ भी लिखी हैं, परन्तु जनता के बीच उनका स्थान एक राष्ट्रीय कवि का ही है । उनका नाम लेते ही भावनापूर्ण राष्ट्रीय गीत हमारे सामने आते हैं । आज मद्रास सरकार द्वारा मान्य तमिल में उनका 'नववर्ष' शीर्षक कामना-गीत ही राष्ट्र गीत है । भारती-साहित्य के सर्वाधिकार सरकार के हाथों में हैं ।

भारती का जीवन ग़रीबी में बीता । उनके व्यक्तिगत जीवन में ऐसी अनेक घटनाएँ हुईं जिनसे उनकी सहिष्णुता और दानशील स्वभाव का पता चलता है । आर्थिक कठिनाइयों में जीवन व्यतीत करते हुए भी वे बड़े दानी थे । वे कठिन से कठिन क्षणों में भी कभी निराश नहीं हुए वरन् इनके ओठों पर सदैव मुस्कान खेलती रही । वे समाज के भक्त और जनता के पुजारी थे । मातृभाषा के अनन्य सेवक, राष्ट्रीय संग्राम के वीर योद्धा और दीन-दलित वर्ग के शुभाकांक्षी थे ।

वे केवल महाकवि ही नहीं थे अपि तु लब्धप्रतिष्ठित गद्य-लेखक भी थे । उनका असमाप्त उपन्यास 'चन्द्रिका' जीवन की एक करुण कहानी है । परन्तु दुःख है कि वह उपन्यास पूरा नहीं हो सका । उसके केवल आठ परिच्छेद लिखे गए परन्तु इतने से भी भारती की शैली और प्रतिभा का पूर्ण परिचय मिल जाता है ।

उन्होंने पतंजलि योग सूत्रों को भाष्य सहित तमिल में लिखा । भगवद्गीता का तमिल अनुवाद किया और उसके साथ अपनी भूमिका भी लिखी; 'ज्ञानरथ' में चढ़ कर उपशान्ति लोक, गन्धर्व लोक, सत्य लोक, पृथ्वी लोक, और धर्म लोक का उन्होंने विचरण किया है । समाज, नारी, कला इन शीर्षकों में उन्होंने अपने कई विचार और सुझाव निबन्धों के रूप में दिए हैं ।

उनके काव्य-ग्रन्थों में राष्ट्रीय गान, प्रार्थना गीत और दार्शनिक पद्य प्रमुख हैं । 'पांचाली की शपथ' ऐतिहासिक आधार को लिए हुए है । उन्होंने 'कण्णन् गीतों' में 'कण्णन्' या कृष्ण का भिन्न भिन्न काल्पनिक रूपों में वर्णन किया है । इन गीतों में नव रसों का परिपाक हुआ है । इसमें 'कण्णन्-मेरा साथी', 'मेरा शिष्य', 'मेरे गुरु', 'मेरा नौकर', 'मेरा बच्चा', 'मेरा प्रेमी', 'मेरे कुलदेव'— ऐसे २३ गीत संग्रहीत हैं ।

भारती के साहित्य का महत्व केवल सामयिक ही नहीं है वरन् उनकी बहुत-सी रचनाएँ स्थायी साहित्य की निधि हैं ।

भारती के वाक्य छोटे और प्रत्युत्पन्नमति से पूर्ण होते हैं । भले ही हम में स्वराज्य पाने की योग्यता न हो, भले ही हम में एकता न हो, फिर भी हम पर हुकूमत करनेवाले गोरे कौन होते हैं ? ब्रिटिश सरकार की विभाजन-नीति के लिए भारती का सवाल है:—

"यद्यपि हम हज़ारों जाति और धर्मों में बँटे हुए हैं, परन्तु क्या इसका यह अर्थ है कि विदेशी हम पर राज्य करें ? भाई भाई आपस में लड़ते हैं, यह सत्य है, परन्तु क्या वे इससे भाई भाई नहीं रहते ?"

भारती के कल्पित समाज में

"ग़रीब नहीं, ग़ुलाम नहीं,
दरिद्र नहीं, दलित नहीं,
नीच नहीं, नवभारत में,
शिक्षित होकर, सुख शान्ति से,
सब मिल जुल कर, सभी बराबर,
समानता से रहते हैं एक साथ ।"

इतना ही नहीं पर वे

> "एक भी व्यक्ति यदि होगा भूखा,
> तो सबको खाना होगा रूखा सूखा"

कहते हैं।

सस्ती लोकप्रियता के लिए भारती सत्य को कहने से कभी पीछे नहीं हटते। वे मजदूरों से मेहनत करने की प्रार्थना करते हैं। परिश्रम से जी चुराकर जियें कैसे?

> "हजारों धन्धे हाथों से करना
> होगा, बहा कर पसीना झरना।
> गाऊँगा मैं तुम्हारी महिमा,
> धरती पर हो, तुम ही ब्रह्मा!"

भारती ऐसे कटु उपदेश देने से भी हिचकते नहीं। वे मजदूरों को अपनी कविताओं से प्रोत्साहन दे कर उनसे राष्ट्र के लिए सेवा-कार्य कराना चाहते हैं।

'महात्मा गांधी पंचकम्' में भारती गांधी जी को पुष्पाञ्जलि चढ़ाते हैं:—

> "जय हो गांधी, जय हो तुम्हारी!
> जब इस सारी
> दुनिया में गिर कर हमारा भारत
> बन्दी बन कर, गुलाम और दलित
> कैदी रूप में, स्वतन्त्रता खो कर
> पड़ा था नीचे, ग़रीब होकर,
> आए समय पर, राष्ट्र को रास्ते
> पर तुम चलाने और रक्षा करने
> जय हो महात्मन, जय हो तुम्हारी!"

यह है उस 'पंचकम्' का पहला पद्य।

भारती के वर्णन में एक नवीनता है। पुराने विषयों पर भी वे नई शैली से लिखते हैं। सरस्वती देवी के सम्बन्ध में हमने कई श्लोक पढ़े हैं। उनकी वेषभूषा आदि का वर्णन भी हम जानते हैं; वे शुभ्र वस्त्र पहन कर, सफ़ेद कमल पर आसीन हैं। हाथ में वीणा और पुस्तक दिखाई देती है...इत्यादि। पर इन्हीं सरस्वती देवी का वर्णन जब भारती की कलम से होता है, तब उसमें नूतनता अनुभव होती है।

> "श्वेत कमल में
> वीणा की गूँज में
> कवियों के हृदय में
> ऋषियों के वचनों में
> वेद के ज्ञान में
> नारी के मधुर कंठ में
> तुम हो विराजमान"

इस वर्णन में पहली पंक्ति के सिवाय शेष सब अंश सरस्वती देवी का बाह्य-वर्णन न कर आन्तरिक वर्णन किया गया है। देवी के इन गुणों को हम किसी चित्र में देख नहीं सकते। कवि के सहारे, मन के पट पर कल्पना की आँखों से ही देख पाते हैं। भारती देवी के बाह्य रूप को प्रधानता नहीं देते।

उनके 'चन्द्रिका' उपन्यास में वेलाणगुडी नाम का एक गाँव है। उसकी ब्राह्मण-वीथी के समूह का वर्णन इस प्रकार है:—

"वहाँ की सभी स्त्रियाँ बहुत सुन्दर थीं। पुरुष बड़े गुणशील थे पर प्रायः वे बहुत ग़रीब थे। पूर्वजों की थोड़ी-सी भू सम्पत्ति सब के पास थी। पर उसकी आय भोजन के लिए भी काफ़ी नहीं थी। इस पर...उपनयन, विवाह, ऋतु स्नान, ऋतु शान्ति, सीमान्त आदि त्योहारों के निरन्तर आने के कारण भूमि आदि घटने लगी और वृद्ध लोग ग़रीब से ग़रीब होते गए और क्लेश और दुःख उनके मन पर सदा मँडराने लगे। उस गाँव के बच्चे तो नहीं जानते थे कि उनके बाप दादाओं के मन में कैसा दुःख है। चिड़ियाँ भी नहीं जानती थीं, मंदिर के सामने हरे मैदानों में चरने वाली गाय और गधे भी नहीं जानते थे। वे तो सदैव खुशी में मस्त रहते थे।"

इस चित्रण में भारती प्रकृति का एक करुण चित्र प्रस्तुत करते हैं। इस गाँव में दो वर्ग हैं। दुःखी विचारवान् पुरुष और निश्चिन्त पशु-पक्षी। छोटे बच्चे भी तो प्रारंभ में गाय गधों के जैसे खुश रहते हैं पर वे भी किसी न किसी दिन वयस्क हो जाते हैं और उन्हें भी चारों ओर से जगत् के दुःख घेर लेते हैं। अतः इस गाँव में आरम्भ से अन्त तक खुश और शान्त रहने वाले केवल जानवर ही हैं। शायद वे बिचारे दीन मनुष्यों को देख कर व्यंग्य के तौर पर पूछते हों—"मनुष्यो, तुम्हारे शैशव के आमोद-प्रमोद सब कुछ अब कहाँ चले गए? बचपन के खेल-कूद

किधर भाग गए ? हाँ, मनुष्य सचमुच ही बिचारा है !"

पर, इसके लिए भारती निराशावादी नहीं है ।

'कण्णन्-मेरा खिलाड़ी छोकरा' शीर्षक में सुब्रह्मण्य भारती एक पक्के नटखट बालक का परिचय कराते हैं :

"सुन्दर सुन्दर फूल वग़ैरह
संग्रह करके लाएगा वह ।
'कृपया मूँदों आँखें अपनी,
तुम्हें चढ़ाऊँ माल सुमन की
मुझ को अंधा मूर्ख बना कर
फूल रखे औरों के सिर पर ।"

यही नहीं, पर वह

"मुरली बजा कर, मुग्ध करेगा
अमृत नाद वर्षाएगा
सुध बुध खो कर सुननेवालीं—
खोले मुँह यों सुनती पगलीं—
छः सात चींटे हाथ में लेकर
उनके मुँह में, भर जाएगा ।"

भारती 'स्त्रीत्व' की जय समाज की जय मानते हैं । वे नारी धर्म को परम धर्म समझनेवाले हैं ।

जिन करकमलों ने प्रेम के साथ
अन्न खिलाया, उस माँ के हाथ
के इशारे पर, आग भी खाएँ !
गाल में चुम्बित, खुश भी होकर
हमें हटाते, पत्नी के कर—
स्वस्ति उन करों की हम गाएँ !"

यहाँ, महाकवि भारती अपनी माता के कर कमलों के इशारे पर आग निगलने को भी तैयार हैं। प्रिय कान्ता के विनोद-व्यवहार का भी चित्रण है । वह गाल पर अपने पति का चुम्बन पाकर, बहुत खुश अवश्य है; फिर भी जब पति उसके निकट चुम्बन लेने आता है, तब वह, मानो चाहती नहीं हो, अपने हाथों से उसे हटा देती है ।

'हमारा देश' एक राष्ट्रीय गीत है । उसमें देशभक्त कवि देश की महानता का वर्णन करता है और अन्त में हमें सेवा के लिए कटिबद्ध होने के लिए कहता है—

"हम पाएँगे कष्ट परन्तु अधीर न होंगे;
ग़रीब होकर हाथों पर हाथ रक्खे नहीं बैठेंगे
स्वार्थ में रत होकर नीच कार्य कभी नहीं करेंगे;
जन्मभूमि के लिए हम सब कुछ कर गुज़रेंगे।"

उक्त चार पंक्तियों में आज के समाज के लिए चार उपदेश हैं—मुसीबतों के आगे हमें वीर बनना ग़रीबी को अपनी किस्मत न मान कर मेहनत के द्वारा आगे बढ़ना; स्वार्थ को छोड़ना; देशभक्ति के साथ सब कुछ करना ।

भारती के दिखाए रास्ते पर हम चलेंगे, तो अवश्य उनका बताया लक्ष्य भी हमें प्राप्त होगा ।

तिरुचिरापल्ली

—र. वेंकटरत्नम् 'उदयसूर्य'
बी. एस सी.

जिसने तमिल भाषा की
मधुरिमा का रसास्वादन किया है
उसने इस धरातल पर ही स्वर्ग
को प्राप्त कर लिया है ।

—भारती

अंधेरी गली में

[स्टीफ़न ज्विग को अपनी मनोवैज्ञानिक कहानियों, उपन्यासों और जीवन चरितों के लिए विश्व-व्यापी कीर्ति मिल चुकी थी और रोमाँ रोलां जैसे महान् कलाकार भी उनकी कलम के जादू के कायल हो चुके थे। रोमाँ रोलां ने उनको 'आत्मा को जकड़नेवाले' की उपाधि दी थी। उनकी जिज्ञासा सदा अतृप्त रहती थी और विचित्र विचित्र स्थलों के अनुभव प्राप्त करने के लिए उनके मन में अदम्य उत्साह था। सस्ते अनाचारों द्वारा अपनी काम पिपासा तृप्त कर जनता के मस्तिष्क और हृदय को घासलेटी साहित्य द्वारा विकृत कर देने वाले लेखक देखें कि एक सच्चा कलाकार किस तटस्थ वृत्ति से एक 'अन्धेरी गली' में जाकर उस 'अपावन ठौर' से अनुभूति रूपी 'कंचन' को उठा लाता है। अपनी इस निपुणता के कारण ही ज्विग संसार में प्रसिद्ध हो गए। अब तक ३३ भाषाओं में उनके ग्रन्थों का अनुवाद हो चुका है। हिन्दी में भी उनके कई ग्रन्थ आ चुके हैं।]

तूफ़ानी मौसम होने के कारण जहाज़ देर से पहुँचा था; जब वह फ्रांस के बन्दरगाह पर लगा तो शाम हो चुकी थी। मुझे जिस गाड़ी से आगे जाना था वह छूट चुकी थी। अब मेरे पास पूरे-चौबीस घण्टे का वक्त था। सागर तट के इस अपरिचित नगर में समय बिताने का सबसे अच्छा तरीक़ा क्या हो सकता था? काम कुछ था नहीं। कहीं से नृत्य-संगीत के मन्द स्वर आ रहे थे। मेरा ख़याल था कि जगह अधिक आकर्षक न होगी। इस खाली समय को बिताने का केवल एक ही तरीक़ा और था—अपने साथ के मुसाफ़िरों से गप लड़ाई जाय। लेकिन जिस थर्ड क्लास होटल में हम लोग ठहरे हुए थे उसके भोजनालय की हवा जली चर्बी की बदबू और तम्बाकू के धुँए से भारी हो रही थी। इसके सिवाय वह जगह निहायत गन्दी और अव्यवस्थित थी। कई दिनों तक समुद्र की विशुद्ध हवा का आनन्द उठा चुकने के बाद (ख़ास तौर पर जब कि समुद्र के फेन का मधुर स्वाद मेरे होठों से लग चुका था) यह गन्दगी और भी असह्य हो गई थी। मैंने घूमते हुए चौड़ी सड़क पर जाने का निश्चय किया जो एक चौकोर मैदान में होकर निकलती थी। वहाँ बैण्ड बज रहा था। दिन भर के श्रम के बाद नहा धोकर भोजन करके घूमने निकले हुए लोगों के साथ जाने में अच्छा लग रहा था। लेकिन थोड़ी देर के बाद ही मैंने अपने को एकदम अकेला पाया। मुझे लोगों की हँसी खलने लगी। अपरिचित होने के कारण वे लोग मुझे मुँह बाँए देखते थे। यह मुझे बड़ा नागवार लग रहा था। इतने अपरिचित आदमियों के बीच ठहरने में मेरा दम घुट-सा रहा था।

जल-यात्रा भी कष्टदायक रही थी; जल की उथल-पुथल अब तक मेरी नसों को चकरा रही थी। पैरों तले जमीन चक्कर काटती सी लग रही थी; पूरी सड़क और आकाश मानों घूम रहे हों। मुझे चक्कर आ रहे थे। इस तक़लीफ़ से बचने के लिए मैं एक गली में, उसका नाम देखने का कष्ट उठाए बिना ही, घुस पड़ा। थोड़ी दूर चल कर मुझे एक और पतली गली मिली। यहाँ आकर बैण्ड का संगीत और जन-कोलाहल एकदम धीमे सुनाई देते थे। एक के बाद एक गली मिलती चली जा रही थी जैसे रक्त-वाहिनी धमनियाँ एक दूसरी से मिलती हैं। ज्यों ज्यों मैं उस चौकोर मैदान से दूर होता जाता था त्यों त्यों रोशनी कम होती जाती थी। बिजली की रोशनी अब आँखों को चौंधिया नहीं रही थी। इसलिए अब आकाश के तारे भली भाँति दिखाई देने लगे। मेरे और तारों भरे आकाश के बीच का शून्य कितना अन्धकारपूर्ण था! यह समुद्र तट का कोई "मल्लाहों का नगर" होगा। सड़ी मछलियों की, नरकुल की और तारकोल की बदबू से मेरी नाक में सुरसुरी मचने लगी। घिरे हुए मकानों में से एक अवर्णनीय उमस आ रही थी। लेकिन इन गलियों में छाए हुए धुँधलेपन से मेरे दिमाग़ को आराम मिला। ऐसे में अकेलेपन में ही मजा था। मैंने अपनी चाल धीमी कर दी और इन गलियों का अध्ययन करने लगा। वे एक दूसरे से सर्वथा भिन्न थीं—कहीं

चंचलता थी तो कहीं पूर्ण शान्ति बरस रही थी। लेकिन सब में अंधेरा था—सब में धीमी आवाज़ और संगीत सुनाई पड़ता था जो इन घरों के अन्दर से प्रवाहित हो रहा था। सब खिड़कियाँ और दरवाज़े बन्द थे; कहीं कहीं डयोढ़ियों में लाल पीली लालटनें लटक रही थीं।

अपरिचित नगरों के इस प्रकार के स्थान, काम-तृप्ति के ये स्थल, मुझे खास तौर पर अपनी ओर खींचते हैं और समुद्र में विचरण करनेवाले मल्लाहों के लिए तो ये और भी आकर्षक हैं। यहाँ वे अवकाश के समय रात्रि की कुछ घड़ियों का आनन्द उठाने के लिए हृदय में अपने स्वप्नों को पूरा करने की आशा लेकर आते हैं। इन घरों को छिपना पड़ता है नगर के अभद्र असम्मानित भागों में, क्योंकि वे एक कहानी कहते हैं जो भले आदमियों की कोठियों में सैकड़ों पर्दों के पीछे छिपी रहती हैं। छोटे छोटे कमरे नाचने वालों की जोड़ियों से भरे रहते हैं। दरवाज़ों पर टंगी हुई चौखूंटी लालटेनें निकलने वालों को टिमटिमा कर इशारा करती हैं। खिड़कियों के दो लाल पर्दों के पीछे से शराबियों का शोर आता है। यहाँ जब नाविक एक दूसरे से मिलते हैं तो उन्मुक्त अभिवादन करते हैं। उनकी आँखों में आशापूर्ण लोलुपता होती है। इन स्थानों पर उन्हें औरत, जुआ, शराब तथा मनोरंजन का और भी सामान मिल जाता है। लेकिन यह सब क्रीड़ाएँ बन्द कमरों में ही होती हैं। अन्दर जाकर उन्हें तलाश करना पड़ता है। इस रहस्य से आनन्द और भी बढ़ जाता है। इस तरह की गलियाँ अब भी हैम्बर्ग, कोलम्बो, हैवाना आदि नगरों में मिल जाएँगी और साथ ही इन नगरों में बड़े आदमियों के टहलने के लिए दोनों ओर वृक्षों की कतार वाली खुली चौड़ी सड़कें भी मिलेंगी। सभी नगरों के निम्न वर्ग और उस वर्ग के स्थानों में एकरूपता होती है। इन अव्यवस्थित गलियों में वासना का अनियन्त्रित प्रवाह निर्विरोध चालू रहता है। वे वासनाओं के जंगल हैं, हमारी पाशविक मूल-प्रवृत्तियों के द्योतक हैं। जो कुछ उनके भीतर छिपा पड़ा है उसी की ओर इशारा करके वे लुभाते हैं, बुलाते हैं। वे हमारे स्वप्नों में भी नज़र आते हैं।

इन भूलभुलैयों में घुस पड़ने की मेरी इच्छा मेरे ऊपर सवार हो गई। संयोगवश मुझे वहाँ दो घुड़सवार दिखाई दिए। वे कमर में तलवार लटकाए इधर उधर घूम रहे थे। मैंने उनका पीछा किया। एक जगह शराब घर में कुछ औरतें खूब मतवाली होकर उनसे गन्दे गन्दे मज़ाक करने लगीं। उन लोगों ने दरवाज़ा खटखटाया तो अन्दर से गालियों की बौछार और खिलखिलाहट से जवाब मिला। फिर वे अन्दर घुस पड़े। धीरे धीरे गंदे मज़ाक की आवाज़ कम हो गई। मैं साफ़ साफ़ सुन न सका। मेरे चारों ओर शांति छा गई। कुछ खिड़कियों से धुँधली रोशनी आ रही थी; अँधेरे में से तरल चन्द्रमा दिखाई दे रहा था। मैंने इस शांति में आराम की सांस ली, यद्यपि यह शांति इस स्थान और वातावरण के लिए सर्वथा असंगत थी। शांति के इस छद्म आवरण के नीचे सारे संसार की गंदगी भरी हुई थी। मैं खड़ा सुन रहा था, देख रहा था। इस नगर का, इस गली का, यहाँ तक कि अपने नाम का भी ज्ञान लुप्त हो गया था। मैं जाने किधर जा रहा था। मानो किसी ने जैसे मुझ पर जादू फेर दिया हो! मुझे इस स्थान पर अपनी उपस्थिति का कोई कारण न दीख पड़ता था। कोई काम नज़र न आता था; इस वातावरण से मेरा कोई सम्बन्ध न था। फिर भी इस बात का मुझे ज्ञान था कि मेरे चारों ओर एक उबलती हुई जिन्दगी है। ऐसा मालूम होता था जैसे वही खून मेरी रगों में भी दौड़ रहा हो, जैसे वह मेरा अपना ही खून हो। लेकिन इसमें अपना मेरा स्थान क्या था? यह सब-कुछ मेरा अपना ही था, तो इसका हेतु क्या था? कुछ भी हो मुझे एक अकथनीय आनन्द मिल रहा था। साथ ही मेरा यह भी विश्वास था कि मैं यहाँ किसी अनुभव की प्रतीक्षा में आया था। ऐसा तजुर्बा जो मेरा दिल हिला दे। जब कभी इस प्रकार की भावना मेरे अन्दर जागृत होती है तो मेरा मन प्रसन्नता से खिल उठता है। उस प्रसन्नता से जो 'अचेतन' के गर्भ से उदित होती है।

इस प्रकार जब मैं आशान्वित होकर शून्य में कुछ सुन रहा था, तो दीवारों से टकराता हुआ दूर से आने वाला एक स्वर सुनाई पड़ा। यह स्वर निश्चय ही किसी जर्मन गीत का था। 'वेबर' के फ्रीशुज़ में से ली गई एक अत्यन्त साधारण सी तान थी। ऐसे एक कोने में अपने देश की भाषा सुनने में बड़ा अच्छा लगता है; मित्रतापूर्ण! मधुर! बहुत ही मामूली तरीके पर तान गाई गई थी। इसमें मेरे देश का सन्देश था! इस स्थान पर जर्मन भाषा कौन बोलता होगा? इस मधुर गीत को कौन गुनगुनाता

होगा ? मैं अपना कान लगाए एक के बाद एक घर पार करने लगा। अंत में मैं एक घर पर पहुँचा जहाँ केवल एक खिड़की में से रोशनी आ रही थी। सब दरवाज़े बन्द थे; फिर भी प्रत्येक ईंट अन्दर प्रवेश करने को आमंत्रित कर रही थी। मैं उस आवाज़ के नज़दीक पहुँचता गया। यही घर था! एक क्षण को मैं ठिठका फिर पर्दा हटा कर अन्दर घुसने लगा। चबूतरे पर ही मुझे एक आदमी दिखाई दिया। उसका चेहरा लैम्प की रोशनी में लाल दिखाई देता था; क्रोध उसकी आकृति पर छाया हुआ था। मुझे देख कर उसने भौंहें सिकोड़ लीं। भुनभुना कर माफ़ी मांगी और गली में निकल गया। "अजीब आदमी है!" मैंने पीछे की ओर देख कर सोचा। संगीत के स्वर मुझे अब पहले से अधिक साफ़ सुनाई पड़ रहे थे। मैं दृढ़तापूर्वक अन्दर घुस पड़ा।

एकाएक गाना रुक गया, मेरे चारों ओर एक भयंकर सन्नाटा छा गया। मुझे ऐसा मालूम पड़ा मानो मैंने कोई चीज़ नष्ट कर दी हो। धीरे धीरे मैंने देखा कि उस कमरे में एक ओर छोटा सा शराबखाना है; एक ओर एक मेज़ और दो कुर्सियाँ पड़ी हैं। यह सिर्फ़ बैठक प्रतीत होती थी—व्यापार का असली स्थान तो अन्दर कहीं होगा। यह समझना भी बाक़ी न रह गया कि वह व्यापार क्या है। रास्ते में कई दरवाज़े पड़ते थे; उनमें से कुछ खुले हुए थे; इन दरवाज़ों के भीतर बिस्तर लगे हुए थे। मन्द रोशनी भी हो रही थी। बैठक में ही एक लड़की खूब शृंगार किए हुए बैठी थी। वह अत्यन्त थकी हुई दिखाई देती थी। शराबखाने में सीखचे के पीछे एक फूहड़ सी औरत बैठी थी; उसके पास एक और सुन्दर लड़की बैठी थी। बहुत देर तक वापस न लौटने के लिए मेरे मन में जो विचार आया था वह खत्म हो गया। इस शांत शुष्क स्थान में आना ही ग़लत था। मैं वापस लौटने की सोचने लगा। लेकिन भागने का कोई बहाना न मिल रहा था। अंत में अपने को भाग्य के भरोसे छोड़ कर उदासीन भाव से बैठ गया।

उस लड़की को अचानक अपना कर्त्तव्य याद आया। उसने उठ कर मुझ से पूछा कि मैं कौन सी शराब पीना पसंद करूँगा। उसके फ्रेंच शब्दों के गड़बड़ उच्चारण से मैं फ़ौरन समझ गया कि वह जर्मनी की रहने वाली है। मैंने बियर मांगी। वह ले आई। उसके पैर भद्दे ढंग से डगमगा रहे थे। उसकी निस्तेज आखों में उपेक्षा का भाव था लेकिन उससे भी अधिक उपेक्षा उसकी चालढ़ाल से बरस रही थी। इस प्रकार के स्थानों की रीति के अनुसार वह मेरे पास ही एक ओर गिलास रख कर बैठ गई। उसने अपना गिलास 'शुभेच्छा' के संकेत में उठाया। मैंने उसकी ओर भली भाँति देखा। उसकी भी आँखें मानो मेरे पार कुछ देख रही थीं। उसका चेहरा अब भी सुन्दर था; लेकिन उसके मन का उत्साह बुझ चुका था—वह मुरझा गई थी। उसमें रूखापन आगया था; खाल और मांस पेशियां ढीली पड़ गई थीं; पलक भारी थे; बाल बिखरे हुए थे। दोनों गालों में गड्ढे पड़ चले थे। उसके वस्त्र अस्त-व्यस्त थे। अधिक धूम्रपान और मदिरापान के कारण उसकी आवाज़ भर्रा गई थी। मेरे सामने इस समय मेरे ही समान एक मानव जीव बैठा था जो बिलकुल थका हुआ था। वह ज़िन्दा इसलिए थी कि उसे आदत पड़ गई थी। मैं चकित था, भयभीत था। मैंने उससे एक बात पूछी। उसने मेरी ओर देखे बिना ही उत्तर दे दिया। उसके होठ नाम को हिले होंगे। मैं समझ गया कि मेरा आना अवांछनीय था। शराबखाने में वह प्रौढ़ा मुँह बाए ऊँघ रही थी। युवती ने एक ओर सिर झुका लिया था मानो वह मेरे बुलाने का इन्तज़ार कर रही हो। यदि अब भी मैं उठ कर जा सकता तो अवश्य चला गया होता। लेकिन मेरे अंग तो जैसे पत्थर के हो गए हों। मैं सीधा निराशा और जिज्ञासा में बँधा बैठा था। सच बात तो यह है कि इस उपेक्षा ने मुझे व्याकुल कर दिया था।

एकाएक मेरे पास वाली तरुणी ज़ोर से खिलखिला कर हँसने लगी। उसी समय खुले दरवाज़े से आने वाली ठंडी हवा के एक झोंके से लैम्प झलक उठी। वह जर्मन भाषा में बोल उठी "तो तुम आ ही गए! तुम फिर घर घेर रहे हो...नीच... कमीने!...अच्छा अंदर आ जाओ, मैं तुम्हें हानि नहीं पहुँचाऊँगी।"

मैंने पहले बोलनेवाले की ओर देखा जिसके मुंह से मानो आग बरस रही हो, फिर सिर घुमा कर दरवाज़े की ओर देखा। वही आदमी अन्दर आ रहा था जो मुझे घुसते देख कर ठिठक गया था। वह सहमा हुआ हैट हाथ में लिए खड़ा था मानो दुत्कारा हुआ भिखारी हो। इन शब्दों की अभ्यर्थना के कारण वह काँप रहा था। वह वेदना से सिकुड़ गया था। शराबखाने से आनेवाली उस प्रौढ़ा और तरुणी की फुसफुसाहट उसे

और भी बेचैन कर रही थी।

"जाओ, फ्रैंकोई के पास बैठ जाओ", उस लड़की ने धमकाते हुए कहा, "देखते नहीं, आज एक भले आदमी मेरे मेहमान हैं ?"

वह शुद्ध जर्मन भाषा बोल रही थी। प्रौढ़ा और वह लड़की दोनों अपना पेट पकड़ पकड़ कर हँस रही थीं, यद्यपि वे उसका एक भी शब्द न समझती थीं। जाहिर था कि वह आदमी रोज़ का गाहक होगा।

मेरे पासवाली तरुणी ने व्यंगपूर्वक कहा, "फ्रैंकोई, उसे एक बोतल शैम्पेन दे दो। सबसे क़ीमती देना", और फिर उस आदमी से कहा, "यदि तुम्हें बहुत क़ीमती मालूम पड़े तो बाहर चले जाओ। यहाँ आकर हम लोगों को तंग मत करो। मैं जानती हूं कि तुम मुझे मुफ्त में ही पाना चाहते हो···साथ में और भी जो कुछ फोकट में हाथ लग जाय······जानवर कहीं के !"

ज़बान के इस कोड़े की मार से वह लम्बा आदमी सिकुड़ गया। पिटे हुए कुत्ते की भाँति वह काउण्टर तक गया और एक गिलास ढाल ली। वह निस्सन्देह गाली देनेवाली की ओर देखना चाहता था, लेकिन उसकी नज़र ज़मीन से उठ नहीं रही थी। लैम्प की रोशनी उसके चेहरे पर पड़ने लगी और मुझे एक कातर, पतला दुबला चेहरा दिखाई देने लगा। उसके गीले बाल भौंहों पर आ गए थे। उसके अंग ऐसे ढ़ीले दिखाई दिए मानों वे जोड़ जोड़ पर टूटे हुए हों। वह दया का पात्र था। उसमें शक्ति नहीं थी फिर भी हिम्मत तो थी ही। उसने अपनी आँखें एक बार उठाईं; वे सामने नहीं देख पा रही थीं। उनमें अस्थिरता थी।

"उसके बारे में चिन्तित न हों," उस लड़की ने मुझ से फ्रेंच में कहा और बांह पकड़ कर हिलाया, मानों वह मुझे अपनी विचार मुद्रा से जगाना चाहती हो। "हम लोगों का किस्सा बड़ा पुराना है: कल की बात थोड़े ही है।" फिर जैसे गुर्रा कर कहा—"ओ भेड़िये, मेरी बात सुन। मैं तेरे साथ जाने के बजाय समुद्र में कूद पड़ना अधिक पसन्द करूँगी। समझा ?"

इस बात पर फिर शराबखाने में से हँसी फूट पड़ी। मालूम होता था कि इस प्रकार के विनोद का आनन्द हर रोज़ उठाया जाता है। तभी एक भयानक घटना घटी। वह (शराबखाने वाली) तरुणी उसके पास आई, उसके गले में बाहें डाल दीं और उससे लिपट गई। उसके स्पर्श से वेदना के कारण उस आदमी का चेहरा पीला पड़ गया। उसी समय मेरे पास की स्त्री ने अपना रंग बदला जैसे वह एकाएक गम्भीर निद्रा से जाग पड़ी। दुष्टता के भाव से उसका चेहरा विकृत हो उठा; उसके हाथ-पैरों में कम्पन होने लगी। इस दृश्य को मैं और अधिक देख न सका और मेज़ पर कुछ सिक्के फेंक कर चलने को उद्यत हुआ। उसने मुझे रोक कर कहा--

"अगर आपको उसके कारण कुछ परेशानी हो रही है तो मैं अभी उस सुअर को बाहर निकाल देती हूँ। उससे जो कुछ भी कहा जाय, बड़ी ख़ुशी से करने को तैयार रहता है। आइए, हम लोग एक गिलास शराब और पी लें।"

बनावटी उत्साह से वह मेरे और पास खिसक कर आई। मैं समझ गया कि उस आदमी को वेदना पहुँचाने के ध्येय से ही यह नाटक कर रही है। वह नज़र चुरा कर उसकी ओर देखती जाती थी। मेरा हृदय दुःख और क्षोभ से भर गया। मैं देख रहा था कि उसके प्रेम के प्रत्येक हाव भाव से जिसकी वह मेरे ऊपर वर्षा कर रही थी, वह बेचारा तड़प उठता था, जैसे गर्म लोहे से दाग़ा जा रहा हो: मैं उसके ऊपर से अपनी नज़र न हटा सका। जब मैंने देखा कि उसके अन्दर क्रोध और ईर्ष्या की अग्नि भड़क उठी है तो मैं कांप गया। फिर भी जब जब वह लड़की उसकी ओर देखती थी तो वह भय से सिकुड़ जाता था। वह मेरे और निकट सरक आई। उसे अपने निर्मम खेल में इतना आनन्द आ रहा था कि प्रसन्नता के मारे उसका सारा शरीर उछल रहा था। सस्ते पाउडर की गंध और उसके गंदे शरीर की दुर्गंधि से मेरी तबीयत बिगड़ रही थी। उसे अपने से थोड़ा दूर रखने के लिए मैंने एक सिगार अपनी डिबिया से निकाल लिया। इसके पहले कि मैं उसे सुलगाऊँ, उस तरुणी ने हुक्म दिया "सुनो जी, जल्दी से रोशनी इधर ले आओ, जल्दी करो।"

उसकी इन युक्तियों में साथ देना बड़ी भयानक बात थी। मैं उस आदमी से सेवा लेने के लिए बिलकुल तैयार न था; इसलिए मैंने यथासम्भव जल्दी से अपनी दियासलाई ढूँढ़ी। लेकिन हुक्म के कोड़े ने उस बेचारे को क्रियाशील बना दिया था और वह आवश्यक उपकरण लेकर मेज़ तक आया। मेरी और उसकी आँखें मिल गईं। उसके नेत्रों में असीम शर्म और अतीव

कड़वाहट का भाव झलक रहा था। इस कातर दृष्टि ने मेरे अन्दर बंधुत्व का भाव जागृत कर दिया और मेरा हृदय उसके असम्मान पर संवेदना से भर गया। मैंने जर्मन भाषा में कहा :

"धन्यवाद महाशय, लेकिन आपको कष्ट करने की कोई आवश्यकता न थी।"

इसके बाद मैंने उसकी ओर अपना हाथ बढ़ाया। एक क्षण को वह झिझका, फिर मेरा हाथ उसके सूखे हाथों में पहुँच गया। उसके नेत्रों से इस समय कृतज्ञता टपक रही थी। लेकिन तुरन्त ही उसने अपनी भारी पलकें झुका ली। मेरे मन के विद्रोह ने उसे अपने पास बैठने को आमन्त्रित करना चाहा, और शायद मैंने इशारा भी किया, क्योंकि मेरे मुँह से शब्द निकलने के पहले ही उस तरुणी ने कठोरतापूर्वक रहा, "फ़ौरन अपनी जगह पर लौट जाओ। यहाँ परेशान मत करो।"

उसकी कर्कश आवाज़ और दुर्व्यवहार से मेरा दम घुटने लगा। मैं क्यों इस घृणित, पतिता, शराबी स्त्री के बारे में परेशान होऊँ? मेरा मन ताज़ी खुली हवा में जाने को व्याकुल हो उठा। मैंने उसकी ओर कुछ रुपया बढ़ाया और उठ खड़ा हुआ। उसने मुझे खुशामद करके रोकना चाहा लेकिन मैं दृढ़तापूर्वक दरवाज़े की ओर बढ़ गया। अपने ही एक बन्धु को अपमानित करने में मैं भागी नहीं होना चाहता था। मैंने उस तरुणी को जता दिया कि मेरे लिए उसके सौन्दर्य में तनिक भी आकर्षण नहीं है। उसका चेहरा तमतमा उठा; कठोर शब्दों के भार से उसके होठ काँपने लगे पर वह कुछ बोल न सकी। उसने उस आदमी की ओर सिर घुमाया और तीव्र, अर्थपूर्ण दृष्टि से देखा। तत्काल वह उसका मतलब समझ गया। उसने फ़ौरन अपनी जेब से बटुआ निकाला। स्पष्ट था कि वह उसके पास अकेला रहने में डरता है। घबड़ा कर वह अपना बटुआ खोलने लगा। मैंने भांप लिया कि खुले हाथ से खर्च करने का उसका स्वभाव न था। उसके अन्दर 'मल्लाहों' की भाँति बेफ़िक्र होकर खर्च करने की उदारता न थी। दो बार हिसाब लगा कर पैसे निकालने का वह आदी था। यही ज्ञात होता था उसके शैम्पेन की क़ीमत चुकाने के ढंग से।

"देखो तो, वह कैसा काँप रहा है, क्योंकि उसका अपने कुछ पैसों से बिछोह हो रहा है!" "तरुणी ने उसकी ओर बढ़ते हुए कहा, "इतनी देर!...अच्छा ज़रा ठहरो तो...।"

वह डर कर दो क़दम पीछे हट गया। जब उस स्त्री ने देखा कि वह कितना भयभीत हो गया है तो मुँह बना कर कहा—

"मैं तुम से अपने लिए कुछ भी नहीं चाहती। मैं तुम्हारे पैसे पर थूकती हूँ। मैं जानती हूँ कि वह सब पहले ही से गिना रखा है...एक धेला भी कहीं बटुए से अधिक न निकल जाय!...लेकिन", उसने उसकी छाती थपथपाते हुए कहा, "लेकिन उस काग़ज़ के टुकड़े के बारे में क्या कहते हो जिसे तुमने अपनी बास्कट के नीचे छिपा रक्खा है!"

उस आदमी का हाथ एकाएक अपनी छाती पर चला गया—वहाँ मानों उसने अपना हृदय टटोला हो। उसके पीले चेहरे पर फिर स्वाभाविक रंग आ गया और उसने अपने हाथ नीचे कर लिए।

"कंजूस!" तरुणी ने चिल्ला कर कहा।

इस पर वह घूमा और अपना बटुआ धन समेत उस युवती की गोद में फेंक दिया; और उस जगह से चला गया, मानों वहां आग लग गई हो। पहले तो युवती चौंक कर चीखी; फिर सारी स्थिति समझ कर ज़ोर ज़ोर से हँसने लगी।

थोड़ी देर तक वह तरुणी निश्चल खड़ी रही; उसकी आंखें गुस्से से जल रही थीं। वह अत्यन्त थकी मालूम पड़ रही थी। मेरे सामने एक एकाकी कुम्हलाई हुई आकृति घूम रही थी।

"वह अपने इस खोए धन के लिए रो रहा होगा बाहर जा कर। शायद थाने पर जा कर रिपोर्ट भी कर देगा कि हम लोगों ने चोरी कर ली है। कल वह वह फिर यहाँ आयगा...लेकिन वह मुझे नहीं पा सकता--नहीं। मैं अपने आपको चाहे जिसे अर्पित कर दूँगी, पर उसे कदापि नहीं।"

वह शराबघर तक गई और उसने एक गिलास ब्रांडी चढ़ा ली। उसकी आंखों से दुष्टता चमक रही थी लेकिन धीरे धीरे यह चमक धुँधली पड़ गई—शायद आंसुओं का पर्दा उस पर छा गया। मुझे उसके ऊपर क्रोध आ रहा था, उसके प्रति करुणा नहीं जाग रही थी। "गुड ईवनिंग" कह कर मैंने विदा ली।

मेरी ओर बिना देखे ही उसने बदले में नमस्कार किया। मुझे अपने पीछे गली में खिलखिलाहट सुनाई दी।

जब मैं निकल कर गली में आया तो घना अंधकार छा गया था। आकाश ताराहीन था। लेकिन जल्दी ही धुँधला चाँद दिखाई दिया। अनेक भावनाएँ मेरे हृदय में जागृत हो गई। मैंने एक गहरी साँस ली; सारा भय दूर हो चुका था। अब मैं पुनः एक बार मानव के भाग्य की गुत्थी सुलझाने का प्रयत्न करने लगा। आत्मोल्लास से मेरा हृदय द्रवित हो गया यह सोच कर कि प्रत्येक खिड़की के पीछे कोई अपना भाग्य लिए इन्तज़ार कर रहा है; प्रत्येक दरवाज़े पर एक अनुभव उपस्थित है। इस संसार में असंख्य अनुभव उनके लिए उपस्थित हैं जिनके पास देखने के लिए आँखें हैं। गन्दी से गन्दी कोठरी में भी नया जीवन भरा पड़ा है–जैसे गोबर में चमकीले कीड़ों का जीवन निहित है।

यह विचित्र अनुभव अब मेरे लिए अरुचिकर न रह गया था। इसके विपरीत, मेरे हृदय की संशयपूर्ण जिज्ञासा अब श्रान्ति की सुखद भावना में परिणत हो गई। मेरा एक मात्र विचार अब अपने अनुभवों को सुन्दर सपनों का रूप दे देने का था। मैंने इस गली में ऊपर से नीचे तक एक लम्बी नज़र फेंकी। मैं भूल गया कि कौन सा रास्ता मुझे अब मेरे होटल तक पहुंचा देगा। इसी समय मुझे रास्ते में एक छाया दिखाई दी।

“मुझे क्षमा कीजिए श्रीमान्” मेरी मातृभाषा में एक पहिचानी हुई आवाज़ ने कहा, “मुझे डर है कि इस चक्कर में आपको रास्ता ढूंढ़ने में कठिनाई होगी। क्या मैं आपको ठीक राह दिखा दूँ? आपके होटल का नाम क्या है?”

मैंने होटल का नाम बता दिया।

“हाँ श्रीमान्, मैं उसे जानता हूं। मैं आपके साथ चलूँ, श्रीमान्?” उसने मानो क्षमा माँगते हुए कहा।

एक सिहरन मेरे शरीर पर दौड़ गई। इस सिमटी हुई छाया के साथ चुपचाप निःशब्द चलने में डर लग रहा था। मल्लाहों के ‘क्वार्टरों’ की इन गलियों ने और मेरे नए अनुभव की स्मृति ने मुझे चक्कर में डाल दिया। मैं जानता था कि मेरे साथी की आँखों में अब भी वही कातरता थी; उसके होठों पर अब भी शिथिलता थी। वह कुछ कहना चाहता था। किन्तु मैं अपनी तत्कालीन मनोस्थिति से जागना नहीं चाहता था, इस आदमी की बात सुनने के लिए। उसके शब्द मानो रुंधे गले में से निकल रहे थे। उसकी सहायता न करने में मैं एक निर्मम आनन्द का अनुभव कर रहा था। उस भयानक स्त्री की याद आते ही मेरा हृदय घृणा से भर गया। मैं प्रसन्न था कि इस आदमी के मन में अपनी शर्मनाक हालत का कारण बताने के लिए व्याकुलता थी; उसके अन्दर द्वन्द्व चल रहा था सब कुछ कह देने के लिए। नहीं, मैंने इस मामले में उसकी सहायता नहीं की। मैंने अपने और उसके बीच में चुप्पी की एक कठोर काली दीवाल खड़ी कर दी। उसके लड़खड़ाते हुए क़दमों में और मेरे सधे हुए क़दमों में विषमता थी। प्रत्येक क्षण मेरी और उसकी आत्मा का तनाव कठिनतर होता जा रहा था। अंत में मौन के तार खिंच कर टूट गए और उसने कहा,

“आपने...आपने अभी एक विचित्र दृश्य देखा है श्रीमान्। यह बात छेड़ने के लिए मैं आपसे माफ़ी चाहता हूँ। लेकिन यह सब आपको बड़ा अजीब लगा होगा, श्रीमान्, और आप मुझे एकदम बेहूदा आदमी समझ रहे होंगे। लेकिन वह औरत...वह औरत...।”

वह चुप हो गया। उसके बाद धीरे-धीरे फिर बोला “वह मेरी पत्नी है, श्रीमान्।”

मेरे मुँह पर आश्चर्य अवश्य झलक आया होगा। उसने जल्दी जल्दी कहना शुरू किया, मानो माफ़ी मांग रहा हो;

“कहने का मतलब यह है श्रीमान् कि वह चार साल पहले मेरी पत्नी थी। ग्रेज़िम में मेरा घर है। कृपया उसके बारे में कोई बुरी बात मन में न लाइए। यह मेरा ही कसूर है कि वह आज इस दशा में है। वह सदा से ऐसी ही नहीं है। लेकिन...लेकिन मैंने ही उसका सर्वनाश किया है। वह अत्यन्त निर्धन थी, फिर भी मैंने उसके साथ शादी कर ली। उसके शरीर पर मुश्किल से एक वस्त्र होगा; और कुछ भी नहीं। इसके विपरीत मैं अच्छा खाता पीता आदमी हूँ। उन दिनों आराम से रहता था। कम से कम तब तो मेरे पास कुछ धन भी था...और शायद वह ठीक कहती है, मैं लोभी भी था। हाँ, अपने सर्वनाश के पहले तक मैं लोभी ही था। मेरे माता पिता भी ऐसे ही थे, सारा परिवार स्वभावतः लोभी था। इसके सिवाय प्रत्येक उपार्जित पैसे के लिए मुझे कठिन परिश्रम करना पड़ता था। उसे मामूली चीज़ों का शौक़ था। वह ग़रीब थी, इसलिए उसके पास वही कुछ था, जो मैंने दिया था। उसे मैं

बराबर इसकी याद दिलाया करता था। उफ़! मैं जानता हूं, इस दुर्घटना से समझ गया हूं कि यह मेरी गलती थी। वह अत्यन्त स्वाभिमानिनी थी। मेहरबानी करके आप यह न समझ लें कि वह स्वभाव से वैसी ही है जैसी कि आज शाम को आपको दिखाई दी। बल्कि इससे एकदम भिन्न, महाशय! यह समझने की बात है। वह केवल मुझे चोट पहुँचाने के लिए, परेशान करने के लिए ही अपने को इस प्रकार सताया करती है। वह अपने को सताती है, क्योंकि उसे स्वयं अपने कारनामों पर शर्म आती है। हो सकता है कि वह पतिता हो गई हो, लेकिन मैं...मैं इस बात को स्वीकार करने के लिए बिलकुल तैयार नहीं हूं। मैं जानता हूँ वह पहले कितनी भली थी।"

उद्वेग के कारण वह रुक गया—बात करने में भी और चलने में भी, और अपनी आँखें पोंछने लगा। मुझे उसकी ओर देखना ही पड़ा। अब वह मज़ाक की चीज़ न रह गया था। और मैं भी अब उसके बार बार "श्रीमान्" कहने से चिढ़ नहीं रहा था। यह शब्द मुँह से निकलने में उसे जो शक्ति लगानी पड़ती थी, उससे उसके चेहरे का रंग बदल जाता था। हम लोग आगे बढ़ चले। वह अपनी नज़र नीचे ही गड़ाए रहा, मानो भूमि पर लिखी कोई कहानी पढ़ रहा हो। उसने एक लम्बी सांस ली। उसकी आवाज़ अब मुझे कर्कश न लग रही थी। अब उसमें मधुर संगीत का आभास मिल रहा था।

"हाँ, श्रीमान्। वह बड़ी भली थीं; मेरे प्रति अत्यन्त उदार थी। गरीब परिवार में से आने के कारण वह मेरे प्रति कृतज्ञ भी थी......मैं जानता था कि वह कितनी कृतज्ञ है...... लेकिन यह सब मैं उसके मुँह से सुनना चाहता था। आप जानते हैं, श्रीमान् कितना अच्छा लगता है जब कोई आप तो उससे भी अधिक भला समझे जितने भले आप वास्तव में हैं! मैं उसके मुँह से इन्हीं दो शब्दों के बदले में अपना सारा धन सदा के लिए दे देने को तैयार था। लेकिन उसके अन्दर स्वाभिमान था। मेरे प्रति ऋण स्वीकार करना और उसे व्यक्त करना उसके लिए अत्यन्त कठिन था, खास तौर पर जब कि मैं ऐसा अधिकारपूर्वक चाहता था और मैं इसके लिए साफ़ साफ़ कहने के लिए हुक्म भी दे चुका था। मैं इन शब्दों को सुनने के लिए बेचैन था। इसलिए, श्रीमान् मैं बराबर इस बात पर ज़ोर देता रहा कि वह मुझसे कुछ माँगे—वस्त्र या और कोई ऐसी ही मामूली सी चीज़। तीन साल तक मैं बराबर उसे सताता रहा और ज्यों ज्यों समय बीतता गया वह कठोरतर होती गई। और सच मानिए, यह सब इसलिए था कि मैं उससे अत्यधिक प्रेम करता था। मैं उसके स्वाभिमान को प्यार करता था, फिर भी उसे झुकाना चाहता था। उफ़! कितना मूर्ख था मैं! जब कभी वह हैट या और किसी छोटी सी चीज़ के लिए कहती तो मैं ऐसा दिखाता मानों घबड़ा गया होऊँ। साथ ही मैं उसकी इच्छापूर्ति का मौका पाने के लिए नैसर्गिक आनन्द का अनुभव करता था। पर उसे झुकाना भी चाहता था! इन दिनों मैं पहचान पाया कि मैं उसे कितना प्यार करता हूँ।..."

वह फिर रुक गया। उसकी चाल लड़खड़ा गई। वह मेरी उपस्थिति भूल चुका था और अब यन्त्र-चालित की भांति बोल रहा था—

"मैं उसे कितना प्यार करता था यह मैं उस दिन जान सका (अभागा दिन!) जब उसने मुझसे अपनी मां की सहायता करने के लिए रुपए मांगे और मैंने मना क़र दिया। बहुत मामूली सा धन था वह......इस काम के लिए सचमुच मैंने वह धन अलग रख दिया था। लेकिन मेरी आकांक्षा थी कि वह इस रुपए की फिर से याचना करे......और उस दिन जब मैं घर लौटा तो मेरी मेज़ पर एक पत्र रक्खा मिला। वह चली गई थी! उसने केवल इतना ही लिखा था "आप अपना पैसा रख छोड़िए—मैं अब आप से एक पाई भी नहीं मांगूँगी।" बस! अधिक कुछ नहीं। तीन दिन और तीन रात तक मैं पागल सा बना रहा। नदी और वन मैंने छान डाले। सैकड़ों का धन उसका पता लगाने के लिए अधिकारियों को दे डाला। अपना क़िस्सा अपने पड़ोसियों तक को बता दिया। वे लोग मुझ पर केवल व्यंग्य से हँस देते। कहीं भी पता न चला, कहीं नहीं! महीनों बाद मुझे ज्ञात हुआ कि किसी ने उसे रेल में एक सिपाही के साथ देखा है। बर्लिन की रेल में! उसी दिन मैं उस नगर के लिए चल पड़ा। इस प्रकर मैंने हज़ारों रुपया खो दिया। मेरी अनुपस्थिति में मेरे मैनेजर और फ़ार्म के मज़दूरों ने, सबों ने मिल कर अपनी जेब भरी। लेकिन मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ श्रीमान् कि इसकी मैंने क़तई परवाह न की। मैं एक सप्ताह तक बर्लिन में रहा और......अंत में मैंने उसे ढूंढ़ ही निकाला......।"

वह हाँफने लगा ।

"मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ श्रीमान् कि मैंने उससे एक भी कड़ा शब्द न कहा......मैं रोया...... उसके आगे मैंने घुटने टेके......वह जो चाहे सो मैंने देने को कहा......अब जो कुछ भी मेरे पास था सब की वह मालकिन थी, क्योंकि मैं अब जान गया कि उसके बिना मेरा जीवन असम्भव है । मैं उसके प्रत्येक रोम से प्रेम करता था, उसके मुँह, शरीर के प्रत्येक अंग से, प्रत्येक अणु से प्रेम करता था । मैंने उसकी घर मालकिन को रिश्वत दी, क्योंकि यथार्थ में वह लड़कियाँ खरीदने बेचने का काम करती थी । तब कहीं बेचारी लीला को छुड़ा पाया । उसका मुँह खड़िया की तरह सफ़ेद पड़ गया था । लेकिन उसने मेरी बात मान ली-आप इतमीनान कीजिए, उसने मेरी बात मान ली । वह मुझे देखकर प्रसन्न —हां प्रसन्न हुई थी । लेकिन जब मैं उससे उस धन के बारे में बात करने लगा जो मुझे उसके कारण खर्च करना पड़ा था (और आप जानते हैं कि इन मामलों पर बात कहनी ही पड़ती है) तो अपने ग्राहक को बुलाया और वे दोनों मेरे ही मुँह पर मेरी हँसी उड़ाने लगे ।......मैंने उसे अपनी आंखों से ओझल नहीं किया । प्रतिदिन वहाँ जाता रहा । एक दिन मुझे उसके पड़ोसियों ने बतलाया कि उस पाजी ने उसे एक दम असहाय निराश्रित अवस्था में निकाल दिया है । मैंने उसे फिर से ढूँढ़ निकाला–लेकिन उसने वे सब नोट फाड़ डाले जो मैंने उसे दिए थे । और जब मैं दूसरी बार वहाँ पहुँचा तो वह फिर से जा चुकी थी उफ़ ! - - - आप न समझ सकेंगे कि मुझे उसे ढूँढ़ने के लिए क्या क्या करना पड़ा ! अंत में मुझे पता लगा कि वह अर्जेण्टाइना चली गई है ।...और...और एक वेश्यालय में है ।"

वह एक बार फिर झिझका मानो शब्द गले में अटक गए हों । उसकी आवाज़ रुद्ध होती गई ।

"पहले तो मैं अपने कानों पर विश्वास न कर सका...इसके बाद मैंने सोचा कि सब दोष मेरा ही है, केवल मेरा, क्योंकि मैंने ही तो उसे अपमानित किया था । और मैं यह भी समझता था कि उसे स्वयं कितना कष्ट हो रहा होगा क्योंकि वह स्वाभिमानी जो थी । मैंने अपने वकील के मार्फ़त अर्जेण्टाईना के अधिकारी 'कौंसुल' को लिखवाया और उसके लिए रुपया भेज दिया । मैंने हिदायत कर दी थी कि उसे रुपया भेजने वाले का नाम-पता न बताया जाय । यह रुपया उसे घर वापिस लाने को काफ़ी था । जल्दी ही मुझे तार से समाचार मिला कि तरकीब काम कर गई और जहाज़ फ़लाँ तारीख को 'एम्सटर्डम' पहुंचेगा । मैं इतना अधीर हो गया कि वहाँ तीन दिन पहले ही पहुँच गया । जब दूर से धुंआ दिखाई देने लगा तो मुझे ऐसा लगा मानों जहाज़ किनारे पर लगने के समय तक मैं रुक न सकूंगा । अन्त में मुझे वह अन्य यात्रियों के पीछे खड़ी दिखाई दी । वह इतना श्रृंगार किए हुए थी कि एकाएक पहचान में न आ सकी । जब उसने देखा कि मैं उसकी प्रतीक्षा में खड़ा हुआ हूं तो इतने श्रृंगार के पीछे भी उसका रंग उड़ा हुआ दिखाई देने लगा । वह लड़खड़ाने लगी और दो सिपाहियों ने उसे सहारा दिया । जहाज से उतरते ही मैं उसके साथ हो गया । मैं बोल न सका, मेरा गला इतना सूख गया था । उसने भी कुछ नहीं कहा, मेरी ओर देखा भी नहीं । मैंने सामान उठाने के लिए कुली को इशारा किया और हम लोग होटल को चल दिए। एकाएक वह मेरी ओर मुड़ी, और कहा, "क्या तुम अब भी मुझे अपनी पत्नी के रूप में चाहते हो, इतना सब होने के बाद भी ?" उफ़,...आपने यदि उसकी आवाज़ सुनी होती ! कितनी निराशा थी, उसके स्वर में ! मुझे लग रहा था मानों मेरा हृदय फट जायगा । मैंने केवल उसका हाथ पकड़ लिया...वह जोर से काँप उठी, लेकिन आगे कुछ न बोली । मैंने समझा अब सब ठीक हो जाएगा । मैं कितना प्रसन्न था ! जब हम लोग अपने कमरे में पहुँचे तो मैं आनन्द से नाचने लगा । उसके चरणों में बैठ कर मैं जाने कितनी अनर्गल बातें कहने लगा । मैं सोचता हूँ, कम से कम मेरी बातें तो मजेदार रही होंगी क्योंकि वह अपने आँसुओं के बीच भी मुस्करा रही थी—मेरे सिर पर हाथ फेर रही थी, झिझक के साथ । मैंने उसे कपड़े बदलने में मदद दी—दौड़ कर नीचे खाने का आर्डर देने गया । शादी के पकवान मैंने मँगाए । नीचे जाकर हम लोगों ने खूब खाया पिया; खूब मजा रहा । वह एक बच्चे के समान लग रही थी। कितनी भोली, स्नेहपूर्ण ! हम लोग अपने घर के बारे में बातचीत कर रहे थे–सब बात फिर से नए सिरे से चलेगी । तब...

उसकी आवाज़ फिर भर्राने लगी—ऐसा मालूम पड़ने लगा मानों कोई उसका गला घोंट रहा हो ।

"तभी......वेटर......नीच, पाजी, कुत्ता...... वह समझा कि मैं शराब पिए हुए हूँ क्योंकि मैं इतना हँस रहा था और इतना लड़कपन कर रहा था कि...लेकिन यह सब इसलिए था कि मैं इतना प्रसन्न था ।......इतना खुश था। हाँ, तो मैंने बिल चुका दिया । वेटर ने मुझे नशे में जान कर बीस फ्रैंक ठग लिए । मैंने उसे वापस बुलाया और अपने दाम वापस मांगे । वह डर गया और उसने ठीक ठीक दाम लौटा दिए । तब......एकाएक लीला हँसने लगी। मैं घबड़ा कर उसकी ओर देखने लगा, और उसका चेहरा एकदम बदल गया—व्यंग से कठोर, नाराज़ ! "सदा की भांति ?......अपनी शादी की दावत के बाद भी ?" उसने धीमे से कहा । उसकी आवाज़ में करुणा थी। मैं हिसाबीपन के लिए अपने आपको कोसने लगा । लेकिन इस मामले को हँस कर टालना चाहा । उसकी प्रसन्नता अब लुप्त हो चुकी थी—वह मर चुकी थी...... उसने अपने लिए एक अलग कमरा चाहा—मैं उसकी प्रत्येक इच्छा को पूरा करने की मनोस्थिति में था । अपने कमरे में मैं अकेला लेटा रहा, आंखें खोले हुए रात भर यह सोचता रहा कि सबेरे उसे कौन सी चीज़ भेंट दूँ......कोई सुन्दर भेंट......यह दिखाने के लिए कि मैं अब लोभी नहीं रहा हूँ। दूसरे दिन मैं बाहर गया... उसके लिए एक 'ब्रासलेट' खरीदा......उसके कमरे पर गया......लेकिन अब वह वहाँ नहीं थी—वह पहले ही जा चुकी थी। मैंने चिट्ठी की तलाश की । यह जानते हुए भी कि वह कहीं न कहीं मेरे लिए रक्खी होगी, मैं प्रार्थना कर रहा था कि वह कहीं भी दिखाई दे। पर......पर वह ड्रेसिंग टेबिल पर मिल ही गई । उस पर कुछ लिखा हुआ था......"

वह झिझका । मैं चुपचाप खड़ा उसके मुरझाए हुए चेहरे की ओर देख रहा था । उसने सिर झुका लिया और धीरे से कहा– "उसने लिखा था, 'मुझे शांति से रहने दो; मुझे तुम से घृणा है ।' "

हम लोग चलते चलते समुद्र तट तक पहुँच गए थे। अटलांटिक सागर का गर्जन शांति भंग कर रहा था। जहाज़ लंगर डाले खड़े थे; उनकी तेज़ रोशनी दीर्घाकार जानवरों की आखों के समान चमक रही थी। दूर से आनेवाले गीत के धीमे स्वर सुनाई पड़ रहे थे। कुछ साफ़ समझ में न आ रहा था। पास की अस्थिर ज्योतिवाली बत्ती की रोशनी में मुझे अपने साथ एक आदमी की छाया दिखाई दे रही थी, जो कभी दीर्घाकार और कभी सूक्ष्माकार हो जाती थी । बातचीत करने की या सांत्वना देने की मेरी इच्छा नहीं हो रही थी । न कोई सवाल करने को ही जी चाहता था । एक कठोर नीरवता छा गई थी। एकाएक उसने मेरी बाँह पकड़ ली और कम्पित स्वर में कहा,

"लेकिन मैंने तय कर लिया है कि उसे साथ लिए बिना मैं इस नगर से हटूँगा नहीं ।......महीनों के प्रयत्न के बाद मैंने उसे खोज लिया है । वह मुझे चोट पहुँचाती है लेकिन मुझ पर अब उसका कोई असर नहीं होता ।...मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ, श्रीमान्, एक बार आप उससे कह दें ।...मैं कहता हूं तो वह सुनती ही नहीं । मैं उसे वापस लेकर ही लौटूंगा...ओफ़ ! क्या आप भी उससे एक बार न कहेंगे कि मेरे साथ जाय ? दया करके एक बार कह देखिए श्रीमान् ! मैं इस तरह से अब और नहीं रह सकता । मुझ से अब यह नहीं सहा जाता कि वहाँ ग़ैर लोग जायँ और वह अपने को उन्हें समर्पित करदे, जब कि मैं स्वयं उनके हँसते हुए, शराब पिए हुए बाहर निकलने का इन्तज़ार करूं। अब मुझे सारा पड़ोस जान गया है । जब लोग मुझे बाहर बरामदे में खड़ा देखते हैं तो हँसते हैं मेरे ऊपर...मैं पागल हो जाऊँगा...लेकिन मैं यह चौकीदारी करता ही रहूँगा... मैं आपके पैरों पड़ता हूँ महाशय...आप अपरिचित हैं, यह मैं जानता हूं, लेकिन, भगवान् के लिए, एक बार उससे कह दीजिए श्रीमान् । शायद उसके अपने देश का रहनेवाला कोई उसे इस विदेश में प्रभावित कर सके ।"

मैं इस आदमी से अपनी बाँह छुड़ाना चाहता था । संवेदना के साथ साथ मेरे मन में घृणा और निराशा भी थी । जब उसने देखा कि मैं पीछा छुड़ा कर चला जाना चाहता हूँ तो वह बीच सड़क पर घुटनों के बल बैठ गया और मेरे पैर पकड़ लिए ।

"मैं आप से विनती करता हूं श्रीमान्, एक बार आप उससे कह दीजिए । आप कहिए; आपको कहना ही पड़ेगा, नहीं तो कोई भयंकर बात हो जायगी । मेरा सारा रुपया अब ख़त्म हो चुका है। मैं उसे यहाँ छोड़ूँगा नहीं...कम से कम जिन्दा तो नहीं । मैंने एक चाकू खरीद लिया है...हाँ मेरे पास एक चाकू है । मैं अब उसे यहाँ नहीं रहने दूँगा । उससे कहिए श्रीमान्, मैं आप से भीख माँगता हूँ, प्रार्थना करता हूँ, आप उससे

इस बारे में बात कर लीजिए...''

वह मेरे आगे पागल की तरह पड़ा था। उसी समय दो पुलिसमैन उस गली में आ निकले। मैंने उसे ज़बरदस्ती उठा कर खड़ा कर दिया। वह एक क्षण तक मेरी ओर देखता रहा, फिर एकदम बदली हुई आवाज़ में बोला—

''आप आगे जाकर सीधे हाथ की ओर मुड़ जाइए। थोड़ी दूर पर ही आपका होटल है।''

एक बार फिर उसने मेरी ओर घूर कर देखा। उसकी आँखों की पुतलियाँ मानों घुल कर विलीन हो जाना चाहती थीं। इसके बाद वह अन्धेरे में ग़ायब हो गया।

मैं अपने कोट में सिकुड़ गया-मैं काँप रहा था। थक गया था। नींद ने ऐसे घेर लिया था जैसे मैंने शराब पी ली हो। मैं कुछ सोचना चाहता था इन अनुभवों को अपने दिमाग़ में दुहराना चाहता था, लेकिन कठोर निद्रा की उपेक्षा न की जा सकी। मैं होटल पहुँचा और बिस्तर पर गिर कर जानवरों की भाँति सो गया।

सुबह स्वप्न और वास्तविकता में भेद करना कठिन था। मेरे मन में कोई चीज़ इस मामले में अधिक छानबीन करने से मना कर रही थी। मैं देर से जागा। इस नगर में नया आदमी था। उठ कर गिर्जाघर चला गया। लेकिन मुझे कुछ भी साफ़ साफ़ न दिखाई देता था। रात का अनुभव मेरे दिमाग़ में छा गया था। अनजाने में ही मेरे पैर उस गली और घर की ओर चल पड़े। लेकिन इस प्रकार की गलियों में केवल अंधेरे में ही जीवन आता है। दिन में वे एक प्रकार की नक़ाब-सी पहने रहती हैं। उन्हें केवल वे ही पहचान सकते हैं, जो उनसे भली भाँति परिचित हों। मैंने ख़ूब ढूँढा लेकिन वह गली मुझे न मिली; थक कर निराश होकर मैं अपने होटल चला आया। मेरे दिमाग़ में तसवीरें घूम रही थीं; चाहे उन्हें विकृत मस्तिष्क की कल्पना कह लीजिए अथवा यथार्थ के चित्र।

गाड़ी रात को नौ बजे जाने को थी। यह नगर छोड़ने में मुझे अफ़सोस हो रहा था। तभी चौराहे पर मैं उस मकान को पहचान गया। कुली से एक मिनट ठहरने के लिए कह कर मैं उस स्थान पर अंतिम बार नज़र फेंकने के लिए चल दिया; कुली मुस्कराने लगा।

हाँ, वह रहा—पिछली रात की तरह अंधेरा था। केवल चन्द्रमा का प्रकाश खिड़की और बाहर के दरवाज़े पर पड़ रहा था। मैं पास पहुँच रहा था—अंधकार में से एक छाया निकली। मैं दरवाज़े पर झुके हुए उस जर्मन को पहचान गया। उसने मुझे पास आने का इशारा किया; लेकिन मैं डर के मारे भाग आया; मैं देर कर के अपनी गाड़ी नहीं खोना चाहता था।

मोड़ पर मैंने एक बार फिर घूम कर देखा। मेरे देखते ही देखते वह उछला—दरवाज़ा उसने ज़ोर से खोल दिया और उसके हाथ में धातु की कोई चीज़ चमक उठी-यह चाकू का फल था या चाँदी का सिक्का जो चाँदनी में चमक रहा था?

अनु:-प्रकाशचन्द्र चतुर्वेदी
एम. ए.

हाथरस

यदि हम अपने को पहचानें, यदि हम अपने अन्दर प्रवेश कर अपनी त्रुटियों को देखें तो हम अपने को निर्मल बना सकते हैं। क्योंकि हम में अपने प्रति मोह और पक्षपात होता है इसलिए हम अपनी कमज़ोरियों को अनुभव नहीं कर सकते। सत्य तो यह है कि हम अपने नग्न रूप को देख कर घबराते हैं और इसलिए चाहते हैं कि उसे वस्त्रों से आच्छादित करके देखें। पुरुषत्व इसमें है कि हम अपनी दुर्बलताओं को समझें और उन पर विजय प्राप्त करें।

—पुरुषोत्तमदास टंडन

साहित्य-चर्चा

आन्ध्र साहित्य के सूर : महाकवि पोतन्ना

आन्ध्र साहित्य के भक्त कवियों में महाकवि पोतन्ना का अपना विशिष्ट स्थान है। भागवतकार बम्मेर पोतन्ना को आन्ध्र वाणी का वर-पुत्र माना जाता है। इनका जन्म लगभग सं. १'५०० में आन्ध्र प्रदेश के जिला 'काउपा' स्थान 'ओटिमिट्टा' ग्राम में हुआ था। निर्धन परिवार में जन्म लेने के कारण इन्हें फटे-पुराने वस्त्र ही लपेटे रहना पड़ता था। परन्तु वस्तुतः इसी ग़रीबी के कारण वे इतना अधिक ऊँचा उठ सके कि आज वे आन्ध्र साहित्य के 'सूर' कहे जाते हैं।

श्री बम्मेर पोतन्ना का अध्ययन किसी पाठशाला में नहीं हुआ था। घर पर ही स्वाध्याय से इन्होंने ज्ञान अर्जन किया। धीरे धीरे इन्होंने शास्त्रों, पुराणों और वेदों आदि का अच्छा अध्ययन कर लिया। जीविकोपार्जन के साधन न होने के कारण इन्हें बचपन से ही हल जोतना और ढोर चराना पड़ता था।

श्री पोतन्ना के सम्बन्ध में कई कहावतें प्रसिद्ध हैं कुछ लोगों का कथन है कि एक बार बैल चराते समय उनका एक वैरागी से साक्षात्कार हुआ। इन्हीं को पोतन्ना ने अपना गुरु मान लिया। पोतन्ना गुरु के सच्चे उपासक, 'गृहस्थ' वैरागी तथा कुशल किसान थे। काव्य साधना के साथ ही साथ महाकवि ने कृषि का भी कार्य किया। सोलहवीं शताब्दी में पोतन्ना ही एक ऐसे कवि थे जिनका सम्बन्ध किसी राजा अथवा दरबार से नहीं था। वे सिद्धान्ततः ही चाटुकारिता के विरोधी थे। इन्हें श्रीनाथ कवि ने (जो तेलुगु के बिहारी कहे जा सकते हैं) राजदरबार के दलदल में फँसाना चाहा परन्तु वे सदा ही इससे दूर रहे।

कड़ी से कड़ी धूप में भी महाकवि पोतन्ना अपने लड़के के साथ हल चलाते। एक समय श्रीनाथ कवि उधर से गुज़रे और कहने लगे "आप हलवाहे यहीं पर हैं"। इस पर उन्होंने कहा "बाल रसाल के सुकोमल पत्तों के समान मृदुल अपनी काव्य-कन्या को उन दुष्ट दुरात्मा राजाओं के हाथ सौंप कर बदले में मुट्ठी भर जूठे टुकड़ों को पाने की अपेक्षा क्या हुआ जो अपनी स्त्री और सन्तान के उदर-पोषण के लिये सत्कवि चाहे कृषक बन कर रहे या घने जङ्गलों के कन्द मूल फल खाने वाले कोल भील बन कर।"

महाकवि कितने दृढ़ प्रतिज्ञ और आत्माभिमानी थे इसका अनुमान इस उदाहरण से स्पष्ट है। कभी कभी ऐसा भी अवसर आया कि महाकवि पोतन्ना स्वाभिमान के पथ से डगमगा जाते। एक ओर पत्नी की दुर्दशा और सन्तानों की पीड़ा उन्हें राजाश्रय लेने के लिए बाध्य करती परन्तु आत्माभिमान ने उन्हें सदैव रोका और इसी प्रकार इस महाकवि ने परिस्थितियों से संघर्ष करते हुए अपना अस्तित्व मिटा दिया।

महाकवि पोतन्ना ने पहले रामायण का आन्ध्र भाषा में अनुवाद करना चाहा परन्तु भास्कर कवि ने रामायण का अनुवाद किया था। अतः इन्हें भागवत का अनुवाद करना पड़ा। नारायण शतक, वीरभद्र, विजय और महाभागवत इनके कतिपय प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं।

नारायण शतक में समय-समय पर रचे हुए भक्ति के उद्गार मात्र हैं जैसे तुलसी-दोहावली, कवितावली आदि में मिलते हैं। वस्तुतः इनका मुख्य ग्रन्थ महाभागवत् ही है जो कवि को युग-युगाँतरों तक अमर रखेगा।

महाकवि की कृतियों में गम्भीरता और चिरन्तन सत्य की अभिव्यक्ति है। उनकी शैली अपने ढङ्ग की निराली थी। उनकी रचनाओं में अनुवाद का आभास अथवा पूर्ववर्त्ती कवियों का अनुकरण कहीं नहीं मिलता। शब्दों को इस ढङ्ग से चुन चुन कर बिठाया गया है कि एक शब्द के स्थान पर दूसरा शब्द बिठाना असंभव है। पदावली में इतना माधुर्य है कि उसके संगीत से पाठकों को एक अद्भुत रसास्वादन होता है। भाषा के वे सम्राट् थे। उनकी पदरचना में संस्कृत कवियों की तरह अर्थ और भाव की अपेक्षा वाक्यावली की प्रधानता है।

कृत्रिमता का लेशमात्र भी प्रयोग नहीं किया गया है। देवस्तुति आदि में अवश्य ही उनकी प्रकृति गम्भीर

हो गई है। अलंकारों का प्रयोग भी उनकी कविता में अधिकता से प्राप्त होता है। दृश्यों के बिम्ब-प्रतिबिम्ब भावों का चित्रण वे कुशलतापूर्वक करते थे।

महाकवि पोतन्ना के भागवत का रूप भी वेदव्यास की भागवत के अनुरूप था। परन्तु अपनी बहुमुखी प्रतिभा के कारण उन्होंने उसे अपना मौलिक रूप प्रदान किया। उन्होंने उसकी ३० हजार पद्यों में रचना की है। पारलौकिक जैसे दार्शनिक विषय भी अत्यंत मार्मिक बन गए हैं।

भक्ति को ही भागवत में प्रधानता दी गई है। भक्ति के प्रसंग में उनकी भावुकता रुक न सकी। वे मूल से बहुत आगे बढ़ गए। उसमें चित्रित विरह वर्णन अत्यन्त सुन्दर बन पड़े हैं। मनुष्य के अन्तर्द्वन्द्वों का चित्रण भी बहुत अच्छा हुआ है।

रुक्मिणी कृष्ण को पाने के लिए छटपटाती है। शिशुपाल के साथ उसका विवाह निश्चित हो जाता है। शादी की तैयारियाँ प्रारम्भ हो जाती हैं परन्तु रुक्मिणी श्रीकृष्ण के पास संदेश भेजती है। संवाद-दाता के लौटने में विलम्ब हो जाता है। वह वेदना के स्वर में जो चिन्तन करती है उसका वर्णन अत्यन्त ही सुन्दर बन पड़ा है।

सूर के कृष्ण से पोतन्ना के कृष्ण से भिन्न हैं। सूर के कृष्ण राधरमण गोपिका-विहारी हैं परन्तु महाकवि पोतन्ना के श्रीकृष्ण लीलाधर और लोकसंग्रहकार दोनों हैं। राम के समान ही वे मानव जीवन के पूर्ण प्रतिनिधि हैं। इनके कृष्ण राधिकारमण नहीं अपि तु रुक्मिणी के पति हैं। साथ ही साथ वे कर्तव्य परायण भी हैं।

सूर और पोतन्ना में कुछ और अन्तर भी स्पष्ट हैं। सूर की कविता असंयत हृदय की वृत्तियों का प्रतिबिम्ब है वहीं पोतन्ना की कविता क्रमबद्ध और सरल है। सूर ने एक ही पद में दो-तीन भावों का समन्वय किया है। इसका कारण सूर की अनाहूत वेदना थी जो उनमें कई तरह के भावों को एक साथ ही जागृत कर देती थी। इस कारण उनकी रंजना से अपेक्षाकृत अधिक प्रसाद गुण महाकवि पोतन्ना की रचना में मिलता है। महाकवि पोतन्ना ने मूल कथा के साथ ही साथ कल्पना का भी मिश्रण किया है जो सूर की रचना में नहीं मिलता।

हिन्दी के भक्ति साहित्य में जो स्थान तुलसी और सूर का है वही स्थान आन्ध्र साहित्य में महाकवि पोतन्ना को मिला है। आन्ध्र साहित्य में रामायण और महाभारत के तो कई अनुवाद मिलते हैं। परन्तु भागवत लिखनेवाले ये प्रथम कवि हैं। आन्ध्र जनता में रामायण के स्थान पर भागवत का अधिक प्रचार है।

यह कहना वस्तुतः कठिन है कि उनकी व्यक्तिगत साधना कितनी ऊँची थी। कितनी कठिनाइयों और कष्टों के बीच उन्होंने काव्य साधना की थी। उनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। इन महाकवि का स्थान आन्ध्र साहित्य के सूर के रूप में सदा अमर रहेगा।

बनारस —कृष्णशङ्कर व्यास

ooo

महात्मा गांधी के जीवन के फ़ोटोचित्रों के बहुत से एलबम प्रकाशित हुए हैं और हो रहे हैं। महात्मा गांधी अपने आपको प्रकाशित करने से बचते थे तो भी यह देख कर आश्चर्य होता है कि लोगों ने उनके जीवन के विविध पहलुओं के कितने फ़ोटोचित्र उतारे।

महात्मा बुद्ध के जीवन को कलाकारों ने पाषाण में प्रतिष्ठापित किया है। ईसामसीह का जीवन तूलिकाचित्रों में है और महात्मा गांधी का जीवन फ़ोटोचित्रों में सर्वाधिक है। हम भविष्य के विषय में कुछ नहीं कह सकते। संभव है कि कवि, चित्रकार और मूर्त्तिकार महात्मा गान्धी के जीवन को रिकार्ड करने में एक दूसरे से आगे बढ़ने का प्रयत्न करें।

—काका कालेलकर

चिट्ठी-पत्री

॥

(१)

पण्डाल शब्द की व्युत्पत्ति

['अजन्ता' के जुलाई अंक में सालारजंग म्यूज़ियम हैदराबाद के सौजन्य से प्राप्त एक चित्र प्रकाशित किया गया था जिसके नीचे शीर्षक था 'सोमस्कन्द (पीतल की मूर्त्ति)'। अगस्त अंक में चिठ्ठी-पत्री शीर्षक के अन्तर्गत श्री मुरलीधर दिनोदिया का एक लेख 'हिन्दी में नवरक्त संचार कीजिए' प्रकाशित हुआ। जिसमें लेखक ने भाषा के क्षेत्र में शब्दों के आदान-प्रदान के महत्त्व को दर्शाते हुए लिखा था "उत्तर एवं दक्षिण की प्रादेशिक भारत की भाषाओं हिन्दी की सगी बहनों और अन्यों के अनेक शब्द हिन्दी में आत्मसात् हो चुके हैं। हिन्दी का सर्वपरिचित 'पण्डाल' शब्द गांधी युग में द्रविड़ (सम्भवतः कन्नड़) भाषा से आया यह कितनों को ज्ञात होगा। उपरोक्त विषयों पर प्रकाश डालते हुए श्री र. वेंकटरत्नम् ने एक पत्र भेजा है जिसे नीचे दिया जा रहा है—सं०]

"अगस्त अंक के 'चिट्टी-पत्री' स्तम्भ में प्रकाशित श्री दिनोदिया के लेख में वर्णित शब्द 'पण्डाल' तमिल भाषा का है। 'पण्डाल' नहीं 'पन्दल' ही उसका ठीक रूप है। अंग्रेज़ी में (Pandal) लिखे जाने के कारण, हिन्दी में भी वह शब्द 'पण्डाल' बन गया। 'पन्दल' का अर्थ है, सुखाए हुए नारियल के पत्तों का बनाया (या बुना) छप्पर।

जुलाई अंक के मुखचित्र में मिलने वाली मूर्त्ति 'सोमस्कन्द' की न होकर 'सोमास्कन्द' की है। 'सोमास्कन्द' (स+उमा+स्कन्द) उमा और स्कन्द के साथ मिलने वाले श्री परमेश्वर सोमास्कन्द कहलाते हैं।

तिरुचरापल्ली कैंट

—र. वेंकटरत्नम्

॥

(२)

मैसूर में दशहरा

मैसूर में दशहरे का उत्सव बहुत प्राचीन काल से प्रसिद्ध है। दशहरे का उत्सव पौराणिक रीति से जितने महत्व का है, उसे हम कदापि नहीं भूल सकते। उत्तर-हिन्दुस्तान में दशहरे के समय केवल दशमी के दिन ही रामलीला आदि खेलें से प्राचीन-काल को याद करते हैं। दक्षिण में रामलीला आदि न खेली जाने पर भी, जिस पवित्र उद्देश्य से उत्तर हिन्दुस्तानवाले रामलीला मनाते हैं, उसी उद्देश्य से दक्षिणवाले उत्सव मनाते हैं। दशहरे के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न कहानियाँ कही जाती हैं। राम-रावण का युद्ध, दूसरा, क्षत्रियों को दिग्विजय के लिए जाने का सुअवसर, तीसरा पाँडवों का बन्नीवृक्ष पर आयुध रखना और दशमी के दिन उन्हें लेकर लड़ाई पर जाना आदि। जो भी हो, सारे भारत के लिए विजयादशमी राष्ट्रीय उत्सव है। चातुर्वर्ण्य के लोग इसमें भाग लेते हैं। सारे भारत में, प्रधानतः मैसूर में यह उत्सव बड़े धूमधाम से मनाया जाता है। इस प्रकार उत्सव मनाने का रिवाज़ आज से नहीं, सैकड़ों वर्षों से चल रहा है। महाराज इस उत्सव के लिए, दूसरे प्रान्त के राजा, धनी-मानियों आदि को न्योता देते हैं। भारत के भिन्न-भिन्न प्रदेशों से सैकड़ों धनी-मानी-ग़रीब आदि इस अवसर पर आते हैं।

मैसूर के महाराज आश्विन शुक्ल प्रतिपदा से दशमी तक दीक्षा से रहते हैं। प्रतिपदा को सबेरे मंगल स्नान करके अपनी कुलदेवी श्री चामुण्डाम्बिका की पूजा करते हैं। सबेरे नौ बजे के समय मैसूर शहर के सारे मन्दिरों से तीर्थ-प्रसाद आते हैं। राजा अपने कुल-

पुरोहित से आशीर्वाद प्राप्त करते हैं। राजमहल के मन्दिर में नवग्रहपूजा, सूर्य नमस्कार, देवी-देवताओं के पुराण-पठन, मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र जी की रामायण पठन आदि होते हैं। शाम के समय मंगला आरती आदि होती हैं। इस प्रकार नौ दिन शास्त्रानुसार पूजा-पाठ चलते हैं। महाराज आयुध-पूजा के दिन राज्य के हाथी, गाय, घोड़ा, रथ आदि की पूजा करते हैं। विजयादशमी के दिन शाम को ६ बजे हाथी पर जुलूस निकलता है। ७ बजे के समय जम्बूवृक्ष की पूजा करके फिर लौटते हैं। राज्य के सभी बड़े अफ़सर, मन्त्री, मान्य अतिथिगण आदि भी उत्सव में भाग लेते हैं। ९ बजे रात को महल पर वापस लौटते हैं। इस उत्सव को देखने से हमें भारतीय संस्कृति की याद आती है और ऐसा मालूम होता है मानों हम प्राचीन काल के वैभव में गोते लगा रहे हैं। सारा मैसूर नगर बिजली के दीपों से जगमगाता रहता है। चामुण्डी पहाड़ पर जो बिजली के दीप हैं उन्हें देख कर ऐसा मालूम होता है मानो नक्षत्रगण माला के रूप में यहाँ आकर उपस्थित हैं। दशहरे के अवसर पर महाराज का दरबार लगता है। दरबार में मन्त्रिगण महाराज को नज़रें अर्पण करते हैं। महाराज के सिंहासन पर बैठते ही स्त्रोत पाठक प्रशंसा करते हैं। वैदिक लोग वेदमन्त्र पढ़ते हैं। सभी को फल-फूल आदि देने के बाद दरबार खतम होता है। स्वातन्त्र्य प्राप्ति के पहले रेज़िडेण्ट की अध्यक्षता में अंग्रेज़ों का एक दरबार लगता था। अब वह बंद हो गया है। महाराज राज्य के विद्वान्, कवि, कलाकार आदि को प्रशस्तियाँ और इनाम देते हैं। दशहरे के दो-तीन दिन बाद विश्वविद्यालय के उत्तीर्ण विद्यार्थियों को महाराज अपने स्वहस्त से उपाधियाँ वितरण करते हैं। दशहरे के समय एक प्रदर्शिनी होती है, जिसमें भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तों के उच्च व्यापारी लोग भाग लेते हैं। मैसूर का दशहरा हर एक व्यक्ति के देखने योग्य है।

बंगलोर **आर. माधवी**

॥

(३)

भारतीय क्रिकेट टीम की इंगलैण्ड यात्रा

यह परम सौभाग्य का विषय है कि इस देश में भी क्रिकेट का खेल लोकप्रिय होता जा रहा है। और कई खिलाड़ी तो अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त हैं। इस वर्ष हमारे खिलाड़ी ऐसे देश में क्रिकेट खेलने गये हैं जिसने इस खेल को जन्म दे कर संसार को एक अनुपम भेंट दी है। इंग्लैण्ड के हर गाँव, हर कस्बे और हर शहर में प्रायः यह खेल खेला जाता है जब कि भारत में यह केवल कुछ अमीर लोगों तक ही सीमित है।

हमने केवल पिछले बीस वर्षों से ही टैस्ट मैच खेलने प्रारम्भ किये हैं जब कि इंग्लैण्ड ने अपना प्रथम टैस्ट मैच आज से ६५ वर्ष पूर्व १८८७ ई० में मेलबोर्न, आस्ट्रेलिया में खेला था।

ओवल टैस्ट इंग्लैण्ड का ३०० वाँ टैस्ट मैच था। इंग्लैण्ड ने ११६ टैस्ट जीते ९० हारे और ६४ ड्रान रहे। भारत के विरुद्ध १९ टैस्ट मैच खेले जिनमें से भारत ने १ टैस्ट जीता १० हारे और ८ ड्रान रहे।

ऐसे देश के विरुद्ध वहाँ जाकर अनुभव प्राप्त करने वाले खिलाड़ियों के अतिरिक्त अनुभवी खिलाड़ी भेजना ही अधिक श्रेयस्कर होता। पाकिस्तान की क्रिकेट टीम १९५४ के ग्रीष्म में इंग्लैण्ड जायगी। उन्होंने इस वर्ष अपने बहुत से खिलाड़ी इंग्लैण्ड के 'पियेज' का का अनुभव प्राप्त करने के लिये इंग्लैण्ड भेजे।

हमें यह दुःख के साथ मानना पड़ेगा कि हमारे देश में खेलों में भी बड़ी भारी गुटबन्दी है। और इस वर्ष जो मर्चेंट, मनकद, अमरनाथ और मुश्ताक अली जैसे अनुभवी खिलाड़ी टीम के साथ न भेजे गये यह इसी गुटबन्दी का दुष्परिणाम है। क्रिकेट बोर्ड के मुन्शी श्री घोष का यह कथन कि हमारी टीम में नया खून था और उसने काफ़ी अनुभव इस यात्रा में प्राप्त किया, हार-जीत कोई माने नहीं रखती, असंगत मालूम पड़ता है।

बीस वर्ष तक अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में क्रिकेट खेलने के बाद भी हम यदि हार-जीत की चिन्ता अब न करेंगे तो कब करेंगे। यह अनुभव कब तक करते रहेंगे। नौसिखियों को भी साथ ले जाते पर टैस्ट मैच में तो अनुभवी खिलाड़ियों को खिलाते। ट्रूमैन और बैडसर की तेज गेंदों के सामने हमारे खिलाड़ी न टिक सके। यदि कभी कोई टिक सका तो पुराने खिलाड़ियों में से ही कोई टिका।

यदि हमारी टीम में हजारे, मनकद और फड़कर जैसे शांत और धैर्यवाले दो-तीन खिलाड़ी भी और होते तो खेलों का परिणाम कुछ और ही होता जैसा कि जैक

हाव्स ने लिखा है—"भारतीय टीम में टैस्ट मैच में खेलने योग्य खिलाड़ी कम थे। और विशेष बात यह थी कि वह डटना नहीं जानते थे। डट कर सामना करने के साहस की उनमें बड़ी भारी कमी थी।" हमारी टीम केवल टैस्ट मैचों में ही असफल रही। जैसे कोई परीक्षा के नाम से डर जाता है, ऐसा मालूम पड़ता था, वैसे ही हमारे नये खिलाड़ी टैस्ट के नाम से डर जाते थे। इतना सब कुछ होने पर भी हमारे बहुत से खिलाड़ियों ने जो कर दिखाया, वह भी क्रिकेट इतिहास का एक सुन्दर अध्याय बन कर स्वर्ण अक्षरों में लिखा जायगा।

क्रिकेट का खेल बिलकुल अनिश्चित होता है। पौली उम्रीगर जो टैस्ट मैचों में बिलकुल असफल रहे, और मैचों में ३ बार दो-दो शतक बना चुके हैं। हजारे जी रन बनाने की मशीन प्रसिद्ध थे, दुर्भाग्य को साथ ले कर इंग्लैण्ड गये, ऐसा प्रतीत होता है। अभी कैन्ट के विरुद्ध खेलते हुए वह ० पर और कुछ नहीं तो रन आउट ही हो गये। दिवेचा जिन्होंने सरी के विरुद्ध ओवल में ७ विकेट ले कर सारे संसार को चकाचौंध कर दिया उसी मैदान के टैस्ट में कुछ न कर पाये। रामचन्द्र जिन्होंने ओल्ड ट्रेफोर्ड में लंकाशायर के विरुद्ध ७ विकेट लेकर दिखाये उसी मैदान में तीसरे टैस्ट में कुछ न कर सके। विनू मनकद जिन्होंने लार्डस् के टैस्ट में सारे विश्व की प्रशंसा प्राप्त की और जिनके १८४ रन कई वर्षों तक याद रहेंगे ओल्ड ट्रेफोर्ड और ओवल में कुछ न कर सके। और यदि ऐसा न हो तो क्रिकेट के खेल का सारा आनन्द और महत्व ही समाप्त हो जाए।

इस यात्रा से भारत को लगभग १७००० पौण्ड की बचत का अनुमान है। इस पूंजी से खेल को और प्रोत्साहन दिया जाय। हर वर्ष कुछ खिलाड़ी एल्फ ग्रोवर के स्कूल में शिक्षा लेने के लिए भेजे जायँ। जब भारत के हर शहर में यह खेल खेला जाने लगेगा तभी हम इंग्लैण्ड अथवा आस्ट्रेलिया से भली प्रकार सामना करने योग्य हो सकेंगे।

हमने इस बार जो अनुभव प्राप्त किए हैं उनका भविष्य में सदुपयोग किया जायगा, ऐसी हमें आशा करनी चाहिए।

देहरादून

—राजेन्द्रकुमार मित्तल

॥

(४)

लुई फ़िशर और ग्रामसेवा

इस मास अमेरिका के प्रसिद्ध पत्रकार एवं लेखक श्री लुई फ़िशर हैदराबाद पधारे थे। भारत वर्ष में यह उनकी तीसरी यात्रा है। हम अपने कुछ मित्रों के साथ उनके निवास स्थान पर उनसे मिले थे और लगभग ४५ मिनट तक हमारी उनसे बातें होती रहीं।

मुल्की-आन्दोलन, बेरोज़गारी, जनसंख्या की वृद्धि, विद्यार्थियों में अनुशासन आदि बहुत से विषयों पर उन्होंने हम से बातें की, और जानना चाहा कि इन समस्याओं के मूल में जो कारण हैं उन्हें दूर करने के कौनसे उपाय किये जा रहे हैं? श्री फिशर ने बतलाया कि उन्होंने यह अनुभव किया जैसे देश के पढ़े लिखे लोग-अध्यापक और विद्यार्थी, लेखक और पत्रकार इन समस्याओं की ओर आँखें बंद किये हुए हैं। आज सारा भारत भुखमरी, ग़रीबी और अज्ञान के कारण मौत के मुँह में जा रहा है किन्तु यहाँ के पढ़े लिखे लोग सुख की नींद सो रहे हैं—यह आश्चर्य की बात है!

श्री फ़िशर की ये बातें हमारे लिए अप्रिय हो सकती हैं किन्तु इनकी सच्चाई में कोई सन्देह नहीं है।

देश की सबसे बड़ी समस्या बेरोज़गारी है। यह समस्या ऐसी है जो आए दिन नई समस्याओं को पैदा करती है। हमारी समझ में इस समस्या को सुलझाने के दो उपाय हैं और इनमें कोई भी कम महत्व का नहीं है :-

(१) शिक्षा पद्धति और पाठ्य-क्रम में इस प्रकार का परिवर्तन करना कि पढ़े लिखे युवक नौकरियों के चक्कर में न पड़ कर अपने पैरों पर खड़े हो सकें।

(२) देश में ऐसे उद्योग धन्धों को प्रारम्भ करना जिनसे प्रौढ़ों की जीविका की समस्या हल हो जाय। वर्धा-शिक्षायोजना अवश्य इन बातों का ध्यान रखकर बनाई गई थी किन्तु उसका प्रयोग केवल आठवीं कक्षा तक और वह भी कुछ प्रान्तों के कुछ ही स्कूलों में हो रहा है, इन उद्योग-धन्धों की संख्या इतनी सीमित है कि उससे छात्रों में उद्योग की प्रवृत्ति तो पैदा हो सकती है किन्तु उन उद्योगों से जीविका का प्रश्न हल होना कठिन है।

श्री फिशर के इस कथन में सत्य है कि यहाँ के पढ़े लिखे लोग और यहाँ की साधारण जनता अपनी समस्याओं के प्रति पूर्णरूपेण जागरूक नहीं है, जैसा कि एक स्वतन्त्र देश के लोगों को होना चाहिए।

हम विद्यार्थियों और अध्यापकों का ध्यान श्री लुई फ़िशर की इन बातों की ओर आकृष्ट करना चाहते हैं। देश के प्रत्येक स्कूल और कालेज के विद्यार्थी को अपने लिए एक एक गांव चुन लेना चाहिए और उस गांव को कुछ निश्चित समय के भीतर उन्नत दशा में लाने का प्रयत्न करना चाहिए।

कांग्रेस और देश के अन्य राजनीतिक दल जनता से अपना अधिक से अधिक सम्बन्ध बनाये रखना आवश्यक समझते हैं किन्तु यह सम्बन्ध केवल भाषणों के द्वारा नहीं स्थापित हो सकता। विधान परिषदों के सदस्य अपने २ निर्वाचन क्षेत्रों में ऐसा कोई आदर्श गाँव क्यों नहीं बनाते जिसका अनुकरण उस क्षेत्र के अन्य गाँव कर सकें। हमारी समझ में जनता से सम्बन्ध स्थापित करने का यह सीधा, सच्चा और ईमानदारी का रास्ता है।

हैदराबाद —राजकिशोर पाण्डेय एम. ए.

नीर-क्षीर

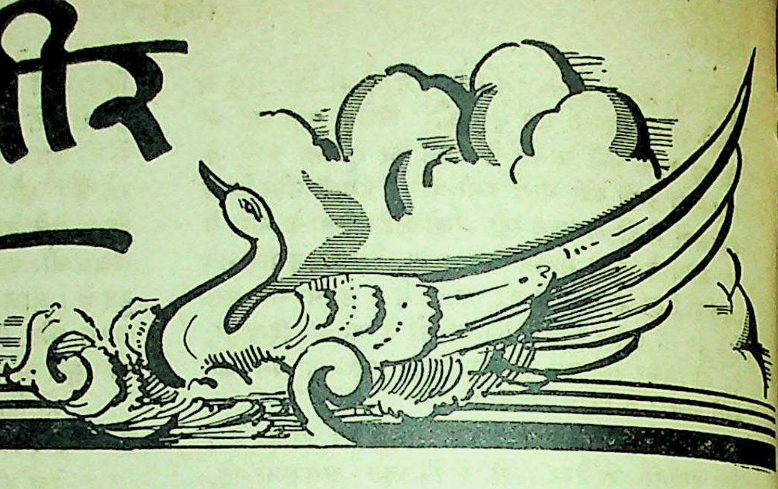

(समालोचना के लिए पुस्तक की दो प्रतियाँ सम्पादक 'अजन्ता' के नाम से भेजी जानी चाहिए)

ताजमहल के आँसू

लेखक—लक्ष्मीनारायण लाल
प्रकाशक—अमर प्रकाशन मन्दिर
५३३ बी., मुट्ठीगंज, प्रयाग
मूल्य— दो रुपये।

'ताजमहल के आँसू' श्री लक्ष्मीनारायण लाल के पाँच एकांकी नाटकों का संग्रह है। 'नूरजहाँ की रात', 'जहाँनारा का स्वप्न' और 'ताजमहल के आँसू' तीन एकांकी मध्य-युग की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि लिए हुए हैं। शेष दो में 'उर्वशी' का सम्बन्ध पुराण काल से है और 'महाकाल का मन्दिर' जैसा कि लेखक ने स्वयं लिखा है प्रसाद जी के असम्पूर्ण उपन्यास 'इरावती' से प्रेरित होकर लिखा गया है। ढलते हुए मौर्य-साम्राज्य की उसमें एक झलक है। भूमिका में समस्या-नाटककार श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र लिखते हैं "नाटक के क्षेत्र में प्रायः २५ वर्ष पहले जिस स्वाभाविकता की, मनोवैज्ञानिक चित्रण, भाषा और भाव की यथार्थ अनुभूति का मार्ग मैंने खोलना चाहा था उसका इस रूप में प्रस्फुटन मेरे लिए तो सन्तोष की बात है ही, हिन्दी नाटक के भविष्य के लिए भी हितकर है।" जहाँ तक भाषा और घटना-क्रम की योजना का प्रश्न है ये सभी एकांकी सफल हैं परन्तु विषय या भाव की दृष्टि से ये एकांकी यथार्थवादी परम्परा को आगे बढ़ाते हों ऐसा नहीं कहा जा सकता। हम समझते हैं इन एकांकी नाटकों का मनोवैज्ञानिक आधार पुष्ट नहीं है।

'उर्वशी' में जहाँ नारी का, चाहे वह अप्सरा हो या राजकुमारी, पुरुष पर मोहित होकर प्रणय-याचना करना अस्वाभाविक है वहाँ पुरुष का, चाहे वह महारथी अर्जुन ही हो, प्रणय-याचना को निर्मम होकर ठुकराना अवांछनीय सा लगता है। यहाँ नाटककार ने आदर्श की दुहाई दी है। अर्जुन एक प्रेमिका का गुरु है दूसरी का शिष्य। अतः किसी को भी स्वीकार करने में वह असमर्थ है। उर्वशी का शाप उसका पाथेय बनता है और अपनी शिष्या उत्तरा को वह पुत्रवधू बनाता है। उत्तरा को इस तरह पुत्रवधू बनाना क्या अर्थ रखता है...क्या अर्जुन का यह निर्णय उचित है? अर्जुन के हृदय में अन्तर्द्वन्द्व भी है, उर्वशी का चित्र उसकी कल्पना में मण्डराता है...पर यह अन्तर्द्वन्द्व पूर्णतया अभिव्यक्त नहीं होता। 'महाकाल का मन्दिर' प्रसाद जी की शैली का स्मरण दिलाता है—घटना-बाहुल्य, भावुकता, साँस्कृतिक उत्थान की माँग, राष्ट्र-प्रेम। चित्रा अपने प्रेमी वसु को मौत का सामना करने के लिए भेज कर राष्ट्र की रक्षा करती है। प्रेम और कर्त्तव्य का क्षीण-सा अन्तर्द्वन्द्व उसके हृदय में है और वह कर्त्तव्य को ही प्रधानता देती है। 'नूरजहाँ की एक रात' में जहाँगीर के कोमल हृदय का स्पन्दन मिलता है, किस तरह वह नूरजहाँ के हृदय पर अधिकार करता है। परन्तु दस वर्ष की लड़की लैला का इतना षड्यन्त्रकारी होना कि वह अपनी माँ नूरजहाँ को जहाँगीर से शादी कर उसे ज़हर देने की सलाह दे बाल-मनोविज्ञान से एकदम अपरिचय दिखाना है। और माँ बेटी से क्या कहेगी किस प्रेमी की सन्तान है वह! लगता है जैसे मुग़ल काल के राजघरानों की दुनिया दूसरी होगी।...वहाँ हवा इश्क़ का हलका मकरन्द लिए बहती होगी! 'जहाँनारा का स्वप्न' एक कोमल हृदय में उठते हुए अरमानों की असफलतापूर्ण कहानी है।

अन्तिम एकांकी 'ताजमहल के आँसू' शाहजहाँ के अन्तर्द्वन्द्व को बहुत सफलतापूर्वक अभिव्यक्त करता है और ऐसा सुन्दर एकांकी लिखनेवाला लेखक निश्चय ही बधाई का पात्र है। उससे भविष्य में और भी अच्छे एकांकियों के सृजन की आशा की जाती है। शाहजहाँ के हृदय में औरंगज़ेब की हत्या करने का विचार तूफ़ान मचाता है। औरंगज़ेब जब उससे मिलने आता है–तो वह अपनी आस्तीन में छुपी कटार से उस पर वार करना चाहता है-पर तभी मुमताज़ की तसवीर और रोता हुआ ताजमहल उसे रोक देते हैं...वह लड़खड़ा जाता है। "ठीक !...शाबाश शाहज़ादियो !...डरना नहीं...आज न जाने कितनी दुश्मनियों का बदला लिया जायगा,...और अभी ताजमहल मुस्कराएगा, अभी मुमताज की वह तसवीर खुश हो जायगी।" कहनेवाला शाहजहाँ अपने अन्तर्द्वन्द्व के कारण ठीक समय पर पागलों की तरह चीख उठता है—"बेटा ! औरंगज़ेब की अम्मी रो रही है !... जोहरा ! मेरा ताजमहल रो रहा है !...बेटी !... बेटी !"

संग्रह के अधिकांश नाटक रेडियो द्वारा प्रसारित किए हुए हैं, उनमें नाटकीय-तत्वों का सफल समावेश है।

जलते प्रश्न (समस्याओं की कहानियाँ)

सम्पादक—विश्वनाथ
प्रकाशक—दिल्ली प्रेस, नई दिल्ली
मूल्य—दो रुपया ;

'जलते प्रश्न' दस कहानी लेखकों की दस कहानियों का संग्रह है जिसके आरम्भ में सम्पादक ने डेढ़ पृष्ठ की भूमिका लिखी है। सम्पादक महोदय को विश्वास है कि ये कहानियाँ न केवल पाठकों का मनोरंजन करेंगी, अपि तु वे पाठकों का ध्यान उन जलते प्रश्नों की ओर खींचने में समर्थ होंगी जिन्हें कोई विचारशील व्यक्ति भुला नहीं सकता। जो कहानियाँ समाज के जलते प्रश्न हमारे सामने रखना चाहती हैं उनका लक्ष्य मनोरंजन भी है यह कोई महत्वपूर्ण बात नहीं हालां कि इस संग्रह की 'चल गई, पट्ठे !' कहानी का अन्त साम्प्रदायिकता के कुम्मीक के गम्भीर चिंतापूर्ण वातावरण के बाद 'खोटी दुअन्नी चल गई' के हल्के फुलके रूप में हुआ है, जैसे मुकरियों को सुलझाना लेखक का लक्ष्य हो ! कुछ कहानियों के सम्बन्ध में यह शिकायत हो सकती है कि उन्हें कहानी न कह कर और कुछ नाम क्यों न दिया जाय ? श्रीमती लीला प्रकाश की कहानी 'जीने का सहारा' मासिक रिपोर्ट है, श्री रामकृष्ण की 'केले के खम्भे' उड़ते विचारों को पकड़ने का प्रयत्न है। थीम के अभाव में इस संग्रह की कुछेक कहानियाँ इसलिए सफलता का पल्ला नहीं पकड़ पातीं क्योंकि उनमें वातावरण की सघनता और अनुभूति की गहराई की न्यूनता है। 'जलता प्रश्न' की २२ पृष्ठ की कहानी अदालत में अपराधी नायक के मुँह से एक सांस में कहलाई गई है। यह कहानी-कला के प्रति अन्याय है। परन्तु इससे इन कहानियों का महत्व नष्ट नहीं होता कारण इनमें उन समस्याओं को छुआ गया है जो हमारे समाज की बर्बरता को व्यक्त करती हैं। विगत शताब्दी में हमारा संघर्ष राजनीतिक प्रश्नों पर ही केन्द्रित रहा था और सामाजिक समस्याओं को हमारे नेता भुलावा देते रहे, आज भी परिस्थिति कुछ बदली नहीं है। आज हमारे सामने आर्थिक समस्या प्रधान है परन्तु इस तरह से समस्याएँ सुलझाई नहीं जातीं। आज तो सार्वमूलक सामाजिक क्रान्ति की आवश्यकता है। नए नैतिक आदर्शों की ज़रूरत महसूस होती है। 'डा. शरत' और 'जलता प्रश्न' कहानियों में विधवा विवाह की आवश्यकता को दर्शाया गया है। एक शताब्दी पहले जिसके विरोध में आन्दोलन प्रारम्भ हुआ था, वह अंध व्यवस्था आज भी हमारे समाज में वैसी ही जड़ बनी है इससे अधिक हमारे समाज की अगतिशीलता का क्या प्रमाण होगा ? और हम बातें करते हैं प्रगति की ! 'शकुन्तला' आधुनिक प्रेम पर गहरा व्यंग्य है। कालिदास की 'शकुन्तला' भारतीय संस्कृति की अमर धरोहर है और आधुनिक शकुन्तला का पावन प्रणय तिरस्कृत और पददलित होकर रह जाता है कि उसका भरत चक्रवर्ती सम्राट् होने के बदले दूसरे का पाप समझा जाता है ! श्री वृन्दावनलाल वर्मा की 'हमीदा' कहानी में एक आवारा गुण्डा मानवीय आदर्श को हमारे सामने रखता है जिसे हम भव्य और महान् कह सकते हैं। "हमीदा ने कहा, 'हिन्दू, मुसलमान दोनों में यह रिवाज़ है कि किसी को कोई बहिन मान ले तो यह पवित्र कल्पना दोनों की रक्षा करने में बड़ी सहायता करती है।' माधव ने हँस कर कहा,—'मुझ सरीखे आवारा गुण्डों के लिए इस कल्पना का थोड़ा सा ही मूल्य है। मैं पूछता हूँ, हमीदा, क्या बिना इस प्रकार के विचार की आड़-ओट के

स्त्री-पुरुष एक दूसरे का मान या पवित्रता नहीं रख सकते ?" अस्तु, इन कहानियों में हमारे नैतिक अर्थों को बदलने की प्रेरणा दी गई है और उनमें व्यक्त दृष्टिकोण स्वस्थ है। इसके साथ ही कुछ कहानियों का नामोल्लेख विषय की भिन्नता के कारण भी किया जाना उचित होगा। 'केले के खम्भे' राष्ट्रीय आन्दोलन का चित्र प्रस्तुत करती है। 'अजय शिखर' उस पत्नी की मनोदशा को प्रकट करती है जो एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक के अनुरूप अपने को ढालने में कठिनाई का अनुभव करती है। 'महावतखां' मुग़लकाल के इतिहास का एक पृष्ठ खोलती है, 'ग़लतफ़हमी' बालक के प्रति किए गए दुर्व्यवहार और मनोविज्ञान के अज्ञान के दुष्परिणामों को प्रकट करती है। प्रस्तुत संग्रह में अपेक्षाकृत नए लेखकों की लेखनी का परिचय मिलता है।

हंस (शान्ति-संस्कृति अंक)

सम्पादक—अमृतराय

हंस-कार्यालय
फ्लैट नं० ७, ५ ए० एलबर्ट रोड
पो॰ बॉ० ६७, इलाहाबाद।

हंस का शान्ति-संस्कृति अंक बंगाल के अकाल और देश के विभाजन के उत्पीड़न के बाद हिन्दी साहित्यकारों की युग-चेतना का सबसे बड़ा प्रतीक है और इधर के हिन्दी साहित्य का एक महत्वपूर्ण प्रकाशन है। चारों ओर युद्ध की गड़गड़ाहट के बीच शान्ति का स्वर चाहे वह किसी खेमे से उठे सर्वदा अभिनन्दनीय है। दो सौ से कुछ अधिक पृष्ठों का यह सचित्र विशेषांक प्रत्येक हिन्दी पाठक का ध्यान आकर्षित करेगा। इस अंक की कहानियाँ, कविताएँ और लेख सभी उच्च स्तर के हैं और उनमें युद्ध पीड़ित मानव की शान्ति के लिए पुकार सुनाई पड़ती है। इस अंक की यह विशेषता है कि सभी विचार-धाराओं के प्रतिनिधि साहित्यकार शान्ति के प्रश्न को लेकर एक ही जगह खड़े हुए हैं। इस तरह सर्वश्री महादेवी, पंत, इलाचन्द्र, यशपाल, राहुल, हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, जैनेन्द्र, सभी के स्वर एक जगह समवेत हो उठे हैं। शान्ति का प्रश्न आज कलाकार के हृदय का किस तरह मंथन कर रहा है इसका उत्तर प्रस्तुत अंक के प्रायः ७० पृष्ठों में प्रकाशित कविताओं में मिलेगा जिनमें देशी विदेशी कवियों की कविताएँ संग्रहीत की गई हैं। शान्ति के प्रश्न की दृष्टि से इस अंक के द्वारा भारत के विभिन्न प्रान्तों और विदेशों के साहित्य का अच्छा परिचय मिलता है। अवश्य इस अंक द्वारा प्रतिपादित दृष्टिकोण में कुछ दूर तक एकांगिता दिखलाई देती है। युद्ध के लिए एकमात्र अमेरिका को उत्तरदायी ठहराया गया है और रूस को केवल अपनी रक्षा के लिए लड़ना पड़ रहा है—यह बताने का प्रयत्न किया गया है। शान्ति का यज्ञ इससे अधिक उदार दृष्टिकोण की अपेक्षा रखता है। आज दोनों पक्षों की ओर से आत्म-निरीक्षण की आवश्यकता है। इस अंक की सामग्री का पूर्ण विवेचन तो स्वयं स्वतन्त्र स्थल की अपेक्षा रखता है। संक्षेप में यही कहा जा सकता है—यह अंक भारतीय साहित्य और विश्व-साहित्य की शान्ति की परम्परा को एक क़दम आगे बढ़ाता है और हम इस सुन्दर प्रकाशन का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं।

साहित्य (त्रैमासिक)

सम्पादक—श्री शिवपूजन सहाय
श्री नलिन विलोचन शर्मा

प्रकाशक—बिहार हिन्दी साहित्य सम्मेलन, पटना।

'साहित्य' में केवल आलोचनात्मक या गवेषणात्मक निबन्ध प्रकाशित होते हैं। हमारे सामने पिछले अक्टूबर का अंक है। 'औपन्यासिक तत्त्व-चिन्तन' (दर्शन) 'मंखलिपुत्र गौशाल' (इतिहास) 'विलायती बाज़ार तथा भारतीय आर्थिक उन्नति की एक योजना' (अर्थशास्त्र) विभिन्न विषयों पर सुन्दर लेख हैं। 'भोजपुरी का विकास' और 'नागरी लिपि में सुधार' भाषाविज्ञान से सम्बन्ध रखते हैं। 'प्रसाद जी की कुछ प्रारंभिक कविताएँ' शीर्षक के अन्तर्गत 'संरक्षक' की पुरानी फ़ाइलों से उनकी छः प्रारम्भिक कविताओं को संग्रहीत किया गया है। इसके अतिरिक्त आधुनिक हिन्दी साहित्य की गतिविधि से सम्बन्ध रखनेवाले लेख भी हैं। हमें आशा है 'साहित्य' हिन्दी पत्रों में शीघ्र अपनी एक विशिष्ट परम्परा बना सकेगा। त्रैमासिक पत्रिका होने के कारण यदि इसकी पृष्ठसंख्या ९६ से अधिक बढ़ाई जा सके और किसी योजना के अनुसार शोध-कार्य को भी प्रोत्साहन दिया जाय तो हम समझते हैं 'साहित्य' का उपयोग और भी अधिक बढ़ सकता है। हिन्दी साहित्य में रुचि रखनेवाले पाठकों को 'साहित्य' में बहुत कुछ नया मिलेगा।

प्रतीक (मासिक)
सम्पादक—स. ही. वात्स्यायन
७।२३ दरियागंज, दिल्ली
मूल्य—१२ आना, वार्षिक ८ रु.

हिन्दी की यदि कुछेक सर्वश्रेष्ठ मासिक पत्रिकाओं का नामोल्लेख किया जाय तो हम समझते हैं उसमें 'प्रतीक' का नाम अवश्य होगा। प्रतीक एक सुन्दर मासिक पत्र मात्र नहीं है वरन् पिछले दशक से एक तरह से हिन्दी साहित्य का नेतृत्व भी कर रहा है। हिन्दी कविता में नवीनतम वाद 'प्रयोगवाद' के आरम्भ का श्रेय 'प्रतीक' को ही प्रदान किया जाएगा। एक द्वैमासिक संकलन के रूप में 'प्रतीक' का प्रकाशन आरम्भ हुआ था। मासिक के रूप में उसके स्वरूप परिवर्तन के कारण जहाँ स्थायी साहित्य के प्रकाशन में कमी आई है (परिमाण में ही, गुण में नहीं) वहाँ कुछेक नए स्थायी स्तम्भों के कारण उसकी अंशतः क्षतिपूर्त्ति हो जाती है। प्रतीक का एक आकर्षण 'गत मास का साहित्य' स्तम्भ है इससे एक स्थान पर बहुत कुछ जानकारी मिल जाती है। जुलाई मास के प्रतीक में श्री स. ही. वात्स्यायन का 'उपन्यासः विक्टोरियन और आधुनिक' अंग्रेज़ी उपन्यास की आधुनिक प्रवृत्तियों का अच्छा परिचय देता है। श्री रामचन्द्र वोड़ा का 'इतिहास-दर्शन' लेख विचार-प्रेरणा देनेवाला है। श्री नरेश मेहता का काव्यमय रेडियो रूपक 'अग्नि-देवता' इस अंक की सब से सबल रचना है। अग्नि एक प्रतीक है ध्वंस और निर्माण का। कवि ने मनु के युग से गांधी-दहन तक के भारतीय इतिहास पर एक उड़ती दृष्टि फेंकी है। कितनी ज्वालाओं में से होती हुई मानवता आगे बढ़ निकलती रही है! कवि अन्त में अग्नि-देवता को शान्ति-पुत्र कह कर उससे अन्न और धन-धान्य बढ़ाने की कामना करता है। स्थानाभाव के कारण इस रूपक का कुछ अंश उद्धृत करने का लोभ संवरण करना पड़ रहा है। इस अंक में अज्ञेय का अग्रलेख 'कलाकार सतीश गुजराल' छपा है जिसके साथ चित्रकार के भारत के विभाजन के बाद साम्प्रदायिक विस्फोट से सम्बन्धित कुछ चित्रों के फोटो छपे हैं। ये चित्र सिहरन सी पैदा करने वाले हैं और इस बात का परिचय देते हैं कि हमारे कलाकारों की जीवन के प्रति कितनी आस्था है। 'बारह खम्भा' उपन्यास की ग्यारहवीं किश्त छपी है। इस उपन्यास का प्रत्येक परिच्छेद भिन्न लेखक का लिखा होता है। हम नहीं समझते उपन्यास भी एक अर्थशास्त्र की पुस्तक है कि उसमें 'उत्पादन' अंश पर कोई एक लेखक लिख दे और 'वितरण' अंश पर कोई दूसरा। पर अज्ञेय जी प्रयोगवादी जो ठहरे! प्रतीक हिन्दी के श्रेष्ठ पत्रों में एक है और हम उसकी उत्तरोत्तर उन्नति और दीर्घायु की कामना करते हैं।

नया जीवन (मासिक)
प्रकाशक-कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर'
विकास लिमिटेड, सहारनपुर
मूल्य—८ आना, वार्षिक ५ रुपया

'नया जीवन' के मुखपृष्ठ पर दिया हुआ चित्र भी शक्ति का प्रतीक है। रथ के दो शेरों को जंजीर से पकड़े माँ खड़ी है पास में पुत्र अर्थात् 'नयाजीवन' शेर की शक्ति मुठ्ठी में लेकर बढ़ना चाहता है और उस लक्ष्य पर पहुँचना चाहता है जहाँ जाकर हमारी नई पीढ़ी शक्ति और सुख का अनुभव कर सके। इसमें आज की आर्थिक व्यवस्था के प्रति तिलमिलाहट है। रचनाएँ पठनीय हैं। विदेशी साहित्यकारों में 'स्टिफन ज्विग' और 'एडगर एलन पो' के परिचय सुन्दर हैं। 'हमारे दादा महान्' लेख में श्री माखनलाल चतुर्वेदी के संस्मरण श्री रामनारायण-उपाध्याय ने लिखे हैं। 'नया-जीवन' के स्थायी स्तम्भों में प्रेरणापूर्ण मनोरंजक सामग्री रहती है।

राष्ट्र सेवक (त्रैमासिक)
सम्पादक—रजनीकान्त चक्रवर्ती
आसाम राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, गुवाहाटी
मूल्य—१२ आना, वार्षिक तीन रुपया

'राष्ट्र सेवक' असम-राष्ट्र-भाषा प्रचार समिति का मुखपत्र है। आज हिन्दी किस तरह सभी प्रदेशों में स्वेच्छापूर्वक अपनाई जा रही है इसका आभास आसामी लेखक श्री लोकनाथ बराली के लेख "राष्ट्रभाषा हिन्दी और राज्यिक भाषाओं" से मिलता है। वे लिखते हैं "हिन्दी भाषा के साम्राज्यवाद का जो डर दिखाया जा रहा है वह बे-बुनियाद है।" आसाम से निकलनेवाले इस पत्र में दक्षिण भारत के हिन्दी प्रचारक श्री जे. सत्यनारायण जी का परिचय सम्पादक के "हिन्दी प्रचार के लिए डरो मत...थको नहीं," प्रेरणादायक नोट के साथ छपा है। असम राष्ट्रभाषा समिति का कार्य विवरण इस पत्रिका में मिलता है। इस पत्रिका का एक "असमिया विभाग" है जिसमें असमिया साहित्य का अच्छा परिचय रहता है।

हैदराबाद —हरिकृष्ण पुरोहित, एम. ए.

सामयिक

॥

कविकोण्डल वेंकटराव

तेलुगु साहित्य-क्षेत्र में श्री कविकोण्डल वेंकटराव का महत्वपूर्ण स्थान है। वे एक गीतकार और कथाकार हैं।

राजमुन्दरी के नागरिकों तथा उनके अन्य प्रशंसकों ने गत २० जुलाई को धूमधाम से उनकी ६१ वीं वर्षगांठ मनाई है। कोरुकुण्डा के पास राजमुन्दरी तालुके में स्थित श्रीरंगमपट्टम गाँव में श्री वेंकटराव का जन्म हुआ था। श्रीरंगमपट्टम एक बहुत रमणीय स्थान है। यहाँ दो बड़े तालाब हैं जिनके पीछे आई हुई पर्वत श्रेणी प्रकृति-सौन्दर्य की सुन्दर अभिव्यंजना करती है। अपने शैशव काल में श्री वेंकटराव इन तालाबों के सौन्दर्य से प्रभावित हुए थे और कदाचित वर्ड्सवर्थ की तरह तालाबों से उन्हें प्रेरणा मिली। जिस समय उन्हें 'कोण्डा कोल्लानु विकासिंचेटोपाला (जो पर्वत और झील से प्रेरित हुआ हो) कवि' के नाम से सम्बोधित किया जाता है तो उन्हें प्रसन्नता का अनुभव होता है।

गवर्नमेन्ट आर्ट्स कालेज में अध्ययन करते समय वे प्रिंन्सिपल ओडवाल्ड कोल्ड्रे से प्रभावित हुए जिनसे डी. रामाराव और अडावी बापीराजू के समान बहुत से कलाकारों को प्रेरणा मिली थी। श्री वेंकटराव की कविता प्रधानतः प्रकृति-आराधन के भावों से पूर्ण है। अपनी लघु-कथाओं में उन्होंने मध्यम वर्ग और निम्न मध्यवर्ग के जीवन की तसवीरें खींची हैं। वेंकटराव तेलुगु गद्य के उन थोड़े से लेखकों में से हैं जो अपने पात्र मज़दूर वर्ग से लेते हैं। पेशेवर वकील होते हुए भी उन्होंने अपना अधिकांश समय साहित्य-सेवा में बिताया है। श्री कोल्ड्रे ने सन् १९२१ में उनकी चार कविताओं का अंग्रेज़ी में अनुवाद किया था जो 'द बेकन' में प्रकाशित हुई थीं। उनकी दो कविताओं का भाव हम नीचे देते हैं:—

स्वागत

"अपने चारों ओर के आनन्द लोक से निकल कर
नये वातावरण में आकर बालक घबरा उठता है
वह रोता है जब उसे कोई सहायक नहीं मिलता
क्योंकि इस संसार में वह एक अजनबी होता है।
यहाँ सभी चेहरों से अपरिचित होने के कारण
वह उन्हें सन्देह की दृष्टि से देखता है
यहाँ की कोई भाषा न जानने से
वह अस्पष्ट वाणी में टूटे-फूटे शब्द बोलता है।

इस सन्देह से कि कोई उसकी हथेली पर लिखे हुए
भाग्य को न पढ़ ले
वह अपनी छोटी मुट्ठियों को ज़ोर से बन्द कर लेता है
अपने कोमल लाल पाँवों पर चलने से डरता हुआ
वह उन्हें सिकोड़ लेता है
चाहता है कोई उसे चलना सिखलाए

हे महान् संसार, उसका हृदय से स्वागत कर
प्रेम से अपनी बाहुओं में भर ले
अपनी मुस्कानों की चन्द्र किरण से उसकी आँखों को आँज
और वे गीत गा
जिन्हें सुन कर वह संसार की राह को पहचाने

क्या तुम्हें सब नया नया लगता है? नहीं, प्यारे बच्चे
यह दुनिया तो बहुत पुरानी है!
यहाँ तुम्हारे माता और पिता हैं, यहाँ तुम्हें
सबसे निकट, सबसे प्रिय सम्बन्धी तथा मित्र मिलेंगे।"

खलिहान की भूमि

"दादी! तुम यहाँ क्यों खड़ी हो?
जब फ़सल कट गई अब खेत में क्या चुनती हो?
चावल के दाने सभी निकाल लिये गये,
अब यहाँ कुछ नहीं है—
जो ग़रीबी में तुम्हारी सहायता करे।
तुम अपने को व्यर्थ कष्ट देती हो।

खेत का मालिक कब का गाड़ियाँ लाद कर ले गया
उसने अपने कोठे भर लिए
धान काटने और बीननेवालों ने अपना हिस्सा ले लिया
जो उन्हें मज़दूरी के तौर मिला था, और चले गये,
जो बचा वह मेहतरानी ले गई
और ज़मीन को झाड़ू से साफ़ कर दिया
देखो सारी धरती सुनसान और नंगी दिखाई देती है
जैसे किसी ने उसे लूट लिया हो।

तब यहाँ क्या पाने की आशा से खड़ी हो?
अपनी उम्र का विचार करो, इस चिलचिलाती धूप में
क्यों खड़ी हो?"
इस तरह मैंने उस बुढ़िया से कहा, जो अकेली
धान के फूस को इकठ्ठा कर उसमें से दाने चुन रही थी।
मुसकरा कर उसने उत्तर दिया: ग़रीबी का हवाला
न देकर अपने अंचल में दानों को दिखाते हुए-
"प्यारे बेटे, क्या रात भर यह मेरे पेट
के लिए काफ़ी नहीं होगा?
जो जूठन में डालती हूँ उससे भी वहाँ चिड़ियाँ
पेट भर खाकर सन्तुष्ट होंगी
क्योंकि हमारे गाँवों की उपज जिसमें संतोष का कल्पवृक्ष
लगता है, कभी समाप्त नहीं होती।"

॥

कार्टून की कला

ऑल इण्डिया रेडियो, हैदराबाद से श्री ईश्वरराज माथुर ने कार्टूनों की कला पर एक वार्ता दी थी। जिसका अनुवाद हम नीचे दे रहे हैं:

वर्तमानयुग के व्यस्त जीवन में बीमारी से दूर रहने के लिए दिन में एक बार भी मुक्त हँसी हँस पाना वास्तव में एक समस्या है। हमारे दैनिक पत्रों में कार्टून और हास्य-चित्तियों (Comic strips) की कला के प्रवेश से इस कमी को कुछ अंशों में पूरा किया जाता है। कार्टून का हमें आभारी होना चाहिए कि बिलकुल एकान्त में भी कम से कम एक बार हम मुक्त हँसी का आनन्द ले सकते हैं।

प्रत्येक सभ्यता और युग की अपनी शैली, अपनी विशेषताएँ और कला के अपने प्रतीक रहते हैं जिनका आधार उस समय की विज्ञान की अवस्था, यान्त्रिक अन्वेषण, धार्मिक और दार्शनिक विचार, सामाजिक संगठन या वर्ग-सम्बन्ध होते हैं। भौगोलिक परिवेश और आर्थिक परिस्थितियों का भी कला के स्वरूपों पर गहरा प्रभाव पड़ता है। यह कार्टून की कला के सम्बन्ध में पूर्णतः सही है।

कार्टून कला का उदय अठाहरवीं सदी के उत्तरार्द्ध में हुआ। पहले पंच, फिर स्पेक्टेटर और बाद में टेटलर ने भर्त्सनायुक्त और व्यंग्यपूर्ण चित्रों के रेखा-चित्र छापने आरम्भ किए जिससे कि वे अपने विरोधियों का अच्छी तरह मज़ाक़ बना सकें और अपने ज़माने के लोगों पर जो पुराने रीति-रिवाज़ों में बँधे थे खुल कर हँस सकें।

कार्टून की कला अभिव्यंजना की कला की श्रेणी में आती है। अभिव्यंजना की कला में आँखों से देखी चीज़ों को कम व्यक्त किया जाता है। इस कला की विशेषता है मनुष्य के स्वप्नों को व्यक्त करना, तथा उसके भय और शंका को कलात्मक ढंग से व्यक्त करना। अभिव्यंजना कला में आदिम, मध्ययुगीन, और आधुनिक युग के कारण अभिव्यक्ति में अन्तर नहीं पड़ता, न मनुष्य के जाति-भेद के कारण ही अन्तर आता है। अभिव्यंजना कला मनुष्य के सार्वदेशिक और सार्वकालिक, सनातन भावों को व्यक्त करने की कला है। मनुष्य की कल्पना और विचार विश्व मानव की आत्मा के अनुरूप व्यक्त होकर उससे सामञ्जस्य स्थापित करते हैं।

कार्टून कला अब एक प्रौढ़ कला का स्थान प्राप्त कर चुकी है। अतः इसके द्वारा किसी खास जनसमुदाय के नैतिक मान या उद्देश्य ही नहीं व्यक्त होते अपि तु कलाकार की अनोखी दृष्टि (vision) भी अभिव्यक्त होती है। इसलिए अन्य कलाओं की अपेक्षा उसकी विशेषता नैसर्गिता और अपरिवर्तनशीलता है जैसा कि सांस्कृतिक सन्दर्भ में इसके भावात्मक रूप की नपी तुली गति और सर्वांगीण एकता तथा उसकी समाज पर प्रभावडालने की शक्ति और गतिशील बनाने की प्रेरणा-शक्ति से मालूम होता है।

कार्टून कला की दूसरी विशेषता यह है कि

वह सामाजिक कथा, उसके प्रतीक, उसकी प्रतिमूर्ति को व्यक्त करती है जिसके द्वारा व्यक्ति के जीवन को सर्वोच्च स्तर पर पहुँचाया जा सकता है । यह कला भावी समाज के लिए आलोक स्तम्भ का काम करती है जिसमें आज के भय, शोक, और भग्न-स्वप्निलता को सौन्दर्य भलाई, और सत्य पराजित कर सकेंगे ।

कार्टूनकार की सबसे बड़ी और महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि वह कठिन बातों और घटनाओं को भी बहुत मनोरञ्जक ढंग से प्रदर्शित करता है, वह इतने विचित्र ढंग से व्यक्त करता है कि देखने से हँसी आती है। कार्टूनकार एक सच्ची घटना को लेता है और उससे नाटकीय प्रभाव डालने के लिए उसे बढ़ा-चढ़ा कर व्यक्त करता है । साथ ही वह उस स्थिति को इस तरह व्यक्त करने की कोशिश करता है कि हँसी अवश्य आए । इसके लिए वह शेक्सपियर, डिकन्स, मिल्टन जैसे साहित्यिक महारथियों की कृतियों से ऐसे अंशों को उद्धृत करता है जो वास्तविक स्थिति को व्यंग्यात्मक ढंग से व्यक्त करने में सहायक होते हैं । कार्टूनकार या पत्र में हास्य-विनोद के चित्र बनानेवाला यह झूठा ख़याल नहीं करता कि वह अमर कलाकार होगा । उसका सर्वोच्च लक्ष्य होता है प्रतिदिन एक हँसी का सामान पैदा करना, और वह जानता है कि आज का व्यंग्य चित्र कल भुला दिया जाएगा ।

संसार के प्रगतिशील देशों में कार्टून कला और हास्य-चित्तियों (Comic Strips) ने एक बड़े कारोबार का महत्त्व प्राप्त कर लिया है । अमरीका में ऐसे कलाकार हैं जो कार्टूनों से प्रति वर्ष ५००,००० डालर या अधिक भी कमा लेते हैं । संसार के प्रायः सभी बड़े समाचार-पत्रों में कार्टून और हास्य चित्तियाँ एक साधारण विशेषता हो गई हैं । इसके लिए यह आवश्यक है विशेष घटनाएँ, व्यक्ति-विशेष हमेशा मिलते रहें जो कार्टून बनानेवाले या हास्य चित्तियाँ बनानेवाले कलाकार की कृतियों के विषय हो सकें ।

फ़ैशन की पत्रिकाओं से पन्ने फाड़ कर इन कलाकारों की फ़ाइलों में चिपकाए जाते हैं, और उन्हें देख कर वे चित्र बनाते हैं जिनका ज्ञान उन्हें नहीं होता। कलाकार इन फ़ैशन चित्रों की अविकल अनुकृति नहीं करता। लेकिन वह अपने कार्टून बनाने में असली चित्र की रूपरेखा रखने की कोशिश करता है ।

यह बड़ी मनोरंजक बात है कि सम सामयिक व्यंग्य कार्टूनकार जिमी हैटलो कार्टून बनाने के लिए किस प्रकार अपने विचार प्राप्त करता है । ६०० से ८०० तक चिट्ठियाँ उसके पास आती हैं, और हर पत्र में हर चीज़ की आलोचना रहती है । आडम्बर, छोटी-मोटी धोखेबाज़ी और सामाजिक बहस की ये चिट्ठियाँ और फ़ैशन पत्रिकाओं से फाड़े हुए पन्ने कलाकार को कार्टून बनाने के लिए उन विषयों से अवगत कराते हैं जिन्हें वह नहीं जानता ।

"वे हमेशा यही करेंगे" शीर्षक कार्टून में हैटलो प्रतिदिन अपने विचारों को व्यक्त करता है । यह कार्टून लगभग ५०० समाचारपत्रों में प्रतिदिन प्रकाशित होता है । ये चित्र बताते हैं कि मनुष्य जाति अपने साथियों का पूरा ख़याल नहीं करती और मनुष्यों का एक समुदाय दूसरे समुदाय के बारे में निराशापूर्ण विचार रखता है ।

लो, वाल्ट डिज़ने और कुछ हमारे अपने देश के कार्टूनकार भी आजकल बहुत से लोगों को आमोद-प्रमोद के साधन प्रदान कर रहे हैं । श्री जवाहरलाल नेहरू ने हमारे देश के एक प्रमुख कार्टूनकार की प्रशंसा करते हुए कहा: "उसमें अपूर्व प्रतिभा है जो भारत में अन्य स्थलों की अपेक्षा और भी दुर्लभ है। बिना जलन और द्वेष के एवं कलाकार की कुशलता से वह उन सब लोगों की कमज़ोरी और कमी को प्रदर्शित करता है जो हमारे सामने सामाजिक रंगमंच पर आते हैं। वह इस तरह हम सब की सेवा करता है जिसके लिए हमें उसका कृतज्ञ होना चाहिए । हमारा स्वभाव है तड़क-भड़क दिखाने का और स्वार्थी होने का और इसलिए यह आवश्यक है कि समय-समय पर हमारे झूठे अभिमान का पर्दाफ़ाश किया जाय । मुझे आशा है कि वह दीर्घकाल तक हमें प्रकाश दिखाएगा, हमें दिल बहलाने का सामान प्रदान करता रहेगा और हमारा मान-मर्दन करता रहेगा ।"

व्यंग्य-चित्र बनानेवाला अपनी कला-कुशलता का उपयोग कर वर्तमान समय के राजनीतिक परिवर्तनों का वास्तविक महत्व हमारे सामने प्रस्तुत करता है। बड़े मनोरंजक ढंग से वह राजनीतिक सूक्ष्मताओं को चित्रित करता है । उसने हमें मनोरंजन का साधन ही नहीं अपितु एक नया दृष्टिकोण भी दिया है जिसने हम वर्तमान

समय की घटनाओं पर विचार कर सकें।

हाल के एक व्यंग-चित्र में भाषा-वार प्रान्तों की माँग को बड़े प्रभावोत्पादक रूप से दिखाया गया है। व्यंग-चित्र का शीर्षक है "भिखारी तुम्हारा पड़ोसी"। उसमें स्त्रियाँ फलों की टोकरी लिए वृत्ताकार रूप में बैठी हैं। इसमें यह दिखाने का प्रयत्न किया गया है कि हर भाषा-वार प्रान्त अपने आसन्नवर्ती प्रान्त के कुछ हिस्से को लेना चाहता है।

डिज़्ने के कार्टून अत्यन्त प्रभावशाली होते हैं। डिज़्ने आधुनिक ईसप है। पुराने युग की तरह वह कथा कहता है जिसमें प्रायः ईसप की कथा को ही घुमा-फिरा कर कहा जाता है। उसके कार्टून भी पुरानी कथाएँ कहते हैं जिनमें समसामयिक युग का चित्रण रहता है।

डिज़्ने के विचित्र चित्रों में इस प्रकार की छाप का होना बड़ी मनोरंजक बात है। लेकिन यह विचित्रता उतनी कृत्रिम नहीं है जितनी दिखाई देती है। यद्यपि, डिज़्ने के कार्टूनों के दृश्य और पात्र कथानकसम्बन्धी हैं पर उनकी घटनाओं का आधार सच्ची बातें हैं। यही कारण है कि "थ्री लिट्ल पिग्ज़" मंदी के युग में प्रकाशित होने के कारण उसे आज की आर्थिक स्थिति का प्रतीक समझा गया। बहुत से लोगों को इस फ़िल्म से यह संकेत मालूम हुआ कि "अभेद्य घर" के सृजन करने से ही भूख और भय का "बड़ा डरावना भेड़िया" दूर किया जा सकता है। जब कि बैंक जहाँ-तहाँ फेल हो रहे हों, दिवालियापन की भरमार हो, बेकारी हो, ऐसे समय में "थ्री लिट्ल पिग्ज़" का संवाद बड़ा स्पष्ट था—विशेषकर रूज़वेल्ट की अमेरिका वासियों से मशहूर अपील के बाद कि वे एक बने रहें, आशा न छोड़ें। चित्र के कथानक का "बड़े भयानक भेड़िए से कौन डरता है" गीत रात भर में लोकप्रिय हो गया। और सारे राष्ट्र पर इसका प्रभाव पड़ा। इस फ़िल्म का आधार बच्चों की एक सर्वप्रिय परी की कहानी थी। यह फ़िल्म और इसके सजीव कार्टून समय की परिस्थिति और प्रवाह के कारण एक दुःखी राष्ट्र के लिए आशाजनक सिद्ध हुए।

मैं उस दिन का इन्तजार कर रहा हूँ जब हमारे कार्टूनकार भी "मिकी माउस" जैसे कार्टून बना कर कार्टून कला में नई जान डालेंगे और उसे चलचित्र के उपयुक्त बना सकेंगे।"

॥

हिन्दुस्तान का ख़तरा

हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद दक्षिण, के तत्वाधान में अमेरिका के विख्यात लेखक और पत्रकार श्री लुई फ़िशर ने यहाँ के लेखकों को सम्बोधित करते हुए अपने विचार प्रकट किए जिनका सारांश नीचे दिया जाता है :

"आज के युग के एकाधिकार, स्टालिन और माओ इन सब का उत्तर महात्मा गान्धी के रूप में मिलता है। महात्मा जी मनुष्य के प्रति प्रेम-भावना को प्रधानता देते थे और जनता को मौत के मुँह में ढ़केल कर राष्ट्र को महान् बनाने में उनका विश्वास नहीं था। गान्धी जी के लिए, जिन्होंने मुझे सब से अधिक प्रभावित किया है, स्वतन्त्रता का अर्थ हिन्दुस्तान को स्वतन्त्र बनाना नहीं था वरन् वे हिन्दुस्तानियों को स्वतन्त्र देखना चाहते थे। स्वतन्त्रता के बाद आज हिन्दुस्तान की दशा देख कर मुझे अत्यन्त निराशा होती है। कहीं कुछ नहीं बदला है। स्वतन्त्रता के कारण नैतिक बल नहीं बढ़ा है, न सामाजिक क्रान्ति हुई है और न हिन्दुस्तानियों के जीवन के प्रति दृष्टिकोण में ही कोई विशेष अन्तर दिखलाई देता है। राष्ट्रीयता बहुत बड़ा आदर्श नहीं है न राजनीतिक स्वतन्त्रता ही अन्तिम ध्येय हो सकता है। गान्धी जी ने 'हिन्द स्वराज्य' में लिखा था, स्वतन्त्रता का यह अर्थ नहीं है कि गोरों का स्थान काले ले लें।

हिन्दुस्तान आज ख़तरे में है क्योंकि यहाँ के लोग गाँवों की सामाजिक और आर्थिक दशा सुधारने के लिए कुछ भी प्रयत्न नहीं कर रहे हैं। आज गांवों की जनता के सामने अकाल का ख़तरा है, हल जोतने के लिए ज़मीन का अभाव है, निरक्षरता और बीमारियों के वे शिकार हो रहे हैं। वे दुःखों और कष्टों की ऐसी कठोर जिन्दगी बिता रहे हैं जिसके भार को सहना मानवीय साहस के लिए संभव नहीं है। महात्मा गान्धी का आदर्श सामने होते हुए इस देश के निवासियों के लिए उनके कार्य को चालू रखने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। जहाँ लोग किसी काम के लिए सरकार की ओर आँख लगाए बैठे रहते हैं वहाँ व्यक्ति का कुछ मूल्य नहीं होता। युगोस्लाविया के मार्शल टिटो स्टालिन के गहरे मित्र रहे हैं। मैं स्वयं चौदह वर्ष रूस में रह चुका था अतः उनसे मिलने पर स्वभावतः मैंने पूछा "मार्शल स्टालिन के सम्बन्ध

में आपके क्या विचार हैं ?" टिटो ने जो शब्द कहे वे हूबहू यह थे, "स्टालिन के लिए व्यक्ति का कोई महत्व नहीं होता।" यह अधिनायकत्व है। इसमें केवल एक प्रणाली है, हृदय या मानवीय-भावना को यहाँ कोई स्थान नहीं। रूस उस स्थिति में पहुँच गया है और आज साम्यवादी चीन उसी रास्ते पर चल रहा है। द्वितीय महायुद्ध में चर्चिल की दूरदर्शिता के कारण इंग्लैण्ड अपनी रक्षा कर सका था। परन्तु युद्धोत्तर-काल में वहाँ की जनता ने चर्चिल के विपक्ष में अपना मत देकर उसे हटा दिया। यह रूस में सम्भव नहीं है। वहाँ स्टालिन को इस तरह नहीं हटाया जा सकता। इंग्लैण्ड के प्रजातन्त्र और रूस के एकाधिकार का यह अन्तर स्पष्ट है।

जब तक गाँवों में रहनेवाले करोड़ों मनुष्यों की आर्थिक अवस्था को नहीं सुधारा जाता भारत में लोकतन्त्र कभी सफल नहीं हो सकता। विद्यार्थी और शिक्षक गाँवों में जा सकते हैं और वहाँ जाकर उन्हें केवल निरक्षरता को ही नहीं हटाना है अपि तु वहाँ के लोगों के जीवन-स्तर को उठाने का प्रयत्न करना चाहिए। उनको गाँवों में जाकर वहाँ रहना चाहिए। आज भारत में बहुत से बेकार बुद्धिजीवी हैं और इसका क्या कारण है वास्तव में मैं नहीं समझ पाता। इन बुद्धिजीवियों को इसकी प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए कि कोई उन्हें काम देगा, परन्तु उन्हें तो अपना काम स्वयं ढूंढ़ना है।

मैं अन्तर्राष्ट्रीयता में विश्वास करता हूँ और अपना सम्बन्ध किसी एक देश से नहीं मानता। जो लोग पीड़ित और दुःखी हैं उन्हें देख कर मेरा हृदय व्याकुल होता है। मैं समझता हूँ भारत में दुःख और दरिद्रता अधिक है। इस देश के साथ मेरा सम्बन्ध और भी गहरा है।"

॥

भारत की अपराधी जातियाँ

अमेरिका के प्रसिद्ध साप्ताहिकपत्र "टाइम" में भारत की अपराधी जातियों के सम्बन्ध में एक नोट छपा है जिसे हम यहाँ उद्धृत कर रहे हैं।

"प्राचीन भारत में प्रत्येक छोटे सत्ताधारी के पास अपने गुप्तचरों और अखाड़ेबाज़ों की व्यक्तिगत सेना रहती थी। सोलहवीं सदी में शक्तिशाली मुग़लों ने इस देश को विजय किया और इन छोटे शासकों को समाप्त कर दिया। उनके पिछलगुए नौकरी से अलग कर दिए जाने पर डाकू और आवारा बन गए जिनकी भारत की अपराधी जातियों में परिगणना की जाने लगी। उन अपराधियों की अनुमानित संख्या ४,५००,००० है।

प्रत्येक जाति ने अपनी निजी विशेषता का विकास किया। कबूतरी नट जाति जो अपनी सुन्दर स्त्रियों के लिए प्रसिद्ध है नाचनेवालों की जाति के रूप में विकसित हुई। बरवार लोगों ने दिन दहाड़े रात में ठहरे हुए लोगों के यहाँ चोरियाँ करना आरम्भ किया। खानाबदोश पंजोरा-जाति पालतू जानवरों को चुराने लगी। हरनी लोग अपनी औरतों से जबरन वेश्या-वृत्ति कराने लगे और ग्राहकों को इकट्ठा करते। जब प्रायः बेहद गर्मी होती फ़कीरों के वेश में छुपे वे जिज्ञासुओं से बचने के लिए अपने साथ किसी कोढ़ी को लिए हुए उन ग्राहकों को पीटते। अन्य झुण्ड भी इन्हीं के चट्टे-बट्टे होते। बच्चों को जननी के दूध के साथ अपराधों की सीख पिलाई जाती थी। कुछ जातियों के लोग चांदी के रुपए को दबा कर एक डोरे में बांध नवजात शिशु के गले के अन्दर डाल देते जहाँ वह एक डिबिया सी बना देता जो बड़े होने पर चुराए हुए सिक्कों और हीरे-जवाहरातों को छुपाने के काम आती।

अंग्रेज़ों ने ठगी को समाप्त कर दिया। किन्तु अन्य लोगों को उन्होंने अपराधी जातियों के रूप में मान्यता दी। सन् १८७१ के अपराधी जातियों के कानून के अन्तर्गत इनसे भी भयंकर गिरोहों को विशेष जगहों में अलग बसाया गया। उनके समाज के सभी सदस्यों को चाहे वे व्यक्तिगत रूप में अपराधी रहे हों या नहीं चौदह वर्ष की उम्र में अपना नाम दर्ज कराना पड़ता और किसी भी अपराध के लिए साधारण अपराधियों की अपेक्षा उन्हें कहीं अधिक दण्ड का भागी होना पड़ता। पिछले सप्ताह बम्बई और मद्रास सरकार के उदाहरण पर उत्तर-प्रदेश की सरकार ने अपराधी जातियों के कानून को हटा दिया है और इस तरह भारतवर्ष की अपराधी जातियों में से थोड़े से लोगों को आधे जेलखाने की जिन्दगी से मुक्ति मिली है।

अधिकारियों को यह भ्रम कदापि नहीं था कि इतने ही से इन जातियों के लोग अपने पूर्वजों के पेशे को छोड़ने के लिए आसानी से तैयार हो जाएँगे। पर उन्हें आशा है वंशानुगत अपराधी की छाप हटाई जाने पर उन्हें अन्त में विश्वास दिलाया जा सकेगा कि अपराधी के रूप में जीवन अधिक उपयोगी नहीं हो सकता।"

सम्पादकीय

अंग्रेज़ी भाषा के लिए अपील

अभी कुछ दिन हुए भारतवर्ष के कुछ प्रसिद्ध वैज्ञानिकों ने अंग्रेज़ी भाषा की पढ़ाई को पूर्णतया सक्षम रखने के लिए अपील की है। वे यह समझते हैं कि यदि इस देश में अंग्रेज़ी भाषा की क्षमतापूर्ण ठीक शिक्षा नहीं दी जाएगी तो हमारे देश में साधारणतया समस्त ज्ञान की और विशेषतया विज्ञान की अवगति और गति दोनों रुक जाएंगी। हम अंग्रेज़ी भाषा के विरोधी नहीं हैं। ज्ञान और विज्ञान की अधिकांश पुस्तकें इस समय अंग्रेज़ी में उपलब्ध होती हैं। हमारे देश की भाषाओं में ज्ञान और विज्ञान का साहित्य उपलब्ध नहीं होता। परन्तु यदि हमारा देश अपना कार्य अंग्रेज़ी से ही चलाता रहा तो वर्त्तमान अवस्थाओं में पर्याप्त समय तक किसी प्रकार के परिवर्त्तन की सम्भावना नहीं है। हमारे देश में इस समय बहुत-सी वैज्ञानिक परीक्षणशालाओं का निर्माण हो रहा है। दुःख तो यह है कि हमारे वैज्ञानिक जो भी नया अनुसंधान करते हैं वे उसे अंग्रेज़ी में ही लिखते हैं। यह बात तो नहीं है कि हमारे देश में आज महान् विचारक या वैज्ञानिक नहीं हैं परन्तु वे अपनी पुस्तकें अंग्रेज़ी में ही लिखते हैं, अपने देश की भाषाओं में नहीं। हमारे देश की भाषाओं में तो प्रायः कहानी, उपन्यास, कविता और इसी प्रकार का साहित्य प्रकाशित हो रहा है और यदि इनके लेखक भी अंग्रेज़ी में ही लिखें तो हमारे देश की भाषाओं में यह साहित्य भी सम्भवतः उत्पन्न न हो। क्या जर्मनी, फ्रांस, जापान, रूस आदि देशों के विचारक या वैज्ञानिक अपने विचारों या अनुसन्धानों को अंग्रेज़ी भाषा में लिखते हैं? वैज्ञानिकों को जर्मन, फ्रांस, रूस आदि के वैज्ञानिकों के अनुसन्धानों को जानने के लिए जर्मन, फ़्रेंच, और रूसी भाषाओं को सीखना पड़ता है। यदि हमारे देश के विचारक और वैज्ञानिक अपनी पुस्तकों को अपने देश की भाषाओं में लिखेंगे तो जहाँ उनके विचारों और अनुसन्धानों से हमारे देशवासी सुगमता से परिचिति और प्रेरणा प्राप्त कर सकेंगे और हमारे देश का साहित्य मौलिक रूप से समृद्ध हो सकेगा वहां अन्य देशों के वैज्ञानिकों को भी हमारी देश की भाषओं को पढ़ना आवश्यक हो जाएगा। यदि श्री रवीन्द्रनाथ ने अपनी पुस्तकों को बंगाली में न लिखा होता तो क्या वे बङ्गाली में नया साहित्य, नई विचारधारा और नए संगीत को उत्पन्न कर सकते? बहुत-से विदेशी लोग रवीन्द्रनाथ को समझने के लिए बङ्गाली भाषा को पढ़ते हैं। क्या हमारे देश के विचारक और वैज्ञानिक भारतवर्ष की भाषाओं में अपने विचारों या अनुसन्धानों को नहीं लिख सकते? क्या कोई ऐसी अखिल भारतीय वैज्ञानिक परिषत् नहीं बन सकती जो विज्ञान की पुस्तकों को प्रामाणिक रूप से अल्प समय में भारतीय भाषाओं में रूपान्तरित कर दे। अंग्रेज़ी के शिक्षण को सक्षम रखते हुए भी हमें इस दिशा की ओर प्रयत्न करना पड़ेगा। अन्ततः अंग्रेज़ी और विज्ञान एक ही वस्तु नहीं हैं। यदि अंग्रेज़ी में विज्ञान की और दर्शन आदि की पुस्तकों का अनुवाद हो सकता है और उसमें मौलिक पुस्तकें लिखी जा सकती हैं तो भारतीय भाषाओं में क्यों नहीं? क्या इसके लिए हमारे देश को वैज्ञानिकों और विचारकों से अपील करनी पड़ेगी?

स्वतन्त्रता का पर्व दिन

१५ अगस्त भारतवर्ष की स्वतन्त्रता का दिन है। हम इस दिन अपनी स्वतन्त्रता के दिवस को मनाते हैं। परन्तु क्या स्वतन्त्रता को प्राप्त कर लेना पर्याप्त है? स्वतन्त्रता को प्राप्त करने का इतना ही अर्थ है कि हमारे हाथ और पैर जो गुलामी की जंजीरों से जकड़े हुए थे—अब निर्मुक्त कर दिए गए हैं। अब उन्हें हम जैसे चाहें हिला डुला सकते हैं। सदियों की गुलामी से हमारे हाथ पैर निष्क्रिय से हो गए हैं और हम उन्हें उपयोगी कार्यों में लगने के समर्थ ही नहीं पाते। हमारे हाथ पैर जब चलते भी हैं तो वे इस प्रकार के कार्यों के लिए नहीं जिनसे या तो हमें स्वतन्त्र होने का लाभ प्राप्त हो सके और या फिर हम अपने को चिरकाल तक स्वतन्त्र रख सकें। हमारे हाथ और पैर के बन्धनों से निर्मुक्त होने का यह अर्थ होना चाहिए कि हम इन से अपने देश को, अपने समाज, राष्ट्र और विश्व को उन्नत और समृद्ध बनाने के लिए अभिलषित रूप से प्रयत्न कर सकें। हमारे हाथ-पैरों का गुलामी की बेड़ियों से छूटने का यह अर्थ कदापि न होना चाहिए कि इनके द्वारा हम अपने को या अपने देश, समाज, राष्ट्र और विश्व के हितों को किसी प्रकार की हानि पहुँचाएँ। फिर हाथ और पैरों की स्वतन्त्रता के बाद हमारी दिमाग़ी गुलामी अभी तक बहुत कुछ वैसे ही बनी

हुई है और जब तक हम स्वयं सोच समझ कर अपने प्रश्नों का समाधान करने की क्षमता नहीं रखते तब तक हमारी स्वतन्त्रता का कुछ विशेष मूल्य नहीं हो सकता। इसी दिमाग़ी ग़ुलामी के कारण और उन्नति के कार्य करने की अक्षमता के कारण स्वतन्त्रता के इस शुभ पर्व पर हमें किसी प्रकार के उत्साह और आनन्द का हृदय में अनुभव नहीं होता। हम ब्रिटिश राज्य के समय जैसे परमुखापेक्षी थे आज भी बहुत कुछ वैसे ही परमुखापेक्षी हैं। हम आज भी अधिकांश में अपने प्रश्नों को हल करने के लिए दूसरों पर अवलम्बित हैं। हम यह समझते हैं कि हमारे देश, समाज और राष्ट्र का भला हमारे देश के प्रशासन, अधिकारी या मंत्रियों द्वारा होगा। हमें यह अनुभव नहीं हो रहा है कि हमारा देश एक प्रजातन्त्र देश है और इसलिए हमारे राष्ट्र के प्रशासन को संगठित और समुन्नत रूप से चलाने का उत्तरदायित्व हम सब पर है, किसी एक पर या कुछ लोगों पर, एक पार्टी पर या दूसरी पार्टी पर नहीं। हमें एक दूसरे के प्रति हार्दिक सद्भावना रखनी चाहिए और हमें एक दूसरे का अपने देश, राष्ट्र और समाज के कार्यों में सक्रिय सहयोग देना चाहिए। यदि अपने राष्ट्र की उन्नति में हम सब अपने उत्तरदयित्व को समझेंगे और इस विषय में अपना कर्त्तव्य पूर्ण करेंगे तो राष्ट्र के अधिकारियों को वही करने के लिए बाध्य होना पड़ेगा जो कि हम उनसे आशा करते हैं और कराना चाहते हैं। यदि हम स्वतन्त्रता के इस पुण्य पर्व पर अपने हृदय में किसी प्रकार के उत्साह या आनन्द या अपनी शक्ति का अनुभव नहीं करते तो इसका एक ही अर्थ है और वह है कि हम अपनी स्वतन्त्रता के प्रति जागरूक नहीं हैं।

सामूहिक ग्राम विकास योजनाएँ

हमारे देश के कई भागों में बहुत सी सामूहिक योजनाओं का संचालन कई अमेरिकी दक्षों के आधीन हो रहा है। इन सामूहिक परियोजनाओं में उत्तर–प्रदेश की इटावा की विकास परियोजना को अत्यन्त सफल कहा जाता है। कहते हैं कि इसके द्वारा ग्रामों में न केवल सामूहिक खेती का एक नया आदर्श उपस्थित हो गया है अपि तु इससे ग्रामों में सुधार और नव जीवन उत्पन्न हो रहा है। उत्तर प्रदेश में इटावा ग्राम-सुधार-योजना का केन्द्र बन गया है जिसका कि प्रत्येक ग्रामसुधारक को निरीक्षण करना चाहिए। इस परियोजना को मिस्टर अलबर्ट मेयर के आधीन संचालित किया जा रहा है जो गत युद्ध में अमेरिका की सेना में थे और अब अमेरीका के मुख्य क्षेत्र परियोजकों में से हैं। इटावा की परियोजना को सन् १९४८ में उत्तर प्रदेश के प्रशासन ने प्रारम्भ किया था। अभी श्रीयुत श्रीमन्नारायण अग्रवाल ने जो संसद् के सदस्य हैं और स्वयं इटावा के रहनेवाले हैं इटावा की इस परियोजना का स्वयं निरीक्षण किया है। वे इसके विषय में "मौडर्न रिव्यू" में लिखते हैं :

"कुछ लोग इटावा की परियोजना को एक अद्वितीय परीक्षण समझते हैं और कुछ लोग इस योजना को दिखावे का खेल समझते हैं। यद्यपि इसे अमेरिका की खेती की विस्तार योजना के ढंग पर चलाया जा रहा है तो भी इससे हमारे ग्रामों को बहुत से लाभ हुए हैं। इस परियोजना को सन् १९४८ में महेवा के ग्राम में प्रारम्भ किया गया था। इसके साथ आसपास के १०० ग्रामों को मिला लिया गया जिनकी जन संख्या ७९,००० है। फिर इसमें ९७ ग्राम और मिला लिए गए और सेवानगर को इसका केन्द्र बनाया गया। इस परियोजना से खेती को बड़ा लाभ हुआ है, २० से २५ प्रतिशत अनाज का उत्पादन बढ़ गया है। खेतों को पानी देने की भी सुव्यवस्था हो गई है। महेवा के केन्द्र में कुछ खेती के नए उपकरणों का प्रयोग हो रहा है। ये सब उपकरण बैलों द्वारा संचालित होते हैं और काफ़ी सस्ते हैं। महेवा में इन उपकरणों को सुधारने का भी एक केन्द्रीय कारखाना है। बैलों में भी उन्नति की जा रही है। इन क्षेत्रों की जनता का स्वास्थ्य भी मलेरिया, चेचक, हैज़ा और प्लेग के टीके देकर उन्नत किया गया है। स्वच्छ पीने के पानी के लिए भी सरकारी खर्चे पर कुछ पम्प लगा दिए गए हैं। ग्रामीणों की सहायता से इन ग्रामों में लगभग ५० मील की सड़कें भी बन गई हैं। ग्रामों की गलियों को चौड़ा कर दिया गया है और ईंटों से पक्का बना दिया गया है। ग्राम की जनता ने स्वयं ७ प्रारम्भिक पाठशालाओं के मकानों को बना कर खड़ा कर दिया है। किसी ने इसके लिए रुपया, किसी ने कुछ और दिया है या फिर इसमें स्वयं हाथों से काम किया है। ४० शिक्षा के केन्द्र हैं जहाँ रात्रि कक्षाओं में कोरस की प्रणाली (Chorus Key-Method) से शिक्षा दी जाती है। लोक गीत और लोक नाटकों को प्रोत्साहन दिया जाता है। ग्रामों में मेलों का भी आयोजन किया जाता

है। ग्रामों में ग्राम पंचायतों और सहयोगी संस्थाओं का निर्माण किया गया है। महेवा में एक केन्द्रीय सूचना-विभाग और पुस्तकालय है। प्रशासन के द्वारा एक मासिक पत्र "मन्दिर से" का प्रकाशन किया जाता है जिसमें ग्रामीणों के लिए आवश्यक सूचनाएँ प्रकाशित की जाती हैं। चलते-फिरते पुस्तकालय का भी प्रबन्ध किया गया है। कार्यकर्ताओं को सिखाने के लिए लखनऊ में एक प्रशिक्षण केन्द्र है।

यह तो योजना का एक पहलू है। दूसरा पहलू यह है कि इस योजना में खर्च बहुत अधिक है। पिछले तीन वर्षों में इस योजना पर १५ लाख ११ हजार रुपए खर्च हुए हैं। मिस्टर अलबर्ट मेयर से जब यह पूछा गया कि यह रुपया कब तक हमें खर्च करना होगा, उसने उत्तर दिया " अभी तो लगातार व्यय करना होगा।" यदि इटावा की परियोजना के आधार पर हम अपने समस्त देश के ग्रामों की सामूहिक योजना बनाएँगे तो १,००० करोड़ रुपयों की आवश्यकता होगी। हमारे देश के पास तो इतना रुपया नहीं है और हम इस विषय में विदेशों की सहायता पर निर्भर नहीं रह सकते। इस योजना की दूसरी कमी है कि इससे लोगों को पूरा कार्य नहीं मिलता। हमें खेती की ओर तो ध्यान देना ही चाहिए परन्तु इसके साथ साथ ग्रामीण उद्योग-धन्धों की भी उन्नति करनी चाहिए। इटावा में ईंटों को बनाने के अतिरिक्त और कोई दूसरा कार्य इस दिशा में नहीं किया गया है। वहाँ घी, तेल, कपड़ा, चमड़े आदि के बनाने की व्यवस्था की जा सकती है। यदि हमारे देश की जनता का इन उद्योग-धन्धों में उपयोग नहीं किया गया तो ग्रामों में बेकारी की समस्या का हल करना और भी अधिक कठिन हो जाएगा। इस परियोजना में तीसरा दोष यह है कि इसमें प्रारम्भिक शिक्षा की उपेक्षा की गई है। मुझे यह देख कर आश्चर्य हुआ कि ग्राम के समस्त स्कूलों को पुराने ढर्रे पर ही चलाया जा रहा है। हमें ग्रामीण जनता को हाथ से कुछ काम न कर सकनेवाला बाबूवर्ग नहीं बनाना है। ग्रामों में आधार शिक्षा (Basic Education) दी जानी चाहिए। इटावा में भूमि के विभाजन के प्रश्न का भी कोई समाधान नहीं किया गया है। यह इस परियोजना की चौथी कमी है। खेती को बहुत बड़े पैमाने पर करने की अपेक्षा छोटे पैमाने पर किया जाना चाहिए। चीन, जापान और यूरोप के कई देशों में खेती छोटे पैमाने पर की जा रही है और उसमें बहुत सफलता प्राप्त हुई है। इस योजना में महात्मा गान्धी की ग्राम-सुधार-योजनाओं को भी स्थान मिलना चाहिए क्योंकि गान्धी जी ने अपने जीवन का अधिकांश भाग ग्रामों के पुनर्निर्माण के कार्य में लगाया था।"

ग्राम की इन विकास-योजनाओं का उद्देश्य एकमात्र यही नहीं होना चाहिए कि ग्रामीणों के जीवन के स्तर को ही एकमात्र ऊँचा कर दिया जाए यद्यपि उसकी परम आवश्यकता है परन्तु उसके साथ साथ उनमें नवीन जीवन, नवीन जागृति और नवीन स्फूर्ति उत्पन्न होनी चाहिए जिससे वे न केवल अपने जीवन को आराम से बिताने लग जाएँ अपि तु वे उसकी आवश्यकता और महत्त्व को समझें और वे समस्त देश में जीवन का स्रोत बन जाएँ। हमारे देश का अधिकांश भाग ग्रामों में रहता है और इन ग्रामों में जीवन के नष्ट हो जाने से हमारे समस्त देश के जीवन का नाश हो गया है। ग्राम के जीवन के स्तर की उन्नति के साथ साथ ग्रामीण जनता के जीवन में नई चुस्ती और नया उत्साह उत्पन्न होना चाहिए, ऐसा उत्साह जिससे देश में जीवन और स्फूर्ति का नया वातावरण उत्पन्न हो जाए और यह तब तक नहीं हो सकेगा जब तक कि हमारे देश के शिक्षित लोग ग्राम-सुधार के प्रश्नों को अपने हाथों में नहीं लेंगे और स्वयं ग्रामों में जा कर ग्रामों के जीवन को उन्नत बनाने में सहायक नहीं होंगे।

मराठवाड़ा हिन्दी-सम्मेलन

स्वामी रामानन्दतीर्थ की अध्यक्षता में गत मास औरंगाबाद में हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा की ओर से जो मराठवाड़ा हिन्दी सम्मेलन आयोजित हुआ वह अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण था। इस अधिवेशन के साथ साथ अजिण्ठा में सभा की ओर से स्थायी-समिति की बैठक श्री लक्ष्मीनारायण गुप्त की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई। औरंगाबाद और अजिण्ठा केवल इस राज्य के लिए ही नहीं पूरे देश के लिए महत्व रखते हैं। यहाँ के सांस्कृतिक और ऐतिहासिक वातावरण में जो कुछ भी निश्चय हुए उनका हिन्दी प्रचार के लिए अपना महत्व है।

इस सम्मेलन से राज्य में एक नई परम्परा का श्रीगणेश हुआ है। अब तक हिन्दी के आयोजन हैदराबाद में ही आयोजित हुए। यह पहला अवसर था जब

दो सौ से अधिक हिन्दी-सेवी औरंगाबाद तथा अजिण्ठा में नागरिकों तथा ग्रामीणों के सम्पर्क में आये और उन्हें हिन्दी के कामों से अवगत कराया गया। अजिण्ठा में जिस प्रकार हिन्दी सेवियों का स्वागत किया गया और दूर दूर से एकत्रित ग्रामीणों ने जिस धैर्य के साथ हिन्दी का सन्देश सुना वह इस बात का परिचायक है कि हिन्दी का आन्दोलन केवल पढ़े-लिखे लोगों का आन्दोलन नहीं है बल्कि ग्रामीण जनता भी उसमें रुचि रखती है और अपना योग देना चाहती है। भविष्य में भी यदि इसी प्रकार ग्रामों में आयोजन हुए तो निस्सन्देह सामान्य जनता तक हिन्दी को पहुँचाने में सफलता प्राप्त होगी।

जिस समय दक्षिण भारत के एक कोने में स्टेशनों से नागरी-लिपि में लिखे गये हिन्दी नाम मिटाए जा रहे थे उसी समय औरंगाबाद में सभी विचार-धारा के अहिन्दी-भाषी सज्जनों का हिन्दी का समर्थन करना इस बात को प्रमाणित करता था कि दक्षिण में हिन्दी का विरोध यदि नाममात्र को है तो उसका समर्थन करोड़ों लोग करते हैं।

सम्मेलन में स्वीकृत सारे प्रस्ताव अपना महत्व रखते हैं, किन्तु फिर भी हम दो प्रस्तावों की ओर जनता का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित करना चाहते हैं। पहला प्रस्ताव नीति से सम्बन्ध रखता है। इस प्रस्ताव के द्वारा केवल मराठवाड़ा सम्मेलन ने ही नहीं हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा ने अपनी नीति को स्पष्ट किया है। इस प्रस्ताव को औरंगाबाद कालेज के वयोवृद्ध प्राध्यापक श्री थत्ते ने उपस्थित किया। प्रस्ताव निम्न प्रकार से है।

(अ) यह सम्मेलन प्रादेशिक भाषाओं के सम्पूर्ण विकास का समर्थन करता है।

(ख) प्रादेशिक शासन व्यवहार में प्रादेशिक भाषा के उपयोग का आग्रह करता है।

(ग) शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर प्रादेशिक भाषा के माध्यम का आग्रह करता है।

(घ) भारत के प्रत्येक नागरिक के लिए राष्ट्रभाषा हिन्दी का ज्ञान आवश्यक है इसलिए माध्यमिक शिक्षा के स्तर पर हिन्दी-भाषा की शिक्षा अनिवार्य हो।

(ङ) अन्तर्प्रदेशीय सम्बन्ध में हिन्दी के ही प्रयोग का आग्रह करता है।

(च) हिन्दी-भाषी जनता के लिए प्रादेशिक भाषा का ज्ञान आवश्यक है, इसलिए सभा प्रादेशिक भाषा की शिक्षा की भी योजना करे।

इस समय वास्तव में देखा जाय तो दक्षिण की सामान्य जनता में कोई भ्रम या सन्देह नहीं है और वह पिछले तीस वर्षों से बड़ी श्रद्धा और विश्वास के साथ हिन्दी का अध्ययन करती आई है, किन्तु कुछ लोग यह भ्रम उत्पन्न कर रहे हैं कि हिन्दी के कारण उनकी प्रादेशिक भाषाओं को हानि पहुँचेगी। प्रस्ताव इतना स्पष्ट है कि उसकी व्याख्या आवश्यक नहीं है। सभा ने उचित समय पर हिन्दी-सेवियों के मन्तव्य को इस प्रस्ताव द्वारा प्रकट कर दिया है। इस प्रस्ताव के कारण उन लोगों का सन्देह दूर हो सकेगा जो हिन्दी को शंका की दृष्टि से देखते हैं। यदि हिन्दी की सभी प्रमुख संस्थाएँ सभा के इस नीति-सम्बन्धी प्रस्ताव को स्वीकार करती हैं तो हिन्दी के सम्बन्ध में जो भ्रम फैलाया जा रहा है, उसे दूर करने में सहायता मिल सकती है। विशेष कर दक्षिण के लिए ऐसे प्रस्ताव की बड़ी आवश्यकता है।

सम्मेलन का दूसरा महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पुस्तकालयों से संबन्धित है इस प्रस्ताव के अनुसार हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा प्रत्येक ज़िला-नगर में एक पुस्तकालय स्थापित करेगी जिसमें पांच सौ प्रादेशिक भाषा और पांच सौ हिन्दी की पुस्तकें रहेंगी। पुस्तकों का एक तिहाई मूल्य स्थानीय जनता से, एक तिहाई सभा से और एक तिहाई सरकार से सहायता के रूप में प्राप्त करने का प्रयत्न होगा।

निस्सन्देह यह योजना राज्य के बौद्धिक स्तर को ऊँचा करेगी। इस समय प्राथमिक शालाओं से बहुत से विद्यार्थी पढ़ना छोड़ देते हैं। प्रौढ़ शिक्षा का प्रश्न भी सामने है। जो लोग थोड़ा बहुत पढ़ना-लिखना सीख जाते हैं उनके सामने यह कठिनाई होती है कि वे अपनी साक्षरता को किस प्रकार स्थिर रख सकते हैं। इस प्रकार के पुस्तकालय उन्हें इस कार्य में सहायता देंगे। इस योजना से प्रादेशिक भाषाएँ और हिन्दी निकट-आएँगी और ज़िला-नगरों में एक नया वातावरण उत्पन्न हो सकेगा।

यदि आर्थिक कारण से सभा इस योजना को पूरा न कर सके या स्थानीय जनता और सरकार से दो तिहाई रक़म न मिल सके तो सभा ज़िला-नगरों में तो वाचनालय खोल सकती है।

इस प्रकार के वाचनालय हिन्दी प्रचार तथा साक्षरता की रक्षा में तो योग देंगे ही, साथ ही, स्थानीय जनता में राजनीतिक चेतना का भी निर्माण कर सकेंगे।

THE PRUDENTIAL CO-OPERATIVE CENTRAL & URBEN BANK LTD.,
Kingsway, SECUNDERABAD-Dn.

★

BRANCH : **HYDERABAD.** PHONE NO. **7195**

TRANSACTS BANKING BUSINESS OF EVERY DESCRIPTION.

Office Safety Facilities In Uptodate Underground Safe Vaults.

A. H. VENKAT RAO B. A., LL. B.,
Honorary Secretary.

L. N. GUPTA, I. A. S
President.

तार का पता : हिन्दी टेलीफोन नं. ५४५०

हिन्दी, तेलुगु, मराठी और अंग्रेज़ी की सब तरह की सुन्दर छपाई के लिए हमेशा याद रखिये।

हिन्दी प्रेस

हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा
श्रीराम हिन्दी भवन
नामपल्ली ● स्टेशन रोड ● हैदराबाद-द.

दीपावली के लिए

बेंगलूर, बनारसी माल शर्टिंग और धोतियों का नया स्टाक है।

एक मरतबा आकर ज़रूर आज़माइये

रामदयाल पोकरमल
थोक और चिल्लर फ़रोश
ताज बिल्डिंग, पत्थरगट्टी; हैदराबाद-द.

तार : "फैन्सी पेपर" फोन : ७३३२

हर प्रकार के

कागज़, छपाई और स्टेशनरी

के

सामान के थोक व्यापारी **गोली ईश्वरय्या** जनरल बाज़ार सिकन्दराबाद

हिन्दी के उत्तमोत्तम तथा

उच्च श्रेणी के साहित्य की प्राप्ति के

लिए एकमात्र स्थान

हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा

नामपल्ली रोड : हैदराबाद-द.

टेलीफोन नं. ५४५० तार—"हिन्दी"

प्रकाशक :—प्रियबन्धु, हिन्दी प्रेस, हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद-द.

5-12-52

अजन्ता

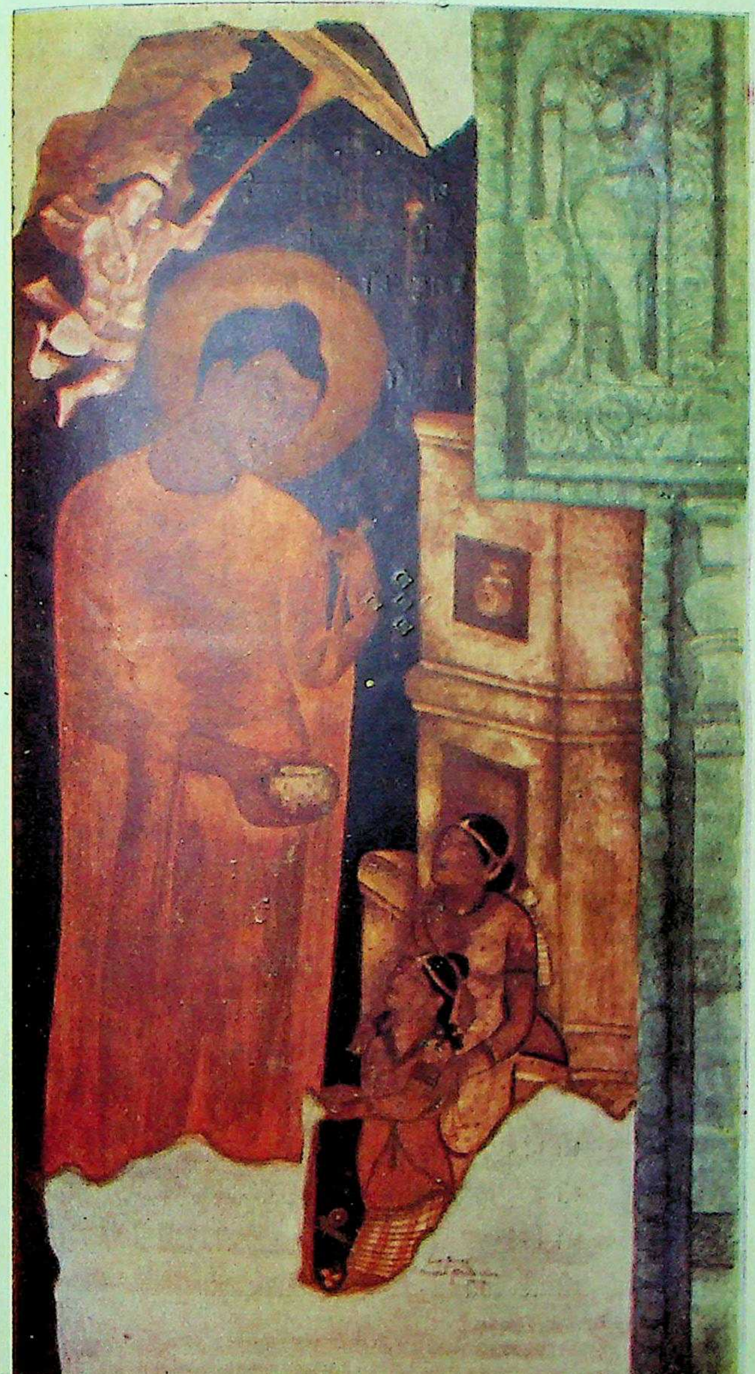

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

वर्ष ४ अक्तूबर १९५२ अङ्क १०

हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा

इस अङ्क में पढ़िए :

श्री प्रो० ओ. सी. गांगुली
श्री परशुराम जी चतुर्वेदी
श्री सूर्यनारायण व्यास
श्री भा. रा. भालेराव सुभेदार
श्री विनयमोहन शर्मा
श्री अनिलकुमार
श्री इक़बाल बहादुर श्री वास्तव
श्री राजेन्द्र यादव
कुमारी राज शिवपुरी
श्री अंचल

◆

अगले अङ्क में पढ़िए :

श्री डा० सोमनाथ गुप्त
श्री राजकिशोर पांडे
श्री कालिदास कपूर
श्री भगवतीशरण उपाध्याय
श्री शम्भुप्रसाद बहुगुणा
श्री हनुमच्छास्त्री
श्री अंचल
श्री शम्भुनाथ शेष
श्री निशंक
श्रीमति दीप्ति

“**अजन्ता**” का वार्षिक मूल्य :— ९) भा. मु.

एक अङ्क का :— १) भा. मु.

वि. सू.—नमूने की प्रति के लिए रु० १) भा. मु. मनि ऑर्डर द्वारा अग्रिम भेजिए।

दी निजाम

स्फटिकवत्, समरूप, मधुरतम
श्वेत शर्करा

★

जानकारी

विक्रय-विभाग

आवश्यक सूचना

'अजन्ता' का 'नवम्बर और दिसम्बर' का सम्मिलित एक ही अङ्क प्रकाशित होगा इसमें पृष्ठ संख्या कुछ अधिक रहेगी। 'अजन्ता' के ग्राहकों को इसके लिए एक महीने का अङ्क अधिक दिया जाएगा।

व्यवस्थापक
'अजन्ता'
हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद

दी हैदराबाद कन्स्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड
आबिद रोड, हैदराबाद दक्षिण
के
मैनेजिंग एजेण्ट के प्रतिनिधि,
दी निजाम शुगर फैक्टरी लिमिटेड
दी हैदराबाद कन्स्ट्रक्शन कम्पनी लिमिटेड के लिए विक्रय विभाग

इस अङ्क में पढ़िए :

श्री प्रो० ओ. सी. गांगुली
श्री परशुराम जी चतुर्वेदी
श्री सूर्यनारायण व्यास
श्री भा. रा. भालेराव सुभेदार
श्री विनयमोहन शर्मा
श्री अनिलकुमार
श्री इक़बाल बहादुर श्री वास्तव
श्री राजेन्द्र यादव
कुमारी राज शिवपुरी

श्री अंचल
श्री शम्भुनाथ शेष
श्री निशंक
श्रीमति दीप्ति

"अजन्ता" का वार्षिक मूल्य :— ९) भा. मु.

एक अङ्क का :— १) भा. मु.

वि. सू.—नमूने की प्रति के लिए रु० १) भा. मु. मनि ऑर्डर द्वारा-अग्रिम भेजिए।

दी निजाम शुगर फैक्टरी [लिमिटेड]

स्फटिकवत्, समरूप, मधुरतम
श्वेत शर्करा

★

जानकारी

विक्रय-विभाग

प्रधान कार्यालय से प्राप्त करें।

* * *

प्रधान कार्यालय

आबिद रोड,
हैदराबाद – दक्षिण.

केबल तथा तार – "शुगर"

●

फैक्टरी

शक्कर नगर
निजामाबाद.

केबल तथा तार – "शुगर"

फोन नं० ४७०४, ४२१६, ४१३७, ४८७६

दी हैदराबाद कन्स्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड

आबिद रोड, हैदराबाद दक्षिण

के

मैनेजिंग एजेण्ट के प्रतिनिधि,

दी निजाम शुगर फैक्टरी लिमिटेड

दी हैदराबाद कन्स्ट्रकशन कम्पनी लिमिटेड के लिए विक्रय विभाग

Education
Start - in - Life
Marriage of your children
Assured without any embarrassment
Beside a comfortable old age for you
for All Types Of Insurance

Consult:-

THE HYDERABAD CO-OPERATIVE INSURANCE SOCIETY Ltd.
Bashir Bagh Road, Hyderabad-Dn.

Telephone No. 5322

Hyderabad Co-operative Insurance Society Ltd.
Bashir Bagh Road, Hyd.Dn.
(Established 1935)

16 Years Progress
Figures as on 1st July 1952.

Business in force .... More than. Rs. 3¼ Crores
Life Fund....More than Rs. 75 Lacs
Claims paid more than Rs. 12 Lacs.
Bonus declared in all the (4) valuations.

Consult:-
For ALL TYPES OF INSURANCE.

मनोविज्ञान

काशी मने विज्ञान शाला का मासिक पत्र

"यह मनोविज्ञान शाला काशी, का मुखपत्र है। दर्शन और मनोविज्ञान के सम्मिलित स्वरूप का दर्शन कराने वाला अपने ढंग का यह एक ही पत्र है। सितम्बर के अंक में अनेक मननीय एवं पठनीय लेख हैं। जिनमें जर्मन मनोविज्ञान की आधुनिक प्रवृत्ति तथा भारत की मनोवैज्ञानिक देन विशेष उल्लेख्य हैं। मनोवैज्ञानिक खोज के स्तम्भ में बहुत ही ध्यान देने योग्य सामग्री है। अभिभावकों तथा अध्यापकों के लिए यह बड़े महत्व की है।"

'आज', सितम्बर १०' ५२

सम्पादकः
लालजीराम शुक्ल

वार्षिक मूल्य
४) रुपए

मिलने का पताः **व्यवस्थापक 'मनोविज्ञान' ६१/२५ सिद्धागिरी बनारस**

THE

Hyderabad Co-operative Dominion Bank Ltd.

[Estd. MARCH 1915]

Telephone : 4610

Telegram : DOMINBANK

Sub Offices :

PATHER GATTI,
UNIVERSITY BRANCH
(Adickmet)

Head Office :

SHAHRAH-E-OSMANI
HYDERABAD-DECCAN.

Branches :

JADCHARLA (Dt, Mahboobnagar) THUNGABHADRA PROJECT (Munirabad)

1. CURRENT ACCOUNTS are opened free of charge and interest is allowed at 1½% per annum.
2. SAVING DEPOSITS are accepted and interest is allowed at 2% per annum.
3. SPECIAL SAVINGS DEPOSITS are accepted and interest is allowed at 1½% per annum.
4. DRAFTS are issued on all important COMMERCIAL CENTERS and within the HYDERABAD STATE.
5. PENSIONS, MANSABS, etc, are collected on commission basis, premiums remitted & all standing instructions on behalf of the customers carried out. SAFE DEPOSIT LOCKERS & VAULUTS are available at HEAD OFFICE.

BANKING BUSINESS OF EVERY DESCRIPTION TRANSACTED

K SUNDARAVARADACHARI,
GENERAL MANAGER.

RAI DILSUKH RAM,
CHAIRMAN.

FIRE: ACCIDENT: MARINE:

THE HYDERABAD UNITED INSURANCE CO., LTD.,

SPONSORED BY

THE GOVT. OF HYDERABAD.

Post Box No. 164, Abid Road, HYDERABAD-Dn.

Telegram: ***HUICOL***

Telephone: ***5579***

Chairman:
L. N. GUPTA Esq. I. A. S.,

General Manager:
H. D. MEHTA Esq.

BRANCHES : *Bombay, Calcutta, Madras, Nizamabad & Manchirial.*

'HIND'

जीवन साहित्य ही क्यों पढ़ें ?

इसलिए कि

"विचार के लिए एक अच्छा खाद्य दे रहा है।"—**विनोबा**

"जीवन साहित्य को मैं ध्यान से पढ़ता हूँ। गान्धी विचार धारा का इसे मैं एक ऊँचा मासिक पत्र मानता हूँ इस पत्र के जैसे स्वस्थ तथा विचारपूर्ण लेख अन्यत्र देखने में कम मिलते हैं। इस पत्र ने शुरू से ही जो यात्रापथ पकड़ा है, वह निःसन्देह हमारे राष्ट्र तथा मानव जाति के लिए श्रेयस्कर है।"—**वियोगी हरि**

"मैंने पिछले चार वर्षों के अंक मंगाकर ध्यानपूर्वक पढ़े। यह देख कर मुझे हर्ष और आश्चर्य भी हुआ कि कितना उपयोगी सात्विक मानसिक भोजन जीवन साहित्य दे रहा है। निःसन्देह वह उच्च कोटि का मासिक पत्र है।"—**बनारसीदास चतुर्वेदी**

"जीवन साहित्य उन गिनती के पत्रों में है, जिनसे हिन्दी का मान ऊँचा है। सामग्री के चयन में उसकी एक अपनी मर्यादा है। उस मर्यादा के पालन में वह निर्लोभ और निर्मोह है। प्रामाणिकता इसकी विशेषता है।"—**जैनेन्द्र कुमार**

यह मासिक पत्र वर्ष भर आपके समूचे परिवार के लिए सुपाठ्य सात्विक।

- मानसिक आधार देगा।
- इसके ग्राहक होने पर 'मण्डल' की पुस्तकें रियायती मूल्य में मिलेंगी।
- उसके विशेषांकों की पाठकों ने भूरि भूरि प्रशंसा की है।

वार्षिक शुल्क ४ रुपये ::: *आज ही ग्राहक बन जाइए*

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ
सचित्र-सांस्कृतिक-साहित्यिक मासिक

विक्रम

सम्पादक-संचालक
श्री सूर्यनारायण व्यास

"**विक्रम**" ने अपने प्रकाशन के अल्प काल में जो लोकप्रियता प्राप्त की है, वह आश्चर्यकारक है। इसके १६ पृष्ठों में लिखी जानेवाली संपादकीय टिप्पणियाँ अपनी सजीव शैली और चुभती हुई भाषा के लिये सर्वत्र विख्यात हैं। इसमें हिन्दी के श्रेष्ठ कलाकारों की रचनाएँ प्रतिमास प्रकाशित होती हैं—देश के अनेक विद्वानों और लेखकों ने इसकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है।

हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान् और आचार्य **श्री पं. हजारीप्रसाद द्विवेदी**—"मैं **विक्रम** में प्रकाशित विद्वत्तापूर्ण, ऐतिहासिक, लेखों को बड़े चाव से पढ़ता हूँ, उनसे मेरी ज्ञान-वृद्धि होती है। मेरा विचार है कि '**विक्रम**' अपने ढंग का अकेला हिन्दी-मासिक है।"

सुप्रसिद्ध कवि–साहित्यिक **पं. श्री माखनलाल चतुर्वेदी**—"विक्रम अपनी गति में अत्युत्तम ढंग से बढ़ रहा है। उसके लेख कविताएँ, उसके विचार और उसका दृष्टिकोण सब मानों उज्वल भविष्य और निर्मल भविष्य की सूचना देते हैं।"

सुप्रसिद्ध उपन्यासकार **श्री पं. वृन्दावनलाल वर्मा**—"अंक पूरा आद्योपान्त पढ़ डाला। विद्वत्ता और शोधों से भरी, विचारों को उत्तेजना देनेवाली सामग्री भरी पड़ी है। व्यास-उवाच का तो कहना ही क्या? बहुत ही कम पत्रों में ऐसी सम्पादकीय टिप्पणियाँ पढ़ने को मिलती हैं।"

यदि आप आज तक ऐसे पत्र के ग्राहक नहीं बने हैं तो शीघ्र ही ६) भेजकर वर्ष भर के लिए ग्राहक बन जावें।

विज्ञापनदाताओं के लिए स्वर्ण–अवसर

"विक्रम कार्यालय उज्जैन" (म० भा०)

वार्षिक चंदा मनी आर्डर से ६ रु० * **नमूने की प्रति १० आना**

राष्ट्रभारती

संपादक

मोहनलाल भट्ट
हृषिकेश शर्मा

यह भारतीय साहित्यिक का प्रतिनिधित्व करनेवाली एक ऊँचे दर्जे की सुन्दर साहित्यिक और सांस्कृतिक मासिक पत्रिका है। प्रतिमास १ तारीख को प्रकाशित होती है।

'राष्ट्रभारती' भारतवर्ष के उत्तर-दक्षिण के पूर्व-पश्चिम के आपस के साहित्यिक और सांस्कृतिक आदान-प्रदान का बहुत अच्छा माध्यम है।

(१) इस पत्रिका को, राष्ट्रभाषा हिन्दी के तथा लगभग सभी भारतीय साहित्य और संस्कृति को बल व प्रेरणा पहुँचानेवाले प्रान्तीय भाषाओं के श्रेष्ठ विद्वान् साहित्यकारों का सहयोग प्राप्त है। (२) इस में देशी-विदेशी विद्वानों के भी ज्ञानपोषक और विविधमनोरंजक लेख रहते हैं। (३) प्रमुख कवियों की कविताएँ और कहानीकारों की श्रेष्ठ कहानियाँ। (४) "एकांकी" नाटक, रेखाचित्र और शब्द-चित्र। बंगला, मराठी, गुजराती, उड़िया, पंजाबी, काश्मीरी, राजस्थानी, उर्दू, तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम आदि आदि भारतीय भाषाओं का रसास्वाद करानेवाले सुन्दर हिन्दी-अनुवाद भी इसमें रहते हैं।

हिन्दी-प्रेमीमात्र से हमारा अनुरोध है कि आप 'राष्ट्रभारती' को अपनाइए और राष्ट्रभाषा के प्रचार में हमें शीघ्रातिशीघ्र सक्रिय सहयोग दीजिए।

आशा है "राष्ट्रभारती" के प्रचार में हिन्दी-प्रेमी सज्जन अवश्य हमारा हाथ बटायेंगे।

वार्षिक चन्दा भेज कर आज ही ग्राहक बन जाइये।

पता :— **"राष्ट्रभारती"** C/o राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, पो० हिन्दीनगर वर्धा (म० प्र०)

कल्पना मासिक

पढ़िये

जिसमें उच्चकोटि के साहित्यिकों और कलाकारों की रचनाएँ आपको मिलेंगी।

प्रत्येक अङ्क में एक रंगीन चित्र

स्थायी स्तम्भ :—

कलाप्रसंग—*विनोद बिहारी मुकर्जी*
सांस्कृतिक टिप्पणियां—*दिनकर कौशिक*
साहित्य धारा—*इस स्तम्भ के अन्तर्गत पाठकों लेखकों आदि द्वारा उठाए गए साहित्यिक प्रश्न आदि हैं।*
पुस्तक समालोचना—*कल्पना अपनी निर्भीक समीक्षा के लिए प्रसिद्ध है।*

वार्षिक मूल्य १२) * एक प्रति का १)

पृष्ठ संख्या ८०

८३१, बेगम बाज़ार, हैदराबाद

तार का पता : हिन्दी टेलीफोन नं. ५४५०

हिन्दी, तेलुगु, मराठी और अंग्रेज़ी की सब तरह की सुन्दर छपाई के लिए हमेशा याद रखिये।

हिन्दी प्रेस

हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा
श्रीराम हिन्दी भवन
नामपल्ली • स्टेशन रोड • हैदराबाद-द.

पश्चिमोत्तर भारत की प्रमुख हिन्दी मासिक पत्रिका

विश्व ज्योति

सम्पादक-(१) **श्री विश्वबन्धु शास्त्री**, M. A., M. O. L. (पं) O. d' A. (फ्रॉं.) Kt. C. T. (इट.)
(२) **श्री सन्तराम**, बी. ए.

संचालक-**श्री विश्वेश्वरानन्द**, वैदिक संस्थान, साधु आश्रम, होश्यारपुर.

गत मार्च से प्रारम्भ कर छः मास में ही इस पत्रिका ने अपनी विशेषताओं के कारण हिन्दी-जगत में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है।

विश्व हित की साधना के लिए :—

(क) शुद्ध सांस्कृतिक साहित्य का सृजन, (ख) प्राचीन और नवीन ज्ञान-विज्ञान का समन्वय, (ग) बौद्धिक क्रांति और नई चेतना का जागरण, (घ) अन्याय-पूर्ण सामाजिक विषमताओं का दूरीकरण, (ङ) सभी प्रकार के विचारों का निष्पक्ष अध्ययन और आलोचन करना ही **विश्व ज्योति** का लक्ष्य है।

इसे तुरन्त मँगाइए और लाभ उठाइए। **वार्षिक चन्दा— ८) रुपए भा० मु०**

परन्तु १०) रुपए वार्षिक चन्दा देकर विश्वेश्वरानन्द वैदिक संस्थान के सदस्य बन जाने पर भेंट के रूप में मुफ्त।

पत्र व्यवहार का पता :—

व्यवस्थापक, विश्व ज्योति, साधु आश्रम होश्यारपुर, (पंजाब)

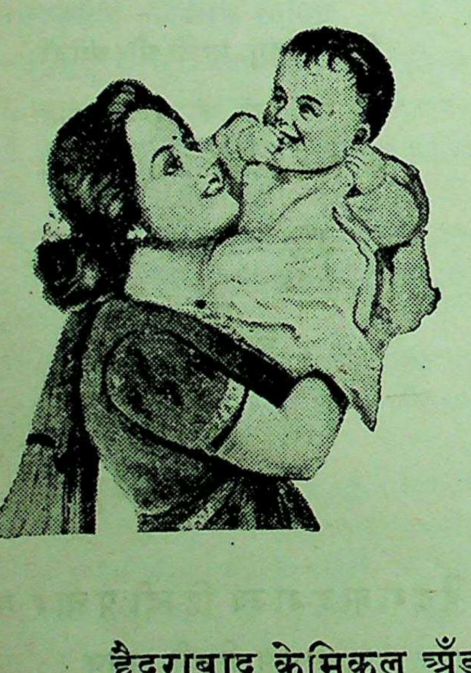

INFANTONE

बच्चों के सब प्रकार के पेट के रोगों पर सर्व परीक्षित लाभदायक औषधि

Keeps baby cheerful

हैदराबाद केमिकल अँड फारमास्युटिकल वर्क्स लि०

आज़माबाद, हैदराबाद (दक्षिण)

पंजाब, मध्यप्रदेश, हैदराबाद, मैसूर, त्रावणकोर और मद्रास राज्यों के शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत

अजन्ता

सचित्र मासिक पत्रिका

वर्ष ४ अक्टूबर १९५२ अङ्क १०

सम्पादक
वंशीधर विद्यालंकार
श्रीराम शर्मा

—: संचालक :—

हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा

अनुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

१ अजंता—श्री इक़बाल बहादुर श्रीवास्तव १
२ द्वन्द्व—श्री राजेन्द्र यादव ६
३ क्यों रुक जाऊँ—श्री रमाशंकर मिश्र ७
४ जब नींद नहीं आती होगी—श्री अंचल ८
५ गोस्वामी तुलसीदास जी का महत्व—श्री परशुराम चतुर्वेदी, एम. ए., एल् एल्. बी. ... ९
६ शिल्पकला में दक्षिण शैली—श्री प्रो. ओ. सी. गांगुली १४
७ गांधीवाद और विकेन्द्रित उद्योग धंधे—श्री रामनिवास जाजू, एम. कॉम १७
८ नालंदा (२)—श्री क़ासिमअली सजनलाल, एम. ए. २१
९ नानाफड़णीस और हिन्दी कविता—श्री भास्कर रामचन्द्र भालेराव सुभेदार २६
१० ये ज़ुल्म में भी पनपते हैं—श्री भगवतशरण उपाध्याय एम. ए. ३१
११ आली ये सावन के बादल—श्री सूर्यनारायण व्यास ३५
१२ प्रेमचन्द परम्परा का नया प्रयोग—श्री देवराज उपाध्याय एम. ए. ३७
१३ हिन्दी में संत साहित्य का अध्ययन—श्री विनयमोहन शर्मा एम. ए. ४१
१४ बच्चों के प्रेम से मानसिक लाभ—श्री लालजीराम शुक्ल एम. ए. ४४
१५ कालिदास और पार्श्वाभ्युदय काव्य—श्रीमती आर. माधवी ४६
१६ तेलुगु का उदाहरण-साहित्य—श्री हनुमच्छास्त्री एम. ए. ४९
१७ कलकत्ते की सड़कों पर—श्री जगदीशचन्द्र एम. ए. ५४
१८ मैं नवल पथ बढ़ चली री—कुमारी राज शिवपुरी एम. ए. ५९
१९ देवरथ—श्री अनिलकुमार ६०
२० साहित्य चर्चा—श्री कृष्णशंकर व्यास ६५
२१ चिट्ठी-पत्री (१)—श्री विनयमोहन शर्मा एम. ए. ६७
(२)—श्री सप्तरश्मि
(३)—श्री कश्चित
(४)—श्री रामरत्न बडोला
२२ नीर-क्षीर—श्री हरिकृष्ण पुरोहित, एम. ए. ७०
२३ सामयिक ७३
२४ सम्पादकीय—श्री वंशीधर विद्यालंकार ७८

चित्र

टोडी रागिनी (रंगीन) ... ... हैदराबाद म्यूज़ियम के सौजन्य से

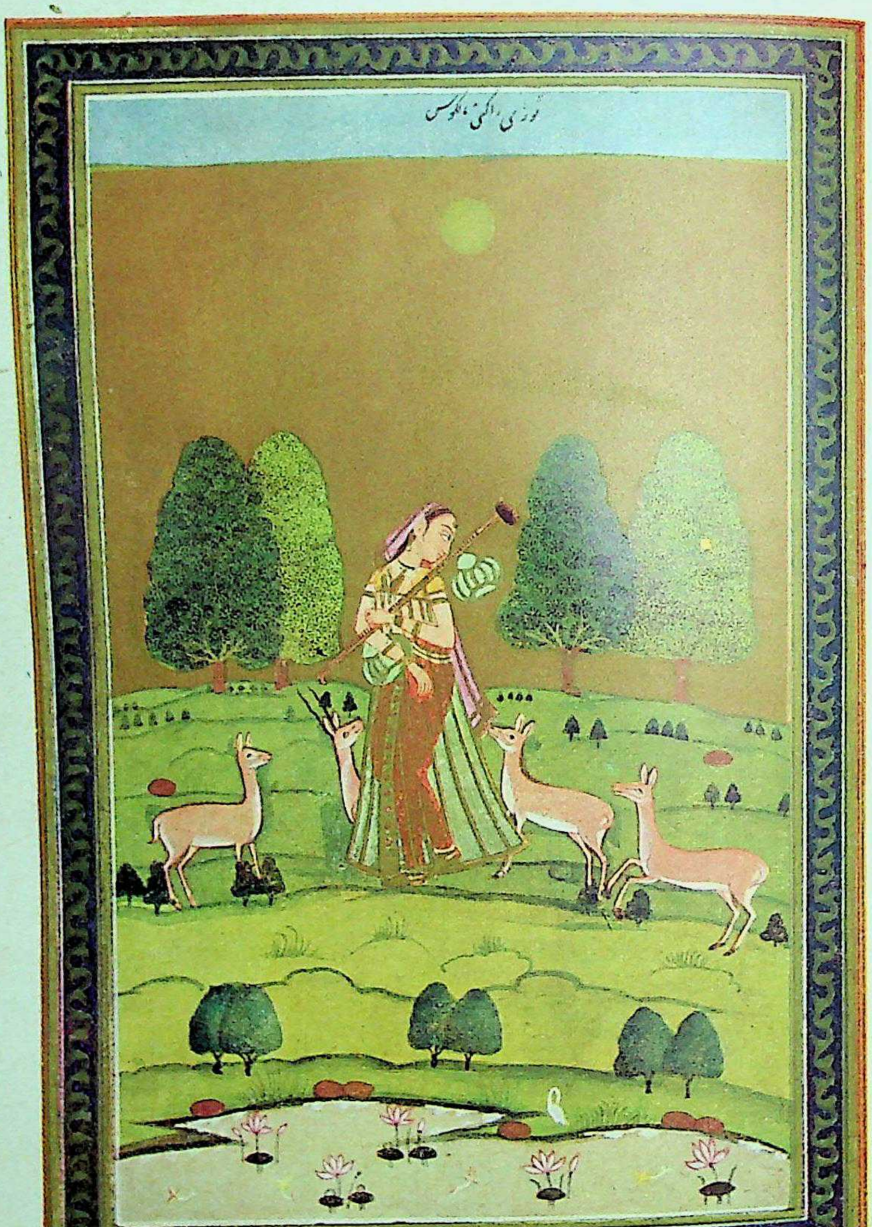
توڑی راگنی مالکوس

दक्खनी क़लम

टोडी रागिनी

सालारजंग म्यूज़ियम के सौजन्य से

अजन्ता

वर्ष ४ अक्टूबर १९५२ अङ्क १०

अजन्ता

ओ मेरे चित्रालय महान् !
ओ चिर संचित गर्वित विवेक
ओ आदि सभ्यता के विहान !
युग-धर्म भावना के प्रतीक,
ओ धर्म देव के अभयदान
ओ देश जाति के स्वाभिमान
ओ मेरे चित्रालय महान् !

भूतल के पावन परम स्वर्ग
ओ स्वर्ण-युगी वैभव विराट् !
ओ सुङ्ग कुशान गुप्त वंशी
भूपों के गर्वोन्नत ललाट
ओ सूक्ष्म तूलिका के कौशल

अंकन के आयोजन विशाल !
कोमल सजीव रेखाओं के
ओ कौतूहलमय महाजाल !
ओ रूपभेद सादृश्य भाव
मुद्राओं के आश्चर्य गहन !
लावण्ययोजना के प्रतिनिधि
वर्णिकाभङ्ग के जीवनधन !
वास्तविक मान के सिद्धहस्त
साकार कल्पना के निदान,
मानव रचना की चरम सृष्टि
सुकुमार कला के विधि विधान
ओ कलाकार के अमर प्राण !
ओ मेरे चित्रालय महान् !

गम्भीर गहन अति रहस्यमय
वह कौन कला-सागर अथाह
किस अन्तराल से बह निकला
यह स्वर्गिक शैली का प्रवाह
कैसी यह पावन परम भूमि
ये चैत्य गुहा मन्दिर विहार
हो रहा जहाँ पर युग-युग से
तेरी इस महिमा का प्रसार,
कर रही तेरे इस आंगन में
सुकुमार कला-कामिनि नर्तन
लुट रही यहाँ अविराम अभी
सौन्दर्यराशि पल-पल क्षण-क्षण
यह सौन्दर्य अभिव्यक्ति सफल
वासनारहित यह आलेखन,
यह प्रकृति और आनन्दयोग
यह सम्मेलन यह गठ संबन्ध,

यह सत्यं शिवं सुन्दरम् का
कैसा साक्षात् स्वरूप विमल
यह प्रकृति जगत् संबन्ध सुदृढ़
यह देश काल प्रतिबिम्ब अटल
वह कलाविदों का महालक्ष्य
जग को देना आनन्द दान
उस महादान का अवनी पर
तू है जीता जगता प्रमाण,
ओ धरा गगन के अमर गान !
ओ मेरे चित्रालय महान् !

आध्यात्मिक रचनाएँ विचित्र
यह बौद्ध विषय पावन पुनीत
चित्ताकर्षक यह रूप रंग
श्रृंगार साज वर्णनातीत,
ये विविध जातकों में वर्णित
गौतम की गाथाएँ ललाम
ये जन्मान्तर के रूपभेद
ये आकृतियाँ नयनाभिराम
कैसा अद्भुत कैसा अपूर्व
कैसा महान् कितना अशेष
उस करुणाकर की करुणा का
रेखाओं में है समावेश
कलियों की यह मुस्कान नई
सुमनों का हास विलास नया
जीवन का है सुख भोग अमर
मधु यौवन का उल्लास नया
लहराते कुंचित केश-पाश
धारण कर नाना अलङ्कार
किस स्वप्न-लोक से आई हैं

नारियाँ यहाँ करने विहार
कह सकता इनको कौन मूक
वाचाल हो रहे अङ्ग अङ्ग
केवल हाथों की मुद्राएँ
करतीं स्पष्ट अन्तः प्रसङ्ग
इनकी इन भावभंगिमा में
कितना अपूर्व रस का स्वादन
इस अमर देन में होते हैं
उस पूर्ण सफलता के दर्शन
रे! कलानटी के रंग मंच
रे! कलाविदों के दृष्टिमान
मानव पशुचर औ' अचर सभी
करते स्वतन्त्र अभिनय समान
रचना का कैसा विशद ज्ञान
ओ मेरे चित्रालय महान्!

यह देव मानवी सृष्टि बीच
किंचित् त्रिभंगि आकृति विशाल
यह बोधिसत्व का दिव्य रूप
वैराग्य भाव चिन्तन कराल
यह महानता का उदाहरण
स्वाभाविकता का चमत्कार
यह चित्रकार की अमर कीर्ति
यह चित्रण का कौशल अपार
करके बुद्धत्व को प्राप्त बुद्ध
भिक्षुक बन आये कपिलवस्तु
दे सकती उनको यशोधरा
राहुल से बढ़ कर कौन वस्तु
यह आत्मत्याग का विशद भाव
श्रद्धायुत यह भिक्षाप्रदान

भिक्षुक की सात्विक ग्रहण मूर्ति
वर वन्दनीय गौरव निधान
ये विविध भाव चित्रण प्रधान
ओ मेरे चित्रालय महान् !

कितनी निधियाँ लुट गईं अरे !
कितनों का साज सिंगार लुटा
कितनों के यौवन की गाथा
गा रही आज की मलिन छटा
फिर भी तू पूंजीभूत बना
ऊँचा स्वदेश का किये भाल
तेरे सम्मुख है वर्तमान
रचना कौशल नवजनित बाल
रे ! शिल्पलोक के पूर्ण सिद्ध
कैसा बैठा है मन मलीन
उठ जाग जाग आलस्य त्याग
हो रहा देश अब कलाहीन
इस कोने से उस कोने तक
फिर एक बार बस एक बार
रे ! युग-युग के सुख सिन्धु बहा
स्वर्गीय कला की अमिय धार
रे ! फूंक वह महामन्त्र
जिससे जग जायें प्राण प्राण
रग रग में हों संचरित वही
फिर पूर्व भाव फिर पूर्व ज्ञान
उठ संघर्षों के समाधान
ओ मेरे चित्रालय महान्

टीकमगढ़ —इक़बाल बहादुर श्रीवास्तव

द्वन्द्व

तुम दो मुझको आदेश, प्रलय से खेलूँ!
मैं सह न सकूँगा, मूक जलन
यह उमड़ा-उमड़ा दृग जल!
तुम अंगारों से रहो जलाती,
अपना मृदु अन्तस्तल!
अब हो जाने दो मुखर
सिसकती नयनों की भाषा को
यह यौवन का सन्देश, हृदय से खेलूँ!
तुम दो मुझको आदेश, प्रलय से खेलूँ!

जब सुप्त हृदय में आदि शक्ति का
चंचल नृत्य भयंकर!—
होता; खुल जाते नेत्र,
क्रोध से भर उठते प्रलयंकर!
होता चपला का भ्रू-विलास
काँपा करता नभमण्डल!
तुम करो नयन उन्मेष, अनय से खेलूँ!
तुम दो मुझको आदेश, प्रलय से खेलूँ!

चुप खींच रहे निज ओर
तुम्हारे अधर युगल सस्मित हैं
मैं वह्नि-वेदिका ओर बढ़ूँ,
पर आँखों में इंगित हैं!
है भरा कण्ठ में घोष
हृदय में अविरल प्यास भरी है!
बस एक भाव अवशेष, उभय से खेलूँ!
तुम दो मुझको आदेश, प्रलय से खेलूँ!

—राजेन्द्र यादव

आगरा

क्यों रुक जाऊँ ?

जीवन-पथ का एक पथिक मैं बीच राह में क्यों रुक जाऊँ ?
स्वप्नों की सोने की दुनिया मेरे मन को खूब भा गई
इसकी स्निग्ध मधुर शीतलता रग रग में मेरे समा गई
पर, शरमा जागरण-स्पर्श से हँसी खिन्नता में बिला गई
कोई याद लपट सी आ कर बुरी तरह मुझको जला गई
रजकण हूँ पर क्यों न वायु के संग सूर्य से मिलने जाऊँ ?
जीवन-पथ का एक पथिक मैं बीच राह में क्यों रुक जाऊँ ?

सोचा था संसार बना है मनमोहक तसवीर सरीखा
लगता था मानव-जीवन भी सुन्दर एक लकीर सरीखा
पर जाने क्या मुझे हो गया, आज लग रहा सब कुछ तीखा
मेरे सिर का बोझ हो रहा जो कुछ समझा जो कुछ सीखा
लेकिन क्यों विश्वास छोड़ दूँ ? गीत निराशा के क्यों गाऊँ ?
जीवन-पथ का एक पथिक मैं बीच राह में क्यों रुक जाऊँ ?

हृदय-लता पल्लवित रही तेरी सुरम्य शीतल छाया में
कुसुमित पथ पर अमर समझ बैठा निज को नश्वर काया में
फूल हो रहे शूल, शांति भी अब तो हाहाकार घोर है
झुलस गई तू प्रिये कल्पने ! अरे सत्य कितना कठोर है
जलकण तप्त अँगार बने तो बनें, भला मैं क्यों घबराऊँ ?
जीवन-पथ का एक पथिक मैं बीच राह में क्यों रुक जाऊँ ?

मेरी अन्तर्ज्वाला नयनों के पथ से जल बन कर निकली
हिमगिरि रोया, गंगा यमुना की निर्मल जलधार बह चली
अम्बर रोया ओस कणों में, सारी जगती आर्द्र हो चली
सिंधु हृदय ले वारिद रोया, वर्षा शत शत धार हो चली
रुकने में तो मृत्यु निहित है जीवन जब तक चलता जाऊँ ?
जीवन-पथ का एक पथिक मैं बीच राह में क्यों रुक जाऊँ ?

वर्षा जल को रोक सका है अब तक क्या कोई अम्बर में ?
सूर्य-चन्द्र की रश्मि-राशि को किसने रक्खा बन्दीघर में ?
कौन रोक सकता आहों को उठने से संतप्त हृदय में ?
किसकी यह सामर्थ्य बाँध ले भावों को कठोर बन्धन में ?
अगणित लाल लाल आँखों से देखे नभ, मैं क्यों डर जाऊँ ?
जीवन-पथ का एक पथिक मैं बीच राह में क्यों रुक जाऊँ ?

इलाहाबाद —**रमाशङ्कर मिश्र**

जब नींद नहीं आती होगी !

जब नींद नहीं आती होगी !
क्या तुम भी सुधि से थके प्राण ले मुझ सी अकुलाती होगी ।
जब नींद नहीं आती होगी !

दिनकर के कार्य भार से थक जाता होगा जूही सा तन
श्रम से कुम्हला जाता होगा मृदु कोकाबेली सा आनन
लेकर तन मन की श्रान्ति पड़ी होगी जब शैया पर चंचल
किस मर्म वेदना से क्रन्दन करता होगा प्रति रोम विकल
आँखों के अम्बर से धीरे से ओस ढुलक जाती होगी
जैसे घर में दीपक न जले ले वैसा अन्धकार तन में
अमराई में बोले न पिकी ले वैसा सूनापन मन में
साथी की डूब रही नौका जो खड़ा देखता हो तट पर
उसकी सी लिए विकलता तुम रह रह जलती होगी कातर
तुम जाग रही होगी पर जैसे दुनिया सो जाती होगी
हो छलक उठी निर्जन में काली रात अवश ज्यों अनजाने
छाया होगा वैसा ही भयकारी उजड़ापन सिरहाने
जीवन का सपना टूट गया—छूटा अरमानों का सहचर
अब शेष नहीं होगी अन्तर की क्षुब्ध रुलाई जीवन भर

क्या सोच यही तुम चिन्ताकुल अपने से भय खाती होगी ।
जब नींद नहीं आती होगी !

—'अंचल'

जबलपुर

गोस्वामी तुलसीदास जी का महत्त्व

गोस्वामी तुलसीदास को हमने आज तक विभिन्न दृष्टियों से देखने के प्रयत्न किए हैं। भारतीय इतिहास के मध्य युग में उनका आविर्भाव भी हुआ था, और जब धार्मिक क्षेत्र में भक्ति-साधना का अधिक प्रचार था हमने उन्हें एक भक्त के रूप में पाया था। उस समय उनका हमने स्वागत "कलि कुटिल जीव निस्तार हित वाल्मीक तुलसी भयो" के भाव से किया था। फिर जब हिन्दी-भाषाभाषियों के यहाँ साहित्यिक चर्चा कुछ विशेष विस्तार के साथ होने लगी और कवित्त्व-शक्ति के महत्त्व की ओर अधिक ध्यान दिया जाने लगा तो, उनके अपने लिए "कवित विवेक एक नहिं मोरे" कह चुकने पर भी, रीतिकालीन कवियों ने उनकी "कविताई" की भूरि भूरि प्रशंसा की। वे भक्त होने के साथ ही अपने कवि-रूप में भी बहुत प्रसिद्ध हो चले और उनकी लोकप्रियता का क्षेत्र विस्तृत हो गया। इसी प्रकार आधुनिक युग के प्रारम्भ में जिस समय पाश्चात्य लोगों के साथ हमारा संपर्क बढ़ा और पश्चिमी प्रकाश के आलोक में हमने आत्मनिरीक्षण आरंभ किया तो हमें उस महापुरुष को एक अन्य रूप में भी देखने का अवसर मिला, जो सुधारक का था। इस दृष्टि से उनके महत्त्व की जाँच-पड़ताल अनेक विदेशी विद्वानों तक ने की और उन्हें न केवल हिन्दु धर्म, अपि तु भारतीय संस्कृति के उन्नायकों में भी बहुत ऊँचा स्थान दिया। इस प्रकार जिस दशा में हमने उन्हें देखना चाहा उनके वे सर्वत्र उपयुक्त ठहरते आए और उसके समय की कसौटी पर सदा खरे भी उतरते रहे। इसी कारण उनके प्रति श्रद्धा प्रदर्शित करने में हम कभी उदासीन नहीं हुए और न उनकी लोकप्रियता में कभी कोई कमी आती दीख पड़ी।

गोस्वामी तुलसीदास की कृतियों में उनके भक्त कवि एवं सुधारकवाले रूप सदा से विद्यमान थे। जैसा अवसर आता गया, और तदनुसार हमारे दृष्टिकोण में परिवर्तन होते गए, हमारी दृष्टि उन पर पड़ती गई और हम उनके विविध रूपों का मूल्यांकन करते चले गए। आज हमारे सामने उनके वे तीनों रूप उपस्थित हैं और हम उनका आदर एक समर्थ कलाकार तथा भारतीय समाज के एक संरक्षक के रूप में किया करते हैं। हमने उनकी वाणी को अमर बतलाया है और उन्हें विश्व के अग्रगण्य महापुरुषों तक में गिनने में संकोच नहीं किया है। परन्तु क्या कभी कोई केवल भक्त, कवि अथवा सुधारक होने मात्र से ही उस सम्मान का अधिकारी हो सकता है जो उन्हें आज तक आप से आप मिलता आया है? क्या उन्हें अमर कृतियों का रचयिता कहने अथवा संसार के श्रेष्ठ महापुरुषों में गिनने का कोई और भी कारण नहीं हो सकता? इसके सिवाय क्या हम यह निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि हमारे उक्त कथनों की प्रामाणिकता सदा विश्वसनीय रह जायगी?

आज हम अपने राष्ट्र की जीवन-यात्रा के पथ पर एक महत्त्वपूर्ण स्थल तक आ पहुँचे हैं। हमारे सामने कुछ नवीन समस्याएँ उपस्थित हैं। आज हमें ऐसा लग रहा है कि हमारा भविष्य जो रूप ग्रहण करने जा रहा है वह हमारे पूर्वपरिचित आदर्शों से कुछ विलक्षण भी हो सकता है। आधुनिक युग की भौतिक उन्नति ने जहाँ कई बिछुड़े हुए देशों को अधिक आगे ला दिया है वहाँ वह उन्नत देशों को सब के साथ पैर मिला कर चलने को भी बाध्य कर रही है और आज सभी को इस बात का भान होने लगा है कि पृथक्-पृथक् आदर्शों को अब हम कदाचित् ठीक उनके पूर्वरूपों में ही नहीं रख सकते। प्रत्येक बात जो कभी किसी जाति का समाज विशेष के मानदण्डानुसार परख ली जाती थी अब किसी सार्वभौम तुला पर भी चढ़ने जा रही है। हमें इस प्रकार देखने का क्रमशः एक अभ्यास पड़ता जा रहा है और ऐसा प्रतीत होता है कि हमें कभी अपनी निधि के अमूल्य रत्नों को भी एक बार फिर से परखना होगा। हमें अपने चिर परिश्रम द्वारा अर्जित उपयोगी संबल को भी कम कर देना पड़ेगा और आगे के लिए केवल उसीको अपनाना होगा जो अनुकूल हो। हमारी सभी बातें भावी मानव के आदर्शों का अनुसरण करेंगी और उसी दशा में उनका मूल्य सदा के लिए ठहर भी सकता है। तदनुसार गोस्वामी तुलसीदास की कृतियों को अब हमें केवल किसी साधारण भक्त वा कवि अथवा भारतीय

की ही पंक्तियों के रूप में नहीं पढ़ना है । उनमें कथित विषयों की अब हमें एक नवीन व्याख्या करनी चाहिए और उनमें प्रतिपादित सिद्धान्तों को सार्वभौम विचारों की दृष्टि से देखना चाहिए । इस प्रकार के अध्ययन द्वारा ही यह समुचित रूप से जाना जा सकता है कि उनके उपर्युक्त सम्मान का रहस्य क्या है और वह फिर कब तक टिकने के योग्य भी है ।

उपर्युक्त कथन का तात्पर्य यह नहीं कि आज तक के आलोचकों ने उनकी रचनाओं का अध्ययन व्यापक रूप में नहीं किया है । कुछ विद्वानों ने ऐसा अवश्य किया है, किन्तु उस दशा में भी उन्होंने जिस मानदण्ड का उपयोग किया है वह अधिकतर भारतीय ही रहता है । जैसे, गोस्वामी तुलसीदास के काव्य की परीक्षा उन्होंने बहुधा भारतीय साहित्य शास्त्र द्वारा अनुमोदित नियमों के अनुसार जाँच कर की है और उसकी भक्ति को उन्होंने साधारण साम्प्रदायिक भक्तिमार्ग के अनुकूल ठहरा कर उसकी उत्कृष्टता सिद्ध करने के प्रयत्न किए हैं । इसी प्रकार उनके सुधारों की रूपरेखा का अनुमान भी उन्होंने केवल हिन्दु समाज के दृष्टिकोण से ही किया है जिससे कुछ विद्वानों को उसमें संकीर्णता तक की गन्ध मिल जाती है । गोस्वामी तुलसीदास एक सच्चे भारतीय थे । उनकी शिक्षा एवं संस्कृति का रूप भी भारतीय था, किन्तु उनकी विचार-धारा केवल भारतीय ही नहीं थी । सत्य किसी जाति, धर्म वा देश विशेष की वस्तु नहीं; वह शाश्वत एवं सर्वदेशीय है और वह किसी भी माध्यम द्वारा व्यक्त किया जा सकता है । यदि उसका रूप ठीक है और वह सक्षम शब्दों द्वारा प्रकट किया गया है तो उसके व्यापक होने में कोई भी सन्देह नहीं । संकीर्णता का प्रश्न तब आता है जब उसका रूप विकृत और एकांगी-सा दिखाई देता है और उसे व्यक्त करनेवाले में अनुभूति की गहराई की कमी जान पड़ती है । जहाँ कहीं भी सच्ची अनुभूति होगी और उस पर देश-काल के बन्धनों का अत्यधिक प्रभाव न होगा वह टूटे-फूटे शब्दों तक में ग्राह्य हो सकता है । देश-काल के बन्धनों द्वारा वह बहुधा सीमित बन जाता है और उस पर अनावश्यक रंग भी चढ़ जाता है । परन्तु ऐसा तभी सम्भव होता है जब उसे व्यक्त करनेवाले का व्यक्तित्व निर्बल हो और उसमें इन बातों के स्तर से ऊपर उठने की शक्ति न हो । सबल व्यक्तित्व में न केवल सत्य तक पहुँचने की शक्ति रहती है, अपितु वह उसे शुद्ध और अविकृत रूप से उपस्थित भी कर देता है । ऐसे महापुरुष की विचार-धारा एक देशीय-सी लगती हुई भी सर्वदेशीय होती है और तत्कालीन-सी जान पड़ती हुई भी सर्वकालीन हुआ करती है । वह स्वयं सत्य स्वरूप बन जाता है और उसकी अभिव्यक्ति उसके प्रतिबिंब का काम देती है जिस कारण वह भी, सत्य की ही भाँति, देश काल द्वारा अबाधित और अमर हो जाती है ।

गोस्वामी तुलसीदास की कृतियों के अमरत्व का कारण समझने के पहले उनके उस व्यक्तित्व का परिचय पा लेना आवश्यक है । इसके लिए केवल उनके भक्त कवि अथवा सुधारक वाले उपर्युक्त रूपों का ही अध्ययन पर्याप्त नहीं और न वे तीनों मिल कर भी हमें उनका पूरा पता देने में समर्थ हो सकते हैं । हमें इसके लिए उनके उस मानव-रूप का अध्ययन करना पड़ेगा जो इन तीनों का भी वास्तविक आधार है और जिसके प्रकाश के द्वारा ही ये सदा प्रकाशित हुआ करते हैं । मानव तुलसीदास, भक्त कवि अथवा सुधारक तुलसीदास से कहीं अधिक महान् है और उसे अपनी दृष्टि में रख कर ही उसकी कृतियों का समुचित अध्ययन किया जा सकता है अथवा उनके मूल्यांकन में प्रवृत्त हुआ जा सकता है; उसका रूप उनकी प्रत्येक पंक्ति में प्रतिबिंबित है। गोस्वामी तुलसीदास का अभी तक प्रामाणिक जीवन-चरित्र प्रकाशित नहीं है और न उनके ग्रन्थों के अतिरिक्त किसी अन्य साधन द्वारा हम उन्हें जान ही सकते हैं। जैसे-जैसे हम उनकी रचनाओं को पढ़ते जाते हैं उनके शब्दों के साथ-साथ उनके अर्थ को अवगत करते चलते हैं और इन दोनों के पीछे हमें सदा उस एक व्यक्ति की परछाँई का भी अनुभव होता रहता है जो उनकी पृष्ठ-भूमि का काम करती है और जिसका अस्तित्व ही हमें उनके भीतर निहित सत्य का पता भी देता है । जिस प्रकार किसी चित्र का निर्माण बिना किसी आधार के नहीं हो सकता और उसके रूप-सौन्दर्य का भी बहुत-सा श्रेय उसके चित्रपट को ही दिया जाता है उसी प्रकार शब्द एवं अर्थ के पीछे भी सदा कोई व्यक्तित्व काम किया करता है और उनसे उत्पन्न भाव-सौन्दर्य सदा उसी पर निर्भर रहता है । जो शब्द किसी साधारण कवि द्वारा प्रयुक्त होकर केवल अपनी रूढ़िगत सीमा

तक ही काम करते हैं वे. ही किसी सक्षम कलाकार की अभिव्यक्ति का माध्यम बन कर इतने शक्तिशाली हो जाते हैं कि उनका प्रभाव बहुत व्यापक और चिरस्थायी भी सिद्ध होता है।

गोस्वामी तुलसीदास के मानव रूप का विश्लेषण करते समय हमें उनकी कुछ रचनाएँ बहुत सहायता पहुँचाती हैं। अपने "रामचरितमानस" और विशेषतः अपनी "विनयपत्रिका" के अन्तर्गत उन्होंने कई ऐसे संकेत प्रदान किए हैं जिनसे उनके व्यक्तित्व की हमें एक स्पष्ट झलक मिल जाती है। 'रामचरितमानस' में उन्होंने भरत का जो चरित्र चित्रण किया है वह कई दृष्टियों से परमोपयोगी है। उसमें उन्होंने भरत को न केवल एक प्रिय बन्धु के नाते महत्त्व दिया है अपि तु उनमें अपने अनुसार एक सच्चे भक्त का भी आदर्श रख दिया है। उन्होंने भरत के विषय में कहते हुए एक स्थल पर यहाँ तक कह डाला है कि "यदि उनका जन्म न हुआ होता, अर्थात् यदि भरत का आदर्श मुझे प्रभावित करने के लिए नहीं मिल पाता तो मेरे जैसे साधारण कोटि के मनुष्य के लिए यह सम्भव नहीं था कि वह 'राम सम्मुख' हो पाता।" ये भरत उनके इष्ट देव राम के न केवल भाई और भक्त हैं, प्रत्युत उनके प्रति स्वयं राम का भी स्नेह अतुलनीय है। और उनसे भी तुलसी ने कहलवाया है कि भरत के समान कोई प्रिय बन्धु नहीं हो सकता। भरत में गोस्वामी तुलसीदास ने जिन गुणों को प्रदर्शित किया है उनमें सर्वप्रमुख हैं अनन्यता और आत्मत्याग। अनन्यता का गुण केवल एक भक्त के लिए ही उपयोगी नहीं है, वह संसार के किसी भी श्रेणी के व्यक्ति के लिए सफलता की सबसे महत्वपूर्ण कुंजी है। अनन्य भक्त भरत अपने इस गुण के अनुसार कहते हैं "मुझे अर्थ, धर्म, काम अथवा निर्वाण की गति तक की इच्छा नहीं, मैं तो केवल एक ही अभिलाषा रखता हूँ कि जो भी जन्म मुझे मिले उसमें मेरी भक्ति राम के चरणों में बनी रहे। मैं इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहता।" भरत ने अपने इस कथन को अपने आचरण द्वारा सिद्ध कर दिखाया जो 'रामचरितमानस' के पढ़ने से विदित होता है।

गोस्वामी तुलसीदास ने अनन्यतावाले इस गुण को चातक पक्षी के स्वभाव द्वारा भी स्पष्ट किया है। उन्होंने उसके विषय में 'चातक चौतीसी' के रूप में कुछ दोहे लिखे हैं जिनमें उसके दृढ़ प्रण की प्रशंसा इन्होंने मुक्तकण्ठ से की है। इस सम्बन्ध में उन्होंने प्रत्येक बात को व्यक्तिगत रुचि द्वारा सरस बना कर कहा है और उस पक्षी के वर्णन में एक सजीवता ला दी है। उस पक्षी के स्वभाव को अपने ऊपर भी घटाते हुए वे कहते हैं:—

एक भरोसो एक बल, एक आस विश्वास।
एक राम घनश्याम हित, चातक तुलसीदास॥

अर्थात् जिस प्रकार एक चातक पक्षी के लिए सिवाय जलपूर्ण बादल के कोई अन्य सहारा नहीं और न वह कोई दूसरी आशा ही करता है उसी प्रकार मुझे, तुलसी के लिए, भी केवल एक राम ही सब कुछ हैं। उन्होंने इस बात को अपनी विनयपत्रिका में कई बार दुहराया है और कहा है कि सच्चे अनन्य भाव के अन्तर्गत सभी अन्य प्रकार के सम्बन्ध एक में बट कर उसे दृढ़तर बना देते हैं और फिर इस प्रकार का भक्त अपने इष्टदेव के प्रति पूर्णतः तन्मय हो जाता है। परन्तु गोस्वामी तुलसीदास की यह अनन्यता ऐसी नहीं जो उनमें किसी प्रकार के एकांगीपन का दोष ला दे और वे संकीर्ण हृदय बन जाँय। अपने आदर्श की अनन्यता का परिचय उन्होंने स्वयं अपने इष्टदेव राम से दिलाया है और उनसे राम के प्रति कहलाया है:—

सो अनन्य जाके असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामी भगवन्त॥

अर्थात् वास्तविक अनन्य भक्त वह है जो अपने इस गुण के कारण सारे विश्व को ही अपने इष्टदेव के रूप में देखता है और स्वयं अपने को उसका सेवक मात्र मानता है। इसीलिए जहाँ एक ओर ये 'भरोसो जाहि दूसरो सो करो' से लेकर 'अपनो भलो राम नामहिं ते तुलसिहि समुझि परो' तक कह डालते वहाँ दूसरी ओर "सीय राम मैं सब जग जानी। करौं प्रणाम जोरि जुग पानी" भी कहते हैं। इन दोनों का सामंजस्य इनमें पूर्णतया मिलता है।

इनके अपने इष्टदेव राम के प्रति अनन्यता के भाव की भी यह पराकाष्ठा है जहाँ पर किसी प्रकार भी साम्प्रदायिकता वा संकीर्णता का लेशमात्र भी नहीं है। कुछ लोग उनकी साम्प्रदायिकता का पता इनके इष्टदेव राम के रूप में ही पाने की चेष्टा करते हैं। उनका

कहना है कि गोस्वामी तुलसीदास ने अपना इष्टदेव उस राम को चुना है जो महाराज दशरथ नाम के किसी अवध नरेश के पुत्र थे और जो कभी केवल एक मानव मात्र रह चुके थे। परन्तु स्वयं गोस्वामी तुलसीदास का कथन ठीक इन्हीं शब्दों में नहीं है और न हमें वे इस प्रकार कहते हुए कहीं दीख ही पड़ते हैं। 'रामचरितमानस' के आरम्भ से ले कर अन्त तक जब कोई भी उपर्युक्त प्रसंग आया है उन्होंने इस सन्देह का निराकरण करने के प्रयत्न किए हैं। इस सम्बन्ध में तो यहाँ तक कह देना भी कदाचित् अनुचित न समझा जायगा कि उस पूरे ग्रन्थ की रचना केवल इसी एक प्रश्न का समाधान करने के लिए की गई थी जिसके अनेक उदाहरण हमें उन संवादों में भी मिल सकते हैं जो शिव एवं पार्वती, भुशुण्डी एवं गरुड़ और याज्ञवल्क एवं भारद्वाज के बीच हुए थे। प्रश्नकर्ताओं ने सदा इसी एक प्रश्न को महत्वपूर्ण समझ कर अपनी शंकाएँ प्रस्तुत की और उत्तर देनेवालों ने भी उसी का समाधान किया। सम्पूर्ण राम चरित्र वहाँ केवल एक इसी उद्देश्य से कहा गया है और इसी की सिद्धि उस ग्रन्थ के रचयिता को अभीष्ट भी थी। इस बात का स्मरण उन्होंने उसके कदाचित् प्रत्येक पृष्ठ पर किसी न किसी रूप में दिलाया है और प्रत्येक प्रसंग से उसे उन्होंने चरितार्थ करने की भी चेष्टा की है।

गोस्वामी तुलसीदास परमतत्व के निर्गुण एवं सगुण रूपों में कोई मौलिक अन्तर नहीं मानते। उनका कहना है कि जिस प्रकार जल, हिम एवं उपल सभी एक ही हैं उनमें केवल स्वरूपगत भेद है, उसी प्रकार निर्गुण एवं सगुण को भी एक मान लेना चाहिए। यदि किसी को ईश्वर के प्रति निष्ठा है तो वह उसे किसी भी रूप में अपना कर अपनी साधना में अग्रसर हो सकता है। तत्कालीन निर्गुणिए साधकों के प्रति वे अपना रूक्ष भाव केवल इसी कारण प्रकट करते हैं कि ऐसे लोग उनकी दृष्टि में बिना कुछ समझे-बूझे ही बकते फिरते हैं। इस रहस्य को भलीभाँति स्पष्ट कर लेना नहीं चाहते। सगुण भक्तों में से भी उन्हें ऐसे लोगों के प्रति दया आती है जो वैष्णव, शैव जैसे विभिन्न सम्प्रदायों को एक दूसरे से सर्वथा पृथक् मानते हैं। 'रामचरितमानस' के पृष्ठों में उन्होंने बार-बार इस बात की चेष्टा की है कि राम एवं शिव में कोई मौलिक अन्तर न जान पड़े। राम के अनन्य भक्त होते हुए भी उन्होंने शिव के प्रति अपने कल्याण के लिए प्रार्थना की है और शिव को राम का एक ही साथ 'सेवक', 'स्वामी' और 'सखा' भी कह डाला है। उनके राम 'अशेष कारणों से परे' तथा राम-नामधारी ईश और हरि हैं किन्तु वे उन्हें 'अवधिपति' राम से अभिन्न भी मानते हैं। जैसे—

सबका परम प्रकासक जोई।
राम अनादि अवधिपति सोई॥

कह कर उन्होंने रामावतार को उस परमतत्व के स्थान पर ला दिया है जो वैदिक धर्म के अनुसार 'परम-ज्योतिः' और इस्लाम के अनुसार 'नूर' के नाम से विदित है। निर्गुण एवं सगुण में इस प्रकार का सामंजस्य आ सकता है।

गोस्वामी तुलसीदास ने भरत में जिस 'त्याग' धर्म को दर्शाया है वह भी एक असाधारण गुण कहला सकता है। उन्होंने इसका वर्णन भी अपनी रचनाओं के अन्तर्गत कई भिन्न-भिन्न स्थलों पर किया है और इसे उदाहृत भी किया है। उनके राम तथा उनके तीनों भाई त्याग में एक से एक बढ़ कर दीखते हैं और उनमें से कोई भी ऐसा नहीं जिसे हम त्याग की आदर्श मूर्ति न कह सकें। राम यदि अपने युवराजपन का त्याग करते हैं तो भरत उसके साथ-साथ अपने आप का भी परित्याग करके उनके विरह में १४ वर्षों का साधनामय जीवन व्यतीत करते हैं और लक्ष्मण यदि 'नींद नारि भोजन' की उपेक्षा कर अपने अग्रज के निकट सदा दासवत् बने रहते हैं तो शत्रुघ्न ने अपने को ऐसा भुला दिया है कि उनका कहीं स्वतन्त्र पता ही नहीं चलता। हनुमान्, अंगद, जटायु, दशरथ आदि भी 'मानस' के ऐसे त्यागी पात्र है जिनकी समता करनेवाले अन्यत्र बहुत कम मिल सकते हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने इन पात्रों के चरित्रों का चित्रण भी बहुत कुशलता के साथ किया है और उन्हें उच्चकोटि का सिद्ध कर दिया है। त्याग का यह भाव सदा उपर्युक्त अनन्यता के साथ ही सम्भव हो सकता है और इसमें कपट तथा छल की कभी गन्ध तक नहीं आ पाती। गोस्वामी तुलसीदास के व्यक्तिगत जीवन में इस गुण का भी प्रचुर मात्रा में विद्यमान रहना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। उनकी जितनी भी जीवनियाँ अभी तक उपलब्ध हैं उनमें इसके उदाहरण आदि

से अन्त तक मिलते हैं और वे उनके सात्विक जीवन को प्रमाणित करते हैं ।

इसी प्रकार हम उनकी रचनाओं में एक अन्य ऐसे गुण का भी प्रदर्शन पाते हैं जो किसी से भी कम महत्व का नहीं है । गोस्वामी तुलसीदास के इष्टदेव राम एक शान्त, संयमी और विवेकशील महापुरुष के रूप में चित्रित किए गए हैं । वे मर्यादा पुरुषोत्तम हैं । रामचरितमानस में आदि से अन्त तक इस गुण को उनमें उदाहृत किया गया है और इसे महत्वपूर्ण सिद्ध किया गया है । राम जिस व्रत को एक बार स्वीकार कर लेते हैं उसे अक्षरशः पालन करना वे अपना परम धर्म समझते हैं और वे अपनी प्रचलित परम्पराओं की ओर भी सदा ध्यान रखा करते हैं । १४ वर्षों तक किसी नगर में प्रवेश न करने के नियम को उन्होंने उस समय भी निभाया है जब वे लंका पर पूर्ण विजयी बन चुके थे और जब वे अपनी विरहिणी पत्नी को बिना एक क्षण का भी विलम्ब किए स्वयं जाकर आनन्दित कर सकते थे। उस अवसर पर विभीषण ने भी उनसे बड़ी श्रद्धा के साथ अनुरोध किया है, किन्तु वे अपने व्रत पर अडिग बने रह गए हैं और सीता को एक साधारण स्त्री के रूप में वहाँ आना पड़ा है । किस व्यक्ति के प्रति और किस अवसर पर कैसा व्यवहार करना चाहिए इसे राम से बढ़ कर कदाचित् कोई भी नहीं जानता । 'मानस' के अन्य पात्रों में भी हमें इस गुण का यथेष्ट परिचय मिलता है और जिस किसी में इसकी कमी दीखती है उसका पराभव भी निश्चित रहता है । मर्यादा संरक्षण की इस प्रवृत्ति ने गोस्वामी तुलसीदास को परस्पर-विरोधी बातों में सामंजस्य बिठाते समय भी बड़ी सहायता पहुँचाई है । ऐसे अवसरों पर उन्हें कभी 'राम के नाते' की मर्यादा काम दे जाती है, कभी 'रामकाज लगि, उन्हें कोई मार्ग सुझा देता है तो कभी 'परम सनेही राम' ही स्वयं उनकी सहायता के लिए उपस्थित रहते हैं और उनके द्वारा चित्रित क्रान्तिकारी प्रसंग भी नियमित और मर्यादित से लगने लगते हैं । राजकुमार भरत एवं ब्रह्मर्षि विश्वमित्र निषाद से गले लगा कर मिलते हैं, गीध जटायु नारी-रक्षा के प्रयत्न में अपने प्राण तक दे देता है और शबरी भीलिनी के घर राम स्वयं पहुँच जाते हैं । गोस्वामी तुलसीदास को समाज के बड़े व्यक्तियों के प्रति जितनी श्रद्धा है उससे कम उन्हें छोटों के प्रति सहानुभूति भी नहीं । पक्षियों में महानीच समझे जानेवाले कागभुशुण्डी के सामने पक्षिराज गरुड़ को शिष्यवत् भेज कर उन्होंने इस बात का एक प्रत्यक्ष उदाहरण उपस्थित कर दिया है । इसके सिवाय परोपकार के गुण को उन्होंने बहुत बड़ा महत्व दिया है जहाँ कहीं भी कोई अवसर मिला है उन्होंने दीन-दुखियों का मार्मिक चित्रण किया है । ऐसे लोगों को वे केवल 'नहि कटिपट नहि पेट अघाहीं' तक ही नहीं कहते उनकी क्षुधा को "आगि बड़बागिते बडी है आगि पेट की" बतला देना चाहते हैं ।

गोस्वामी तुलसीदास ने एक साधारण विरक्त साधु के वेष में रहते हुए भी लोक धर्म के महत्व की ओर सदा ध्यान दिया । उन्होंने उपयुक्त अनन्य भाव, आत्मत्याग समन्वय, मर्यादा पालन जैसी विश्वजनीन प्रवृत्तियों की इतनी स्पष्ट और सुन्दर व्याख्या कर डाली कि वे साधारण से साधारण व्यक्तियों का भी ध्यान स्वभावतः आकृष्ट करने लगीं और उनके उदाहरण में रचा गया इनका 'मानस' अत्यन्त लोकप्रिय काव्य बन गया । इनकी रचनाओं को पढ़ने से विदित होता है कि उनमें आई हुई प्रत्येक बात कवि की गहरी स्वानुभूति और सहृदयता पर आधारित है । उनमें कथनी और करनी का वैषम्य नहीं लक्षित होता और उनके पीछे सर्वत्र एक सुलझा हुआ मस्तिष्क और सच्चा हृदय काम करता हुआ दीख पड़ता है । इस कवि ने सीयराममय जग में अपने व्यक्तित्व को मग्न-सा कर दिया है और यही कारण है कि इसकी 'स्वान्तः सुखाय' की गई कविता भी 'सब कर हित' करने योग्य हो गई है । गोस्वामी तुलसीदास का एक चरित्रवान् मानव होना ही उनकी लोकप्रियता का प्रमुख रहस्य है और इस दृष्टि से पढ़ने पर ही हम उनकी रचनाओं के सदा अमर बने रहने की आशा भी कर सकते हैं ।

बलिया

—परशुराम चतुर्वेदी
एम्. ए., एल-एल. बी.

शिल्प कला में दक्षिणी शैली

['अजन्ता' में 'दखनी कलम' (दक्षिणी शैली) के चित्र प्रकाशित होते रहते हैं। जिस प्रकार उत्तर भारत से उर्दू आकर दखनी बन गई और उसमें यहाँ की भाषाओं का भी सम्मिश्रण हुआ उसी प्रकार चित्रकला की दखनी शैली भी उत्तर से आई। सम्भवतः इसमें राजपूत और मुग़ल चित्रकला के साथ यहाँ की चित्रकला का भी अंश मिल गया हो। इस लेख में चित्रकला के प्रसिद्ध भारतीय विद्वान् श्री प्रो. ओ. सी. गांगुली ने इस विषय में अपने विचारों को अभिव्यक्त किया है--सं.]

भारतवर्ष के मध्य भाग में पूर्व से पश्चिम तक फैली हुई विंध्याचल पर्वत की श्रेणियाँ इस उपमहाद्वीप को पूर्णतया दो भागों में विभाजित करती हैं। ये भाग हैं उत्तरापथ और दक्षिणापथ। दक्षिणापथ द्रविड़ संस्कृति का जन्म-स्थान न भी रहा हो पर प्रागऐतिहासिक काल से ही यहाँ द्रविड़ संस्कृति की प्रधानता रही है जब कि उत्तरापथ आर्य-संस्कृति का विकास-क्षेत्र रहा है। आरम्भ में आर्य संस्कृति पंजाब में पोषित हुई तथा क्रमशः अपना प्रभाव बढ़ाते हुए उसने बंगाल और आसाम की प्राचीन अनार्य संस्कृति को आच्छादित कर लिया। उत्तरी भारत के पूर्वी भागों में (प्राच्य देश) में आर्य संस्कृति के फैलने से पहले अनार्य संस्कृति तथा प्रागआर्यकालीन संस्कृतियाँ फैली हुई थीं। आरम्भिक कुछेक वैदिक ग्रन्थों में तीर्थ यात्रा के अतिरिक्त इन पूर्वी भागों में जाना आर्यों के लिए वर्जित बताया गया था।

विंध्य पर्वत के दूसरी ओर का दक्षिण भाग, द्रविड़ संस्कृति के पनपने का क्षेत्र अपनी स्थिति और उत्तर प्रदेश से असम्बन्धता के कारण अलग-सा था तथा वहाँ तत्कालीन द्रविड़ सभ्यता के प्रचारकों के प्रभाव-स्वरूप एक स्वतन्त्र संस्कृति का निर्माण हुआ जिसे दक्षिण की संस्कृति कहा जाता है। कालान्तर में आर्य संस्कृति क्रमशः विंध्य पर्वत श्रेणियों को पार कर दक्षिण में प्रवाहित हुई और उसने दक्षिण की आरम्भिक द्रविड़ संस्कृति को अपने रंग में रंग कर पूर्णतया उसका स्वरूप बदल दिया। वैदिक युग के महर्षि अगस्त्य दक्षिण में आर्य संस्कृति के महान् संदेश वाहक थे जो अपने जन्मस्थान वैदिक सभ्यता के गढ़ उत्तरी भारत को छोड़ विंध्य पार कर पुनः उत्तर की ओर न लौटने का निश्चय लिए दक्षिण में गए और उन्होंने दक्षिण की संस्कृति के स्वरूप को ही बदल दिया। परन्तु दक्षिण में आर्य संस्कृति के प्रवेश से पहले विविध पहलुओं वाली एक विशिष्ट द्रविड़ सभ्यता का विकास हो चुका था जो उत्तरी भारत की संस्कृति से पूर्णतया भिन्न थी।

उत्तर से आनेवाली आर्य संस्कृति के द्वारा दक्षिणी सभ्यता के पूर्णतया आच्छादित हो जाने पर भी सुदीर्घ काल तक उसका विशिष्ट स्वरूप बहुत अंशों में नष्ट नहीं हुआ।

इसका प्रमाण दक्षिण में प्रचलित भाषाएँ (तमिल तेलुगु, मलयालम), विशिष्ट सामाजिक रीति-रिवाज, माता की ओर से उत्तराधिकार का नियम तथा वास्तु, शिल्प और चित्रकला के स्वरूप हैं। वास्तु-कला के तीन प्राचीन स्वरूपों या पद्धतियों—द्राविड़, वेसर और नागर में से प्रथम का उद्गम दक्षिण में हुआ और नागर पद्धति जो आर्यावर्त शैली के नाम से भी पुकारी जाती है उत्तर से आई। दक्षिण में नागरशैली की वास्तुकला के प्रायः बहुत कम उदाहरण मिलते हैं तथा वहाँ द्रविड़ पद्धति ही प्रधान है जिसमें वर्ग या शंकुकाकार मीनार (विमान) पर एक प्रधान आकार बना रहता है जिसे स्तूपिका कहते हैं। शिल्प कला में द्रविड़ कलाकारों ने विशिष्ट प्रकार के आकारों का स्वरूप विकसित किया जो उत्तर के आर्य देवी-देवताओं के दक्षिण में प्रविष्ट होने पर भी अभी शेष है। पल्लव और चोल वंश की बनवाई हुई पत्थर और कांसे की मूर्त्तियों की शैली और आकार से यह स्पष्ट है। पल्लव युग के आरम्भिक चित्रकला के नमूने बहुत कम मिलते हैं परन्तु जहाँ वे मिलते हैं उनमें दक्षिण की विशेषताएँ और विशिष्टताएँ पाई जाती हैं।

ममुन्दर में पल्लव वंश के सम्राट महेन्द्र वर्मा का

एक प्राचीन शिला-लेख मिलता है जिसमें दक्षिण की चित्रकला के सम्बन्ध में संकेत है तथा जहाँ कुछ विद्वान् उसका 'चित्र-शैली' से सम्बन्ध बताते हैं वहाँ अन्य विद्वानों के मत में उसका सम्बन्ध दक्षिण की संगीत पद्धति से है। यह लेख खण्डित रूप में मिलता है—

"कल्पत प्रविभाज्य..................वृत्तिम्
दक्षिणचित्राख्याम् कारावितायथाविधि"

"प्राचीन मानदण्ड कल्प (मौलिक उच्च स्तर का ग्रन्थ) के आधार पर उन्होंने दक्षिण चित्र (दक्षिण भारत की कला या चित्रकला) पर ऐसे ग्रन्थ के लिए निर्धारित नियमों और प्रणाली का पूर्णतः पालन करते हुए टिप्पणी (वृत्ति) संकलित करवाई।" कुछ विद्वान् भरत नाट्य-शास्त्र (अ. २९, ७३) का संकेत लेकर इस अवतरण को चित्रकला की शैली के बदले संगीत पद्धति से सम्बन्धित मानते हैं। नाट्यशास्त्र के कथित अंश में भरत वाद्य और स्वर, दोनों प्रकार के संगीत के चित्र, दक्षिण और वृत्ति या वृत्तिका नामक तीन वृत्तियों या मार्गों का विवेचन करते हैं।

राजा महेन्द्र वर्मा के शिलालेख का यह अवतरण चित्रकला में दक्षिणी रीति के सम्बन्ध में संकेत करता हो या नहीं परन्तु चित्रकला की बहुत-सी विशिष्ट पद्धतियाँ दक्षिण में प्रचलित हुईं जिन्हें "दक्षिणी-चित्र" के नाम से सम्बोधित किया जा सकता है। पल्लव और चोल वंश के समय की कला यद्यपि उत्तर भारत की कला के कला-सिद्धान्तों से प्रभावित और उसके आधार पर निर्मित हुई, पर उसमें स्पष्टतः दक्षिण के व्यवहार और व्यापार पाए जाते हैं जो कि उत्तर की चित्रकला के नमूनों से अपनी स्थानीय अभिव्यंजना के कारण बहुत कुछ भिन्न हैं। अतः सीतानवसल (जिला तंजोर) के पल्लव चित्रों, चोल सम्राट् राजराजा प्रथम के समय के वृहदीश्वर मंदिर (तंजोर) के बरामदों में दीवारों पर चित्रित चित्रों की शैली उत्तर के अजन्ता—आदर्श के हलके और लय-प्रधान (Sweeping and rhythmic) चित्रों के अनुकूल है पर उसमें अभिव्यंजना के बहुत से प्रकार और प्रधानतः सजावट और वस्त्रालंकार प्रणाली की अनेक विशेषताएँ पाई जाती हैं जिनका दक्षिण में प्रचार मिलता है। दक्षिणी चित्रकला का एक विशिष्ट उदाहरण जिनाकांची (तिरुपरुति-कुंरम) में स्थित वर्धमान मन्दिर के मण्डप की छत पर चित्रित चित्रमाला के रूप में मिलता है जिसका निर्माण सम्भवतः १२ वीं सदी में हुआ था।

चित्रकला के ब्राह्मण और जैन हिन्दु स्वरूपों के पश्चात् हमारा ध्यान बीजापुर की चित्रकला की ओर जाता है। बहमनी राज्य की स्थापना ने दक्षिण की कला और संस्कृति के क्षेत्र में एक नया अध्याय आरम्भ किया। प्रायः यह भुला दिया जाता है कि दिल्ली में अकबर के द्वारा चित्रकला की मुग़ल शैली स्थापित करने से बहुत पहले यूसुफ़ आदिलशाह (१४९०-१५१० ई.) ने भारतीय-मुस्लिम संस्कृति के एक विशिष्ट रूप को बढ़ावा दिया था जिसमें फ़ारसी संस्कृति के तत्वों के साथ बीजापुर और गोलकुण्डा में विद्यमान तत्कालीन स्थानीय हिन्दू संस्कृति के तत्व मिलते हैं। इस्लाम संस्कृति से यह भारतीय सम्पर्क अकबर के युग से अधिक पुराना था। एमस्टर्डम के संग्रहालय में गोलकुण्डा के राजाओं की चित्रावली के संकलन से मूर्ति-चित्र (Portrait Painting) के एक नवीन रूप का पता चलता है जिसका दृष्टिकोण और शैली उत्तर की मुग़ल शैली से भिन्न है।

परन्तु यहाँ दक्षिण भारतीय चित्रकला का अत्यन्त विशिष्ट उदाहरण नूरुल-उल-उलमा नामक हस्तलिखित चित्रमय ग्रन्थ में मिलता है जो अली आदिलशाह (१५५८-१५८० ई.) के काल में सन् १५७० में चित्रित किया गया था। इस चित्रमय हस्तामलक में फ़ारसी और प्राचीन भारतीय चित्रकला की विशेषताओं का सुन्दर समन्वय है। इस प्रकार के चित्रों को 'बीजापुर या गोलकुण्डा शैली' के नाम से अभिहित किया गया है। चित्रकला में दक्षिणी शैली का यह एक सुन्दर रूप है। दक्षिण में चित्रकला के विशिष्ट रूपों का विकास होने पर भी उत्तर की मुग़ल शैली और राजपूत शैली के चित्रों ने भी दक्षिण में यदा-कदा प्रवेश किया और दक्षिणी शैली को प्रभावित करके उसे नया स्वरूप प्रदान किया। अतः बम्बई के 'प्रिन्स ऑफ़ वेल्स म्यूज़ियम' में कपड़े पर चित्रित कुछ विशाल चित्र हैं जिनमें बीजापुर के राजाओं की सवारी तथा उपवन के कुछ दृश्य चित्रित हैं। इन चित्रों को आकर्षक बनाने में राजपूत और मुग़ल शैलियों के तत्वों ने बहुत कुछ योग प्रदान किया है। यह चित्र यद्यपि राजपूत और मुग़ल शैली से थोड़े भिन्न हैं तथापि इनमें एक अपनी सुगन्धि व्याप्त है जिस पर दक्षिण की संस्कृति का पुश्तैनी दावा है।

तथापि दक्षिण में मुगल और राजपूत चित्रकला के अनेक ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिन्हें दक्षिण के राजाओं ने संग्रहीत किया तथा उन्हें अपनी श्रेष्ठता के आधार पर प्रशंसा मिली एवं पुरस्कृत किया गया। अतः हैदराबाद म्यूज़ियम में बहुत से ऐसे छोटे चित्र संग्रहीत हैं जो दक्षिण में चित्रित नहीं किये गए वरन् उत्तर से लाये गए थे। 'अजन्ता' के मई मास के अंक में जो चित्र छपा है वह उत्तरकालीन राजपूत शैली का उदाहरण है और "दक्षिणी चित्र" का उदाहरण नहीं कहा जा सकता। अन्य उदाहरण भी हैं। हैदराबाद म्यूज़ियम में * 'टोडी रागिनी' का चित्र जो राजस्थानी चित्रों में प्रदर्शित व्यापार की प्रतिध्वनि है। उसकी हलकी अनुकृति है। अतः उत्तर से दक्षिण में लाये गए चित्रों के आकार और शैली तथा गोलकुण्डा और निज़ामशाही के बने चित्रों की कला के भेद को हमें ध्यानपूर्वक समझना चाहिए।

कलकत्ता

—प्रो. ओ. सी. गांगुली

महान् और समान्य

एक था महान् प्रतिभा से सम्पन्न, अनेक लौकिक और अलौकिक गुणों से विभूषित, लोक-पूजित लोक-नायक और दूसरा था एक सरल सामान्य गृहस्थ। दोनों एक दूसरे के मित्र थे। दुनिया पहले को पूजती थी और उसके पथ-प्रदर्शन से असाधारण लाभ उठाती थी; दूसरे को उसके पड़ोसियों के सिवाय कोई जानता भी नहीं था। दोनों अलग-अलग नगरों में रहते थे और जब कभी यह लोक-नायक इस गृहस्थ के नगर में आता था तब इसके ही घर ठहरता था।

इस महान् पुरुष के संसर्ग से धीरे धीरे उस गृहस्थ के नगर के लोग उसे भी जान गए। उनके मन में कुतूहल उत्पन्न हुआ कि इस साधारण गृहस्थ पर इस महान् प्रतिभा का कोई विशेष सम्मान-सूचक प्रभाव क्यों नहीं है।

एक दिन कुछ लोगों ने बहुत साहस करके अपनी यह जिज्ञासा उस महापुरुष के सामने रख दी। उसने उत्तर दिया :

"यह मेरा बचपन का साथी, मेरा चिरसखा और समकक्ष सहयोगी है। मुझमें तुम जो महानता देखते हो यह समाज की प्रस्तुत विषमता का प्रतिबिम्ब है; इसमें जो सामान्यता देखते हो यह आगामी उन्नत समाज की समता की छाया है। मैं जो लोक-हित के कार्य करता हूँ उनसे समाज में एक हिलोर उत्पन्न होती है और लोग उससे हिल जाते हैं और स्वयं को प्रभावित एवं हीन तथा मुझे प्रभावशाली एवं महान् के रूप में देखते हैं। मेरा मित्र लोक-हित के जो कार्य करता है वे हलकी फुहारों वाली एक मेघ-माला की तरह धरती के समीप आकर समाज को चुपचाप भिगो जाते हैं; उनका किसी प्रकार का आतंक नहीं होता। मेरे मित्र का कार्य मेरे कार्य से एक स्तर ऊँचा और अधिक व्यापक है। मैं संसार में आन्दोलन करके जागृति उत्पन्न करता हूँ, यह अपने पड़ोस में चुपचाप सुख बिखेरता है; लेकिन मेरा संसार उतना है जितने में मैं दौरे करता हूँ और इसका पड़ोस सारा संसार है। संक्षेप में, मैं सोए हुए भूखों को जगाता हूँ, यह उन्हें भोजन परोसता है। हमारे बाह्य कार्यों की तुलना कर तुम हम दोनों की महानताओं को नहीं तोल सकते।"

—रावी

आगरा

---

* 'टोडी रागिनी' चित्र 'अजन्ता' के इसी अंक में प्रकाशित किया गया है—सं.

गान्धीवाद और विकेन्द्रित उद्योग धंधे

..आज केन्द्रित उद्योगों के माध्यम द्वारा ही सुई से लेकर वायुयान तक निकालने का प्रयत्न किया जा रहा है और इतनी गति के साथ कि शायद इस प्रगति से चकाचौंध होकर विकेन्द्रित और छोटे घरेलू उद्योग धन्धों का कोई नाम भी नहीं ले सके। किन्तु आदि से अन्त तक केन्द्रीकरण की नीति को घसीटना और प्रत्येक साधारण से लेकर महत्वपूर्ण और आवश्यक वस्तु के उत्पादन पर केन्द्रित उद्योग की छाप मारना किसी भी राष्ट्र के लिए समय पाकर हानिकारक सिद्ध हुए बिना नहीं रह सकता। यह सत्य नहीं है कि कौतूहलपूर्ण बातें हमें केन्द्रित उद्योगों के युग में ही मिली जिनसे हम प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। भारत के प्राचीन विकेन्द्रित और छोटे उद्योगों की वस्तुएँ तो आज भी हमें आश्चर्य में डाले बैठी हैं। फ्रेंच यात्री टेवरनियर ने जिसने १७ वीं शताब्दी के द्वितीय और चतुर्थांशों में भारत की छै बार यात्रा की थी, अपनी "भारत की यात्राएँ' नामक पुस्तक में बताया है कि "हिन्दुस्तान में अपने दूत निवास से फ़ारस (आधुनिक ईरान) लौटते समय किस प्रकार मुहम्मद अली बेग ने बादशाह शफ़ी को बहुमूल्य हीरों से अलंकृत शुतुरमुर्ग़ के अण्डे के आकार वाले एक नारियल की भेंट की थी और जब उसे खोला गया तो उसमें से ६० हाथ (३० गज) लम्बाई की इतनी नफीस मलमल की एक पगड़ी निकली कि आप उस चीज़ की शनाख्त नहीं कर पाते जो कि आपके हाथ में थी।" अर्थ यह निकला कि केवल आश्चर्यजनक मशीनें, अनहुने हथियार और अजनबी वस्तुएँ दिखा कर ही केन्द्रित उद्योग, विकेन्द्रित और छोटे उद्योगों का महत्व कम नहीं कर सकते। आज युद्ध और विनाश के वातावरण में जो सचमुच इन्हीं की देन है, छोटे उद्योगों को बढ़ाने और देश के उत्पादन के साधनों को विकेन्द्रित करने की आवश्यकता पहले से कहीं सौगुनी हो चली है। महात्मा गांधी ने इस देश की उन्नति और उत्थान के लिए सदा विकेन्द्रित उद्योग धन्धों की आवश्यकता पर बल दिया है जिससे आज देश के ३५ करोड़ नागरिकों के ७० करोड़ हाथ स्वाभिमान के साथ काम कर सकें।

देश में कोई भी अर्थ व्यवस्था लागू की जाय पर गांधीजी का मत था कि उसमें आध्यात्मिक तत्वों के साथ साथ श्रमिकों को पूरी रोज़ी मिलनी चाहिए और साथ ही साथ रोज़गारी का परिमाण भी कम न हो या कहिए कि बेकारी का क्षय रोग देश में न फैलने पाए। भारत तो वैसे कृषि प्रधान देश रहा है और यहाँ की सबसे बड़ी उद्योगशाला भी करोड़ों किसानों के खेत हैं जहाँ अनेक प्रकार की अन्न सामग्री उत्पन्न की जाती है। किन्तु इसका वर्णन स्वयं स्वतन्त्र स्थल की अपेक्षा रखता है। यहाँ प्रश्न इस बात का है कि यदि विस्तृत उद्योग अपनी प्रगति करने लगें अर्थात् अपना अधिक से अधिक यन्त्रीकरण करें तो क्या बेकारी की समस्या को और बढ़ावा देंगे या उसे हल कर देंगे। उत्पादन में श्रम बचाने के लिए अधिक से अधिक मशीनों का प्रयोग करने से ही पश्चिम के देशों में एक प्रकार की 'हुनरी बेकारी' (Technical unemployment) की समस्या बड़ी गम्भीर हो उठी है। अधिकारी क्षेत्रों से ज्ञात हुआ है कि पिट्सबर्ग के कारख़ाने में सन् १९२६ से (Continuous hot strip mill) एक प्रकार की लगातार चलने वाली मशीन के लागू करने से सन् १९४० तक १ लाख मज़दूर बेकार कर दिए गए और उन्हीं कारखानों में बाद के नवीन आविष्कारों ने तो इतना ज़ोर पकड़ा कि मशीन की सहायता से ४५१२ श्रमिकों का काम १२६ श्रमिक ही करने लगे। यदि इस प्रकार का आतंक हमारे देश में फैलने लगे तो बेकारी की समस्या और भी गम्भीर हो जाएगी। इसलिए गांधी जी कहते हैं कि ऐसे विकेन्द्रित उद्योग देश में चलाए जाँय जिनमें आधुनिक मशीनों का प्रयोग न हो। और यदि हो तो ऐसा कि उससे अकारण ही श्रम की बचत न हो और हमारे निकटवर्त्ती गाँवों में उत्पादन सीधे उपयोग के लिए हो न कि विदेशों में भेजने के लिए। स्वयं महात्मा जी के शब्दों में, "चर्खा स्वयं एक छोटी मशीन है। मैं ऐसी मशीन का स्वागत करूंगा जो झोपड़ों में रहनेवाले करोड़ों मनुष्यों के बोझ को हलका करती है। करोड़ों सजीव मशीनों के मुकाबले में, जो भारत के सात लाख गाँवों में हैं, निर्जीव मशीनों को स्थान नहीं

दिया जा सकता ।"

गांधी जी का कहना है कि यन्त्रीकरण अच्छा है जब कि इच्छित काम की पूर्त्ति के लिए आदमी अत्यन्त कम हैं । वह एक खराबी है जब कि काम के लिए आदमी आवश्यकता से अधिक हैं जैसी कि दशा हिन्दुस्तान में है । इसी कारण वे आधुनिक श्रम बचाव की युक्तियों की तीव्र सनक के पक्ष में नहीं हैं । यह भी स्पष्ट है कि केन्द्रित उद्योगों के मुकाबले में विकेन्द्रित उद्योग किस प्रकार रोज़ी अधिक देते हैं । भारत के वस्त्र-उद्योग का ही उदाहरण लीजिए । वर्तमान योजना कमीशन के उपाध्यक्ष श्री गुलज़ारीलाल नन्दा ने सन् १९४० में बताया कि कपड़े की भारतीय मिलें कोई ५० करोड़ रुपए का कपड़ा प्रतिवर्ष निकालती हैं जिसमें केवल १० करोड़ रुपए रोजगारी के रूप में श्रमिकों को बाँटे जाते हैं । किन्तु इसी मूल्य की खादी का उत्पादन यदि विकेन्द्रित उद्योगशालाओं में किया जाय तो ३५ करोड़ रुपए श्रमिकों को पारिश्रमिक के रूप में बाँटें जा सकते हैं । देश में बढ़ती बेकारी के बीच भला कौन ऐसे परिवर्तन का स्वागत नहीं करेगा ।

यह तो स्पष्ट है कि केन्द्रित उद्योगों में सदा शोषण और हिंसा के तत्त्व विद्यमान रहते हैं पर गांधी जी के सिद्धान्तों पर यदि विकेन्द्रित उद्योगों को चलाया जाय तो ये दूषित तत्व उसमें नहीं आ सकते । ज़रा सोचिए कि दस लाख की चीनी आज बड़े कारखानों से निकल कर बाज़ारों में बिकने जाती है पर दस लाख की चीनी उत्पन्न करनेवाले पूँजीपतियों ने चीनी खरीदने के लिए अधिक से अधिक तीन लाख रुपए श्रमिकों को मज़दूरी के नाम से बाँटे हैं । परिणाम यह होता है कि १० लाख की चीनी के ढेर को तीन लाख से खरीदने का प्रयत्न किया जाता है और ऐसा सम्भव न होने पर या तो बाज़ार के बिक्री विभाग में उदासीनता छा जाएगी या उन्हीं पूँजीपतियों की दया पर पल कर कुछ व्यापारी व्यर्थ में अपने कोठे चीनी से भरेंगे या मज़दूरों को फुसला कर उनके घरों में उपयोग के लिए ऊँचे मूल्यों की चीनी भेज देंगे । आज की असाधारण परिस्थिति में यह अधिक सही न हो पर साधारण दिनों में यह कटु सत्य है । उस दशा में शोषण और हिंसा के तत्व आए बिना नहीं रह सकते । किन्तु दूसरी ओर उदाहरणार्थ 'अखिल भारतवर्षीय ग्राम उद्योग संघ' को लीजिए जो सन् १९३४ में स्थापित किया गया था । इसमें न्यूनतम मज़दूरी (Minimum Wages) का स्तर निश्चित है, उत्पादन के ढंग प्राकृतिक और पवित्र हैं, विकेन्द्रित उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए अजायबघर बने हुए हैं और ग्रामीणों को व्यवहारिक ज्ञान का दिग्दर्शन कराया जाता है । ऐसी संस्थाओं में स्वतः ही शोषण और हिंसा लोप हो जाती है ।

जहाँ धन की अभिवृद्धि होती है वहाँ मनुष्य की अवनति होती है । यही कारण है कि धन द्वारा संचालित आज की उत्पादन व्यवस्था में वह कलाकार जिसे पहले अपने हाथ के काम में लालित्यपूर्ण आनन्द की प्राप्ति होती थी, अब लौह निर्मित मशीन के दास के रूप में परिणत होता जा रहा है । किन्तु आज भी गाँवों में ऐसे उद्योग धन्धे हैं जहाँ स्वाभिमान की झलक श्रमिक में लौटाई जा सकती है । बंगाल, काश्मीर और मैसूर में शहतूत के पेड़ होते हैं जहाँ रेशम तैयार किया जा सकता है । दरियाँ बुनना, मिरजापुर और बनारस में सदा प्रसिद्ध रहा है, बिहार और बंगाल के कई भाग धातु के काम में अपनी विशेषता रखते हैं और ग़ाजियाबाद की काँच की चूड़ियाँ तो आज भी ईरान और अरब को भेजी जाती हैं । इन सब उद्योगों में कार्यकर्ता को हार्दिक आनन्द का भान होता है और इसी में अहिंसा निहित है ।

देश में उपलब्ध और संभवतया उपलब्ध की जा सकनेवाली पूँजी के आधार पर ही हम अपनी उद्योग व्यवस्था बैठा सकते हैं । आज भारतवर्ष में तो वैसे ही एक बड़ी अजीब स्थिति पैदा हो चुकी है । सरकार कहती है कि देश में मुद्रास्फीति का संक्रामक रोग फैला हुआ है, जिसका बाज़ारू अर्थ है उत्पादन को दृष्टिगत रखते हुए आवश्यकता से अधिक मुद्रा प्रचलन, किन्तु दूसरी ओर बाज़ारों में, मंडियों में और व्यवसायी लोगों के पास पैसे की बड़ी भारी कमी प्रतीत हो रही है । कारण यह है कि प्रत्येक धनी और निर्धन, छोटे और बड़े व्यवसायी ने अपनी स्थिति से बढ़ कर अपने प्राप्त पैसे को पूँजी गत सामान माल, मिलकियत और मशीनों में फँसा दिया । परिणाम यह निकला कि अन्य दृष्टिकोणों के साथ साथ इस दृष्टिकोण से देश में और भी पूँजी की कमी आ गई और ऐसी स्थिति में विस्तृत उद्योगों का सफलता पूर्वक चलना असम्भव हो रहा है, क्योंकि उन्हें बहुत पूँजी की आवश्यकता है । "पूँजी की समस्या" तो हमारे देश में

वैसे ही एक जटिल प्रश्न है। केवल विकेन्द्रित और छोटे घरेलू उद्योग धन्धे ही ऐसे हैं जो थोड़ी सी पूँजी के सहारे आगे बढ़ सकते हैं, आवश्यकतानुसार उत्पादन कर सकते हैं और समय की मांग को पूरा करने में समर्थ हो सकते हैं। विकेन्द्रित उद्योग धन्धों की आवश्यकता अन्य कारणों से भी उचित जान पड़ती है।

देश के समूचे उद्योग को युद्ध के समय आकस्मिक हवाई आक्रमणों और अन्य आधुनिक आक्रमण प्रणालियों से नष्ट होने से बचाने के लिए एक मात्र साधन यही है कि हम अपने उद्योगों को न तो विस्तृत रूप दें और न उन्हें केन्द्रित होने दें। इस दिशा में जापान के विकेन्द्रित उद्योग एक उदाहरण हैं।

संतुलित व्यवस्था उसी स्थिति का नाम है जब कि देश के प्रत्येक भाग में भौगोलिक दृष्टिकोण और क्षेत्रफल के अनुसार उद्योग बिखरे रहें और प्रत्येक प्रान्त के श्रमिकों को पूरी रोज़ी मिलती रहे। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि विकेन्द्रीकरण ही संतुलन का आधार है।

अब तक की केन्द्रित उद्योग व्यवस्था ने हमारी आंखों के सामने वे चित्र दिखाए हैं जिन्हें जान कर मानव सम्मान को ठेस लगती है। बम्बई, कलकत्ता और कानपुर जैसे बड़े उद्योग केन्द्रों में श्रमिकों की दयनीय दशा किस के दिल को नहीं हिला सकती। उचित मकान की व्यवस्था की तो बात ही छोड़िए, मिल के धुएँ की छाया में ही उनका जीवनयापन होता है। व्यभिचार और मद्यपान तो ऐसे वातावरण में उनका स्वभाव बन जाता है। गर्मी में पसीने से बेचैन, वर्षा में प्रकृति के कोप से पीड़ित यह मज़दूर हमारी सभ्यता के नाम पर कलंक का टीका लगाए बैठे हैं। रात की तो बात छोड़िए, दिन में भी किसी सज्जन पुरुष का उनके निवासस्थान पर पहुँचना खतरे से खाली नहीं है। यदि केन्द्रित और विस्तृत उद्योगों से कानपुर शहर के ६४ प्रतिशत मज़दूर उल्लू-घरों में रहें, अंधकारपूर्ण असभ्य, अमानुषिक और अत्यंत जीर्ण खपरैलों के नीचे अपनी घुटी हुई सांसें लें तो हमें कल के बजाय आज ही इन बड़े और केन्द्रित उद्योगों को तिलांजलि दे विकेन्द्रित उद्योगों को अपनाना चाहिए।

भारतनिवासी उन पूर्वजों के उत्तराधिकारी हैं जो सदा गाँवों में रह कर कृषि के प्रधान पेशे के साथ साथ अन्य कुटीर धन्धों में अपना शेष समय व्यतीत करते थे। आज भी भारत के ७,१२,००० गाँव पुकार पुकार कर कह रहे हैं कि वहाँ गरीबी अपना घर कर रही है क्योंकि कृषकों व अन्य पेशेवालों को अपने बचे समय में काम करने के केन्द्र नहीं मिल रहे हैं। विकेन्द्रित उद्योग अवश्य ही उन तक पहुँच कर उनकी टूटी कमर में एक बार फिर बल भर सकते हैं।

आज सबसे बड़ा प्रश्न जो प्रत्येक की ज़ुबान पर मिलता है वह यह है कि विस्तृत उद्योगों द्वारा बना हुआ माल जब सस्ता मिलता है तो हम घरेलू और विकेन्द्रित उद्योगों के बने सामान की आवश्यकता क्यों महसूस करें। उदाहरणार्थ, उनकी दृष्टि में मिल से बना हुआ कपड़ा, विकेन्द्रित उद्योगों और घरों में बने हुए कपड़े से सस्ता पड़ता है और व्यावहारिक दृष्टि से उनका कहना है कि हम सस्ते कपड़े को क्यों न खरीदें। किन्तु वे यह भूल रहे हैं कि जो ऊपरी सस्तापन आपको दिखाई देता है उसका कारण यह है कि मिलों के कई खर्च अन्य विभागों से जो जनता के हैं, पूरे किये जाते हैं। मिल मालिकों की दशा ठीक उस व्यक्ति सी है जो कि चुराई हुई वस्तु को सस्ते मूल्य पर बेच कर भी लाभ उठा लेता है। एक व्यक्ति यदि १,०००) के मूल्य का स्वर्ण हार चुरा कर उसे बाज़ार में २००) में बेचे तो भी उसे २००) का लाभ हो सकता है किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि ईमानदार स्वर्णकार जो बाज़ार से सोना खरीद कर हार बनाता है, उसके १,०००) नहीं माँगे।

यह तो बड़े विस्मय की बात है कि एक भूखे और गरीब भारतीय बुनकर का कपड़ा महंगा पड़े और बहुत सस्ता बेचनेवाले सेठ, सस्ता बेच कर भी बड़ी बड़ी हवेलियों में करवटें बदलें। एक छोटा सा उदाहरण लीजिए। कपड़े की मिलों के लिए रुई एक प्रधान आवश्यकता है। रुई को सुन्दर और साफ़ बनाने के लिए कई अन्वेषण और प्रयोग जनता के बल पर चलनेवाली सरकार द्वारा किए जाते हैं, रुई को उत्पादन से उपयोग के स्थान पर पहुँचाने के लिए रेल तार और डाक की आवश्यकता होती है जिससे मिलों को शीघ्रता से माल मिले और कम खर्च देना पड़े। पर करोड़ों रुपए सरकार प्रति वर्ष रेलों पर व्यय कर देती है जिसका भार कर रूप में जनसाधारण पर पड़ता है। मिल उत्पादन को निरन्तर चालू रखने और श्रमिक-मालिक के नित्यप्रति के झगड़ों को निपटाने के लिए लाखों रुपए

के पदाधिकारी सरकार को रखने पड़ते हैं और बड़ी बड़ी योजनाएँ बनाने में भी न जाने सरकार कितने रुपयों का खून कर देती है। यदि यह सब पैसा मिलों के नाम लगाया जाए तो अवश्य ही मिलों का कपड़ा छोटे उद्योगों के कपड़े के मुकाबले महंगा पड़ने लग जायगा। साथ साथ विकेन्द्रित उद्योगों में न हजारों मजदूर एक स्थान पर काम करते हैं और न हड़तालें होती हैं, न बड़े रेल विभाग की आवश्यकता पड़ती है और न बड़ी बड़ी योजनाओं की। इसलिए मिलों के कपड़े को सस्ता कहना केवल एक भ्रम है। तथाकथित सस्ता कहा जानेवाला मिल का कपड़ा ख़रीदने से पहले भी अनजाने ही अप्रत्यक्ष रूप में ख़रीददार उसका दाम बहुत दे देते हैं। वह कपड़ा वास्तव में महंगा पड़ता है जो ख़रीददार के लिए तो कुछ आने बचा देता है पर साथ ही उन पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों के जीवन को भी सस्ता कर देता है जो बम्बई के 'चालों' में काम करते हैं।

उक्त पहलुओं के स्पष्टीकरण के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वर्तमान वीभत्स वातावरण में उद्योगों का विकेन्द्रीकरण ही एक ऐसी औषधि है जो रोग मिटा कर भविष्य में नई जान फूंक सकती है। कचूमर निकालनेवाली मज़दूरी से बनी चीज़ों को खाना, ख़रीदना और काम में लाना पापयुक्त है। अमरीका की चीज़ों का प्रयोग करना और अपने पड़ौसी को ग्राहक के अभाव में भूखों मारना पाप है। यदि हम देश में गान्धी जी के बताये इस विकेन्द्रीकरण के मार्ग को अपना सकें तो निस्सन्देह हमारा आर्थिक कष्ट मिट जायगा और हम एक प्राकृतिक और स्वाभाविक अर्थ व्यवस्था के दर्शन कर सकेंगे जिसमें व्यक्ति और समाज दोनों का लाभ होगा।

—रामनिवास जाजू

कलकत्ता

* * *

चीन की रेलें

चीन की रेलगाड़ियाँ देखने में ज़रा भोंडी पर काफ़ी आरामदेह हैं। उनमें हिन्दुस्तान जैसा भीड़-भड़क्का नहीं होता। रेलों में दो प्रकार की सीटें होती हैं—एक गद्देदार और दूसरी बिना गद्दे की। इसके अतिरिक्त अन्य कोई वर्गीकरण नहीं होता। सोने के लिए बिस्तरा भी रेलवे की ओर से मिलता है। मेज़ों पर चाय की केतली और चाय के प्याले रहते हैं। एक बार कूपन ख़रीद लेने पर आपको जितनी बार चाहें बिना शक्कर और बिना दूध की चाय का उबला हुआ पानी भी मिलेगा। स्टेशनों पर कहीं शोर-गुल नहीं सुनाई पड़ता। भाग-दौड़ या धक्का-मुक्की भी देखने में नहीं आई। मुसाफ़िर क्यू से उतर चढ़ रहे थे। सामान बेचनेवाले दूकानदार भी लाईन लगाए हुए बैठे थे। जिसको कुछ ख़रीदना हो, उनके पास जा कर ख़रीद लाए। दो दो घण्टों बाद कृमि-नाशक औषधि छिड़क कर पानी द्वारा रेल के डब्बों की सफ़ाई होती रहती है। रेल में लाउड-स्पीकर लगा हुआ है, जिसमें से जोशीले चीनी गानों की ध्वनि सुनाई पड़ती है। स्टेशन पर रेल के पहुँचने के समय आदि की घोषणा भी लाउड-स्पीकर पर ही होती है।

—डा. जगदीशचन्द्र जैन
('नया समाज' से)

नालन्दा

(२)

बड़ग्राम और उसके पास की समाधियों और टीलों का पता लगानेवाले बुचनन–हैमिल्टन थे जिन्होंने उन्नीसवीं शताब्दि के प्रथम चरण में इस स्थान को पहली बार देखा।

नालन्दा विहार और विशेष कर बालादित्य के मन्दिर का वर्णन यशोवर्मन के शिलालेख में पाया जाता है। चीनी यात्री के विवरण से उसकी तुलना द्रष्टव्य है :

"नालन्दा शास्त्र और कला में पारंगत अपने विद्वानों तथा सफ़ेद बादलों के समान चमकने वाले चैत्यों से उन सम्राटों के नगरों का उपहास कर रहा है जिन्होंने भयङ्कर युद्धों में अपने शत्रुओं के हाथियों के मस्तकों को छिन्न भिन्न कर कीर्ति प्राप्त की है। उसके विहारों की पंक्तियाँ अपने अभ्रंलिह कंगूरों से ऐसी सुन्दर प्रतीत होती हैं कि मानो सृष्टिकर्ता ने पृथ्वी के लिए तोरण बना कर हवा में लटका दिए हों। उसके विशाल मन्दिर रत्नजटित होने के कारण चमक में सुमेरु पर्वत से होड़ करते हैं—ये दोनों विद्याधरों के निवास स्थान हैं। यहाँ पर वैभव में कैलास को मात करने की इच्छा से, अजेय सम्राट् बालादित्य ने अपने शत्रुओं को युद्ध में पराजित कर, समस्त संसार को अपने प्रभुत्व में लाने के पश्चात् भगवान् बुद्ध का विशाल मन्दिर बनवाया था। यह मन्दिर भी चन्द्रमा के प्रकाश को द्युतिहीन कर, हिमालय पर्वत की चोटियों के सौन्दर्य से अधिक सुन्दर प्रतीत होकर, आकाशगंगा को अपनी परछाईं के सदृश मग्न और बाक़ी सरिताओं के अभिमान को चूर कर तथा संसार का भ्रमण करने के बाद यह समझ कर कि अब पराजित करने के लिए कोई शेष नहीं रह गया है यहाँ आकर कीर्त्ति–स्तम्भ की तरह खड़ा हो गया है।"

संघ की आज्ञा से नालन्दा के दो भिक्षु शिलाचन्द्र और स्वामिदत्त ने इस प्रशस्ति की रचना की। इन दोनों ने भी कार्य की गुरुता और अपनी शक्ति की अल्पता को ध्यान में रख कालिदास की भाँति कहा :

"वञ्चेतम किं न पङ्गु शिखरी–तरुपल्लवाप्तिमुच्चैः करेण ?"

आठवीं शताब्दि के मध्य से लेकर मुसल्मान आक्रमणकारियों द्वारा ध्वस्त होने तक नालन्दा प्रतापी पालवंशी राजाओं की रक्षा में रहा। अभी हाल में जो खुदाई का काम हुआ है उससे इसके लिए अकाट्य प्रमाण मिले हैं। एक ताम्रपत्र के, जो अब पढ़ा नहीं जा सकता ऊपर के मुद्रांकण और धर्मचक्र के नीचे 'धर्मपाल देवः' शब्द से, यह पता चलता है कि निश्चय ही उस पर पालवंश के द्वितीय राजा धर्मपाल देव के विषय में कुछ लिखा गया था। यह एतद्विषयक अति प्राचीन प्रमाण है। नालन्दा से ही धर्मपाल देव के नवीं शताब्दि में राज्य करने के दो प्रमाण और प्राप्त हुए हैं जो घोश्रवण के तात्कालीन बुद्ध धर्मसम्बन्धी शिलालेख के अतिरिक्त हैं।

नालन्दा का नया विहार स्वतः एक पूर्ण संस्था है। यहाँ पूजा, भजन, अध्ययन और सद्-जीवन–यापन का सुप्रबंध है और सबके लिए स्वतन्त्र आय का साधन है। संभव है इस कारण यह एक अन्यदेशीय विहार समझा जा सकता है जिसको कोई विदेशी शक्ति नालन्दा में इसलिए चला रही है कि उस देश के नागरिक यहाँ आकर शिक्षा प्राप्त कर सकें। इसलिए यह विहार विश्वविद्यालय का तथाकथित 'सुवर्ण द्वीप मण्डप' था। प्रारम्भ से ही नालन्दा को स्वतन्त्र भागों में विभक्त रखने और प्रत्येक भाग को एक विशेष स्वरूप देने का प्रबन्ध हुआ था इस धारणा के विपरीत कोई प्रमाण नहीं मिलता। सच तो यह है कि ऐसा समझने के लिए इतने पर्याप्त प्रमाण हैं कि अगली पीढ़ियों में अनेकों मन्दिरों का धीरे धीरे निर्माण हुआ जो सब नालन्दा के अङ्ग हुए और जिनके मूल का पता लगाया जा सकता है; सम्भवतः बालपुत्र ने अपने विहार के निर्माण में उसी पद्धति का अवलम्बन किया जिस पर पहले प्रयोग हो चुका था। नालन्दा का विधान एक आधुनिक विश्वविद्यालय की तरह है जहाँ थोड़े से क्षेत्र में अनेकों ऐसे आवास-सम्पन्न महाविद्यालयों की स्थापना हुई है जो एक दूसरे से निरन्तर सम्पर्क बनाए रहते हैं।

नालन्दा विश्वविद्यालय और पुस्तकालय के संबंध में सतीशचन्द्र विद्याभूषण का वक्तव्य पढ़ने योग्य है : "तिब्बती विद्वानों के मत से जिस स्थान पर नालन्दा विश्वविद्यालय तथा विशाल पुस्तकालय की स्थापना हुई उसे धर्मगंज कहा जाता था । यहाँ तीन भवन थे जिन्हें रत्नसागर, रत्नोदधि और रत्नरंजक नाम दिए गए थे । नौ तले के रत्नोदधि में प्रज्ञापरमिता-सूत्र और समाज-गुह्य तान्त्रिक पुस्तक आदि पवित्र ग्रन्थ रक्खे गए थे ।"

बारहवीं शताब्दि के अन्त में जब विहार पर मुसल्मानों के आक्रमण होने लगे नालन्दा अन्य पवित्र स्थानों की तरह उनका कोप भाजन बना । इस्लाम की ऐतिहासिक शक्ति मध्य एशिया से लेकर दक्षिण समुद्र के द्वीपों तक बुद्ध धर्म और उसकी संस्थाओं की सदैव कट्टर शत्रु थी । उस समय के प्रधान मुस्लिम इतिहासकार के शब्दों में इस प्रकार विहार के विनाश का वर्णन किया गया है :

"मुहम्मद बख्तियार ने दुर्ग प्राचीर परिवेष्टित नगरों पर आक्रमण करने के पहले विहार के ग्राम्य प्रदेशों पर अनेकों हमले किए । विश्वस्त व्यक्तियों के वर्णन के अनुसार एक बार उसने कवच आदि से सुसन्नद्ध दो घुड़सवारों के साथ विहार के एक दुर्ग पर आक्रमण किया । मुहम्मद बख्तियार के सेवकों में फ़रगाना के दो विद्वान् भाई निज़ामुद्दीन और शम्सुद्दीन भी थे । इन पंक्तियों के लेखक ने लखनावती में ६४१ हिज़री में शम्सुद्दीन से मुलाक़ात की और उसने उनसे यह वृत्तान्त प्राप्त किया । ये दोनों भाई बख्तियार की सेना के सिपाही थे । जब वे दुर्ग के फाटक पर पहुँचे तो बख्तियार ने दुर्ग के पिछले चोर दरवाज़े से दुर्ग में प्रवेश किया । दुर्ग तहस-नहस हो गया और उसमें से बहुत-सी लूट की सामग्री उनके हाथ लगी । उस स्थान के अधिकांश निवासी ब्राह्मण थे जिनके सिर मुंडे हुए थे । उन सब को क़त्ल कर दिया गया । वहाँ अनेकों पुस्तकें थीं । जब इन पुस्तकों की ओर मुसल्मान आक्रान्ताओं का ध्यान आकर्षित हुआ तब वे उन हिन्दु विद्वानों का पता लगाने लगे जो इन पुस्तकों को पढ़ सकते थे । किन्तु सभी हिन्दु पहले ही मारे जा चुके थे । किसी प्रकार उन पुस्तकों के बारे में जानकारी प्राप्त करने पर ज्ञात हुआ कि वह समस्त नगर और दुर्ग एक महाविद्यालय था । हिन्दुओं की भाषा में विद्यालय को 'विहार' कहा जाता है ।"

किन्तु इतने से समाप्ति नहीं हुई । तिब्बती विद्वानों के अनुसार एक घटना का विद्याभूषण ने इस प्रकार वर्णन किया है : "तुर्क आक्रमणकारियों के नालन्दा से जाने के बाद, मुदितभद्र नामक एक साधु ने मंदिरों और चैत्यों की मरम्मत करवाई । इसके थोड़े ही दिनों बाद मगध के राजमन्त्री कुक्कुटसिद्ध ने नालन्दा में एक मंदिर बनवाया । एक बार जब इस मंदिर में धर्मोपदेश हो रहा था, दो अति दीन तीर्थिका भिक्षुणियाँ वहाँ पर आईं । उन पर अपनी घृणा प्रकट करने के उद्देश्य से किसी भिक्षु ने धोने का पानी फेंका । इससे वे अत्यंत क्रुद्ध हुईं । बारह वर्ष तक सूर्य की उपासना कर उन्होंने एक यज्ञ किया और अग्नि में बलि दी । तत्पश्चात् उन्होंने उस अग्नि में से जलते अङ्गारों को बुद्ध मंदिरों में फेंका । इनसे जो आग भड़की उससे सारा रत्नोदधि उसमें स्वाहा हो गया । भाग्यवश पवित्र प्रज्ञापरमिता सूत्रों और तन्त्रों में से एक जल की धारा निकली जिससे बहुत से धर्म ग्रन्थ जलने से बच गए ।"

इस प्रकार नालन्दा का एक हज़ार वर्ष का इतिहास प्राप्त होता है । इसकी व्यवस्था और संस्थाओं तथा अध्यापकों और आगन्तुकों के विषय में विस्तृत ज्ञान प्राप्त करने के पहले प्रश्न हो सकता है नालन्दा की प्रसिद्धि और सर्वप्रियता के क्या कारण हैं ? बड़े बड़े सम्राटों ने संरक्षक बन कर इसकी रक्षा की और भिक्षुओं की संस्थाओं को भूमि-द्रव्य आदि दान दिया, जिससे वे अपने उस उच्च कर्त्तव्य का सहज ही में पालन कर सकें जिसके लिए उन्होंने अपना सर्वस्व त्याग कर दिया और धर्म की ज्योति प्रज्वलित कर सारे संसार के अज्ञान स्वरूप अन्धकार को दूर किया तथा रोग, अकाल, सूखा युद्ध और अन्य विपत्तियों से रक्षा की । फिर भी प्रश्न उठता है कि बुद्ध गया, सारनाथ या श्रीवस्ती जैसे पवित्र स्थानों के रहते हुए भी जो कि बुद्ध के जीवन से अधिक सम्बन्ध रखते हैं, नालन्दा ने ही क्यों ऐसी प्रसिद्धि प्राप्त की कि वह भारत के सभी संघारामों से आगे बढ़ गया । इस प्रश्न का पूर्ण सन्तोषजनक उत्तर देना कठिन है । सम्भवतः नालन्दा की भौगोलिक स्थिति ही इसका मुख्य कारण है । इत्सिङ्ग ने इस स्थिति की विशेषताएँ पाठकों के सम्मुख लाने का प्रयत्न भी किया है :

"इस मन्दिर का मुँह राजधानी कुशाग्रपुर की ओर है जो यहाँ से केवल ३० मील दूर है । नगर के

इसी ओर गृद्धकूट और वेणुवन भी हैं। उत्तर पश्चिम की ओर जाने से हमें महाबोधि मिलता है और दक्षिण की ओर जाने से पवित्र पर्वत गुरुपाद के दर्शन होते हैं। ये दोनों स्थान यहाँ से सात योजन की दूरी पर हैं। उत्तर दिशा में वैशाली स्थित है जो पच्चीस योजन दूर है। पश्चिम में बीस योजन पर मृगदाव मिलता है। पूर्व में ताम्रलिप्ति राज्य में जाने के लिए साठ से सत्तर योजन की यात्रा करनी पड़ती है। यह समुद्र के किनारे है। यहीं से हमें चीन जाने को जहाज़ मिलते हैं।"

इस वर्णन से पता चलता है कि चीन और मध्य-एशिया से समुद्र पथ से आनेवाले यात्रियों को ताम्रलिप्ति में उतर कर नालन्दा पहुँचने की सुविधा थी। वहाँ से वे अपने भ्रमण का कार्यक्रम बना सकते थे, जैसा कि इत्सिङ्ग ने स्वयं किया। यदि वे स्थल मार्ग से शेष भारत का भ्रमण करते हुए वहाँ पहुँचते थे तो नालन्दा का शान्त और सुखद वातावरण उनके मार्ग की चिन्ताओं और विपत्तिव्यथाओं को दूर कर विश्राम देता। नालन्दा में बहुत से यात्रियों का सम्मिलन होता था इसीलिए हस्त-लिपियों और पवित्र वस्तुओं का व्यापार यहाँ बढ़ा चढ़ा था जिनको प्राप्त करने के लिए यात्री अनेक कष्ट झेल कर इस पवित्र देश में आते थे। नालन्दा में दस वर्ष रहने के पश्चात् इत्सिङ्ग स्वयं यहाँ से ४०० धर्म ग्रन्थ, सूत्र, शास्त्र और विनय पर टीकाएँ, ५,००,००० श्लोकों की संस्कृत पुस्तकें और बोधिमन्दा की मूर्ति की एक सर्वथा शुद्ध प्रतिलिपि तथा ३०० पवित्र स्मृतिचिन्ह अपने साथ ले गया। साथ ही नालन्दा बहुत दिनों से बुद्ध-धर्म ही नहीं वरन् सभी विद्याओं का बहुत बड़ा केन्द्र हो गया था। जातक कहानियों और संस्कृत साहित्य की पुस्तकों से पता चलता है कि प्राचीन काल में तक्षशिला ऐसा ही विद्या का एक बहुत बड़ा केन्द्र था और उस समय की अशान्ति में जब कि मौर्य साम्राज्य का पतन हुआ और कुशान सम्राट् शक्तिशाली हुए तक्षशिला का भी उस प्रदेश के अन्य संघारामों की भाँति ही नाश हो गया। इस तरह की अराजकता मगध तक बहुत कम पहुँचती थी और सीमा से दूरी और ताम्रलिप्ति के समुद्र-पथ से सामीप्य इन दोनों कारणों ने समान रूप से नालन्दा की समृद्धि में हाथ बँटाया। नालन्दा बुद्ध धर्म की सर्वतोमुखी विद्या के अतिरिक्त ब्रह्मविद्या और सब तरह के अध्ययन का केन्द्र था। इस सम्बन्ध में बालपुत्र विहार का उल्लेख उचित है जिसे वैदिक विधि से 'बलि' और 'चरु' देने के लिए आर्थिक सहायता मिली थी। ह्वेनसांग ने स्वयं भी नालन्दा में ब्राह्मण धर्म का अध्ययन किया था।

नालन्दा में पन्द्रह महीने रह कर ह्वेनसांग ने जो अध्ययन किया उससे नालन्दा के विशाल विद्या-क्षेत्र का परिचय मिलता है। ह्वी ली ने उसका निम्न लिखित वर्णन किया है:—

"विहार में रहते हुए शास्त्रों के पण्डित ह्वेनसांग ने तीन बार योग-सूत्र की व्याख्या सुनी। इसके अतिरिक्त न्याय-अनुसार-सूत्र का एक बार, 'हिन-हियाङ्ग-तुई-फा-मिङ्ग' का एक बार, हेतुविद्यासार और शब्दविद्या तथा 'त्साह-लियाङ्ग-सार' का दो बार, प्राण्यामुला-शास्त्र-टीका और सत शास्त्र का तीन बार उनको अर्थ समझाया गया। कश्मीर के विभिन्न भागों में कोश, विभाषा, सत्यदाभि धर्मशास्त्र आदि का अर्थ वे पहले ही सीख चुके थे, तथापि इस विहार में पहुँच कर अपनी कुछ शङ्काओं को दूर करने के लिए उन्होंने उन्हें दुबारा पढ़ने की इच्छा प्रकट की। इसको समाप्त करने के बाद उन्होंने ब्राह्मण ग्रन्थों और भारतीय भाषा के अति प्राचीन व्याकरण का अध्ययन किया। इसके रचयिता के बारे में कुछ भी ज्ञात नहीं था।"

यहाँ यह बता देना उचित होगा कि न्याय-अनुसार-शास्त्र, सर्वस्तिवादियों का हीनयानसम्बम्धी ग्रन्थ था और प्राण्यामुला-शास्त्र-टीका महायान की माध्यमिका शाखा का प्रधान ग्रन्थ है। सतशास्त्र कार्मदेव का ग्रन्थ है जिसे ह्वेनसांग ने बाद में अनूदित किया।

ह्वेनसांग के जीवनीलेखक ने दूसरे प्रसंग में उच्च शिक्षाकेन्द्र सम्बन्धी नालन्दा के महत्त्व का, उसके बौद्धिक कार्यों के विशाल क्षेत्र का, और उसके शिक्षकों के बहुमुखी पाण्डित्य का ज्वलन्त विवरण दिया है:

"भारत के संघाराम संख्या में अनेकों हैं लेकिन नालन्दा अपनी उच्चता और भव्यता में अद्वितीय है। संघाराम के पुरोहितों और अभ्यागतों की संख्या बराबर दस हज़ार से ऊपर होती है जो सभी महायान का अध्ययन करते हैं और साथ ही धर्म की अठारह शाखाओं का भी ज्ञान प्राप्त करते हैं। इतना ही नहीं साधारण ग्रन्थ जैसे वेद, हेतुविद्या, शब्दविद्या, चिकित्साविद्या, इन्द्रजाल सम्बन्धी ग्रन्थ (अथर्ववेद) संख्या और विविध प्रकार के ग्रन्थों का अच्छी तरह से अन्वेषण करते हैं।

वहाँ एक हज़ार ऐसे विद्वान हैं जो सूत्र और शास्त्रों

के बीस विभिन्न संकलनों की व्याख्या कर सकते हैं, पाँच सौ ऐसे हैं जो तीस संकलनों और शास्त्रपंडित ह्वेनसांग को सम्मिलित करने के बाद दस ऐसे हैं जो पचास संकलनों का अर्थ बता सकते हैं । शिलाभद्र ने अकेले सभी ग्रन्थों का अध्ययन किया है और उन्हें समझा है । उन के सर्वविदित पाण्डित्य और वयोज्येष्ठता के कारण, उन्हें अध्यापकों में प्रमुख समझा जाता है । विहार में प्रतिदिन लगभग एक सौ मंत्र उपदेश के लिए सजाए जाते हैं और छात्र बिना एक मिनट की भी देर किए इन उपदेशों को सुनने के लिए उपस्थित होते हैं ।''

ह्वेनसांग ने स्वयं नालन्दा के अध्ययन-अध्यापन के वातावरण और प्रधान शिक्षकों की निपुणता के विषय में इस प्रकार विवरण दिया है :

"इस संस्था में हजारों की संख्या में शिक्षक हैं जो सभी योग्य और निपुण हैं । इनमें से कई सौ तो बहुत प्रतिष्ठित और प्रसिद्ध हैं। अपने मत के नियमों और उपदेशों के पालन में वे सभी बहुत दृढ़ हैं और सारे भारत में आदर्श समझे जाते हैं। अध्ययन और विवाद में संलग्न रहते हुए उन्हें दिन बहुत छोटा प्रतीत होता है । दिवा-रात्रि विवेचन के द्वारा छोटे और बड़े सभी एक दूसरे को पूर्णता प्राप्त कराने में सहायक होते हैं । यदि उनमें से कुछ ऐसे हुए जो त्रिपिटक के भेदों के विषय में संलाप नहीं कर पाते तो वे लज्जित हो कर अलग रहने लगते थे। इसलिए अन्य देशीय विद्यार्थी यहाँ अपनी शंकाओं को दूर कर नैपुण्य प्राप्त करने आते थे और जो नालन्दा के भ्रातृत्व में सम्मिलित हो जाते उन सब को जहाँ कहीं जाते बहुत सम्मान प्राप्त होता था । अन्यदेशीय विद्यार्थी जो विवाद में भाग लेना चाहते, कठिनाइयों से परास्त होकर स्वयं चले जाते किन्तु उनमें जो प्राचीन और अर्वाचीन विद्याओं में पारंगत होते थे उन्हें सम्मिलित कर लिया जाता था । किन्तु उनमें तीन या चार को ही ऐसी सफलता प्राप्त होती थी ।

जिन प्रसिद्ध उपाध्यायों के कारण नालन्दा की ख्याति दूर दूर तक फैली हुई थी उनमें मुख्य थे बुद्ध के उपदेशों की सुगन्ध फैलानेवाले चन्द्रपाल और धर्मपाल, अपने साथियों द्वारा अपने विचारों की उच्चता के लिए सम्मानित गुणमति और स्थिरमति, तर्कचतुर प्रभामित्र और वाग्चतुर जिनमित्र, आदर्शचरित्र और परम मेधावी ज्ञानचन्द्र, और पूर्ण ज्ञानी किन्तु दुर्बोध शीलभद्र । ये सभी विद्वान् और गुणी थे और अनेकों पुस्तकों के रचयिता थे जिन्हें समकालीन लोग आदर से पढ़ते थे।"

इत्सिंग ने लिखा है कि उसके समय में स्थायी भिक्षु ३५०० और अन्य भिक्षुओं की संख्या ५००० थी । उसका वर्णन अधिकांश रूप में तत्कालीन शिक्षाविषयक है किन्तु नालन्दा की शिक्षा-पद्धति का भी उसमें समावेश है । ह्वेनसांग ने इस विषय में जो क्रमहीन वर्णन दिए हैं उनका इस वर्णन से मेल देखा जा सकता है । प्रारम्भ में व्याकरण से सम्बन्धित सिद्धम्, सूत्र, धातु खिल आदि की शिक्षा दी जाती थी तत्पश्चात् कौशिका वृत्ति की शिक्षा का वर्णन कर इत्सिङ्ग लिखता है :

"यह वृत्ति-सूत्र जयादित्य पण्डित की रचना है। वे महान् योग्यता और तीक्ष्ण साहित्यिक अभिरुचि वाले मनुष्य थे । उन्हें किसी विद्या की दो बार शिक्षा देने की आवश्यकता न पड़ी । एक बार जो सुन लेते थे उसका ज्ञान प्राप्त कर लेते थे। वे त्रिरत्नों का सम्मान करते थे और सदा सत्कर्म में लगे रहते थे। उनकी मृत्यु को आज (६६१ ई०) तीस वर्ष होते हैं । उनके बनाए हुए वृत्तिसूत्र को पढ़ने के बाद छात्र गद्य-पद्य रचना सीखते हैं। पश्चात हेतुविद्या और अभिधर्मकोश का अध्ययन करते हैं। न्याय-वार्ता-तर्क शास्त्र को पढ़ कर वे ठीक अनुमान कर सकते हैं और जातक माला पढ़ने के बाद उनके समझने की शक्ति में वृद्धि होती है । इस प्रकार अपने अध्यापकों से शिक्षा ग्रहण करते हुए और दूसरों को शिक्षा देते हुए वे दो या तीन वर्ष व्यतीत करते हैं । वे या तो मध्य देश के नालन्दा विहार में शिक्षा प्राप्त करते हैं या पश्चिम भारत के बलभी में । ये दोनों स्थान चीन के चिनैमा, शिह-चू, लुङ्ग-मेन या चुए-ली स्थानों के समान हैं, जहाँ विद्वान् लोग एकत्रित होते हैं, सम्भव और असम्भव वादों की वार्तालाप द्वारा जाँच करते हैं और दृढ़ विचार होकर सारे देश में ख्याति प्राप्त करते हैं। अपनी बुद्धि की तीक्ष्णता की परीक्षा करने के लिए वे राजसभा में जाते हैं, वहाँ वे अपनी विद्या और गुणों को प्रदर्शित करते हैं और राज्य के शासन-विभाग में पद प्राप्ति की आशा रखते हैं । वाद-सभा में उपस्थित होने पर वे गम्भीर होकर अपने अपने आसनों पर विराजमान होते हैं और अवसर प्राप्त होते ही अपनी बुद्धि की कुशाग्रता प्रमाणित करते हैं ।

जब वे धर्मविरोधी वादों का खण्डन करते हैं तब उनके प्रतिद्वन्द्वीगण निरुत्तर हो कर चुप रह जाते हैं और अपनी पराजय स्वीकार करते हैं। तब उनकी कीर्त्ति के घोष से पर्वत की गुफाएँ गूँज उठती हैं और उनके यश का समुद्र बाँध तोड़ कर चारों ओर बह निकलता है। उन्हें भूमि प्रदान की जाती है और उनका पद ऊँचा कर दिया जाता है। धर्म की महत्ता पर उनके व्याख्यान होते हैं। पश्चात् अपनी इच्छानुसार जिस किसी व्यवसाय में वे लगने के लिए स्वतन्त्र होते हैं।"

पाठकों का ध्यान इस बात की ओर गया होगा कि उस समय की शिक्षा-पद्धति में मौखिक वादविवादों को प्रधानता दी जाती थी। सारे संसार के लब्ध-प्रतिष्ठ विद्वान्, नवयुवक जिज्ञासु और छात्र इन खुले वादविवादों में या तो भाग लेने के लिए या उन्हें सुन कर लाभ उठाने के लिए नालन्दा आते थे, जहाँ विवादग्रस्त विषयों की आलोचना होती थी, विचारों का परिष्कार होता था, तर्कों द्वारा मतमतान्तरों पर आक्रमण या उनकी रक्षा की जाती थी, और जय या पराजय होती थी। वह दिन किसी विद्वान् के लिए सचमुच गौरवमय होता जब तर्क द्वारा वह जयलाभ करता, उसे उपाधियाँ और सम्मान दिए जाते और जैसा कि इत्सिङ्ग ने लिखा है जनता में उसका स्थान सुरक्षित समझा जाता था और साधारण विद्यार्थी का जीवन प्रारम्भ करनेवाले को राज्यशासन में उच्चपद तथा धन ऐश्वर्य प्राप्त होता था।

देश के धर्मभीरु शासकों की श्रद्धा के फलस्वरूप इस पवित्र आध्यात्मिक जीवन के लिए सभी आर्थिक साधन सुलभ थे। यशोवर्मन और देवपाल के राज्यकाल के शिलालेखों में जिस प्रकार के दान का उल्लेख है उस प्रकार के अनेकों दान एक बहुत बड़े संरक्षक वर्ग से प्राप्त होते थे, जिनका सामूहिक प्रभाव चीनी यात्रियों के वर्णनों से ज्ञात होता है और इस दान में प्रभूत धन प्राप्त करनेवाली संस्थाओं के सदस्य अपनी विद्वत्ता, विनय और सत्कार्यों के कारण इस प्रकार की सहायता के समुचित पात्र थे। ह्वी ली ने इस प्रकार लिखा है :

"यहाँ रहनेवाले भिक्षु स्वभाव से ही गम्भीर और पवित्र हैं। पिछले ७०० वर्षों से जब से यह संस्था स्थापित हुई एक भी नियम भंग करने का अपराधी न मिला।

इस देश का राजा भिक्षुओं का सम्मान करता है अत एव विहार के खर्च के लिए उसने १०० गावों का दान किया है। इन ग्रामों के दो सौ गृहस्थ प्रति दिन चावल के सैकड़ों बोरे एवं घी और दूध से भरे हुए सैकड़ों पात्र यहाँ लाते हैं। इसलिए छात्रों को सब कुछ प्राप्त है और वे अपनी चार आवश्यकताओं के लिए भिक्षा माँगने नहीं जाते। यही कारण है कि वे अपनी शिक्षा में इतने पूर्ण हो सके हैं।"

इत्सिङ्ग ने एक स्थान पर इन गाँवों की संख्या २०० और ऊपर २०१ बताई है। अपने विवरण में वह लिखता है: "नालन्दा विहार के नियम बहुत कड़े हैं। फलस्वरूप यहां के सदस्यों की संख्या ३००० से भी अधिक है। सम्बद्ध गाँवों की संख्या २०० से अधिक है जो अनेकों पीढ़ियों में राजाओं से प्राप्त हुए हैं। धर्म का ऐश्वर्य बढ़ रहा है क्योंकि ये लोग बहुत विनयी हैं।"

हैदराबाद

—क़ासिम अली सजनलाल
एम-ए.

एक व्याख्याता महोदय अपना व्याख्यान दे रहे थे। उन्होंने अपने व्याख्यान में कहाः "श्रोता दो प्रकार के होते हैं। एक तो श्रोताः अर्थात् वास्तव में सुननेवाले और दूसरे होते हैं सरोताः जिस प्रकार सरोता सुपारी को काटता है उसी प्रकार वे जिस बात को सुनते हैं—सुनते ही उसे काटने लग जाते हैं।"

नाना फड़णीस और हिन्दी कविता

हिन्दी के अध्ययनशील एवं प्रगल्भ लेखक श्री व्रजरत्नदास जी ने नागरी प्रचारिणी पत्रिका चैत्र २००५ संख्या में अपने लेख द्वारा नाना फड़णीस का प्रामाणिक परिचय लिखने का जो प्रयास किया वह वास्तव में प्रशंसनीय है। नानासम्बन्धी लगभग १०,००० प्रामाणिक पत्र अब तक प्रकाशित हो चुके हैं और सौभाग्य से नाना के बारे में पुराने दुराग्रह भी दूर हो गए हैं। अभी पिछले दिनों 'मराठी रियासतकार' सर देसाई ने नाना के जन्मस्थान वेलास में उनके स्मारक का उद्घाटन करते समय मुक्त कण्ठ से उनके महान् गुणों की प्रशंसा की थी। सन् १७६१ के पानीपत की पराजय के अनन्तर भी महाराष्ट्र की पटली विठाने और अटक से रामेश्वर तथा मणिपुर से द्वारिका तक महाराष्ट्र का राजनैतिक प्रभाव और 'हिन्दूपद पादशाही' स्थापित करने का बहुत कुछ श्रेय नाना को ही था। उनके सहकारी महादजी शिन्दे पाटिल बाबा भी उस युग के दूसरे महान् राष्ट्रपुरुष थे। नाना की बुद्धि तथा शिन्दे की तलवार के बल पर ही वह महान् मराठा वैभव स्थापित हो सका था। राष्ट्रभाषा हिन्दी में इन दोनों महापुरुषों के प्रामाणिक और यथार्थ विस्तृत चरित्र प्रकाशित किये जाने की आवश्यकता है, जिससे तत्कालीन यथार्थ भारतीय इतिहास जाना जा सकेगा। महादजी शिन्दे का अंग्रेज़ी से अनुवादित एक साधारण-सा चरित्र हिन्दी में प्रकाशित हो चुका है। यदि कोई परिश्रमशील व्यक्ति मराठी, फ़ारसी, अंग्रेज़ी आदि साधनों के आधार पर नाना और महादजी के स्वतन्त्र चरित्र लिखे तो अवश्य ही हिन्दी साहित्य पुष्ट होगा। पूना में अपने बाड़े में बैठ कर किस प्रकार नाना भारत भर के विभिन्न महत्वपूर्ण देशी विदेशी केन्द्रों में अखबार तथा पत्र व्यवहार पर नियन्त्रण रखते थे यह बात उनके प्रचण्ड उद्योगशील होने की द्योतक है। उनके पत्र देख कर वेलिंग्टन तथा वेलेज़्ली के डिस्पैच भी फीके जँचते हैं। हमें उनके चरित्र की कुछ मौलिक अप्रकाशित सामग्री प्राप्त हुई है। विशेष कर नाना की ज़ब्ती, उनकी क़ैदसम्बन्धी व्यवस्था आदि और महादजी की दिल्ली दरबार की राजनैतिक उलझनें, राजपुताना, बुन्देलखण्ड आदि युद्धों संबन्धी सामग्री किसी भी लेखक को यदि वह इनका चरित्र लिखना चाहे तो हम वह सामग्री दे देंगे।

यहाँ हमारा अभिप्राय हिन्दी पाठकों के लिए नाना-सम्बन्धी तत्कलीन दो हिन्दी कविताओं को प्रस्तुत करना है। अनन्त फन्दी (१६६६-१७४१ शके) नामक एक ब्राह्मण 'शाहीर' (शायर) नौटंकी और माच की तरह शृंगार रस की लावनियाँ स्वयं रच कर और गाकर सुनाता था। तत्कालीन महाराष्ट्र में तमाशा दिखाने वाले फड़ (समूह) की प्रथा थी, जो ग्रामीण तथा शहरी जनता का मनोरंजन करके खूब द्रव्य कमाते थे। वे वीररसपूर्ण कविता भी करते थे, जिससे यदा कदा बड़े सरदार तथा राजा बाबुओं के यहाँ पर भी उनकी पूछ हो जाया करती थी। अनन्त फन्दी की रचना शृंगारिक लावनी-छक्कड़ें होने पर भी परिष्कृत है। उसने पेशवा के लिए 'माधव-काव्य' तथा कुछ ऐतिहासिक पोवाड़े (पवारे) भी रचे हैं, जिसका उद्देश्य भाट चारणों की तरह भटैती के द्वारा द्रव्य कमाना ही था। किन्तु फन्दी महाशय ने नाना की योग्यता और बुद्धि चातुर्य का बड़े सुन्दर शब्दों में वर्णन करने में कोई कोर कसर नहीं रखी। फन्दी जी की कुछ अन्य हिन्दी कविता भी उपलब्ध है।

अनन्त फन्दी 'शाहीर' कृत नाना फड़णीस का पोवाड़ा

धुमाली-कटाव

"सवाई माधवराव सवाई, सवाई डंका बजा दिया।
फड़णीस नाना की तारीफ है, अक्ल ने तो ग़ज़ब किया॥
विना धार से राज्य चलाया, ना किससे चकमक ही झड़ी।
कैक मुच्छद्दी मर गए मिट गए, नाना की तो अक़ल बड़ी॥
दिल्ली, अटक, लाहौर, मैसोर, कर्णाटक विच पुकार पड़ी।
चारों तरफ उजेंला निकला, चन्दा जैसी किरति बढ़ी॥
जिसने बैठे राज कमाया, दिल से तो खूब दिलासा दिया।
साहब बन्दगी करना पूना, छोड़, कहूँ आया न गया॥
साहब बन्दगी करना पूना, छोड़, कहूँ आया न गया॥ सवाई माधव ॥१॥
अजी बड़ी अक़ल ॥ सवाई माधव ॥१॥

कैक मुत्सद्दी हो गए अकल नाना की नहिं पाई किसे।
निजाम अल्ली भगा दिया, साहब जस में हारा उसे॥

टीपू सरीखे लाये बगल में, जा पहुँचे दरवाज़े से।
पेशवों का नमक जहान में, नामी किया वो गाजी से ॥
कैसा नवाब का हुआ ख़राबा, तोबा सब भई डुबो दिया।
तुम हम भी कानों से सुनते, यहाँ जस लेकर कौन गया ॥
कुछ भी नहीं ॥ सवाई माधव ॥२॥

किया मुग़ल * पर हल्ला उस दिन, कई उमराव संग चले।
शिंदे होलकर और नागपुरवाले भोंसले आन मिले ॥
दाभाड़े पाटणकर निम्बालकर थे कट्टर लड़नेवाले।
पवांर जाधव माधवराव के संग नाना भी निकले ॥
पड़के आया बलवन्त रास्ते, अब है उनमें कौन रहा।
चूक भूल देखिए ज़रा तो, क्या अपना आख़िर गया ॥
अजी किसे ख़बर ॥ सवाई माधव ॥३॥

सब मिल हल्ला किया उड़ा दिए नवाब के धुवाँ धड़के।
मश्रलमुलक पकड़ क़ैद में, डाल दिया बैठा चुपके ॥
पानी बिगर घोड़े हाथी तमाम मर गए नवाब के।
रुपए का जल एक कटोरा, पानी ऐसी जगा रक्खे ॥
किसे ख़बर भई महल मुलूख नवाब ने क्या दिया लिया।
फन्दी 'अनंत' को वह क्या मालूम सुनते हैं कुछ कबूल किया ॥
सच होयगा ॥ सवाई माधव ॥४॥

× × ×

अनन्त फन्दी की तरह बाला बहिरु नामक एक 'शाहिर' (शायर) था। उसने और उसके 'सेवक' सीताराम 'दशनामी' भगवाबाना वाले ने नाना फड़णीस पर एक मराठी पोवाड़ा बनाया है, जो महाराष्ट्र में अत्यन्त लोकप्रिय है। कवि ने अत्यन्त संक्षेप में नाना का महत्व गान किया है :

खूप भुक्तीने राज्य राखिलें यशवन्त फड़णीस नाना ॥
भले बुद्धिचें सागर नाना, ऐसे नाहीं होणार।
मर्दाने हो राज्य राखिलें, मनसोबीची तलवार ॥
इंग्रेजाला खड़े चारिले, नाहीं लागुदिला थारा।

सुगम मराठी होने के कारण इसके हिन्दी अनुवाद की आवश्यकता नहीं है।

किन्तु महान् पुरुषों में कुछ दुर्बलता भी होती है और कभी कभी उन्हें सीधी सच्ची सुनानेवाले मुँहफट भी निकल पड़ते हैं। नाना से कुढ़नेवाले उनके समकालीन व्यक्तियों में भी बहुत से लोग थे। राजसत्ता के बल बूते पर अपनी जाति, कुटुम्बीय तथा मित्र आदि को आश्रय देने की पद्धति का अवलम्बन करने के कारण पक्षपात, दुरभिमान, स्वार्थ जैसे नाना के प्रमुख दुर्गुणों के कारण देवनाथ जैसे एक फक्कड़ सन्त कवि ने नाना को कड़ी फटकार सुनाई। देवनाथ की कविता के संग्राहक का कहना है कि 'तुरी कलगी' के सवाल–जवाब की तरह फन्दी की नानासम्बन्धी प्रशंसा की 'काट' करने के लिए ही नाथ जी ने उक्त निषेधात्मक रचना की; किन्तु संग्राहक महाशय का उक्त मत ठीक नहीं जान पड़ता। नाना के दुर्गुणों का वर्णन चाहे अतिशयोक्तिपूर्ण कहा जाये, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि मराठा राज्य को दुर्बल बनाने में नाना के भी कई कार्यों का उल्लेख किया जा सकता है। देवनाथ-फन्दी की यह काव्य-कुश्ती वामपक्षीय दृष्टिकोण तथा समकालीन स्पष्टोक्ति की दृष्टि से पठनीय है। देवनाथ बरार के सुर्जीअंजन गाँव के मठपति थे। नाथपन्थी और बड़े मस्त फ़क़ीर थे। उनकी हिन्दीरचना भी बड़ी प्रौढ़, ललित तथा उनके व्रज-हिन्दी भाषा पांडित्य की परिचायक है। शीघ्र कवित्व की दृष्टि से दोनों कवियों की उक्त रचनाएँ टकसाली, चलती, तत्कालीन महाराष्ट्र में प्रचलित खड़ी बोली या हिन्दुस्तानी हिन्दी में है यथा—

सन्त कवि देवनाथकृत नाना फड़णीस को फटकार

पद

सो ही अक़लवन्त बड़ा है, नसीब सिकन्दर है उसका ॥घ्रु०॥
जब लौं पल्ले गठड़ी तब तक, जो करे उसी का ॥
हता रावण कीरत बढ़ी जद, अन्धाधुन्द सों राज किया।
तेहतिस कोटी देव पकड़ कर, बन्दीग्रह मो डाल दिया ॥
चौदा चोकड़ी राज चलाया, दौलत का खूब मज़ा लिया।
छुटी पल्ले की गठड़ी जब तो, आध घड़ी में डूबो दिया ॥
अक़ल की कुछ वक़त ना रही, समस्त कुल को भस्म किया।
बिभीषण ने बहुत सिखाया, ज़रा न माना भी उसका ॥
आई काल की घड़ी चूके नहीं, फिरा काल जब दैत्यों का ॥
बस मौत ॥१॥

अनन्त फन्दी ने नाना फड़णीस की अक़ल की तारीफ करी।
क्या है उसकी अक्कल दौलत पेशवा की डुबो दई ॥
जो मैं करूंगा सो ही होयगा, ऐसी मन में गरूरी भई।
माल खजाना अपने हाथ में, खावंद के घर कछु न रही ॥

---

* मराठा नज़िम-युद्ध स्थान-खरड़ा १७९५

सवाई माधवराव मरा जद, अक्कल सारी भूल गई ।
बाजीराव को दे दी गादी, सो भी जानत हता सही ॥
फिरा नसीबा चुक गई किरिया, कहां ठिकाना अक्कल का ।
नमक हरामी करी खाविंद सों, किसने बजाया है डंका ॥
बे अभी सुनो ॥ २॥

छोटे छोटे आदमी बढ़ाये, सभी पास मो आन खड़े ।
अपने आगे कछु गत नाहीं, जो बढ़े सो आप बढ़े ॥
ना खावंद का घर ही रक्खा, ना फौजें साबूत खड़ी ।
मन में मगरूरी करके गाफिल, ना बैरी सों जरा अड़ी ॥
कंबख्ती का पहरा यारो, बदमस्ती सों बहुत चढ़े ।
करमहीन आखिर नाना वे, जा सिंदे के कैद पड़े ॥
मिलाई सोई खोई यारो, लिया ठीकरा अपजस का ।
'देवनाथ' कहे मुझे गरज नहीं, राज डुबोया ब्राह्मन का ॥

नानासंबन्धी उक्त समकालीन हिन्दीरचनाओं के साथ ही हम एक अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्कालीन वर्णन देने का लोभ संवरण नहीं कर सकते । निज़ाम और पेशवा का सम्बन्ध 'अहिनकुल' न्यायवत् था, वैसे निज़ाम पेशवा का करद मांडलिक भी था और उसके दरबार में मराठा वकील रहता था । गोविंद राव काले वकील प्रखर, बुद्धिमान्, राजनीतिनिपुण, 'कलम का धनी' और मुँहतोड़ उत्तर देने वाला, समय सूचक हँसौड़ बीरबल था, जिनके विषय की कई विनोदपूर्ण दंतकथाएँ प्रचलित हैं । काले वकील के कई पत्र भी बड़े ही मार्के के हैं और नाना ने भी बड़ी सूझ-बूझ के साथ भागानगर दरबार में (हैदराबाद) गोविंदराव की नियुक्त की थी । नाना फड़णीस तथा महादजी शिंदे जैसे समकालीन दो महान् शताब्दि पुरुषों (Century men) का महत्व, तत्कालीन पेशवा का सौभाग्य-गौरव तथा मराठों के विशाल वैभव का जो भव्य, यथार्थ और स्वाभिमान उत्तेजक चित्र उन्होंने खींचा है वह तात्कालीन इतिहास की अमर रचना है । विशेष कर चतुर काले द्वारा वर्णित हमारे हिन्दु विभूतियों की "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" के ध्येय के अनुसार भौतिक बातों से उदासीनता, कई मुसलमान—फटे टूटे साधारण लोगों के भी तारीखनामे लिखे जाना तथा "अटक से रामेश्वर" तक की "अखंड भारत" की भावना कितनी स्फूर्तिदायक है ? तत्कालीन साधारण अंग्रेज़ प्रवासी भी भारतीय विभिन्न प्रांतों की उपज, आयात, निर्यात, लोकाचार तथा आवश्यकता पड़ने पर कौन-सा दुर्ग किस प्रकार जीता जा सकेगा आदि बातें अपने संस्मरणों में अंकित कर गये हैं; किन्तु हमारे कवियों तथा वीरों ने आंखोंदेखी महान् घटनायें भी भुला दीं और स्वयं अपने विषय में भी कुछ नहीं लिखा । हैदराबाद के निज़ाम दरबार स्थित उक्त काले मराठा वकील द्वारा वर्णित मराठाशाही के वैभव का परमोत्कर्ष तथा नाना फड़णीस और महादजी शिन्दे का गौरवपूर्ण महत्व पठनीय है ।

महादजी शिंदे ने अपनी बुद्धि और वीरता के बल पर अंग्रेजों, राजपूतों तथा बादशाही पर अपना प्रभाव स्थापित करके छत्रपति शिवाजी तथा वीर बाजीराव पेशवा के 'हिन्दू पद पादशाही' का ध्येय साध्य किया था । उसी प्रकार पानीपत युद्ध (सन १७६१) के अनन्तर मराठाशाही में संजीवनी डालनेवाले बुद्धिमान् और चतुर नाना फड़णीस ने भी ग़ज़ब की राजनीतिक निपुणता दिखाई । मराठा-राज्य के उक्त दोनों महान् पुरुषों में कुछ मतभेद भी हुए; किन्तु वह मनमुटाव शीघ्र ही दूर हो गया । बादशाह द्वारा प्रदत्त साम्राज्य का सर्वोच्च सम्मान माही मरातिब और वकील मुतलक पद पेशवा को भेंट करने के लिये शिंदे पूना पहुंचे तथा २२ जून सन् १७९२ को फमीनवाड़ी का दरबार हुआ, उसका वर्णन नाना फड़णीस ने भागानगर (हैदराबाद) के निज़ाम दरबार के मराठा वकील गोविंदराव काले को लिख भेजा । काले स्वयं अत्यन्त चतुर, व्यंग विनोद निपुण तथा प्रभावशाली व्यक्ति थे । उन्होंने नाना फडणीस को तीन पत्र भेजे जिनके आंशिक हिन्दी अनुवाद निम्न प्रकार हैं—

(१)

गोविंदराव काले का पत्र नाना फड़णीस को—

"आपने लिखा कि........

(१) मेरे प्रेषित गोविंद भटजी और पाटील बाबा से खुली बातें हुई । उनमें स्पष्टता अधिक दिखाई दी । शिंदे के चिटणीस तथा हरिपंथ से भी स्पष्ट बातें हुई । फिर मुलाक़ात हुई । किसी बात की शंका नहीं रही । तुम्हें सूचित किया जाता है, आदि अत एव......

पत्र पढ़ते ही रोमांचित होकर अत्यन्त संतोष हुआ । पत्र द्वारा विस्तारपूर्वक कहाँ तक लिखा जाय ! सीमा हो गई । उससे तो ग्रन्थ के ग्रन्थ स्मरण हो आये । उनके विस्तारपूर्वक उल्लेख से तो निठल्लापन सिद्ध होगा ।

किन्तु जो बातें मन में आईं वे विस्तारपूर्वक लिख रहा हूँ। एक एक बात पर विचार किया जाए तो उसकी यथार्थता ही दिखाई देगी। अटक नदी के इस ओर दक्षिण समुद्र तक हिन्दुओं का स्थान है। वह तुर्कस्थान नहीं है। अपनी उस सीमा की रक्षा पांडवों से लगाकर विक्रमाजीत तक ने कर के उसका उपभोग किया। उनके अनन्तर राज्यकर्त्ता नादान निकले; यवनों का प्राबल्य हुआ। चकत्तों ने हस्तिनापुर का पद लिया। अंत में आलमगीर के शासन में तो यज्ञोपवीत के लिए साढ़े तीन रुपया साल जजिया बैठाया गया, गीला (पका हुआ) अन्न बेचा जाता था। वही सभी खरीदें. ऐसी नौबत गुज़री। उन दिनों कैलासवासी शिवाजी महाराज शक-कर्त्ता तथा धर्मरक्षक हुए। उन्होंने एक प्रदेश में किंचित् धर्म की रक्षा की। अनन्तर कैलासवासी नाना साहब-भाऊ साहब ऐसे प्रचंड सूर्य हुए कि उनकी समानता कोई नहीं कर सकता। अमुक ब्राह्मण ने राज्य किया, ऐसा शास्त्र और पुराणों में वर्णन नहीं पाया जाता। परशुराम अवतार के समय क्या हुआ होगा सो सही; उसी की दो प्रतिमूर्तियाँ शिंदे और होलकर अब प्राप्त हुए। श्रीमंत का पुण्य प्रताप और राजेश्री पाटिल बाबा की बुद्धि और तलवार के पराक्रम के कारण सब कुछ हाल ही में घर आ गया; किन्तु वह कैसे हुआ? प्राप्त हो गया इससे तो सुलभता मालूम हुई। यदि ऐसा कार्य करनेवाला कोई मुसल्मान होता तो बड़े बड़े तारीखनामे लिखे गये होते। यवनों की जाति में तिल जैसी अच्छी बात की जाए तो गगन (आसमान) जैसी बड़ी बता कर शोभित करेंगे (तिल का ताड़)। किन्तु हम हिन्दुओं में गगन जैसी बड़ी भारी बात की जाए तो भी उसका उच्चार तक न करने की चाल है। अलभ्य बातें घटित हुईं। दौलत तो पूँछती हुई वैसे ही घर तक आ पहुंची। उसका संरक्षण करना कठिन है। दोस्त दुश्मन बहुत से हैं। यवन तो खुले मन से काफ़िरशाही होने की बातें बोलते हैं। लेकिन जिन्होंने हिन्दुस्तान में अपने सिर उठाये, पाटिल बाबा ने उन्हें तोड़ा। सभी के मन में अखरता है कि मराठे क्यों बढ़े? वे कभी फूले-फलें नहीं। इसलिये अनेक उपाय और युक्तियों द्वारा नाश करना सोच रहे हैं। अन्यथा बातें हो गईं; उनका प्रबन्ध शककर्त्ता की तरह किया जाए; ताकि इस ऐश्वर्य का आगे ही उपयोग किया जा सकेगा, पुण्याई में कहाँ कमी पड़ेगी और न मालूम कैसे कहाँ दीठ ऊगेगी? जो बातें साध्य हुईं उनमें केवल राज्य प्राप्ति ही नहीं हुई, वरन देश की रक्षा, धर्म संस्थापन, गो ब्राह्मण प्रतिपालन, सार्वभौमत्व, कीर्ति और यश के नगारे बजना इतनी बातें भी मिली हैं। उस किमया को संभालना हक़ आपका और पाटिल बाबा का। यदि उसमें अंतर पड़ जाए तो याद रखिये कि दोस्त दुश्मन मौजूद हैं। संशय दूर हो गया। यह बहुत ही अच्छा हुआ। आइन्दा यह जमाव और यह फौज़ें लाहौर के मैदान में जुटनी चाहिएँ। मराठे लोग जो मनसूबे बांधे, वे पूरे न होवें और हम तमाशा देखें ऐसा सोचनेवाले लोग अपने सिरहाने और पैरों के पास मंडरा रहे हैं। चैन नहीं था; आपने लिखा सो स्वस्थता हुई। मैंने जो लिखा उस पर मनन किया जावे। सच झूठ जो हो वह कुछ तो मालूम होना ही चाहिए। खाना चन्द्र ११ जिलकाद हे विनंती।

(२)

इ. सं. ऐ. टि. भा. १ ले. ९ २ जुलाई १७९२

फर्मानवाड़ी का दरबार : "श्रीमन्त पेशवा के ताले (ग्रह) ही विचित्र हैं कि शिन्दे ऐसे महान् श्रेणी के सरदार दिग्विजय प्राप्त करके पैरों पर सिर रखते हैं। इन समाचारों के अखबार हम शाम तक फड़केंगे। इस पुण्याई की तो समानता ही नहीं है। कहाँ तक वर्णन किया जाए? बड़ा सन्तोष हुआ, यहाँ के लोगों से वे बातें कहने में हमें तो बड़ा ही गौरव मालूम हुआ। बन्देगान अली (निज़ाम) और अन्य मध्यस्थों से भी कहा, उन्हें भी खुशी हुई। जैसा होना चाहिए था वैसा ही हुआ, बहुत ही उचित हुआ। यहाँ के लोगों को तो हमारे ही द्वारा सही हाल मालूम हो सकता है। इसीसे छोटे बड़े सभी हम से पूछते हैं और हमें भी उन्हें कहना पड़ता है। आइन्दा जो कुछ हो उसकी सूचना इधर दी जाया करे। खानाचन्द्र ११ जिलमाद।

(३)

"बादशाह की ओर से वकील मुतलकी और अमीर उल उमराव अर्थात् मीरबख्शी गिरी का दरबार किया गया। पोषाक देने आदि की बातें हुईं। पत्र पढ़ कर अत्यन्त सन्तोष हुआ। मेरा आनन्द तो कहीं भी समा नहीं सकता। पत्र में कहाँ तक विस्तारपूर्वक लिखा जाए? श्रीमन्त तो बड़े वैभवशाली हैं, उनकी विचित्र

पुण्याई है । कभी प्राप्त नहीं हुई, ऐसी बातें साध्य हुईं । श्री मुबारक करें । इसमें भी अधिक ऊँचे पद प्राप्त होंगे, फर्मान भी आवेंगे। महादजी शिन्दे की बातें हमने यहाँ के लोगों से नहीं कही; वे इन्हें रुचेगी नहीं । पाटिल बाबा ने ५१ मुहरें नज़र करके आदाब बजाई, जिससे उनकी स्वामिभक्ति का यश चारों ओर फैल गया। खानदानी पेशे को फबनेवाली उचित बात ही उन्होंने की। आपने और पाटील बाबा ने आदाब बजाई। आपने भी अपने पद के अनुसार ही बर्ताव किया। यदि ऐसा न किया जाता तो खामी दिखाई देती । पृथ्वीपति और अन्य महान् मराठा राजा को आदाब करना ही चाहिए। लेकिन उनकी तुलना में तो ये ब्राह्मण प्रभु हज़ार गुने अच्छे हैं । पत्र के अनुसार तो आदाब बजानी ही पड़ती है। अच्छा ही हुआ, यही मार्ग अन्त तक निभाया जाए। आपके और पाटील बाबा के समय में ही ये बड़ी बातें हुईं। कीर्ति की ध्वजाएँ फड़कीं। ये बातें आपको और पाटील बाबा को मुबारक होवें। खानाचन्द्र जिलमाद ।

श्री व्रजरत्नदास जी द्वारा लिखित उक्त चरित्र में सम्भवतः उनका आधार केवल अंग्रेज़ी साधन होने तथा मराठी भाषा से अपरिचिति होने के कारण कुछ बातें, ग्राम व्यक्ति नाम आदि अशुद्ध लिखे गये हैं और उनकी प्रचण्ड राजनैतिक पहुँच का यथार्थ दिग्दर्शन भी नहीं किया जा सका है। नाना का असंख्य पत्र व्यवहार तत्कालीन भारतीय इतिहास की अपूर्व धरोहर है। मराठाशाही में साढ़े तीन अक्लमन्द (शहाणे) प्रसिद्ध थे, जो सख्या-देवा-विट्ठला ये तीन तथा आधे बुद्धिमान् नाना कहलाते थे। सखाराम बापू पेशवा के ही दीवान थे, देवाजीराव नागपुर के भोंसला राजा के दीवान थे तथा राजा विट्ठल सुन्दर प्रतापवन्त परशुरामी जो निज़ाम के दीवान थे और १७६३ के राक्षस भुवन के युद्ध में मारे गए थे और जिनकी 'राजा गणेश' की जागीर अब भी हैदराबाद में वर्तमान है। जहाँ आधे अक्लमन्द नाना ऐसे मेधावी राजनीतिज्ञ थे, वहाँ अन्य तीन, पूरे तीन बुद्धिमानों का क्या पूछना है ?

आशा है काले वकील के उक्त यथार्थ उद्‌गारों से तत्कालीन घटनाओं, नाना महादजी का महत्व तथा इतिहास का सम्यक् ज्ञान प्राप्त होगा। मुसलमान मुत्सद्दियों की दोगली नीति, फ्रेंचों की प्रखर बुद्धिमत्ता और देशाभिमान, पुर्तग़ीज़ों की कट्टरता तथा अंग्रेज़ों के काइँयापन से नाना खूब परिचित थे। "इंग्रज कावेबाज आहेत" जैसी अंग्रेज़ों की दोमुँही बातों का भण्डाफोड़ करनेवाले नाना फड़णीस के असली प्रकाशित काग़ज़ात भी अंग्रेज़ी राज्य काल में (१९१०) ज़ब्त कर दिए गए थे ! इसमें सन्देह नहीं कि तत्कालीन इतिहास में नाना का नाम अविस्मरणीय रहेगा। महादजी तो स्वयं कवि थे। उनकी मराठी-हिन्दी रचना 'माधव विलास' हम प्रकाशित कर चुके हैं। वे कई हिन्दी कवियों के भी आश्रयदाता थे; अत एव उनकी प्रशंसा में लिखी बहुत-सी हिन्दी रचनाएँ भी पाई जाती हैं। नाना की तरह महान महादजी का चरित्र भी लिखा जाना उचित होगा।

ग्वालियर

—भा. रा. भालेराव सुभेदार

जिन्हें श्रद्धा होती है उनके कन्धों से सभी चिन्ताओं का भार उतर जाता है। हम में श्रद्धा भी हो और मन पर दबाव भी रहे ये दोनों बातें एक साथ हो ही नहीं सकतीं। इसलिए मन को बिलकुल हलका रखना चाहिए।

—महात्मा गान्धी

(एक पत्र से)

ये ज़ुल्म में भी पनपते हैं

ये ज़ुल्म में भी पनपते हैं–ये डेन्मार्क के साहित्यकार। अभी उस दिन जो कोपेनहेगेन पहुँचा तो साहित्यिकों की धर पकड़ का बाज़ार गर्म था। वे पकड़े गये और कुछ ही घण्टों में छूट भी गये।

वे पकड़े गये कि उन्होंने शान्ति की आवाज़ उठाई थी। शान्ति की आवाज़ डेन्मार्क में। डेन्मार्क में शान्ति की आवाज़ उतनी ही भयानक समझी जाती है जितनी संयुक्त राष्ट्र अमेरिका में। अमेरिका में जान हार्वेड लासन, सैमुएल औनिंत्स, ट्रुम्बो, रिंगलार्डनर, अल्वा वेसी, हावर्ड फास्ट आदि अनेक बार जेल भेज दिये गये क्यों कि उन्होंने उस फ़ौजी शस्त्र-सम्मत देश में शान्ति की रक्षा के प्रयत्न में आवाज़ बुलन्द की थी। उन्होंने कहा था कि प्रशान्त महासागर के पार अमरिका के नौनिहालों को भी तोपों का आहार बनाना इन्सानियत के उसूलों के ख़िलाफ़ है और एचेसन की सरकार ने उनके मुहों पर, आमद-रफ्त पर, मिलने जुलने पर, लिखने पढ़ने पर ताले ठोक दिये। परन्तु फ़ौलादी शिकंजे के बाहर फिर भी उनकी आवाज़ आती, उठती और पसरती रही—हम युद्ध नहीं चाहते, हम शान्ति चाहते हैं, बिना लड़े जीने का अधिकार!

वही आवाज़ डेन्मार्क में भी उठी, उठती रही, आज भी उठ रही है। इसलिए विशेष कि अमरिका अतलान्तिक पार योरप तक पसर कर फैल गया है और वहाँ भी इन्सानियत का दम घोटने के उसके प्रयत्न जारी हैं। जंगपरस्ती का सबसे बड़ा मन्दिर उसी डेन्मार्क में खड़ा किया जा रहा है जहाँ अमरिका का बेइन्तहा धन पानी की तरह बह रहा है, जहाँ निक्सो की बूढ़ी मगर ताक़तवर और ऊँची आवाज़ उठ-उठ कर दिगन्त को भरती जा रही है – नहीं हम लड़ाई नहीं चाहते, वैसे ही जैसे हम डालर नहीं चाहते क्यों कि हम अमन चाहते हैं, क्योंकि पिछली लड़ाइयों की मार से यूरोप बरबाद हो चुका है. डेन्मार्क तबाह हो चुका है, और इन्सान का ख़ून काफ़ी बह चुका है, अब उसे पथ्य चाहिये, जंग नहीं।

पर उस बूढ़े निक्सो की आवाज़ दबाई जा रही है। उसकी लेखमालाएँ आग के सुपुर्द की जा रही हैं: पर आवाज़ उसकी भी, उसके साथियों की भी दिन-दिन और बुलन्द होती जा रही है, दिन-दिन उसकी लेखमालाएँ जनता के हाथों में पहुँचती जा रही हैं यद्यपि 'पोलीतिकेन' और 'बार्लिंग्स के टिडिंडे' के कालमों में छपने की सम्भावना न तो उसके लेखों की है और न उसके साथियों के लेखों की। फिर भी उनकी आवाज़ डेन्मार्क के आसमान पर छाई जा रही है।

जनरल आइज़न हॉवर का पश्चिमी यूरोप का सबसे बड़ा शस्त्रागार डेन्मार्क में ही क़ायम हो रहा है। डेन्मार्क ने सदियों के दौरान में साम्राज्य बनाया, आस-पास के देशों को जीता, ग्रीनलैण्ड पर अब भी उसका अधिकार है और नार्वे का राजा भी उसीके राज-परिवार का एक व्यक्ति है। आज इधर कुछ दिनों से उसने अपने अर्थ की एक नई योजना निकाली और उसको इस रूप से पूरा करना चाहा कि साधारणतः उसका रूप आकर्षक दीखने लगा है, उसकी बीमा की योजना, बूढ़ों की देख भाल का इन्तज़ाम, प्रौढ़ साक्षरता की योजना सभी कुछ आकर्षक लगते हैं लेकिन यह सारा आकर्षण डालर की बुनियाद पर खड़ा है जिसकी बुनियाद पर आइज़न हॉवर का शस्त्रागार भी निर्मित हो रहा है।

उसी डालर केन्द्रित योजनाओं के लिए डेन्मार्क ने अपने को अमेरिका के हाथों बेच दिया है और उसी बिक्री के विरोध में बूढ़ा निक्सो अपने जवान अनुयायियों के साथ आवाज़ उठा रहा है। निक्सो आज प्रायः ८३ साल का है—मार्टिन एण्डरसन निक्सो। डेन्मार्क हैन्स एण्डरसन का देश है जिसने संसार के आधुनिक साहित्य को आमूल प्रभावित किया है। उसी एण्डरसन की लगाई बेल का मार्टिन निक्सो असाधारण प्रसून है।

निक्सो आज ८३ वर्ष से अधिक साल का है, नितान्त बूढ़ा, लेकिन आज भी उसकी लेखनी में असुर का सा बल है, उसके विचारों में ग़जब का तेज है और उसकी वाक्यावली में असामान्य प्रतिभा। डेन्मार्क ही नहीं, सारे पश्चिमी योरप के साहित्यक जगत का नक्सो नेता है। पिछले ५० वर्षों से उसने उस जगत का नेतृत्व किया है। ज़माने बदलते गये हैं, बिस्मार्क कैसर को

बागडोर दे कर सरक गया, कैसर हिटलर को मगर निक्सो के प्रगतिशील दृष्टिकोण में अन्तर न पड़ा। अधिकारों की लड़ाई योरप में वह बराबर लड़ता रहा है, आज भी लड़ रहा है। उसने बिस्मार्क की सेनाओं को देखा, पहले महासमर के तोपों की गर्जना सुनी, दूसरे महासमर के बमबाज़ों की भी परन्तु शान्ति के सम्बन्ध में उसने अपना रुख़ नहीं बदला और आज भी वह शान्ति का संसार प्रसिद्ध महान् पुजारी है।

नात्सियों का जब दबदबा बढ़ा और हिटलर ने जब डेन्मार्क पर अधिकार कर लिया तब उसके वीर अनुयायियों को पकड़ कर जेलों में डाल दिया गया, वह स्वयं एक जमाने तक 'कन्सेनट्रेशन कैम्प' में कैद रहा। तब वह कपड़े पर लिखता था, आज भी उसे अनेक बार कपड़े पर ही लिखना पड़ रहा है मगर न वह तब चूका और न आज और उसकी लेखनी निरन्तर सत्ता के विरोध में आग उगलती रही जैसी आज भी वह उगलती जा रही है। निक्सो ने अभी इस भरे बुढ़ापे में 'जीवन के गान' नामक एक उपन्यास लिखा है जिसमें जनता के संघर्ष की कहानी सबल लेखनी से प्रस्तुत हुई है। निक्सो का यह दावा है कि वह सदा जनतन्त्र, शान्ति और आज़ादी की लड़ाई में बलिदान करती हुई मानवता का सहायक होगा, उसी के पक्ष में वह लिखेगा, अन्य किसी जनेतर प्रसंग को लिख कर वह अपनी लेखनी कभी कलुषित नहीं करेगा। अपने भरे लम्बे जीवन में कभी उसने अपनी प्रतिज्ञा झूठी नहीं होने दी।

निक्सो के सामने जब मैं खड़ा हुआ, मैंने अपने सामने बिखरे जनतन्त्र की जन साहित्य और शान्ति की केन्द्रीभूत एक धवल राशि खड़ी देखी। वृद्धावस्था जोर कर रही है, आखिर लोहा भी समय के प्रभाव से चूर चूर हो जाता है, पर निक्सो की आकृति में मैंने शान्ति और शक्ति को एक साथ केन्द्रित पाया। सहज, साधारण, नितान्त सामान्य उसकी चेष्टा, पर उसके रोम रोम से शान्ति की आवाज़ उठती हुई, कुचली मानवता की रक्षा में उसकी वाणी में विभक्त होती हुई शक्ति, मधुर गिरा में अनन्त सहानुभूति, एकस्थ मैंने उस आज के भीष्म निक्सो में पाया।

"डेन्मार्क पर तो अमेरिका का राहु छाये जा रहा है, आप क्या उसकी रक्षा कर सकेंगे?" मैंने पूछा,

"निश्चय।" बुढ़ापे की आवाज़ पर बुलन्द वातावरण को अपने कम्पन से भरती हुई इस शक्ति के साथ उच्चरित हुई कि मैं चौंक उठा और क्षण भर इसमें सन्देह करने लगा कि क्या वह आवाज़ उसी आधार से उठी है जो मेरे सामने है। पर भला इसकी सत्यता में किसे सन्देह हो सकता था विशेष कर जब वह उसी आधार से अनवरत उठती आवाज़ निरन्तर सतेज होती गई—"निश्चय, हमें अपने उपकरणों में, अपने अध्यवसाय में, शान्ति की अपनी कामना में और साथ ही अमरीकी विषमताओं में सन्देह नहीं। अन्तिम विजय सर्वहाराओं की होगी और अमन का बोलबाला होगा, इन्सानियत अपने स्वाभाविक अधिकारों से फूले फलेगी।"

"आपका उपन्यास क्या पूरा हो गया?"

"प्रायः हो चुका है, उसकी दूसरी आवृत्ति भी कर चुका हूँ।"

"आपको लिखने के लिए कागज़ मिल जाता है? कागज़ पर तो यहाँ, सुना है कि बड़ा भयानक कन्ट्रोल है।"

"हाँ, कन्ट्रोल है और बुरा कन्ट्रोल है विशेषतः इसलिए कि वह अपने भयानक रूप में प्रगतिशील लेखकों के विरोध में ही बरता जाता है। प्रगतिशीलों ने कागज़ के अभाव में किन-किन साधनों से लिखने के लिए कागज़ का प्रबन्ध किया है यह बता सकना कठिन है, आप उनका अन्दाज भी नहीं लगा सकते। फिर भी हम लिखते जा रहे हैं और लिखी हुई सामग्री की निरन्तर खपत भी होती जा रही है। जनता को हमारी चीज़ों की माँग है और हम अपनी बात उससे कहना चाहते हैं और दोनों के इस नित्य-सम्बन्ध में कोई शक्ति चाहे वह कितनी भी शक्तिमती क्यों न हो अन्तर नहीं डाल सकती।"

"सुना है आपका नाम पाठ्यपुस्तकों से हटाया जा रहा है, क्या यह सच है?"

"सच है। परन्तु उससे हमारे काम में किसी प्रकार की बाधा नहीं पड़ती। यशःशरीर को बनाये रखने की कभी कामना नहीं हुई क्योंकि विचारों के अटूट प्रवाह का जीवन मृत्यु के पार भी ज़िन्दा रहता है और जिस परम्परा के हम पोषक हैं और जो परम्परा हमें मनुष्यता की दाय के रूप में मिली है उसको मेरे बाद भी क़ायम रखने और ले चलनेवालों की कमी नहीं। इससे हम न रहे या हमारी वैयक्तिक यशःचेतना न रही तो क्या? अफ़सोस इसका नहीं है कि नाम पाठ्यपुस्तकों

से हटाया जा रहा है, परेशानी इसकी है कि लिखने को काग़ज नहीं मिल रहा है। हाँ, पर लिखना बन्द नहीं, न उसमें किसी प्रकार की रुकावट है। सुबह के उजाले के पहले अन्धेरा बड़ा गहरा होता है।"

निक्सो को महापुरुष कहना उसके आकार को छोटा करना है। वह तो अविकृत जीवन का वह स्वरूप है जिसमें मानवता साँस लेती है। उसका धर्म वैयक्तिक नहीं, युग-धर्म नहीं, वह पारम्परिक धर्म है जिसकी दाय का वह रक्षक है और जो जनता के संघर्ष और अधिकार चेतना में निरन्तर प्राण फूँकता जा रहा है।

गद्‌गद् वहाँ से विदा हुआ। निक्सो के कर स्पर्श के बाद उससे विदा लेते समय उसके हाथ का अपनी पीठ पर स्पर्श आज भी याद है जो कण-कण में स्फूर्ति पैदा कर देता है। मार्टिन एण्डरसन निक्सो डेनिश राष्ट्रीय शान्ति समिति का सदस्य है और वारसा की शान्ति परिषद् का भी अन्तराष्ट्री स्तालिन पुरस्कार के जुरी का भी सदस्य है। जीवन में उसने कटुता का अमित व्यवहार पाया है परन्तु उसके स्पर्श से वह सारा मधुर बन गया है। जितना तिक्त व्यवहार उसे छूआ है वह सारा मधुर हो कर सर्वत्र व्याप्त हो जाता है। निक्सो बड़ी आशा से भविष्य के निर्माताओं की ओर देख रहा है और उसका विश्वास है कि उनके निर्माण कार्य में उसकी साँस बराबर चलेगी।

हैन्स कर्क डेन्मार्क की उसी सम्पदा का रत्न है जिसको उत्पन्न कर जीवित रखने का श्रेय मार्टिन निक्सो को है। हैन्स कर्क के उपन्यास 'गुलाम' की कहानी अद्‌भुत है। कहानी का कथानक इतना नहीं जितना उसके निर्माण की परिस्थितियाँ अद्‌भुत हैं। नात्सी शासनकाल में डेन्मार्क के अनेक प्रतिभाशाली प्रगतिशील साहित्यिक और कलाकार उसके शिकार हुए, उसके कन्सेन्ट्रेशन कैम्पों में एक ज़माने तक कुचले जाते रहे, उन्हीं में कर्क भी था। बड़ी कठिनाइयों से काग़ज और लिखने लायक कपड़े का इन्तजाम कर उसने क़ैद में ही अपना वह अद्‌भुत उपन्यास पूरा किया। उसके जेलरों को उस उपन्यास का पता चल गया और उन्होंने पाण्डुलिपि छीन ली। उसे उन्होंने अग्नि को समर्पित कर दिया। कर्क ने उपन्यास फिर लिख डाला। पाण्डुलिपि फिर पकड़ गई। कर्क ने कैम्प के बिजलीवाले तारों को चमत्कृत कर स्वीडन की राह ली। दुश्मन देखते ही रह गये। वह स्टौकहोम जा पहुँचा और तीसरी बार उसने अपना 'गुलाम' लिख डाला। मैंने पूछा—"भला आप एक के बाद दो-दो बार उस नष्ट किये उपन्यास को कैसे लिख सके?" "क्योंकि जिस आधार पर उपन्यास की इकाइयाँ टिकी थीं वह आधार मेरे दिमाग़ में था और मैं स्वयं नष्ट न हो गया था। अनुभूतियाँ इतनी प्रखर, इतनी जीवित मेरी स्मृति में थीं कि उनसे भिन्न मेरा कोई अस्तित्व न था और अगर नात्सी भेड़िए सौ बार भी उसे नष्ट कर देते तो मैं उपन्यास एक सौ एकवीं बार फिर लिख लेता।" हान्स कर्क ने जब प्रण के रूप में अपना यह निश्चय कहा तब उसकी मुट्ठी की उँगलियाँ कस गयीं थीं और चेहरे पर ग़ज़ब का नूर रोशन था।

ओटो गैलसटेड का नाम 'उठो और मशाल जला दो!' नामक कविता संग्रह से डेन्मार्क की भौगोलिक परिधि पार कर चुका है। उस देश के काव्याकाश में गैलसटेड प्रखर नक्षत्र है। उसकी एक दूसरी कविता—'हमारी नियत में नात्सीवाद' दिलों को टटोलने वाली एक असाधारण चीज़ है। अपने ऐलानों से व्यवहार में हम कितने दूर हैं इसका भण्डाफोड़ इस कविता ने पंक्ति पंक्ति में किया है। पिछले महासमर के बाद के यशस्वी कवियों में गैलसटेड का स्थान अक्षुण्ण है।

शेर फिग की कान्ति दिन-ब-दिन प्रखर होती जा रही है, उसी मात्रा में जिस मात्रा में उसकी लेखनी शान्ति और सत्य के शत्रुओं का पर्दाफ़ाश करने में अनवरत चल रही है। युद्ध के पूर्व के लेखकों में हान्स शेरफिग का स्थान काफ़ी ऊँचा है और उसकी लेखनी के तेवरों के उस देश में सभी कायल हैं। आदर्शवादियों के अपार्थिव दृष्टिकोण का अपने 'वह अफसर जो गायब हो गया' में उसने भयानक भण्डाफोड़ किया है। यह उसकी अद्‌भुत व्यंगात्मक कृति है जिसमें उसने निम्न मध्यमवर्ग की वस्तु-स्थिति को तार तार करके रख दिया है। स्वयं प्रयास न करके भी प्रतिष्ठापित साम्यवादी समाज के लाभों के सपने देखनेवाले 'फ़िलिस्तीनों' का इतना सुन्दर और सजीव वर्णन अन्यत्र उपलब्ध नहीं।

विलियम हाइनेसन का उपन्यास 'काली कढ़ाही' पहले पढ़ चुका था पर उनके दर्शन न हुए थे। मिलने को लालायित था। मिला और 'काली कढ़ाही' के लेखक

के असामान्य तेवर देखे। हाइनेसन डेन्मार्क के उन लेखकों में से हैं जो व्यंग्य को कुठार बना कर शत्रु और मित्र दोनों पर आघात करते हैं। शत्रु पर विजय पाने के लिए और मित्र पर उसके सन्देहों के कायाकल्प के लिए--अग्नि परीक्षा के लिए।

डेन्मार्क में एक प्रकार की श्रमिक सरकार क़ायम है, श्रमिक सरकार उसी अर्थ में जिस अर्थ में वह नार्वे, स्वीडन, हालेन्ड बैल्जियम, फ्रान्स और इटली में भी क़ायम है। और जिस अर्थ में वह इंग्लैण्ड में भी अभी हाल तक क़ायम रही है। अर्थात् उसके एलानों पर श्रम के आभास का पानी चढ़ा हुआ है पर जिसके अन्तरंग पर अंकित सैम काब्रिज है। प्रगतिशील प्रवृत्तियों का वहाँ की सरकार निरन्तर शिकार खेल रही है और उसके शिकार में आइज़न हॉवर के से जनरलों का भी हाथ है। किसी ने पूछा, "कैसे यह युद्ध का पुजारी आइज़न हॉवर कोलम्बिया यूनीवर्सिटी का विधाता बन गया?" पर इसका क्या उत्तर देना होगा? इतना क्या काफ़ी नहीं कि कोलम्बिया अमेरिका में है!

इलाहाबाद

—भगवतशरण उपाध्याय
एम. ए.

कन्नड़ की कहावते

कुरुडन मुन्दे वज्रऊ कल्ले
अन्धे के आगे हीरा भी कंकड़ है
कुरुडरल्लि किऊडने लेसु
अन्धों में बहरा भी भला
नम्म चिन्नवे खोटा आगिद्दरे बेरेयवरु येनु माडीयारु?
अपना ही सोना खोटा हो तो पराये का क्या दोष?
केलसा बिद्दाग कत्ते कालादरु कट्टबेकू
काम पड़े तो गधे के पैर पकड़ना
आकाशक्के उगुळिदरे मुखदमेले बन्दु बीळुत्ते
आसमान का थूका मुँह पर आता है
ओन्दु कैय्यिन्द चप्पाळे तट्टुवुदक्कागुऊदिल्ल
एक हाथ से ताली नहीं बजती
भाविय मण्णु भावियन्ने तुम्बितु
कुएँ की मिट्टी कुएँ को भर दिया
कुदरेयन्नु नोडि कालुनोवायितन्ते
घोड़े को देख कर पैर में दर्द होने लगी।
देवरलीले देवरेबल्ला
खुदा की लीला खुदा ही जाने
मनेयल्लि शांतियिद्दरे होरगेल्ला शांतियिरुत्ते
घर में चैन हो तो बाहर भी चैन
कोळि कूगदिद्दरे बेळगागोदिल्लवे?
मुर्गा न बांग दे तो, क्या सबेरा न होगा?

—आर. माधवी

बेंगलोर

आली ये सावन के बादल !

नील-नभोमण्डल पर उमड़-घुमड़ कर छा जाने-वाले रंगबिरंगे बादलों को देख कर किसका हृदय उल्लास और उमंग से नहीं भर जाता होगा, बादलों का शोर सुन कर मोर भी ज़ोर से कूकने लग जाता है, पपीहा पी पी पुकार उठता है, और कोई सुने या न सुने मेंढ़क भी अपनी अलग 'टर्र' करता ही है। जब मोह-माया से विरक्त संत कवि तुलसीदास को भी "घन घमण्ड गर्जन नभ घोरा" ने बेचैन बना डाला तब आज का कोई रसिक कवि नवीन कारागृह में बन्द होकर, रसफुरिया के पुलक-स्पर्श को पाकर आर्द्र चीवरवाली प्रियतमा के कल्पना मिलन के लिए विकल बन उठता है तो क्या आश्चर्य ! कौन सा ऐसा कवि होगा जिसे उठती हुई काली घन घटा ने बेचैन न बना दिया हो ? सावन-भादो की रिमझिम ने रसविभोर न कर दिया हो ! महाकवि कालिदास को तो बादल और बिजली ने बहुत प्रभावित किया है। बादल के आते ही रामगिरि पर एकान्त विरहावस्था में रहनेवाले यक्ष के मन में किन किन रचनाओं ने जन्म लिया और विगत विहार करने को विवश बनाया उसका साक्षी तो संसार के समक्ष 'मेघदूत' हैं ही, परंतु कवि को मेघ से एक विरही के लिए दूत-कर्म करवाते हुए यह चिन्ता भी रही कि कहीं वर्षा में मेघ अपनी प्रियतमा बिजली से वियुक्त न बन जाए। इसलिए उसने हार्दिक कामना भी की—'मा भूद्विद्यता विप्रयोगः' आकाश में रंगबिरंगे इन उड़नेवाले बादलों ने जहाँ वर्षा के आगमन की शिव-सूचना से समस्त प्राणियों को, जड़-चैतन्यों को सुख-समाधान पहुँचाया है, आतप तप्तों को अपनी स्नेह-रसभरी छाया के तले लेकर शांति प्रदान की है, विरह-विधुरों के मानस में हलचल मचा दी है वहाँ वैज्ञानिकों को भी अनुसंधान का अवसर प्रदान किया है। बादल देखते ही मोर आनन्द और उल्लास में भर कर थिरक उठता है। सूखी-रूखी ज़मीन की छाती चीर कर उसकी हरियाली ऊपर आने को बेचैन हो उठती है। द्रुमलताएँ नन्हीं-नन्हीं बूँदों से स्नान कर नए साज-बाज के साथ स्वागत करने को समुद्यत बन जाती हैं। एक नदी दूसरी नदी से मिलने को मचल उठती है और अपनी सहेलियों को संग लेती हुई लोल लहरों के साथ खेलती कूदती प्रियतम सागर से संगम करने को आतुर हो जाती है। जब बादल विलीन हो जाते हैं, पानी का पता नहीं लगता, तब पानी का प्रेमी मेंढ़क सूख कर काठ का टुकड़ा-सा बन जाता है। पर ज्यों ही आसमान में मेघ मँडराने लगे कि उसकी सूखी पत्थर के नीचे दबी देह भी प्राणों से पूरित हो जाती है और वही अपनी पुरानी 'टर्र' ! तालाब-नदी-नालों में जल भर जाने पर जल जीवों का लहरों पर उछलना, एक दूसरे से दौड़ की दौड़ लगाना, तथा लुका-छुपी कितनी मनोरंजक बन जाती है ! पर जब आकाश निरभ्र बना हो, पानी का पाताल तक पता न चलता हो, सूर्य की प्रचण्ड किरणें क्रुद्ध हों, भरी दोपहरी में आग बरसाने लगी हों तब ये बादल के विरही पादप पौधे अपने प्रेमी पयोद के देखे बिना खड़े ही खड़े सूख कर काँटे बन जाते हैं। सदा के बैरी सर्प के फन के नीचे छाया में आश्रय पाने के लिए मेंढ़क उसी की गोद का सहारा पाने पहुँच जाता है। और मोर के पंख के नीचे शान्ति की टोह में सर्प भी क्षण भर सुस्ताने का साहस कर बैठता है; दुश्मनी भूल जाता है, तो उस विरही-यक्ष का ही क्या कुसूर था कि प्रिया को सन्देश पहुँचाने के लिए पागल बन अचेतन बादलों से बोल उठा, और उनकी अर्चना कर उठा, विवशता में सचेतन ही जब सुध-बुध भूल जाते हैं।

ज़रा ही पानी की खींच पड़ जाए तो लाखों लोग, सभी समझदार, बादलों को बुलवाने, उसका स्वागत करने के लिए क्या क्या नहीं कर डालते हैं। बादल के आते ही जड़-चैतन्यों में जान पड़ने लग जाती है, हवा में एक सौंधी सुगन्ध भर जाती है, मस्ती छा जाती है, मुर्झाई हुई कोमल लताएँ लहराने लग जाती हैं, निरन्तर प्रतीक्षा में आकाश की ओर टक-टकी लगानेवाली फटी आँखें भी आर्द्र बन जाती हैं, ठूँठ में से भी कोमल किसलय फूटने लगते हैं, जरा-जीर्णों में जीवन ही नहीं, यौवन भी आने लग जाता है।

परन्तु आज तक यह कितनों ने जाना है कि इन बेचारे निर्जीव समझे जानेवाले बादलों का भी

कोई जीवन है या नहीं, ये कहाँ कहाँ भटकते फिरते हैं, कैसे बनते हैं, और अपना काम अंजाम देकर फिर ये कहाँ विलीन हो जाते हैं। इनके भागने की स्पीड (गति) कितनी है, सीमा कितनी है ? और रंग बिरंगा रूप लेकर निरंतर भागते रहने का रहस्य क्या है ! कभी हम इन्हें भयंकर रूप से भागते देखते हैं तो कभी ऐसी मंद गति में निहारते हैं कि आकाश में पतंग तैर रहा हो। कभी इनकी सामूहिक शक्ति का भीषण घर्षण होता है तो कभी खण्ड-खण्ड हो निरर्थक वियद्विहार होता रहता है। कहीं निहाल कर देते हैं तो कहीं बेहाल बना जाते हैं। कहीं तरसाते हैं, तड़पाते हैं तो कहीं इस तरह फूट पड़ते हैं कि प्रलय मचा छोड़ते हैं। आख़िर ये इतनी ऊँचाई पर ही क्यों रहते हैं, नीचे क्यों नहीं आते ? और ऊँचे भी तो एक सीमा छोड़ कर नहीं जाते ? इन रहस्यों को समझने का कितनों ने प्रयास किया है ? कितनों को पता है कि बादलों से कभी तो बूँद बूँद ही पानी बरसता है, कभी मूसलधार, और कभी बारीक ओले, और कभी पत्थर, और शिलाएँ टूट पड़ती हैं, बिजली गिर पड़ती है। कुछ विशेषज्ञों को छोड़ जन साधारण में आज भी अज्ञान फैला हुआ है।

सुना है कि एशियाई आकाश पर परिभ्रमण करनेवाले इन बादलों के ज़ीवन गति-विधि का अभ्यास करनेवाली एक संस्था है। उसने नवीन प्रकार से कुछ जानकारी प्राप्त करने का प्रयास भी किया है। बादलों के सृजन, संचार, विकास—एवं विलय के विषय में जानकारी भी संग्रहीत की है। किन्तु सभी भूखण्डों पर संचार करने वाले बादलों के सभी स्वरूपों के समझने के लिए उनके वर्गीकरण की आवश्यकता है। आज हमारा संचार और संहार-साधन आकाश पर अधिक अवलंबन कर रहा है। इसलिए सभी भागों के भूखण्डों के बादलों का क्रम–विकास–विहार जान लेने की आवश्यकता है। शीत कटिबन्द पर संचार करने वाले बादलों का जितना रहस्य जाना गया है; उतना उष्ण कटिबन्द संचारी बादलों का नहीं हुआ है। हज़ारों, लाखों ग्रामीण जन भी बादलों की गति विधि के मर्मज्ञ होते हैं। विशाल आकाश में एक टुकड़े को तैरते देख कर पानी, हवा, आंधी का अंदाज़ लगाना जानते हैं। अनेक पशु-पक्षियों को आँधी-पानी का पता चल जाता है। अनेक चिन्हों से बिना बादल के पानी का पता चलाने का प्रयास किया जाता है। पुरातन शास्त्रों में भी बहुत से विधान हैं, वर्ष भर पहिले की निश्चित तिथि के हवा-मान-लक्षणों से आनेवाली वर्षाकाल की वर्षा-आँधी का अनुमान लगाया जा सकता है। वराहमिहिर के विश्वस्त, विधान, वर्ष प्रबोध, भदुडली शकुन के अनेक प्रयोगों की प्रामाणिकता प्रत्यक्ष होती है। ऐसे अनेक सिद्धान्त स्थिर हैं कि साल, या ६ मास पूर्व पूर्ण वर्षा का सही निर्णय समझा जा सके। पर सरकार हमारी होकर भी हमारे विधानों की अपेक्षा अभिनव विधानों पर अपार धन व्यय कर डालती है। काश, नवीन सुविधाओं का पुरातन विधानों से सामंजस्य साध्य कर प्रयास किया जाए तो हमारी अपनी विशेषता भी रहती, पर उसे अपने अनुभवों-आधारों के अनुसंधान की चिन्ता ही नहीं है। आज तीड़ और ओलों के कारण कितना खेती का नाश हो जाता है। सरकार लाखों की लागत से उससे बचने का प्रयत्न भी करती है। पर यदि वह यह जानती कि कई कई गांव के किसान तीड़ और ओलों को न जाने किस प्रयोग द्वारा क्षण भर में अपने खेतों को साफ़ बचा कर एक सीमा विशेष पर सहज उतार दिया करते हैं। सरकार यदि इस का पता लगाए, और जाँच-पड़ताल करे तो कितना विचित्र होगा।

सरकार का आधार वे वाप्र शास्त्री हैं, जो बादल हवा के रुख को परख कर यंत्रों के इशारे पर अनुमान के घोड़े दौड़ाया करते हैं, किन्तु इस देश के अनेक आचार्यों ने अनेक आश्चर्यजनक सिद्धान्त सैकड़ों वर्ष पूर्व स्थिर किए हैं। ग्रहों की गणना गति-विधि का उनके पीछे वैज्ञानिक आधार भी है। परन्तु उन निष्कर्षों को निरर्थक मान कर सरकार उपेक्षा किए हुए है। सरकार ने अपने देश के किस शास्त्र की सचाई समझने के लिए वैज्ञानिक अनुसंधान को आधार बनाया है! विदेशी विज्ञान के आयात पर आधार रख कर यदि अंधकार में भटकना पसंद किया गया हो, पर अपने शास्त्र, या सिद्धान्तों को समझने सोचने का भी हमारी सरकार को कहाँ समय है ?

—सूर्यनारायण व्यास

उज्जैन

प्रेमचन्द परम्परा का नया प्रयोग *

पश्चिमीय आलोचकों का एक सम्प्रदाय यह आशंका प्रगट करता रहे कि उपन्यासों के दिन लद गए, उसके कूच की घण्टी बज चुकी है, बुर्जवा वर्ग के उत्थान के साथ साथ यह उत्पन्न हुआ और उसके साथ ही अस्तोन्मुख हो रहा है पर भारत में, विशेषतः हिन्दी साहित्य में तो, यह अपने पूर्ण विकास पर है। ऐसा मालूम पड़ता है कि आज की चिन्ता-धारा अपनी अभिव्यक्ति के लिए उपन्यासों को ही उपयुक्त माध्यम समझ कर उसका आश्रय लेती है। यही कारण है कि राहुल जी को भी दर्शन के क्षेत्र को छोड़ कर उपन्यास में आना पड़ा और श्री सेठ गोविन्ददास को नाटकों को छोड़ कर उपन्यास को भी अपनाना पड़ा है। इधर दो तीन वर्ष में कुछ महत्वपूर्ण उपन्यास प्रकाशित हुए हैं जिनमें श्री सेठ जी की "इन्दुमती" का विशिष्ट स्थान है।

श्री सेठ गोविन्ददास के इन्दुमती नामक उपन्यास को मैंने बड़े ही ध्यानपूर्वक "ध्यानावस्थित तद्गतेन-मनसा" वाली मानसिक स्थिति में होकर पढ़ा, अथवा यों कहिए कि इस उपन्यास में तल्लीन और तद्गत कर लेने की कुछ ऐसी अपूर्व क्षमता थी कि वैसी मानसिक स्थिति को स्वयं उत्पन्न हो जाना पड़ा। कह लीजिए कि मैं आलोचक हूँ और इस नाते किसी आलोच्य पुस्तक पर विचार करते समय नीर-क्षीर-गुण-दोष विवेक करनेवाली बुद्धि पर शान दिए रहता हूँ, गुण को एक बार देखना भूल भी जाऊँ पर छिद्रान्वेषण नहीं भूलता। यह बात भी नहीं कि इन्दुमती में उपन्यास कला की दृष्टि से कोई त्रुटि ही न हो। पर इतना होने पर भी इस पुस्तक में कुछ ऐसा जादू है कि जो सिर पर चढ़ कर बोलता है। आलोचना अपनी शान चढी हुई तलवार लिए खड़ी ही रह जाती है और यह पुस्तक हमारे हृदय में के एक कोने में आदरणीय स्थान पा जाती है। मैं इसे लेखक की सफलता कहता हूँ।

कई दृष्टियों से इन्दुमती हिन्दी साहित्य का अद्वितीय उपन्यास है:—

(१) हिन्दी में यदि और कोई उपन्यास हो जिसकी कथा की लपेट में लाकर ज्ञान, विज्ञान, धर्मशास्त्र, नीति, समाज, शास्त्र अर्थशास्त्र (और क्या नहीं) के ऊपर ग्राह्य औरमधुर रूप से एक स्थान पर उपयोगी बातें एकत्रित कर-ली गई हों तो कम से कम मैंने नहीं देखा है। "कान्तासम्मिततयो उपदेशयुजे" का यह एक अभूतपूर्व उदाहरण है। आज के युग को आन्दोलित करनेवाली कोई विचार-धारा नहीं है जिसे इस उपन्यास ने अपना आश्रय नहीं दिया हो और उस पर कुछ न कुछ कह कर पाठक का ज्ञानोन्मलीन नहीं किया हो। चाहे जो हो एक बात तो अवश्य है। इन्दुमती को पढ़ने के पूर्व का पाठक और इसे पढ़ कर उठनेवाला पाठक एक नहीं होगा। पढ़ कर उठनेवाला पाठक कुछ अधिक समृद्ध होकर उठेगा, वह अपने को अधिक आढ्य, विद्याविनयसम्पन्न और ज्ञानगुणबलान्वित महसूस करेगा। आज जब अनेक उपन्यासों को देखता हूँ जो बड़ी बड़ी प्रतिज्ञाओं को लेकर सामने आते हैं पर उसके पढ़ने से ऐसा ही मालूम पड़ता है कि "मूण्डला माथ पर पानी परल ढलक गईल" अर्थात् छूरे से मूण्डे हुए माथे पर पानी पड़ा और वहाँ से सर को बिना भिगोये ही गिर पड़ा तो बरबस इस पुस्तक का महत्व स्मरण हो आता है।

(२) हिन्दी के साहित्यकों से लोगों की सब से अधिक शिकायत यह है कि दुनिया में ज्ञान और विज्ञान इतनी छिप्र गति से आगे बढ़ रहा है पर वे आज भी अचलायतन रूप में कुम्भकरणी नींद लिए हुए पड़े हैं। उन्हें चाहिए कि इस वृद्धिशाली, उर्ध्वगामी और प्रसरणशील भूमि को भी अपने भावों का आश्रय दें, उन्हें भावात्मक दृष्टि से देखें, उन्हें साहित्य में स्थान दें। यदि वह साहित्य में स्थान पायेगी, भावबल समन्वित होकर हमारे सामने आयेगी तभी वह सर्वसाधारण की सम्पति होगी और उसकी उपयोगिता और अनुपयोगिता पर ठीक से विचार होगा। नहीं तो विज्ञान की पुस्तकों में पड़ी रह कर समाज के एक विशिष्ट स्तर पर ही तैरती रहेगी, मानवता के केन्द्र में "पेहम" हो ही नहीं सकेगी और उससे लाभ क्या होगा। श्री गोविन्ददास जी ने ऐसे अनेक क्षेत्रों को अपने उपन्यास में लाने की कोशिश की है। उदाहरण के लिए कृत्रिम गर्भविधि

---

* सेठ गोविन्ददास के उपन्यास 'इन्दुमती' की विवेचना—सं०

(Artificial insemination,)की बात लीजिए। शायद यह प्रथम अवसर है कि किसी उपन्यासकार ने अपने उपन्यास में इस विषय को स्थान दिया है। हिन्दी कथा साहित्य के लिए यह संकेतमात्र है कि अनेक ऐसे क्षेत्र पड़े हैं जिन्हें हमें अपनाने की आवश्यकता है।

प्रेमचन्द जी ने भी अपने उपन्यासों में राष्ट्रीयता को स्थान दिया है। उनमें भी १९२० से ३३ के बीच में होने वाले आन्दोलनों की चर्चा है और स्पष्ट शब्दों में चर्चा नहीं थी तो इतना तो अवश्य है कि उपन्यास में घटनाएँ जिस रूप में घटती थीं उनमें आन्दोलनों की ही छाया थी। "इन्दुमती" में भी राष्ट्रीय आन्दोलनों की चर्चा है। पर जितनी सच्चाई और इतिहासानुवर्तिता से काम सेठजी ने लिया है वह प्रेमचन्द में नहीं है। सेठजी का आन्दोलनों से घनिष्ठतम और सक्रिय सम्पर्क रहा है। उन्होंने स्वयं इन आन्दोलनों का नेतृत्व किया है। वे अखिल भारतीय कांग्रेस की कार्यकारिणी के सदस्य रहे हैं और इस नाते राष्ट्रीय आन्दोलन से उनका जैसा प्रत्यक्ष परिचय था वैसा प्रेमचन्द जी क्या किसी अन्य हिन्दी साहित्यिक को नहीं है। यही कारण है कि कांग्रेस का सिलसिलेवार इतिहास जिस कौशल से इस उपन्यास के ताने बाने में बुना गया है वैसा अन्य कहीं देखने को नहीं मिलता। मैं जब बी. ए. का विद्यार्थी था तो यूरोपीय इतिहास के प्रोफ़ेसर की आदत थी कि वे फ्रान्स की राज्यक्रान्ति पर प्रश्न देते समय पूछते कि अमुक मार्च से लेकर अमुक अगस्त तक का इतिहास लिखो। यह भी भला कोई प्रश्न में प्रश्न है? सोचता हूँ यदि अब कोई मनचला प्रोफ़ेसर भारतीय आन्दोलनों पर कोई इसी तरह का प्रश्न करे तो विद्यार्थियों को "इन्दुमती" का नाम दे दूँ। १९१६ से लेकर १९४२ तक के राष्ट्रीय आन्दोलन का जैसा इतिहास इस पुस्तक में है वैसा कम देखने को मिलता है। कभी कभी तो मन में होता है कि "इन्दुमती" को ऐतिहासिक उपन्यास क्यों न कह दूँ हालांकि वह ऐतिहासिक नहीं है। वास्तव में यह तो चरित्रप्रधान उपन्यास है जिसमें एक पात्र को विभिन्न विभिन्न परिस्थितियों में ले जाकर उसे ठोक पीट कर देखने का उपक्रम होता हैं। पात्र चट्टान की तरह खड़ा है, घटनाएँ आती हैं और उस पर से बह कर निकल जाती हैं। एक क्षण मालूम भी होता है कि चट्टान हिली, घटनाओं ने पात्र में परिवर्तन कर दिया। पर कहाँ वह तो ऊपरी खरोंचमात्र था। पात्र की आन्तरिक मनोवृत्ति वही है जो प्रारम्भ में थी। इन्दुमती वही है, वह लाख झुकती सी मालूम पड़े पर अन्ततोगत्वा नारी है जिस पर अपने पिता के इस उपदेश का प्रभाव है कि "विश्व में निज का व्यक्तित्व ही सब कुछ है। जो अपने को केन्द्र मान कर सब कुछ अपने लिए करता है, संसार की समस्त वस्तुओं को अपने आनन्द के लिए स्वर्ग मानता है, उसी का जीवन सफल और सुखी होता है।" यह उपन्यास का प्रथम वाक्य है। देख कर आश्चर्य होता है उस कौशल पर जिसने इतने वैचित्र्यपूर्ण भारी भरकम उपन्यास को इसी केन्द्रभूमि के चारों ओर चक्कर काटते हुए रहने के लिए बाध्य किया है। इस उपन्यास का अंतिम वाक्य है "ठीक तो है विश्व में निज का व्यक्तित्व ही सब कुछ है" ठीक प्रारम्भ का "व्यक्तित्व" जहाँ अपने में ही सारे विश्व को निहित कर लेना चाहता था वहाँ अन्त का "व्यक्तित्व" स्वयं फैल कर विश्व में मिल जाना चाहता है। यह एक महान् परिवर्तन है और कदाचित् सारे उपन्यास का व्यंग्य भी यही है। पर यहाँ आकर उपन्यास समाप्त हो जाता है। यदि श्री गोविन्ददास जी चाहें तो यहाँ से एक दूसरे उपन्यास का प्रारम्भ कर सकते हैं जिसमें इस परिमार्जित, परिवर्तित जीवन के सच्चे दृष्टिकोण से देखनेवाली इन्दुमती का जीवन प्रारंभ होता है। अब तक तो उसे सुख और शान्ति नहीं मिल सकी पर अब वह अवश्य प्राप्त करने में समर्थ हो सकेगी। हिलोरें पछाड़ खाती ही रह जाती हैं पर उन्हें किनारा नहीं मिलता। पर "बुदबुद विलीन हो चुपके पा जाता आशय सारा।" इन्दुमती अब तक हिलोर बन कर रही, कुछ न पा सकी पर बुदबुद बन कर तो देखे, हमारा विश्वास है उसे जीवन की सिद्धि अवश्य प्राप्त हो सकेगी।

यह प्रस्ताव उपस्थित करते समय हमारे सामने डास्टावस्की के उपन्यासों के उदाहरण नाच रहे हैं। इस सम्बन्ध में दो मत हो ही नहीं सकते कि संसार के इतिहास में इस तरह की औपन्यासिक प्रतिभा अभी तक देखने को नहीं आई। अतः आज के कथाकार को डास्टावस्की के प्रयोगों से लाभ उठाना और यथोचित परिवर्तन के साथ अपने कथा साहित्य का आधार बनाना लाभप्रद ही होगा। उसके कुछ उपन्यासों को सूक्ष्मता-

पूर्वक अध्ययन करने से पता चलता है कि एक उपन्यास जिस परिस्थिति में समाप्त हो जाता है, उपन्यास की समाप्ति तक आते आते पात्र की जो मानसिक अवस्था रहती है वहीं से, उसी परिस्थिति और मानसिक अवस्था के सूत्र को पकड़ कर दूसरे उपन्यास की कथा प्रारम्भ होती है। 'क्राइम अन्ड पनिस्मेन्ट' का स्वाभाविक विकास 'इडियट' की नींव पर ही, कम से कम उसी के वातावरण को लेकर 'एटरनल हसबन्ड' का निर्माण हुआ है। 'क्राइम अन्ड पनिस्मेन्ट' में एक क्रूर कर्मा पापी की कथा कही गई है। उसका नाम 'रास्कोलोनिकोव्ह' है। कथा के अन्त में हम उसे साइबेरिया के जेलखाने में पाते हैं और जब हम पुस्तक बन्द कर देते हैं तो उसमें महान् परिवर्तन हो चुका होता है। पश्चात्ताप की अग्नि में जल कर उसके पाप भस्म हो गए हैं, उसका मानस पवित्र हो गया है, और पुराने ध्वंसावशेष पर एक शुद्ध व्यक्तित्व उग आया है। उसे एक नया जीवन प्राप्त हो जाता है और वह बहुमूल्य जीवन ऐसा नहीं जो यों ही व्यर्थ गँवा दिया जाय। नहीं, वह एक दिव्य जीवन है, अनेक दिव्य सम्भावनाओं और सिद्धियों से पूर्ण और फलतः अनेक संकटमय परिस्थितियों तथा उनका सामना करनेवाले वीरोचित कर्मों से भरा हुआ। दास्तावस्की इस बात को महसूस करता है और कहता है—यह एक नई कथा का विषय हो सकता है परन्तु हमारी प्रस्तुत कथा समाप्त हो जाती है। ("That might be a subject of a new story but our present story is ended.")

'दी इडियट' के प्रारम्भ में हम इसके प्रधान पात्र 'प्रिन्स' को इसी 'फ्रेम आफ माइण्ड' में पाते हैं। मानो अनेक योनियों में भ्रमण करता हुआ 'रोस्कोलोनिकोव्ह' ही 'प्रिन्स' के रूप में अवतरित हुआ है। इसी तरह 'इडियट' के अन्त में हम देखते हैं कि 'प्रिन्स' के प्रतिद्वन्द्वी 'रोगोजीन' ने 'नेटसे' की हत्या कर दी है। इस प्रेमिका के शव के सामने दोनों प्रतिद्वन्द्वी रात भर बैठ कर उस मृत शरीर को अपने आँसुओं से तर करते रहते हैं। उसमें कहीं भी ईर्ष्या या द्वेष के भाव नहीं है; प्रत्युत एक शोक से विकृत हो जाता है तो दूसरा उसे प्यार या सान्त्वना के शब्दों में ढाढ़स बँधाता है। 'एटरनल हसबन्ड' उपन्यास का आधार भी करीब करीब यही वातावरण है। सेठजी के आगे के उपन्यासों में यदि 'रीजनरेटेड इन्दुमती' की चर्चा हो तो यह स्वाभाविक बात होगी। नहीं, हम तो आगे बढ़ कर यह भी कहना चाहते हैं कि जिस रूप में इस उपन्यास की उठान हुई है और जिस तरह की स्पिरिट पूरे उपन्यास में छाई हुई है उसे देख कर यह एक तरह से आवश्यक भी हो जाता है। हिन्दी में इस तरह का एक और प्रयोग हमें कुछ वर्ष पूर्व गुरुदत्त जी के उपन्यास में मिला था। उनके प्रथम उपन्यास "स्वाधीनता के पथ पर" के ही एक पात्र की अन्तिम कथा को लेकर "पथिक" नामक उपन्यास लिखा गया था। "टेढ़ेमेढ़े रास्ते" (भगवतीचरण वर्मा) और "सीधे साधे रास्ते" (रांगेय राघव) भी इसी तरह के प्रयोग की श्रेणी में आयेंगे यद्यपि ये दोनों उपन्यास दो भिन्न लेखकों की रचनाएँ हैं। जैनेन्द्र जी ने त्यागपत्र देकर संन्यासी हो जानेवाले 'जज साहब' को 'अनाम स्वामी' के रूप में पुनः एक बार पाठकों के सामने लाकर उनके तपोपूत जीवन की झाँकी दिखलाने का प्रयत्न किया है।

हाँ यह अवश्य है कि इन्दुमती एक प्रयोगवादी उपन्यास नहीं है। इसमें आधुनिक उपन्यास-क्षेत्र में लाये गये कुछ नूतन टेकनीक का प्रयोग नहीं किया गया है। यह एक परम्परा पालक (Traditional) उपन्यास है जिसमें उपन्यास कथात्मक प्रवृति से ही रूप ग्रहण करता है। इन्दुमती की रूप रेखा, वाह्य आकार-प्रकार वही है जो प्रेमचन्द जी के उपन्यासों का है और आज की नई पद्धतियों पर लुब्ध कुछ पाठक वर्ग को यही खटकनेवाली बात लगे पर कोई भी तत्वप्रेमी पाठक प्रयोगवादिता अथवा परम्परा पालकता की कसौटी पर सस्ते ढंग से किसी पुस्तक पर फतवा नहीं दे डालेगा। वह वास्तविक तथ्य ही देखेगा। हमें तो ऐसा लगता है कि नूतन टेकनीकों के सहारे चलने वाले साहित्यक के हृदय में कहीं न कहीं चोरी रहती है। वह अपने साथ छल करता है। वह टकसाल से ताजी चमचमाती खोटी चव्वनी को दिखाकर लोगों को मुग्ध कर देता है, वह गरमागरम तेल की पकौड़ी देकर लोगों का ध्यान घी की कचौड़ियों की ओर से हटा लेता है। आजकल हिन्दी में ही नहीं युरोपीय साहित्य में भी यह प्रवंचक प्रवृति, अपने को तथा साथ में पाठकों को छलने की प्रवृति जोरों से काम कर रही है। मेरे हृदय में आन्तरिक प्रेरणा से उत्थित नूतन टेकनीकों के प्रति आस्था के भाव तो हैं ही पर उससे भी अधिक आदर के भाव उन परम्परावादी

साहित्यकों के लिए हैं जो परम्परा प्राप्त साधनों से नई परिस्थितियों और नई समस्याओं का सामना करते हैं। इसमें अधिक कौशल, अधिक प्रतिभा और अधिक श्रम की आवश्यकता पड़ती है। वैदिक धर्म जो अपने मूल स्वरूप की रक्षा करते हुए भी नये युग के साथ चलते रहने के लिए अपने को समर्थ बना लेता है उसके प्रति मैं क्रान्ति का नाम लेकर उठ खड़े होनेवाले असहिष्णु वादों से अधिक आस्थावान हूं। यही बात मैं इन्दुमती में पाता हूँ। आपको चेतना प्रवाह (Stream of consciousness) की बात प्रिय है तो भी आपको निराश नहीं होना पड़ेगा, आप शिशु मनोविज्ञान देखना चाहेंगे तो भी वह मयंक के चित्रण में देख लीजिए, यदि आप चाहते हैं कि मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मता और प्रेम की छानबीन हो तो वह भी देख लीजिए। इन्दुमती ललित से प्रेम करती है, त्रिलोकी से प्रेम करती है, वजीरअली से प्रेम करती है, वीरभद्र से प्रेम करती है और इन प्रेमों में कहाँ सूक्ष्म अन्तर है वह लेखक के मुँह से स्वयं सुन लीजिए। आप जो चाहते हैं सब बातें आपको इन्दुमती में मिलेंगी। आप फ्रायडियन मनोविज्ञान के प्रेमी हों वह भी देख लीजिए। इन्दुमती अपने पिता अवधबिहारी से अधिक प्रभावित है पर माता सुलक्षणा से नहीं। लोगों की धारणा हो चली थी कि प्रेमचन्द के कथामार्ग से प्रवाहित होनेवाली उपन्यास पद्धति की सम्भावनाएँ समाप्त हो गईं, अब उस मार्ग पर चल कर क्या कोई उन्नति कर सकेगा। अब कुछ कहना है तो नया ढंग पकड़ना होगा। इस मनोवृत्ति के लिए इन्दुमती चैलेन्ज है। अभी भी इस पद्धति में विकास होना सम्भव है और उसकी ओर से बहुत कुछ कहा जा सकता है।

जोधपुर

—देवराज उपाध्याय
एम. ए.

चावल और रुपया

दिवाली का पर्व और लक्ष्मीपूजन का दिन था। सेठजी ने देवालय में रुपयों का ढेर जमा कर रखा। उनकी पूजा हुई। गंधाक्षत पुष्प से उनका सम्मान किया गया। रुपए गर्व से फूल उठे और उनकी ढेरी बिखर गई।

सामने बिखरे हुए चावलों की ओर देख कर एक रुपया मन ही मन कहने लगा—"ये तुच्छ चावल, पैरों तले कुचलने योग्य ही हैं। इससे अधिक इनका मूल्य नहीं!" यह सुन चावल ने नम्रतापूर्वक पूछा—"ऐसा कौन कहता है? संसार में मनुष्य हमारे ही बल पर तो जीता है!"

"हाँ, क्यों नहीं! संसार को जिलाने वाले तुम्हीं तो हो.! लेकिन अगर तुम्हारे कारण मनुष्य जीवित रहता तो वह घर घर भीख माँगता क्यों दिखाई देता? तुम अपने पैदा करनेवाले किसान को ही देखो! और चौबीसों घण्टे मेरी उपासना करनेवाले साहूकार पर ही दृष्टि डालो! सारा संसार पैसे के ही लिए झगड़ता है।"

लेकिन चावल की बात का कोई प्रभाव नहीं पड़ा और वह बेचारा चुप हो गया।

दिन बीते, महिने बीते और नवीन वर्ष का आरम्भ हुआ, परन्तु वर्षा के चिन्ह नहीं दीख पड़े। लोग कहने लगे इस वर्ष अकाल पड़ेगा। खेत मुँह फाड़े आकाश की ओर ताकने लगे। अन्न महँगा हो चला और चावल का भाव क्रमशः बढ़ चला। गाँव छोड़ कर के लोग शहरों में आने लगे। चारों ओर भूख के मारे मरनेवालों के ढेर दिखाई देने लगे। त्राहि त्राहि होने लगी।

साहूकार दानधर्म करने लगा। किसी भिखारी के द्वार पर आने पर उसे रुपया दिया जाने लगा। जीवनदाता होने की भावना के साथ रुपया सेठजी के हाथ से भिखारी के हाथ में जाने लगा।

एक भिखारी ने रुपया हाथ में लेकर क्षणभर उसे देखा और तिरस्कारपूर्वक उसे सेठजी पर फेंक दिया। खन्न् की ध्वनि साथ वह संतप्त होकर सीधा गटर में जा गिरा।

उधर भिखारी ने सेठजी को सम्बोधन करते हुए कहा—"सेठ फेंक दो इन रुपयों को गटर में! क्या रुपए को पेट में भरना है? यदि धर्म करना है तो मुठ्ठी भर चावल दीजिए!

—शिर्के

हिन्दी में सन्त साहित्य का अध्ययन

हिन्दी में सन्त साहित्य की ओर शोधक दृष्टि डालने की परम्परा स्व. डा. बड़थ्वाल ने प्रारम्भ की। उनकी "Nirgun school of Hindi poetry" डी. लिट्. के प्रबन्ध का विषय था। हिन्दी के वे प्रथम डाक्टर थे जिनके प्रबन्ध की मौलिकता और शोध की पाश्चात्य विद्वानों तक ने मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की थी। श्री क्षितिमोहन सेन की सन्त-साहित्य-साधना सर्व-विश्रुत है। इस दिशा में उनका ज्ञान-योग समादर की वस्तु है। डा. हजारीप्रसाद द्विवेदी के हृदय में भी यही साधना प्रतिफलित हुई है। पर डा. बड़थ्वाल ने सन्त-साहित्य के अध्ययन में जिस सामान्य धारा को खोजने का उपक्रम किया था उसकी परिणति परशुराम चतुर्वेदी में दीख रही है। 'उत्तर भारत की सन्त परम्परा', 'सन्तकाव्य', 'मध्यकालीन प्रेम-साधना' आदि कृतियों में उनकी उसी 'परमतत्व' की खोज जारी है। वे मानों अनुभव करते हैं-'जहँ देखौं तहँ एक ही साहब का दरबार।' इन महानुभावों के अतिरिक्त और भी सन्त-साहित्य के प्रेमी हैं जिनके हृदय में सन्तों का भाव-रस अहर्निश झरता रहता है। ऐसे अप्रकट साधकों में विहार के श्री भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव' का नाम उल्लेखनीय है। उनकी 'मीराँ की काव्य-साधना' और 'सन्त-साहित्य' में यद्यपि शोध के विशेष तत्व नहीं हैं तो भी भावुक हृदय की वह विभोरता अवश्य है जो 'सन्तों' के मर्म तक पहुँच कर उनकी अनुभूति को अपनी बनाने के लिए आतुर रहती है।

प्रश्न यह है कि 'सन्त' शब्द किसके लिए व्यवहृत होना चाहिए? क्या समस्त आस्तिक (भगवान के आराधक) सन्त कहलाते हैं या सन्त कहला सकते हैं? दूसरे शब्दों में क्या 'चित्रकूट के घाट पर भीर' लगानेवाले 'सन्त' हैं या 'दिल के आइने में है तसवीरे यार' देखनेवाले दोनों ही? जनसाधारण तो जिन्होंने 'उसके' मार्ग पर चलने का व्रत ले लिया है उन सब को 'सन्त' शब्द से अभिहित करता है—चाहे वे 'राम' के दरबार में जा रहे हों, चाहे वे 'ब्रह्म' को अपने में ही खोज रहे हों। 'सन्त' शब्द का प्रयोग पहले व्यापक अर्थ में किया जाता था। क्योंकि इस शब्द को 'पाली भाषा' के उस 'शान्त' शब्द से निकला हुआ मान सकते हैं जिसका अर्थ निवृत्ति मार्गी या विरागी होता है अथवा यह उस 'सत्' शब्द का बहुवचन हो सकता है जिसका प्रयोग हिन्दी में एकवचन जैसा होता है और जिसका अभिप्राय 'एकमात्र सत्य में विश्वास करनेवाला' अथवा 'उसका पूर्णतः अनुभव करनेवाला व्यक्ति' समझा जाता है। (बड़थ्वाल) परशुराम जी ने इस शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में और भी खोज की है, उन्होंने ऋग्वेद में भी 'सन्त' शब्द खोज निकाला है—"सुवर्णं विप्राः कवयोर्वचोभिरेकं सन्तं बहुधा कथयन्ति!" डा० हीरालाल जैन द्वारा सम्पादित 'पाहुड़ दोहा' में भी 'सन्त' शब्द प्रयुक्त है (सन्त णिरंजनु सोजि सिउ) कबीर तुलसी आदि कवियों ने भी इसका प्रयोग किया है। अतः 'सन्त' शब्द इस विचार से उस व्यक्ति की ओर संकेत करता है जिसने सत् रूपी परमतत्त्व का अनुभव कर लिया हो और जो इस प्रकार अपने व्यक्तित्व से ऊपर उठ कर उसके साथ तद्रूप हो गया हो। ऐसी दशा में उन सगुणवादियों को 'सन्तों' की श्रेणी से क्यों निष्कासित कर दिया गया है जिन्होंने अपने व्यक्तित्व से ऊपर उठ कर उस परमतत्व का अनुभव किया है?" निर्गुणियों को 'सन्त' और सगुणियों को 'भक्त' कहने की परिपाटी कदाचित आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने चला दी है, जिसका अनुसरण उनके परावर्ती लेखक बराबर करते आ रहे हैं। यों सन्तों में अद्वैती, भेदाभेदी और विशिष्टाद्वैती–तीनों दार्शनिक मत के व्यक्ति दिखलाई पड़ते हैं। तुलसीदास के समान सभी सन्तों ने—

> "वाक्यज्ञान बिनु...भव पार न पावै कोई
> ज्यों गृहमध्य दीप की बातन तम निवृत्त नहिं होई।"

कहा है।

इसीलिए 'सन्त' सिद्धान्त-वाक्यों की चर्चा मात्र में विश्वास नहीं करते, वे उसे अनुभव में उतार कर ही सन्तुष्ट हुए हैं। सत् रूपी परमतत्त्व को अनुभव करने वालों में व्यापक दृष्टि रखनेवाले कुछ साधक और

सम्प्रदाय ऐसे हैं जिनकी चर्चा 'सन्त-परम्परा' का विवेचन करनेवाले ग्रन्थों में होनी चाहिए। उदाहरणार्थ– दक्षिण के जहाँ वारकरियों-नामदेव, ज्ञानदेव आदि को जो पंढरपुर के विट्ठल मंदिर में प्रतिष्ठित 'विठोबा' की आराधना करते हैं और 'परम सत्य' की व्यापकता भी अनुभव करते हैं, 'सन्त-परम्परा' में स्थान दिया गया है, वहाँ दक्षिण में विदर्भ-गुजरात में पनपनेवाले महानुभाव पंथ के सन्तों का कहीं उल्लेख नहीं है। न बड़थ्वाल के ग्रन्थ में और न परशुरामजी के 'उत्तरी भारत की सन्त-परम्परा' में ही इनकी चर्चा है। यद्यपि महानुभाव पन्थी उत्तर में काबुल तक फैले हुए थे, यद्यपि ये 'कृष्ण' की चर्चा करते हैं तो भी अपने को हिन्दू या किसी विशिष्ट जाति में परिगणित नहीं करते। यही कारण है कि मुसल्मानी शासन काल में इन पर 'जज़िया' कर नहीं लगाया जाता था। महानुभाव पंथियों में कुछ सन्त ऐसे भी हैं, जिनकी हिन्दी में भी 'वाणी' मिलती है।

इसी प्रकार गुजरात में प्रचलित स्वामी नारायण सम्प्रदाय * के सन्तों का भी उल्लेख हमारे यहाँ नहीं मिलता। इस पन्थ का मुख्य स्थान बड़ौदा में है। गुजरात, काठियावाड़ आदि स्थानों में इनके मठ पाये जाते हैं। इस मत की विशेषता यह है कि इसमें मठधारी होने पर भी अपने व्यवसाय का परित्याग नहीं किया जाता। उदाहरणार्थ-यदि कोई मोची मठ में चला जाता है तो वह वहाँ भी सन्तों की 'पनही' बनाता है। ये 'विष्णु' के उपासक हैं। मठाधीश ब्रह्मचारी होता है।

इस तरह हम देखते हैं सन्तों और अनेक भक्तों में जिनकी 'कथनी-करनी' में तादात्म्य है, विभाजन रेखा खींचना कठिन है। अतः पूर्व मान्यताओं का ही परशुराम जी ने अपने 'उत्तरी भारत की सन्तपरम्परा' में सम्मान किया है। उन्होंने अपने वक्तव्य में लिखा है—"सन्त परम्परा के अन्तर्गत सम्मिलित किए जानेवाले सन्तों का चुनाव करते समय सबसे अधिक ध्यान स्वभावतः उन लोगों की ओर ही दिया गया है जिन्होंने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष ढंग से कबीर साहब अथवा उनके किसी अनुयायी को अपना पथ-प्रदर्शक माना था अथवा जिन्होंने उनके द्वारा स्वीकृत सिद्धान्तों और साधनाओं को किसी न किसी रूप में अपनाया था।" फिर भी उन्हें इस ग्रन्थ में कुछ ऐसे लोगों को भी स्थान देना पड़ गया है जो सूफ़ियों, सगुणोपासकों, नाथ पन्थियों और अन्य ऐसे सम्प्रदायों के साथ सम्बद्ध रहते हुए भी सन्त-परम्परा में गिने जाते आए हैं और जो अपने सन्त-मतानुकूल सिद्धान्तोंवाली रचनाओं के आधार पर भी उक्त सन्तों के अत्यन्त निकटवर्ती समझे जा सकते हैं। इसीलिए "अल्ला-ईश्वर" को एक माननेवाले महात्मा-गान्धी भी इस ग्रन्थ की सन्त-पंक्ति में विराजमान हैं। हिन्दी में अन्य सन्तों की भाँति उन्होंने कोई 'बानी' नहीं लिखी। हाँ, उनका साधनामय जीवन सन्तों की श्रेणी में निस्सन्देह आ जाता है। अत एव लेखक को 'सन्तों' के चुनाव में 'समझौता' करना पड़ा है। लगभग साढ़े सात सौ पृष्ठ का विशाल ग्रन्थ सात अध्यायों में विभाजित है। इसके मुख्य दो भाग हैं। पहले में कबीर के पूर्वकालीन सन्तों पर विहंगम दृष्टि है और दूसरे में कबीर से ले कर महात्मा गान्धी तक के सन्तों की जीवनी और उनके सिद्धान्तों की चर्चा है। कबीर साहब ही इस ग्रन्थ की नींव हैं। उन्हीं पर इस ग्रन्थ का 'प्रासाद' खड़ा है। अत एव कबीर के जीवन और उनके सिद्धान्तों पर विद्वान् लेखक ने पर्याप्त अनुशीलन, चिन्तन, और विवेचन किया है। कबीर पर आज तक जितनी खोज हो चुकी है उसका पूरा आकलन और अपना निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है। फिर भी उन्हें यह मानना ही पड़ा है कि "कबीर साहब का जीवन-काल पूर्ण रूप से निर्धारित करने के लिए अभी तक यथेष्ट सामग्री उपलब्ध नहीं है और इसी कारण इस विषय में हम अन्तिम निर्णय असंदिग्ध रूप से देने में असमर्थ ही कहे जा सकते हैं।" कबीर के सम सामयिक सन्त स्वामी रामानन्द (इन्हें कबीर का गुरु कहा जाता है) सेन नाई, पीपा जी, रविदास, रैदास, कमाल, धन्ना भगत आदि का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। इसके बाद कबीर मत की विभिन्न शाखाओं का भी वर्णन किया गया है। नानक पन्थ, लाल-पन्थ, दादू पन्थ, निरंजनी सम्प्रदाय, बावरी पन्थ, बाबालाली सम्प्रदाय, धामी सम्प्रदाय, सत्तनामी सम्प्रदाय, धरनीश्वरी सम्प्रदाय, दरियादासी सम्प्रदाय, चरणदासी सम्प्रदाय, ग़रीब पन्थ, मानव पन्थ, रामसनेही सम्प्रदाय, साहिब पन्थ, नांगी सम्प्रदाय,

---

* इसका पता मुझे सन्यासी स्वामी जनार्दन स्वामी ने दिया है—ले०

राधास्वामी सत्संग आदि पन्थों और सम्प्रदायों की चर्चा का इसमें समावेश है। सन्तों की बानी के साथ भाव विभोरता स्थापित करने पर भी लेखक की शैली में भावुकता बिलकुल नहीं है, प्रौढ़ तर्क और वैज्ञानिक अन्वेषण का चातुर्य है। यह सच है कि कबीर के समान सभी सन्तों का ऊहापोहात्मक विवेचन नहीं हो पाया है पर इसके लिए इसी कोटि की कई जिल्दों' की आवश्यकता है। लेखक ने इस कमी को अपने दूसरे ग्रन्थ 'सन्तकाव्य' में पूरी करने का प्रयत्न किया है पर इसे 'प्रयत्न' ही कहना चाहिए। हाँ, इस ग्रन्थ की १२९ पृष्ठ की भूमिका अवश्य उपयोगी है जिसमें सन्त साहित्य की संक्षिप्त रूप-रेखा के साथ सन्त काव्य (यद्यपि सन्तों ने कभी अपनी 'बानियों' में काव्य-रचना का विशेष ध्यान नहीं रखा) का सौन्दर्य रस, अलंकार, छंद, भाषा संगीत आदि की दृष्टि से उद्घाटित किया गया है। इस तरह काव्य शास्त्र की दृष्टि से 'सन्त' साहित्य का मूल्यांकन किया गया है। संवत् १२०० से संवत् १९६३ तक होनेवाले सन्तों का जयदेव से लेकर रामतीर्थ तक का सामान्य परिचय उनकी चुनी हुई रचनाओं सहित दे दिया गया है। इस तरह जनता में सन्त साहित्य के प्रति अभिरुचि जागृत करने के लिए यह उपक्रम प्रतीत होता है। परिशिष्ट में कुण्डलिनी, गगन, चन्द्र, निरति, सुरति आदि शब्दों पर अत्यन्त संक्षिप्त टिप्पणियाँ दे देने से संत की पारिभाषिक शब्दावली से पाठक परिचित हो जाता है। सन्तों के अध्ययन में एक और कड़ी जोड़नेवाली कृति श्री परशुराम जी की 'मध्यकालीन प्रेम साधना' है। 'प्रेमसाधना' का सम्बन्ध 'प्रेमलक्षणा' भक्ति से है। इस प्रकार के निबन्धों में मध्यकाल के सन्तों और भक्तों ने प्रेम द्वारा अपने आराध्य की जिस तन्मयता से उपासना की है, उसका सहृदयतापूर्ण विवेचन किया गया है। तामिल प्रान्त के आड़वार भक्त, बंगाल के सहजिया सम्प्रदाय, बाउल सम्प्रदाय के अतिरिक्त मीराँ, जायसी, हितहरिवंश, नन्ददास और रसखान के हृदय की प्रेमसंकुल मनोहर झाँकी भी आपको मिलेगी। हिन्दी में इस तरह सन्त-साहित्य का गम्भीर विवेचन श्री परशुराम की उपर्युक्त कृतियों में मिल जाता है। विद्वान् लेखक ने सन्तों की वाणियों के संकलन में भी काफ़ी श्रम उठाया है। प्रकाशित-अप्रकाशित ग्रन्थों के तुलनात्मक अध्ययन से उन्होंने ठीक 'पाठ' निर्धारित करने का यत्न किया है। मीराँबाई की पदावली में उनकी सम्पादन-पटुता का परिचय मिल जाता है। इसकी खोज पूर्ण भूमिका से 'मीराँ' के अन्धकारमय जीवन पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है और कई भ्रान्तियों का निराकरण होता है। इसीका आधार लेकर श्रीमती 'शबनम' ने 'मीराँ' पर एक विवेचनात्मक पुस्तक भी लिखी है।

हमारा विश्वास है, वर्त्तमान लेखकों में सन्त साहित्य को अपनी साधना का एकमात्र लक्ष्य बनानेवालों में श्री परशुराम जी का स्थान अग्रणी है। उनके ग्रन्थ सन्त साहित्य के अध्ययन करनेवालों के लिए 'सन्दर्भ ग्रन्थ' सिद्ध होंगे। 'उत्तरी भारत की सन्तपरम्परा' का प्रकाशन हिन्दी साहित्य की ऐतिहासिक घटना कही जा सकती है।

नागपुर

—विनयमोहन शर्मा

कई बार प्रेम-पत्र बमशैल जैसे होते हैं। यह प्रायः कहा जाता है कि हमें किसी भी पत्र में कोई ऐसी बात नहीं लिखनीं चाहिए जिसे कोर्ट में सबके सम्मुख न पढ़ा जा सके।

—श्रीमती एमी वैण्डरबिल्ट

बच्चों के प्रेम से मानसिक लाभ

हज़रत ईसा ने कहा था कि बच्चों को मेरे पास आने दो; उन्हें रोको मत, क्योंकि स्वर्ग का राज्य उन्हीं का है। जो व्यक्ति बच्चों को जितना अधिक प्यार करता है वह उतना ही अधिक दैविक आनन्द का उपभोग करता है। मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से बच्चों का साथ जितना लाभदायक है उतना दूसरा कोई भी साधन नहीं है। जिन लोगों को बच्चे खेलने खिलाने के लिए नहीं मिलते वे बहुत ही दुःखी रहते हैं। ऐसे लोगों को किसी न किसी प्रकार का कल्पित अथवा वास्तविक रोग हो जाता है। जितना समय वे बच्चों की सेवा में व्यतीत करते उतना समय उन्हें अपने रोग के विषय में ही चिन्ता करने में व्यतीत करना पड़ता है।

मेरे पास विश्वविद्यालय में पढ़नेवाला बी. ए. कक्षा का एक २० वर्ष की आयु का छात्र आता है। उसने मनोविज्ञान अपनी परीक्षा के लिए एक विषय लिया है। वह मेरी खोज में पहले से ही था। जब कोई भी नवयुवक मेरे पास आता है तब मैं उसके विषय में किसी मानसिक दुःख की कल्पना करता हूँ। अधिकतर ऐसे ही नवयुवक मेरे पास आते हैं जिन्हें कोई मानसिक व्याधि रहती है अथवा जो अपने जीवनसम्बन्धी समस्या का हल चाहते हैं। इस नवयुवक के विषय में ऐसी कोई बात नहीं थी। इस नवयुवक ने मनोविज्ञान शाला की कुछ बैठकों में भाग लिया। पीछे वह बार बार आने लगा। उसके साथ मेरी छोटी बच्ची शशि सदा खेलती रहती है। उसे बच्ची से इतना प्रेम हो गया है कि अब वह उसके लिए ही मेरे घर पर आता है। वह बच्ची को अनेक प्रकार की खाने की वस्तुएँ अथवा गुब्बारा भी लाता है इससे उस विद्यार्थी का जीवन स्वस्थ और आनन्दमय हो गया है।

आज से दो वर्ष पूर्व एक वयोवृद्ध व्यक्ति जिन्होंने अपने वैद्यक के कार्य में पर्याप्त धन कमाया था मानसिक व्याधि से पीड़ित होकर मनोविज्ञान शाला में सलाह लेने के लिए आए। उनकी आयु ६५ वर्ष की थी। परन्तु जीवन की निम्न कोटि की वासनाएँ उन्हें तंग करती थीं। इनके दबाने के प्रयत्न से उनके जीवन में भारी असंतोष और अशान्ति फैल गई थी। इनके जीवन का मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया गया। उसमें प्रेम की कमी पाई गई। जब मनुष्य के जीवन में प्रेम की कमी होता है तब कामवासना प्रबल हो जाती है। किसी प्रकार के प्रेम के प्रकाशन से कामवासना की शक्ति का शोध होता है। इस प्रकार परिवार का प्रेम, बच्चों से प्रेम, और मानव जाति मात्र से प्रेम के रूप में कामवासना की शक्ति का सदुपयोग होता है। अत एव इनके उपकारार्थ रोगियों की निःशुल्क चिकित्सा और बच्चों को पढ़ाना लिखाना और उन्हें मिठाई बाँटने का काम बताया गया। इस प्रकार की सेवा से उन्हें अपूर्व लाभ हुआ।"

कुछ दिन बाद उनसे मिलने पर उन्होंने बच्चों के पढ़ाने से मानसिक लाभ का वर्णन किया। उनका कथन था कि 'बच्चों को पढ़ाने के लिए मुझे बच्चे के मन को समझना पड़ा। विशेष कर बालक हठ क्यों करते हैं और उनकी हठ को कैसे हटाया जा सकता है यह बात उनकी शिक्षा से समझ में आई। परन्तु बाल मन को इस प्रकार समझने की चेष्टा से स्वयं मुझे अपने बालमन का स्वभाव ज्ञात हो गया और फिर मैं उसे उसकी हठ से हटाने में समर्थ हुआ। इस प्रकार मेरे निराशावादी विचारों का अन्त हो गया।

जिस प्रकार उक्त वैद्य को बच्चों के प्रेम से विषाद रोग से मुक्त होने में सहायता मिली, इसी प्रकार मेरे एक और वैद्य मित्र को अपने पेट के रोग से मुक्त होने में बच्चों को खिलाने और उनके साथ खेलने से लाभ हुआ। जो मनुष्य हर समय प्रौढ़ बना रहता है वह कब्र में जाने की तैयारी करते रहता है। मनुष्य जिस प्रकार के लोगों में रहता है उसी प्रकार का वह बन जाता है। पूरे मन से बच्चों के साथ खेलने से मनुष्य दीर्घजीवी हो जाता है। उसमें बच्चो की सरलता आ जाती है।

मन विभाजित अवस्था में बच्चों को प्यार नहीं कर पाता, हृदय के रोग से पीड़ित व्यक्ति बच्चों को गोदी में लेना नहीं चाहने। जिन लोगों को अपनी स्त्री से प्रेम नहीं होता, उन्हें अपने बच्चों से भी प्रेम नहीं होता। ऐसे व्यक्ति बच्चों की उत्पत्ति भार रूप

मानते हैं। कभी कभी ऐसे लोग बच्चों के बिगड़ जाने के भय से चिन्तित रहते हैं। अत एव वे उनकी अनेक प्रकार की नैतिक शिक्षा की ही योजना बनाते रहते हैं। बच्चों के सुधार के विषय में अत्यधिक चिन्तित रहना उन्हें बिगाड़ने का अचूक मार्ग है।

जिन लोगों को अपने बचपन में ताड़ना मिली है वे बच्चों को ताड़ना देने के अनेक कारण खोज लेते हैं। ऐसे लोगों में अपने भीतर हीनता का भाव रहता है। वे इस हीनता के भाव को बच्चों में भी उन्हें अनेक प्रकार की शिक्षा देकर उत्पन्न कर देते हैं। बच्चों की उन्नति उनसे स्नेह करने और सहानुभूति से होती है, उनके प्रति केवल सुधार की भावना रखने से उनका लाभ न हो कर हानि होती है। फिर बिना सहानुभूति के बच्चों के सुधार का कार्य करने से अपने आपका लाभ नहीं होता।

बड़े बड़े दार्शनिक कभी कभी अपने ही विचारों से परेशान हो जाते हैं। दार्शनिक मनुष्य को मानसिक शान्ति नहीं देता। जब तक मनुष्य के भावों की पूर्ति नहीं होती मनुष्य दुःखी रहता है। जो व्यक्ति केवल दार्शनिक विचार में निमग्न रहते हैं वे निरानन्द हो जाते हैं। इस प्रकार वे अपने दार्शनिक विचार को ही झूठा बना देते हैं। बच्चों के प्रति प्रेम प्रदर्शन से मनुष्य अपने हृदय के माँग की पूर्ति करता है। जो मनुष्य इस माँग की पूर्ति नहीं करता है वह अपने जीवन में मानसिक रोगों की वृद्धि कर लेता है। व्यास-ऋषि को जब सभी प्रकार दार्शनिक विचारों से शान्ति न मिली तो उन्हें कृष्ण भगवान् की बाल लीला को गाना पड़ा। इसी प्रकार श्रीमद्भागवत की सृष्टि हुई।

देखा गया है कि बूढ़े लोग अपने नातियों को खिलाने में विशेष प्रकार की रुचि दिखाते हैं। वे इस प्रकार बच्चों का कल्याण तो करते ही हैं, अपने आपका भी वे कल्याण करते हैं। बच्चों के भाव उनके भावों को जीवित रखते हैं। इस प्रकार वे बुढ़ापे के बोझ से बच जाते हैं। जो लोग अपने बुढ़ापे में बच्चों के साथ बातचीत करना और उनके खेलों में भाग लेना नहीं सीख लेते वे अपने जीवन को भार रूप बना लेते हैं। ऐसे लोग चिड़चिड़े हो जाते हैं। जिस व्यक्ति से बच्चे सहज भाव से आकर्षित नहीं होते वह भीतर से दुःखी मन का रहता है। बच्चों को आकर्षित करने के लिए अपने अभिमान का त्याग करना नितान्त आवश्यक है और यह तभी होता है जब मनुष्य का मन प्रेम के भावों से पूरिन रहता है। अभिमान मनुष्य को बाहरी बड़प्पन अवश्य दे, मानसिक शान्ति नहीं देता।

सभी प्रकार के रोगों का जन्म प्रेमाभाव और मानसिक अशान्ति से होता है। बच्चों के प्रति प्रेम मनुष्य को दूसरों का प्रिय बना देता है। इससे उसे अनायास शान्ति प्राप्त हो जाती है। इस प्रेम से मानसिक विभाजन का अन्त हो जाता है। इससे मानसिक आरोग्य की वृद्धि होती है। इससे मनुष्य के जीवन में भावों और बुद्धि का सन्तुलन हो जाता है और इस प्रकार मनुष्य अनेक प्रकार के मानसिक रोगों से बच जाता है।

बनारस

—लालजीराम शुक्ल,
एम. ए.

कालेज की शिक्षा क्या है? अतिशीघ्र विशेषज्ञता और आलोचनात्मक विचारणा के प्रति अत्यल्प प्रोत्साहन। एक विद्यार्थी विशेषज्ञ होकर "एक उपयोगी मशीन बन सकता है परन्तु एक पूर्णरूप से विकसित व्यक्तित्व को प्राप्त नहीं सकता। यह परम आवश्यक है कि एक विद्यार्थी में सौन्दर्य की और नैतिक अच्छाई की स्पष्ट भावना हो। अन्यथा वह......एक अच्छी तरह सिखाए हुए कुत्ते के समान है...।"

—अलबर्ट आइनस्टीन

कालिदास और 'पाश्र्वाभ्युदय काव्य'

दक्षिण हैदराबाद राज्य में "मालखेड़" एक गाँव है। हजारों वर्ष पहले यह अत्यन्त उन्नत अवस्था में था। इसका पहला नाम "मान्यखेट" था। यहाँ के राजाओं के कई शिलालेख और ताम्र-पत्र मिले हैं। ये सब इण्डियन् ऑंटिक्वेरी (Indian Antiquary) आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। डा. भण्डारकर ने इन लेखों के आधार पर दक्षिण भारत का इतिहास लिखा है। उन्होंने उस इतिहास के एक अध्याय में मालखेड़ा के राष्ट्रकूट राजाओं के बारे में लिखा है :

"मालखेड़ा में एक राजा था। उसका नाम था अमोघवर्ष। उसके शिलालेख तथा ताम्र-पत्रों के आधार पर उसका राज्यकाल ८१५ से ८७६ ई० तक निश्चित हुआ है। उसने ६२ वर्ष राज्य किया। वह बड़ा पण्डित था। उसने एक पुस्तक लिखी है जिसका नाम है—"प्रश्नोत्तरमाला"। प्रचीन कन्नड़ में उसने एक अलङ्कारशास्त्र भी लिखा है। जैन साधु वीरसेन के शिष्य जिनसेनचार्य जी इसके गुरु थे। आदिपुराण को लिखनेवाले जिनसेनाचार्य जी हैं। आदिपुराण के बत्तीस पर्वों को पूर्ण करने के पश्चात् उनका स्वर्गवास हो गया। उसके बाद उनके अपूर्ण पुराण को उनके शिष्य गुण-भद्राचार्य जी ने पूर्ण किया।

आचार्य जिनसेन जी ने एक अमोघ काव्य की रचना की है जिसका नाम है "पार्श्वाभ्युदय"। उसमें कालिदास कृत मेघदूत काव्य के प्रत्येक श्लोक का एक-एक चरण है। कुछ जगहों में तो दो-दो चरणों को भी मिला कर पार्श्वनाथ स्वामीजी का चरित्र वर्णन किया गया है। इस काव्य में मेघदूत काव्य के श्लोकों के आधार पर पार्श्वनाथ स्वामीजी का चरित्र वर्णन है :

"श्रीमन्स्मूर्त्या मरकतमयस्तंभलक्ष्मीं वहत्यां।
योगैकाग्रयस्तिमिततरया तस्थिवाँसं निदध्यौ॥
पार्श्वं दैत्यो नभसि विहरन् बद्ध वैरेण दग्धः।
कश्चित् कांता विरहगुरुणा स्वाधिकारात् प्रमत्त।"

इस प्रकार (संपूर्णतः) मेघदूत के आधार पर यह 'पार्श्वाभ्युदय काव्य' चार सर्गों में पूर्ण किया गया है। अंत में आचार्य जी ने कहा है :

"श्रीवीरसेनमुनिपादपयोजभृंगः।
श्री मानभूद्विनयसेन मुनिर्गरीयान्॥
तच्चोदितेन जिनसेनमुनीश्वरेण।
काव्यं व्यधायि परिवेष्टित मेघदूतम्॥"

वीरसेन मुनिजी के शिष्य विनयसेन जी की प्रेरणा से जिनसेनाचार्य जी ने इसकी रचना की है। जिनसेन जी वीरसेन के शिष्य थे। अतः यह स्पष्टरूप से मालूम हो गया है कि जिनसेन तथा विनयसेन समकालीन थे।

यहाँ एक प्रश्न उठता है कि विनयसेन जी ने जिनसेन जी को ऐसी प्रेरणा क्यों दी? अनुमान से यदि कहा जाय तो शायद विनयसेन जी को 'मेघदूत' अत्यंत प्रिय होगा परन्तु विरक्त विनयसेन जी को शृंगार रस से भरा हुआ इसका विषय अच्छा न लगा हो। यदि ऐसा सुन्दर काव्य किसी जैन तीर्थंकर के बारे में लिखा होता तो कितना अच्छा होता। उन्होंने सोचा होगा कि यह काव्य जैन साधुओं के पढ़ने योग्य होगा। शायद उक्त बात विनयसेन जी ने जिनसेन जी से कही भी हो! इनकी सलाह से शायद जिनसेनाचार्य जी ने 'पर्श्वाभ्युदय काव्य' की रचना की हो।

पण्डिताचार्य योगिराट् नामक एक जैनपण्डित ने 'पाश्र्वभ्युदय काव्य' की टीका लिखी है। ज्ञात होता है है ये श्रवणबेळगोळ मठ के गुरु थे। उन्होंने अपनी टीका में "इरुगदंडनाथ" द्वारा रचे हुए "रत्नमाला" नामक कोश से कुछ स्थलों पर उदाहरण दिए हैं। योगिराट् विजयनगर के राजा हरिहर के समकालीन थे। अर्थात् संवत् १३२१ (ई० १३९९) में थे। इससे समझा जाता है कि 'पार्श्वाभ्युदय काव्य' की रचना के क़रीब पाँच सौ वर्षों के बाद योगिराट् ने टीका लिखी है।

इस टीका के अन्त में टीकाकार ने इस काव्य रचना के कारण को उसके अन्तिम अठारह श्लोकों में लिखा है—"कालिदास नामक एक कवि ने मेघदूत नामक काव्य की रचना की है। उसने उसे कई राजाओं को पढ़ कर सुनाया। एक बार कवि ने अमोघवर्ष नामक राजा की

सभा में अपने 'मेघदूत' काव्य को पढ़ा। उस समय वहाँ विनयसेन भी उपस्थित थे। यह उन्हें अच्छा न लगा। अतः कालिदास के गर्व को खण्डित करने के लिए और सन्मार्ग के प्रचार करने के लिए विनयसेन जी के कथनानुसार जिनसेनाचार्य जी ने उस सभा में कालिदास से उसका मजाक उड़ाते हुए कहा कि पिछले काव्यों की चोरी करके तुमने इन पद्यों को रचा है अतः तुम्हारा यह काव्य बहुत रमणीय बन गया है। यह सुन कालिदास ने आपे से बाहर होकर कहा कि अगर ऐसा है तो पिछली कविता सुना दीजिए। तब जिनसेनाचार्य जी ने कहा कि वह काव्य यहाँ से बहुत दूर एक शहर में है। उसे आठ दिनों के अन्दर मँगवाकर पढ़ सुनाऊँगा। कालिदास तथा सभासदों ने यह बात मान ली। उतने में जिनसेन जी ने मेघदूत के एक-दो चरणों को मिला कर 'पार्श्वाभ्युदय काव्य' की रचना की। आठ दिनों के बाद जब कालिदास के सामने वह काव्य पढ़ा गया तो उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। जब अपनी स्थिति को आचार्य जी ने बताया तो कालिदास को अपने घमण्ड पर बड़ी लज्जा हुई।" इसे "काव्यावतार" नामक टीकाकार ने अपनी ओर से इस काव्य के अन्त में मिलाया है। श्रीयुत पन्नालाल वाकलीवाल ने इस काव्य को बम्बई से प्रकाशित किया। परन्तु पुस्तक के आरम्भ में वाकलीवाल जी की प्रार्थनानुसार पूना के डेक्कन कालेज के भूतपूर्व संस्कृत अध्यापक पण्डित काशीनाथ बापू जी द्वारा लिखा गया एक छोटा सा उपोद्घात है। उसमें उन्होंने स्पष्टरूप से लिखा है कि टीकाकार ने जो लिखा है वह बिलकुल अशुद्ध है क्योंकि कालिदास जिनसेन जी से बहुत पूर्वकालीन थे। जिनसेन के समय में कालिदास नहीं थे। उपर्युक्त पद्य केवल भ्रान्ति से पूर्ण है। 'पार्श्वाभ्युदय' संवत् ७३६ में रचा गया है अर्थात् लगभग ८१९ ई. में। इसके पहले जिन कवियों ने काव्यों की रचना की है उनमें कालिदास का नाम आया है। शिलालेख तथा ताम्रपत्रों से भी ज्ञात होता है कि थानेश्वर के राजा हर्षवर्धन का समय सन् ७०० ई. रहा होगा। सन् ६३४ ई. में सत्याश्रय पुलकेशि ने हर्ष को हराया। बाणभट्ट इसी हर्षवर्धन के आश्रय में रहते थे। उन्होंने हर्षचरित्र में कालिदास की प्रशंसा की है:

"निर्गतासु न वा कस्य कालिदासस्य सूक्तिषु।
प्रीतिर्मधुरसांद्रासु मंजरीष्विव जायते॥"

इस श्लोक से यह सिद्ध होता है कि कालिदास बाणभट्ट से पूर्वकालीन थे। इसके अतिरिक्त बीजापुर ज़िले के "आयहोली" गाँव में जो शिलालेख मिले हैं उनसे यह प्रतीत होता है कि जैन कवि ने कालिदास और भारवि का नाम कहा है। उसने खुद कहा है कि इन दोनों के समान आप भी कीर्तिवान् हैं।

"येनायोजिनवेश्म स्थिरमर्थविधौ विवेकिना
जिनवेश्म सविजयतां रविकीर्तिः
कविताश्रितकालिदासभारविकीर्तिः॥"

इस शिलालेखन का समय संवत् ५५६ अर्थात् ६३४ ई० है। शिलालेख में यों लिखा है:—

"पंचाशत्सु कलौ काले षट्सु पंच शतेषु च।
समानु समती तासु शकानामपि भूभुजाम्॥

इससे ऐसा मालूम होता है कि कालिदास ६३४ ई० पूर्व में थे। अब प्रश्न उठता है कि ८१४ ई० में 'पार्श्वाभ्युदय' काव्य को लिखनेवाले जिनसेनाचार्य जी के समय में कैसे आये? अतः टीकाकार ने जो लिखा है वह बिलकुल अशुद्ध है।

जिनसेन जी से ५०० वर्षों के बाद 'पार्श्वाभ्युदय' के टीकाकार ने जन्म लिया है। इसने शायद पुराने लोगों की बातें सुन, अकबर तथा बीरबल की कहानियों के समान पद्यों को लिख कर जोड़ दिया होगा। उस समय ऐतिहासिक बातों पर उतना ध्यान नहीं दिया जाता था। उस समय बड़े-बड़े कवियों तथा पण्डितों से कहानियाँ सुन लेने की रीति थी। कहने के समय किसी ने कुछ विचारों को कह दिया तो और किसी ने कुछ मिलाया होगा। उस समय छपी हुई पुस्तकें न थीं और छपने का सदवकाश भी नहीं मिलता था। पण्डिताचार्य योगिराट् ने जो विचार कहा है वह भी ऐसा क्यों नहीं होगा? कालिदास के पद्यों को 'पार्श्वाभ्युदय' में देख कर किसी ने इस कहानी को बना दिया होगा। इस परंपरा से टीकाकार के कानों में वह बात पड़ी होगी और उसने उक्त टिप्पणी लिखी होगी।

टीकाकार ने जो कहा है वह सत्य होता तो जिनसेनाचार्य जी उक्त बात स्वयं लिखते परन्तु उन्होंने काव्य के अन्त में केवल यह लिखा है:

"इति विरचितमेतत् काव्यमावेष्ट्य मेघं,
बहुगुणमपदोषं कालिदासस्य काव्यम्।
मलिनतपरकाव्यं तिष्ठतादाशशांकं।
भुवनमसुत देवस्सर्वदाऽमोघवर्षः ॥"

इस श्लोक के "मलिनतपरकाव्यं" नामक पद से यह समझ सकते हैं कि इसकी रचना से मेघदूत मलिन हुआ। पार्श्वाभ्युदय काव्य के सामने मेघदूत काव्य की शोभा तथा सुन्दरता क्षीण हुई। यहाँ और एक बात विचार करना है—जिनसेनाचार्य जी जैन मुनि हैं। जैन मुनि लोग अहिंसादि पंचानुव्रतों का पालन करनेवाले हैं। वे कभी व्रत को अतिचार (धक्का) नहीं पहुँचा सकते। ऐसी हालत में ईर्ष्या से उन्होंने उनके काव्य की चोरी की होगी; किया होगा? और कालिदास के साथ सभा में "काव्य–पुराना है" इस प्रकार क्या झूठ बोल सके होंगे। ऐसा कार्य जैन मुनि लोग कभी नहीं कर सकते। हम समझते हैं कि टीकाकार ने श्रेष्ठता प्रदर्शित करने के लिए यह कहा होगा। इसके अलावा यह भी नहीं माना जा सकता कि मुनि लोग राज सभा में उपस्थित थे। जो मुनि लोग आत्मकल्याण में निरत हैं; वे राजसभा में नहीं जाते।

उपर्युक्त कारणों से यह स्पष्ट है कि कालिदास का मेघदूत, जिनसेनाचार्य जी के पार्श्वाभ्युदय से पहले लिखा गया होगा।

आचार्य जी के बारे में टीकाकार ने जो श्लोक लिखे हैं, उनको ऐतिहासिक दृष्टि से सही नहीं माना जा सकता। इसका कारण यह है कि कालिदास के बाद ही जिनसेनाचार्य जी हुए। कालिदास के मेघदूत काव्य के पढ़ने से जो आनन्द प्राप्त हुआ उसे अपने मत के तीर्थंकरों के चरित्रों में श्लोक के पदों को मिला कर, उन्होंने ग्रन्थ को इसलिए लिखा कि वे उसके अनुसार ही एक नूतन काव्य की रचना कर सकें।

बेंगलोर

—आर. माधवी

छोटी कहानी

स्कूल में इन्स्पैक्टर महोदय निरीक्षण करने आए हुए थे। उन्होंने विद्यार्थियों की बुद्धि की पड़ताल करने के लिए कई प्रकार के प्रश्न किए परन्तु वे किसी के उत्तर से सन्तुष्ट न हुए। अन्त में उन्होंने कहा—"विद्यार्थियो! हम चाहते हैं कि तुम में से हर एक हमें एक ऐसी छोटी कहानी सुनाए जिससे छोटी कहानी हो ही न सकती हो। कई विद्यार्थियों ने कई कहानियाँ सुनाई परन्तु इन्स्पैक्टर महोदय ने कहा कि हम इससे भी छोटी कहानी सुनना चाहते हैं।

एक अल्पवयस्क विद्यार्थी ने कहा—"एक बच्चा पैदा हुआ और पैदा होते ही मर गया।" कहानी समाप्त हो गई। सब हँस पड़े। इन्स्पैक्टर महोदय निरुत्तर हो गए।

तेलुगु का उदाहरण-साहित्य

वैसे तो तेलुगु साहित्य का विकास अधिकांश में संस्कृत के काव्य-साहित्य से प्रभावित है फिर भी उसमें कुछ विशिष्ट प्रवृत्तियाँ भी हैं जिनसे उसकी अनोखी मौलिकता पर प्रकाश पड़ता है। इन्हीं विशिष्ट प्रवृत्तियों को देख कर समालोचक तेलुगु साहित्य की कविता की दो निर्दिष्ट धाराएँ मानते हैं। (१) मार्ग कविता की धारा तथा (२) देशी कविता की धारा। तेलुगु में मार्ग कविता का प्रवर्तन संस्कृत-साहित्य के अनुकरण पर हुआ है। इस धारा की कविता में संस्कृत के काव्यशास्त्र के लक्षणों का सफलतापूर्वक अनुकरण हुआ है। फलतः कविता की इस धारा में तत्सम शब्दों की बहुलता एवं समास शैली का निर्वाह पाया जात है। देशी धारा की कविता में कुछ ऐसी मौलिकताएँ पाई जाती हैं जिनका अध्ययन कर के हम निस्संदेह इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि किसी बाह्य प्रभाव के बिना ही इस धारा का विकास सहज रूप में हुआ है। समालोचकों का मत है कि मार्ग कविता पर आर्य संस्कृति का प्रभाव अधिक है जब कि देशी कविता पर द्राविड़ी सभ्यता का प्रभाव स्पष्ट है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि मार्ग कविता का विकास संस्कृत के चूडांत पंडितों के द्वारा हुआ जब कि देशी कविता का विकास जनता के हृदयों की कोमलता तथा उनके सीधे सादे भावों के द्वारा हुआ। जब से तेलुगु साहित्य के विकास में पूर्ववर्ती बौद्ध तथा जैन धर्मों का प्रभाव घट कर वैदिक धर्म का प्रचार होने लगा तब से देशी परंपरा की साहित्यिक धाराएँ मंद सी पड़ गई। यद्यपि राजाओं के दरबारों में इस धारा के लेखकों का आदर सत्कार नहीं होता था तथापि अपनी सहज कोमलता, भावों की सुकुमारता तथा भाषा की मिठास के कारण समय के साथ यह विकसित होती गई। वास्तव में आम जनता की कंठहार वह पहलें थी और आज भी है।

देशी साहित्य की परंपरा के अंतर्गत द्विपद साहित्य जो अधिकांश में शैव धर्मावलंबी है, उदाहरण साहित्य जो अपने रचना तन्त्र की विशेषता रखता है, पदसाहित्य जो भक्तिपूर्ण तथा ओजपूर्ण है तथा यक्षगान जो देशी परम्परा के नाटक कहे जा सकते हैं, आते हैं। हम इस लेख में उदाहरण साहित्य की विशिष्टता एवं उसके रचना तन्त्र की मौलिकता पर प्रकाश डालना चाहते हैं।

साधारणतया समालोचकों के मतानुसार कविताएँ अपने आन्तरिक गुणों के आधार पर चार प्रकार की हैं—आशु कविता, मधुर कविता, मित्र कविता तथा विस्तर कविता। आशु कविता में कवि तत्काल अष्टावधान, शतावधान, आकाशपुराण, समस्यापूर्ति आदि कर लेते हैं। जबानी कविता के छन्द कह देते हैं। पिंगलशास्त्र के नियमों का निर्वाह भलीभाँति होता है परन्तु कथन की शीघ्रता के कारण उत्तम कविता नहीं बन सकती। मधुर कविता के अन्तर्गत उदाहरणसाहित्य, पदसाहित्य, गीतिसाहित्य आदि कई प्रकारों का जन-साहित्य आ जाता है। इस प्रकार की कविता में हृदय की मृदुल भावनाएँ तरंगित होकर सरल भाषा में फुलझड़ी की तरह निकलती हैं। इस साहित्य को पढ़ कर राजा से रंक तक तथा अपढ़ से पण्डित तक गद्गद् हुए बिना नहीं रह सकते। इस प्रकार की अधिकांश कविताएँ भगवान् के श्री चरणों में आत्मार्पण करनेवाली मधुर भक्ति को ले कर चलती हैं। इसके अतिरिक्त पारिवारिक जीवन सम्बन्धी सुन्दर घटनाओं को लेकर ये कविताएँ लिखी जाती हैं तो कभी प्रकृति के रमणीक दृश्यों से आह्लादित होकर मर्म भरे पद बड़ी सजीव भाषा में गाए जाते हैं। पुराण साहित्य के पात्रों को ले कर ग्रामीण जनता के लिए नाटक के रूप में भी यह साहित्य रचा गया है।

उदाहरण साहित्य का समावेश मधुर कविता के अन्तर्गत है। इसमें अधिकतर भगवान् के नाम पर ही समष्टि बुद्धि से रचना की जाती है। कुछ रचनाएँ मानवपरक भी हैं। भगवत्सम्बन्धी रचनाओं के अन्तर्गत मुख्यतः शिवपरक, विष्णुपरक तथा हरिहरनाथपरक रचनाएँ अधिक हैं।

चित्र कविता में बुद्धि वैचित्र्य का प्रदर्शन अधि-

काधिक शब्द योजना के द्वारा किया जाता है। इसमें कविता की कसरत खूब चलती है। फलतः आश्चर्य का अनुभव चाहे क्यों न हो परन्तु हृदय को आनन्द के हिलोरों में हिलानेवाली शक्ति का इनमें नितान्त अभाव होता है। कोई भी सहृदय इससे आनन्द नहीं उठा सकता। आचार्यों के अनुसार यह अधम श्रेणी की कविता है।

विस्तर कविता का हम प्रबन्ध कविता में समावेश कर सकते हैं। इसमें संस्कृत के आचार्यों के कथनानुसार अष्टादश वर्णन आदि की प्रकरणानुरूपी आयोजना की जाती है। तेलुगु का सारा प्रबन्ध-साहित्य जो मार्ग कविता की धारा कहा जाता है, इस विस्तर कविता के लक्ष्य रूप में दिया जाता है।

उदाहरण साहित्य के रचना-तन्त्र की विशेषताओं पर हमें ध्यान देना चाहिए। यह एक छोटा-सा काव्य है जिसमें छः प्रत्ययों का तथा सम्बोधन और सम्बन्ध सूचक अव्ययों का प्रयोग छन्दों में होता है। विशेषता यह है कि एक छन्द में एक ही प्रकार के प्रत्यय का प्रयोग चारों चरणों में किया जाता है। संस्कृत छन्दों की अपेक्षा देशी छन्द अधिक प्रयुक्त होते हैं। इन देशी छन्दों में मात्राओं की गिनती प्रधान है। कलिका, उत्कलिका, रगड़ा, चंपकमाला, उत्पलमाला और शार्दूल-विक्रीडित मुख्यतः प्रयुक्त होनेवाले छन्द हैं। कलिका एवं उत्कलिका का लक्षण भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में इस प्रकार है :

"गुर्वादिरथ लघ्वादिर्युग्मस्सर्वलघुस्स्मृतः
चतुर्मात्रागणा ज्ञेयाः पूर्वच्छन्दोविकल्पनाः
पातोर्धकलिकान् पातान् कुयह्लिघ्वक्षरेषु च
गुर्वक्षरे तालगीतपातास्तु कलिका स्मृताः"

उत्कलिका के विषय में काव्यालङ्कार सूत्र वृत्ति में इस प्रकार दिया गया है :

गद्यं वृत्त गन्धि चूर्णमुत्कलिका प्रायं च
पद्यभागवद्वृत्तगन्धि
अनाविद्ध ललितपदं चूर्णम्
विपरीतमुत्कलिका प्रायम्

वृत्तगन्धि एवं उत्कलिका दोनों में समास शैली का आश्रय लेना पड़ता है। वृत्तगन्धि में स्पष्टतया पद्य भाग की झलक मिलती है। उदाहरण का रचना क्रम साधारणतया इस प्रकार होता है—एक वृत्त, कलिका, तथा उत्कलिका। वृत्त जिस विभक्ति प्रत्यय की प्रधानता से लिखी जाती है—उसी विभक्ति-प्रत्यय के साथ कलिका एवं उत्कलिका रची जाती हैं। जब इस प्रकार के क्रम से आठ विभक्तियों में छन्द लिखे जाते हैं तब अन्त में एक छन्द और जोड़ा जाता है जिसमें सभी विभक्ति-प्रत्ययों का समावेश एक साथ होता है। यह छन्द साधारणतया शार्दूल विक्रीड़ित अथवा उत्पलमाला का होता है। ये वर्ग वृत्त हैं जिनमें गणों का निश्चित क्रम रहता है।

स्थूल दृष्टि से देखने पर संभवतः यह प्रश्न पैदा होता है कि ऐसी रचना से लेखक का तात्पर्य क्या है? यह भी कविता की जादूगरी नहीं तो और क्या है? परन्तु बात ऐसी नहीं है।

तेलुगु के आधुनिक साहित्य के कविसम्राट् एवं गम्भीर समालोचक श्री विश्वनाथ सत्यनारायण जी ने उदाहरण साहित्य का रहस्य बड़े सार्थक शब्दों में प्रगट किया है। उनकी सम्मति अवश्य ध्यान देने योग्य है। उनके अनुसार भगवान् की यह सारी सृष्टि क्रियास्वरूपिणी है। अर्थात् यह सब उसी की क्रिया के फल स्वरूप है। व्याकरणशास्त्र के अनुसार सब कारकों का अन्वय क्रिया में होना चाहिए 'क्रियान्वयि कारकं'। विभक्ति प्रत्यय इन्हीं कारकों में प्रयुक्त होते हैं। जब हम इस अपरम्पार सृष्टि के निर्माता भगवान् को एक एक प्रत्यय से एक एक छंद में प्रार्थना करें तो अर्थ यह निकलता है कि हम भगवान् के दर्शन सर्वक्रियास्थानभूत के रूप में कर रहे हैं। इस प्रकार लेखक अपनी रचना के द्वारा सृष्टि-क्रिया के कर्त्ता भगवान् की समग्र सेवा कर पाते हैं। ऐसी दशा में सारे उदाहरण साहित्य को भगवान् की सेवा के रूप में हम ले सकते हैं और हम सत्य के द्वारा इस साहित्य की महत्ता को स्वीकार कर सकते हैं।

हम प्रत्याख्यान के भय के बिना कह सकते हैं कि संस्कृत में उदाहरण साहित्य का लक्षण तेलुगु के उदाहरण काव्यों को देख कर दिया गया है। पालकुरिकि सोमनाथ ने तेलुगु एवं संस्कृत में भी उदाहरण काव्यों को लिखा। सोमनाथ बारहवीं सदी ईसवी में वर्तमान थे। तदनन्तर विद्यानाथ ने तेरहवीं सदी में 'प्रतापरुद्र यशोभूषण' में उदाहरण काव्य का लक्षण इस प्रकार दिया था।

"अथ क्षुद्रप्रबन्धानि रूप्यन्तेः—
येन केनापि तालेनगद्यपद्यसमन्वितम्

जयत्युपक्रमं मालिन्यादिप्रासविचित्रितम्
तदुदाहरणं नाम विभक्त्यष्टकसंयुतम्

इस लक्षण के अनुसार यह स्पष्ट लक्षित होता है कि उदाहरण काव्य में संगीत के लिए भी काफ़ी स्थान है। उपर्युक्त लक्षण में तेलुगु के उदाहरण काव्य की दृष्टि से दो त्रुटियाँ हैं। इसमें सार्वविभक्तिक श्लोक का जिक्र नहीं है। तेलुगु के उदाहरण काव्य में ऐसे छंद अनिवार्य हैं। संस्कृत में भी ऐसे श्लोकों का नितांत अभाव नहीं है। हम कुलशेखर आलवार के निम्नलिखित श्लोक को उदाहरण के रूप में दे रहे हैं :

कृष्णो रक्षतु नो जगत्त्रयगुरुः
कृष्णं नमस्याम्यहं
कृष्णेनामरशत्रवो विनिहताः
कृष्णाय तस्मै नमः
कृष्णादेवसमुत्थितं जगदिदं कृष्णस्य
दासोऽस्म्यहं
कृष्णे तिष्ठति सर्वमेतदखिलं
हे कृष्ण ! रक्षस्व माम्

ऊपर लिखे हुए लक्षण में दूसरी त्रुटि भी है। साधारणतया तेलुगु के उदाहरण काव्य के अन्त में लेखक एक ऐसे छन्द को भी लिखता है जिसमें स्वनाम एवं कृति का स्मरण कर लेता है। संस्कृत के लक्षणों में इसका जिक्र भी नहीं है। अतः सभी प्रकारों की विवेचना से तेलुगु के उदाहरण साहित्य की विशेषता ज्ञात होती है। संस्कृत के लक्षण में खटकनेवाली बात यह है कि यह एक क्षुद्र काव्य के रूप में वर्णित है। वास्तव में, इस काव्यपरंपरा को क्षुद्र काव्य के अंतर्गत मानना अनुचित है।

प्रायः संस्कृत के आचार्यों ने क्षुद्रता ऐसे काव्यों में मानी है जिनके रचना तन्त्र में शब्दबन्ध की बहुलता हो। परन्तु उदाहरण काव्य के शब्दबन्ध कविता के भाव प्रवाह में बाधा डालने वाले नहीं प्रत्युत उनमें एक गति की स्थापना कर के संगीत का लय प्रवाह उपजानेवाले हैं। अधिकतर भक्तिपरक रचनाएँ होने के कारण उनमें आत्म-समर्पण और बुद्धि की सरसता शब्द शब्द से टपकती है। इस साहित्य के अध्ययन से तेलुगु कविता के क्रम विकास पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। तेलुगु के उदाहरण साहित्य के प्रधान लेखकों का वर्णन नीचे किया जा रहा है :

बसवोदाहरनमु : इसके रचयिता श्री पालकुरिकि सोमनाथ कवि की विशिष्टता तेलुगु साहित्य के इतिहास में बहुमुखी है। उदाहरण साहित्य के प्रथम निर्माता के नाते भी इनकी साहित्यिक महत्ता अपूर्व है। शैव साहित्य के स्रष्टा श्री सोमनाथ सन् ११९० ई० से १२६० तक वर्त्तमान थे। संस्कृत साहित्य में भी इन्हीं का उदाहरण काव्य सर्वप्रथम था। इस दृष्टि से देखने पर सोमनाथ संस्कृत साहित्य में भी एक नवीन मार्ग का आविष्कार करनेवाले हुए। तेलुगु एवं संस्कृत के इन उदाहरणों में वीर शैव धर्म के प्रवर्तक श्री बसवेश्वर की महिमा वर्णित है। औरों की दृष्टि में बसवेश्वर कोई धर्मप्रवर्तक ही क्यों न हो, परन्तु इनके उद्देश में वे भगवान् शङ्कर से किसी अंश में कम नहीं थे। अतः संस्कृत और तेलुगु के ये दोनों उदाहरण भक्तिपरक ही माने जा सकते हैं।

मूलाधार विकस्वरांबुजलनी मध्यस्फुरद्वीचिका
यातायातविनोदपेशलमते ! चिद्व्योम शीतद्युते
संसारार्णव कर्णधार ! कृपया मां पालय प्रत्यहं
भांडागार धुरंधरेश ! बसवामात्य चूडामणे !

उपर्युक्त श्लोक संस्कृत 'बसवोदाहरण' से लिया गया है और वह संबोधनपरक है।

उत्कलिका :

भुवनोपकार भवमोदवीर
भक्तिसंयोग मुक्तिसंभोग
सौख्याब्धिलोन मुख्युडै तान
वेलयु शुभकरुड्, इलविश्वगुरुड्

उत्कलिका एवं कलिका की रचना में अनुप्रास का अनुसरण मुख्य है जो प्रथम विभक्ति में रचा गया है। छन्द का अर्थ इस प्रकार है। "इस जगत के गुरु श्री बसवेश्वर संसार का उपकार करते हुए भक्ति एवं मुक्ति के संयोग रूपी आनन्द सागर में 'केवल' होकर विराजमान हैं।" ऐसे ही अन्य विभक्ति प्रत्ययों का उपयोग करके छन्द लिखे जाते हैं। जैसे ऊपर कह आए हैं कुल मिल कर एक विभक्ति-प्रत्यय के लिए तीन छन्द प्रयुक्त होते हैं। १ वृत्त, २ कलिका तथा ३ उत्कलिका।

२. त्रिपुरांतकोदाहरणमु : इसके लेखक राविपाटि त्रिपुरांतक अथवा तिप्पन्न थे। तिप्पन्न का जन्म श्री शैल-क्षेत्र के निकट त्रिपुरांतक क्षेत्र में हुआ। कवि का समय सन् १३६० ई० के निकट है। इन्होंने अलावा इस उदाहरण के अन्यान्य कई कृतियाँ लिखीं जिनमें 'अंबिका शतकमु' काव्य आदि अतीव सरस हैं। इन्होंने संस्कृत में 'प्रेमाभिराममु' नामक एक काव्य की रचना की जिसका अनुवाद परवर्ती कवि श्रीनाथ ने वल्लभराय के नाम से तेलुगु में किया था। अपने उदाहरण काव्य में कवि ने शिवशक्ति का सरस प्रवाह बहाया है।

द्वितीयाविभक्ति उत्कलिका :

"चिगुरु गैंद्दुवु वेरिकि
मगल सिग्गुलु नरिकि
सतुल बाट्लु परचि
यतुल व्रतमुलु चेरिचि
अललु चिलुकलु पिंडु
लेलय गोलुवग नुंडु
मरु जसिंचिन वानि
गरुणमिंचिन वानि"

पुष्पायुध से स्त्री एवं पुरुषों की लाज मिटानेवाले, सन्यासियों के व्रत में भंग डालनेवाले, और पक्षियों से परिवृत हो कर रहनेवाले मन्मथ को जीत कर, करुणा की वृष्टि से विश्व को अभिषिक्त करनेवाले की मैं स्तुति करता हूँ।

सार्वविभक्तिक छन्द :

"नीवाद्युंडवु, निन्नुदेलपु चदुवुल-नीचेत मेलोन्द नी
कै वाक्पूजलोनर्तु, नीवलन ब्रह्माण्डावलुल् पुट्टु नी
के वेलपुल सरि, अन्य यैव भजनं बेनोल्ल नीयन्दुम
द्भावं बोंद दगुन् गुमार गिरिनाथ! चन्द्रचूडामणि"

"हे कुमारगिरिनाथ चन्द्रचूडामणि ईश्वर! तू आदि है, सारी विद्याएँ तुम्हारी ओर निर्देश करती हैं, तुमसे शुभाशिष प्राप्त करने के लिए तुम्हारी वाक्-प्रसूनों से पूजा करूँगा, तुझ से ब्रह्माण्डों की सृष्टि होगी, तेरी बराबरी करनेवाला देव कौन सा है? दूसरे देवी-देवताओं का पूजन मैं पसन्द नहीं करता, मेरे समस्त भाव तुम्हारे प्रति समर्पित हैं।" यहाँ ध्यान देने योग्य विषय यह है कि अर्थ लिखने में तेलुगु की विभक्ति, प्रत्ययों के प्रयोग के अनुसार लिखा गया है जिससे उदाहरण की परम्परा समझ में आए।

शैव कवियों के द्वारा प्रवर्तित यह साहित्य वैष्णव कवियों में लोकप्रिय हुआ। तिरुपति के ताल्लपाक कवियों ने देशी साहित्य के विकास में बड़ी सहायता पहुँचाई। इन कवियों ने अपने तन मन एवं धन से तिरुमलै पर विराजमान बालाजी वेंकटेश्वर के श्रीचरणों में अनेकानेक कविता पुष्प चढ़ाए जिनके परिमल से साहित्य का मन्दिर आज भी महक रहा है। इन कवियों ने देशी साहित्य के जितने प्रकार थे उन सब को अपना कर अपनी काव्य कुशलता के द्वारा साहित्य देवी के मन्दिर को सजाया था। इनमें से श्री पेयतिरुमलाचार्य ने 'वेंकटेश्वरोयाहरणमु' की रचना की। ये सन् १४०३-१५५३ ई. तक जीवित रहे। इनकी लिखी हुई पुस्तकें और भी बहुत हैं—चक्रवाल मंजरी, सुदर्शन रगड इत्यादि। दो रेकों पर लिखा गया इनका ग्रन्थ भाषा शास्त्र की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

"कोरि पदारु वेलयिन कोम्मल नेम्मदि वेंड्लियाडियुन्
धारुणि ब्रह्मचारिननि तप्पक पल्कि परीक्षतुन् महो
दारत ब्राणमेत्तुचु व्रतापमु मीरग ब्रोचु मोहना
कारुनि यन्दु वेंकट शिखामणियन्दुमनम्बु निल्पेदन्"

प्रेम से सोलह हज़ार स्त्रियों से शादी करके भी ब्रह्मचारी होकर, परीक्षित के प्राणों की रक्षा करने वाले, उदार चेता एवं मोहनाकार, वेंकटेश्वर में मेरा मन रमा रहे।

हनुमानोदाहरणमु : इसे चित्र कवि पेद्दन्न ने लिखा। चित्र कवि इनका विरुद नाम था। इनका समय सन् १५३०-४० के लगभग है। इस उदाहरण-काल में महावीर हनुमान् जी की स्तुति की गई है।

हरिहर श्लेषोदाहरणमु : इसको सन् १५८० के निकट लिखा गया है। इसकी विशेषता इसमें है कि एक साथ हरि तथा शिव पर अर्थ का घटाटोप करते हुए लिखा गया जो वास्तव में कवि की बौद्धिक प्रतिभा का उदाहरण माना जा सकता है। खेद का विषय है कि यह आजकल उपलब्ध नहीं है। इसकी सूचना हमें दूसरे ग्रन्थों से मिलता है।

श्रीकृष्णोदाहरणमु : काकुनूरि अप्प कवि ने (सन् १६६६) में लिखा था। ये जिला गुन्टूरु के कामपली के निवासी थे। उस गाँव में श्रीकृष्ण का मन्दिर

था। अपनी कृति में ये अधिकांतः चित्र कवि पेद्दन की कृति से प्रभावित हैं।

हम ऊपर कह आए हैं कि उदाहरणों में से कुछ कृतियाँ मानवपरक भी हैं। इनकी रचना आधुनिक काल में हुई है। नागेश्वरोदाहरणमु, गोपालोदहरणमु आदि उल्लेखनीय है। 'नागेश्वरोदाहरणमु' के प्रणेता प्रसिद्ध कवि मंडपाक पार्वतीश्वर शास्त्री जी थे। आधुनिक काल में तेलुगु कवियों के आश्रयदाता बड़े ही उदारचेता महापुरुष श्री काशीनाथ नागेश्वरराव जी का वर्णन तथा गुणगान हुआ था। नागेश्वरराव जी कांग्रेस के भी बड़े नेता थे। इन्होंने ही पहले पहल आंध्रों में राष्टीय भावना को जागृत करने के लिए आंध्रपत्रिका नामक दैनिक पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया। तदनन्तर इन्हीं महानुभाव ने 'भारती' नामक साहित्यिक मास पत्रिका का प्रकाशन कर के तेलुगु साहित्य की नवीन धाराओं के प्रवाह में गति प्रदान की थी। 'आन्ध्र पत्रिका' का साप्ताहिक भी निकल रहा है। अन्ततोगत्वा हम यों कह सकते हैं कि आधुनिक तेलुगु साहित्य के विकास का अधिकांश श्रेय भी नागेश्वरराव जी को है। इनके निधन के अनन्तर भी ये पत्र अबाध गति से भाषा एवं साहित्य की सेवा कर रहे हैं।

गोपालोदाहरणमु : लेखक आधुनिक तेलुगु साहित्य के कवि सम्राट् स्वनामधन्य श्री विश्वनाथ सत्यनारायण जी हैं। श्री बेजवाड गोपाल रेड्डी आन्ध्र प्रान्त के एक प्रख्यात कांग्रेसी नेता तथा रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शान्ति-निकेतन में शिक्षा-दीक्षा ग्रहण किए हुए साहित्यिक एवं भावुक व्यक्ति हैं। श्री सत्यनारायण जी ने उनके विवाह के अवसर पर इस काव्य के द्वारा दम्पतियों को सम्मानित किया। कहने की आवश्यकता नहीं है कि इसमें शृंगारिकता का अच्छा परिपाक हुआ है। दूसरे आधुनिक उदाहरण-काव्यों में 'वीरेशलिंगोयाहरणमु' तथा 'अन्नमाचार्योदाहरणमु' गणनीय हैं। हाल ही में, तेलुगु के इस महत्वपूर्ण अंग पर ऐतिहासिक तथा समालोचनात्मक निबन्ध को पुस्तकाकार में मद्रास विश्वविद्यालय के तेलुगु के आचार्य श्री निडुदवोलु वेंकटराव जी ने बड़ी खोज के साथ प्रकाशित किया है। तेलुगु का उदाहरण-साहित्य कविता के विकास के अध्ययन करने के लिए आवश्यक है। इसमें भावों की सुकुमारता के साथ भाषा की कोमलता भी है।

—हनुमच्छास्त्री
एम-ए.

अमेरिका में बाइबल का अध्ययन

अमेरिका में ९० प्रतिशत प्रोटेस्टैण्ट और ७० प्रतिशत अन्य मतावलम्बी ईसाइयों विशेषतया रोमन कैथोलिक लोगों के घर में बाइबल रहती है। प्रोटेस्टैण्ट लोगों के घर में बाइबल की एक से अधिक प्रति रहती है। अधिकांश अमेरिकी अपने कमरों में बाइबल को रखते हैं; ४७ प्रतिशत अल्मारियों में, २८ प्रतिशत मेज़ पर और ३२ प्रतिशत पलंग के पास की मेज पर अपनी बाइबल को रखते हैं। ९५ प्रतिशत अमेरिकी बाइबल को अवश्य पढ़ते हैं; ४० प्रतिशत सप्ताह में कम से कम एक बार और प्रोटेस्टैण्ट लोगों में १८ प्रतिशत लोग बाईबल का प्रतिदिन पाठ करते हैं। ४२ प्रतिशत लोग अध्ययन के लिए, ४० प्रतिशत साहित्यिक आनन्द के लिए और शेष दोनों उद्देश्यों से बाइबल को पढ़ते हैं।

—टाइम

कलकत्ते की सड़कों पर

श्रीकान्त अपने आप ही बड़बड़ाने लगा—"मेरी मौत के दिन समीप आते जा रहे हैं, नन्दिता। मेरी मौत, मेरी जिन्दगी।"

होंठ हिलते हिलते चुप हो गए। श्रीकान्त छत की कड़ियाँ गिनने लगा।

जब कभी श्रीकान्त नन्दिता के भविष्य, उसके अतृप्त यौवन, उसके अवधि हीन लम्बे जीवन के विषय में सोचता तो उसका खून जम जाता, उसकी साँसें रुक जातीं, उसकी पुतलियाँ निर्जीव हो जातीं और उस गन्दी, तंग, सीलभरी कोठरी पर एक गहरे स्याह रंग की परत जम जाती! नन्दिता जो उसकी अभिशप्त, कड़ुवी ज़िन्दगी में रस की बूँद...बन बरस पड़ी थी, उसके उदास अकेले जीवन में रस की बूँद सुख की किरण... उसके अन्धेरे का प्रकाश......उसके प्राणों की साँस के मानिन्द!

क्षुब्ध कोठरी में श्रीकान्त को कभी कभी लगता जैसे नन्दिता उसके भुजपाश में हो। उसके रूखे, असंयत बालों को सहलाते हुए कह रही हो--"ऐसा न कहो श्रीकान्त! तुम्हें अभी जीना है, मृत्यु को पराजित करते हुए, नियन्ता से संघर्ष करते हुए, लोहे की पैनी धार की तरह। तुम्हीं तो कहा करते थे कि तुम आनेवाले परिवर्तन तक जिओगे, उसके लिए निर्माण करते रहोगे, रक्त की अन्तिम बूँदें देते रहोगे। आज तुम में यह पलायन और मायूसी क्यों? धरती से भाग कर आकाश में रहोगे, स्वप्नों के बीच, आकाश-गंगा के मध्यस्थ! नहीं, तुम धरती के हो, सम्पूर्ण युग के हो, मानवता का पथ तुम्हारे सम्मुख है। प्रशस्त हो आगे बढ़ो। नन्दिता का श्री अर्थहीन कल्पनाओं के दिए नहीं जलाएगा।"

नन्दिता का श्री अर्थहीन कल्पनाओं के दिए नहीं जलाएगा!

बेड़ियों की खनखनाहट से श्रीकान्त की नींद टूट जाती और वह देखता कि चारों ओर से वह ठोस दीवारों से घिरा है। पुरानी, गन्दी, छिद्रहीन दीवारें। इन दीवारों में सदियों से तड़पती हुई बन्दी आत्माएँ, कुचली इन्सानियत, मानव की सिसकती चीखें।

जेल के फाटक में पैर रखते ही श्रीकान्त ने इन काल कोठरियों को देख कर कहा था-"हमें इन दीवारों को ढ़ाह देना है। हम इनका अस्तित्व न रहने देंगे। प्रगति के पथ की इन चट्टानों को पिघलना होगा, रेत बनना होगा नये रास्ते के लिए।"

न हवा न किरण! श्रीकान्त, मनहूस दीवारें, एक गिलहरी: जेल की उस कोठरी में यही तीन वस्तुएँ थीं, आत्मीय थे।

श्रीकान्त अक्सर सीखचों को पकड़ उसके पार देखने का प्रयत्न करता पर कुछ दिखाई न देता सिवाय एक धुँधले निशान के, एक काली रेखा के, एक धुएँ के अम्बार के। मानों सारी धरती में धुआँ भरा जा रहा हो, एक ज़हरीला धुआँ और इन्सान उसमें अपना दम तोड़ रहा हो। धीरे धीरे यह धुएँ के विषैले बादल मिट जायेंगे। नया सूरज निकल आएगा, नई सुबह होगी, इनक़लाब की नई बेला।

"तब तक मैं शायद ही जी सकूँ, शायद ही नन्दिता से मिल सकूँ, शायद ही...।" श्रीकान्त सोचता।

गिलहरी सो जाती।

बाहर सन्तरी पहरा दे रहा होता।

श्रीकान्त जगता रहता कभी मोमबत्ती की तरह पिघलता हुआ, कभी चट्टान की तरह अजेय।

जब भावनाएँ बहुत घनीभूत और केन्द्रित हो जातीं तब वह दीवारों पर पेन्सिल से लिखा करता। आज भी अन्धेरे में टटोलते हुए उसने लिखा—मरण जीवन का अन्त नहीं। जीवन मिट्टी की तरह शाश्वत, हिमालय की तरह पवित्र, गंगा के वक्षस्थल की तरह अनन्त है। मैं भी इन आकाश की तरह विशाल, स्वच्छन्द, उन्मुक्त। मैं भी इन हरे भरे खेतों की तरह, इन तूफ़ानी हवाओं की तरह, इन कोमल टहनियों की तरह जीना चाहता हूँ। एक छोटी पगडंडी की तरह जो आगे जाकर बड़े फैले रास्ते में तिरोहित हो जाती है।

दीवार पर लिखे इन टेढ़े-मेढ़े अक्षरों में कितना

सत्य था, कितनी ईमानदारी, कितनी सजीव कल्पना। इस कल्पना को साकार करने के लिए, इनमें जिन्दगी पैदा करने के लिए, समाज की सजीव रूपरेखा तैयार करने के लिए, श्रीकान्त जेल में सड़ रहा है, नौजवान सड़कों पर नारे लगा रहे हैं, लाखों परिवार तबाह हो रहे हैं, हिन्दुस्तान भूखों मर रहा है।

रात के दो बजे श्रीकान्त पूरी आवाज़ से कोठरी में चीख उठा—"भूखे हिन्दुस्तान में क्रान्ति होगी। मिलों की चिमनियों से आग निकलेगी। किसान खेतों के मालिक होंगे। इन्सान के लहू की गरमी शोषण की भारी भरकम सलाखों को पिघला कर रहेगी। हमारे नौजवान, हमारी माताएँ, हमारी बहनें इस संघर्ष में हमारे साथ हैं। अवसरवादी राजनीति के टुकड़ों पर पलनेवाले जंगखोरो तुम इनको कुचल कर नहीं जा सकते!"

बराबर की कोठरी से मुहम्मद दीन जागते हुए बोला—"श्रीकान्त बाबू अभी सोए नहीं। भाई तुम लोग भी अजीब हो। जब देखो सियासत की कहानी। न जाने किन खयालो में डूबे रहते हो। मुझे देखो आठ दस बार जेल काट चुका हूँ, चेहरे पर शिकन तक नहीं। मैं जेबें काटता हूँ, जाहिल हूँ, आवारा हूँ। अल्लाह की मर्ज़ी।"

श्रीकान्त का अंग अंग विद्रोह कर उठा। वह मुक्का तान कर कहने लगा—"नहीं, मुहम्मद दीन! यह अल्लाह का या तुम्हारा सवाल नहीं। इसके पीछे समाज का दोष है, समाज का कोढ़ है। आनेवाले नए दौर में तुम्हारा भी समाज में एक प्रतिष्ठित स्थान होगा। तुम्हारे अन्दर का सोया हुआ इन्सान जागेगा, वह उठके रहेगा। मुहम्मद दीन, इन्सान कभी पराजित नहीं होगा, हाँ, कभी नहीं होगा।"

हथोड़े की तरह चोट करते हुए यह शब्द मुहम्मद दीन के कलेजें में बिन्ध गए। वह सोचने लगा। वह मन ही मन एक ऐसी तसवीर बनाने लगा जिसमें वह जेबकतरा न होकर, एक सीधा, सच्चा, मेहनतकश इन्सान होगा। उसका अपना छोटा सा घर होगा, घर में आंगन होगा, आंगन में खेलते हुए बच्चे होंगे। भूख से दूर, जहालत से दूर।

श्रीकान्त सो गया था।

"मुहम्मद दीन इन्सान पराजित नहीं होगा हाँ, कभी नहीं होगा।" बहुत देर तक यह शब्द बन्दीगृह की दीवारों से टकरा टकरा कर गूँजता रहा।

जेल की चार दीवारें, हथकड़ियाँ, पुरातन की शृंखलाएँ। इन्सान इनमें कभी नहीं बंन्ध सकता। इन्सान जो विद्रोही है, जो परिवर्तनशील है, जो प्रगति के लिए जीता है, प्रगति के लिए मरता है!

श्रीकान्त जीवन-पर्यन्त जेल में सड़ता रहेगा, अपनी सूखी हड्डियों पर युग की नींव रखता रहेगा-मुक्ति के लिए, शान्ति के लिए, मानवीय सम्बन्धों के लिए!

मुहम्मद दीन कलकत्ते की बस्तियों में इसी तरह बेघर-बार घूमता रहेगा भूखा, मुफ़लिस। दो चार रुपयों के लिए जेबें काटता हुआ, सोनागाछी में रातें गुजारता हुआ।

और नन्दिता! वह मरण-बेला तक हर साँझ किसी की प्रतीक्षा में दिए जलाती रहेगी, अपना आँचल भिगोती रहेगी, एक एक कर साँसों का उतार-चढ़ाव गिनती रहेगी।

श्रीकान्त दुनियादार लोगों की नज़र में एक बहका हुआ नौजवान है, बेकार, सिर फिरा, कागज़ी आदर्शों के लिए अपनी ज़िन्दगी तबाह करता हुआ।

मुहम्मद दीन बिन माँ बाबा का, एक लावारिस जेबकतरा। समाज का कलंक, चरित्रहीन, लोफर।

नन्दिता श्रीकान्त की नवविवाहिता पत्नी। मध्यम-वर्ग की एक पढ़ी-लिखी समझदार लड़की। किसलय जैसी मुलायम। थोड़ी भावुक।

तीन प्राणी जो अलग अलग हैं, जिनके दायरे, जिनके सिद्धान्त, जिनके जीने का ढंग, जिनके स्वार्थ सब एक दूसरे से भिन्न हैं। जिनमें कहीं कोई समानता नहीं फिर भी जिनकी पीड़ाएँ, जिनकी हूकें, जिनकी धड़कनें एक हैं।

दुनिया एक बड़ा बन्दीघर है, जेल उससे छोटा। श्रीकान्त ने जेल में यही अनुभव किया।

मानवी कमज़ोरियों से घिरा, श्रीकान्त प्रायः उदास और बेमन हो जाता जब उसे याद आती कि इन सीखचों से परे उसकी नन्दिता है-कितनी अकेली, कितनी निरीह, पवित्र और भोली! श्रीकान्त का मन पत्थर का था। वह भावुक न था फिर भी वह किन्हीं क्षणों में अपने आपको भूल जाता। कुछ स्मृतियाँ उस पर हावी हो जातीं। वह परछाँईयों में डूबा डूबा न जाने कब सो जाता। सुबह उठ कर देखता दीवार के सुराखों में से छन कर सूरज

की नवोदित किरणें आ रही हैं। दूर नीले आकाश को लाँघता हुआ सबेरा बढ़ा आ रहा है-झिलमिल रश्मियों का जन्म हो रहा है-नए युग का प्रकाश, चेतना का नूतन आलोक, परिवर्तन का स्वर्णिम प्रभात !

मुहम्मद दीन ! उसका कौन था ? वह अपनी वीरान रातें किसी सस्ते अठन्नीवाले चकले में बिता दिया करता था जहाँ औरत के जिस्म में गर्मी नहीं, जज़बात नहीं, प्यार नहीं केवल माँस का लोथड़ा है, भूखी आत्मा की जलन है। उसे किस की याद सताती !

और नन्दिता। वह श्रीकान्त को खो कर पा रही थी। वह दिन भर श्रीकान्त की किताबें पढ़ती रहती। रात में बिस्तर पर श्रीकान्त की एक छोटी तस्वीर अपने सीने से लगा कर सो जाती। इससे उसे सम्बल मिलता। कभी पार्टी के कुछ लोग आकर ढाढ़स बन्धा जाते। किसी तरह दिन गुज़र रहे थे।

जब बंगाल के भूखे, अकाल पीड़ित किसानों ने अपने खेतों के लिए, अपनी ज़मीनों के लिए, अपनी रोटी के लिए अपनी आजीविका के लिए आन्दोलन शुरू किया तो श्रीकान्त प्राइमरी स्कूल की नौकरी छोड़ कर उनके साथ मैदान में उतरा—धरती के बेटों के साथ जो अब गुलाम, कोल्हू के बैल बन कर नहीं रहना चाहते थे। घर पर नई पत्नी रात रात भर प्रतीक्षा करती। श्रीकान्त आता थका माँदा। नन्दिता नाराज़ होती, वह मनाता। जब नन्दिता उससे इतनी रात गये आने का कारण पूछती तो वह प्रत्युत्तर में उसे आलिंगन में भर लेता और कहता—मैं अपने सुख, तुम्हारे सुख को सब में बराबर बराबर बाँट देना चाहता हूँ। इसके लिए संघर्ष की जरूरत है। मैं इस बृहत् लड़ाई का एक अंग हूँ, नन्दिता।" नन्दिता और सिमट कर अपने को श्रीकान्त में लय कर देती। रात पलकों में बीत जाती।

श्रीकान्त का वारंट बहुत पहले निकल चुका था पर वह छिपता रहा, काम करता रहा। एक दिन दो महीने बाद वह रात के झुरमुटे में नन्दिता से मिलने आ रहा था। नन्दिता दरवाज़े पर खड़ी थी। घर से बीस क़दम पर ही सिपाहियों ने उसे पकड़ लिया। वह कुछ मिनटों की सहुलत माँग कर नन्दिता के पास गया। वह अब भी दरवाज़े पर खड़ी थी। उसने, नन्दिता का माथा चूमते हुए कहा—"नन्दिता, रोओ नहीं। मैं बहुत जल्द वापस आऊँगा। तुम्हारे साथ इकट्ठा रहने के लिए, प्यार का संगीत गाने के लिए। तब तक विदा।"

नन्दिता ने सीने पर पत्थर रख लिए। वह प्रायः इन लाइनों को दुहराती—"नन्दिता, रोओ नहीं। मैं बहुत जल्द वापस आऊँगा। तुम्हारे साथ इकट्ठा रहने के लिए, प्यार का संगीत गाने के लिए। तब तक विदा।"

सूरज पूर्व में उगता रहा, पश्चिम में जाता रहा।

पतझड़ आया और बीत गया, बसन्त को निमन्त्रण दे।

वैशाख में पलाश फलों से लद गया।

दिन महीनों में, महीने बरसों में बदल गए।

पर श्रीकान्त न आया, वह आता भी कैसे ? क्योंकि वह एक ईमानदार आदमी था। और हर ईमानदार आदमी इस दुनिया में एक ख़तरनाक आदमी समझा जाता है, क़ानून की दृष्टि में। ईमानदार होना भी एक गुनाह है, पाप है। ईमानदार वही हो सकता है जो जग की, जग के अन्धविश्वासों की, शोषण की परवाह न करे, जो अपने उसूलों के लिए मरना जानता हो। श्रीकान्त उसूलों के लिए मरना जानता था—ऐसे उसूल जिन पर नई इमारत खड़ी होगी, हमारी तुम्हारी सबकी एक इमारत।

अपने छूटने से पहले एक दिन। मुहम्मद दीन रो पड़ा। वह उदास हो गया, उसे कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था। साथियों से बिछुड़ने का दुख। जाते जाते वह श्रीकान्तबाबू से कहने लगा, "बाबूजी, मुझे जेल के बाहर की दुनिया अच्छी नहीं लगती। वहाँ तो सभी नफ़रत करते हैं, यहाँ आप लोग, प्यार से बराबरी से बातें तो कर लेते हैं। हाँ, किसी से, नन्दिता बीबी से कुछ कहना हो, कोई सन्देश हो, तो बता दीजिए। मेरे लायक कोई ख़िदमत। सच, मैं जान लगा कर पूरी करूंगा।"

मुहम्मद दीन, जेबकतरे मुहम्मद दीन की आँखों से आँसू टपटप कर गिर रहे थे।

"नहीं, मोहम्मद दीन तुम अब लौटकर न आना। यहाँ मजबूरी से रहा जाता है, मन से नहीं। और आगे जेबें भी न काटना, मेहनत मज़दूरी कर पेट भरना। मेहनत करनेवालों का ज़माना आ रहा है और तुम्हारे जैसे लोग ही उसके अगुआ होंगे। इसीलिए वह पुरानी कहानी ख़त्म कर दो हमेशा के लिए। अब से रियासत पैसेवालों की नहीं, तुम्हारी होगी। रही नन्दिता। पता

नहीं कैसे होगी, क्या करती होगी। वह बड़ी सीधी और अच्छी लड़की है। उसका मेरे सिवा इस दुनिया में कोई नहीं। तुम उसकी देखभाल करते रहना, उसका मन सँभालते रहना। और हाँ, उससे कहना मैं बहुत जल्द आऊँगा। बस।" श्रीकान्त सीखचे पकड़े बहुत देर तक मुहम्मद दीन को ओझल होते देखता रहा!

कई दिन तक परेशान होने के पश्चात, मुहम्मद दीन ने नन्दिता का घर पा ही लिया। घर क्या था कबूतरखाने का एक दरबा था। उसने आवाज़ दी—"नन्दिता बीबी।"

"कौन?"

"मैं हूँ मुहम्मद दीन। जेल से आया हूँ। श्रीकान्तबाबू का दोस्त।"

नन्दिता ने देखा एक कठोर, बदशक्ल सा आदमी जिसे प्रथम दृष्टि में लफंगे के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता। पर जो अन्दर से कितना स्नेहभरा चिकना, संवेदनाशील था।

मुहम्मद दीन ने देखा कि पूर्णमासी का चाँद जो निकलने से पहले ही बादलों में छिप गया हो। नन्दिता श्रीकान्त के बिछोह में कितनी कुम्हला गई थी, कितनी पीली पड़ गई थी—साँझ के रंगों की भाँति। यह सब होते हुए भी बड़ी स्थिरता, बड़े विश्वास से जी रही थी। अपलक अविचल साधना में रत।

नन्दिता ने कहा, "खड़े क्यों रह गए? अन्दर आ जाओ। मैं परदा नहीं करती।" फिर वह चुप हो गई। श्रीकान्त के बारे में कैसे पूछे? वह डर रही थी कि कहीं मुहम्मद दीन उसकी पीड़ा, उसकी कचोट, उसके हृदय की धड़कनों को न सुन ले।

और मुहम्मद दीन। वह विभुग्ध हो सोच रहा था श्रीकान्त कितना खुशनसीब है। उसकी बीबी इस कच्ची उम्र में भी कितनी जिन्दादिल और कलेजेवाली है। कितनी नेक और शरीफ़। उसका मन हुआ वह इस पाक देवी के पाँव छू ले। वह कुछ पलों के लिए नन्दिता के चेहरे में खो गया। थोड़ी देर पश्चात् वह भर्राये गले से बोला—"नन्दिता बीबी, आप नहीं जानतीं कि मैं कौन हूँ। हो सकता है आप मुझ से नफ़रत करने लगें पर मैं आपको बताऊँगा ज़रूर। मैं कलकत्ते का एक नामी जेबकतरा हूँ। आठ नौ बार का सज़ायाफ्ता। मैं एक बुरा इन्सान हूँ, ज़लील, आवारा। पर विश्वास कीजिए मैं श्रीकान्तबाबू का बड़ा शुक्रगुज़ार हूँ। उन्होंने जेल से मेरी जिन्दगी का रुख़, उसका रवैया, उसकी बुनियाद सभी कुछ बदल दी है। बीबी जी मुहम्मद दीन अच्छे के लिए अच्छा है, गुण्डों के लिए गुण्डा। उसके यहाँ रहम नहीं। वह जान दे सकता है तो ले भी सकता है। मैं गटर में पड़ा हुआ एक कीड़ा था, आज से एक इन्सान हूँ, श्रीकान्त बाबू की बदौलत। इतने बड़े एहसान का बदला कैसे चुकाया जा सकता है—फिर भी मुहम्मद दीन अल्लाह, उस परवरदीगार, की कसम खाकर कहता है कि वह आज से आपके लिए जिएगा, आपके लिए मरेगा!"

"वे कैसे हैं?" नन्दिता ने धीरे से पूछा!

"हाँ, यह तो मैं भूल ही गया। श्रीकान्त बाबू मज़े में हैं। कई रातों तक जगते हुए न जाने क्या देखा करते हैं। शायद तुम्हें देखते हों, सीखचों के पार तुम्हें ढूँढ़ते हों। वह घण्टों खड़े रह जाते हैं, जाने क्या सोचते हुए। बीबी जी, आपको भुलाया भी कैसे जा सकता है।"

नन्दिता के आँखों से दो आँसू गिर गए। न श्रीकान्त ने देखे, न मुहम्मद दीन ने।

भूख, प्यास, अभाव, संघर्षों में दिन गुजरने लगे।

नन्दिता को नई रोशनी मिल रही थी। उसे विश्वास हो रहा था यह बुरे, अनपढ़, नीचे स्तर के लोग भी अच्छे बनाए जा सकते हैं। बस एक नए दृष्टिकोण, एक नए आधार की जरूरत है। फिर समाज का निर्माण भी तो इन्हीं पर निर्भर होता है। मुहम्मद दीन भी एक इन्सान है—कितना सीधा, कितना ईमानदार, कितना मानवीय, वह जेबकतरा था तो इससे क्या?

मुहम्मद दीन की ज़िन्दगी में सैलाब आ गया था। वह अब कलकत्ते की लम्बी चौड़ी विशाल सड़कों पर रिक्शा चलाने लगा। वह हाथ जो जेबें काटा करते थे, अब मेहनत करने लगे। आठ घण्टे की कड़ी मेहनत के बाद, रिक्शा खींचने के बाद, मुहम्मद दीन हाँफ जाता तो नन्दिता बीबी की सरल मुस्कान, उसका सारा बोझ हल्का कर देती। वह थकावट भूल कर एक नई दुनिया में आ जाता जहाँ विश्वास है, प्रेम है, मानवता है और है पुराने को नए में बदल देने का चरम विश्वास। वह महसूस करता कि वह किसी के काम आ रहा है। कोई उसे ग़लीज़ जानवर न समझ कर इन्सान समझता है,

अपने जैसा ही ।

शाम को दिया जले, मुहम्मद दीन नन्दिता बीबी से पढ़ा करता । कुछ सुना करता, कुछ सुनाया करता । अपनी पुरानी ज़िन्दगी, जेबकतरों के अड्डों की बाबत, जेल के अनुभव, श्रीकान्त बाबू की बातें रिक्शेवालों की यूनियन-सभी कुछ । नन्दिता सुना करती मन्त्रमुग्ध हो । वह मुहम्मद दीन में उभरते हुए नए इन्सान का रूप देखती ।

मुहम्मद दीन के पुराने साथी जो उसे उस्ताद मानते थे, उसके इस रूप को देख कर हैरान थे । जाफ़री ने एक दिन कहा भी "अमां उस्ताद ! तुम्हें यह क्या हो गया है । न अड्डे पर मिलते हो न ताड़ीघर में । वह सोनागाछीवाली जवान छोकरी अब भी तुम्हारे लिए तरसा करती है ! तुम थे तो बहार थी । कुछ शग़ल रहता था, मोटे आसामी मिला करते थे । अब तो सब कुछ टूट गया है, तुम्हारे जाने से तितर-बितर । उस्ताद, जान की क़सम, एक बड़ी मासूम, खूबसूरत जवान लड़की मछुआ बाजार में आई है । तुम्हारी राय हो और तुम हाथ बँटाओ तो साफ़ कर दूँ । बंगालिन है, पाकिस्तान से भागी शरणार्थी । देखोगे तो सीने पर हाथ रख रह जाओगे ।"

"जाफ़री तुम इन्सान हो या हैवान । तुम जानते हो मैंने वह पुराना धन्धा छोड़ दिया है । मैं सही मानों में इन्सान नहीं बन सका हूँ पर बनने की कोशिश कर रहा हूँ । बदलते हुए ज़माने की रूह को समझो । हमारा भी कुछ फ़र्ज़ है, हमें भी इस नए कारवाँ के साथ चलना है । मैं अपनी मंज़िल को पूरा करने की क़सम खा चुका हूँ । तुम मुझ से कोई उम्मीद न रक्खो । एक बात और । आगे से कभी मेरे रास्ते में भी आए तो तुम्हारी हड्डी-पसली तोड़ दूँगा । मैं मुहम्मद दीन हूँ, जो कहता हूँ, वही करता हूँ ।"

जाफ़री अपना सा मुँह ले कर रह गया । मोहम्मद दीन कुछ देर लेम्पपोस्ट के नीचे खड़ा रहा और फिर भीड़ में मिल गया ।

तीन-चार दिन बाद ! मुहम्मद दीन रिक्शा लिए खड़ा था । न जाने क्या सोच कर उसने जाफ़री को आवाज़ दी—"जाफ़री, सुनो तुम क्या कह रहे थे उस दिन । वह बंगालन छोकरी—मछुआ बाजार की ! आज रात ही वह मुझे मिलनी चाहिए । समझे, जाओ ! मैं अड्डे पर आऊँगा । रात के ठीक आठ बजे !"

मुहम्मद दीन घर आया । झुटपुटा था । उसने नन्दिता बीबी को प्रणाम किया और कहा —'बीबी जी' मैं मछुआ बाजार जा रहा हूँ । एक ज़रूरी काम है । आने में देर हो जाए तो फ़िक न करें ।"

मछुआ बाजार की एक संकरी गली में । जाफ़री चार पाँच दोस्तों के साथ बैठा ताड़ी पी रहा था । बीच में वह शरणार्थी लड़की बैठी थी । चाय के बाग़में से भगाई गई एक दुबली पतली सी साँवली लड़की । जाफ़री उसके होंठ से प्याला लगाते हुए लड़खड़ाती ज़बान में कहने लगा—"मेरी जान, तुम पर सौ जानें निछावर हैं । एक घूँट पी लो । फिर उसने उस लड़की को ज़बर्दस्ती सीने से चिपका लिया ! उसका फटा ब्लाउज़ उसकी नंगी बाँहें, उसकी बदहवास पुतलियाँ, पतली लड़खड़ाती कमर, उसका बेज़बान चेहरा ।

"रोज़ आती हो फिर भी शरम करती हो । हमारा उस्ताद होता तो निहाल हो जाता, तुम्हारी बलायें लेता ।"

"सुना है उस्ताद का दिमाग़ फिर गया है । जाफ़री, उस दिन वह तुम्हें गाली दे गया । आज आए तो सिर कुचल कर के रख दूँ उसका । समझा क्या है उसने"—रसूल ने बीड़ी का धुआँ छोड़ते हुए कहा ।

"जाफ़री इस लड़की को छोड़ दो । अगर इसके कहीं भी हाथ लगा या तो तुम्हारे लिए अच्छा न होगा ।"

महफ़िल ख़ामोश हो गई ।

मुहम्मद दीन की आँखों में खून उतर आया था । लड़की मुहम्मद दीन के साथ हो ली । मुहम्मद दीन की गरम सलाखों की तरह चमक रही आँखों के आगे, किसी के आने की हिम्मत न हुई ।

पीछे से रसूल ने मुहम्मद दीन के छुरा भोंक दिया । वह सम्हलता कि जाफ़री ने लाठी मार कर उसे ज़मीन पर गिरा दिया ।

जाफ़री, रसूल सब भाग गए ।

मुहम्मद दीन गली में अचेत पड़ा रहा रात भर । खून की धाराएँ बहने लगीं । इन्सान का गरम खून जो अकारथ नहीं जाता ! मुहम्मद दीन के मुँह से निकला—"श्रीकान्त बा-बू, नन्दि-ता बीबी ।" रक्त बराबर बह रहा था, बह कर धरती में समा रहा था, मानो कह रहा हो—तेरे बेटे ने अपना खून अदा कर दिया ।

जेबकतरे मुहम्मद दीन की आँखों में रोशनी नाच उठी, उसके माथे पर कुरबानी का नूर चमकने लगा। वह खुश था कि वह किसी अच्छे उसूल के लिए, माँ बहनों की इज़्ज़त के लिए, इन्सानियत के लिए मर रहा है।

सुबह गली में से दो बाबू गुज़रे। मध्यम वर्ग के दो सफ़ेदपोश बाबू! वे आपस में कहने लगे—"देखो इन्सान मर गया। होगा कोई भिखमँगा।"

मुहम्मद दीन ने सुना। वह दम तोड़ती हुई आवाज़ में चीख पड़ा—"कौन कहता है...इन्सान...मर गया। इन्सान कभी नहीं मर सकता। हाँ कभी नहीं मर......।"

सड़कें, फुटपाथ, गलियाँ गूँज उठीं।
और
लाश सड़ती रही, जिन्दगी हँसती रही।

कलकत्ते की सड़कों पर इन्सानों की ख़रीद, बिक्री आज भी जारी है। इस प्रजातन्त्र, इस बीसवीं सदी में भी।

इलाहाबाद

—जगदीशचन्द्र
एम. ए.

मैं नवल पथ बढ़ चली री!

(१)

तिमिर सी प्रालेय छाया
संतरण कर प्रलय आया
निमिष में विष्कम्भ, नभ के
भाल पर सिन्दूर छाया
मैं अयाचित-दान पाती
प्यार से पीड़ा भली री!

(२)

आह की धूमालियों में
चाह की दृग-थालियों में
यामिनी की मूर्च्छना चिर
साधना की अर्चियों में
मोम सी मैं बाट, फिर भी
ज्वाल पर पल पल पली री!

(३)

मदिर झंझा सी मधुर उस
लहर मिस संकेत देना
मैं लिए तरणी बढ़ूँ तब
तुम दिखा मँझधार देना
मैं सुधी की अमिट रेखा
रेख सी बन मिट चली री!

(४)

मैं चली अज्ञात पथ पर
साथ मेरे पथ अकेला
मदिर झंझा की पलक ने
कुलिश सा अभिशाप झेला
मैं लुटा कर ऊर्मियाँ चिर
अश्रुसी गल, ढल चली री!

(५)

विश्व के अभिशाप शत शत
आज अधरों से पिऊँगी
धूलि पर पद-चिह्न, चिह्नों पर
सदा मैं तो चलूँगी
मैं अमर अभिशप्त, सुंदर
दीप सी बुझ बुझ जली री!

मैं नवल पथ बढ़ चली री!

जोधपुर

कुमारी राज शिवपुरी
एम. ए.

देवरथ

(स्वर्गीय प्रसाद जी की कहानी 'पुरस्कार' का नाट्य-रूपांतर)

आर्यमित्र : (परिहासपूर्ण हँसी) हः हः हः हः अपना परिहास कर रही हो सुजाता ! भाल पर दो तीन रेखाएँ, काली पुतलियों के समीप मोटी और काली बरौनियों का घेरा, आपस में मिली रहनेवाली भवें और ओठों पर हलकी हलकी हरियाली इस गोरे मुख पर यौवन का आवेग प्रकट करती है ।

सुजाता : और यह काषाय आवरण......?

आर्यमित्र : काषाय...(हँसी) पगली ! यौवन काषाय से कहीं छिप सकता है ?

सुजाता : किन्तु संसार को दुःखपूर्ण समझ कर ही तो मैं संघ की शरण में आई थी । आशापूर्ण हृदय पर कितनी ही ठोकरें लगीं तब भी यौवन ने साथ नहीं छोड़ा । सोचा, भिक्षुणी बन कर ही वह शान्ति पा सकूँ ।

आर्यमित्र : भूलती हो । यौवन और शान्ति ? (हँसी) अशान्ति का ही दूसरा नाम यौवन है ।

सुजाता : (व्यथा से) ओह !

आर्यमित्र : मन का दुःख शरीर में न बिखरने दो सुजाता ! तुम चाहती तो अब तक स्वस्थ हो जाती । अपने मन पर अंकुश रखो । उसकी न बनो, उसको अपना बनाओ ।

सुजाता : (करुण स्वर) लेकिन कैसे आर्यमित्र ? यह मुझ से नहीं बनेगा ।

आर्यमित्र : क्यों न बनेगा । भिक्षुणी बन कर काषाय वस्त्र ग्रहण करना......

सुजाता : (बात काट कर) नहीं आर्यमित्र ! (लम्बी साँस) मैं यत्न करूँगी ।

दृश्य परिवर्तन

(प्रातः शोभा)

आर्यमित्र : चैती अमावस्या का प्रभात इतना मधुर ! पीपल की कोमल लाल कोपलों पर प्रभात की किरणें पड़ कर लोट पोट हो जाती हैं । इतनी स्निग्ध शय्या उन्हें कहाँ मिली थी ? कितना सुखद है इनका कम्पन ! और सुजाता ? व्यर्थ ही अपने मन में अंधेरा भर लेती है । लेकिन क्या करे ? शिकारियों का झुंड और वह अकेली हरिणी !

सुजाता : (आ कर) वन्दे आर्यमित्र !

आर्यमित्र : (आश्चर्य से चौंक कर) अरे तुम ! (ठहर कर) हमें स्वीकार है भिक्षुणी का वन्दन ! (स्नेह से) सुजाता ! आज तुम स्वस्थ हो ?

सुजाता : (चुप रहती है)

आर्यमित्र : क्या और एक बार पूछना होगा ?

सुजाता : (पूर्ववत् मौन)

आर्यमित्र : (तनिक जोर से) सुजाता, अब तुम स्वस्थ हो ?

सुजाता : (मान से) अब वह स्वस्थ हो गई है; उसे आर्यमित्र की आवश्यकता नहीं किन्तु......

आर्यमित्र : किन्तु हृदय को उपचार की अत्यन्त आवश्यकता है !

सुजाता : तब भी आर्यमित्र, वह क्या करे ?

आर्यमित्र : अपना ही प्रश्न ! मेरा उत्तर नहीं दोगी ?

सुजाता : (शिथिल मन से) हाँ, अब तो स्वस्थ हूँ ।

आर्य : तब भी पथ्य सेवन करती रहो ।

सुजाता : अच्छा !

आर्य : मुझे और भी एक बात कहनी है ।

सुजाता : कहो न !

आर्य : नहीं, कुछ नहीं.........फिर किसी दिन कहूँगा ।

सुजाता : अच्छा तो क्षमा कीजिए ! मैं पूछती हूँ ।

आर्य : पूछो !

सुजाता : आपने सन्यास कब से ले लिया ?

आर्य : सुन कर क्या करोगी ! इस दुःखमय संसार में काषाय की छाया का सुख लेने की अभिलाषा जाग्रत हो गई । और सुजाता तुम्हारे सुकुमार यौवन को काषाय आवरण शरण दे सकता है तो मैं ही क्यों न अवलंब ग्रहण करूँ ? देखो सुजाता......

देवविग्रह : (आकर रुद्र गम्भीर स्वर में) सुजाता !

दोनो : आप ! महास्थविर !!
(नेपथ्य से वाद्य की तीखी ध्वनि)

देव : अपने कक्ष में जाओ सुजाता !

सुजाता : जो आज्ञा । (जाती है)

देव : और तुम आर्यमित्र ! क्या इसीलिए तुमने चीवर धारण किया है ?

आर्य : (व्यंग से) चीवर ! इस चीवर की मर्यादा मुझे समझा रहे हो ? काषाय चीवर को निर्वाण के रंग में तथागत ने रंगा था। तुमने तो उसे पिपासा की मदिरा में डुबा दिया है देवविग्रह !

देव : आर्यमित्र !

आर्य : आर्यमित्र नहीं, यह भयंकर सत्य है । बुद्धदेव के सद्धर्म का संध्याकाल । देखते नहीं, अस्त की लालिमा से तुम्हारा काषाय विद्रूप हो गया है ।

देव : (सौम्यता से) सरल युवक ! इस गतिशील जगत् में परिवर्तन पर आश्चर्य करते हो ?

आर्य : परिवर्तन की आड़ ले कर अपनी कुरूपता को छिपाने का प्रयत्न मत करो महास्थविर ! यह परिवर्तन नहीं वासना की दिशा में दौड़ना हुआ ।

देव : वासना ! कैसी वासना ?

आर्य : केवल वासना ही नहीं, एकान्त पिपासा भी ! स्मरण है बोधिवृक्ष के नीचे तथागत ने क्या कहा था ?

अतीत का स्वर : "विलासपूर्ण जीवन मनुष्य को अन्धा बना देता है तो घोर तप भी जीवन को सुखा देता है । दोनों निरर्थक हैं । इसलिए ऐसे मध्यम मार्ग पर चलना चाहिए, जिससे वासना पर विजय प्राप्त हो और शरीर की भी रक्षा हो; निर्वाण की प्राप्ति तभी हो सकती है ।"

आर्य : (आवेगपूर्ण) और बुद्धदेव के पश्चात् तुम अपनी वासना को परिवर्तन के आवरण में छिपाना चाहते हो ?

देव : परिवर्तन ही सृष्टि है—जीवन है । स्थिरता मृत्यु का दूसरा नाम है । प्रकृति का यही तो चिरन्तन रहस्य है ।

आर्य : (व्यंगपूर्वक) रहस्य है तुम्हारे भैरवी चक्र का । बुद्धदेव का उपदेश तो दूर रहा, आडम्बर फैला रहे हो ? आज के बौद्धों ने आचार को गौण मान कर ढकोसलों को अपना लिया है ।

देव : आडम्बर ? ढकोसले ?

आर्य : और नहीं तो यह भैरवी चक्र क्या है ? जिस संसार के लिए सिद्धार्थ ने भौतिक सुखों को छोड़ा था, उन्हीं सुखों से पीछे उनके अनुयायी—और साधारण अनुयायी नहीं, तुम जैसे संघस्थविर तक दुराचारी हो गए ।

देव : हमारे धर्माचरण में बाधा देनेवाले तुम कौन होते हो ! और एकान्त में भिक्षुणी सुजाता से मिल कर तुमने किस सदाचार का परिचय दिया ?

आर्य : धर्म और सदाचार मनुष्यों द्वारा बनते हैं—उन्हीं के सुख के लिए । जिस धर्म और सदाचार की शृंखला मनुष्य को जकड़ डालती है उसको तोड़ना होगा—उसका तिरस्कार करना होगा । तुम्हारे धर्म और विहारों का उद्देश्य है-मानव की सेवा ! अबोध युवतियों को भैरवी बना कर उनसे अपनी एकान्त पिपासा तृप्त करना नहीं !

देव : ओह ! उद्दण्ड युवक ! तुम्हें दण्ड मिलेगा । तुमने धर्म के नियमों पर आघात किया है । उन्हें व्यंग्य का विषय बनाया है ।

आर्य : मुझे तुम्हारे धर्म से कोई स्वार्थ नहीं तब तुम्हारे आडम्बर का आतङ्क क्यों मानूँ ?

देव : (क्रोधयुक्त) चुप रहो मिथ्यावादी ! हटो मेरे सामने से !

आर्य : (व्यंग्यपूर्वक ठहाका लगा कर हँसता है) हार गए स्थविर ! (फिर हँसी)

देव : (क्रोध से भुनभुना कर) हुँह...उद्दण्ड... ! (जाता है)

[जाते हुए खड़ाऊ की खट खट सुनाई देती है जिसमें आर्यमित्र की विकट हँसी का स्वर मिल जाता है ।]

दृश्य परिवर्तन

(समुद्र का गर्जन-लहरों का तट से टकराना)

सुजाता : (सोचती है) समुद्र की महानता...ऊर्मियों की नश्वरता...धुंधली सन्ध्या की रंगीन परछाँई...सब असत्य है-मिटनेवाला सत्य ! ! पर जीवन सत्य है, संवेदन सत्य है, आत्मा के आलोक में अन्धकार कुछ नहीं ।

आर्य : (एकाएक आकर) यह क्या कह रही हो सुजाता ?

सुजाता : (चकित) कौन आर्यमित्र !

आर्य : हाँ !

सुजाता : मैं भिक्षुणी क्यों हुई आर्यमित्र !

आर्य : व्यर्थ सुजाता ! आडम्बरों को धर्म की छाया में जीवित रखने के लिए ! देवविग्रह की अतृप्ति को उकसाने के लिए ! !

सुजाता : (लम्बी निश्वास) तुम ठीक कहते हो !

आर्य : और सुनोगी—

सुजाता : अभी तक क्या कम सुना है जो और सुनाओगे ?

आर्य : अब तक जो नहीं कह सका वही सुनाऊँगा ।

सुजाता : अच्छा ! कह डालो ! !

आर्य : मैंने अमावस्या की गम्भीर रात में संघ के सामने पापी होना स्वीकार कर लिया है । अपने कृत्रिम शील के आवरण में सुरक्षित नहीं रह सका । मैंने महास्थविर से कह दिया कि संघमित्र का पुत्र आर्यमित्र सांसारिक विभूतियों की उपेक्षा नहीं कर सकता । पूर्वजों की संचित औषधियाँ, कलिंग के राजवैद्य पद का सम्मान सहज में छोड़ा नहीं जा सकता । मैं केवल सुजाता के लिए ही भिक्षु बना था । उसी का पता लगाने के लिए मैं इस नील विहार में आया था । वह मेरी वाग्दत्ता भावी पत्नी है ।

सुजाता : (निश्चय से) किन्तु आर्यमित्र ! तुमने विलम्ब किया । मैं अब तुम्हारी पत्नी न हो सकूँगी ।

आर्य : क्यों सुजाता ? यह काषाय यदि शृंखला बन रहा है तो फेंक दो इसे । वाराणसी के स्वर्णजटित वसन ही तुम्हारे परिधान के लिए उपयुक्त हैं । रत्नमाला, मणि कंकण और हेमकाँची तुम्हारी कोमल अंगलता को सजाएँगी । तुम राजरानी बनोगी ।

(वायलिन का स्वर तरंगित होता है)

सुजाता : किन्तु......

आर्य : किन्तु क्या सुजाता ? मेरा हृदय विदीर्ण हो रहा है । बोलो—मैं संघ का बन्धन तोड़ चुका हूँ और तुम भी तो जीवन और आत्मा की क्षणिकता में विश्वास नहीं करती ।

सुजाता : (खेद से) किन्तु आर्यमित्र ! मैं वह अमूल्य उपहार जिसे कुलवधु अपने पति के चरणों में अर्पित करती है—कहाँ से लाऊँगी ! वह वरमाला जिसमें दूर्वा दल-सा कौमार्य हरा-भरा रहता है, जिसमें मधूक-कुसुम सा हृदय-रस सींचा जाता है, मैं कहाँ से लाऊँगी तुम्हें कैसे पहना सकूँगी ?

आर्य : क्यों सुजाता, उस में कौन सी बाधा है ?

(क्षण भर मौन)

सुजाता : सुन कर क्या करोगे? जाओ, राज सुख भोगो ! इस जन्म की दुखिया के पीछे अपना आनन्दपूर्ण भावी संसार नष्ट न करो आर्यमित्र ! संघ का बंधन तोड़ दिया है तब मेरे मोह का बन्धन भी तोड़ डालो । (एक लम्बी साँस)

आर्य : सुजाता, सच कहो, क्या तुम मुझ से प्रेम नहीं करती ?

सुजाता : करती हूँ आर्यमित्र ! इसी का दुःख है । नहीं तो भैरवी के लिए किस उपभोग की कमी है ?

आर्य : क्या कहा ? भैरवी !

सुजाता : (वेदनायुक्त) हाँ आर्यमित्र ! मैं भैरवी हूँ । मेरी......

आर्य : (अधीर होकर) मुझे सब ज्ञात हो चुका है सुजाता ! पारिवारिक पवित्र बन्धनों को तोड़ कर जिस मुक्ति की आशा में जनता दौड़ रही है, क्या उस धर्म की यही सीमा है? यह अंधेर ! गृहस्थों का सुख न देख सकनेवालों का यह निर्मम दण्ड, समाज कब तक भोगेगा? सुजाता, मेरा सिर घूम रहा है जैसे देवरथ का चक्र; परन्तु मैं तुमको अब भी पत्नी रूप से ग्रहण करूँगा सुजाता ! चलो —

सुजाता : परन्तु मैं तुम्हें पति रूप से ग्रहण न कर सकूँगी। अपनी सारी लांछना तुम्हारे साथ बाँट कर जीवन संगिनी बनने का दुस्साहस मैं न कर सकूँगी। आर्यमित्र! मुझे क्षमा करो। मेरी वेदना रजनी से भी काली है और दुःख समुद्र से भी गहन! स्मरण है, इसी समुद्र तट पर बैठ कर रेत में हम लोग अपना नाम साथ साथ लिखते थे। यह रोनेवाला (समुद्र के पानी की गर्जन सुनाई देती है) निष्ठुर समुद्र अपनी लहरों की अंगुलियों से उसे मिटा देता था। मिट जाने दो हृदय की सिकता से प्रेम का नाम आर्यमित्र, इस रजनी के अंधकार में उसे विलीन हो जाने दो।

देव : (सहसा एक कठोर स्वर) सुजाता!

दोनों : (एक साथ भय कंपित स्वर) संघस्थविर! देवविग्रह!

देव : तुमने प्रायश्चित्त किया सुजाता?

सुजाता किसके पाप का? तुम्हारे या अपने!

देव : अपने और आर्यमित्र के पाप का! तुमने अविश्वासी हृदय से धर्मद्रोह किया है।

सुजाता : धर्मद्रोह? आश्चर्य!!

देव : तुम्हारा शरीर देवता को समर्पित था किन्तु तुमने आर्यमित्र के स्पर्श से उसे कलंकित...

सुजाता : (बात काट कर तीव्र प्रतिवाद से) चुप रहो असत्यवादी! वज्रयानी नर पिशाच!!

देव : (दाँत किटकिटा कर भयानक स्वर में) मृत्युदण्ड! इस उद्दण्ड स्वेच्छाचार के लिए तुम्हें मृत्युदण्ड से प्रायश्चित्त करना होगा।

सुजाता : (शान्तियुक्त) कठोर से कठोर मृत्युदण्ड भी मेरे लिए कोमल है। मेरे लिए इस स्नेहमयी धरती पर बचा ही क्या है? स्थविर तुम्हारा धर्म-शासन घरों को चूर चूर करके विहारों की सृष्टि करता है। जीवन को कुचक्र में फँसाला है! पवित्र गृहस्थी के बन्धन तोड़ कर तुम लोग भी तो अपनी वासनातृप्ति के अनुकूल एक घर बनाते हो, जिसका नाम बदल देते हो! तुम्हारी तृष्णा साधारण मनुष्य की तृष्णा से तीव्र है! क्षुद्र और निम्न कोटि की है।

देव : (क्रूरता से) तुम अपनी सीमा से आगे बढ़ रही हो सुजाता!

सुजाता : मैं तुम्हारी दासी नहीं हूँ।

देव : किन्तु सुजाता तुम को मरना होगा।

सुजाता : तो मरूँगी स्थविर! किन्तु तुम्हारा यह काल्पनिक आडम्बर और नकली धर्म भी मरेगा। मनुष्यता का नाश करके कोई भी धर्म खड़ा नहीं रह सकता।

देव : बस बहुत हो चुका। तो कल ही......

सुजाता : हाँ, कल ही प्रभात में तुम देखोगे-सुजाता कैसे मरती है!

दृश्य परिवर्तन

[लोगों का कोलाहल। पृष्ठभूमि में मधुर वाद्यों की ध्वनि जो स्पष्ट नहीं सुन पड़ती। क्रमशः संगीत का स्वर निकट होने लगता है और नृत्य के ताल पर घुँघरुओं की छनक सुनाई देती है। मृदंग के ताल पर नृत्य चलता रहता है। क्रमशः नृत्य की गति बढ़ती जाती है]

देव : (कठोर बन कर) बन्द करो! शान्त!! (नृत्य रुकता है) तुम! रंजना! (ठहर कर) सुजाता कहाँ है? तुम भैरवी स्वीकार नहीं की गई तब तुमने नृत्य क्यों किया? (नरमी से) किन्तु समारोह के बीच तुम्हें रोका भी नहीं जा सकता। फिर भी जैसा सृष्टि का विधान हो—हो जाने दो। नृत्य आरम्भ करो रंजना! आज से तुम भैरवी घोषित हो गई।

(पुनः नृत्य की झनकार से मन्दिर गूँजता है)

सुजाता : (अस्पष्ट नृत्य ध्वनि) इस मन्दिर के विशाल स्तम्भ की आड़ में खड़ी होकर, दूर से यह रात्रि-व्यापी उत्सव देख रही हूँ। लेकिन देवता! यह उत्सव किस लिए? क्या जीवन की यन्त्रणाओं से तुम्हारी पुजा का उपकरण जुटाया जाता है? (ठहर कर) प्रतिमे! तुम कुछ न बोलोगी, मुझे ज्ञात है। पर मैं अपने मन को क्या समझाऊँ? ओह!

आर्यमित्र ! तुम तो समझते। सुजाता के अन्तर्प्रदेश में बस कर भी उससे अबोध रहे !

(रथयात्रा का कोलाहल)

दूसरी दिशा ... ...

आर्य : देवविग्रह ने रथयात्रा के लिए प्रयाण किया और मैं किसकी प्रतीक्षा में खड़ा हूँ ? सुजाता ? वह मानिनि संभव है वहीं मिले.........

(कोलाहल क्रमशः निकट)

सुजाता : (सहसा देख कर) अरे......आर्यमित्र भी समूह में दिखाई दे रहे हैं । (पुकारना) आर्यमित्र !

(जनता तुमुलनाद से जयघोष करती है)

(पुनः पुकारना) आर्यमित्र......मैं तुम्हारे साथ चलूँगी आर्यमित्र !...नहीं सुना... काश, तुम सुजाता की पुकार सुन पाते... नहीं नहीं अब तुम से मिल सकना असंभव है...फिर भी...(पुकारना) आर्यमित्र... आर्यमित्र !

[सुजाता की पुकार कोलाहल में डूबती है । कोलाहल कम होता है और देवरथ चलता है । रथ के चक्रों की गम्भीर कर्कश ध्वनि]

आह ! आर्यमित्र (रथ एकाएक रुक जाता है । कोलाहल शान्त होता है) आ.र्य.मि.त्र...

आर्य : कौन ? कौन है...? रथ के चक्र में कौन उलझ गई ? (ठहर कर) ओह ! सुजाता !!

(करुण संगीत की लहरें)

देव : उलझी नहीं आर्यमित्र ! प्रायश्चित्त किया है उसने ।

आर्य : किसकी आज्ञा से ?

देव : धर्म की ।

[एकाएक पुजारियों का दल भागने लगता है। कोलाहल करता हुआ चिल्लाता है—'काला पहाड़...भागो...भागो...दौड़ो काला पहाड़ के सिपाही......' घोड़ों की टापें...तलवारों की खनखनाहट, घायलों की चीख, हो हल्ला, भगदड़ आदि के बाद शान्ति]

(पृष्ठभूमि में करुण संगीत)

आर्य : देवविग्रह ! कहाँ रहा तुम्हारा धर्म ? कहाँ गया तुम्हारे पुजारियों का दल ? 'काला पहाड़' के अश्वारोहियों से अकेले घिर गए ? रथ पर तुम और नीचे सुजाता का शव ! ओह ! देवरथ के चक्रों में उस के रक्त का तर्पण ! शत्रु तुम्हें बन्दी बना कर लिए जा रहा है। किन्तु सुजाता, तुम्हारा शरीर धर्मचक्र में पिस कर कितना वीभत्स बन गया है !

—अनिलकुमार

नागपुर

मेरा पुत्र जब १७ वर्ष का हो गया तो मैंने अनुभव किया कि वह अब शीघ्र ही सिगरेट पीने लग जाएगा । मैंने उससे कहा : "देखो जब तुम सिगरेट पीना प्रारम्भ करो तो मुझे बतला देना । मैं नहीं चाहती कि मुझे इस बात की सूचना पड़ोसियों के द्वारा प्राप्त हो ।"

मेरे पुत्र ने उत्तर दिया—"माँ ! आप इस बात की बिलकुल चिन्ता मत कीजिए । एक वर्ष हुआ मैंने सिगरेट पीना बन्द कर दिया है ।"

—रीडर्स डाइजेस्ट

साहित्य-चर्चा

काश्मीर का अमर कवि महजूर

काश्मीर प्रदेश सदा से गायकों, कलाकारों और शिल्पकारों का देश रहा है। आज़ाद मिर्ज़ा, गुलाम और कवि महजूर काश्मीर के तीन प्रमुख कवि माने जाते हैं। कवि महजूर का जन्म सन् १८८१ में हुआ था। श्री गुलाम मुहम्मद महजूर ने जो कुछ प्रस्तुत किया उससे काश्मीरी साहित्य उन्नतिशील और समृद्धिशाली बना। जीवन के प्रभात से ले कर अन्तिम समय तक इस महाकवि ने अपनी भाषा और साहित्य के विकास के लिए अथक प्रयत्न किए।

महाकवि महजूर ने प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही प्राप्त की। उसके बाद श्रीनगर में उन्होंने अरबी, फ़ारसी और उर्दू पढ़ी। उनके शिक्षक अली गनाई 'आशिक' स्वयं शायर थे। उन्होंने पहले ही भविष्यवाणी की थी कि यह बालक अपने समय में बहुत अच्छा शायर होगा। वस्तुतः यह भविष्यवाणी बाद में सत्य सिद्ध हुई।

शिक्षा समाप्त करने के बाद १६-१७ वर्ष की अवस्था में वे घर लौटे तो उनसे 'पीरी मुरीदी' का कार्य संभालने का आग्रह किया गया। परन्तु उन्हें किसी दूसरे के आगे हाथ फैलाने में घृणा का अनुभव होता था। आज्ञा उल्लंघन के कारण उन्हें घर छोड़ना पड़ा। स्वतन्त्र प्रकृति का यह अभिशाप था।

घर से निकलने पर नौकरी की टोह में वे लाहौर पहुँचे। फिर अमृतसर जा कर उन्होंने खुशनबीसी सीखी। इसी बीच विभिन्न शायरों से उनका साक्षात्कार हुआ। महजूर उन दिनों फारसी में शेर कहते थे। उर्दू और फारसी के महाकवि शिबली ने इनके शेरों को पसन्द किया और कहा कि अपने समय का यह अच्छा शायर होगा।

सन् १९०७ में महजूर को फिर श्रीनगर आना पड़ा। वहाँ उस समय खुशी मुहम्मद 'नाज़िर' मोहतमीन बन्दोबस्त थे। उन्हें शायरी का शौक़ था और इस प्रतिभाशाली युवक शायर को उन्होंने पटवारी के पद पर नियुक्त कर दिया। तब से जीवन भर ये पटवारी के पद पर रहे। ३२ वर्ष की नौकरी में काश्मीर-सरकार ने इनका वेतन लगभग डेढ़ गुना कर दिया और बाद में वे पेन्शन पाने लगे।

महजूर ने सर्वप्रथम अपनी कविताएँ फ़ारसी में लिखीं। फ़ारसी में उनकी पचास से अधिक नज़्में प्रकाशित हुईं। सन् १९२० तक उन्होंने मुख्यतः फ़ारसी और उर्दू में कविता की। उसके बाद वे काश्मीरी भाषा में कविता करने लगे। शीघ्र ही इस जनकवि ने हब्बाखातून और मल्लेश्वरी के समान ही लोकप्रियता प्राप्त कर ली।

महजूर ने काश्मीर के प्राकृतिक सौन्दर्य और संगीत का अपनी कविता में समावेश किया उनकी कविता में जीवन का नवीन सन्देश भी था। कबीर और रवीन्द्रनाथ दोनों का समन्वित रूप हम उनकी कविता में पाते हैं। महजूर की कविता लाक्षणिक होती थी और मुख्यतः वे एक नए समाज के सृजन की बातें करते थे। उनके ये विचार महान् थे।

इनकी कविता 'ग्रीस-कूर' (वनकन्या) बहुत लोकप्रिय हुई और इसके अंग्रेज़ी अनुवाद पर उन्हें विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने काश्मीर के वर्डसवर्थ की उपाधि प्रदान की। उनकी दूसरी लोकप्रिय कविता "कशीर-जनान" है जिसमें उन्होंने काश्मीरी स्त्री के घरेलू जीवन का सजीव करुणा एवं व्यंग्यपूर्ण चित्र खींचा है। इसमें उनकी आत्मचेतना को वाणी मिल गई है।

उन्होंने अपनी काश्मीरी रचनाओं के दस बारह भाग 'कला महजूर' के नाम से प्रकाशित किए। इनका प्रकाशन फ़ारसी तथा देवनागरी दोनों ही लिपियों में हुआ। इन्होंने उर्दू में प्रारम्भ से ले कर अब तक के कवियों का इतिहास 'तारीखे शोहरण काश्मीर' भी लिखा है। इसमें लगभग आठ सौ वर्षों का इतिहास है जिसमें सभी हिन्दु और मुस्लिम कवियों की जीवनी आदि का

वर्णन मिलता है।

महजूर के एक नज्म को काश्मीर के राष्ट्रगान के रूप में अपनाया गया है। महजूर ने अपनी कविता में प्राचीन इतिहास और संस्कृति के साथ साथ नवीन चेतना तथा नए दृष्टिकोण का समन्वय किया जो कि उनकी रचना में चार चाँद लगा देता है।

अतीत और वर्तमान में कुछ ही क्षणों का अन्तर होता है। धीरे धीरे कवि के घर पर भी वृद्धावस्था और कमजोरी ने आक्रमण किया। उन्हें उस समय रक्त-चाप की बीमारी हो गई थी। कुछ लोगों ने इस अवस्था में उन्हें उर्दू में शायरी करने की सलाह दी। परन्तु उस अवस्था में उन्होंने काश्मीरी साहित्य की सेवा करना ही अपना लक्ष्य रक्खा।

वृद्धावस्था में उनकी पुस्तकों का बहुत अधिक प्रचार-प्रसार हो गया। काफ़ी संख्या में उनकी बिक्री होने लगी। इससे उन्हें पर्याप्त आय हो जाती थी। अन्तिम दिनों में भी इस साहित्य प्रेमी ने काश्मीरी काव्य का इतिहास लिखने का प्रयास किया। केवल शायरी तक ही उन्होंने अपने को सीमित न रक्खा। अन्तिम काल में उन्होंने स्वयं कहा था 'अब मैं प्रकृति से अधिक मानवीय एकता में दिलचस्पी लेने लगा हूँ। काश्मीर का इतिहास तो इससे भरा पड़ा है।"

अभी हाल में काश्मीर के इस महाकवि की आत्मा महाप्रयाण कर गई। हब्बाखातून की समाधि के निकट ही इनकी भी समाधि बना दी गई है। लोग कहते हैं सम्पूर्ण काश्मीर उपत्यका का मानो शृंगार ही चला गया हो। जो कुछ हो काश्मीर के इस अमर कवि का भौतिक देह भले ही हमारे बीच न हो परन्तु उसका सन्देश दुनिया के कोने कोने तक पहुँचेगा। नव काश्मीर के इस निर्माता को हम कभी भूल नहीं सकते। भूल भी कैसे सकते हैं काश्मीर की भाषा और साहित्य के लिए इस महाकवि ने अपना जीवन दान जो कर दिया है।

काश्मीरी साहित्य के इतिहास में इस महाकवि का नाम सर्वदा सुनहले अक्षरों में अंकित रहेगा। काश्मीरी साहित्य की प्रगति अवश्यंभावी है और शिक्षा के प्रचार-प्रसार के साथ ही साथ यह अमर कवि देवता का रूप धारण कर लेगा।

सन् १९३९-४० में ही इस महाकवि की ख्याति भारत के कोने कोने तक पहुँच चुकी थी। बलराज साहनी ने 'विश्वभारती' पत्रिका में इस महाकवि की लोकप्रियता के बारे में लिखा था :

"यदि महजूर आज एक कविता लिखते हैं तो वह एक पखवारे के अन्दर ही सर्वसाधारण की ज़बान पर होती है। बालक स्कूल जाते हुए, युवतियाँ धान कूटते हुए, माँझी डोंगी खेते हुए, मजदूर अपने अविराम श्रम में लगे हुए-सब के सब उस कविता को गाने लगते हैं। एक अशिक्षित देश में जहाँ यदि ऐसी चीजों को छपा कर बेचा जाय तो दस-प्रतियों से अधिक न बिकें उनकी कविता को विस्तारित करने की इस विधि को एक करिश्मा ही कह सकते हैं।"

इससे कवि महजूर की लोकप्रियता स्पष्ट दृष्टिगत होती है। आज इस महाकवि की कृतियाँ निश्चय ही काश्मीरी जनता द्वारा अपनाई जाएँगी इसमें सन्देह नहीं। काश्मीरी साहित्य के इस युग निर्माता का विश्व-साहित्य में अपना स्थान सुरक्षित है। अशिक्षित जनता में इनकी कविता का प्रचार-प्रसार इनकी सर्वतोमुखी प्रतिभा का स्वयं प्रतीक है।

बनारस

—कृष्णशंकर व्यास

सब से उत्तम कृति

फ्रैंक लौयड राइट की आयु ८३ वर्ष की है। वे एक महान् वास्तुकलाकार हैं। उनसे प्रश्न किया गया कि उनकी महान् कृतियों में सब से उत्तम कृति कौन-सी है?

उन्होंने उत्तर दिया—"जो अब मैं बनाऊँगा।"

चिट्ठी-पत्री

हिन्दी साहित्य में चोरबाज़ारी

॥

(१)

प्रिय सम्पादक जी,

हिन्दी का यह संक्रान्तिकाल कई विशेषताओं को हमारे सामने प्रस्तुत कर रहा है। वादों और 'टेकनिकों' की विभिन्नताओं के साथ साथ लेखकों की बाढ़ भी उसकी एक विशेषता है। इस 'बाढ़' से जहाँ एक ओर प्रसन्नता होती है वहाँ दूसरी ओर उनके उतावलेपन से क्षोभ भी। हमारे लेखक शब्द-जाल का प्रदर्शन अधिक करते हैं, विषय पर गहराई के साथ मनन चिन्तन बहुत कम। फिर भी गहन विषयों पर लेखनी चलाने की उनकी महत्वाकांक्षा होती है। इसका परिणाम यह होता है कि यहाँ वहाँ की 'पकी पकाई' सामग्री उठा कर वे साहित्य-क्षेत्र में सरपट दौड़ने लगते हैं। खेद तो यह है कि इन 'दौड़ाकों' के प्रमादों की ओर कोई अंगुलि-निर्देश भी करना नहीं चाहता। स्वस्थ आलोचना सो गई है। 'ऊठापटक' का आतंक छाया हुआ है। कहीं तो अकारण व्यक्ति उठाए जा रहे हैं और कहीं अकारण उन पर धूल फेंकी जा रही है! किसी साहित्य-कृति का ठीक ठीक मूल्यांकन नहीं हो पा रहा है।

नवोदित लेखक 'पकी-पकाई' सामग्री लेने में तो तत्परता दिखाते हैं पर सामग्री का स्रोत देने में झिझकते हैं। मैं अपना ही अनुभव आपके सामने रखता हूँ। सन् १९५० की 'कल्पना' (हैदराबाद) के अक्टूबर अंक में मेरा "अवधी और कृष्णायन की भाषा" शीर्षक एक लेख प्रकाशित हुआ था। अवधी भाषा पर प्राप्य सामग्री के अध्ययन के आधार पर मैंने कुछ अनुमान और निष्कर्ष निकाले थे। मैं चाहता था, हिन्दी के विद्वान् उन विचारों को आगे बढ़ाते या उसकी पुनः छान-बीन करते। एक दिन साहित्य भवन लिमिटेड, प्रयाग से प्रकाशित "हिन्दी के विकास में अपभ्रंश का योग" नामक पुस्तक मुझे प्राप्त हुई। उसे ऊपर ही ऊपर देख कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई और मैंने उसके लेखक श्री नामवरसिंह को मन ही मन बहुत साधुवाद दिया। पर जब उसे पढ़ना प्रारम्भ किया तो निराशा होने लगी। अनुसन्धान के नाम पर उसमें बहुत कम दिखाई दिया। पढ़ते-पढ़ते जब 'आधुनिक भाषाओं का उदय' अध्याय में 'अवधी' पर पहुँचा तो मैं चौंक उठा। मैंने देखा, लेखक ने 'कल्पना' के मेरे उक्त लेख को सामने रख कर उसे लिख डाला है—इधर-उधर एक दो पैराग्राफों को जोड़ घटा कर अपनी 'उधारी' पर पर्दा डालने का प्रयत्न किया है। मैंने जिन सन्दर्भ-ग्रन्थों से जो स्थल लिए थे उन्हें उतार कर अपने श्रम की बचत भी कर ली!

उद्धरण दे कर आपकी पत्रिका के स्थान को व्यर्थ ही घेरना होगा क्योंकि नामवर सिंह जी ने अपने ग्रन्थ के लगभग पौने चार पृष्ठों में अवधी पर चर्चा की है। इन पौने चार पृष्ठों में लगभग दो पृष्ठ मेरे लेख की सामग्री से भरे हुए हैं। फिर भी लेखक ने कहीं भी इस ऋण को स्वीकार करने की उदारता प्रदर्शित नहीं की। पाश्चात्य देशों में श्रेष्ठ से श्रेष्ठ लेखक भी इस प्रकार का असौजन्य प्रकट नहीं करता। यह हमारा ही सौभाग्यशाली (?) देश है जहाँ 'चोर बाजारी' दिन रात फूलती फलती है! किमधिकम्।

नागपुर **—विनयमोहन शर्मा**
एम-ए.

॥

(२)

पंडाल शब्द की व्युत्पत्ति

सम्पादक जी,

'अजन्ता' के अगस्त १९५२ के अङ्क में 'चिट्ठी-पत्री' के स्तम्भ में श्री मुरलीधर दिनोदिया जी का एक

लेख छपा है । इसमें उन्होंने लिखा है : "उत्तर एवं दक्षिण भारत की प्रादेशिक भाषाओं, हिन्दी की सगी बहनों और अन्यों के अनेक शब्द हिन्दी में आत्मसात् हो चुके हैं । हिन्दी का सर्व परिचित 'पण्डाल' शब्द गान्धी युग में द्रविड़ (संभवतः कन्नड़) भाषा से आया यह कितनों को ज्ञात होगा ।......"

'अजन्ता' के सितम्बर १९५२ के अङ्क में श्री र. वेंकटरत्नम्, तिरुचरापल्ली ने 'पण्डाल' शब्द पर कुछ प्रकाश डाला है । वे अपने पत्र में लिखते हैं : "अगस्त अंक के लेख में वर्णित 'पण्डाल' शब्द तमिल भाषा का है । 'पण्डाल' नहीं 'पन्दल' ही उसका ठीक रूप है । अंग्रेज़ी में Pandal लिखे जाने के कारण हिन्दी में वह शब्द 'पण्डाल' बन गया । 'पन्दल' का अर्थ है सुखाए हुए नारियल के पत्तों का बनाया (या बुना) छप्पर ।..."

हम श्री दिनोदिया जी के लेख के विचारों से सहमत हैं परन्तु हमें उनकी यह बात ठीक नहीं प्रतीत होती कि 'पण्डाल' शब्द गान्धी युग में द्रविड़ या कन्नड़ भाषा से हमारी भाषा में आया । हम यह मानते हैं कि शब्दों का दूसरी भाषाओं से आ कर मिलना स्वाभाविक है और स्वास्थ्यप्रद है और ऐसा होना आवश्यक है ।

'पण्डाल' शब्द का संस्कृत में रूप है : 'पटल' । 'पटल' शब्द का संस्कृत में अर्थ है—"A roof, thatch" : अर्थात् छत, घासफूस की छत (आप्टेः संस्कृत डिक्शनरी) । 'मुद्राराक्षस' नाटक में चाणक्य की कुटिया के वर्णन में नाटककार ने इस शब्द का इन अर्थों में प्रयोग किया है :—

"विनमितपटलान्तं दृश्यते जीर्णकुड्यम्"

चाणक्य यद्यपि प्रधान मन्त्री थे तो भी एक टूटी फूटी फूस की कुटिया में रहते थे । इसकी छत लटकी हुई थी ।

इस प्रकार यह शब्द पहले हमें संस्कृत में 'पटल' के रूप में मिलता है ।

यह शब्द प्राकृत में मिलता है । प्राकृत की पुस्तकों और प्राकृत कोशों में इस शब्द का रूप मिलता है :

पडल : इसका अर्थ है—

नरिया या मिट्टी का बना हुआ एक प्रकार का छप्पर जिससे मकान छाए जाते हैं । (दे. देसी नाम माला, पाइयलच्छी नाममाला, पाइय सद्दमहण्णवो)

प्राकृत की पुस्तकों में इस शब्द का एक अन्य रूप भी प्राप्त होता हैः—

पडाली : घर के ऊपर की चटाई आदि की कच्ची छत (प्रा. व्यवहारसूत्र)

स्त्रीलिङ्ग में पडाली शब्द का प्रयोग है । पुल्लिङ्ग में यह पडाल होगा । इस प्रकार यह प्रतीत होता है कि यह शब्द 'गान्धी युग' में ही हमारी भाषा का नहीं बना । उससे पूर्व भी हमारी भाषा में किसी न किसी रूप में चल रहा था । इसके विकास का क्रम कुछ इस प्रकार का प्रतीत होता हैः—

पण्डाल : सं. पटल
प्रा. पडल
पडाल
पडाली

क्या यह सम्भव नहीं है कि पडाल से पण्डाल शब्द बन गया हो । प्राकृत के कोशों में इसे 'देसी' शब्दों में लिखा गया है । इसलिए यह विवाद का विषय हो सकता है कि मूलरूप से यह शब्द 'देसी' भाषा का है–या संस्कृत का । हो सकता है कि तमिल भाषा में भी यह शब्द संस्कृत और प्राकृत से गया हो । यह भी संभव है कि इस शब्द का व्यवहार हमारी भाषा में रुक गया हो और गान्धी-युग में फिर इसका हमारी भाषा में तमिल शब्द 'पन्दल' के आधार पर पुनः प्रवेश हुआ हो । कुछ भी हो यह शब्द नया नहीं है, पुराना है और इसका प्रयोग हमारी भाषा में पहले होता आया है ।

हैदराबाद **—सप्तरश्मि**

॥

(२)

'रघुवंश के काव्यकौशल का आधार'

महोदय,

'अजन्ता' के सितम्बर १९५२ के अङ्क में श्रीयुत चन्द्रबली पाण्डे का "रघुवंश के काव्यकौशल का आधार" शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ है । इस लेख में उन्होंने लिखा है—"कवि कालिदास को 'रघुवंश' की क्यों सूझी ! सच तो यह है कि अश्वघोष न शाक्यवंश को इतना सराहता और न कालिदास 'रघुवंश' की चिन्ता में पड़ता । "इक्ष्वाकु" का कुलव्रत किसमें खरा उतरा यही तो प्रश्न है... ।"

श्री चन्द्रबली पाण्डे जी के लिखने के अनुसार कवि कालिदास को 'रघुवंश' लिखने की प्रेरणा अश्वघोष के 'बुद्ध चरित' और 'सौन्दरनन्द' से प्राप्त हुई । परन्तु रघुवंशी या इक्ष्वाकुवंशी राजाओं की प्रशंसा संस्कृत साहित्य में कालिदास से पूर्व भी प्राप्त होती है । कालिदास ने अपने नाटकों में भास का उल्लेख किया है और यह तो सब मानते हैं कि भास का समय अश्वघोष से पहले का है ।

भास का एक "प्रतिमा" नाटक है । इसमें तीसरे अङ्क में यह प्रदर्शित किया गया है कि भरत अपने पिता दशरथ की बीमारी का वृत्तान्त सुन कर नन्दिग्राम से अयोध्या रथ में पधारते हैं । वे अयोध्या में प्रवेश करने से पूर्व "देवकुल" में विश्राम करते हैं ।

'देवकुल' में एक 'प्रतिमा' है। इस 'प्रतिमागृह' में 'इक्ष्वाकुवंश के राजाओं की प्रतिमाएँ बनाई गई हैं। वे उन्हें देख कर कहते हैं:--"अहो, क्रियामाधुर्यं पाषाणानाम्। अहो भावगतिराकृतीनाम्।..." पत्थरोंमें यह कैसी सुन्दर कला है। ये सब चित्र सजीव प्रतीत होते हैं..."

जब वे इन प्रतिमाओं को देख रहे हैं उस समय वे "देवकुलिक" से पूछते हैं कि ये किन की प्रतिमाएँ हैं। देवकुलिक कहता है-इक्ष्वाकु राजाओं की। भरत इन इक्ष्वाकु राजाओं के विषय में कहते हैं:--

"एते ते दैवतानामसुरपुरवधे गच्छन्त्यभिसरी-
मेते ते शक्रलोके सपुरजनपदा यान्ति स्वसुकृतैः।
एते ते प्राप्तुवन्तः स्वभुजबलजितां कृत्स्नां वसुमती-
मेते ते मृत्युना ये चिरमनवसिता च्छन्दं मृगयता।"

ये इक्ष्वाकु हैं जो असुरों के विनाश में देवताओं की सहायता करते हैं। ये अपने पुण्यमय कार्यों से अपनी प्रजा के साथ स्वर्गलोक को जाते हैं। इन्होंने अपनी भुजाओं के बल से समस्त पृथ्वी को जीता है। ये वे हैं जिन्हें मृत्यु मार नहीं सकी। इस 'देवकुल' में उन्हीं राजाओं की प्रतिमा बनाई गई हैं जो जीवित नहीं थे।

अब वे एक एक प्रतिमा को देखना प्रारम्भ करते हैं। देवकुलिक उन्हें दिलीप की प्रतिमा दिखाता है और कहता है :—

"अयं खलु तावत् सन्निहितसर्वरत्नस्य विश्वजितो यज्ञस्य प्रवर्तयिता प्रज्वलितधर्मप्रदीपो दिलीपः"

ये समस्त विश्व को जीत कर विश्वजित यज्ञ करने वाले महाराजा दिलीप हैं।

दिलीप के अनन्तर वे 'रघु' की प्रतिमा के पास जाते हैं और देवकुलिक उनके विषय में कहता है :—

"अयं खलु तावत् संवेशनोत्थापनयोरनेक ब्राह्मणजनसहस्रप्रयुक्तपुण्याहशब्दरवो रघुः"

यह रघु है जिसके लिए सोने और उठने के समय कई हजार ब्राह्मणों के मुख से "पुण्याह" शब्द का प्रयोग होता था। "पुण्याह" अच्छे दिन के लिए आशीर्वाद था।

इसके बाद 'अज' के विषय में :—

"प्रियावियोगनिर्वेदपरित्यक्तराज्यभासे नित्यावभृथस्नानप्रशान्तरजा अजः।"

यह अज है जिसके हृदय में अपनी प्रियतमा की मृत्यु के कारण वैराग्य उत्पन्न हो गया था और जिसने इस कारण समस्त राज्य का परित्याग कर दिया था और शान्ति प्राप्त की थी।

इस के आगे देवकुलिक 'दशरथ' की प्रतिमा का वर्णन करता है।

क्या यह संभव नहीं है कि कवि कालिदास ने अपने 'रघुवंश' लिखने की प्रेरणा भास के नाटक 'प्रतिमा' से प्राप्त की हो और इन्हीं इक्ष्वाकु या रघुकुल की प्रतिमाओं को काव्य की प्रतिमा बना दिया हो। ऐसा प्रतीत होता है, कि अपने नाटकों में कालिदास ने भास का नाम लेकर भास के प्रति अपनी कृतज्ञता को अभिव्यक्त किया है।

हैदराबाद **कश्चित**

॥

(४)

चन्द्रकुँवर बर्त्वाल

('अजन्ता' के सितम्बर अंक में डा. लक्ष्मीसागर जी वार्ष्णेय, एम. ए., डी. लिट्. का 'कवि चन्द्रकुँवर' लेख प्रकाशित हुआ था। उसके सम्बन्ध में श्री आर. आर. बडोला का हमें एक पत्र प्राप्त हुआ है जिसमें उन्होंने 'बड़थ्वाल' और 'बर्त्वाल' शब्द पर आपत्ति उठाई है। इस सम्बन्ध में हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि 'बर्त्वाल' की जगह 'बड़थ्वाल' शब्द का प्रयोग भूल से छप गया है, वैसे 'बड़थ्वाल' और 'बर्त्वाल' दोनों ही शब्द छपे हैं। डाक्टर साहब के लेख में 'बर्त्वाल' शब्द का ही प्रयोग था। इस भूल के लिए हम डाक्टर साहब और 'अजन्ता' के पाठकों के प्रति क्षमा-प्रार्थी हैं। हम नीचे श्री बडोलाजी का पत्र प्रकाशित कर रहे हैं--सं०)

सम्पादकजी,

......यह तो हर्ष का विषय है कि डा० वार्ष्णेय ने कवि चन्द्रकुँवर पर लेख लिख कर स्वर्गीय आत्मा के प्रति न्याय बरता है और दुर्भाग्य का विषय यह भी है कि कवि को हिन्दी साहित्य में वह स्थान न मिल सका जो मिलना चाहिए था। केवल यह ही नहीं वरन् विपरीत इसके कि उन्हें भुलाया जा रहा है। परन्तु कवि के सम्बन्ध में जिस संक्षेप से डाक्टर साहब ने लिखा वह इतना अच्छा, विचारपूर्ण, आलोचनात्मक नहीं बन पड़ा है। लेख से न कवि के जीवन सम्बन्ध और न काव्य रचना पर उचित प्रकाश पड़ सका है कवि का नाम 'बड़थ्वाल' नहीं, 'बर्त्वाल' है तथा बड़थ्वाल और बर्त्वाल दो अलग जाति को प्रदर्शित करते हैं। उदाहरण के लिए डा. पीतांबर बड़थ्वाल ब्राह्मण थे और चन्द्रकुँवर सिंह बर्त्वाल 'सिंह' के प्रयोग से स्पष्टतया राजपूत थे। मैं राजपूत और ब्राह्मण का प्रश्न नहीं उठा रहा हूँ पर जो सही है, वही लिखा जाना चाहिए, यह चाहता हूँ और यह भी चाहता हूँ कि किसी लेखक या कवि के प्रति न्याय तभी बरता जा सकता है जब सम्पूर्ण कवि का गम्भीर अध्ययन करके निष्पक्ष होकर मेहनत करके लेख लिखा जाय।

इलाहाबाद **—रामरत्न बडोला**

नीर-क्षीर

(समालोचना के लिए पुस्तक की दो प्रतियाँ सम्पादक 'अजन्ता' के नाम से भेजी जानी चाहिए)

मैं इनसे मिला

लेखक : पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'
प्रकाशक : आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली
मूल्य : अढाई रुपया

'मैं इनसे मिला' श्री पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' द्वारा हिन्दी के प्रमुख साहित्यकारों से किए गये इन्टरव्यूओं की पहली किश्त है। इस में सर्व श्री गुलाबराय, रामनरेश त्रिपाठी, सुदर्शन, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' धीरेन्द्र वर्मा, चतुरसेन शास्त्री, उदयशंकर भट्ट, महादेवी वर्मा, लक्ष्मीनारायण मिश्र, शान्तिप्रिय द्विवेदी, स० ही० वात्स्यायन 'अज्ञेय' और रामविलास शर्मा के इन्टरव्यू हैं। लेखक ने पाँच किश्तों की सूची दी है जिनमें हिन्दी के अधिकांश प्रमुख लेखकों के नाम हैं। 'कमलेश' जी की योजना निस्सन्देह सराहनीय है और इससे हिन्दी साहित्य की एक दिशा में बहुत कुछ कमी पूरी होगी। हमारे यहाँ आत्मकथात्मक पुस्तकों की पहले से ही कमी रही है और इस दिशा में अब भी कुछ प्रयत्न होता नहीं दिखाई देता। फिर प्रत्येक लेखक आत्म-कथा लिखेगा यह आशा दुराशा मात्र ही है। इस दशा में इन इन्टरव्यूओं का मूल्य और भी बढ़ जाता है। कमलेश जी ने ठीक ही कहा है इम्प्रेशन और इन्टरव्यू में अन्तर है--और उन्होंने अपने दृष्टिकोण के बदले साहित्यकार के दृष्टिकोण को ही प्रकट करने का प्रयत्न किया है। इससे उनमें एक आब्जेक्टिविटी आ गई है।

परन्तु आब्जेक्टिविटी जहाँ सच्चाई को प्रकट करने के कारण महत्त्वपूर्ण है—वहाँ उसमें फारमेलिटी मात्र होने पर साहित्यकार के आत्मदान में चूक की आशंका बनी रहती है। इसलिए प्रश्नोत्तर की प्रणाली एक तरह से इन्टरव्यू लेखक के कार्य में बाधक भी हो सकती है। श्री कमलेशजी ने इस कठिनाई को अनुभव किया है। अतः उनके वे इन्टरव्यू अधिक सफल बन पड़े हैं जिनमें लेखक ने साहित्यकार के व्यक्तित्व के निकट सम्पर्क में आने का प्रयत्न किया है चाहे इससे उसे अपने कुछ पूर्व निर्धारित प्रश्नों का उत्तर न भी मिल पाया हो। हम कह सकते हैं 'निराला' के इन्टरव्यू में कमलेश जी के किसी प्रश्न का सीधा उत्तर नहीं है किन्तु इससे उसका मूल्य कम नहीं होता, वरन् बढ़ता ही है क्योंकि उसमें 'निराला' के भव्य व्यक्तित्व की झलक मिलती है।

लेखक ने जिन साहित्यकारों से इन्टरव्यू लिए हैं उनमें से अधिकांश उसके पूर्व-परिचित हैं अतः इनमें आत्मीयता का अभाव नहीं है। लेखक ने एक उद्देश्य से ये इन्टरव्यू लिखे हैं और वह है 'साहित्यकार की साधना की कठिनाइयों का स्पष्टीकरण।' अतः इनमें प्रशंसा और बुराई का कहीं अवसर नहीं है। इनमें एक मिशन है साहित्य-निर्माण की समस्या को सामने रखने का। लेखक ने प्रत्येक से प्रश्न किया है—क्या साहित्योपजीवी हो कर रहा जा सकता है और अधिकांश का उत्तर नकारात्मक है, अधिक से अधिक कोई 'कल' पर छोड़ देता है। प्रकाशन की समस्या के सम्बन्ध में लेखकों के कथन आंखें खोलने वाले हैं—जहां निराला, चतुरसेन शास्त्री, शान्तिप्रिय द्विवेदी जैसे हमारे साहित्यकार प्रकाशकों द्वारा शोषित किए जाने पर भी जीवन से ऊबते नहीं, साहित्य जिनका जीवन और जीवन का श्रृंगार बना है उस साहित्य का भविष्य उज्जवल के सिवाय क्या हो सकता है? परन्तु आज हमारे साहित्य-निर्माण की यह ज्वलन्त समस्या है जिससे शतुर्मुर्गी खेल खेलना खतरे से खाली नहीं है।

लेखक ने सहृदयता और ईमानदारी से काम लिया है। किसी लेखक के सम्बन्ध में फैले झूठे अपवाद का निराकरण करना वह अपना कर्त्तव्य समझता है। अतः श्री रामनरेश त्रिपाठी के इस कथन पर—"वैसे मान मुझे बहुत मिला है, पर उसके लिए चेष्टा मैंने नहीं की। न किसीसे लेख लिखाए और न अपने मुँह से अपनी प्रशंसा की।" वह इसे त्रिपाठी जी के सम्बन्ध में फैलाए प्रवाद की ओर संकेत समझ कर बात टाल देता है और दूसरा प्रश्न छेड़ता है। श्री अज्ञेय के सम्बन्ध में —"मिलने से पहले लोगों ने उनके बारे में मुझ से कहा था—'अज्ञेय बहुत बड़ा आदमी हो गया है। तीन सौ–साढ़े तीन सौ रुपए के बंगले में रहता है। एरिस्टोक्रेसी की हद है। अब वह पहला अज्ञेय नहीं है। फ़ौज में जा कर बदल गया है।'......मैंने अनुभव किया कि ये सब बातें निराधार हैं, भ्रम हैं......उनमें रत्ती भर की परिवर्त्तन न हुआ था। हाँ गम्भीरता अवश्य कुछ बढ़ी हुई जान पड़ती थी। यह भी देखता था कि उनकी वह मधुर मुस्कान विषाद से पूर्ण हो गई है, पर वे दृढ़ता के कारण विषाद को व्यक्त नहीं होने देते। चूँकि उनको पहले से थोड़ा बहुत जानता था, इसलिए यह अनुभव करता हूँ। साधारण व्यक्ति सहसा आज के अज्ञेय के विषाद को नहीं समझ सकता। ये पंक्तियाँ मैंने सोद्देश्य लिखी हैं। मैं चाहता हूँ कि किसी कलाकार के सम्बन्ध में फैले इस प्रकार के भ्रम पर विश्वास न किया जाय।"

अस्तु, प्रस्तुत पुस्तक कई दृष्टिकोणों से उपादेय है। साहित्यकार के जीवन की परिस्थितियाँ, साहित्य-सृजन की प्रक्रिया, देशी–विदेशी कलाकारों के प्रभाव आदि के संबंध में इसके द्वारा बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है। कुछ नई बातों का पता चलता है कि डा० धीरेन्द्र वर्मा अच्छे चित्रकार हैं और डा० रामविलास शर्मा का महत्वपूर्ण कार्य भाषा विज्ञान में है जो अब प्रकाशित होगा। इन्टरव्यू में साहित्यकार के जीवन के प्रति दृष्टिकोण, उसके राजनीतिक विचार आदि के सम्बन्ध में भी जानकारी पाई जा सकती है क्योंकि साहित्यकार मात्र–साहित्यकार नहीं होता। विश्वास पूर्वक कहा जा सकता है "मैं इनसे मिला" की अगली किश्तों की हिन्दी में उत्सुकता पूर्वक प्रतीक्षा की जाएगी।

विक्रम [मध्यभारत विशेषांक]

सम्पादक : श्री सूर्यनारायण व्यास
विक्रम कार्यालय, उज्जैन
मूल्य : १ रुपया

विक्रम का मध्य भारत अंक संग्रह करने की वस्तु है। मालव के इतिहास, साहित्य, लोक कला और नाट्य तथा दर्शनीय स्थानों का इस अंक से अच्छा परिचय मिलता है। स्थान स्थान पर चित्रों को देने से लेख सुपाठ्य और सुगम हो गए हैं। विक्रमादित्य के उस गौरव-शाली प्रदेश का राष्ट्रीय इतिहास के निर्माण में विशेष योग है। ऐतिहासिक परम्परा के साथ ही इस अंक में मालव के आधुनिक सांस्कृतिक प्रयोगों का उल्लेख मिलता है। कुछ लेखों में शोध सामग्री भी प्राप्य है। 'व्यास–उवाच' के शीर्षक से लिखी गई सम्पादकीय टिप्पणयों में एक शक्ति होती है और होता है अपने राष्ट्रीय गौरव का उठता हुआ अभिमान। प्रस्तुत अंक में 'गणतन्त्र के प्रतीक अशोक या विक्रम महान्', 'कालिदास' टिप्पणयों में सांस्कृतिक पुनरुत्थान और राष्ट्रीयता की भावना दृढ़ स्वरों में अभिव्यक्त हुई है। 'अवन्ती का राजनैतिक इतिहास' और 'मालव का संक्षिप्त राष्ट्रीय इतिहास 'लेखों में मालव के गौवरमय इनिहास की झांकी है। 'भोजदेव प्रदत्त बेटमा का ताम्रपत्र' शोधपूर्ण लेख है। श्री बसंती–लाल बम का एक लेख मालवा के हिन्दी पत्रों की प्रगति पर प्रकाश डालता है। कुछ कविताओं और 'नाना को नतीजो' कहानी में लोक भाषा (प्रान्तीय) की ओर रुझान प्रकट हुई है जो लोक भाषाओं के विकास की स्वस्थ मनोवृति की द्योतक है। विक्रम के सम्पादन के पीछे एक लगन, अध्यवसाय और सुरुचि का परिचय मिलता है। हम विक्रम के इस अंक का स्वागत करते हैं और आशा करते हैं हमारे महान् राष्ट्र के अन्य राज्यों के लिए यह प्रेरणादायक होगा।

मनोविज्ञान

सम्पादक : प्रो० लालाजीराम शुक्ल,
प्रकाशक : मनोविज्ञान शाला, सिद्धगिरि, बनारस
वार्षिक मूल्य : चार रुपया।

काशी की मनोविज्ञानशाला उत्तर-प्रदेश में मनोविज्ञान के ज्ञान के प्रचार का स्पृहणीय प्रयास कर रही है। 'मनोविज्ञान' मनोविज्ञानशाला का मुखपत्र है और उसे मनोविज्ञान के योग्य विद्वानों का सहयोग प्राप्त है। हिन्दी में विशिष्ट विषयों पर निकलने वाली पत्रिकाएँ इतनी कम हैं कि उन्हें उंगलियों पर गिनने की भी आवश्यकता नहीं होती। बीसवीं सदी के ज्ञान के विकास में मनोविज्ञान का स्थान अन्यतम है और हिन्दी–भाषी

जनता में उसके प्रचार का बहुत कुछ श्रेय 'मनोविज्ञान' को प्राप्त होगा। हिन्दी में मनोविज्ञान सम्बन्धी ठोस पुस्तकों के लेखक लालजीराम शुक्ल के योग्य सम्पादन में इस पत्र की सफलता में कोई सन्देह नहीं हो सकता। 'मनोविज्ञान' को देख कर बरबस अमेरिका के पत्र 'Psychology' की ओर ध्यान जाता है और दोनों की साज-सज्जा और आकार प्रकार का अन्तर बुरा लगता है। पर जहाँ हमारी सरकार मनोविज्ञान जैसे पत्र को पाँच सौ रुपये ही आर्थिक सहायता दे सकती है वहाँ क्या कहा जाय? प्रस्तुत अङ्क (अक्टूबर ५२) के सम्पादकीय में मनोविज्ञान शाला की प्रगति पर टिप्पणी है। डा० ओटो उल्फ का भाषण और श्री सुरेन्द्रनाथ गोयल के लेख 'प्रेम' और 'सहानुभूति' के मनोवैज्ञानिक महत्व पर प्रकाश डालते हैं। डा० उल्फ का कथन है—"प्रो० शुक्ल की पद्धति में जर्मनी के नये मनोविज्ञान का समावेश होता है......जर्मन मनोविज्ञान व्यक्ति को सम्पूर्णता की ओर प्रगतिशील पदार्थ मानता है। इस प्रगति का लक्ष्य देवत्व अथवा परमात्मा की प्राप्ति है।" हम यह कहने की अनुमति चाहते हैं कि जर्मनी के नये मनोविज्ञान की एक प्रवृत्ति जिसका नेतृत्व एरिक फ्राम कर रहे हैं व्यक्ति की अन्तरभूत शक्तियों (Potentialities) की पूर्णता को लक्ष्य करती है और उसका आधार आध्यात्मिक न होकर मानव-प्रेम है। एरिक फ्राम की थीसिस 'फियर ऑफ फ्रीडम' 'एकाकीपन की अनुभूति' को हीन भावना का कारण स्थापित रहती है और जिस व्यक्ति में इस हीन भावना की अनुभूति की मात्रा अधिक होती है वह अपने व्यक्तित्व का विकास नहीं कर पाता वरन् अपने व्यक्तित्व का नेता, वर्ग, राष्ट्र या ईश्वर के रूप में लय कर देता है। आध्यात्मिकता व्यक्तित्व के विकास का मार्ग न होकर उसके लय का है। परन्तु हम आशा करते हैं 'मनोविज्ञान' में विभिन्न दृष्टिकोणों के विवेचन के लिए स्थल हो सकता है। 'मनोविज्ञानशाला में मानसिक चिकित्सा लेख' अत्यन्त उपयोगी है। क्या हम यह सुझाव पेश कर सकते हैं कि 'मनोविज्ञान' में एक 'पाठकों के पत्र' का स्तम्भ रहे जिसमें व्यावहारिक मनोविज्ञान सम्बन्धी प्रश्नों का योग्य सम्पादक द्वारा स्पष्टीकरण हो, इससे पत्रिका और भी उपयोगी हो सकती है तथा लोगों की मनोविज्ञान के प्रति रुचि भी बढ़ेगी। मनोविज्ञान हिन्दी का एक श्रेष्ट पत्र है।

सतरंगी (सचित्र मासिक)

सम्पादक—श्री सूर्यप्रताप सिंह

प्रकाशक— प्रकाशन केन्द्र-कार्यालय 'सतरंगी'
२५/१ बी. रतन सरकार गार्डन स्ट्रीट
कलकत्ता ७.

मूज्य--आठ आना, वार्षिक पाँच रुपए, चार आना।

'सतरंगी' मासिक का प्रकाशन इसी मास आरम्भ हुआ है। रंग एक नहीं, सात! 'सतरंगी' में एक ताज़गी है। आजकल अधिकांश पत्रों में साहित्यिक लेखों—साहित्यसम्बन्धी आलोचनाओं की अधिकता होती है। विद्यार्थी-वर्ग या लेखकों के एक सीमित समुदाय को छोड़ कर साधारण जनता को उन लेखों के प्रति आकर्षण नहीं होता। हम यहाँ उन कारणों में नहीं जाना चाहते जिनसे जनता और साहित्य का सम्बन्ध दूरतर होता है-परन्तु अवश्य ही हमारे मासिक पत्रों में साहित्यविषयक लेखों के अतिरिक्त विविध विषयों की सामग्री काफ़ी परिमाण में होनी चाहिए। हमें हर्ष है 'सतरंगी' की पाठ्य सामग्री में जन-रुचि के प्रति विज्ञता प्रगट होती है और उसमें विभिन्न विषयों को स्थायी स्तम्भों के रूप में प्रकाशित किया गया है—मनोविज्ञान, यौन-विज्ञान, शरीर-विज्ञान, जीवन-दर्शन, नया साहित्य, कला और जीवन, सिनेमा। फिर भी हम कहना चाहेंगे सिनेमा स्तम्भ की टिप्पणियाँ सुरुचिपूर्ण नहीं हैं; आरम्भ में अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करते हुए सम्पादक ने 'प्रयोगवाद' पर जो फ़तवा दिया है--'प्रयोगवादी कविताएँ उच्छृंखल एवं दुरूह भावनाओं की प्रतीक हैं, जिससे न तो काव्य का ही भला है और न उनके पाठकों का अतः प्रयोगवादी कवि सोच समझ कर ही नया प्रयोग करें......"-'आउट-आफ-प्लेस' लगता है। किसी वाद विशेष का विरोध बिना उसका विवेचन किए समझ में नहीं आता। अक्टूबर मास के अंक में स्वर्गीय कवि चन्द्रकुँवर बर्त्वाल का एकांकी 'देवगुरु का अभिशाप' प्रकाशित हुआ है। एमिल ज़ोला के उपन्यास नाना का अनुवाद श्री बालकृष्ण शास्त्री धारावाहिक रूप से प्रस्तुत कर रहे हैं। लेखों और कविता का स्तर उत्तम है।

—हरिकृष्ण पुरोहित
एम-ए.

हैदराबाद

सामयिक

श्री नन्दलाल वसु

अहमदाबाद से प्रकाशित होनेवाले गुजराती मासिक पत्र "कुमार" के सितम्बर १९५२ के अङ्क में श्री नन्दलाल वसु की जीवनी प्रकाशित हुई है। उसमें से कुछ अंश नीचे दिया जा रहा है :

"मुंगेर ज़िले के खड्गपुर ग्राम के एक बड़े जमींदार के एक कर्मचारी के घर में श्री नन्दलाल वसु का जन्म हुआ। उसके बाद उनके पिता ने दरभंगा राज्य में नौकरी कर ली इसलिए श्री नन्दलाल वसु की शिक्षा का प्रारम्भ हिन्दी से ही हुआ। वहीं उन्होंने ७ वीं कक्षा तक अंग्रेज़ी का अध्ययन किया। श्री नन्दलाल वसु का हिन्दी पर अच्छा अधिकार है और उसका मूल कारण यही है।

इसके पश्चात् उन्हें कलकत्ता के एक हाईस्कूल में भेजा गया। वहीं उन्होंने अपनी अन्य शिक्षा के साथ चित्र बनाने प्रारम्भ किए। दुर्गा पूजा के समय वे मिट्टी की दुर्गा बनाते और मुहर्रम के समय तावूत। धीरे धीरे चित्रकला के प्रति उनकी रुचि बढ़ती गई। वे बाज़ार से चित्र खरीद लाते और उनके आधार पर चित्र बनाते। उस समय राजा रवि वर्मा के चित्रों की भारतवर्ष में बड़ी धूम थी। ये चित्र श्री नन्दलाल वसु को बहुत पसन्द आते। आज भी इनमें से कई चित्र नन्दलाल वसु की कुटिया में लगे हुए हैं। उन्होंने ग्रीक चित्रों के नमूनों पर भी कई चित्र बनाए।

मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् उन्होंने कालेज में प्रवेश किया परन्तु उन्हें तो चित्रकला की धुन लग गई थी इसलिए वे कालेज के प्रथम वर्ष की परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो गए। उन्होंने दो बार फिर उत्तीर्ण होने का प्रयत्न किया परन्तु वे अपने प्रयत्नों में असफल रहे। कालेज में प्रविष्ट होने से पूर्व ही उनका विवाह हो गया था। श्वशुर महोदय ने "कामर्स" सीखने के लिए भेजा। छै महीने उन्होंने "कामर्स" की शिक्षा प्राप्त की। इस बीच में श्री नन्दलाल वसु ने श्रीयुत अवनीन्द्रकुमार ठाकुर का नाम सुना। उन्हें ज्ञात हुआ कि उनके पड़ोस में ही एक विद्यार्थी रहता है और वह उनकी कलाशाला में चित्रकला सीखने के लिए जाता है। वे अपने कुछ चित्रों को ले कर अपने पड़ोसी विद्यार्थी के साथ श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुर के पास गए। श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने उनके चित्रों में एक नवीन प्रतिभा का अनुभव किया। नन्दलाल वसु अवनीन्द्रनाथ ठाकुर के शिष्य बन गए।

यहाँ आने से पूर्व उन्हें भारतीय और पश्चिमीय चित्र कला के भेद का ज्ञान न था। उनकी प्रतिभा का विकास होने लगा और उन्होंने अच्छे अच्छे चित्र बनाने प्रारम्भ किए। सब से पहला उनका सुन्दर चित्र "सरस्वती" था। उसके पश्चात् रामायण और महाभारत की कथाओं के आधार पर उन्होंने बहुत से चित्र बनाए। उनके चित्र लोकप्रिय होने लगे और उन्हें श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुर के समकक्ष समझा जाने लगा।

इस अरसे में इंग्लैण्ड से लेडी हैरिंगहाम 'अजन्ता' के भीतिचित्रों की अनुकृति के लिए भारत में पधारीं। श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने श्री नन्दलाल वसु तथा श्री असित हलधर को इस मण्डली के साथ अजन्ता अपने खर्चे से भेजा। यहाँ रह कर श्री नन्दलाल वसु ने प्राचीनतम चित्रकला में सुदक्षता प्राप्त की।

सन् १९१३ में श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर को 'नोबल-प्राइज़' मिला। उन्होंने इस समस्त राशि को 'विश्व-

भारती' को दान कर दिया। 'कला भवन' की स्थापना की और उसके लिए श्री नन्दलाल वसु को निमन्त्रित किया। श्री नन्दलाल वसु को उस समय लखनऊ की नवीन हिन्दी कलाशाला की ओर से ९००) मासिक वेतन पर निमन्त्रित किया गया था और ओरिएण्टल आर्ट सोसाइटी की ओर से उन्हें ३००) मासिक वेतन मिल रहा था। विश्वभारती के कलाभवन की ओर से उन्हें इतना वेतन नहीं दिया जा सकता था। फिर भी उन्होंने इन सब को छोड़ कर शान्तिनिकेतन में कलाभवन को २००) मासिक वेतन पर सँभाल लिया।

ये अपने चित्र निरन्तर बनाते रहते हैं। इनके चित्रों में नई कल्पना और नई शैली है। कोई चित्र मुग़ल शैली पर है, कोई राजपूत, कोई जापानी और कोई ईरानी। एक बार इन्होंने बोध गुफ़ा में एक पोस्ट-कार्ड पर चित्र बनाया। रंग के स्थान पर उन्होंने गुफ़ा की मट्टी को लगाया और तूलिका के स्थान पर अंगुलियों से काम लिया।

एकमात्र चित्रों में ही इनकी कलावृत्ति का प्रदर्शन नहीं होता। लकड़ी में चित्रों को काटना, मिट्टी की मूर्त्तियाँ बनाना इत्यादि हस्तकलाओं में ये निपुण हैं। अपने प्रत्येक चित्र में वे अपने हाथ की बनाई हुई अपने नाम की मुहर लगा देते हैं। कभी कभी यात्राओं में उनके पास अपनी मुद्रा नहीं होती उस समय वे कभी चीनी के प्याले के टुकड़ों से, कभी ईंट के टुकड़ों से, कभी लकड़ी के टुकड़ों से और कभी कोयलों से अपनी मुद्रा बना लेते हैं।

सामान्य दैनिक जीवन में भी उनकी इस रसमय कलावृत्ति का परिचय प्राप्त होता है। एक बार श्री विधुशेखर शास्त्री भट्टाचार्य ने मज़ाक में यह शर्त्त लगा दी कि श्री नन्द बाबू अपने उपस्थिति के रजिस्टर में अपने नाम के आगे अपनी उपस्थिति के खाने में सदा कोई नया चित्र बनाएँ। आज तक नन्दबाबू इस शर्त को पूरा कर रहे हैं।

जो लोग शान्तिनिकेतन गए हैं उन्हें मालूम है कि शान्तिनिकेतन में सबसे अधिक महत्वपूर्ण व्यक्तित्व श्री नन्दलाल वसु का है और सब से अधिक देखने योग्य वस्तु कलाभवन है।"

॥

राग-रागिनी का रंगचित्रण

डा० आनन्द कुमारस्वामी ने भारतवर्ष के मध्य-युग के विशाल रंगचित्रण का जो सूक्ष्म और विश्लेषणात्मक अध्ययन किया था उससे न केवल चित्रकला के विद्यार्थियों को बड़ी महायता प्राप्त हुई और उससे उनके सम्मुख भारतीय कला के एक सरल और दिलचस्प पहलू के अध्ययन के लिए अनुसंधान का एक नया क्षेत्र खुल गया अपि तु उससे बहुत सी चित्रकला की मुख्य बातें सुस्पष्ट हो गईं और बहुत-सी भ्रान्त धारणाएँ दूर हो गईं।

एक समय था जब कि यूरोप के और भारतवर्ष के चित्रकला के श्रेष्ठ आलोचक भी राजपूत रंगीन चित्रांकण कला और मुग़ल रंग चित्रकला को एक ही समझते थे और उन्हें राजस्थानी स्कूल की जयपुर कलम (शैली) और राजपूत रंगचित्रों के पहाड़ी स्कूल के कांगड़ा या वशोली कलमों का कुछ पता ही नहीं था। वेशभूषा, अलङ्करण, पृष्ठभूमि, एकत्रीकरण, मुख का ढाँचा, रङ्ग-योजना और बनावट—इन सब का सूक्ष्मतया अध्ययन नहीं किया गया था और उनकी तिथियों और विचारधाराओं का उपयोग नहीं किया गया था।

यद्यपि अब यूरोप में और इस देश में रंगचित्रों के विषय में बहुत सी अन्य बातों का पता लग गया है तो भी डा० कुमारस्वामी की पुस्तक 'राजपूत रंगचित्रणकला' (खण्ड २) अपने विषय की एक प्रामाणिक पुस्तक समझी जाती है। प्राचीन काल की कला के विषय में तिथियों, शैलियों और स्कूलों का पता लगाना संकटपूर्ण कार्य है। कुमारस्वामी ने इस कला का अध्ययन जिस आधार पर किया था वह पर्याप्त नहीं था। फिर उन्होंने विदेशों में रह कर अकेले ही इस कार्य को किया इसलिए उसमें कुछ छोटी छोटी भूलों का रह जाना स्वाभाविक था। उन्होंने कई छोटे विभागों में स्कूलों के सम्बन्ध में कुछ भूलें की हैं। उन्होंने जम्मू के स्कूलों के स्थान पर वशोली और वशोली के स्थान पर राजस्थानी स्कूल लिख दिया हैं। परन्तु जो सामग्री उन्हें प्राप्य थी उसे देखते हुए उन्होंने जो कुछ भी अनुसंधान किया वह बहुत महत्वपूर्ण था। अब राजपूत रंगचित्रों को शैलियों के उपविभागों में श्रेणित किया जा सकता है क्योंकि अब इस क्षेत्र में एक तो अधिक सामग्री प्राप्त हैं और दूसरा अनुसंधानकर्ता भी बहुत से हैं।

डा० कुमारस्वामी रागिनी माला की रंगचित्रणकला को राजपूत कलम का समझते हैं और उन्हें कला के सब से प्रामाणिक उदाहरण समझते हैं तथा उन्होंने इसकी

तिथि प्रारम्भिक १६ वीं सदी में रखी है । डा० कुमारस्वामी ने ही सब से पूर्व संसार के विद्वानों का ध्यान राजपूत रंगचित्रण कला की अपूर्व विशेषता और महत्व की ओर आकर्षित किया। इस शैली के रङ्गचित्रों में, चित्रगत रचनाओं में अमूर्त वस्तुओं को मूर्तिमान् किया है। मानुषीय मनोभाव, प्रकृति की मानसिकता, संगीतपूर्ण स्वर इत्यादि को इन चित्रों में आकर्षक और मौलिक रूप से प्रदर्शित किया गया है ।

इनमें सब से प्रसिद्ध राग-रागिनी और नायक-नायिकाओं की चित्रमाला है । इनकी ओर चित्र कला के प्रेमियों, विद्यार्थियों और आलोचकों का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित हुआ है । इनके विषय में यह प्रश्न अधिकतर पूछा जाता है: "इन राग–रागिनियों को चित्रों में कहाँ तक चित्रित किया जा सका है और वे कहाँ तक संगीत की कला और विज्ञान का प्रतिनिधित्व करते हैं ! उनके पीछे कहाँ तक संगीत के व्यवस्थित विचार हैं ? क्या वे किसी गायक या संगीतकार के लिए राग-रागिनियों के आन्तरिक तात्पर्य को अभिव्यक्त करते हैं और क्या इन राग-रागिनियों और चित्रों से किसी प्रकार का समझ में आ सकने वाला सम्बन्ध है जो कि इन कलाकारों के ध्यान में था ।"

गायकों के विचार में दोनों में इस प्रकार का सम्बन्ध नहीं है । १९२५ ई० में लखनऊ में अखिल भारतीय संगीत सम्मेलन हुआ था : इसमें कुछ चित्रों में इस विषय पर वाद विवाद हुआ । मैंने इस विवाद के आधार पर अनुभव किया कि वे राग-रागिनियों के रंगचित्रों को कल्पित और असम्बद्ध समझते हैं ।

पर्सी-ब्राउन के शब्दों में सुन्दर से सुन्दर रागिनी का चित्र एक "दृश्य संगीत" है। इन चित्रों में संगीत और चित्रकला को मिलाने का प्रयत्न नहीं किया गया है परंतु इनमें भावों का चित्रीकरण है जो कि हर संगीतकार या राग-रागिनी के श्रोता के हृदय में जागृत हुए और सुन्दर रेखा और रंगों में परिवर्तित कर दिए गए । इनमें एक विशेष मानसिक अवस्था या भावों का प्रदर्शन है जो कि एक विशिष्ट रागिनी में स्वाभाविक रूप से अन्तर्हित होते हैं। यदि कला अभिव्यक्ति है तो प्रत्येक मानसिक अवस्था या भाव को सम्बन्धित कला के रूप में अभिव्यक्त किया जा सकता है और यदि 'स्थापत्य' को 'पाषाणित संगीत' कहा जा सकता है तो रागिनी के रंग चित्र को एक "दृश्य संगीत" कहा जा सकता है ।

इस प्रकार के चित्र की प्रणाली का स्रोत क्या है और किस आधार पर इसका विकास हुआ—इसे समझना वास्तव में कठिन है। फिर भी इतना तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इसका प्रारम्भ १५ वीं और १६ वीं शती के मध्य में हुआ। इसकी प्रेरणा संस्कृत और हिन्दी के साहित्यों से प्राप्त हुई। लोकगीत, भक्ति के पद, धार्मिक कविता और भक्ति के विचार इस समय प्रचलित हुए। सन्त और गायक इधर से उधर विचरण कर श्रोताओं के मन को प्रभावित कर रहे थे। वैष्णव धर्म और रहस्यवाद मनुष्यों को उच्च जीवन और उदात्त कलाओं के लिए प्रेरणा प्रदान कर रहा था। अतः इस युग में अनेक प्रकार की कलात्मक सृष्टि हुई। राजपूत रंगचित्र उस संस्कृति के संगीतमय भावनाओं का मूर्त रूप है और अजन्ता गुप्त राजाओं के बौद्धिक कारनामों का चित्र है ।

राग-रागनियों के चित्र क्या हैं और उनके सौन्दर्य की विशेषताएँ कौन-सी हैं ? एक राग एक स्वर का साँचा है जिसके अष्टकों में कई ध्वनियाँ होती हैं। भारतीय संगीत में ये ध्वनियाँ ही इस स्वर की आधार हैं। रागणियाँ रागों की स्त्री दशाएँ है। प्रत्येक राग का एक विशिष्ट मनोभाव और अवस्था है जिनका कि एक विशेष समय, ऋतु और अवसर के साथ सम्बन्ध है। भिन्न भिन्न रागों की संगीतमय प्रकृति का भारतवर्ष के गायकों को ज्ञान था यद्यपि इस समय इनकी मानसिक दृश्यता के सम्बन्ध में उनकी "निर्दोष रेखाओं और धड़कते हुए रंगों" पर प्रश्न किए जाने लगे हैं। यह कहा जाता है कि कुछ राग तो प्रातःकाल ही गाए जाने चाहिएं और कुछ सन्ध्या के समय–कुछ वसन्त ऋतु में और कुछ हेमन्त में।

विषय का श्रेणीकरण बड़े विस्तृत रूप में किया गया है। श्री सर एस-एम टागौर ने भावों को छै अवस्थाओं और समयों के साथ सम्बद्ध किया है : "श्री राग ओस पड़ने की ऋतु में और वसन्त राग वसन्त ऋतु में गाया जाता है; भैरवी तपस्या और पूजा (आदर) का राग है। मधुयामा शान्त रात्रि में, मेघ राग वर्षा में और नट्टनारायण लड़ाई और भीषण साहस का राग है।"

लक्ष्मण पिल्ले भिन्न भिन्न रागों के साथ भिन्न भिन्न जुड़े हुए भावों के विषय में कहते हैं—"टोडी और भैरवी राग वैभव को प्रदर्शित करते हैं और उस

वैभवपूर्ण राजा के प्रयाग के सदृश प्रतीत होते हैं जो अपनी राजकीय विभूति से अलंकृत है। आसावरी और पुन्नगावरली दुःखित अवस्था का प्रदर्शन करते हैं और ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे कि वे किसी अन्याय के कारण राजगद्दी से उतारे हुए राजा की वकालत कर रहे हों। गिरवनी और वसन्त उस शान्त ऋषि के समान प्रतीत होते हैं जो प्रकृति की सुन्दरता के ध्यान में गम्भीरतया बैठा हो; मोहन और पूर्व कल्याणी एक उस लजीली स्त्री की तरह हैं जो अपने प्रेम को उसी प्रकार गुप्त रखती है जैसे कि एक गुलाब हरित कुञ्ज में अपनी पत्तियों को छुपा कर रखता है और अपने सौन्दर्य के प्रति सजग रहता है; नीलाम्बरी और यदुकुल कम्भोजी नम्रतापूर्ण और प्रार्थनापूर्ण होते हैं। जिस प्रकार एक भक्त का हृदय भगवान् के सम्मुख भक्ति से पूर्ण हो उठता है उसी प्रकार ये भी आत्मा को भक्ति में सराबोर कर देते हैं। प्रत्येक राग में अपना हास्य और अपने ही अश्रु होते हैं—अपनी ही वेदना और करुणा होती है, अपनी ही उदात्त और उच्च भावनाएँ होती हैं जो श्रोता के हृदय पर अपना एक विशिष्ट प्रभाव उत्पन्न कर देती हैं।"

ऐसी दन्तकथाएँ प्रसिद्ध हैं जिनसे ज्ञात होता है कि किस प्रकार तानसेन, त्यागराज, गोपाल नायक, टोडी सीतारामय्या आदि ठीक राग गाते हुए ऐसी अवस्था और ऐसे आवेश में आ जाते थे और ऐसे कार्य करते थे जो चमत्कारपूर्ण प्रतीत होते थे। संगीत के चित्रों में संगीत की इसी स्वाभाविक शक्ति को चित्रित करने का प्रयत्न किया गया है। उदाहरणार्थ टोडी रागिनी को लीजिए—यह वसन्त राग की पत्नी है। इसे एक युवती के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। वह हिम जैसी श्वेत साड़ी पहने हुए है। वह कर्पूर से सुवासित है और उसके हाथ में वीणा है और फूलों की माला है। उसका गाना सुन कर हरिण आकृष्ट हो जाते हैं। अग्रभूमि में पानी और कमल होते हैं जो कि इन चित्रों में प्रधान रूप से चित्रित किए जाते हैं। पृष्ठभूमि में दृश्य प्रदेश तीक्ष्ण सूर्य प्रकाश से दीप्तिमान् होता है। इसका आशय यह है कि यह राग दुपहरे में गाया जाता है। आसावरी गिरानी में एक युवती का चित्र होता है जो कि एक बुर्ज या अटारी से परिवेष्टित हरी भरी घासवाले पहाड़ के अधोभाग में लगे चन्दन के वृक्ष के नीचे शतरंजी बिछा कर बैठी हुई है। उसके चारों ओर नाग हैं जो कि उस राग को सुन कर आकृष्ट हुए हैं। आकाश में बादल हैं जिनमें विद्युत् की रेखा है। गौर (मल्लार) रागिनी में एक नवयुवती का चित्र होता है। इसका रंग नीला होता है। यह एक हरे भरे पर्वत पर दो वृक्षों के बीच में खड़ी हुई है जो वीणा के बजने के साथ गाती और नाचती है। आस पास बादलों से आकर्षित हुए मोर नाच रहे हैं। आकाश में बिजली चमकती है और वर्षा होती है। मेघ राग में कृष्ण का सुन्दर चित्र होता है; उसके दाएँ हाथ में कमल का मुकुल होता है और उसके गले में फूलों की माला होती है। उसके चारों ओर गानेवाली लड़कियों का दल होता है जिनके हाथों में अनेक प्रकार के बाजे होते हैं और जिनके साथ वे नृत्य करती हैं। अग्रभूमि में जल, फूल और पक्षी होते हैं और पृष्ठभूमि में पहाड़ और नगर। आकाश में बादल छा जाते हैं और घनघोर वृष्टि की आशंका होती है।

इनके विषय में भिन्न भिन्न दृष्टिकोण हैं परन्तु सब में मुख्य बात एक ही है। ये चित्र एकमात्र कल्पना ही नहीं है जो प्राचीन कलाकारों के मानुषीय भावों को मूर्त रूप में प्रस्तुत कर अद्भुत कल्पना शक्ति का प्रदर्शन करती है अपि तु ये जीवन और कला के गम्भीर प्रश्नों की व्याख्या भी करते हैं। ये जीवन की एकता का और समस्त कलाओं की एकता का अनुभव कराता हैं।

इन में चित्रकला की अद्भुत विशेषताएँ हैं और सुन्दरता की दृष्टि से भी ये चित्र महत्वपूर्ण हैं। सालारजंग म्यूज़ियम में कई चित्र दखनी कलम के हैं। ये राग-रागिनियों के चित्र अद्वितीय हैं और भारतीय कला की सुन्दर विभूति हैं।

—जी. वेंकटाचलम

हैदराबाद

रूसी साहित्य और हिन्दी

हिन्दी के दैनिक पत्र 'नवभारत टाम्स' के १२ अक्टूबर के रविवारीय संस्करण में श्री महेश कुमार मुँधड़ा का 'सोवियत साहित्य' शीर्षक एक लेख छपा है जिसका कुछ अंश यहाँ दिया जा रहा है:

रूसी साहित्य ने कला में यथार्थवाद को पहले से केवल आगे ही नहीं बढ़ाया, बल्कि महान् मानवीय आदर्शों को भी सहारा और जनतन्त्र तथा आज़ादी के प्रति प्रेम की भावना अभिव्यक्त की। इसीलिए तो इसे 'मानव जाति की चेतना' कहा गया है।

प्रगतिशील रूसी साहित्य में यह एक खास बात है कि शोषित वर्ग के जीवन पर उसने बहुत अधिक ध्यान दिया है। पुराने रूसी लेखकों की अनेक रचनाओं में हम देखते हैं कि लेखक इस धारणा को साफ़ तौर से ज़ाहिर करता है कि इतिहास के निर्माण में जनता ही प्रमुख शक्ति है।

तुर्गनेव, टालसटाय, अलैक्जैण्डर, कुप्रिन और चेखव जैसे रूसी साहित्यिक विश्व-विख्यात हैं। इन मनीषियों और उद्भट विचारकों ने रूसी साहित्य को ही अनुप्राणित नहीं किया बल्कि सारी दुनिया को क्रान्ति तथा मानवता का ओजस्वी सन्देश देकर मरणोन्मुख पीड़ितों और शोषितों को जीवनोन्मुख बनाया है। तुर्गनेव ही वह व्यक्ति है जिसने 'बाप और बेटे' (फादर्स-एण्ड सन्स) नामक उपन्यास लिख कर शून्यवाद ('निहिलिज्म') शब्द का सूत्रपात किया। टालसटाय को तो हमारे देश के राष्ट्रीय आन्दोलन के नेता महात्मा गान्धी अपना गुरु मानते थे। हमारे देश के राष्ट्रीय आन्दोलन के कितने ही योद्धाओं को रूस के इन प्रसिद्ध उपन्यासकारों से प्रेरणा मिली थी।

रूसी साहित्य से अलग होकर हम विश्व-साहित्य की प्रगति को नहीं समझ सकते। फ्रांस के प्रसिद्ध उपन्यासकार फ्लाबर्ट को तुर्गनेव के बिना नहीं समझा जा सकता। हमारे देश के महान् बंगला उपन्यासकार शरतचन्द्र की महानता को समझने के लिए तुर्गनेव की औपन्यासिक रचनाओं को पढ़ने की ज़रूरत है। इसी तरह रोमां रोलां या प्रेमचन्द की महत्ता को समझने के लिए टाल्सटाय को पढ़ने की आवश्यकता है। बर्नार्ड शा या यशपाल के व्यंग्य को समझने के लिए चेखव को पढ़ने की आवश्यकता है।

सोवियत साहित्य ने अपने पुराने लेखकों की परंपरा को एक नए स्तर तक विकसित कर उसे इस तरह परिवर्तित किया है कि वह साहित्य के इतिहास में एक गुणात्मक परिवर्तन है।

इस दिशा में मैक्सिम गोर्की ने जो काम किया है उसकी जितनी प्रशंसा की जाए थोड़ी है। उसकी रचनाओं के साथ ही कला में एक नया परिवर्तन आया। गोर्की ने ही समाजवादी तरीक़े का प्रादुर्भाव किया।

गोर्की ने मजदूरों के आध्यात्मिक सौन्दर्य का कलात्मक चित्रण किया। वही पहला कलाकार था जिसने जनता की आज़ादी के लिए लड़नेवाले वीरों का चित्रण किया। पूँजीवाद के विरुद्ध समाजवाद के लिए की जानेवाली लड़ाई में जनता के सुन्दरतम गुण कैसे प्रस्फुटित और विकसित होते हैं यह उसी ने दिखाया।

सारी दुनियाँ के प्रगतिशील लेखकों पर गोर्की का प्रभाव पड़ा। उसी के प्रभाव में कला की प्रगतिशील प्रवृत्तियाँ निर्मित और विकसित हुईं। दुनिया के जनतान्त्रिक साहित्य का वह सर्वमान्य नेता था।

उदाहरणार्थ, अमेरिका के प्रगतिशील उपन्यासकार अप्टन सिंक्लेयर का कहना है कि जब वह काफ़ी छोटा था उस समय उसने अमेरिका में गोर्की का नाम सुना। उसने गोर्की से यह सीखा कि साहित्य गरीब और शोषित जनता के संघर्षों से अलग नहीं रह सकता। भारत में भी सारे प्रगतिशील लेखकों पर गोर्की का गहरा असर है।

कुछ आलोचक यह सिद्ध करने की कोशिश करते हैं कि सोवियत साहित्य केवल विषय-वस्तु से ही चिपका रहता है एवं उसमें कोई कला नहीं है। ऐसे आलोचकों के अनुसार सोवियत साहित्य की केवल विषय-वस्तु ही नई है।

मगर दरअसल बात ऐसी नहीं है। सोवियत साहित्य में केवल नए जीवन का ही प्रतिबिम्ब नहीं मिलता, बल्कि कलाकार का इस नए जीवन को एक नए दृष्टिकोण से चित्रित करने का भी आभास मिलता है।

स्वर्गीय बरान्निकोफ ने तुलसीदास की अमरकृति 'रामचरितमानस' तथा लल्लूजीलाल के 'प्रेमसागर' एवं अन्यान्य कई चीज़ों का रूसी भाषा में अनुवाद किया है। प्रेमचन्द आदि के कितने ही उपन्यासों और कहानियों का अनुवाद भी रूसी भाषा में किया जा चुका है।

हिन्दी में रूस के कुछ पुराने और आज के सोवियत के कुछ नए लेखक बहुत ही पसन्द किये गये हैं। गत महायुद्ध के पहले स्वर्गीय चन्द्रभाल जौहरी ने दो रूसी उपन्यासों के सुन्दर अनुवाद किये—(१) गाड़ीवालों का कटरा (यामा दि पिट) - अलैक्जैंडर कुप्रिनः (२) मां-मैक्सिम गोर्की। कुछ ही वर्षों में श्री जौहरी के अनुदित दोनों उपन्यासों के कई संस्करण हो चुके हैं।

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने ताजिक भाषा के लेखक सदरुद्दीन ऐनी के तीन उपन्यासों का अनुवाद किया है—(१) दाखुदा; (२) अनाथ, और (३) जो दास थे।

टाल्स्टाय की कहानियों के तो न जाने कितने अनुवाद हुए होंगे।"

सम्पादकीय

सामुदायिक योजनाएँ और राष्ट्रभाषा

इस समय हमारे देश में ग्रामों के विकास, संगठन और जीवन स्तर को उन्नत करने के लिए सामूहिक योजनाओं को कार्य रूप में परिणत किया जा रहा है। बहुत-से लोगों को इनकी सफलता में सन्देह है क्योंकि एक तो इस कार्य में धन की बृहत् परिमाण में आवश्यकता है जो कि हमारे देश के पास नहीं है—दूसरा उसमें एक ही साथ अनेक प्रवृत्तियों और कार्यों का संचालन किया जा रहा है। क्या इन सामुदायिक योजनाओं में राष्ट्रभाषा को स्थान नहीं दिया जा सकता? ये योजनाएँ अधिकांश में केन्द्रीय प्रशासन द्वारा बनाई जा रही हैं। इसलिए इसमें राष्ट्रभाषा की शिक्षा को भी सम्मिलित किया जा सकता है। ग्रामवासियों के हृदय में अपने राष्ट्र के प्रति भावना को जागृत और विकसित करने के लिए और उनको यह अनुभव कराने के लिए कि वे एक ग्राम के नहीं एक महान् राष्ट्र के अधिवासी हैं-राष्ट्रभाषा की आवश्यकता है। हमारे राष्ट्र के भिन्न भिन्न राज्यों के कई भागों में आज जो प्रान्तीय संकुचित मनोवृत्तियाँ दिखाई दे रही हैं अन्ततः इसका इलाज क्या है? प्रांतीय संकुचित वृत्तियों को हटा कर राष्ट्रीय भावना को जागृत और सबल बनाने के लिए राष्ट्र को प्रेम के एक महामन्त्र की आवश्यकता है और इस मन्त्र को राष्ट्रभाषा ही प्रदान कर सकती है। हमें अत्यन्त सतर्क रह कर देश के एक छोर से दूसरे छोर तक प्रत्येक मनुष्य को मिलानेवाली प्रवृत्तियों को सामूहिक रूप से उस समय तक संगठित करना है जब तक कि ये भावनाएँ जनता में बद्धमूल न हो जाएँ। इस राष्ट्रभावना को कार्यरूप में परिणत करने के साधनों में राष्ट्रध्वजा और राष्ट्रगीत तो हैं ही परन्तु हमें इसमें राष्ट्रभाषा को भी सम्मिलित करना पड़ेगा। राष्ट्रभाषा ही उस शक्ति को जीवित और जागृत कर सकती है जो हमारे देश में राष्ट्रीय भावना को सर्वोपरि बना दे। हमारे देश में राष्ट्रभाषा के प्रति वही भावना होनी चाहिए जो कि हमारे हृदय में अपनी राष्ट्रीय ध्वजा और अपने राष्ट्रीय गान के प्रति है। राष्ट्रभाषा के लिए हमारे हृदयों में जो प्रेम होगा वही हमारे राष्ट्र के प्रति प्रेम को प्रदर्शित कर सकेगा। हमें राष्ट्रभाषा के प्रश्न को एकमात्र भाषा की दृष्टि से नहीं देखना चाहिए। अभी तो इसे अधिकांश में भाषा की दृष्टि से देखा जा रहा है। भाषा का तो यह प्रश्न है ही—परन्तु यह प्रश्न एकमात्र भाषा का नहीं है। यह तो भारतवर्ष के समस्त राज्यों की एकता का प्रश्न है और राष्ट्रभाषा ही हमारे राष्ट्र के राज्यों को मिलनेवाला सूत्र है। हम इसकी जितनी उपेक्षा करेंगे उतना ही हमारे राष्ट्र के एकता के मार्ग में बाधाएँ उपस्थित होंगी। हमारे देश के ग्रामों में जब सामूहिक रूप से नव चैतन्य, जागृति और शक्ति को उत्पन्न किया जा रहा है उस समय ग्राम ग्राम में राष्ट्रभावना को जागृत, संगठित और सशक्त बनाने के लिए इन योजनाओं में राष्ट्रभाषा को भी स्थान दिया जाना चाहिए। हमारी ग्राम योजनाओं का महत्व हमारी सेना की योजनाओं से किसी प्रकार कम महत्वपूर्ण नहीं है। सुना जाता है कि शीघ्र ही सेनाओं की शिक्षा-दीक्षा में राष्ट्रभाषा को प्रचलित किया जानेवाला है। इससे प्रत्येक सैनिक के हृदय में अपने समस्त राष्ट्र के प्रति भावना उद्बुद्ध हो सकेगी। हमारे राष्ट्र के ग्रामों का प्रत्येक निवासी आवश्यकता पड़ने पर राष्ट्र का सैनिक बनेगा—इसलिए ग्रामों के विकास की समस्त योजनाओं में राष्ट्रभाषा को आवश्यक स्थान मिलना चाहिए—इससे व्यय में कुछ विशेष वृद्धि नहीं होगी और यदि हो भी तो भी बहुत साधारण-सी वृद्धि होगी। यदि हम ग्राम के विकास को एक ग्राम या कुछ ग्रामों का नहीं समस्त राष्ट्र का विकास बनाना चाहते हैं तो हमें इन सामूहिक योजनाओं में राष्ट्रभाषा को भी समुचित स्थान देना चाहिए। अधिकतर सामूहिक योजनाओं को देश की आर्थिक दृष्टि से बनाया जा रहा है अतः हमारा यह निर्देश इस दृष्टि से सम्भवतः समुचित प्रतीत न हो। इन योजनाओं में आर्थिक दृष्टि जितनी महत्वपूर्ण होनी चाहिए राष्ट्रीय दृष्टि को भी उससे कम महत्व नहीं दिया जाना चाहिए।

सामूहिक योजनाएँ और केन्द्र

ग्रामों की सामूहिक विकास योजनाओं की असफलता का उत्तरदायित्व राज्यों के प्रशासन पर रक्खा जा रहा है। कहा जा रहा है कि केन्द्रीय प्रशासन अपनी इन योजनाओं को राज्यों के प्रशासन द्वारा संचालित करता है इसलिए इन योजनाओं का न तो पूर्ण रूप से महत्व अनुभव किया जाता है और न उन्हें समुचित

रीति से क्रिया के रूप में परिणत किया जाता है। क्योंकि इन योजनाओं का अभी प्रारम्भ हो रहा है इसलिए इन्हें अधिक सतर्क रूप से चलाने की आवश्यकता है। प्रत्येक राज्य इन योजनाओं को उतने महत्व की दृष्टि से नहीं देख सकता जितना कि केन्द्र देखता है। इसलिए यह सुझाव दिया जा रहा है कि इन सामूहिक योजनाओं का संचालन प्रत्येक राज्य में केन्द्र द्वारा होना चाहिए। हमारे संविधान में केन्द्र की योजनाओं को कार्य रूप में परिणत करने का उत्तरदायित्व देश के राज्य के प्रशासनों के हाथ में रखा गया है। केन्द्र तो एकमात्र योजना बना सकता है और परामर्श दे सकता है। हमारा संविधान बहुत कुछ अमेरिका के संविधान के सदृश है। अमेरिका में जिस परियोजना को समस्त राष्ट्र के लिए महत्वपूर्ण समझा जाता है उसे केन्द्र स्वयं राज्यों की सहायता और परामर्श द्वारा संचालित करता है इससे एक तो योजना समुचित रूप से क्रिया में परिवर्तित हो जाती है दूसरा राज्य के प्रशासनों का भी उसमें हाथ रहता है। क्या यह संभव नहीं है कि हमारे देश में भी इन योजनाओं को इसी प्रकार परिचालित किया जाए। इससे न केवल इन योजनाओं को समुचित ढंग से और पूर्ण सक्षमता के साथ क्रियान्वित किया जा सकेगा अपि तु इन योजनाओं का सम्बन्ध राज्यों के साथ भी पूर्ण रूप से बना रहेगा। यदि केन्द्र योजना बना कर भिन्न भिन्न राज्यों के सुपुर्द कर देगा और राज्य उनको अपनी ही देख रेख में चलाएगा तो इन योजनाओं के परिचालन में न तो एकरूपता हो सकेगी और न उनके महत्व को सब राज्यों में एक जैसा अनुभव किया जा सकेगा। परिणाम यह होगा कि कई राज्यों में इन योजनाओं में शिथिलता आ जाएगी। क्या केन्द्रीय प्रशासन योजनाएँ बना कर और उन्हें राज्यों को सुपुर्द करके अपने उत्तरदायित्व को पूरा कर सकेगा? इस विषय में केन्द्रीय प्रशासन को कोई इस प्रकार का प्रबन्ध करना पड़ेगा जिससे राष्ट्रीय योजनाएँ राष्ट्रीय ढंग से और क्षमतापूर्वक क्रिया में परिणत और सफल हो सकें।

भारत सेवक समाज

सर्वोदय समाज के बाद जिस नए 'समाज' के निर्माण की योजना बनाई गई है वह है "भारत सेवक समाज"। ब्रह्म समाज, आर्य समाज, देव समाज आदि समाज मुख्यतया धार्मिक थे। 'सर्वोदय समाज' मुख्यतया आर्थिक है और गान्धी जी के महान् आदर्शों को ले कर बना है। 'भारत सेवक समाज' मुख्यतया सामाजिक होगा और इसके निर्माण का आधार अ-राजनैतिक और विस्तृत होगा। अब तक जिन 'समाजों' की रचना हुई है उनका सम्बन्ध प्रशासन से नहीं था। 'भारत सेवक समाज' का सम्बन्ध भी प्रत्यक्षतया प्रशासन से नहीं होगा। भारतीय प्रशासन से इस समाज को मान्यता प्राप्त होगी। निकट भविष्य में 'भारत सेवक समाज' की स्थापना का प्रस्ताव प्लैनिङ्ग कमीशन द्वारा किया गया है। स्वेच्छापूर्वक भारत में लोक-सेवा करना इसका महान् उद्देश्य होगा। इसके सदस्य सब धर्मों, सम्प्रदायों, जातियों, दलों, वर्गों और विचारों के लोग बन सकेंगे। स्त्रियाँ और पुरुष दोनों इस समाज के सदस्य बन सकेंगे। वे व्यक्ति जिनका विश्वास हिंसा में या साम्प्रदायिकता में है-इस समाज के सदस्य नहीं बन सकेंगे।

भारतवर्ष की जनता में इस समय जो क्रिया-शून्यता और निर्जीवता दृष्टिगोचर हो रही है उसे दूर करने, देश में नव शक्ति को जागृत करने और इस शक्ति को निर्माणात्मक कार्यों में उपयोग करने के लिए इस समाज के सदस्य प्रयत्न करेंगे। भारत के सभी वर्ग, सम्प्रदाय, धर्म और जातियाँ इसके कार्य का क्षेत्र होंगी। इस समय देश के सम्मुख सबसे बड़ी समस्या अन्न की है। भारत सेवक समाज सबसे पूर्व इस समस्या को अपने हाथों में लेगा। प्रशासन और जनता के सम्बन्धों को यह संस्था उन्नत करेगी, जनता के कष्टों और शिकायतों की ओर प्रशासन का ध्यान आकर्षित करेगी और उनको शीघ्र से शीघ्र दूर करने का प्रयत्न करेगी, बीमारी की रोकथाम, मलेरिया, प्लेग, हैजा, आदि बीमारियों से जनता को बचाएगी और लोकनाशक प्रवृत्तियों के विरोध में लोकमत को संगठित करने का प्रयत्न करेगी। देश के ग्राम ग्राम में भारत सेवक समाज के केन्द्र बनेंगे। इसके द्वारा देश में एकता को, साम्प्रदायिक भाववाओं के दूरीकरण को, पारस्परिक सहयोग और अन्य इसी प्रकार की लोक और समाज की निःस्वार्थ सेवा की प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन मिलेगा। प्रत्येक ग्राम अपने अपने कार्य-क्षेत्र में पूर्ण रूप से स्वतन्त्र रहेगा। इस स्वतन्त्रता का अर्थ पृथकता नहीं होगा। प्रत्येक ग्राम में कार्य करने के लिए यथासम्भव वहीं से धन प्राप्त किया जाएगा।

इस प्रकार के राष्ट्रव्यापी कार्यों को करने के लिए इस समाज के सदस्यों को एक विशेष प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता होगी। यद्यपि इस समाज का सदस्य कोई भी व्यक्ति बन सकता है तो भी इसका प्रारम्भ जैसे निःस्वार्थ और परिश्रमी कार्यकर्ताओं द्वारा होगा वैसा ही इसके प्रति जनता का आकर्षण होगा और वैसे ही इसका विस्तार होगा।

कविता गद्य की ओर

श्री रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल को 'गद्यकाल' कहा है। इस समय हमारी भाषाओं में गद्य का ऐसा विकास और विस्तार हुआ है कि कविता भी पद्य से गद्य की ओर जा रही है। पहले जहाँ कविता में छन्द और संगीत था वहाँ अब गद्य के कारण उसके स्थान को पढ़ने का "नाटकीय ढंग' ले रहा है। हमारे कथन का तात्पर्य यह है कि अब कविता के क्षेत्र में ऐसी प्रवृत्तियाँ प्रचलित हो रही हैं जिनसे कविता में पहले जो प्रभाव छन्द और संगीत द्वारा उत्पन्न किया जाता था अब वह कविता को नाटकीय ढंग से पढ़ कर किया जाने लगा है। कविता में संगीत उत्पन्न करने के लिए छन्दों और तुकों का सहारा लिया जाता है परन्तु इन छन्दों और तुकों के कारण कविता में जहाँ संगीत उत्पन्न होता है वहाँ उसमें एक प्रकार की कृत्रिमता भी उत्पन्न हो जाती है। इस कृत्रिमता से बचने और कविता को स्वाभाविक रूप में अभिव्यक्त करने के लिए अब कविता को गद्यात्मक रूप में लिखा जा रहा है यद्यपि इसको भी इस प्रकार लिखा जाता है जैसे कि उसमें भी कोई छन्द उच्छसित हो रहा हो। पढ़ने में प्रवाह को उत्पन्न करने के लिए तुक का भी आश्रय लिया जाता है। इस प्रकार की कविता को जब कवि के मुख से या उसी ढंग से पढ़ने वाले के मुख से सुना जाता है उस समय इसमें जितनी कविता का अनुभव होता है पीछे अपने आप पढ़ने पर वह कविता 'गद्यमय' ही अधिक प्रतीत होती है। इससे उसमें नीरसता आ जाती है।

अमेरिका से "प्रोइट्री" नामक पत्र निकलता है। इसका प्रकाशन १९१२ ई. में हुआ था। उसे अब प्रकाशित होते हुए चालीस वर्ष हो गए हैं। इसका सम्पादन श्रीमती मोनरो ने प्रारम्भ किया था। वह "भूखे कवियों को भोजन प्रदान करती थी।" प्रारम्भ में इसमें अच्छी कविताएँ प्रकाशित हुईं और बहुत-से नवयुवक कवियों को प्रोत्साहन मिला। इस पत्रिका के ४००० से अधिक ग्राहक कभी नहीं हुए और यह पत्रिका सदा घाटे में ही चलती रही। 'पोइट्री' की ४० वीं वर्ष गांठ पर इसका एक विशेषाङ्क प्रकाशित किया गया है। इस विशेषाङ्क के लिए सम्पादक ने "कविता के रत्नों" की माँग की थी। इसकी समालोचना में अमेरिका के प्रसिद्ध साप्ताहिक पत्र "टाइम" के आलोचना सम्पादक ने जो कुछ लिखा है उसका आशय यह है: "यद्यपि इस अङ्क में इस समय के बहुत से प्रसिद्ध कवियों की कविता को प्रकाशित किया गया है तो भी ऐसा प्रतीत होता है कि इनमें से बहुत-से कविता-रत्न गोंद के बने हुए हैं। नए कवियों की कविता गम्भीरतापूर्वक गद्यात्मक हो गई है और वह सतर्कता पूर्वक अमौलिक है। अमेरिका में कविता की इस दुर्दशा का कारण पाठकों की मनोवृत्ति भी है।......कवियों को प्रत्येक अन्य वस्तु के लिए क्षमा किया जा सकता है परन्तु नीरसता के लिए नहीं।"

हमारी गद्यात्मक कविता में सर्वत्र नीरसता नहीं है। जब वह नाटकीय ढंग से पढ़ी जाती है तो सुननेवाले यदि झूम नहीं उठते तो भी मस्त होजाते हैं और उसे बार बार सुनने की इच्छा प्रकट करते हैं। परन्तु पीछे से इन कविताओं को जब स्वयं पढ़ा जाता है तो उसमें कहीं कहीं निर्जीवता प्रतीत होती है। यदि इस प्रकार की कविता गद्य की ओर ही अधिकाधिक प्रवृत्त होती गई तो उसमें गद्यात्मकता के साथ नीरसता आ जानी अनिवार्य है।

अजन्ता का अङ्क (नवम्बर-दिसम्बर)

अजन्ता का अगला अंक "नवम्बर और दिसम्बर" का सम्मिलित अंक होगा। हैदराबाद में प्रेसों की असुविधा के कारण अभी तक हम 'अजन्ता' को मास के अन्त में निकाल रहे थे और कभी कभी इसमें भी कुछ देरी हो जाती थी। 'अजन्ता' को नियमपूर्वक प्रत्येक मास के प्रथम सप्ताह में निकालने के लिए यह निश्चय किया गया है कि 'अजन्ता' का अगला अङ्क 'नवम्बर और दिसम्बर' दोनों मासों का सम्मिलित अंक हो। इसमें पृष्ठ संख्या कुछ अधिक रहेगी। इस कारण 'अजन्ता' के ग्राहकों को एक मास का अङ्क अधिक दिया जाएगा। आशा है कि हमारी असुविधाओं को ध्यान में रखते हुए 'अजन्ता' के पाठक और ग्राहक हमें इसके लिए क्षमा करेंगे।

THE PRUDENTIAL CO-OPERATIVE
CENTRAL & URBAN BANK LTD.,
Kingsway, SECUNDERABAD-Dn.

★

BRANCH : **HYDERABAD.** PHONE NO. **7195**

TRANSACTS BANKING BUSINESS
OF EVERY DESCRIPTION.

Office Safety Facilities In Uptodate Underground
Safe Vaults.

A. H. VENKAT RAO B. A., LL. B.,
Honorary Secretary.

L. N. GUPTA, I. A. S
President.

హైదరాబాద్ రాజ్య హిందీ ప్రచార సభ

తమరికి హిందీ, తెలుగు మఱియు ఇంగ్లీషు

భాషలలో తప్పులు లేకుండ అందమైన

అచ్చుపనులు కావాలంటే

తమ నగరములోనే

హిందీ ప్రెస్

కే దయచేయండి.

నాంపల్లి స్టేశన్ రోడు, హైదరాబాద్ (దక్షిణ.)

టెలిఫోన్ ౩౪౩౦

టెలిగ్రాం "హిందీ"

हिन्दी के उत्तमोत्तम
तथा उच्च
श्रेणि
के
साहित्य
की
प्राप्ति के लिए एकमात्र
स्थान

हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा

श्रीराम हिन्दी भवन, नामपल्ली रोड : हैदराबाद-द.

तार—"हिन्दी"

टेलीफोन नं. ५४५०

प्रकाशक :–प्रियबन्धु, हिन्दी प्रेस, हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद-द.

अजन्ता

पुस्तकालय
गुरुकुल कांगड़ी

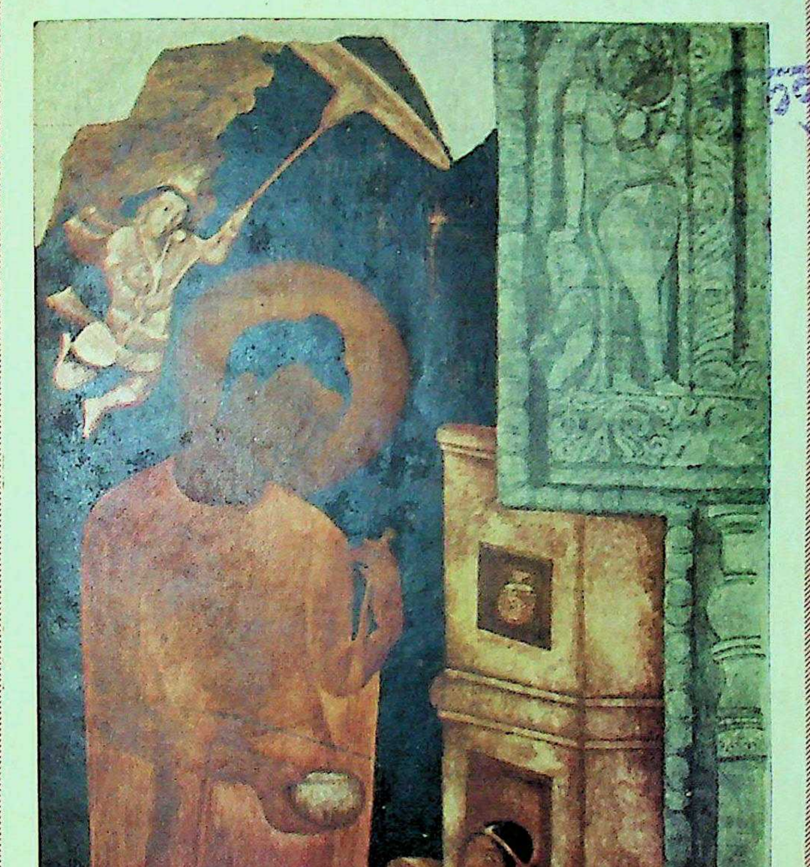

वर्ष ५ नवम्बर-दिसम्बर १९५२ अंक ११-१२

हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा

इस अङ्क में :

आचार्य क्षितिमोहन सेन
श्री चन्द्रबली पाण्डे
श्री भगवतशरण उपाध्याय
श्री कालिदास कपूर
श्री क़ासिम अली सजनलाल
डा० सोमनाथ गुप्त

श्री निशङ्क
श्री शम्भुनाथ 'शेष'
श्री अञ्चल
कुमारी राज शिवपुरी

* * *

अगले अङ्क में :

डा० भगवन्तम्
प्रो० ओ. सी. गांगुली
श्री उदयशंकर भट्ट
श्री अगरचन्द नाहटा
आचार्य क्षितिमोहन सेन
श्री पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश'

श्री कमलप्रसाद 'कमल'
श्री पुखराज भण्डारी
श्री अञ्चल
श्री शम्भुनाथ 'शेष'

इस अङ्क का :— १।) भा. मु.

"**अंजन्ता**" का वार्षिक मूल्य :— ५) भा. मु.

वि. सू.—नमूने की प्रति के लिए रु० १) भा. मु. मनीऑर्डर द्वारा अग्रिम भेजिए।
इस अङ्क के लिए १।) भा. मु. भेजें।

दी निजाम शुगर फैक्टरी [लिमिटेड]

स्फाटिकवत्, समरूप, मधुरतम

श्वेत शर्करा

★

जानकारी

विक्रय-विभाग

प्रधान कार्यालय से प्राप्त करें।

* * *

प्रधान कार्यालय	फैक्टरी
आबिद रोड, हैदराबाद – दक्षिण.	शक्कर नगर निजामाबाद.
केवल तथा तार "शुगर"	"शुगर" केवल तथा तार

फोन नं० ४७०४, ४२९६, ४९३७, ४८७६

दी हैदराबाद कन्स्ट्रक्शन कंपनी लिमिटेड

आबिद रोड, हैदराबाद दक्षिण

के

मैनेजिंग एजेण्ट के प्रतिनिधि,

दी निजाम शुगर फैक्टरी लिमिटेड

दी हैदराबाद कन्स्ट्रूक्शन कम्पनी लिमिटेड के लिए विक्रय विभाग

Education

Start - in - Life

Marriage of your children

Assured without any embarrassment

Beside a comfortable old age for you

for All Types Of Insurance

Consult:-

THE

HYDERABAD CO-OPERATIVE INSURANCE SOCIETY Ltd.

Bashir Bagh Road, Hyderabad-Dn.

THE

Twin Co-operative Insurers

Head Office : Bashir Bagh Road, Hyd.Dn.

1. The Hyderabad Co-operative Insurance Society Ltd.

A POLICYHOLDERS' SOCIETY

Assets as at 31-12-51 exceed Rs. 80 Lakhs. (for Co-operative Life Assurance only.)

2. The Co-operative General Insurance Society Ltd., (for Fire, Motor, Accident and Misc. Insurance.)

State and District Positions Available

For REALLY EFFICIENT

FIELD WORKERS.

Write in condidence to the General Manager.

मनोविज्ञान

काशी मनोविज्ञानशाला का मासिक पत्र

"यह मनोविज्ञानशाला, काशी का मुखपत्र है। दर्शन और मनोविज्ञान के सम्मिलित स्वरूप का दर्शन कराने वाला अपने ढंग का यह एक ही पत्र है। सितम्बर के अंक में अनेक मननीय एवं पठनीय लेख हैं जिनमें जर्मन मनोविज्ञान की आधुनिक प्रवृत्ति तथा भारत की मनोवैज्ञानिक देन विशेष उल्लेख्य हैं। मनोवैज्ञानिक खोज के स्तम्भ में बहुत ही ध्यान देने योग्य सामग्री है। अभिभावकों तथा अध्यापकों के लिए यह बड़े महत्व की है।"

'आज', १० सितम्बर '५२

सम्पादक : लालजीराम शुक्ल ★ *वार्षिक मूल्य* ४) रुपए

मिलने का पताः व्यवस्थापक, 'मनोविज्ञान' ६१/२५ सिद्धगिरी बनारस

THE
Hyderabad Co-operative Dominion Bank Ltd.
[Estd. MARCH 1915]

Telephone : **4610** — Telegram : **DOMINBANK**

Sub Offices :
PATHER GATTI,
UNIVERSITY BRANCH
(Adickmet)

Head Office :
SHAHRAH-E-OSMANI
HYDERABAD-DECCAN.

Branches :
JADCHARLA (Dt, Mahboobnagar) THUNGABHADRA PROJECT (Munirabad)

1. CURRENT ACCOUNTS are opened free of charge and interest is allowed at 1½% per annum.
2. SAVING DEPOSITS are accepted and interest is allowed at 2% per annum.
3. SPECIAL SAVINGS DEPOSITS are accepted and interest is allowed at 1½% per annum.
4. DRAFTS are issued on all important COMMERCIAL CENTERS and within the HYDERABAD STATE.
5. PENSIONS, MANSABS, etc, are collected on commission basis, premiums remitted & all standing instructions on behalf of the customers carried out.

SAFE DEPOSIT LOCKERS & VAULUTS are available at HEAD OFFICE.

BANKING BUSINESS OF EVERY DESCRIPTION TRANSACTED

K SUNDARAVARADACHARI.
GENERAL MANAGER.

RAI DILSUKH RAM.
CHAIRMAN.

FIRE: ACCIDENT: MARINE:

THE HYDERABAD UNITED INSURANCE CO., LTD.,

SPONSORED BY
THE GOVT. OF HYDERABAD.

Post Box No. 164, Abid Road, HYDERABAD-Dn.

Telegram: ***HUICOL*** — *Telephone:* ***5579***

Chairman:
L. N. GUPTA Esq. I. A. S.,

General Manager:
H. D. MEHTA Esq.

BRANCHES : Bombay, Calcutta, Madras, Nizamabad & Manchirial.

'HIND'

"नया समाज"

का परिवार नियोजन अङ्क जनवरी १९५३ में प्रकशित हो रहा है।

इसमें देश की बढ़ती हुई आबादी,
खाद्य भाव, विभिन्न देशों में हुआ
और हो रहा परिवार-नियोजन, अधिक
सन्तति से होनेवाली हानियाँ आदि
पर प्रकाश डालनेवाले अधिकारी विद्वानों के लेख रहेंगे।

आप अपनी प्रति अभी से रिजर्व करालें।

रु० ८) भेज कर वार्षिक ग्राहक बनने वालों को यह अङ्क वार्षिक मूल्य में ही मिलेगा।
फुटकर प्रति लेनेवाले रु० १) मानऑर्डर से भेजें।
जो रजिस्ट्री से मँगाना चाहें, वे ।-) अधिक भेजें।

व्यवस्थापक :— **"नया समाज", ३३ नेताजी सुभाष रोड, कलकत्ता**

हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ
सचित्र-सांस्कृतिक-साहित्यिक मासिक

विक्रम

सम्पादक-संचालक
श्री सूर्यनारायण व्यास

"विक्रम" ने अपने प्रकाशन के अल्प काल में जो लोकप्रियता प्राप्त की है, वह आश्चर्यकारक है। इसके १६ पृष्ठों में लिखी जानेवाली संपादकीय टिप्पणियाँ अपनी सजीव शैली और चुभती हुई भाषा के लिये सर्वत्र विख्यात हैं। इसमें हिन्दी के श्रेष्ठ कलाकारों की रचनाएँ प्रतिमास प्रकाशित होती हैं—देश के अनेक विद्वानों और लेखकों ने इसकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है।

हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान् और आचार्य **श्री पं. हजारीप्रसाद द्विवेदी**–'मैं **विक्रम** में प्रकाशित विद्वत्तापूर्ण, ऐतिहासिक, लेखों को बड़े चाव से पढ़ता हूँ, उनसे मेरी ज्ञान-वृद्धि होती है। मेरा विचार है कि **'विक्रम'** अपने ढंग का अकेला हिन्दी-मासिक है।"

सुप्रसिद्ध कवि–साहित्यिक **पं. श्री माखनलाल चतुर्वेदी**—"विक्रम अपनी गति में अत्युत्तम ढंग से बढ़ रहा है। उसके लेख, कविताएँ, उसके विचार और उसका दृष्टिकोण सब मानो उज्वल और निर्मल भविष्य की सूचना देते हैं।"

सुप्रसिद्ध उपन्यासकार **श्री पं. वृन्दावनलाल वर्मा**—"अंक पूरा आद्योपान्त पढ़ डाला। विद्वत्ता और शोधों से भरी, विचारों को उत्तेजना देनेवाली सामग्री भरी पड़ी है। व्यास-उवाच का तो कहना ही क्या? बहुत ही कम पत्रों में ऐसी सम्पादकीय टिप्पणियाँ पढ़ने को मिलती हैं।"

यदि आप आज तक ऐसे पत्र के ग्राहक नहीं बने हैं तो शीघ्र ही ६) भेजकर वर्ष भर के लिए ग्राहक बन जावें।

विज्ञापनदाताओं के लिए स्वर्ण–अवसर

"विक्रम कार्यालय उज्जैन" (म० भा०)

राष्ट्रभारती

संपादक

मोहनलाल भट्ट
हृषिकेश शर्मा

वार्षिक चंदा मनी आर्डर से ६ रु० * **नमूने की प्रति १० आना**

यह भारतीय साहित्यक का प्रतिनिधित्व करनेवाली एक ऊंचे दर्जे की सुन्दर साहित्यिक और सांस्कृतिक मासिक पत्रिका है। प्रतिमास १ तारीख को प्रकाशित होती है।

'राष्ट्रभारती' भारतवर्ष के उत्तर-दक्षिण के, पूर्व-पश्चिम के आपस के साहित्यिक और सांस्कृतिक आदान-प्रदान का बहुत अच्छा माध्यम है।

(१) इस पत्रिका को, राष्ट्रभाषा हिन्दी तथा लगभग सभी भारतीय साहित्य और संस्कृति को बल व प्रेरणा पहुँचानेवाले प्रान्तीय भाषाओं के श्रेष्ठ विद्वान् साहित्यकारों का सहयोग प्राप्त है। (२) इस में देशी-विदेशी विद्वानों के भी ज्ञानपोषक और विविधमनोरंजक लेख रहते हैं। (३) प्रमुख कवियों की कविताएँ और कहानीकारों की श्रेष्ठ कहानियाँ। (४) "एकांकी" नाटक, रेखाचित्र और शब्द-चित्र। बंगला, मराठी, गुजराती, उड़िया, पंजाबी, काश्मीरी, राजस्थानी, उर्दू, तमिल, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम आदि आदि भारतीय भाषाओं का रसास्वाद करानेवाले सुन्दर हिन्दी-अनुवाद भी इसमें रहते हैं।

हिन्दी-प्रेमीमात्र से हमारा अनुरोध है कि आप 'राष्ट्रभारती' को अपनाइए और राष्ट्रभाषा के प्रचार में हमें शीघ्रातिशीघ्र सक्रिय सहयोग दीजिए।

आशा है "राष्ट्रभारती" के प्रचार में हिन्दी-प्रेमी सज्जन अवश्य हमारा हाथ बटायेंगे।

वार्षिक चन्दा भेज कर आज ही ग्राहक बन जाइये।

पता :— **"राष्ट्रभारती"** C/o राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, पो० हिन्दीनगर वर्धा (म० प्र०)

कल्पना मासिक

पढ़िए

जिसमें उच्चकोटि के साहित्यिकों और कलाकारों की रचनाएँ आपको मिलेंगी।

प्रत्येक अङ्क में एक रंगीन चित्र

: स्थायी स्तम्भ :

कलाप्रसंग—विनोदबिहारी मुकर्जी

सांस्कृतिक टिप्पणियाँ—दिनकर कौशिक

साहित्यधारा—इस स्तम्भ के अन्तर्गत पाठकों, लेखकों आदि द्वारा उठाए गए साहित्यिक प्रश्न आदि हैं।

पुस्तक समालोचना—कल्पना अपनी निर्भीक समीक्षा के लिए प्रसिद्ध है।

वार्षिक मूल्य १२) * **एक प्रति का १)**

पृष्ठ संख्या ८०

८३१, बेगम बाज़ार, हैदराबाद

जीवन साहित्य

हिन्दी के उन मासिक पत्रों में से है जो

१. लोक रुचि को नीचे नहीं, ऊपर ले जाते हैं,
२. मानव को मानव से लड़ाते नहीं, मिलाते हैं,
३. सच्ची और स्थायी शान्ति को असंभव नहीं, संभव बनाते हैं,
४. आर्थिक लाभ के आगे झुकते नहीं, सेवा के कठोर पथ पर चलते हैं,

जीवन साहित्य की सात्विक सामग्री को छोटे बड़े, स्त्री-बच्चे सब निःसंकोच पढ़ सकते हैं। उसके विशेषांक तो एक से एक बढ़ कर होते हैं।

जीवन साहित्य विज्ञापन नहीं देता। केवल ग्राहकों के भरोसे चलता है। ऐसे पत्र के ग्राहक बनने का अर्थ होता है राष्ट्र की सेवा में योग देना।

वार्षिक शुल्क के ४) भेज कर ग्राहक बन जाइए।

ग्राहक बनाने पर मण्डल की पुस्तकों पर
आपको कमीशन पाने की भी सुविधा हो जाएगी।

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

पश्चिमोत्तर भारत की प्रमुख हिन्दी मासिक पत्रिका

विश्व ज्योति

सम्पादक-(१) **श्री विश्वबन्धु शास्त्री**, M. A., M. O. L. (पं) O. d' A. (फ्राँ.) Kt. C. T. (इट.)
(२) **श्री सन्तराम**, बी. ए.

संचालक-**श्री विश्वेश्वरानन्द**, वैदिक संस्थान, साधु आश्रम, होशयारपुर.

गत मार्च से प्रारम्भ कर छः मास में ही इस पत्रिका ने अपनी विशेषताओं के कारण हिन्दी-जगत् में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है ।

विश्व हित की साधना के लिए :—

(क) शुद्ध सांस्कृतिक साहित्य का सृजन, (ख) प्राचीन और नवीन ज्ञान-विज्ञान का समन्वय,
(ग) बौद्धिक क्रांति और नई चेतना का जागरण, (घ) अन्याय-पूर्ण सामाजिक विषमताओं का दूरीकरण,
(ङ) सभी प्रकार के विचारों का निष्पक्ष अध्ययन और आलोचन करना ही विश्व ज्योति का लक्ष्य है।

इसे तुरन्त मँगाइए और लाभ उठाइए। **वार्षिक चन्दा— ८) रुपए भा० मु०**

परन्तु १०) रुपए वार्षिक चन्दा देकर विश्वेश्वरानन्द वैदिक संस्थान के सदस्य बन जाने पर भेंट के रूप में मुफ्त।

पत्र व्यवहार का पता :—

व्यवस्थापक, विश्व ज्योति, साधु आश्रम होशयारपुर, (पंजाब)

INFANTONE

बच्चों के सब प्रकार के पेट के रोगों पर सर्व परीक्षित लाभदायक औषधि

Keeps baby cheerful

हैदराबाद केमिकल एँड फारमास्युटिकल वर्क्स लि०
आज़माबाद, हैदराबाद (दक्षिण)

ंजाब, मध्यप्रदेश, हैदराबाद, मैसूर, त्रावणकोर और मद्रास राज्यों के शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत

अजन्ता

सचित्र मासिक पत्रिका

वर्ष ४ नवम्बर-दिसम्बर १९५२ अङ्क ११-१२

सम्पादक
वंशीधर विद्यालंकार
श्रीराम शर्मा

—: संचालक :—
हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा

अनुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

१ आज किसी ने मेरे पथ पर —निशंक, एम. ए. १
२ नये युग का विधाता हूँ—मुरलीधर श्रीवास्तव 'शेखर' ३
३ तर्क और भावना—शम्भुनाथ शेष ५
४ ले जा अपनी याद लिये जा—अंचल ७
५ समीरण धीरे धीरे बहो—सुधीन्द्र ८
६ नवयुग के कवि से—दीप्ति ९
७ गीत—कोमलसिंह सोलंकी १०
८ स्मरण—वंशीधर विद्यालंकार ११
९ दीप-श्री—कुमारी राज शिवपुरी, एम. ए. १२
१० राजा शिवप्रसाद—के. एस; एम. ए. १३
११ शवरी-मंगल—शम्भु प्रसाद बहुगुणा, एम. ए. १८
१२ नालन्दा (३)—क़ासिम अली सजनलाल २९
१३ सन्त और बाउल साहित्य—क्षितिमोहन सेन ३४
१४ शास्त्रीय सम्पादक की अशास्त्रीय लीला—चन्द्रबली पाण्डे ३९
१५ मानसोल्लास—भास्कर रामचन्द्र भालेराव ४३
१६ सुकरात का देश—भगवतशरण उपाध्याय ४६
१७ कुण्डेश्वर में एक सप्ताह—कालिदास कपूर ५०
१८ सूरज का सातवाँ घोड़ा—राजेन्द्र यादव ५३
१९ आत्मभावना की अनिवार्यता—लालजीराम शुक्ल ५९
२० तेलुगु और हिन्दी के कुछ शब्दों का विचार—हनुमच्छास्त्री, एम. ए. ६२
२१ डेन्मार्क के युवराज हेमलेट— सोमनाथ गुप्त, एम. ए; पी. एच. डी. ६४
२२ स्वप्न-भंग—परदेशी ६८
२३ महिला-मण्डल— विमला लूथरा ७२
२४ साहित्य-चर्चा —कृष्णशंकर व्यास ७८
२५ चिट्ठी-पत्री (१)—एक हिन्दी काव्यप्रेमी ८०
(२)—दीनानाथ सिद्धान्तालङ्कार
(३)—रेणु
(४)—सप्तरश्मि
(५)--अनिलकुमार
(६)—जगदीशचन्द्र ८४
२६ नीर-क्षीर—आदित्य मिश्र, एम. ए. ८८
—हरिकृष्ण पुरोहित, एम. ए. ९४
२७ सामयिक ... ...
२८ सम्पादकीय—वंशीधर विद्यालंकार

चित्र

(१) हजरत सईदशाह राजू (श्रृंगार मंजरी) ... हैदराबाद म्यूजियम के सौजन्य से
(२) श्रीयुत बनारसीदास जी चतुर्वेदी

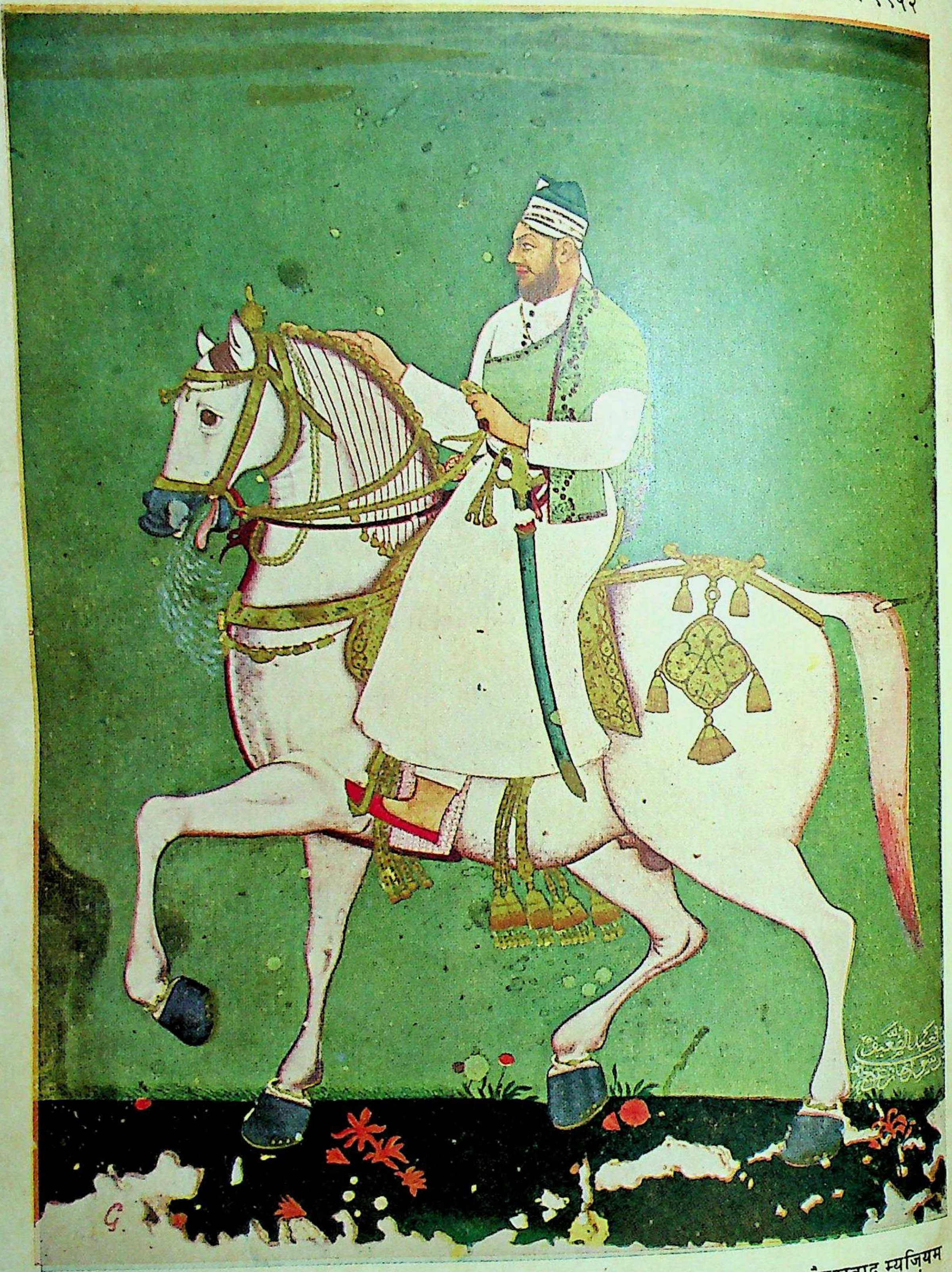

दखनी
कलम

हज़रत सईद शाह राजू
(श्रृंगार मंजरी)

हैदराबाद म्यूज़ियम
के सौजन्य से

12-9-2

अजन्ता

वर्ष ४ नवम्बर–दिसम्बर १९५२ अङ्क ११-१२

आज किसी ने मेरे पथ पर

आज किसी ने मेरे पथ पर
सहसा क्यों आँसू बिखराए।

मैंने मुक्ति नहीं माँगी थी जीवन के मधुमय बन्धन से,
मैंने प्यार नहीं बाँधा था आशाओं के पागलपन से,
मैंने कब काँटे ठुकरा कर फूलों को अपनाना चाहा,
कब मैंने हैं भाव चुराए सन्ध्या के रंगीन गगन से,
फिर क्यों कोई मेरी पलकों में
स्वर्णिम सपना बन आए!
आज किसी ने मेरे पथ पर
सहसा क्यों आँसू बिखराए॥

मैंने मधुमय मुसकानों को नयनों में ही नित्य छिपाया,
मैंने आँसू की धारा को जीवन का संगीत बनाया,
आँखों में जो बसा उसी को देख नहीं पाया मैं जी भर
मेरी अनजानी भूलों को दुनिया ने हँस हँस दुलराया,
फिर क्यों एकाकीपन मेरा
कोई पागलपन बतलाए ?
आज किसी ने मेरे पथ पर
सहसा क्यों आँसू बिखराए ??

मेरे आकर्षण से जग ने दूरी का सम्मान किया था,
ले कर प्यार बढ़ा तो देखा जग ने मौन विराग लिया था,
मेरी ही आँखों के सम्मुख जग ने मधु प्याले ढलकाए,
तब मैंने अपनी भूलों पर मजबूरी का गरल पिया था,
आज साधना में छिप कर क्यों
कोई गीत मिलन के गाए !
आज किसी ने मेरे पथ पर
सहसा क्यों आँसू बिखराए !

टूट गया पतवार भयंकर झंझा करती है मनमानी,
पर क्या चिन्ता युग–युग की हैं ये लहरें मेरी पहचानी,
जग देखे मेरे पौरुष को मैं देखूँ उसकी कोमलता,
जग निज को विजयी समझे पर मैंने अपनी हार न मानी
मेरी कविता के भावों में क्यों
कोई छिप कर मुसकाए ?
आज किसी ने मेरे पथ पर
सहसा क्यों आँसू बिखराए ?!

—'निशंक'
एम-ए.

कान्यकुब्ज कालेज,
लखनऊ

नये युग का विधाता हूँ

न आया कवि यहाँ श्रृंगार के
कुछ गीत गाने को;
कि सदियों से जो सोई जाति
है उसको जगाता हूँ।

सुलगती आग सीने में
दबा सकता न कोई है
जला कर क्रान्ति की ज्वाला
धरा पर शान्ति लाता हूँ।

तिमिर के पन्थ पर नव ज्योति
का यह दीप ले कर में
खड़ा हूँ, जो भटकते हैं
उन्हें पथ मैं दिखाता हूँ।

हिचकते हैं क़दम उठते
नहीं सन्मार्ग पर जिनके
उन्हें उत्साह की, अवलम्ब
की वाणी सुनाता हूँ।

कभी मैं बुद्ध का आलोक
बन कर जो चमकता था
उसी दैवी विभा के कुछ
किरण ले जगमगाता हूँ।

कभी सुकरात-सा विषपात्र
अधरों से लगाता मैं

चढ़ा मन्सूर सूली पर
अनलहक़ गान गाता हूँ।

मुझी में आदि कवि वाल्मीकि
की करुणा उमड़ती है,
कभी मैं व्यास बन कर के
महाभारत सुनाता हूँ।

सनातन रूढ़ियों में जब
न फँस कर पैर उठता है,
बढ़ाने के लिए निज देश
को कवि रूप पाता हूँ।

सदा धारण किए जल
और विद्युत मेघ-सा कवि मैं
कभी मैं नीर बरसाता
कभी बिजली गिराता हूँ।

नये युग का नया सन्देश
ले कर वज्र वाणी में
प्रगति के गीत गाता
मुस्कराता, पद बढ़ाता हूँ।

मुझे गायक समझ कर
मत गिरा तू उच्चतम पद से
मैं कवि हूँ मैं स्वयम्भू हूँ
नये युग का विधाता हूँ।

—मुरलीधर श्रीवास्तव 'शेखर'

राजेन्द्र कालेज
छपरा

तर्क और भावना

तर्क करके रूप अब तुम क्यों बनो पाषाण !
मानवी हो, तुम सुकवि को प्रेरणा दो प्राण !

तर्क करता रवि, कहाँ दिन-रात का संसार होता ?
तर्क करता वायु, कब यों प्राण का संचार होता ?
तर्क करता सिन्धु, जल-प्लावन जगत् को लील जाता,
तर्क करता मेघ, भू के प्यार में क्या सार होता ?
तर्क करती जान्हवी, होता न जन कल्याण !
तर्क करके रूप अब तुम क्यों बनो पाषाण !

तर्क करता फूल, पाता क्यों महेश्वर-शीष आसन ?
तर्क करता दीप, हर पाता भला क्या ध्वान्त के क्षण ?
तर्क करता शूल, धारण क्यों भला करते सदाशिव ?
तर्क करता धूम्र, क्यों दिव-लोक में रहता प्रभा बन ?
जो सहज है तर्क का उस पर नहीं परिधान !

रवि उदय पर, नित निकल उठते सरोवर में कमल दल !
चन्द्र-ज्योत्स्ना पान कर, होता तरंगित सिन्धु हिम-तल !
दीप की लौ पर सहस्रों, प्राण जल मरते शलभ नित,
स्वाति जल की बूँद हित, चातक न तजता टेक दो पल !
भावना बनती चकोरी, सहज सात्विक ध्यान !

भावना ही ओस में है मोतियों की छवि दिखाती !
भावना ही आँसुओं से गीत जीवन का लिखाती !
भावना ही स्वप्न को साकार करती है सजग हो,
भावना ही रजकणों में सूर्य है शत-शत उगाती !
भावना ही मूर्त्ति में करती प्रतिष्ठित प्राण !

भावना के रेशमी तारों बँधा है सब चराचर !
भावना ही ने मथा है प्राण अतल गम्भीर सागर !
भावना ही हृत्कमल पर शारदा सी मुस्कराती,
भावना ही स्वर्ग को प्रिय खींच लाती है धरा पर !
भावना करती सदा रूपाभ का आह्वान !

तर्क का व्यापार है जड़-स्थूल गुल्मों-पल्लवों का !
भावना है सूक्ष्म की स्वरवाहिनी, ऋत-सुरभि-सरिता ।
तर्क क्षण भंगुर, अशाश्वत, भावना प्रिय नित्य सुन्दर !
तर्क कल्मष हृदय का, भावना विश्वास आभा !
तर्क है सन्ताप की लय, भावना स्वर गान !

शूल बन कर तर्क चुभता है प्रकृत मन में निरन्तर !
भावना पुष्पाभ की मुस्कान बनती है मनोहर !
तर्क की आंधी उड़ाती, कर्म पथ में धूल तम की ।
भावना की शारदी स्मिति : रश्मिरंजित शुभ्र अन्तर ।
भावना ही सब अभावों को भरे है प्राण ।

तर्क कर के रूप अब तुम क्यों बनो पाषाण ?
मानवी हो तुम सुकवि को प्रेरणा दो प्राण !

—शम्भुनाथ शेष

आकाशवाणी
नई दिल्ली

ले जा अपनी याद लिये जा !

ले जा अपनी याद लिये जा !
जानेवाले साथ सिहरते अंगों की फ़रियाद लिये जा
ले जा अपनी याद लिये जा !

जीवन भर बेचैन हृदय पर उठ आरे-सी चलनेवाली
जीवन भर गलते पारे सी तन पर, मन पर ढलने वाली
रोम रोम में रख देती जो बिजली की ज्वलन्त चिनगारी
नस नस में फूँका करती जो अति असह्य झंकार तुम्हारी
अपनी प्रतिहिंसक सुधि का प्रतिशोधी दग्ध निनाद लिये जा
ले जा अपनी याद लिये जा !

अश्रुजड़ित सपनों से मंडित कोई कातर स्वर न सुनूँ मैं
किसी अकुंठित अभिमानी मन का रीता मर्मर न गुनूँ मैं
सुन्दरता की आग लगा देनेवाली ममता न बुनूँ मैं
छलक रही लावण्य और यौवन की वे झलकें न चुनूँ मैं
ले जा अपने साथ असह विह्वलता के संवाद लिये जा
ले जा अपनी याद लिये जा !

मन की गंगा की धारा में पूजा के वे फूल बहें मत
व्याकुल काली काली आँखों के पुरनम संकेत कहें मत
मेरी आकाँक्षा की कलियाँ अवसादी हिमपात सहें मत
मेरी भूख प्यास के गाने मेरे दिल के पास रहें मत
तू जा तो अपने विछोह का अंगीभूत विषाद लिये जा
ले जा अपनी याद लिये जा !

जीवनव्यापी तृष्णा औ' आकुलता की बुनियाद लिये जा
ले जा अपनी याद लिये जा !

राबर्टसन कालेज,
जबलपुर

—अंचल

समीरण धीरे धीरे बहो !

समीरण, धीरे धीरे बहो !

फूल का मधु मधुपी पी रहा
कहीं उसको आघात न हो !

कली के सौरभ से भर चले
हाथ की अपनी यह डाली,
फूल से सहलाओ चुपचाप
किसी प्रणयी की रोमाली
हृदय के कानों में उन्मुक्त
प्रेम का मधु सन्देश कहो !
समीरण, धीरे धीरे बहो !

स्वर्ग का हिम, भू का किञ्जल्क
मिला कर नव आसव ढाला
झूमते इठलाते से चलो
लुटाते से मादक हाला !
विषम पथ में यदि मिले थकान
किन्हीं कुञ्जों में बिरम रहो !
समीरण, धीरे धीरे बहो !

किसी ने मृदुल प्रेम की डोर
तुम्हारे प्राणों से बाँधी,
तोड़ कर झटके में तुम उसे
कहीं बन जाना मत आँधी !
तनिक मेरे ही लिए उदार
प्राण पर पल भर बँधन सहो !
समीरण, धीरे धीरे बहो !

—सुधीन्द्र

बलवन्त राजपूत कालेज
आगरा

नवयुग के कवि से

सुना सको यदि, नवयुग के कवि
अभिनव अब कुछ गान सुना दो

रूपसि की रूप-रश्मियों का, रहने दो, अब तुम, अभिनन्दन
बस मिलन विरह की पृष्ठभूमि पर व्यर्थ मीत अब चित्रांकन
नारी का, केवल रमणी बन, सत्ता का नव परिचय कैसा
सहचरि का, केवल प्रेयसि बन, यह प्रगतिशील अभिनय कैसा ?
तन्द्रालस नूपुर स्वर जागें, ले रुनझुन में जागृति लय-प्रण
पायल की छूम छुनन् में हो, वास्तविक जागरण आवाहन;
जगा सको यदि, कंज-पर्गों की
मूर्च्छित गति तुम आज जगा दो !
सुना सको यदि, नयुवग के कवि
अभिनव अब कुछ गान सुना दो !
मानव की रक्त-पिपासा का, इतिहास अधूरा रहने दो
मानव द्वारा मानवता की अपमान कथा बस रहने दो
हिंसा की भीषण क्षुधा लिए, यह मानव परिचय कैसा
उस दिव्य शक्ति के दिव्य अंश का यह पशुता-अभिनय कैसा ?
कर्त्तव्य तुला पर तुल मानव, ले निज गौरव का मूल्य जान
अपना, त्यक्ता मानवता को, वह बने आज फिर से महान् !
करा सको यदि, मानव की—
मानवता से पहचान करा दो !
सुना सको यदि, नवयुग के कवि
अभिनव अब कुछ गान सुना दो !
अगणित कटु व्यंगों से आहत जर्जर जग का तन मन जीवन
दिन रैन किसी आशंका से व्याकुल वसुधा, संतप्त गगन
विश्वास बनें, पाथेय मीत, इस थकते विश्व पथिक के अब
उन्माद नहीं मदिरा का, हो साँसों में स्पन्दन संज्ञा अब
एक बार जग अन्तरतम की बुझती ज्योति जगा दो कवि तुम
सत्य शिवम् का अर्थ जगत् को एक बार समझा दो फिर तुम !
दिला सको यदि, जीवन को बस
जीने का अधिकार दिला दो !

सुना सको यदि, नवयुग के कवि
अभिनव अब कुछ गान सुना दो !

लखनऊ —दीप्ति

गीत

हार न मानो, युवक
मृत्यु से जीवन में तुम
हार न मानो।

(१)

प्राणों को तुम—
भर लो अपने ही अन्तर में
जीवन को तुम
आशाओं के बने जगत् में–
मद कितना बिखरा है जग में–
मधु से छक, विश्वास न हारो–
हार न मानो।

(२)

कितनी भोली है यह जगती–
छलक रहा है चषक नेह का,
क्रम से मिटता, बनता जीवन
नश्वर सा क्रम इसी देह का–
जीवन प्रेम, प्रेम जीवन है–
व्यथा मिलन की, मत पहिचानो,
हार न मानो।

(३)

कानों में गूजेंगे वे रव–
दो क्षण भी उस प्रणय कथा के
कभी न मिट पायेंगे मन से
युग युग तक के गीत व्यथा के।
कितना सुख है उस चिन्तन में–
जीतेगा मन, हार न जानो–
हार न मानो।

म. भा. हिन्दी साहित्य सभा,
ग्वालियर

—कोमलसिंह सोलंकी

स्मरण

बार बार आती है याद
देख तुम्हें आँखों के आगे होता मुझको हर्षोन्माद

प्राप्त हुआ है मुझको तुममें खोया अपना जीवन कोश
मुझको अपनी सब आशाएँ दिखती हैं तुममें आबाद

यह कैसी अत्यन्त निकटता जब हमको रहना है दूर
केवल स्वप्नों में पाना है जीवन का मधुमय आल्हाद

मैं हूँ कहाँ, कहाँ हो तुम पर जीवन के विचित्र हैं खेल
मेरे लिए बहुत है मुझ को मिला तुम्हारा प्रेम प्रसाद

उस्मानिया यूनिवर्सिटी,
हैदराबाद

—वंशीधर विद्यालङ्कार

दीप-श्री

शलभ के संदेश लाया, दीपवाला देश ?
नित नमित नयनों ने दिए नीरव नये संदेश
मिल रहे हैं आज पी के प्राण को आदेश
धन्य जननी, मुग्ध जनता, मुक्त भारत देश !

विहँसती वसुधा लिए है चाँदनी सा गात
जल रहे चिर साधना में दीप ये चुपचाप
मुक्त हो नभ से उतर कर तिर चले हैं आज
या किसी की अर्चना के खिल रहे जलजात
यामिनी आई उतर कर दीपवाले देश
धन्य जननी, मुग्ध जनता, मुक्त भारत देश !

छोर नभ का छू रहें हैं भव्य-भू-लघु-दीप
प्राण में मुक्तक छिपाये है धरित्री-सीप
पथ बनाते आज किसका कौमुदी से लीप
परिधि तम की मापने बलते निराले दीप
विश्व के इतिहास लिखते, आज जो हैं शेष
धन्य जननी, मुग्ध जनता, मुक्त भारत देश !

किन्तु जीवन में चले आते रहें आघात
और कितनी आपदाएँ घोर उल्कापात
आज कितनी विषमताएँ आएँ अपने आप
सुप्त हो रहती निशाएँ, हँस रहे हैं प्रात
मौन दीपति-दीप-उर तिर तिर चले अवशेष
धन्य जननी, मुग्ध जनता, मुक्त भारत देश !

मौन मेरे हृदय का मृदु दीप जल रहा
बिन्दु में रे सिन्धु सा कोई मचल रहा
पत्थरों के मिस तुम्हें भगवान दे रही
आज मैं वरदान ही वरदान दे रही
लोचनों के दीप ही जल, बल रहे हैं शेष
धन्य जननी, मुग्ध जनता, मुक्त भारत देश !

—कुमारी राज शिवपुरी
एम. ए.

राजमहल गर्ल्स कालेज,
जोधपुर

राजा शिवप्रसाद

[बाल्यकाल और जीवन चरित]

राजा शिवप्रसाद का सम्बन्ध एक उच्च घराने से है जिसका मनोरंजक इतिहास ११ वीं सदी से मिलता है। जयपुर स्थित रणथम्भोर की परमार क्षत्रिय जाति के धंधाल नामक व्यक्ति इस वंश के आदि पुरुष थे। कहा जाता है श्री पूज्य नामक एक जैन साधु के आशीर्वाद से इनके एक पुत्र हुआ जिससे प्रभावित हो कर इन्होंने जैन धर्म स्वीकार कर लिया। जब रणथम्भोर पर अल्लाउद्दीन ने अधिकार किया तब वे सपरिवार वहाँ से निकल गए। पहले अहमदाबाद ठहरे, फिर चम्पानेर और अन्त में खम्भट आकर बस गए।

इसके पश्चात् इस वंश का इतिहास उल्लेखनीय नहीं रहा। धन्धाल के २६ वें वंशज अमरदत्त के समय में फिर इस वंश ने उन्नति की। अमरदत्त ने शाहजहाँ को एक हीरा भेंट किया जिससे प्रसन्न होकर शाहजहाँ ने उसे राय का ख़िताब दिया। इस वंश के पुराने काग़ज़ों से पता चलना है कि मुग़ल बादशाह अमरदत्त को दिल्ली ले आए थे और उसे अपना ज़ौहरी नियुक्त किया। राय अमरदत्त के पुत्र राय उदयचन्द हुए जिनका विवाह मुर्शिदाबाद के सेठ माणकचन्द की बहिन धनाबाई से हुआ। राय उदयचन्द के तीन पुत्र थे—राय सौभाग्यचन्द, राय मीठासेन और फ़तहचन्द।

इस वंश ने जनता की अच्छी सेवाएँ की जिससे जनता के हृदय में इनके लिए श्रद्धा की भावना रहती थी। मुहम्मद शाह के समय जब दिल्ली में भयंकर अकाल पड़ा रायचन्द ने अनाज को सस्ते दामों पर बेचा। उनकी इस सेवा के लिए मुहम्मदशाह ने उन्हें ‘जगत-सेठ’ की उपाधि देकर सम्मानित किया। रायचन्द के मामा सेठ माणकचन्द के सन्तान नहीं थी। अतः उन्होंने फ़तहचन्द को गोद लिया। सेठ माणकचन्द की मृत्यु के पश्चात् फ़तहचन्द उनकी सम्पत्ति के स्वामी बने और वे स्थायी रूप से मुर्शिदाबाद में बस गए। नादिरशाह द्वारा दिल्ली में क़त्ले-आम होने पर फ़तहचन्द के दो बड़े भाई क़त्ल कर दिये गए। अतः परिवार के अन्य बचे हुए लोग भी मुर्शिदाबाद आकर बस गए। राय सौभाग्यचन्द के राय अमरचन्द तथा फ़तहचन्द के दलचन्द और आनन्दचन्द; दलचन्द के राजा सरूपचन्द और आनन्दचन्द के मेहताब राय नामक पुत्र हुए। राय अमरचन्द के भी एक पुत्र हुआ जिसका नाम दलचन्द था।

इस वंश के लोग राजनीति में भी सक्रिय भाग लेते थे, यहाँ तक कि मीर क़ासिम ने सरूपचन्द, मेहताब राय और दलचन्द तीनों चचेरे भाईयों को क्लाइव की अध्यक्षता में अंग्रेज़ों को मदद देने के अपराध में गिरफ्तार करने का वारंट ज़ारी किया था। इनमें से दलचन्द छुप कर निकल गए और बनारस जाकर बस गए जहाँ उन्होंने अवध के नवाब वज़ीर के संरक्षण में अपने अंतिम दिन गुज़ारे। दलचन्द के पुत्र उत्तमचन्द की मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र गोपीचन्द सम्पत्ति के उत्तराधिकारी बने।[१]

राजा शिवप्रसाद गोपीचन्द के पुत्र और राजा दलचन्द तथा प्रसिद्ध कवियत्री बीबी रतनकुँवर के प्रपौत्र थे। राजा शिवप्रसाद की उम्र अभी ग्यारह वर्ष की थी कि उनके पिता का देहान्त हो गया। उनकी माता और दादी ने बहुत लाड़-प्यार से उनका लालन-पालन किया। राजा शिवप्रसाद के चरित्र के विकास और उनका सौजन्यपूर्ण स्वभाव होने का श्रेय इन दोनों को है। कुछ समय के लिए राजा शिवप्रसाद ने ‘इंग्लिश सेमिनरी’[२] में शिक्षा पायी। उनके लिए पारिवारिक समस्याओं की ओर ध्यान देना आवश्यक था कदाचित् इसीलिए वे अपने अध्ययन को अधिक समय तक ज़ारी

---

[१] देखिए ‘राजा दलचन्द का ‘कल्प सूत्र’ भूमिका पृ. १–३

[२] बनारस कालेज, वर्त्तमान समय में संस्कृत कालेज। लेखक ने इस कालेज के पुराने रेकार्ड–क्लास-रजिस्टर, पुरस्कार-वितरण-रिपोर्ट और अन्य काग़जों को देखा है जिनके ध्यानपूर्वक पर्यवेक्षण से राजा शिवप्रसाद के विद्यार्थी जीवन के सम्बन्ध में अच्छी जानकारी प्राप्त होती है।

नहीं रख सके। परन्तु निजी रूप से उन्होंने अध्ययन जारी रखा और हमेशा पढ़ने में लीन रहते। पढ़ना-लिखना उनके जीवन का एक अंग बन गया जिसे छोड़ना वे कभी पसन्द नहीं करते थे। प्रोफ़ेसर रामचन्द्र की तरह उन्हें भी सरकारी पद की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना पड़ा। सुसभ्य और कुलीन होने के कारण अंग्रेज अधिकारियों का ध्यान उनकी ओर आकर्षित हुआ। स्वयं अंग्रेज़ शासकों को उस समय चरित्रवान लोगों की सेवाओं की बड़ी आवश्यकता थी।

अभी जब कि वे किशोरावस्था (१७ वर्ष) में ही थे कि गवर्नर जनरल के बनारस स्थित न्यायाधीश और एजेन्ट एच. एच. टामस ने राजा शिवप्रसाद के लिए सदरलैण्ड के पास शिफ़ारिश भेजी कि उन्हें भरतपुर के राजा बलवन्तसिंह का वकील नियुक्त किया जाय।[१] इस प्रकार राजा शिवप्रसाद का भरतपुर देशी रियासत के अमीरी वातावरण में प्रवेश हुआ। वहाँ कुछ समय तक उन्होंने बड़ी दिलचस्पी और लगन से कार्य किया। महाराजा के वकील के रूप में वे लार्ड एलेनबरा के दिल्ली दरबार में भी उपस्थित हुए। परन्तु भरतपुर राज्य में चलनेवाले षड्यन्त्रों को सहना उनके लिए असह्य था। इन षड्यन्त्रों से झगड़े या गलतफ़हमी होना स्वाभाविक ही था। उनका कुछ बातों के सम्बन्ध में झगड़ा हुआ और उन्होंने रियासत को छोड़ दिया जो कि उनके शब्दों में "पैंदे से सड़ी गली" थी और वे अपने जन्मस्थान बनारस में आकर बस गए।

भरतपुर की असफलता किसी तरह उनके मार्ग का रोड़ा सिद्ध नहीं हुई। सहारनपुर के कलक्टर डेविडसन ने सन् १८४५ ई० में राजा शिवप्रसाद का उत्तर-पश्चिम प्रदेश के सदर दीवानी अदालत के जज एडवर्डस् से परिचय कराया। उस समय सिक्खों के आतंक, सतलज के युद्ध और अशान्ति के कारण एक सुयोग्य व्यक्ति की आवश्यकता थी जो इस कार्य को सम्हाल सके। सहारनपुर और फ़िरोजपुर के बीच में जहाँ गवर्नर जनरल का निवासस्थान था बहुत उत्तेजित वातावरण था। चारों ओर खतरा दिखाई दे रहा था और कहा जाता था कि जनरल एकफ़ोर्ड के विरुद्ध विद्रोह किया जाएगा। सेना से सम्पर्क के सब साधन काट दिए गए थे और परिस्थिति गम्भीर हो चली थी। इस संकट के अवसर पर राजा शिवप्रसाद को कार्य भार सौंपा गया जिसे उन्होंने स्वेच्छापूर्वक स्वीकार किया। उन्होंने अंग्रेज़ों की बहुत सहायता की। डब्ल्यू. एडवर्डस् ने उनके सम्बन्ध में कहा था :

> "जनरल एकफ़ोर्ड की प्रार्थना पर मैंने बाबू (शिवप्रसाद) को परिस्थिति जाँचने के लिए मुल्लैर कोटला भेजा। बाबू अपनी जान को खतरे में डाल कर मुल्लौर कोटला से भी आगे गए। वहाँ उनकी हमारी सेना के कुछ भगोड़ों से भेंट हुई जो सर एच. स्मिथ की अध्यक्षता में होनेवाले बुडिवाल के युद्ध से भाग आए थे। इन लोगों से उन्हें वहाँ की पराजय का विवरण मिला और यह भी ज्ञात हुआ कि एक बड़ी संख्या में शत्रु की सेना एक छोटे से किले में जमा हुई है जिधर से होकर हमारी रसद पहुँचाई जाएगी। इस सेना जमा करने का उद्देश्य हमारी रसद की सामग्री को लूटना था और सम्भवतः रणजोर-सिंह के अन्य सिपाही भी बड़ी संख्या में इस सेना में आ मिलते।"

इस प्रकार यह सूचना मिलने पर जनरल एकफ़ोर्ड ने रुक जाने का निश्चय किया और पीछे से आनेवाली टुकड़ियों के साथ होने तक वहीं घेरा डाल दिया।

> "यदि शिवप्रसाद ने हमारी यह भलाई नहीं की होती तो निश्चय ही रसद के साथ सिपाहियों को भेज दिया जाता और उन पर शत्रु सेना आक्रमण करती।"[२]

एक नवयुवक के लिए अंग्रेज़ों की यह कृतज्ञता प्राप्त करना साधारण बात नहीं है। अंग्रेज़ों के लिए यह बड़े संकट का समय था। बुडिवाल में अंग्रेज़ों की पराजय का बुरा असर पड़ा था और अलीवार की लड़ाई नहीं लड़ी गई थी। इस अवस्था में पटियाला के सरदार और सिक्ख बहुत खुश हो रहे थे और वे अंग्रेज़ों के और भी विरोधी हो गए थे। इस गम्भीर परिस्थिति

---

[१] देखिए राजा शिवप्रसाद : के. सजनलाल, हैदराबाद एकेडेमी स्टडीज़ जिल्द १२, पृष्ठ ३६

[२] विस्तृत विवरण के लिए देखिए 'रेमिनिसेन्सेज़ ऑफ बेंगाल सिविलियन' पृ. ८५-८६

में पटियाला के महाराजा की मृत्यु हो गई। उनके पुत्र की अवस्था अभी छोटी थी। अतः उसका जनता पर प्रभाव नहीं था। ऐसे अवसर पर अंग्रेजों ने देखा शिवप्रसाद के अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति परिस्थिति को नहीं सम्हाल सकेगा। अस्तु, उन्हें नियुक्त किया गया।

> "मैं अपनी स्वतन्त्र इच्छा से यह स्वीकार करता हूँ कि बाबू (शिवप्रसाद) की होशियारी और सरदारों में उनके प्रभाव के कारण ही मैं गवर्नर जनरल की नीति और आदेशों का पालन कर सका कि नवयुवक महाराजा अपने पिता की गद्दी पर कम से कम कठिनाइयों का सामना करते हुए बैठ सकें और अपने सरदारों को अंग्रेजों की ओर मिला सकें।"

इस प्रकार हम देखते हैं शिवप्रसाद की सेवाओं के कारण अंग्रेजों से उनकी मित्रता सुदृढ़ हुई जिन्होंने इस नवयुवक के महत्व को पहचाना। जिस चतुराई और दक्षता से वे कठिन परिस्थितियों को सम्हालते उसे देख कर सभी आश्चर्यचकित हो जाते थे। यही कारण है उन्होंने अंग्रेजों के हृदय में घर कर लिया था।

आश्चर्य नहीं, जब तक सिक्खों से युद्ध चलते रहे और जब कभी अंग्रेजों के सामने कोई कठिनाई आई, वे शिवप्रसाद का सहारा लेते।

शिवप्रसाद को हेनरी लारेन्स के पास रक्खा गया। लारेन्स ने उन्हें सोबराँ में सिक्खों के खेमे में जाकर आवश्यक सूचना लाने का आदेश दिया। शिवप्रसाद अपने प्राणों को खतरे में डाल कर सिक्ख सेना में गए, वहाँ काफ़ी समय तक रहे जिससे कि सिक्खों की सारी सेना और युद्धास्त्रों की जानकारी प्राप्त कर सकें। उन्होंने महत्वपूर्ण बातों का पता लगाया और दस फरवरी को अंग्रेजों के खेमे में लौट आए।

लार्ड हार्डिंग ने फिर उन्हें एक भिन्न प्रकार का कार्य सौंपा। उन्हें एच. आर. एच. प्रिंस वेल्डरमेन और उनके कर्मचारियों को बम्बई के रास्ते इन्दौर पहुँचाने के लिए भेजा गया। शिवप्रसाद ने यह कार्य भी पूर्ण दक्षता से किया।

इसके पश्चात् उन्हें सन् १८४६ में विदेशी विभाग का उप-मीर मुन्शी बना कर संधि कराने के लिए भेजा गया और उनके अकथ परिश्रम और बुद्धिमानी के परिणाम स्वरूप भैरवाल की संधि तय हुई। इस प्रकार राजा शिवप्रसाद ने युद्ध और शान्ति दोनों अवसरों पर अपनी योग्यता प्रदर्शित की और अंग्रेजों की प्रशंसा प्राप्त की।

शिक्षा विभाग में जाने से पहले शिवप्रसाद ने बहुत अनुभव प्राप्त कर लिया था जो बाद में 'इन्सपेक्टर ऑफ स्कूल्स' के पद पर काम करते हुए उनके लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ।

सन् १८४८ में जब एडवर्डस् की पहाड़ी रियासतों के सुपरिन्टेन्डेन्ट के रूप में नियुक्ति हुई शिवप्रसाद को उनके साथ शिमला एजेन्सी का मीर मुन्शी बनाया गया। यहाँ भी उन्होंने शिमला एजेन्सी के लोगों के लिए शिक्षा का बहुत अच्छा संगठन किया।

शिवप्रसाद ने १८५२ ई. में पद-त्याग कर दिया क्योंकि उन्होंने एडवर्डस् के साथ इंगलैण्ड जाने का निश्चय कर लिया था। परन्तु उनकी योजना सफल न हो सकी। उन पर सरकारी पद स्वीकार करने के लिए दबाव डाला गया किन्तु उन्होंने उसे अस्वीकार कर दिया। उन्होंने नौकरी न करने का निश्चय कर लिया था। सितम्बर १८५२ में जे. टामसन ने एडवर्डस् को पत्र लिखते हुए निम्नलिखित शब्दों में अपनी सम्मति प्रकट की:—

"शिवप्रसाद का सरकारी नौकरी न करने का निर्णय सर्वथा उचित है यदि वह उसके बिना (आराम से या कठिनाई से) रह सकता है। वह सरकारी पद पर रहने के बदले अपने देशवासियों के लिए उनके बीच एक स्वतन्त्र व्यक्ति के रूप में अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकता है।" आगे वे लिखते हैं "यदि वह इंगलैण्ड जाता है तो उचित है वापस लौट कर वह अपने देशवासियों के लिए और भी अधिक उपयोगी होगा।" इससे प्रगट होता है कि शिवप्रसाद ने इंग्लैन्ड जाने की आशा नहीं छोड़ी थी। वास्तव में यह आशा की जाती थी कि वे महाराजा पटियाला के साथ इंग्लैन्ड जायेंगे। सर डब्ल्यू. म्योर प्रोफ़ेसर जानसन को एक पत्र लिखते हुए शिवप्रसाद का परिचय इस प्रकार देते हैं:

"मुझे अपने मित्र शिवप्रसाद जो पटियाला के राजा के साथ इंग्लैन्ड जानेवाला है का परिचय देने की अनुमति दें। इस देश के जिन निवासियों से मैं मिला हूँ शिवप्रसाद में उन सब से अधिक नैतिक और बौद्धिक

आकांक्षा है। वह हिन्दी का हमारा सबसे अच्छा लेखक है और अंग्रेज़ी का उसे बहुत अच्छा ज्ञान है।"

पद-त्याग करने के बाद प्रायः १८ महीने तक शिवप्रसाद कुछ भी निर्णय नहीं कर सके। वे व्यावहारिक अनुभव प्राप्त करने के लिए इंग्लैन्ड जाने को बहुत उत्सुक थे। परन्तु इंग्लैण्ड जाने की उनकी योजना सफल न हुई। फिर भी वे लिखने पढ़ने का काम करते रहे जिससे हिन्दी में कई पुस्तकों के यशस्वी लेखक के रूप में वे प्रसिद्ध हुए। वे डलहौज़ी के सम्पर्क में आए जिसने कि उनकी विद्वत्ता की प्रशंसा करते हुए उन्हें कुछ पुस्तकें प्रदान करने का वचन दिया और मई १८५४ में उसने उनके पास पुस्तकें भेजीं।[१]

> "गत महीने गवर्नर जनरल ने आपको जो पत्र भेजा उसके सम्बन्ध में उन्होंने आपको दो पुस्तकें भेजने का मुझे आदेश दिया है जिन्हें महामान्य की ओर से आप भेंट स्वरूप स्वीकार करें।[२]

शिवप्रसाद गवर्नर जनरल के बनारस स्थित एजेन्ट एच. सी. टक्कर के सम्पर्क में आए। दोनों ने शिक्षा के क्षेत्र में कार्य किया अतः सन् १८५६ में शिवप्रसाद ने बनारस क्षेत्र के सहायक इन्सपेक्टर ऑफ स्कूल्स के रूप में शिक्षा विभाग में नौकरी कर ली। सदा की भाँति यहाँ भी उन्हें सुयश मिला। उच्च अधिकारियों ने सदैव उनके अध्यवसाय, ईमानदारी और लगन से काम करने के कारण उनकी प्रशंसा की। "उन्होंने बहुत से स्कूल खोले और पिछले वर्ष उन्होंने जो स्कूल खोले वे असाधारण रूप से श्रेष्ठ हैं।" ग्रिफ़ित के शब्दों में "वे सचमुच धरती से उग आए मालूम होते हैं।" सहायक इन्सपेक्टर ऑफ स्कूल्स के रूप में उनकी अत्यन्त प्रशंसा की गई।

"बनारस क्षेत्र के सहायक इन्सपेक्टर ऑफ स्कूल्स के रूप में सरकार को बाबू शिवप्रसाद बहुत कर्मठ और सुयोग्य व्यक्ति मिले हैं।" उनके परिश्रम और योग्यता के कारण ग्राम-पाठशालाओं की बहुत उन्नति हुई। सन् १८६०-६१ में २१४ स्कूल खोले गए जिनमें १३,१२२ विद्यार्थी शिक्षा पाते थे।

शिवप्रसाद ने यह नियम बना दिया था कि शिक्षा विभाग के अधिकारियों को अधिक से अधिक बार स्कूलों का निरीक्षण करना चाहिए। इससे काम के प्रति उनका उत्साह प्रगट होता है।

कुछ दिनों बाद उन्हें इन्सपेक्टर ऑफ स्कूल्स का पद दिया गया जो कि उन दिनों बड़े सम्मान का पद था क्योंकि अब तक उस पद पर केवल यूरोपियन ही नियुक्त किए जाते थे।

स्कूल इन्सपेक्टर के रूप में उनके अधिकार में दस ज़िले थे। उन्होंने जनता में भारतीय भाषाओं के अध्ययन का प्रसार करने के लिए भगीरथ प्रयत्न किए। वे प्राइमरी स्कूलों की संख्या और शिक्षा के स्तर को बढ़ाना चाहते थे।

अपनी कार्य कुशलता, दूसरों के प्रति सहानुभूति की भावना और कृत्रिमता से परे रहने की आदत के कारण वे सर्वत्र लोकप्रिय हुए यह स्वाभाविक ही था।

इन्सपेक्टर ऑफ स्कूल्स बन कर उन्होंने अपने व्यक्तित्व की सम्पूर्ण शक्तियाँ और कार्यदक्षता शिक्षा के कार्य में लगा दी। सभी कार्यों की ओर वे स्वयं ध्यान देते थे और अपने सहायकों पर अधिक निर्भर नहीं रहते थे यद्यपि वे उनसे अधिक से अधिक काम लेते। कार्यकर्ताओं को चुनने में उनकी दृष्टि बहुत पैनी थी। वे बालकों को जिस प्रकार प्रेरित करते वैसी प्रेरणा देना अंग्रेज़ अधिकारियों के लिए असम्भव था। उनके सम्बन्ध में शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर ने अपनी सम्मति इस प्रकार दी थी—

"ग्राम पाठशालाओं के नैतिक और बौद्धिक स्तर में जो निश्चित प्रगति हुई है इसका मुझे इतने स्पष्ट रूप में कभी ज्ञान नहीं था जो राजा शिवप्रसाद के साथ तीसरे सरकल के ज़िले में एक महीने तक दौरा करने के पश्चात् हुआ।" उनकी और भी प्रशंसा की गई:

"आपको अपने अफसरों का ही आदर और सत्कार नहीं मिला है परन्तु जनता ने आपका आदर और सम्मान किया है। यह सम्मान आपको नीचता, छल-प्रपंच या अधिकारियों की चाटुकारिता के द्वारा नहीं मिला है वरन् आपने सच्चाई से, योग्यता से, फिर भी एक

---

[१] देखिए—ओमदत-उल-अखबार सजनलाल, आई. एच. आर. पी. १९४८, पृ. १०८

[२] एफ. एफ. कोर्टने, भारत के गवर्नल जनरल के प्राइवेट सेक्रेटरी-

विशिष्ट ढंग से अपने स्वतन्त्र विचारों का पालन किया है चाहे वे आपकी आर्थिक उन्नति में सदैव बाधक ही क्यों न सिद्ध हों।”

ग़दर के दिनों में शिवप्रसाद बनारस में सहायक इन्स्पेक्टर ऑफ़ स्कूल्स थे। इन दिनों उन्होंने अंग्रेज़ों की, विशेषतया अपने मित्र और धर्म-पिता एच. सी. टक्कर की बहुत सहायता की थी। उत्तर-पश्चिम प्रदेश के शिक्षा विभाग के डाइरेक्टर मिस्टर रीड ने शिवप्रसाद की अमूल्य सहायता की सरकार को रिपोर्ट भेजी थी।

“उत्तर-पश्चिम प्रदेश के शिक्षा-विभाग के डाइरेक्टर मिस्टर रीड की रिपोर्ट से मुझे ज्ञात हुआ है कि ग़दर के दिनों में आप निश्चल रूप से स्वामिभक्त बने रहे और अत्यन्त संकट के अवसर पर ४ जून की रात को एजेन्ट मिस्टर टक्कर से मिले। यद्यपि रास्ते में खतरा था फिर भी आप तुरन्त यूरोपीय सिपाहियों का स्वागत करने और उनका पथ-प्रदर्शन करने के लिए राजघाट जा कर मिले जहाँ उनके आने की सम्भावना थी और कालबाई के थाने की रक्षा की व्यवस्था के लिए आपने अपना पूरा वेतन सुपुर्द कर दिया।”[१]

अन्त में हम एच. सी. टक्कर जो बनारस के कमिश्नर और गवर्नर जनरल के एजेन्ट तथा शिवप्रसाद के घनिष्ट मित्र और उनका आदर करनेवाले थे का पत्र उद्धृत करना चाहेंगे :

“बनारस छोड़ते समय मुझे अपने परम मित्र और सहयोगी बाबू शिवप्रसाद से बिछुड़ना पड़ रहा है। जब से मैं बनारस आया हूँ शिक्षासम्बन्धी, अनुवाद और अन्य कामों में वे मेरे दाहिने हाथ रहे हैं। जितने अधिक और अच्छे काम उन्होंने किए हैं वे उनके उत्साह, योग्यता और लगन के प्रमाण हैं। वे हृदय से शिक्षा का प्रचार और अपने देशवासियों की उन्नति चाहते हैं और जब से शिमला में उन्होंने प्राथमिक पाठशाला की पुस्तकें लिखना आरम्भ किया उस दिन से अब तक, मेरा विश्वास है, इस उद्देश्य से किसी एक व्यक्ति ने उनके जितना काम नहीं किया।”

हैदराबाद

—के. एस.
एम. ए.

> संगीत और कला के क्षेत्र को छोड़ कर बहुत कम लोग अन्य क्षेत्रों में औसत से अधिक योग्यता प्रदर्शित किए बिना अपने क्षेत्र में योग्य प्रमाणित हो सकते हैं। मैं नहीं जानता होशियार बालक साधारण बालकों की अपेक्षा प्रसन्न रहता है या नहीं परन्तु यह सत्य है उसे प्रायः अच्छा भोजन, अच्छे वस्त्र और सुन्दर वस्तुएँ मिलती हैं जिससे उसका शारीरिक गठन प्रभावशाली होता है। बड़ा हो कर वह अधिक कमाता है और अपने बच्चों की अच्छी तरह देखभाल करता है। मनुष्य जाति की भावी पीढ़ी का मूल्य रुपए-पैसों में नहीं आँका जा सकता। प्रत्येक बालक जिसका बौद्धिक माप १४० या इससे अधिक है राष्ट्र की बहुमूल्य शक्तिशाली सम्पत्ति है।
>
> —प्रो० टैरमन

---

[१] ग़दर के उनके अनुभव के लिए पढ़िए राजा शिवप्रसाद : के. सजनलाल, हैदराबाद एकेडमी स्टडीज जिल्द १२, पृ. ३६।

शवरी-मंगल

"दसकन्ध के मारन कौं, चतुरंगिनि,
सक्तिमती नृपता हुती खासी।
रिषि औ मुनि के सतकारन कौं,
वहु जग्य-विधान, हुते सुखरासी।
मन राखते बन्धु भरत्थ को,
औसि, घरै फिरि जाते, प्रजा के उपासी।
सवरी बन बासिनि होति न जो,
प्रभु रामहु ना बनते, बनवासी।"

(बचनेश मिश्र)

राम की वन-यात्रा में एक भावपूर्ण स्थल शवरी-मिलन का प्रसंग है। प्राचीन समय से लेकर ईसा की बीसवीं शताब्दी के चौथे दशक तक कई कवियों ने उसका उपयोग किया है। सबने अपने युग की आवश्यकताओं और निजी मनोवृत्ति के अनुकूल उस कथा को उठाया है।

काव्य-ग्रन्थों में शवरी-प्रसंग की चर्चा सबसे पहले 'वाल्मीकि रामायण' में हुई है और आधुनिक कृति श्री बचनेश जी मिश्र की 'शवरी' है जो सन् १९३६ ई. में पहली बार कालाकाँकर में प्रकाशित हुई थी। समय की इन दो सीमाओं के बीच अनेक कवियों ने इस कथा को लिखा होगा। अनेक अप्रकाशित तथा प्रकाशित ग्रन्थों में यह कथा होगी। उन सब तक पहुँचना सहज नहीं है। जिन कवियों की रचनाओं का उपयोग मैं कर पाया हूँ इनमें वाल्मीकि और बचनेश मिश्र के अलावा वेदव्यास, सूर (१४७२ ई-१५८३ ई.), तुलसी (१५३२ ई-१६२३ ई.), केशव (१५५५ ई-१६१७ ई.) अखो (१५९१ ई-१६५६ ई.), प्रियादास (१७१२ ई.), रसिक विहारी (१७२३ ई.) मंझ (१७७० ई-१८४० ई.), रघुराज सिंह (१८२३ ई-१८७९ ई.) जियालाल (१८९५ ई.) प्रमुख हैं। इन सब ने दण्डकारण्य का सजीव उपयोग अपने-अपने ढंग से किया है। कुमारी मायादेवी मधु की 'शवरी' १९४८ ई. में छपी। उसमें काव्य का एकान्त अभाव है। शवरी कथा का उपयोग, समाज को गाली देने के लिए किया गया है।

कालिदास ने शवरी कथा का तो उल्लेख नहीं किया है किन्तु दण्डकारण्य के ऋषि मुनियों और जटिल तपस्वियों के जीवन की झलक अवश्य दिखलाई है और यक्ष को रामगिरि में दिखलाया है। पंचवटी की इस भोली किराती का मनोरम चित्र चन्द्रकुँवर ने उतारा है।

भवभूति ने 'उत्तररामचरित' में दण्डकारण्य में शम्बूक का वध करवाया है। अपने युग की मनोवृत्ति को भवभूति ने प्रतिबिम्बित किया है, 'शूद्र यदि तप करता है तो वधयोग्य है।' उच्च वर्ग के जात्याभिमानियों द्वारा यह व्यवस्था बहुत पहिले से मनु आदि स्मृतिकारों द्वारा दी जा रही थी। किन्तु अपने युग की चेतना ध्वनित करते हुए भी भवभूति ने शंबूक वध से वह कार्य लिया जो बाद में आनेवाले कवियों ने शवरी-प्रसंग की कथा से लिया है। भवभूति के राम, शम्बूक का वध करते हैं। शम्बूक राम का उपकार मानता है, उनकी वन्दना करता है, संभवतः इस बात से प्रेरणा ले कर अन्य कवियों ने राम दर्शन के अवसर पर शवरी से कृतज्ञतावश कहलवाया है—'मुझ जैसी कुजाति और नीच को आप ने तार दिया है।'

कर्मकाण्ड के मिथ्या अहंकार को चूर कर देने-वाले विदेशी तथा स्वदेशी आक्रमणों ने परिस्थितियों को जब बदल दिया तब किसी को यह कहने का खुला साहस नहीं हो सकता था शूद्र तप करने का अधिकारी नहीं। आचार्यों की परम्परा ने वेद, उपनिषद् और गीता के ज्ञान का युगजनोचित रूप प्रस्तुत करने में आरम्भ में अपना समय लगाया। वहकाम जब हो गया तो उन्हें भी सन्तों द्वारा अपनाए गए उदारचेता प्रेम भक्ति के बहुमुखी सिद्धान्तों को खुले रूप में अपनाने की आवश्यकता प्रतीत हुई। फलस्वरूप ज्ञान को केन्द्र में डाल, कर्म को भक्ति संरक्षण में कर, प्रेम को सर्वत्र फैलने दिया गया। देववाणी ने 'जन्मना जायते शूद्रः कर्मणा द्विज उच्यते' की घोषणा की और जनवाणी ने डंके की चोट कहा—'जाति पाँति पूछे नहिं कोई, हरि को भजे सो हरि का होई।' धर्म की उच्चतम भाव-भूमि में पहुँचाने के लिए दोनों

का एक ही मूल मन्त्र हो गया—एकनिष्ठ प्रेम में ज्ञान, कर्म और भक्ति का समन्वय कर देनेवाला ईश्वर कह दे—

'सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज'

शूद्रोद्धार के लिए हरिजन जैसे आन्दोलन समन्वयवादी चेतना के कारण हर एक युग में निकल ही आते हैं। आज के युग का कवि इन समस्याओं को सुलझाने के लिए शवरी-प्रसंग की कथाओं का भी उपयोग करता है। उसकी सामंजस्यवादी बुद्धि बचनेश मिश्र जी के शब्दों में अपने विचारों को प्रकट करती है—

'छूति-अछूति कुजाति-विजाति तहाँ जहँ कर्मन की मनुसाई।
प्रेम के राज विदेह प्रजा, 'बचनेश' तहाँ न अपावनताई।
सोचि यहै पुरुषोत्तम ने दोउ पच्छन की मरजाद दिखाई।
सूद तपी को कियो बध औ, शबरी-घर पाय लई पहुनाई।'

पुरुषोत्तम के जिस मर्यादावाद की ओर बचनेश जी का ध्यान गया है उसको तुलसीदास जी ने 'मानस' में प्रमुखता दी है; 'दोहावली'[1] में तर्क के समानान्तर चलने दिया और है 'गीतावली' में प्रेम के आधीन बना दिया है। हृदय की भावनाओं की दृष्टि से तुलसीदास जी अपने चरम उत्कर्ष पर 'गीतावली' में दिखलाई देते हैं। 'विनय-पत्रिका' उनकी एकान्तिक साधना की चीज है।

शवरी की कथा का निखरा हुआ काव्यमय रूप 'गीतावली' में आया है। 'गीतावली' की रचना तुलसीदास जी ने उस समय की जब उनके हृदय में पूर्ण रूप से शान्ति थी, जब सूरदास के वात्सल्य भाव के पदों के सौन्दर्य पर वे रीझ चुके थे। भागवत की परम्परा को अपनाते हुए सूरदास ने भी राम कथा के बीच एक पद शवरी-प्रसंग पर लिखा है :

'सबरी आश्रम रघुपति आए,
आधासन दै प्रभु बैठारे।
खाटे फल तजि मीठे ल्याई
जूँठे भए सो सहज सुहाई।
अन्तरयामी अति हित जाने,
भोजन कीने, स्वाद बखाने।
जाति न काहू की प्रभु जानत,
भक्ति-भाव हरि जुग-जुग मानत।
करि दण्डवत भई बलिहारी,
पुनि तनु तजि हरि-लोक सिधारी।
सूरज प्रभु अति करुना भई,
निज कर करि तिल-अंजलि दई।'

सूर के इस भाव ने गीतावली की संयममयी सात्विक भूमि में पूर्ण प्रसार पाया है।

'मानस' में शवरी-प्रसंग है, काफ़ी विस्तार भी वहाँ है किन्तु वह 'अध्यात्म-रामायण' की नवधा-भक्ति की गीता के रूप में ही वहाँ आया है। वस्तुतः शवरी और उसके मनोभावों पर कवि का ध्यान वहाँ उतना नहीं टिका है जितना भक्ति के उपदेश पर, इसलिए काव्य की दृष्टि से 'मानस' के शवरी-प्रसंग में वह सौन्दर्य कहाँ जो 'गीतावली' के शवरी-प्रसंग में है।

'अध्यात्म रामायण' में भक्ति-सिद्धान्त की सभी बातें शवरी-प्रसंग में भी संक्षेप में दुहरा दी गई हैं। वर्ण-जाति-भेद के गहरे संस्कारों से उठ कर सार्वभौम विश्वात्म भाव की तन्मयता में आध्यात्मरामायण-कार पहुँचा है ऐसा नहीं जान पड़ता। राम के मुख से कवि ने यह तो कहलवा दिया है कि भक्ति में स्त्री-पुरुष, जाति-वर्ण, ऊँच-नीच के भेद-भाव बाधक नहीं हो सकते किन्तु तपःसिद्धा शवरी की उत्पत्ति नीच वर्ण से हुई है और राम उच्च वर्ण के हैं यह भेद भाव उसके मन में विद्यमान है ही—

'किं दुर्लभं जगन्नाथे श्री रामे भक्तवत्सले।
प्रसन्नेऽधम जन्मापि शबरी मुक्तिमाप सा।'[2]

इतना ही नहीं उच्च वर्ण का भी ध्यान उसकी चेतना में बराबर बना रहता है।

'किं पुनर्ब्राह्मणा मुख्याः पुण्याः श्रीरामचिन्तकाः।
मुक्तिं यान्तीति तद्भक्तिमुक्तिर्व न संशयः।'[3]

नवधा भक्ति के उपदेशक के रूप में कवि वहाँ आया है,

---

[1] (क) बंधु-बंधू-रत कहि कियो, वचन निरुत्तर बालि। तुलसी प्रभु सुग्रीव की, चितइ न कछू कुचालि।१५७।
(ख) कहा विभीषन लै मिल्यौ, कहा बिगार्यो बालि। तुलसी प्रभु सरनागतहि, सब दिन आए पालि।१५९।
(ग) वैरि बंधु निसिचर अधम, तज्यो न भरे कलंक। झूठे अघ सिय परिहरी, तुलसी सोंई ससंक।१६६।

[2] अध्यात्म-रामायण (गीता प्रेस १९४० ई. संस्करण) : अरण्यकाण्ड, दशम सर्ग, श्लोक ४२

[3] आध्यात्म रामायण (गीता प्रेस १९४० ई० संस्करण) अरण्य काण्ड दशम सर्ग श्लोक ४३

सहृदय उदार वृत्ति के भावुक के रूप में नहीं। कथा के अनुरोध से गौणरूप में अवश्य एक दो स्थल ऐसे आ गए हैं जो सुन्दर से सुन्दर काव्य की भावना से ओत-प्रोत हैं। शवरी के हृदय की यह भावना कि उसके शरीर के भस्म होने तक राम सामने ठहरे रहें, उसके विश्वास सरल प्रेम और आत्मीयता की अकथ कहानी है। प्रेमाश्रुपूर्ण शवरी का राम के लिए उमंग के साथ फल लाना भी कम आनंदप्रद नहीं है। किन्तु इन स्थलों का वर्णन मात्र ही कवि ने किया है, उनको सजीव चित्रों में प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति उसमें नहीं रही। मृत्यु समय की भावना शवरी के शब्दों में प्रार्थना रूप से रक्खी गई है। इसलिए वह घनीभूत भावना मर्मस्पर्शी बन गई है। अन्यथा काव्य की सरसता को सुखा देने के लिए अध्यात्मकार में प्रखर उपदेश वृत्ति पर्याप्त मात्रा में है। सांसारिक काव्य की सरसता को सुखा कर आध्यात्मिक सरसता लाना 'अध्यात्म-रामायण' के रचयिता का उद्देश्य था और इस उद्देश्य को तुलसी ने भी 'रामचरितमानस' में अपना आदर्श लक्ष्य बनाया है। इसलिए उनका 'मानस' उतना सुन्दर नहीं बन पाया है जितना लक्ष्य बदल देने के कारण 'गीतावली' बन गई है।

वाल्मीकि का लक्ष्य ही भिन्न था। वाल्मीकि रामायण यदि आर्य संस्कृति के दक्षिणी प्रसार में द्रविड़ संस्कृति से उत्पन्न संघर्ष को चित्रित करने वाला मानवीय आदि महाकाव्य है तो उसका एक लक्ष्य सीता को निष्कलंक सिद्ध करना भी था। मेरा तो यहाँ तक विश्वास है कि 'वाल्मीकि रामायण' लिखी ही न गई होती यदि सीता का बनवास न हुआ होता। क्राच वध तो संयोग वश उद्दीपन कारण बना और कवियों तथा आचार्यों ने उसका उपयोग करुण कविता की उत्पत्ति तथा रस सिद्धांत को समझाने के लिए किया। वन्य-जीवन की सरल मनोमुग्धकारी शोभा के बीच भी मानव हृदय का स्वाभाविक विस्तार वाल्मीकि ने किया है। प्रकृति प्रेमी वाल्मीकि जीवन की कठोर वास्तविकताओं की सत्यानुभूतियों के महान् तपस्वी कवि हैं। उनकी कविता वेदना के ताप से पिघली हिम-शैलों की करुणा है। तुलसी ने 'मानस' के आरम्भ में उनकी ओर संकेत किया है और अन्यत्र भी उनका उल्लेख दिया है। कालिदास जैसे विश्ववंद्य किन्नर कवि ने वाल्मीकि का ऋण स्वीकार किया है और सहृदयता के साथ रघुवंश में उनका स्मरण किया है—'निषादविद्धाण्डजदर्शनोत्थः, श्लोकत्व या पद्यत यस्य शोकः।'

वन्य जीवन मनुष्य का आदि जीवन है इसलिए चाहे 'भीषणा भोगरूक्ष' हो, चाहे 'स्निग्ध श्याम', वन्य शोभा के बीच मानव-हृदय के प्रेम का प्रसार कुशल कवि दिखलाते हैं। वाल्मीकि, कालिदास, दिङ्नाग, भवभूति ने पूर्णतया और तुलसी ने आंशिक रूप में प्रकृति के वैभव के दर्शन किए हैं; उसकी शोभा का उपयोग अपने अपने काव्य के उत्कर्ष के लिए किया है। तुलसी को 'गीतावली' में इसके लिए अधिक अवसर मिला है।

वाल्मीकि के शवरी प्रसंग में शान्त तपोवन की शोभा है। बिहारी ने शृंगार के लिए ग्रीष्म के प्रसंग में तपोवन के जिस प्रभाव को

> 'कहलाने एकत बसत अहि, मयूर, मृग, बाघ
> जगत तपोवन सो कियो दीरघ दाघ निदाघ।'

में दिखलाया है उसके सच्चे दर्शन वाल्मीकि के आश्रम में अथवा भवभूति के दण्डकारण्य में होते हैं। वाल्मीकि के तपोवन का वातावरण शान्त स्निग्ध है। उनके काव्य में शवरी के सरल हृदय की अभिव्यक्ति अपने आश्रम की पवित्रता लिए हुए है। राम राजा हैं। राजा का आश्रमवासियों के प्रति भी कुछ कर्त्तव्य होता है। इस बात को कलिदास ने अपने ग्रंथों में विशेष महत्व दिया है। किन्तु पहले पहल इसके दर्शन 'वाल्मीकि रामायण' में होते हैं। रामायण में शवरी की मुक्ति की कथा अपने सरलतम रूप में है। शवरी वन्य फलों से आतिथ्य सत्कार करती है। वाल्मीकि उसके हृदय की प्रेमाकुलता के विषय में मौन हैं।

वाल्मीकि और वेदव्यास ने राम का साथ दिया है। वाल्मीकि ने राम को सरल तपोवन की शान्त शोभा देखने में लगाया है। अध्यात्मरामायण- कार ने साधना तथा नवधा, दशधा भक्ति के उपदेश राम से दिलवाए हैं। शवरी भी एक श्रद्धालु श्रोता की भाँति उन्हें सुनती चली जाती है। उसमें ऊब नहीं, उद्वेग नहीं, उमंगे नहीं, सब उपदेश वह चुपचाप सुनती है और अन्त में मुक्ति पाती है।

प्रेम, प्रत्याशा, प्रतीक्षा की भावनाओं को थोड़े से

शब्दों में चलता करके, भक्ति-सिद्धान्त प्रतिपादन में कवि लग जाता है; मानव हृदय की स्वाभाविक तीव्र भावानुभूतियों का कोई महत्व ही जैसे न हो, उनमें सौन्दर्य न हो, सरसता न हो, वे पवित्रता से शून्य हों और उपदेशात्मक वृत्ति ही सब कुछ हो।

उपदेश वृत्ति से तो हृदय की सरल सुन्दर भावनाएँ भी कुम्हला जाती हैं। राम और शबरी के बीच जो प्रेम तथा आतिथ्य का सम्बन्ध है वह भक्ति के उपदेश के प्रमुख हो जाने से, पीछे फेंक दिया जाता है। सामने आने ही नहीं पाता। प्रेम के सौन्दर्य से हृदय को आनन्दित न करके उपदेशों से काम लिया गया है। राम उपदेशक बन गए हैं। उनके रहस्यमय गम्भीर उपदेश को शबरी अच्छी तरह समझ भी सकी होगी या नहीं? अध्यात्माकार ही जाने।

नारी-हृदय तो भावनाओं को सरलता से अपना सकता है, सिद्धान्त वाक्यों का रूक्ष चिन्तन उसे नहीं भाता। गोपियों ने उद्धव की खिल्ली इसलिए नहीं उड़ाई थी कि सचमुच ही उद्धव अज्ञानी और मूर्ख थे वरन् इसलिए कि उनका ज्ञान हृदय-जात सरसता की अपेक्षा बुद्धि-व्यवसायी सूक्ष्म-चिन्तन का परिणाम था। कवियों को ज्ञान की अतिवादिता के विपरीत प्रेम की हृदयवादिता अपने काव्य और लोक-हृदय के अधिक अनुकूल दिखलाई दी। इसलिए प्रेमा भक्ति की प्रधानता दिखलाने के लिए, बुद्धि पर हृदय की, निर्गुण पर सगुण की, ज्ञान पर भक्ति की, और सूक्ष्म पर स्थूल की विजय दिखलानी आवश्यक सी हो गई थी। ज्ञान में अहम्मन्यता के लिए स्थान रह सकता है। साधारणतया रहता ही है। किन्तु प्रेम अहमन्यता के साथ कम चल सकता है। इसलिए आत्मगुणानुवाद तथा आत्मप्रशंसा के लिए प्रेम में स्थान नहीं।

ज्ञान में आत्म-प्रशंसा का भाव आ ही जाता है। और आत्मप्रशंसा की शैली साहित्य में चल पड़ती है। ऐसी शैली का प्रभाव विपरीत ही पड़ता है, अनुकूल नहीं। गीता, अध्यात्मरामायण तथा रामचरित मानस आदि नैतिक ग्रन्थों में प्रभाव की दृष्टि से सब से निर्बल स्थल वे ही हैं जो ज्ञानात्मक उपदेशों से सम्बन्ध रखते हैं और आत्मशैली में व्यक्त किए गए हैं। आत्मप्रशंसात्मक शैली ईश्वर को भी नहीं शोभा देती, किन्तु जहाँ उसी शैली से काम निकलता हो वहाँ लाचारी है, अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है ऐसी शैली सुन्दर काव्य के लिए अनुकूल नहीं पड़ती।

मानव हृदय को किसी भी व्यक्ति अथवा शक्ति की गर्वोक्तियाँ सुन कर यह अनुभव होने लगता है कि कहनेवाला दुनिया भर को मूर्ख ही समझता है। आत्म-सम्मान की भावना प्रत्येक में विद्यमान रहती है। उसका तिरस्कार मनुष्य को सह्य नहीं। इसलिए ऐसे अवसरों पर उसका हृदय, अन्दर ही अन्दर विरोध करने लगता है और अनुकूल समय आने पर यह आंतरिक विरोध विस्फोट भी बन जाता है।

मानव हृदय के इस रहस्य को समझनेवाले कवियों ने आत्म-प्रशंसात्मक अथवा उपदेशात्मक शैलियों की अपेक्षा हृदयवादी शैलियों को ही विशेष प्रश्रय दिया है। गीता जिस कार्य को नहीं कर पाई वह भागवत ने आसानी से कर दिखाया। उपदेश जब भाव सौन्दर्य के आधीन होकर रहते हैं तब अधिक प्रभाव उत्पन्न करते हैं। भावनाएँ कार्य रूप में परिणत होकर जब सुन्दर ढंग से मनुष्य के सामने आती हैं तब स्वतः ही हृदय को प्रभावित कर देती हैं। मनुष्य अपने आप अन्तर्निहित उपदेशों का अनुसरण करने लगता है।

अध्यात्मरामायण के रचयिता ने लोकाचार की लीपापोती कर के राम के मानवत्व पर परब्रह्मत्व का रंग चढ़ाया और मानसकार ने परब्रह्म को ही मनुष्य के रूप में ढालने का यत्न किया है। किन्तु ऐसा करने से उनके ग्रन्थों के काव्य पक्ष में अस्वाभाविकता ही बढ़ी है। सहज सुन्दरता नहीं आ पाई। ईश्वर मनुष्य के रूप में रह कर ही मनुष्य के हृदय के निकट आ सकता है। कार्यों की महानता उसके ईश्वरत्व को प्रकट करने के लिए पर्याप्त हो सकती है। अपने मुख से अपनी प्रशंसा उस ईश्वर को भी नहीं शोभा देती जो एक क्षण पहिले तो अपने को सर्वव्यापी, घोषित करता है और दूसरे ही क्षण शबरी से पूछने लगता है:

'यदि जानासि में ब्रूहि, सीता कमल लोचना।
कुत्रास्ते केन वा नीता, प्रिया में प्रियदर्शना॥'
(अध्यात्मरामायण अरण, दस,३२–३३)

'यदि तुम्हें पता हो तो बताओ कमललोचना सीता कहाँ है? उसे कौन हर ले गया है?'

अध्यात्मरामायण का उपयोग तुलसी ने 'रामचरितमानस' में किया है किन्तु अपनी विशेषताओं के साथ। मानस के शबरी प्रसंग में भी कुछ विशेषताएँ हैं। भक्ति की श्रेष्ठता मानस के राम भी बतलाते हैं—

'कह रघुपति सुनु भामिनि बाता,
मानौ एक भगति कर नाता।
जाति-पाँति कुल धर्म बड़ाई,
धन, बल, परिजन, गुन, चतुराई
भगति हीन नर सोहै कैसा
बिनु जल वारिद देखिअ जैसा'

तुलसी की विशेषता इस बात में है कि उन्होंने राम की दिव्यमूर्त्ति को शबरी के सम्मुख प्रस्तुत किया है।

सरसिज लोचन बाहु विसाला,
जटा मुकुट सिर उर बनमाला,

तपः सिद्धा शबरी के सम्मुख राम की यह तापस मूर्ति आती है। तुलसी ने अपने हृदय में बसी मूर्ति के दर्शन शबरी को करवाए हैं। यह उनकी उदारता है।

शबरी को उसके गुरु ने बताया था राम के दर्शन तुम्हें होंगे। वह उन वचनों में विश्वास बाँधे उस दिन की प्रतीक्षा कर रही थी जब राम उसके आश्रम में आएँगे। एक दिन 'स्याम गौर सुन्दर दोउ भाई' उस आश्रम में आये। शबरी उनके चरणों से लिपट गई, उसका कण्ठ रुद्ध था, वचन मौन थे, किन्तु 'पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा', की क्रिया सब कुछ कहे जा रही थी।

कवि ने उसके हृदय की विह्वलकारी दशा के आनन्द का संकेत इन थोड़े से शब्दों से ही दे दिया है। शबरी मन ही मन अपने भाग्य की सराहना करने लगती है और फिर जल्दी से अतिथियों का सत्कार करने में लग जाती है। प्रेम से सँजोये मीठे फलों को ले आती है। अतिथि उनको स्नेह सहित स्वीकार करते हैं।

सूरदास ने इस अवसर पर स्पष्ट कहा है शबरी चख-चख कर मीठे फल लाई थी, उसे भाव की उमंग में ध्यान भी न रहा बेर जूठे हो गए हैं :

'खाटे फल तजि मीठे ल्याई,
जूँठे भये सो सहज सोहाई।'

भाव की तन्मयता में विधि-निषेध की सीमाएँ नहीं रह जातीं। भक्त और भगवान् एक हो जाते हैं, शबरी के बेर विधि निषेध की दृष्टि को जूठे भी दिखलाई देते हैं, प्रेम की दृष्टि को उनमें बेर भी नहीं नज़र आते। वह तो उन्हें प्रेम-फल ही देखती है। राम की दृष्टि शबरी के प्रेम को देखती है जूठे बेरों को नहीं, वचनेश जी ने राम और शबरी के इस प्रेम-भाव को अपनी भावुक श्रद्धा अर्पित की है :

'विचरी विभु-आस विहंगिनि है,
नहिं मानवी भोगन ओर झुकी।
इक राम को नाम पढ़ायो गुरु,
रट तासु न जीवन-लागि रुकी।
बन-वासिनि ती, औ विजातिनि ती,
सुचि ती, रुचि ती, जु गुमान मुकी।
मधुरे फल जूठे विचारते क्यों,
सबरी हुती राम की जानि लुकी।'

कवि की भाव प्रवण कल्पना में दण्डक वन का सजीव चित्र अंकित हो जाता है। वह कहने लगता है—

'आश्रम सान्त इकान्त मुनीन को,
कोल किरातन को थल प्यारो।
चारु सो गोचर गो-मृग को,
वृक-बाघन को घन कुञ्जन वारो,
प्राकृत—संपति—संकुल सो,
सरनागत को सब भाँति सहारो।
दण्डक नाम पै नीके बुरे, सब को
पितु सो परिपालन हारो,
प्रिय हास अलौकिक की प्रतिभा,
सहसा उर आय के छाप गई।
कल कुञ्जन की हरिआई घनी,
बिच फूलन की छवि भाय गई।
जिन पाय सुजोग लुभाय धर्यो,
बन बानक सामने आय गई
गिरि, कूट, गुहा, झरना, सरसी,
सर, सोतन सो सरसाय गई।

दण्डक वन की संकुल-संपत्ति-प्राकृत-शोभा उनके सामने है, वे देख रहे हैं राम शबरी के आश्रम में फल खाकर आगे बढ़ चुके हैं। अपने वन-जीवन को बिता राजा भी बन चुके हैं पर वन की शोभा, शबरी का प्रेम वैसा ही बना है। इसलिए वे भी राम से कहने लगते हैं :

'आवौ सनेही, सदा के सखा,
फिर तें सोइ तापस बेस बनावौ ।
संग लै मोहि चलौ, अपनी
अनुरागिनि, वा शवरी सों मिलावौ ।
जानिबो चाहौं, सो पाहुनी कैसी लुभावनी,
जामै न जूठ बचावौ ।
मोहि गए जिन बेरन पै, उनको
रस मोहु कौं नेकु चखावौ ।'

उन्हें विश्वास ही नहीं हो पाता शवरी प्रेम के अलावा अन्य भी कोई कारण राम-वन-गमन का हो सकता है। उनका प्रेमी हृदय तरह तरह के तर्क-वितर्क पर अपने विश्वास की छाप लगा कर प्रेम की ध्वजा फहरा कर ही शान्ति मानता है :

'दसकंध के मारन कौ, चतुरंगिनि
सक्तिमती, नृपता हुती खासी,
रिषि औ मुनि के सतकारन कौं, बहु
जग्य विधान, हुते सुखरासी,
मन रखते बंधु भरत्थ को ओसि, घरै
फिर जाते प्रजा के उपासी,
सवरी बन वासिनि होति न जो, प्रभु
रामहु ना बनते बनवासी'

हृदय की इन भावनाओं पर पृथ्वी का सारा ज्ञान न्योछावर किया जा सकता है !

'शवरी का यह स्वरूप अन्यत्र दुर्लभ है। किन्तु शवरी प्रसंग को इस उत्कर्ष तक पहुंचाने में प्रियादास, नाभादास और तुलसीदास का कार्य हम भूल नहीं सकते। तुलसी ने शवरीप्रसंग को अपने उत्कर्ष पर 'गीतावली' में पहुँचाया है। 'गीतावली' में तुलसी का ध्यान शवरी पर गया है। मानस में वे राम को, नवधा भक्ति को, सामाजिक आदर्श को, नीति की मर्यादा को देख रहे थे। 'गीतावली' में शवरी और उसके राम प्रेम की आकुल दशाओं में वें तन्मय हो गए हैं। 'मानस' में 'गीतावली' की इस शवरी के दर्शन कीजिए :

शवरी सो कर उठी है, उसकी बाँई भुजा, बाँई आँख फड़कने लगी, शुभ शकुन हो रहे हैं । मुनि (मातंग) ने आशा बँधाई थी एक दिन राम इस आश्रम में आएँगे। आज वह शुभ घड़ी आ रही है, जिस घड़ी की प्रतीक्षा वह कर रही थी उस को निकट आता देख उसका हृदय आनन्द से भर गया, आँखें सजल हो गईं, शरीर पुलकित हुआ, संभाव्य अतिथियों के सत्कार की तैयारियाँ उत्साह से वह करने लगी, तृणों और पत्रों से कुटिया बनाई। जल भर-भर कर कलस ला रखती है, फलों की तलाश में जाती है। मुनि के कथन को याद करती है, तरह तरह की गणनाएँ मन में चल रही हैं। युगों से जिस आशा की वेल को वह यत्नों से पाल रही थी वह आज फूलेगी। प्राणों से प्यारे राम और लक्ष्मण पाहुने होंगे। वे सहृदय हैं, हृदय की बात समझते हैं इस घर को पवित्र करेंगे। शवरी इस प्रकार सोचती, देवताओं (के वंद्य राम) की मनौती मना रही है।

शवरी की उमंग का ठिकाना नहीं । सरस मीठे फलों को ला ला कर दोने सजा रही है। माता, अपने विदेश गये बच्चे के घर आने के दिन के लिए जिस तरह, भाँति-भाँति से अपने वात्सल्य को सँजोये रहती है उसी प्रकार शवरी अपने प्रेम को सँजोये है। जो कुछ वह कर रही है वह उस के प्रेम का ही परिणाम है। उसने सुना है राम आएँगे, इसी से माता की भाँति तरह-तरह की तैय्यारियों में वह लगी है।

मंगल शकुन आज हो रहे हैं इसलिए उस का बढ़ता हुआ विश्वास कह रहा है वे आज अवश्य पहुँचेंगे। उनकी सुविधा की तैयारियाँ एक क्षण में शवरी ने कर डालीं। अब वह अधीर विह्वल शवरी उत्सुकता से राम-लक्ष्मण की प्रतीक्षा कर रही है। एक क्षण घर में जा कर सब वस्तुओं को देख आती है सब ठीक तो हैं, किसी बात की कमी तो नहीं रह गई और दूसरे ही क्षण बाहर आकर, हाथ भौहों पर दे कर दूर तक देख लेती हैं राम लक्ष्मण चले आ रहे हैं अथवा नहीं। व्यग्रता उसे घर देहरी नहीं छोड़ने देती। वह वहाँ बैठ कर भी घर-भीतर घर-बाहर दोनों देख सकेगी। वहीं बैठ जाती है। वृद्ध होने से बैठने में ही सुविधा है पर बैठ जाने से दूर तक देखना उतना आसान नहीं इसलिए कुछ ऊँची होने के लिए एक हाथ भूमि पर टेक कर (—भू पर पानि कै) और दूसरा भौंह पर देकर (भ्रू पर पानि कै) अपनी मंद पड़ी दृष्टि को इस प्रकार केन्द्रित कर, दूर तक देख लेती है और एक नजर घर-भीतर भी डाल लेती है—

'छन भवन, छन बाहर विलोकति पंथ
भु (भ्रू ?) पर पानि कै।'

शवरी की इस व्यग्रता, इस आकुलता, इस प्रेम प्रवणता को पहिचानने वाले राम-लक्ष्मण उसके आश्रम में आ गये। दोनों भाइयों को आए हुए देख कर उसकी भावना इतनी तीव्र हो जाती है कि उसे एकाएक ही अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हो पाता

'है सपनो विधि कैधौं सति भाउ?'

किन्तु वास्तविकता उसे संभ्रम की इस अवस्था में अधिक समय तक नहीं रहने देती, विह्वल वात्सल्य की यह तीव्रतम दशा 'गीतावली' की शवरी की अपनी विशेषता है। करुणा और प्रेम से निर्मित शवरी का शरीर आज हिम से फिर जलमय रूप में पिघल रहा है (क्षण भर में शिव, विष्णु और शवरी एक हो जाएँगे)।

'गीतावली' में राम-वनवास के समय तुलसी ने कौशल्या और दशरथ में भी यही भाव प्रवणता दिखलाई है, सूर में वात्सल्य भाव के एक से एक सुन्दर मनोवैज्ञानिक चित्र मिलते हैं किन्तु संभ्रम की इस दशा के दर्शन उनके नन्द-यशोदा में नहीं होते। संभ्रम दशा सूर ने विरह की स्थिति में जाग्रत-स्वप्न रूप में दिखलाई है, गोपियों में, नंद यशोदा में नहीं।

'हम कौं सुपने हू मैं सोच
जा दिन तैं बिछुरे नंद-नंदन यह ता दिन तैं पोच
मनु गोपाल आए मेरैं गृह हँस करि भुजा गही,
कहा करौं वैरिनि भइ निंदिया निमिष न और रही,
ज्यौं चकई प्रतिबिम्ब देखि कै आनंदै पिय जानि,
सूर पवन मिस निठुर विधाता, चपल कियौ जल आनि'

'गीतावली' की शवरी ने शीघ्र ही राम-लक्ष्मण के चरणों का स्पर्श किया। भाव के भूखे भगवान् ने माता की भाँति शवरी का सम्मान किया। आँसुओं से शवरी ने राम के चरण भिगो दिए इसी तरह मानों अर्घ्य अर्पित किया। तब उन्हें आश्रम में ले आई। पाँव धो कर आसन पर उन्हें बिठाया। कुछ समय थकान दूर करने में लगा। फिर 'फल फूल अंकुर मूल' भरे दोने परोस कर दोनों भाइयों के सामने धरे। वे पुलकित हो सराहना करते हुए उन वस्तुओं को पाने लगे। शवरी को धर्म-अर्थ, काम, मोक्ष सब एक साथ ही जैसे मिल गए।

शवरी के इस सौभाग्य के लिए देवता तरसते हैं। वे आनन्द मग्न हो कर फूल बरसाते हैं। चाव से राम-लक्ष्मण बार बार माँगते जाते हैं। शवरी खिलाती जाती है। तृप्ति हो जाने पर दोनों उठे। शवरी ने हाथ जोड़ कर कृतज्ञतावश कहा।—

'हौं बलि गई, पुरई मुंजु मनोरथ मोरि'

शवरी की चाह आज पूरी हो गई थी। अब मृत्यु भी आ जाए तो कोई चिन्ता नहीं। मृत्यु सुखद हो चली। बार बार प्रणाम और परिक्रमा करके भी अघाई नहीं। राम-प्रेम पूरित उसका हृदय शान्त था; उसने प्राण त्याग दिए। माता के देहावसान पर पुत्र अंजलि देता है इसी भाँति राम ने शवरी को अंजलि देकर उसका संस्कार किया।

तुलसी ने 'गीतावली' के शवरी प्रसंग को उमगते प्रेम की मंदाकिनी बना दिया है। ऋषियों द्वारा शवरी की साधु-सेवा का प्रसंग तुलसी ने नहीं उठाया। भक्ति के चमत्कार के विषय में भी वे मौन हैं। जो कुछ ध्वनि उन्होंने दी है वह राम की भक्त-वत्सलता और शवरी की प्रेम-निष्ठा की ही ध्वनि है।

'गीतावली' के शवरी-प्रसंग के चित्रों में हृदय सरोवर की उमंगें संगीत की उठती हुई लहरों में झूम झूम कर आगे बढ़ती हैं, छन्द की पहली दो पंक्तियों में मंथर गति से उठती हुई भावोर्मियाँ सहसा ही भीतरी पंक्ति में आकर द्रुत गति से आगे बढ़ती हैं और स्वर की तीव्रता के साथ आकाश को चूमने लगती हैं। उनका प्रसन्न संगीत मुक्त आकाश में व्याप्त हो हृदय से भेद भाव को मिटा देता है। चारों ओर छिटकी आनन्द की चांदनी में ब्रह्म अपने ब्रह्मत्व को भूल कर प्रेमाभक्ति की आनन्द रस-धारा बन कर वन प्रकृति के बीच शवरी के शान्त आश्रम में विचरण करने लगता है। आनन्द-ज्योति की शाश्वत रागिनी इस शान्तिमय वातावरण में स्वर पा चिरंतन सत्य की रसमय शीतलता बन कर अभिनन्दनीय हो गई है।

प्रियादास ने शवरी प्रसंग में सत्-संग और भक्ति के चमत्कार को महत्व दिया है। साथ ही यह दिखलाया है कि संकीर्ण मनोवृत्ति को अन्त में उदारचेताओं के सामने झुकना ही पड़ता है किन्तु उस समय तक भी वे अपनी ऐंठ नहीं छोड़ते और अपनी माताओं से सच्चे भक्तों के जीवन प्राणों के लिए कण्टक स्वरूप भी बन जाते हैं। शवरी को द्वेष से इन्होंने पीटा, उसके रुधिर से ही सरोवर मलिन हुआ होगा। इन के कारण ही शवरी के स्नेही उदारचेता गुरु मातंग मुनि को अपने प्राण गँवाने

पड़े ऐसी ध्वनि इस प्रसंग की कथाओं से निकलती है। 'भक्तमाल' की टीका में प्रियादास ने शवरी प्रसंग की कथा इस प्रकार दी है—

शवरी वन में रहती थी। वह साधु सेवा को अपना परम धर्म समझती थी, ऋषि-मुनियों की टहल-पात करने में कोई कमी उसने नहीं की। रात खुलने से पहले ही जब तक लोग जगते भी नहीं वह आश्रम में पहुँचती, रास्ते के कंकड़ पत्थर, कंटक बीन कर दूर कर देती। आश्रम को झाड़ बुहार कर स्वच्छ कर जाती। प्रति दिन ऋषि के लिए लकड़ियाँ रख आती।

ऋषि जग कर विस्मित होते, यह सुखदाई जीव कौन है? उसके प्रेम को मातंग ऋषि ने पहचाना, उसकी भक्ति की मन ही मन सराहना की, उसके दर्शन करने की चाह हुई। युक्ति सोची। सूझ गई। लकड़ियों के बोझ की ओर देख कर शिष्यों से बोले--कोई चोर आता है। उसे पकड़ना चाहिए।

शिष्यों ने रात में जग सजग हो चौकसी की। शवरी डरते डरते आई। शिष्यों ने उसे पकड़ लिया। पकड़ कर मातंग ऋषि के पास ले आए।

मातंग उसे देख गद्गद हो गए। आँखों से आँसुओं की धारा बह चली। मुख से कुछ भी न बोल सके। सोचने लगे इसकी दृष्टि भी मंद पड़ गई है। छूआ-छूत का प्रश्न ठीक नहीं, इसकी भक्ति सराहनीय है।

मातंग ने उसे आश्रम में जगह दी। उसे राम-मंत्र की दीक्षा दी।

ऋषियों ने सुना तो बड़े क्रुद्ध हुए। मातंग को अलग कर दिया।

मातंग ने शवरी से कहा मेरा समय पूरा हो गया है। प्रभु की ऐसी ही इच्छा है। तुम राम के दर्शन करो, मैं तो चला।

गुरु की मृत्यु के शोक से शवरी का जीवन विषम हो गया किन्तु राम-मिलन की लालसा उसे जिलाए रही।

एक दिन रात गये, वह सरोवर में स्नान करने गई। कुछ विलम्ब हो गया। इतने में अन्य ऋषि भी आ गए। उन्होंने यह देख कर कि इसने जल में स्नान किया है, जल का स्पर्श कर सरोवर को अपवित्र किया है, विवेक खो दिया। सरोवर रुधिर तथा ऋषियों से भर गया!

कवियों ने शवरी-कथा का उपयोग अपने ढंग से किया है किन्तु, शवरी के पीछे युगों का इतिहास भी छुपा है। प्राचीन साहित्य में शवरी शब्द अपने विविध रूपों में एक वन्य जाति की स्त्री के लिए प्रयुक्त हुआ है। इस वन्य जाति का नाम शवर है। सौरा, सेउड़ा, सेउरा, शूरी, शूयरी, शेवरी, सेवड़ी सेउड़ी, सोड़ी आदि रूप शवर और शवरी से ही बने हैं।

शवरों का प्राचीनतम उल्लेख ऐतरेय ब्राह्मण (७।१८) में मिलता है। वहाँ शवरों को विश्वामित्र ऋषि की किसी अभिशप्त सन्तान का वंशधर कहा गया है। इसके उपरान्त सांख्यायन श्रोत सूत्र (१५।२६।६) रामायण, महाभारत (आदि, भीष्म, शांति, अनुशासन और शेषोक्त पर्व) में शवरों का उल्लेख मिलता है। शेषोक्तपर्व में शवरों को मध्यदेश से वहिष्कृत जाति कहा गया है। भागवत (२।७।४६) तथा गुप्तकालीन शिलालेखों में इनका वर्णन पापजीवी लोगों के रूप में हुआ है। यूनानी लेखकों में से टौलोमी और प्लिनी ने सबेरी और सुआरी रूप में इनका उल्लेख किया है।

जैन तथा जैनेतर ग्रंथों में ये सेउड़ा कहे गये हैं और शिव तथा शक्ति के साथ इन का संबन्ध बताया गया है। सिद्धसाहित्य में शवरी योगिनी के रूप में आती है -

ऊँचा ऊँचा पवत तँहि बसइ सबरी बाली,
मोरंगि पीच्छ परहिन सबरी गिवत गुंजरी माली,
उमत सबरो पागल सबरो मा कर गुली गुहाड़ा तोहोरि,
निज घरिनी नामें सहज सुन्दरी
(शवरपा)

चर्यागीति, गौड़वह आदि काव्यों में भी इनका वर्णन मिलता है।

शवर, सौरा, सेउरा अथवा सेउड़ा आज एक वन्य जाति है। राजस्थान, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश और उड़ीसा आदि प्रान्तों में वह पाई जाती है। वृक्षों की पत्तियों से शरीर की लाज ढँकना, सिर पर मोर पंख खोंसना, लकड़ी काट कर बोझ नज़दीक की बस्ती में बेच आना, कुत्ते पाल कर वनों तथा बन के मंदिरों की रक्षा करना, धनुष-वाण से शिकार करना, नरबलि, पशु-बलि से शिव-दुर्गा विंध्यवासिनी की पुजा करना, मंत्र-तंत्र, जादू-टोने में विश्वास रखना, अनेक विवाह करना, बल-वीर्य की रक्षा करना, बरछी, कुल्हाड़ी आदि हथियारों का प्रयोग करना, और शव गाड़ते अथवा जलाते समय उसके हथियारों

को भी उसी के साथ दफ़ना देना आदि इनके स्वभाव की ऐसी सामान्य वृत्तियाँ हैं जो देखने में विचित्र सी लगती हैं किन्तु, जिनके पीछे युगों का इतिहास छुपा है।

भारतीय संस्कृति के इतिहास में ऋग्वेद-सभ्यता में प्राचीन सिन्धु–घाटी-संस्कृति हो चाहे न हो, किन्तु द्रविड़ तथा अथर्वण सभ्यता उससे प्राचीन अवश्य है। इतिहास से पता चलता है कि वैदिक आर्यों के प्रसार से, अन्य जातियाँ, उत्तर–पश्चिम, दक्षिण–पश्चिम और दक्षिण-पूरब की ओर विशेष रूप से फैलीं। इनमें अथर्वण संस्कृति के लोग विशेष थे। इन लोगों में मन्त्र-तन्त्र, जादू-टोना, प्रकृति–पुजा, दाह-संस्कार, शव–समाधि आदि सभी प्रचलित थे। परशुराम के पूर्वज महाअसुर फ़ारस की ओर गए, पणी लोग सिन्धु–तट की ओर, और विश्वामित्र के पूर्वज दक्षिण-पूरब की ओर फैले।

वैदिक आर्यों में भी स्वतन्त्र चिन्तन प्रधान व्यक्तियों और स्थूल विधि-निषेधवाले कर्मकांडियों में अधिक समय तक मेल नहीं रह सका। कुछ स्वाधीन-चेता तो स्पष्ट ही पूरब के प्रान्तों, नैपाल की तराई और विन्ध्य पर्वत में जा बसे। इन्हें व्रात्य कहा गया और जो मन्त्र-तन्त्र के विश्वासी थे उन्हें शवर नाम से पुकारा गया। इनके मन्त्र शावर कहलाए जिनका उपयोग साँपों के विष उतारने, भूत-प्रेत-डाकिनी-शाकिनी के प्रभाव को नष्ट करने के लिए हुआ। साँप धीरे धीरे नाग रूप में पूजे जाने लगे। पाशुपत सम्प्रदाय में वे जीव के बन्धन प्रतीक बन गए और इसी रूप में शिव के साथ भी इनका सम्बन्ध जुड़ गया। शिव शुद्ध आत्मा के और नाम-आभूषणयुक्त जीवात्मा के प्रतीक हुए। नाद योग विद्या का प्रसार शिव से माना गया। शावरी इस विद्या में भी पारंगत रहे हैं इसलिए योग संप्रदाय में उनका महत्व है। वे नाथ योगी कहलाए। आज भी सँपेरों का संप्रदाय नाद (नाथ) पन्थी योगियों का अनुयायी होने से कानों में मुद्रा, गले में रुद्राक्ष और कन्धे में कन्था धारण करता है। मध्ययुग में कृष्ण भक्ति संप्रदाय में यह प्रतीक कृष्ण की मुरली में परिणत हो गया और मुरली नाद ब्रह्म की रंगीली बाँसुरी बन गई।

शावर मन्त्र बीज मन्त्र हैं जिनके अर्थ वैज्ञानिक सूक्ष्म विचार से ही समझ में आते हैं। सामान्य जनता के लिए उन्हें उपयोगी न पाकर ही तुलसीदास ने इन मन्त्रों का सम्बन्ध राम के आराध्य देव शिव से तो रहने दिया किन्तु सामान्य जनता के लिए यह भी कह दिया वे अनमिल आखर हैं, उनमें कोई अर्थ नहीं, केवल श्रद्धा विश्वास और शिव के कारण ही वे अपना प्रभाव दिखाते हैं। हनुमान् शिव के अवतार माने जाते हैं; योगियों के पूज्य हैं। वे शावर मन्त्रों के ज्ञाता थे। शिव को आगमी (आगम भारत वर्ष में आर्येतर जातियों के वेदों का, विशेष कर शैव-तन्त्र वेदों का द्योतक शब्द है) भाग्य द्रष्टा के रूप में अवध में राम जन्म के अवसर पर तुलसी अपनी 'गीतावली' में कौशल्या के सम्मुख लाते हैं।

नृ–शास्त्र के विद्वान् तथा भाषा–विज्ञानवेत्ताओं ने शवर जाति को भारत की प्राचीनतम आदि जाति माना जाता है और आस्ट्रेलियाई एशियाई परिवार की शाखा से उसका सम्बन्ध होना माना है। भाषाओं का तुलनात्मक सम्बन्ध उनका सहायक हुआ है।

वैदिक कर्मकाण्ड में लौकिक वाचालता अधिक थी। मननशील व्यक्तियों ने इन्द्रिय निग्रह और चित्त की एकाग्रता की ओर विशेष ध्यान दिया, मौन चिन्तन से जीवन के रहस्यों को ढूँढ़ने की अभिलाषा ने उन्हें एकान्त वनों में पहुँचाया जहाँ वन्य जीवन में वे इतने घुल मिल जाते थे कि कभी कभी तो वृक्ष-लताओं की भाँति ही उलझी जटिल रूप–रेखा उनकी हो जाती थी। ये मननशील योगी मौनी होने के कारण मुनि और योगी होने के कारण शैव योगी कहलाए।

इनके अनुयायी सामान्य वर्ग के लोग भी हुए जो श्रद्धा भक्ति से इनकी सेवा सुश्रूषा में रहते थे और मन्त्र-तन्त्र जादू-टोने के पूरे विश्वासी थे। इनमें जो साधना में आगे बढ़े वे रूप और आकार की सीमाओं से आगे असीम निराकार निरंजन के चिन्तन–ध्यान में लीन हुए। साधना पथ पर भिन्न भिन्न सीढ़ियों को पार करने में ये लोग 'जटिल', 'तपस्वी', 'मुनि', 'योगी' 'सिद्ध' आदि शब्दों से सम्बोधित हुए।

इन लोगों के बीच एक ओर तो दार्शनिक चिन्तन का प्रसार हुआ, दूसरी ओर योग–शास्त्र-तथा भक्ति-शास्त्र का। इन सीमाओं को एक कर देनेवाले समन्वयवादी महापुरुषों का उदय आर्येतर तथा आर्य दोनों प्रकार की जातियों में हुआ। इन लोगों ने विराट् प्रेम-धारा बहाई। एक ओर शैव भक्ति का विकास हुआ दूसरी ओर वैष्णव भक्ति का और शिव तथा विष्णु एक ही परब्रह्म के दो स्वरूप समझे गए जो कार्य की भिन्नता भर के लिए दो

थे अन्यथा जिनमें कोई भेद न था ।

जादू-टोनेवाले लोगों के इष्टदेवता शिव हुए, योगियों के वे ईश्वर कहलाए और विष्णु के आराध्य। शक्ति के सम्मिलन हो जाने पर दुर्गा, भवानी आदि रूपों में शिव-शक्ति बन गई ।

शक्ति के उपासक वैदिक पशुबलि, यज्ञ आदि कर्मकाण्डी प्रभावों से प्रभावित हुए बिना न रह सके । खून से अधिक मूल्यवान् वस्तु आराध्य को अर्पित करने के लिए और क्या हो सकती थी, इसलिए नरबलि और पशुबलि भी अपना ली गई ।

शबरों के आदिम युग के शिव और दुर्गा के दर्शन वैष्णव संप्रदाय में समन्वयवादी युग में कुछ बदले हुए रूप में होते हैं । रामायण और महाभारत में यह समन्वय दिखलाई देता है । रामायणकालीन संस्कृति में दक्षिण भारत की रिक्ष (रिच्छ) जाति का ही एक वर्ग शबर था । रिक्ष तथा वानर जाति का, राजा बालि तथा उसके पुत्र अंगद का सम्बन्ध राम की संस्कृति के संघर्ष से है । महाभारत में कृष्ण के पाँव में तीर मारनेवाले शबर को बालि का अवतार माना गया है ।

रीवाँ नरेश रघुराज सिंह ने अपनी 'रामरसिकावली भक्तमाला' में शबरी प्रसंग में शबरी को किसी ऋषि की अभिशप्त पत्नी बताया है। कोई ऋषि, समिधा, स्नान आदि के लिए अपनी कुटिया से बाहर गए हुए थे इस बीच उनकी पत्नी ने पुत्र जन्मा। ऋषि की पत्नी ने बच्चे को सुला दिया और स्वयं भोजन बनाने लगी। ऋषि जब पूजा-पाठ से लौटे तो पत्नी ने भोजन खिलाया। इसी अवसर पर बच्चा जग गया और रोने लगा। ऋषि ने बच्चे के बारे में पूछा तो पत्नी ने बतलाया कि बच्चा अपना ही है और आज अभी थोड़ी देर पहले जन्मा है। इस पर ऋषि को क्रोध हो आया कि प्रसूता होने पर भी इसने भोजन बना कर खिलाया, विधि-निषेध की मर्यादा का पालन नहीं किया। आवेश में शाप दिया 'तुम शबरी हो जाओगी' 'पत्नी ने विनय-प्रार्थना की तो ऋषि ने कहा 'अच्छा राम दर्शन हो जाने पर शापमुक्त हो जाओगी।'

पं. भागवत द्विवेदी ने 'भक्त शबरी' में लिखा है—"इनका पूर्व जन्म एक उत्तम और धनी कुल में हुआ था, किन्तु परतन्त्रता के कारण उस समय सत्संग और भक्ति में बाधा होना भी स्वाभाविक था ।......अतएव भजन बाधक घोर आपत्ति देख कर शबरी ने अपने पूर्व जन्म में प्रार्थना की कि हे दयानिधि ! प्रभो ! आप मुझे दूसरा जन्म ऐसी नीच योनि में देने की कृपा करें जिसे पा कर मुनि दुर्लभ हरि-भक्ति की प्राप्ति में किंचित् बाधा न हो ।......श्री भगवान् के तरफ़ से प्रार्थना की स्वीकृति हुई, इनका जन्म भील कुल में हुआ । 'शबर' भील को कहते हैं । शबरी के पिता भीलों के राजा थे । शबरी जब विवाह के योग्य हुई तो इनके पिता ने एक भील कुमार से विवाह पक्का किया । विवाह के दिन निकट आये । सैकड़ों बकरे, भैंसे बलिदान के लिए इकट्ठे किए गए । शबरी ने पूछा ये जानवर क्यों इकट्ठे किए गये हैं? उत्तर मिला—तुम्हारे विवाह के उपलक्ष में इन का बलिदान होगा । भक्तिमती भोली बालिका का सिर चकराने लगा । यह कैसा विवाह, जिसमें इतने प्राणियों का वध हो । इस विवाह से तो विवाह न करना ही अच्छा । ऐसा सोच कर वह रात्रि में उठ कर जंगल में चली गई और फिर लौट कर घर नहीं आई ।......दण्डकारण्य में हज़ारों ऋषि मुनि तपस्या कर रहे थे । उस वन में ही अपनी झोपड़ी बनाकर वह रहने लगी । शबरी हीन जाति की थी, स्त्री थी, बालिका थी, अशिक्षित थी । उसके हृदय में प्रभु के लिए सच्ची चाह थी । जिसके होने से सभी गुण स्वतः ही आ जाते हैं ।

द्विवेदी जी ने अपने आधार-ग्रन्थ का उल्लेख नहीं किया किन्तु इतना स्पष्ट है कि इस कथा के विवाह–पशुबलि वाले अंश पर जैनों तथा बौद्धों की कथाओं का स्पष्ट प्रभाव है ।

जैन साहित्य में बाईसवें तीर्थंकर अरिष्यनेमी (अरिष्टनेमी अथवा नेमी) के विषय में इसी प्रकार की कथा मिलती है। अरिष्टनेमी मोरीयपुर के राजा समुद्रविजय का पुत्र था, शिवा उसकी माता थी। वासुदेव कृष्ण उसके चचेरे भाई थे । उग्रसेन की पुत्री रायमई से अरिष्टनेमी का विवाह होने को था । जब वह अपने रथ पर बैठ विवाह के लिए चला तो उसके कानों में पशुओं के करुण स्वर पड़े। ये पशु एक साथ बाँधे गए थे और विवाह के अवसर पर इनकी बलि दी जाती थी। भोजन के लिए इतने पशुओं की बलि दी जाएगी इस बात को सोच कर अरिष्टनेमी का हृदय विषाद तथा ग्लानि से भर गया । उसे सांसारिक जीवन से विरक्ति हो गई । वह सन्यासी हो गया और रैवतक पर्वत पर

सदसंबन में उसने मुक्ति पाई, रायमईनेमी, अरिष्टनेमी का अनुसरण किया और मुक्ति पाई। (उत्तराध्ययन २२)

बौद्धों के जातक साहित्य में भी इस प्रकार की कथाएँ मिलती हैं। जैन तथा बौद्ध धर्म ब्राह्मणों के कर्मकांड के जाल' तथा पशुबलि नर बलि तथा जाति भेद के विरोधी तथा करुणा, प्राणि मात्र की दया, अहिंसा तथा प्रेम के पक्षपाती रहे हैं। कुछ विद्वान् तो रामायण पर भी जैन तथा बौद्ध साहित्य का प्रभाव मानते हैं। द्विवेदी जी द्वारा दी गई उपरोक्त कथा में करुणा और अहिंसा के भाव को विस्तार अवश्य मिला है किन्तु, वंश–गौरव और ऊँच नीच के भाव का अंत नहीं हो गया है। शवर जाति की स्त्री भी भक्ति की अधिकारिणी हो सकती है यह बात लोगों ने स्वीकार की किन्तु व्यास से लेकर तुलसीदास तक कोई वर्णाश्रम व्यवस्था समर्थक कवि या लेखक जाति–पाँति के भेद को अपने मन से दूर नहीं रख सका है। व्यास ने 'अध्यात्म–रामायण' अरण्य, दशम सर्ग, १७ वाँ श्लोक में–'योषिन्मूढ़ाप्रमेयात्मन् हीन जाति समुद्भवा' लिखा ही है। भागवत–कार ने भी (भागवत २।७।४६)लिख दिया :

> "ते वै विदन्त्यतितरन्ति च देवमायां
> स्त्रीशूद्र-हूण-शवरा अपि पापजीवाः।
> यद्यद्भुतक्रमपरायणशीलशिक्षा,
> स्तिर्यग्जना अपि किमु श्रुतधारणा ये।"

और तुलसीदास ने तो स्पष्ट ही कहा है—

> "जाति हीन, अध–जनम महि, मुकुत कीनि अस नारि।
> महामन्द मन सुख चहसि, ऐसे प्रभुहि बिसारि।"
> (मानस ३६, दोहावली १५६)

वर्णाश्रम व्यवस्था के प्रभाव से मुक्त जातियों अथवा सन्तों के प्रेम-भक्ति-प्रभाव में आए लोगों में अवश्य ही इस खयाल की बू नहीं रही है, सन्तों ने "जाति पाँति पूछे नहिं कोई हरि का भजे सो हरि का होई" सिद्धान्त अपनाया। इसी से कबीर ने घोषित किया––

> 'जाति न पूछो सन्त की, पूछो उसका ज्ञान।
> मोल करो तलवार का, पड़ी रहन दो म्यान।'

सूरदास भक्त ही भक्त, कवि ही कवि नहीं थे उच्च कोटि के सन्त भी थे। आभीरों के जीवन को उन्होंने अपने काव्य का विषय बनाया ही है। शवरी प्रसंग में भी उनका ध्यान प्रेम–भक्ति पर ही टिका है। सूरदास के पद में पाठक को यह सोचने का अवसर ही नहीं रहता शवरी किस जाति की थी; उसके सामने उसके प्रेमपूर्ण हृदय का ही चित्र नाचता रह जाता है।

'जाति न काहू की प्रभु जानत। भक्ति भाव हरि जुग-जुग मानत' में ध्वनि है अवश्य किन्तु, उसकी ओर पाठक का ध्यान उतना नहीं जाता जितना 'जाति हीन, अध-जनम महि' के जातिहीन तथा 'अध-जनम' शब्दों की ओर। तुलसी बदली हुई परिस्थितियों में भी प्राचीन वर्ण–आश्रम–व्यवस्था के कट्टर पक्षपाती रहे हैं इसलिए उनके ग्रन्थों से आर्य संस्कृति की रक्षा तो अवश्य हो गई किन्तु उसका समयानुचित प्रसार नहीं हो सका। तुलसी इस ध्वनि को अवश्य दे रहे हैं कि जब नीच अधमों का उद्धार भक्ति से हो जाता है तब भली–भूमि भली–जाति के लोगों का तर जाना तो और भी आसान है। यह भावना राह भटके लोगों को भक्ति के पथ पर ले आ सकती है किन्तु सामाजिक वर्ण–भेद की जड़ें इससे कट नहीं जातीं।

इस दिशा में प्रियादास द्वारा प्रस्तुत की गई 'शवरी कथा टीका' विशेष महत्व की है। प्रियदास ने शवरी का गौरव बढ़ा कर वास्तविक रूप में उस भेद-भाव को मिटाया है जिसका मिट जाना मानव जीवन की सुख शान्ति के लिए सब से अधिक हितकारी है।

—शंभुप्रसाद बहुगुणा
एम. ए.

आई. टी. कालेज
लखनऊ

—

चमकदार पीतल आभाहीन सुवर्ण से अधिक आकर्षक होता है।

नालन्दा

(३)

विहार की सम्पत्ति और उसके व्यय के प्रबन्ध के विषय में इत्सिङ्ग ने विवरण दिया है। उसके विवरण में आय का ब्यौरा नहीं मिलता जिससे शायद भिक्षुओं का सम्बन्ध नहीं था। किन्तु व्यय को नियमानुसार चलाने का और उसकी पृष्ठभूमि में अधिकारियों का बड़ा मनोरंजक और महत्वपूर्ण विवरण होता प्राप्त है :

“जिन लोगों पर अन्नभण्डारों की रक्षा और भूमि की देख-रेख का भार था वे और दो या तीन अन्य प्रबन्धकर्त्ता स्वयं उसका आवश्यक रूप से प्रबन्ध करने के लिए एक कर्मचारी को भेजते। यह कर्मचारी प्रबंध को अपने हाथों में लेते ही आवश्यकताओं का सूचीपत्र पेश करता और यदि सब उससे सहमत होते तो वह स्वीकृत हो जाता था। इसलिए व्यय कोई अपनी इच्छानुसार नहीं कर सकता था। यदि कोई सबसे पूछे बिना अपनी इच्छानुसार एक छँटाक अन्न भी अपने उपयोग में लाता तो वह अपने साथियों द्वारा पद से अलग कर दिया जाता था। केवल ‘कुलपति’ या कुटुम्ब के स्वामी को यह अधिकार था कि वह सर्वसाधारण की सम्पत्ति को बिना समिति के सामने घोषणा किए ही उपयोग में लाने का आदेश दे या महत्वपूर्ण कार्यों का निर्णय स्वयं करले। बुद्ध के नियमों के अनुसार ये कार्य अनियमित हैं जिन्हें मनुष्य और देवता दोनों ही नहीं चाहते। ऐसा मनुष्य चाहे कितना ही शक्तिशाली क्यों न हो आगे चल चल कर कल्याणकारी सिद्ध नहीं हो सकता। आरम्भ में ही उसने ऐसा कार्य किया जो अनुचित था।”

इन विहारों में सुविधा की सब वस्तुएँ प्राप्य थीं। आजकल मिशनरी लोगों ने जिस प्रकार की संस्थाएँ बनाई हैं उनमें जो सुविधाएँ प्राप्त हैं इन विहारों में भी वे सब उपलब्ध थीं। उनके विषय में पूरा विवरण मिलता है। इस विवरण में ह्वेनसांग का शिलाभद्र से मिलने का जिक्र भी आया है। शिलाभद्र को चीनी भिक्षु के आनेका पता स्वप्न में लग चुका था इसलिए वह पहले से ही तैयार था और आते ही उसने ह्वेनसांग को अपना शिष्य स्वीकार कर लिया। इन सब का वर्णन हुई ली ने किया है जो नीचे दिया जाता है।

“दसवें दिन वह नालन्दा के विहार में गया, सभा ने चार उच्च पदाधिकारियों को उसका स्वागत करने के लिए चुना था। उनके साथ सात योजन की यात्रा कर वह विहार की कृषिभूमि में गया। इस गाँव के एक घर में आदरणीय मौद्गलायन पैदा हुए थे। यहाँ जलपान करने के पश्चात् दो सौ भिक्षुओं और कई हजार लोगों के साथ जो मार्ग में उसकी प्रशंसा करते थे, और जिनके हाथों में ध्वजाएँ, छत्र, फूल और इत्र था, उसने नालन्दा में प्रवेश किया।

यहाँ पहुँचते ही सारा संघ उससे आ मिला और कुशल क्षेम पूछने के पश्चात् उसे वृद्ध के पास ही एक विशेष आसन पर बैठाया। पश्चात् और लोग भी आ बैठे।”

विहार के प्रबन्ध, दैनिक कार्यक्रम और सदस्यों की नियमपरायणता के विषय में इत्सिङ्ग ने सजीव और मनोरंजक विवरण दिया है। निम्न अवतरण में विहार के पदाधिकारियों और उनके कर्त्तव्यों की कुछ झलक मिलती है :

“जिन लोगों पर द्वार की रक्षा का भार है वे प्रति दिन रात्रि में वृद्ध से मुहर लेकर, द्वार बन्द कर उन पर मुहर लगा देते हैं और उसे वृद्ध को लौटा देते हैं। ये मुहरें किसी भी हालत में विहार-स्वामियों या कर्मदानों को नहीं दी जातीं। जिन लोगों के अधिकार में चैत्य हैं केवल वे ही विहार-स्वामी कहलाते हैं किन्तु जो नियम प्रचलित करते हैं, चैत्यों के द्वारों की रक्षा करते हैं, और कार्यक्रम को भिक्षुओं तक पहुँचाते हैं वे विहार ‘फल’ कहलाते हैं। जो घण्टा बजाते हैं और प्रसाद वितीर्ण करते हैं उन्हें ‘कर्मदान’ कहते हैं और जो केवल कहावतों में या मर्मवाणियों में बोलते हैं वे ‘वीणा’ कहलाते हैं।”

विहार में अनुष्ठान और नियमपरायणता के विषय में

इत्सिङ्ग ने लिखा है कि उनका जो वर्णन अन्य दो पुस्तकों में किया गया है, नालन्दा की रीतियाँ उनके समान ही हैं। केवल वृद्ध यहाँ योग्यतानुसार नहीं वरन् अधिक आयु होने के कारण नियुक्त होता है :

"विहार के अधिकारियों और भिक्षु सम्बन्धी नियम, अनुष्ठान और भिक्षु बनने की विधियाँ मेरी दो पुस्तकों 'त्वाङ्ग-काङ्ग-लो' और 'कि-कोई-त्वाँव' में वर्णित हैं। विहार की अंतरंग सभा में सब से अधिक अवस्था-वाले सदस्य को सभापति या वृद्ध बना कर ही सन्तोष कर लिया जाता है उसकी योग्यता पर विचार नहीं किया जाता।"

इत्सिङ्ग ने जिन दो पुस्तकों का उल्लेख किया है उनमें से एक में नालन्दा में भिक्षु-अनुष्ठान की एक विशेषता का विस्तृत विवरण मिलता है :

"लेकिन नालन्दा में भिक्षुओं का उयसम्पद अथवा पूर्ण अनुष्ठान 'दीर्घ ऋतु' की प्रथम तिथि (छठवें चन्द्रमास की १७ वीं तिथि) को प्रातःकाल सूर्य निकलने के साथ ही किया जाता है। इस प्रकार वे अन्य संस्कृत भिक्षुओं से अधिक सम्मान प्राप्त करते हैं।"

इस प्रकार का सम्मान केवल शुष्क रीति मात्र नहीं था अपि तु वर्ष के प्रारम्भ में इसी के अनुसार निवास स्थान की प्राप्ति होती थी और अन्य सुविधाएँ मिलती थीं। वार्षिक निवास-स्थान देने के विषय में इत्सिङ्ग का निम्न विवरण प्राप्त है :

"वर्ष (वर्षा ऋतु) के प्रारम्भ में प्रत्येक सदस्य को कमरे दिए जाते हैं। बड़ों (स्थविर आदि) को अच्छे कमरे मिलते हैं और इसी क्रम से सब से निम्न सदस्यों को मिलते हैं। नालन्दा विहार में इस समय ऐसे ही नियम प्रचलित हैं। भिक्षुओं की बड़ी सभा द्वारा कमरे दिए जाते हैं। महात्मा बुद्ध ने स्वयं ऐसा न करने का उपदेश दिया था जो ठीक भी था। इससे प्रथम तो व्यक्ति के स्वार्थ भाव का अन्त हो जाता है और द्वितीय भिक्षुओं के कमरे सुरक्षित रहते हैं।"

इत्सिङ्ग ने भिक्षुओं की साधारण सभा बुलाने, कार्य-वाही की विधि, और किस प्रकार वहाँ पक्ष और विपक्ष के मतों की बिना गिनती किए हुए अधिक से अधिक सर्वसम्मत स्वीकृति प्राप्त करने की चेष्टा की जाती थी इसका वर्णन किया है :

"कुछ कार्य आ पड़ने पर भिक्षु उसको नियमानुसार सम्पादित करने के लिए साधारण सभा की बैठक बुलाते हैं। विहारपालों को आदेश दिया जाता है कि वे सभी घरों की पंक्तियों में स्वयं घूम कर प्रत्येक व्यक्ति के सम्मुख उसकी घोषणा करें। सब लोग कर-बद्ध होकर अपने मन के भाव प्रकट करते हैं। यदि एक सदस्य भी अस्वीकार करे तो वह कार्य हाथ में नहीं लिया जाता। यहाँ हथौड़े की चोट पर लोगों को हाथ उठा कर अपना मत देने की रीति नहीं है। यदि कोई सदस्य विपक्ष में होता है तो तर्क द्वारा समझा कर उसे पक्ष में लाने का प्रयत्न किया जाता है। किन्तु किसी प्रकार बाध्यता या शक्ति का उपयोग कर उसे वश में करने का प्रयत्न नहीं किया जाता।"

इत्सिङ्ग ने यह भी लिखा है कि विहार के सदस्य मिल कर एक दूसरे को नियमपरायणता के लिए बाध्य करते थे। वे स्वनियन्त्रित थे और राज्य उनके किसी कार्य में हस्तक्षेप नहीं करता था :

"इस विहार के नियम अति उच्च और अत्यन्त कड़े हैं। प्रत्येक पखवारे कर्मदान और लेखकगण निवास स्थानों में घूम घूम कर नियम पढ़ कर सुनाते हैं।

राजकीय बही में यहाँ के सदस्यों के नाम नहीं लिखे गए हैं। जो लोग नियम भंग करते हैं उनको यहीं की सभा दण्ड देती है। इस विषय में सिद्ध भिक्षु और नौसिखुए एक दूसरे से डरते रहते हैं।"

इत्सिङ्ग के वर्णन से इस बड़े विहार के उपासना आदि के नियम और उनकी विधि पर भी प्रकाश पड़ता है :

"नालन्दा विहार में भिक्षुओं की संख्या तीन हज़ार से भी अधिक है। इतने लोगों को एक स्थान पर एकत्रित करना कठिन है। विहार में आठ प्रशाल और तीन सौ कमरे हैं। अलग अलग उपासना करना ही सबसे अधिक सुविधाजनक है। प्रचलित रीति के अनुसार पहले कर्मचारी और बच्चे सुगन्धित द्रव्य और फूल लेकर उपासना के समय क्रम से सभी स्थानों पर घूम आते हैं जिनके पीछे पीछे भजन गाता हुआ मुख्य गायक चलता है। प्रत्येक मण्डप में वह उच्च स्वर से तीन या पाँच प्रार्थना के श्लोक गाता है जिसका स्वर दूर तक सुनाई देता है। गोधूलि के समय तक वह अपना कर्तव्य

पूरा कर लेता है। साधारणतया इस कार्य के लिए उसको विशेष पुरस्कार मिलता है। इसके अतिरिक्त कुछ लोग गन्ध-कुटी, जहाँ बुद्ध की मूर्ति है, की ओर मुख कर बैठ जाते हैं और अपने हृदय में बुद्ध की प्रार्थना करते हैं। कुछ लोग एक दल में चैत्य में प्रवेश करते हैं; मूर्ति के सम्मुख झुकते हैं, फिर शरीर सीधा कर घुटने टेकते हैं और अन्त में झुक कर दोनों हाथों से फ़र्श पर अपना माथा टेकते हैं और इस तरह तीनों प्रकार से बुद्ध को प्रणाम करते हैं। इस प्रकार की उपासना भारत में प्रचलित है। बूढ़े और रोगी भिक्षु छोटे आसन का उपयोग कर सकते हैं। यद्यपि चीन में बुद्ध की प्रशंसा के गीत अति प्राचीन काल से गाए जाते हैं तथापि उनकी रीति वहाँ भिन्न है। 'बुद्ध के चिन्हों की प्रशंसा हो' ये शब्द बुद्ध की प्रार्थना के समय चीन में प्रयोग किए जाते हैं। इनको एक लय में बोलना चाहिए और इनके पहले दस बीस श्लोक एकसाथ बोले जाने चाहिएं। इसके अतिरिक्त वे गाथाएँ जो 'हे तत्तघट!' से आरंभ होती हैं वास्तव में भजन ही हैं।"

विहार का समयविभाग घण्टों के बजाने से नियमित होता था। घण्टे जल-घड़ी से मापे जाते थे जिनकी बनावट इत्सिङ्ग ने विस्तार से लिखी है:

"जल-घड़ी भारत के सभी विहारों में काम में लाई जाती है। विहारों में समय की घोषणा करने के लिए जलघड़ियाँ और उनको देखनेवाले लड़के अनेकों राजाओं से दान में प्राप्त हुए हैं। एक ताम्रपात्र में जल भरा रहता है जिसके ऊपर ताँबे का प्याला तैरता रहता है। प्याला पतला होता है और उसमें एक पाव पानी आता है। प्याले के पेंदे में एक छोटा छेद होता है, पिन की नोक के बराबर, जिसमें होकर पानी प्याले में आता रहता है। प्याले का छेद ऋतु के अनुसार घटाया और बढ़ाया जाता है। यह छिद्र बहुत हिसाब से बनाया जाता था जिससे घण्टे ठीक तरह मापे जा सकें।

प्रातःकाल से प्रारम्भ कर प्याले के जल में डूबते ही एक घण्टा बजता है, दुबारा डूबने पर दो घण्टे और तीसरी बार डूबने पर तीन घण्टे बजते हैं किन्तु चौथी बार प्याले के जल में डूबने पर चार घण्टे बजने के अतिरिक्त दो बार शंखध्वनि होती है और एक बार नगाड़ा भी बजता है। यह समय जब सूर्य पूर्व में क्षितिज और मध्याह्न के बीच में होता है, प्रथम प्रहर कहलाता है। आठवीं बार प्याले के डूबने पर द्वितीय प्रहर के चार घण्टे बजते हैं और उनके साथ ही एक बार शंख-ध्वनि होती है और दो बार नगाड़ा बजता है। इसको द्वितीय प्रहर या ठीक मध्याह्न कहते हैं। यदि नगाड़े के दो बार बजने का शब्द सुनाई पड़े तो भिक्षु भोजन नहीं करते और विहार के नियमों के अनुसार यदि कोई भोजन करता पाया गया तो उसे विहार से निकाल दिया जाता है। दोपहर के पश्चात् प्रहर के दो और घण्टे वैसे ही बजते हैं जैसे कि मध्यान्ह के पहले बजे थे। रात में भी दिन की तरह चार प्रहर होते हैं। इस प्रकार दिन और रात आठ प्रहर में विभक्त हैं। जब रात का प्रथम प्रहर समाप्त होता है तो कर्मदान एक ऊँचे स्थान से उसकी घोषणा करता है—नालन्दा विहार का ऐसा ही नियम है। सूर्योदय और सूर्यास्त के समय फाटक के बाहर एक बार नगाड़ा बजता है। यह साधारण कार्य सेवक और दरबान करते हैं। सूर्यास्त से सूर्योदय तक किसी भिक्षु को घण्टा नहीं बजाना पड़ता और न नौकर ही ऐसा करते हैं क्योंकि यह कर्मदान के कर्त्तव्य के अन्तर्गत है। घण्टे के चार या पाँच बार बजाने में भी कोई अंतर रखा गया है जिसका विवरण अन्यत्र दिया गया है।"

अन्य स्थान पर उसने संक्षेप में लिखा है:

"भारत के पाँच खण्डों में जहाँ भी बड़े विहार हैं राजाओं ने जलघड़ियाँ स्थापित करवाई हैं। इन घड़ियों के कारण दिन या रात में सब कार्य समय और नियम के अनुसार किए जाते हैं। रात्रि को तीन भागों में विभक्त किया जाता है। प्रथम और अन्तिम भाग में नियमों के अनुसार ध्यान और भजन में समय व्यतीत करना चाहिए। किन्तु द्वितीय भाग में अपनी इच्छानुसार समय बिता सकते हैं। जलघड़ियों की बनावट वैसी है जैसा 'कि-कोई-त्युआँ' पुस्तक में वर्णित है।"

घण्टे का एक उपयोग स्नान के समय को सूचित करना था। इत्सिङ्ग ने स्नान का इस प्रकार वर्णन किया है:

"नालन्दा विहार के समीप दस या अधिक तालाब हैं जहाँ प्रातःकाल भिक्षुओं को स्नान का समय बताने के लिए घण्टियाँ बजती हैं। प्रत्येक पुरुष अपने

साथ नहाने के लिए चादर लाता है। कभी सैकड़ों और कभी हजारों भिक्षु एक साथ स्नान के लिए निकलते हैं और इन तालाबों में स्नान करते हैं।''

बहु संख्यक विद्यार्थियों और भिक्षुओं में से दो मुख्य भिक्षुओं के अतिरिक्त इत्सिङ्ग ने अपने समकालीनों के कुछ और नाम दिए हैं और उनके विषय में जो ज्ञातव्य बातें बतलाई गई हैं उनके साथ उन नामों का उल्लेख कुछ कम मनोरंजक नहीं :

१. **श्रमण ह्वन-त्वाओ** (प्रकाशमति) ने नालन्दा में ६६० ई. से लेकर तीन साल व्यतीत किए और जिनप्रभा से माध्यमिका शास्त्र और सच्छास्त्र पढ़े। तब रत्नसिंह ने उसे योग की १७ कलाएँ सिखाई। पश्चात् सारे भारत का भ्रमण कर जब वह फिर नालन्दा आया तो इत्सिङ्ग से मिला। वह मध्यभारत में ६० वर्ष की आयु में मर गया।

२. **ताओ–ही** (श्रीदेव) ने महायान पढ़ते हुए नालन्दा में कुछ वर्ष व्यतीत किए। उसने महाबोधि में पत्थर पर चीनी भाषा में अनुलेख उत्कीर्ण किया और नालन्दा में ४०० अध्याय अनूदित किए। पचास वर्ष से कुछ अधिक आयु में भारत में ही उसकी मृत्यु हुई।

३. **अङ्गो-लिए-पो मुओ** (आर्यवर्मन) कोरिया का रहने वाला था। उसने नियमपरायणता के विषय में पुस्तकें पढ़ीं और नालन्दा में सूत्रों को अनूदित किया और यहीं ७० वर्ष की आयु में मरा।

४. **होई–मी** कोरिया का रहनेवाला था। ६३८ ई. में नालन्दा में कई वर्षों से रहता था और भाष्य सुनता था। नालन्दा के भिक्षुओं से इत्सिङ्ग ने उसकी मृत्यु के बारे में सुना। उसने जिन संस्कृत ग्रन्थों की रचना की वे सभी नालन्दा में ही हैं।

५. **को–टुओ–टा–मोओ** (बुद्ध-धर्म) तुखारिस्तान से आया था। इत्सिङ्ग उससे नालन्दा में मिला।

६. **ताओ-चेङ्ग** (चन्द्रदेव) सन् ६४९ ई. के समय में नालन्दा में पढ़ता था और राजकुमार द्वारा सम्मानित था।

७. **ता-चेङ्ग-तेङ्ग** (महायान प्रदीप) ने लङ्का और द्वारावती में कुछ समय व्यतीत किया। उसने दक्षिण भारत की यात्रा की। १२ वर्ष तक ताम्रलिप्ति में संस्कृत पढ़ कर वह इत्सिङ्ग के साथ ही नालन्दा पहुँचा। कुशीनगर के परिनिर्वाण चैत्य में साठ वर्ष से अधिक की आयु में उसकी मृत्यु हुई।

८. **ताओ-लिन** (शील–प्रभा) वह समुद्र-मार्ग से नालन्दा पहुँचा था और वहाँ कई वर्षों तक रहा। उसने महायान के सूत्रों और शास्त्रों तथा कोषों का अध्ययन किया और दक्षिणी और पश्चिमी भारत में भ्रमण किया।

९. **इत्सिङ्ग** ने स्वयं नालन्दा में महायान को पढ़ा। फिर एक साल वहाँ रह कर शब्द-विद्या का अध्ययन किया। तत्पश्चात् लौट कर फिर वहाँ आया और मूलगन्धकुटी में उपासना की तथा गृद्ध्रकूट गया। इस बार वह दस वर्ष नालन्दा रहा और सन्तों की जीवनियों पर मनन करता रहा। वह अपने साथ पाँच लाख पदों की संस्कृत की पुस्तकें ले गया।

१०. **लिंग-यूम** (प्रज्ञादेव) ने नालन्दा में मैत्रेय और बोधिद्रुम के चित्र बनाए।

११. **त्चि-होंग** वाङ्ग ह्यून त्से का भतीजा था जो चीन का राजदूत था। वह नालन्दा में महायान की पुस्तकों का अध्ययन और उनकी जाँच करने आया था।

१२. **आऊ-हिंग** (प्रज्ञादेव द्वितीय) नालन्दा में योग पर भाष्य सुनता रहा। उसने कोषों का अध्ययन किया। उसने नियमपरायणता और वियास्यान का अभ्यास किया। वह इत्सिङ्ग का साथी था। उसकी मृत्यु भी भारत में ही हुई।

निस्सन्देह नालन्दा से निकल कर अनेकों यात्री अन्य देशों को भी, विशेषतया संस्कृत ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद करने में सहायता देने के लिए चीन, गए होंगे क्योंकि यह कार्य कई पीढ़ियों तक चलता रहा। उनमें से कुछ का नाम इस विवरण में आया है किन्तु उनके बारे में ज्ञातव्य बातें कम हैं।

चीनी यात्रियों और पुरातत्व विभाग के अन्वेषण की मदद से हमने नालन्दा के अतीत गौरव, उसके विकास और समृद्धि और नृशंस आक्रमणकारियों द्वारा उसके विनाश आदि का विवरण प्रस्तुत किया है। हमारे ज्ञान में अभी बहुत कमी है जो सम्भवतः अधिक शोधकार्य से सम्पूर्ण होगी। तथापि भारत में चारों ओर

बिखरे हुए प्राचीन विद्यापीठों से हमें नालन्दा के विषय में अधिक सामग्री प्राप्त होती है क्योंकि यह सब से बड़ा विद्यापीठ था और यहाँ बुद्ध धर्म के अध्ययन, प्रचार और प्रसार के कार्यों के साथ भारत के अन्य धर्मों और अध्यात्म ज्ञान के अध्ययन का भी प्रबन्ध था। नालन्दा के विश्वविद्यालय का पूरे एक सहस्र वर्ष तक अस्तित्व रहा। इस काल में आत्मा के जागरण का निरन्तर अपूर्व और सफल उद्योग होता रहा।

प्रस्तुत निबन्ध को लिखने में मुझे अपने मित्र प्रो० नीलकंठ शास्त्री और डा० संकालिक से जो सहायता मिली है उसके लिए मैं उन दोनों के प्रति अपना आभार प्रदर्शन करना कर्त्तव्य समझता हूँ। इस लेख की सामग्री अधिकांश में उनकी पुस्तक 'नालन्दा' पर आधारित है।

इसके साथ ही निम्नलिखित ग्रन्थों से भी सहायता ली गई है जिनके लेखकों के प्रति मैं अपना आभार प्रकट करता हूँ।

बील—बुद्धिस्ट रेकार्ड्स ऑफ दि वेस्टर्न वर्ल्ड
बील—लाइफ ऑफ ह्वेनसांग
सुन्दर—यूनिवर्सिटी ऑफ नालन्दा
वाट्र्स—ह्वेनसांग
मिनहज्ज-अस-सिरीज—तबक़त-ए-नासिरी
जवाहरलाल नेहरू—डिस्कवरी ऑफ इण्डिया

उस्मानिया यूनिवर्सिटी
हैदराबाद

—क़ासिम अली सजनलाल

उदर में संदंश (फोर्सेप्स)

वेलिंगटन निवासी एक व्यक्ति के सम्बन्ध में हुई घटना की अहमदनगर में पुनरावृत्ति हुई है जब कि डाक्टर शल्य-क्रिया के उपरान्त रोगी के उदर में से संदंश (Forceps) निकालना भूल गया।

एक वृद्ध महिला जिसकी आयु प्रायः ६० वर्ष है उदर-कष्ट से पीड़ित थी। वह स्थानीय मिशन अस्पताल में गई और क्ष-किरणों (X-Rays) से ली हुई तसवीर से ज्ञात हुआ कि उसके उदर में संदंश (Forceps) अटका हुआ है। संदंश खुला हुआ था।

नौ वर्ष पूर्व इस महिला के पेट की जब शल्य-क्रिया की गई थी तब यह संदंश उसके उदर में छूट गया था। महिला की आयु अधिक होने के कारण डाक्टर उसके उदर की पुनः चीर-फाड़ करना नहीं चाहते। उन्होंने उदर में संदंश होने की सूचना महिला को नहीं दी तथा उसके पुत्र भी उसे इस बात से अवगत नहीं कराना चाहते। महिला के पेट में कभी कभी दर्द उठने के अतिरिक्त उसे अन्य प्रकार का और कोई कष्ट नहीं होता।

—प्राउड फुट
(टाइम्स ऑफ इण्डिया में
प्रकाशित एक पत्र)

सन्त और बाउल साहित्य

[आचार्य श्रीयुत क्षितिमोहन सेन हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा के निमन्त्रण पर हैदराबाद पधारे थे। उन्होंने हिन्दी प्रचार सभा द्वारा संयोजित साहित्य गोष्ठी में 'सन्त और बाउल साहित्य' पर एक भाषण दिया था। इस लेख में उसी भाषण को दिया जा रहा है--सम्पादक]

जो हमसे ज्येष्ठ हैं और जो कनिष्ठ हैं उन सब को नमस्कार करके मैं अपने कथन को आरम्भ करूँगा, लेडीज़ एण्ड जेन्टलमन कहकर नहीं, क्यों कि हमारे देश की जो भद्रता है उसका हम क्यों त्याग करें। आपके मंत्री जी ने अभी एक भूल कर दी है। उन्होंने कहा मैं आपको 'संत-साहित्य' पर भाषण दूँगा। ठाकुरदादा * से यह आशा करना समुचित नहीं है। ठाकुरदादा तो सभी से विनोद करते हैं। कहना चाहिए: "भाषणम् सुखनाशनम्"। भाषण बहुत बड़ा होता है और जितनी चीज़ें बड़ी होती हैं अच्छी नहीं होतीं। भगवान् ने फ़ालसे को छोटा बनाया और कद्दू-कुम्हड़ा को बड़ा बनाया है, ग्रीष्म काल में दिन लम्बा होता है और शीत में रात्रि दीर्घ होती है। दूसरों को जो दुःख देते हैं वे दीर्घजीवी होते हैं। अच्छी चीज़ें हमेशा छोटी होती हैं।

सबसे पहले मुझे आपके सत्कार का प्रत्युत्तर देना चाहिए। इसका प्रत्युत्तर देने के लिए मुझे गुरुदेव के शब्द स्मरण आ रहे हैं। गुरुदेव जब सन् १९३४ में पीकिंग गए वहाँ उनका भव्य स्वागत किया गया और उन्हें इतने फूलों के हारों से लाद दिया गया कि उन्होंने कहा कि यदि मुझे पहले यह ज्ञात होता तो मैं चाहता कि इन हारों को पहनने के लिए ऊँट बन कर आऊँ। आपने इतने अधिक फूलों के हार मुझे पहनाए हैं इनके लिए मुझे भी ऊँट बन कर आना चाहिए था। सभा में दिए गए पुष्पों का कभी अनादर नहीं करना चाहिए "नहि पुष्पाण्युपेक्षेत"। आपके इन पुष्प-हारों को मैं शरीर से अलग नहीं करना चाहता। मैं इनके भार से अभी अपने कण्ठ को मुक्त कर लेता हूँ। फिर हम इनको घर ले जाएँगे।

जैसा कि हमने अभी आप से कहा है हम आपको भाषण नहीं देंगे। सन्तों के विषय में गल्प कहेंगे। सन्त सभी देशों में होते हैं। उत्तर देश में इन्हें सन्त कहते हैं, दक्षिण में अलवार, बंगाल में बाउल और मुसलमानों में उनका सूफ़ी नाम है। एक समय दो मित्र थे। एक बादशाह का लड़का और दूसरा काश्तकार का लड़का। दोनों एक ही पाठशाला में पढ़ते थे। आज तो प्रजातन्त्र का युग है परन्तु उस समय भी बादशाह और काश्तकार के लड़के एक ही पाठशाला में पढ़ा करते थे। पढ़-लिख कर बादशाह का लड़का बादशाह हो गया और काश्तकार का लड़का खेती-बाड़ी करने लगा। तीस-चालीस वर्ष बाद दोनों मित्र फिर मज़ार पर मिले। दोनों मिल कर बड़े प्रसन्न हुए। बादशाह के लड़के ने अपने मित्र से पूछा "आजकल तुम क्या काम करते हो?"

उसने उत्तर दिया—"खेती-बाड़ी।"

"क्या तुम्हारे पिता गुज़र गए।"

"हाँ।"

"तुमने उनके लिए क्या स्मृति-चिह्न बनवाया है?"

"एक छोटी सी मिट्टी की कब्र और उस पर गुलाब का एक फूल, इससे अधिक मैं कुछ नहीं कर सकता था। मैं ग़रीब हूँ।"

बादशाह के लड़के ने कहा—"हाय, अफ़सोस! मेरे पिता गुज़र गए और उनकी यादगार में ३० हज़ार संगतराशों ने बीस वर्ष बैठ कर संगमरमर का रोज़ा बनाया है।"

काश्तकार का लड़का बोला—"समझ पड़ेगा क़यामत के दिन। हमारे पिता मिट्टी का आवरण तोड़

---

* बंगाल में ठाकुरदादा पितामह को कहते हैं और बंगाल में ठाकुरदादा से परिहास करने की प्रथा है। गुरुदेव श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर आचार्य श्री क्षितिमोहन सेन को ठाकुरदादा के नाम से पुकारते थे इसलिए उनका ठाकुरदादा नाम प्रसिद्ध हो गया है।

कर झट ईश्वर के सामने जाकर खड़े हो जाएँगे, तुम्हारे पिता को न जाने कितना समय लगेगा ईश्वर के पास पहुँचने में। उन्हें तो पूरा पत्थर का रोज़ा तोड़ना पड़ेगा। उन्हें इसमें कितना कष्ट होगा। तब तुम्हारे पिता तुम्हें अभिशाप देंगे।"

सूफ़ियों की इस कहानी का अर्थ क्या है? सूफ़ी सन्त होते हैं। भगवान् का आह्वान (Call) सबके पास आता है पर हम उसे सुन नहीं पाते। कोई संगमरमर के रोज़े के नीचे, कोई जाति के, कुल के, धन के अभिमान के नीचे दबे हुए पड़े हैं। जो ग़रीब हैं, जिन पर किसी प्रकार के दम्भ का भार नहीं है वे उसे सुन सकते हैं— He hears the Call and stands before Him.

आप लोगों ने महाप्रभु चैतन्य का नाम सुना होगा। अभी मैंने आपको जो गल्प कही उसमें बादशाह के लड़के ने बादशाही छोड़ दी थी। चैतन्य महाप्रभु कोई बादशाह के लड़के तो नहीं थे परन्तु वे बहुत बड़े विद्वान् थे। वे ब्राह्मण होने के अभिमान को छोड़ कर भिक्षुक बन गए थे। वे बहुत बड़े ज्ञानी थे, लोगों ने उनका बड़ा विरोध किया पर उनके कानों में साध (Call) आई थी। उन्होंने घोषित किया:

"नाहं विप्रो न च नरपति
नापि वैश्यो न शूद्रः

न हमें ब्राह्मण होने का अभिमान है न राजा का, न वैश्य का, न शूद्र का, न वर्ग का, न ब्रह्मचारी, न गृहस्थी, न वानप्रस्थी होने का परन्तु हम नारायण के दासानुदास हैं। हम किसी प्रकार का अभिमान जानते ही नहीं हैं।

सन्त लोगों में एक दादूपन्थी संप्रदाय है। इस सम्प्रदाय के ग्रन्थों में दादू की कन्या नानीबाई और माताबाई की चर्चा आती है। दादू जन्मतः मुसल्मान थे। उनकी दोनों कन्याएँ बड़ी साध्वी और साधिकाएँ थीं। उनके स्वरूप में नारी की विशेषताओं (Speciality) की पूर्ण अभिव्यक्ति मिलती है। मृत्यु के अवसर पर माताबाई से पूछा गया तुमने जगत में क्या देखा? उसने कहा:

"मिथ्या बालस आसरे
सोया बालक अयान
निस अँधारी चौंक के
रोवै शून्यता जान
जागी मिथ्या नींद निस
रो देखी मम नहिं कोई
तभी भरे सब शून्यता
जब तो सन मिलन होय।"

बालक तकिये का सहारा लिए सोया है; उसे भ्रम है कि वह माता के साथ सोया है। नींद से चौंक कर जागता है तो शून्यता पाकर रोता है। वह जाग कर देखता है कि मेरा कोई नहीं है, शून्यता तो तभी भर सकती है जब माता अपने बच्चे को छाती से लगाए।

वही सूफ़ीमत की भावना नानी और माताबाई में मिलती है। कबीर ऐसे ही महापुरुष थे जो अहंकार के बोझ से दबे हुए नहीं थे। जब हिन्दु और मुसल्मान आपस में लड़ रहे थे कबीर ने हिन्दु-मुसल्मानों के मिलन की बातें कहीं। कबीर को लोगों ने कहा तुम मुल्ला-पण्डित नहीं हो। क्यों ऐसी बातें करते हो? तुमने कब हिन्दुओं और मुसल्मानों के शास्त्र पढ़े हैं? कबीर ने कहा:—

"पढ़ि पढ़ि तो पत्थर भया
लिखि लिखि भया जो ईंट
कहे कबीरा प्रेम की
लगी न एकौ छींट
ईंटा ईंटा आग है
कादों कादों लाग"

जिनका हृदय निर्मल होता है, किसी तरह का मिथ्याभिमान नहीं होता ऐसे ही सरल हृदय व्यक्ति unsophisticated people मिलन की बातें कह सकते हैं। कबीर पढ़े-लिखे नहीं थे, वे तो चाहते थे:

न कागद ग्रन्थ लेखनी
लेख अक्षर नहीं कोई
सर्वत्र दीसहि सहज साँच
अस दीक्षा दे मोहि

केवल शास्त्र देखना तो दुर्भाग्य है। काशी के बड़े बड़े पण्डित हैरान होकर कबीर से प्रश्न पूछते थे, उनका संशय दूर नहीं होता था। कबीर से पूछा गया—"ब्रह्म को पाने का रास्ता क्या है?" कबीर ने बताया—"दूर नहीं

तो पन्थ निहाई"। जो बैठा है उसके लिए पथ क्या ? हमारे बड़े भाई को एक बार स्कूल से छुट्टी मिली; किसी के देहावसान के कारण मिली होगी। वे कूदते-फाँदते घर आए। माता से कहा हमें छुट्टी मिल गई। यह जान कर मैं भी रोने लगा और कहने लगा मुझे भी छुट्टी दिजिए। तब मैं बालक था और स्कूल नहीं जाता था। माता ने कहा—अरे, तुम्हें कैसी छुट्टी ? तुम्हें तो हमेशा छुट्टी ही रहती है। स्कूल जाते ही नहीं हो तुम्हें छुट्टी कैसी ? कबीर कहते हैं—"दूर आहि तो पन्थ निहाई"। पन्थ दूरी की पूर्वस्वीकृति है—way presupposes distance भारतीय नारी अपने पति का नाम नहीं लेती क्योंकि वह अपने पति को अपने से भिन्न मानती ही नहीं। नाम लेकर तो दूसरों को ही पुकारा जाता है अपने को कोई नाम लेकर नहीं पुकारता। जो प्राणों का प्राण है उसे हम अपने से दूर करेंगे ?

"दूर नहीं तो पंथ निहाई"

दूरी कहां है, वह तो भ्रम है। कबीर कहते हैं:

पानी में भी मीन पियासी
मोहि सुन सुन लागत हाँसी"

तालाब की मीन के लिए पीने को क्या कोई जल लाएगा ? उसके लिए बाथ-रूम कहाँ मिलेगा ? ईश्वर तो सर्वत्र है। हम इसका अनुभव नहीं कर पाते—इसका कारण हमारा भाव-दोष—mental attitude है। भाषा सीमाबद्ध है, अभिव्यंजना से वस्तु बड़ी है।

ऐसा नहीं तैसा ओ
मैं केहि विधि कथौं गम्भीरा लौ
भीतर कहूँ तो जग में लाजै
बाहर कहूँ तो झूठा लौ
दृष्टि न सृष्टि प्रगट अगोचर बातन कहा न जाई लौ
जल भर कुँभ जलहिं बिच धरिया
बाहिर भीतर सोई
उनका नाम कहन कौ लाजत
उनका नाम कहन को नाहिं
दूजा धोखा होय

सन्तों की वाणी सर्वत्र एक-सी है। भाषा और प्रदेश की उनके लिए कोई सीमा नहीं। सन्तों के बारे में शायद आप लोग बहुत कुछ जानते हों परन्तु बंगाल के बाउल के बारे में संभवतः आप कुछ भी नहीं जानते।

गुरुदेव इतने ख्यात और मनीषी थे किन्तु बाउलों के प्रति उनका सम्मान और भक्ति अत्यधिक थी। वे बाउलों की वाणियों से पूर्ण थे। सन् १९५० में गुरुदेव फिलासफिकल काँग्रेस (Philosophical Congress) के अध्यक्ष थे। वहाँ उन्होंने बाउल वाणियों पर भाषण दिया। कलकत्ता विश्वविद्यालय में वे भाषा के प्रोफ़ेसर बने तब उन्होंने शुरु से अन्त तक बाउलों की वाणियों पर भाषण दिया। आक्सफ़ोर्ड विश्वविद्यालय में जब उन्हें हिब्बर्ट लेक्चर देने के लिए बुलाया गया तो उन्होंने जो भाषण दिए वे बाउलों के सम्बन्ध में ही थे। उन्होंने कहा—

'आमार मनेर मानुष जे रे'

"वही मनुष्य हमारा खो गया है। उसी की तलाश में हम देश विदेश में घूमते हैं।" यूरोप के लोग यह सुन कर आश्चर्यचकित हो गए। हमारे यहाँ के निरक्षर असंस्कृत नहीं होते। अपनी यूरोप-यात्रा के समय गुरुदेव श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर रूस जाने से पूर्व इटली गए थे। इटली में संस्कृत के ज्ञान का बहुत कुछ प्रचार हुआ है। वहाँ यूनिवर्सिटी में संस्कृत की यूरोप में सबसे अधिक सीटें हैं। सन् १७१९ में 'पाणिनि-व्याकरण' सबसे पहले इटली में प्रकाशित हुआ। 'रामायण' का सबसे पहले गोरेशिया ने इटली भाषा में अनुवाद करके प्रकाशन करवाया था। अस्तु, गुरुदेव इटली के एक नगर में गए जिसका नाम पुष्पक था। वहाँ के प्रोफ़ेसर ने जिस दिन गुरुदेव वहाँ आनेवाले थे श्याम-पट (Black Board) पर लिख दिया-"आज हम कुछ नहीं पढ़ाएँगे। आज गुरुदेव आ रहे हैं। पुष्पक नाम से ख्यात यह स्थान अब फल पूरित हो जाएगा।" इटली के सबसे उत्तम विद्वान् फोरमिकि, टूची आदि विद्वानों से गुरुदेव को मिलाया गया। गुरुदेव क्रोचे से मिलना चाहते थे। उन्हें ज्ञात हुआ क्रोचे पर मुसोलिनी नाराज़ है। पर गुरुदेव इटली आए और क्रोचे से नहीं मिले तो उन्होंने इटली में देखा ही क्या ? गुरुदेव ने मुसोलिनी से कहा कि वे क्रोचे से मिलना चाहते हैं। मुसोलिनी ने कुनीन की तरह इस कड़वे घूँट को पी लिया और उसने उन्हें बन्दी क्रोचे से मिलाने के लिए आदमी को भेजा। गुरुदेव से क्रोचे मिले। वे चकित हुए "आप

यूरोप में जहाँ जाते हैं मैं उसका विवरण पढ़ता हूँ। आप यहाँ कैसे आए? क्रोचे ने गुरुदेव को संशोधन करने के लिए अपना "आर्ट" (Art) नामक ग्रन्थ देना चाहा। गुरुदेव ने भारत लौट कर उसे पढ़ने की इच्छा प्रकट की क्योंकि मार्ग में उन्हें इस पुस्तक के खोजाने का डर था। भारत लौटने पर उन्हें वह ग्रन्थ मिला। गुरुदेव बड़े अध्यवसायी थे परन्तु ऐसा ज्ञात होता था कि इस ग्रन्थ को बार बार पढ़ कर भी, पन्द्रह दिन बाद भी वे किसी को यह ग्रन्थ देना नहीं चाहते थे। मैं उस ग्रन्थ को रात में गुरुदेव के सोने के समय ११ बजे अपनी चादर में छुपा कर ले आया। मैंने समस्त रात्रि उस ग्रन्थ को पढ़ा और प्रातःकाल उस ग्रन्थ को लौटा दिया। रात में मैंने उस पुस्तक को सरसरी तौर पर पूरा पढ़ा, उस पुस्तक में क्या था? मध्य-युग के संत दादू के भक्त रज्जब ने कहा है :

"रूप लख्या तब जानिए
जब कुछ रचि सकाय
हम लखी नहीं सुना नहीं
ऐसे ही महूरत जाय
कहि लखि बानी धुनि सुर
लय बरण न रेख
रीत रीत में रचि सके
रीत भिन्न वस्तु एक
ध्यान भरि रोई सन्त जन
रचैं जीवन माहिं
कोई रीत कछु न रचा
सोई जन्म्यो नाहिं"

इन पंक्तियों के अतिरिक्त क्रोचे ने कुछ नहीं लिखा। मैंने इनका अनुवाद करके क्रोचे के पास भिजवा दिया। क्रोचे को भारत के संत कवि की इस एक उक्ति को पढ़ कर महान् आश्चर्य हुआ।

बाउल के जिस गान की आरम्भ में मैंने चर्चा की थी उसकी ओर मैं फिर आपका ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। वह गीत जिसको गुरुदेव श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने लेक्चर में सब से पहले ध्वनित किया उसको रचनेवाला गुरुदेव का एक डाक का हरकारा गगन था। यह गान रवि बाबू के साथ आक्सफोर्ड में पहुँचने से पहले हमारे यहाँ काशी में पहुँच चुका था। हमारे हृदय में उससे मिलने की इच्छा जागृत हुई। मिलने के लिए बंगाल गए पर वहाँ सुना पच्चीस-छब्बीस वर्ष हुए वह मर गया। हमने चाहा कि वहाँ बाउल लोगों से मिला जाय। हमारे साथ बी. ए., एम. ए. के कुछ विद्यार्थी भी चले। वे लोग उनसे प्रश्न करते थे पर बाउल लोगों को वे प्रश्न अच्छे नहीं लगते थे। शोध छात्रों की कलमों से घबड़ा कर वे आजकल प्रायः हमारे इधर नहीं आते। उन लोगों में एक श्री० नैपाल थे जिन्होंने उनसे कुछ प्रश्न किए। बाउल सदैव किसी भी प्रश्न का उत्तर सदैव पद्य में देते हैं। पूछा गया : "बाबा तुम तो साधु हो पर तुम्हारे वस्त्र गेरुआ क्यों नहीं रंगे हैं?" बाउल ने उत्तर दिया जिसका आशय यह था :

"आमार पाखिर जात,......उड़ेर जात"

"हम पैदल नहीं चल सकते, आकाश में उड़ने वाले जीव हैं—We soar in the sky. जब भीतर रस नहीं हो तो बाहर के रंग से क्या प्रयोजन? आम का फल जब कच्चा होता है तब उसके ऊपर का रंग नहीं खिलता। जब वह पक जाता है, भीतर से मीठा हो जाता है, तभी उसका बाहर का रंग भी खिल उठता है। बाहर रंग करने से भीतर रस आए यह तो उल्टी बात है।"

"आमार मनेर मानुष जेरे।"

हम हृदय के भीतर के प्रकाश को उसी प्रकार जान सकते हैं जैसे एक घर में प्रज्वलित दीपक की किरणें घर के बाहर फूट पड़ती हैं। संत की आँखों में प्रेम का प्रकाश होता है।

बाउल से पूछा गया—"गगन को भगवान् ने इतना अल्पायु क्यों बनाया?"

बाउल ने उत्तर दिया—"भगवान् ने गगन को रात भर दिया जलाने के लिए तेल दिया था। गगन को रात भर धीमे धीमे जलाना पसन्द नहीं था उसने दो घण्टे में दीपक की ज्योति जगमगा कर तेल को समाप्त कर दिया! He made a festival of it and passed away."

जिन्होंने ठाकुर रवीन्द्रनाथ का 'डाकघर' पढ़ा है वे जानते हैं उस कहानी का आधार रवि बाबू का "डाक का हरकारा" गगन ही है। गगन के हृदय में कितना सरल विश्वास था और उसके हृदय में थी कैसी उत्कण्ठा!

"मैं घर घर चिट्ठी बाँटता हूँ
मेरी चिट्ठी कब आएगी ?
वह मुझे चिट्ठी लिख रहा होगा
मेरी चिट्ठी कब आयेगी ?"

अपने मृत्यु के दिन गगन ने कहा था—"आज मेरी चिट्ठी आ गई है, हम चले।"

ऐसे दृढ़ विश्वास के आगे सारी शंकाएँ भाग जाती हैं, संशय का कोई स्थान नहीं रहता। पर हमारा पोस्ट ग्रेजुएट साथी नैपाल नहीं मानता। वह बाउल से पूछता है, निर्लज्जता पूर्वक पूछता है—"तुम्हारा गुरु कौन है ?

बाउल ने उत्तर दिया—जो प्रेरणा दे वही गुरु है। जीवन की प्रत्येक घटना गुरु है। विवाह के समय कन्या "वर पात्र" रखती है वह गुरु है, हृदय की ज्वाला भी गुरु है, मरने के अवसर पर जलाई गई ज्वाला भी गुरु है। किसको प्रणाम करें, किसकी उपेक्षा करें ?"

नैपाल बन्धु ने फिर पूछा—"बाबा, तुम्हारी दीक्षा कब हुई ?" बाउल ने हँसकर उत्तर दिया—"जिस दिन जन्म हुआ उसी दिन दीक्षा हुई। एक माँ शब्द का उच्चारण कर माता के वक्ष से नीर-क्षीर के रूप में प्राणों का पान किया उसी के साथ दीक्षा हुई।" कबीर कहते हैं : "कबीरा कब से भए वैरागी" संतों के सामने दीक्षा का प्रश्न नहीं उठता। फिर नैपाल ने पूछा—"आपके साधन-भजन का क्या उपाय है, साधना-पद्धति क्या है ?" बाउल का उत्तर था—"यदि प्राण ही नहीं रहे तो देह का शृंगार किस काम का ?" ईजिप्ट के ममी पर सुन्दर आवरण लगा रहता है, किन्तु प्राण के अभाव में वह सौन्दर्य वीभत्स ही लगता है। प्रेम धर्म का प्राण है—यदि प्रेम नहीं मिला तो साधन-भजन कितने दिन तुम्हारे धर्म को जीवित रख सकते हैं।

आपके बीच में आकर हमें बड़ी प्रसन्नता हुई है—और हम आपको प्रणाम करते हैं।

विश्वभारती
बोलपूर

—क्षितिमोहन सेन

प्रशिक्षण

...पढ़ाना एक कला है—विज्ञान नहीं। प्रत्येक अच्छा शिक्षक एक अच्छे कलाकार के समान अनुकरण से प्रारम्भ कर सकता है परन्तु अन्त में अपनी ही एक व्यक्तिगत शैली का विकास कर लेता है। एक अभिनेता के समान एक शिक्षक को अपने पात्र के साथ एकता स्थापित कर लेनी पड़ती है परन्तु उसे अपने रंगमंच पर अकेले ही चलना पड़ता है। नियम और प्रणालियाँ उसकी विशेष सहायता नहीं कर सकतीं। एकमात्र उसका व्यक्तित्व ही उसे अपने कार्य में सफल बना सकता है।

मैंने इन सब बातों को धीरे धीरे सीखा और अब भी सीख रहा हूँ जब कि मैं आज शिक्षा की अन्तिम सीढ़ी पर चढ़ रहा हूँ...।

—फूएस
स्कूल मास्टर
(टाइम्स से)

शास्त्रीय सम्पादक की अशास्त्रीय लीला

उत्तर प्रदेश की हिन्दुस्तानी एकेडेमी के 'मन्त्री तथा कोषाध्यक्ष' श्री धीरेन्द्र वर्मा जी लिखते हैं :

"इस ग्रन्थ के संपादक डा. माताप्रसाद गुप्त का हिन्दी पाठकों से परिचय कराना अनावश्यक है। डा. गुप्त इधर अनेक वर्षों से अपनी भाषा की पुरानी कृतियों के पाठ-निर्णय के कार्य में लगे रहे हैं; और उन्होंने इस दिशा में अच्छा परिश्रम ही नहीं किया है, किन्तु अन्य संशोधकों के लिए मार्ग को भी प्रशस्त किया है। अभी हमारे साहित्य में पाठ-सम्बन्धी अनुसन्धान-कार्य प्रारंभिक अवस्था में ही है, और चाहे जिस बड़े कवि को ले लें, हमें उसकी रचनाओं के पाठ-निर्णय में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इन समस्याओं को हम शास्त्रीय ढंग से कैसे सुलझा सकते हैं, इस विषय में डा. गुप्त के कार्य से इस प्रकार की शोध में लगे हुए लोगों को प्रेरणा मिलेगी, इसकी मुझे पूर्ण आशा है। निश्चय ही यह संस्करण हिन्दी के एक बड़े अभाव की पूर्ति करेगा।" (प्रकाशकीय)

डा. धीरेन्द्र वर्मा की 'पूर्ण आशा' पर पानी न फिरे, इसका इस जन को भी पुरा ध्यान है; किन्तु करे क्या ? डाक्टर गुप्त को इसकी रत्ती भर चिन्ता नहीं। देखिए न, उनका प्रथम 'प्रक्षिप्त छन्द' है—

[२२ अ]

द्वि० १-

मानिक एक पाएउँ उजियारा,
सैयद असरफ पीर पियारा।
धुंध धूम देखौं कलि माहाँ,
कहत धूप धुरनावत छाहाँ।
जायस नगर मोर अस्थानू,
नगर क नाउँ अवध अस गाऊँ।
तहवाँ देवस दस पठाएँ आएउँ,
भा बैराग बहुत दुख पाएउँ।
सुख भा सोच एक सँग मानेउँ,
वहि बिनु जीवन मरन कै जानेउँ।
जहवाँ देखौं तहवाँ सोई,
और न आव दृष्टि तर कोई।
सभै जगत दरपन कर लेखा,
आपन दरसन आपुहिं देखा।
अपने कौतुक कारन मेलि पसारसि हाथ।
मलिक मुहम्मद पंथी होइ निसरे तेहि बाट॥
(परिशिष्ट, जा० ग्रं०, पृ० ५५७)

जी। इस प्रथम प्रक्षिप्त का आधार है :

[९]

मानिक एक पाएउँ उजियारा,
सैयद असरफ पीर पियारा।
जहाँगीर चिस्ती निरमरा,
कुल जग माँ दीपक बिधि धरा।
औ निहंग दरिया जल माहाँ,
बूड़त कहँ धरि काढ़त बाहाँ।
समुँद माँझ जो बोहित फिरई,
लेतै नावँ सहूँ होइ तरई।
तिन घर हौं मुरीद सो पीरू,
सँवरत बिन गुन लावैं तीरू।
कर गहि धरम पंथ देखराएउ,
गा भुलाइ तेहि मारग लाएउ।
जो अस पुरुसै मन चित लाए,
इच्छा पूजै आस तुलाए।
जौ चालिस दिन सेवै बार बुहारै कोई।
दरसन होइ मुहम्मद पाप जाइ सब धोइ॥

[१०]

जायस नगर मोर अस्थानू;
नगर क नावँ आदि उदयानू।
तहाँ देवस दस पहुने आएउँ,
भा बैराग बहुत सुख पाएउँ।
सुख भा सोच एक दुख मानौं,
ओहि बिनु जिवन मरन कै जानौं।
नैन रूप सो गएउ समाई,
रहा पुरि भरि हिरदै छाई।

जहँवै देखौं तहँवै सोई,
और न आवै दिस्टि तर कोई।
आपुन देखि देखि मन राखौं,
दूसर नाहिं सो कासौं भाखौं।
सबै जगत दरपन कर लेखा,
आपुन दरसन आपुहि देखा।
अपने कौकुत कारन मीर पसारिन हाट।
मलिक मुहम्मद भिनहीं होइ निकसिन तेहि बाट॥
(आखिरी कलाम, पृ० ६९०)

'प्रक्षिप्त छन्द' की द्वितीय पंक्ति को छोड़ कर सभी कुछ पाठभेद के साथ 'आखिरी कलाम' में उपलब्ध हैं। और सच तो यह है कि इस पंक्ति का भी पता है 'आखिरी कलाम' में ही। देखिए न—

देखौ जगत धुन्ध कलि माहाँ। उवत धूप धरि आवत छाहाँ॥
(१३-२)

इस प्रकार प्रत्यक्ष ही है कि 'पद्मावत' का 'प्रथम प्रक्षिप्त' बना है 'आखिरी कलाम' के ९-१+१३-२+१०-१, २, ३, ५, ७, ८, ९ से। और उसमें स्पष्ट नाम है 'मलिक मुहम्मद' का। प्रथम प्रक्षिप्त की स्थिति को दृष्टि में रख कर अब देखिए शास्त्रीय संपादक की पाठ-निर्णय-विधि को; लिखते हैं और प्रमाण देते हैं इसी जायसी की रचना का न?

"(३३) ४१८ अ–यह छंद द्वि० ६, च० १ में नहीं है, इसमें पूर्ववर्ती मूल के छंद की ही बातों को कुछ संशोधन–परिवर्धन के साथ दुहराया गया है; और यहाँ भी पद्मावती रत्नसेन के पैरों में पड़ती है:

पाय परी धनि पिय के
नैनन्हि सों रजमेटि। (४१८-८)
कै नेउछावरि जीउ उवारी।
पायन्ह परी 'घालि गिय' नारी। (४१८ अ.३)

किन्तु इतना ही नहीं, इस अतिरिक्त छंद में रत्नसेन को भी पद्मावती के पैरों में गिराया गया है:

राजा रोव 'घालि गियँ पागा।'
पद्मावति के पायन्ह लागा। (४१८ अ. ५)

पद्मावती का रत्नसेन के पैरों में पुनः गिरना, और उससे भी अधिक रत्नसेन का पद्मावती के पैरों में गिरना, प्रक्षिप्त ही ज्ञात होता है। 'घालि गियँ' भी इस छन्द में एक विचित्र पहेली है—पद्मावती रत्नसेन के पैरों में 'गिय घालि' गिरती है, और रत्नसेन पद्मावती के पैरों में 'गियँ पाग घालि' गिरते हैं। यह प्रयोग ग्रन्थ में अन्यत्र नहीं आए हैं, इसलिए चिन्त्य हैं।

इस छन्द के दोहे में 'मुहम्मद' का नाम अवश्य आता है:

मुहमद मीत जो मन बसै
तेहि मिलाव बिधि आनि।

किन्तु अनेक प्रक्षिप्त दोहों में ऐसा हुआ है। यथा:

२२ अ. जो केवल द्वि० १ में है।"
(भूमिका, पृ० ७५-६)

डा० गुप्त के कथन से सिद्ध ही है कि उनकी दृष्टि में किसी दोहे में 'मुहम्मद' का नाम आ गया तो क्या? इसी से वह मलिक मुहम्मद जायसी की रचना तो नहीं हो गया? ठीक है। परन्तु किया क्या जाय? '२२ अ.' की कोई पंक्ति ऐसी नहीं जो जायसी की रचना 'आख़िरी कलाम' में न हो। उसका विवरण पहले आ चुका है। और 'आखिरी कलाम' को डा० गुप्त निश्चय ही जायसी की रचना मानते हैं। अन्यथा इस 'प्रामाणिक' ग्रन्थावली में उसे स्थान ही क्यों मिलता? सो भी जब उसके संपादन के लिए कोई वैज्ञानिक आधार नहीं। अस्तु, सरलता से कहा जा सकता है कि प्रक्षिप्त की झोंक में डा० गुप्त जायसी से दूर हो गए। अच्छा, अब लीजिए '४१८ अ' के प्रकृत पाठ को। कहते हैं—

जनि काह कर होइ बिछोऊ,
जस वै मिले मिलै सब कोऊ।
पदुमावति जौ पावा पीऊ,
जनु मरजियहिं परा तन जीऊ।
कै नेवछावरि तन मन वारी,
पायन्ह परी घालि गिउ जारी।
नव अवतार दीन्ह बिधि आजू,
रही छार भइ मानुख साजू।
राजा रोव घालि गियँ पागा,
पदुमावति के पायन्ह लागा।
तन जिउ महँ बिधि दीन्ह बिछोऊ,
अस न करै तौ चीन्ह न कोऊ।

सोई मारि छार कै मेटा,
सोइ जियाइ करावै भेंटा।
मुहमद मीत जौ मन बसै बिधि मिलाव ओहि आनि।
संपति बिपति पुरुख कहँ काह लाभ का हानि॥

डा० गुप्त का कहना है—

"'घालि गियँ' भी इस छन्द में एक विचित्र पहेली है—पद्मावती रत्नसेन के पैरों में 'गिय घालि' गिरती है, और रत्नसेन पद्मावती के पैरों में 'गियँ पाग घालि' गिरते हैं; यह प्रयोग ग्रन्थ में अन्यत्र नहीं आए हैं, इसलिए चिन्त्य हैं।"

जी। परन्तु सच तो कहें, यह प्रसंग 'ग्रन्थ में अन्यत्र' आया है या नहीं। यदि नहीं तो यह बाधा कैसी? यदि हाँ तो वह स्थल कहाँ? रहा 'यह प्रयोग' सो यह 'प्रयोग' नहीं 'प्रथा' है। यह 'विचित्र पहेली' नहीं सीधी सी बात है। 'घालि गिउ जारी' और 'घालि गिउ पागा' में 'घालि गिउ' तो दोनों के साथ है न? राजा का 'पागा' भी आपको ज्ञात ही होगा। 'पगड़ी' में कोई बाधा क्या? हाँ, 'जारी' में उलझन अवश्य है। परन्तु सो भी पहेली नहीं। जारी का अर्थ है 'जाली', जालीदार ओढ़नी, जालीवाली चादर। और 'घालिगिउ' का संकेत हैं 'क्रीतदास'। भाव यह कि इस क्रिया के द्वारा एक दूसरे के परस्पर प्रेम से 'क्रीतदास' बने। दोनों का परस्पर पक्का आत्मसमर्पण हो गया।

स्मरण रहे। इसके पहले की स्थिति है:

पाय परी धनि पिय के नैनन्ह सों रज मेंटी।
अचरज भएऊ सबहिं कहँ ससि कँवलहिं भै भेंट॥४१८॥

किन्तु यह तो सामान्य शिष्टाचार रहा न? और सो भी एक ओर से ही। क्या ऐसे शुभ अवसर पर किसी प्रिय-प्रिया को इतने से ही सन्तोष हो सकता है? कैसी विषम परिस्थिति या दुर्घट घटना के उपरान्त हुआ था दोनों का यह मेल? कुछ इसका भी ध्यान है? बीच में ही छलने को आ गई थी 'लक्ष्मी' न? राजा परीक्षा में खरा उतरा फलतः मिल गई प्रिया भी। फिर तो खुल कर दिखा दिया कि हममें कोई स्वतन्त्र नहीं। हम परस्पर दास हैं। है। यही है रहस्य 'घालिगिउ पागा' और 'घालिगिउ जारी' का। अतएव इस आधार पर इसे क्षेपक कहना ठीक नहीं। प्रेम के पवित्र मार्ग में हस्तक्षेप अवश्य है। रही 'कुछ संशोधन-परिवर्धन' की बाधा सो जायसी में अन्यत्र भी है ही। 'पद्मावत' का एक अंश लीजिए। यह डा० गुप्त को प्रिय भी है और को इस पर विचार भी कुछ अधिक किया है। लीजिए—

पुनि सिंगार हाट धनि देसा।
कइ सिंगार तहँ बैठी बेसा।
मुख तँबोर तन चीर कुसुंमी।
कानन्ह कनक जराऊ खुंमी।
हाथ बीन सुनि मिरिग भुलाहीं।
नर मोहहिं सुनि पैगु न जाहीं
भौंह धनुक तहँ नैन अहेरी।
मारहिं बान सान सौं फेरी।
अलक कपोल डोल हँसि देहीं।
लाइ कटाख मारि जिउ लेहीं।
कुच कंचुकि जानहुँ जुग सारी।
अंचल देहि सुभावहिं ढारी।
केत खेलार हारि तेन्ह पासा,
हाथ झारि होइ चलहिं निरासा।
चेटक लाइ हरहिं मन जौ लहि गथ है फेंट।
साँठि नाठि उठि भए बटाऊ ना पहिचान न भेंट॥

[३९]

लै लै बैठ फूल फुलहारी,
पान अपूरब धरे सँवारी।
सोधा सबै बैठु लै गाँधी,
बहुल कपूर खिरौरी बाँधी।
कतहूँ पंडित पढहिं पुरानू,
धरम पंथ कर करहिं बखानू।
कतहूँ कथा कहै कछु कोई,
कतहूँ नाच कोड भलि होई।
कतहुँ छरहटा पेखन लावा,
कतहूँ पाखँड काठ नचावा,
कतहूँ नाद सबद होइ भला,
कतहूँ नाटक चेटक कला।
कतहुँ काहुँ ठग बिया लाई,
कतहुँ लेहि मानुस बौराई।
चरपट चोर धूत गँठिछोरा मिले रहहि तेहि नाँथ।
जो तेहि नाँच सजग भा अगुमन गथ ताकर पै बाँच॥

[४०]

पुनि आइअ सिंघल गढ़ पासा ,
का बरनौ जस लाग अकासा ।
तरहिं कुरुँम बासुकि कै पीठी ,
ऊपर इन्द्रलोक पर डीठी ।
परा खोह चहुँ दिसि तस बाँका ,
काँपै जाँघि जाइ नहि झाँका ।
अगम असूझ देखि डर खाई ,
परै सो सप्त पतारन्ह जाई ।
नव पँवरी बाँकी नव खंडा ,
नवहुँ जो चढ़ै जाइ ब्रह्मंडा ।
कंचन कोट जरे नग सीसा ,
नखतन्ह भरा बीजु अस दीसा ।
लंका चाहि ऊँच गढ़ ताका ,
निरखि न जाइ दिस्टि मन थाका ।
हिअ न समाइ दिस्टि नहिं पहुँचै जानहु ठाढ़ सुमेरु ।
कहँ लगि कहौं उँचाई ताकरि कहँ लगि बरनौ फेस ॥

ध्यान से पढ़ें और फिर कहें कि [३९] को उक्त न्याय से 'प्रक्षिप्त' क्यों न मान लिया जाय। उसे छोड़ कर पढ़ें और देखें कि उसके बिना वस्तु-विन्यास में कमी क्या रह गई। अच्छा होगा, तुलना के लिए यहीं देखलें [३७] को भी—

पुनि देखिअ सिंघल की हाटा,
नवौ निद्धि लछिमी सब बाटा ।
कनक हाट सब कुँहकुँह लीपी,
बैठ महाजन सिंघल दीपी ।
रचे हँथौड़ा रूपइ ढारी,
चित्र कटाउ अनेग सँवारी ।
रतन पदारथ मानिक मोती,
हीर पँवार सो अनबन जोती ।
सोन रूप सब भएउ पसारा,
धवलसिरी पोतहिं घर बारा ।
औ कपूर बेना कस्तूरी ,
चंदन अगर रहा भरिपूरी ।
जेइँ न हाट एहि लीन्ह बेसाहा ,
ताकहँ आन हाट किन लाहा ।
कोई करै बेसाहना काहू केर बिकाइ ।
कोई चला लाभ सौं कोई मूर गवाँइ ॥

इतना ही नहीं, इसके आधार पर [३९] को प्रक्षिप्त कहने को एक और भी प्रमाण मिल जाता है कि जब 'कनक हाट' का वर्णन एक ही दोहा वा 'छन्द' में हो गया तब भला कवि कभी 'सिंगारहाट' का वर्णन दो में कर सकता है? किन्तु क्या यह ठीक भी होगा? निदान हमारा कहना है कि डा० गुप्त की 'पाठ-निर्णय-विधि' ठीक नहीं और फलतः डा० धीरेन्द्र वर्मा की 'आशा' दुराशा मात्र है। जो कोई डा० गुप्त की भारी-भरकम भूमिका का पाठ करेगा यही कहेगा कि इस 'पवाँरे' की आवश्यकता क्या? पन्नों का काम पंक्तियों में हो सकता था न? किन्तु नहीं। उसका तो लक्ष्य ही कुछ और था। इसी से तो 'पद्मावत' के साथ उन ग्रंथों को भी समेटा गया है जिनका शास्त्रीय संपादन क्या, ठीक पता भी डा० गुप्त को नहीं। प्रथम 'प्रक्षिप्त' की लीला आप के सामने है और आप के आगे ही है 'घालि गिउ' की 'पहेली' भी। फिर उत्तरप्रदेश की 'एकेडेमी' के मंत्री तथा कोषाध्यक्ष की आशा क्या? हिन्दी का दुर्दैव ठहरा। नहीं तो काम भी कुछ और ही होता—ठोस शास्त्रीय !

—चन्द्रबली पांडे

मंगलकरण, लंका,
बनारस

तीन पूर्वी यूरोप के क़ैदी क़ैदखाने की काली कोठरी में बैठे बातें कर रहे थे। पहले ने कहा—"मैं क्ष—के पक्ष में था इसलिए मुझे जेल में डाल दिया गया।

दूसरे ने कहा—"मुझे इसलिए क्योंकि मैं क्ष—का विरोधी था।

तीसरे ने रुक कर कहा—"मैं क्ष—हूँ।"

—हैरल्ड ट्रिब्यून

मानसोल्लास

हैदराबाद अर्थात् भाग्यनगर राज्य में कल्याण-गुलबर्गा महाराष्ट्र के उत्तरीय चालुक्य सम्राटों की प्रसिद्ध राजधानी थी, जो द्वितीय कल्याण-बम्बई से भिन्न है। कल्याण नामक दो विभिन्न स्थानों की नाईं महाराष्ट्र में दो चालुक्य वंश भी हो गए हैं। प्रथम चालुक्य राजवंश की राजधानी बदामी थी (सन् ५००-७००)। इसके उपरान्त द्वितीय (उत्तरीय) चालुक्य वंश ने पहले तो मान्यखेट को ही अपनी राजधानी बनाई (९९३-११५७) किन्तु इसके पश्चात् प्रथम सोमेश्वर ने उक्त कथित कल्याणी में अपना राजपाट स्थापित किया (१०४०)। उन्हीं सोमेश्वर के प्रपौत्र सम्राट् विक्रम का पूज्यपाद सरस्वती-उपासक श्री महावीरप्रसाद जी द्विवेदी के प्रसिद्ध समालोचनात्मक ग्रन्थ 'विक्रमांकदेव चरित चर्चा' के द्वारा हिन्दी पाठकों को विशेष परिचय हो चुका है। उनके राजकवि महापण्डित बिल्हण (काश्मीर ग्र) ने कल्याणी नगर के हर्म्य प्रासाद, चंदनचर्चित स्त्रियों के परिपुष्ट स्तन, जलाशय, नगर तट (वप्र), स्फटिकवत् भूमि, रेशमी ध्वज, उच्च सौध आदि का बड़ा ही मनोहारी वर्णन किया है। उनके दूसरे दरबारी पण्डित याज्ञवल्क्य स्मृति-टीका-मिताक्षराकार विज्ञानेश्वर ने तो यहाँ तक लिखा है :

नासीऽस्ति भविष्यति क्षितितले, कल्याणकल्पं पुरम्,
नो दृष्टःश्रुत एव वा क्षितिपतिः श्री विक्रमार्कोपम।

किन्तु वह 'सा रम्या नगरी' अब तो एक छोटे से ग्राम के ही रूप में दिखाई देती है। वह रेलवे स्टेशन से परे एक एकांत स्थान है। गुलबर्गा और बिदर तक रेल यात्रा करने के अनन्तर सड़क से वह गुलबर्गा (कलबुर्गा) से ६० मील है। उसी मार्ग पर स्थित हिन्दु मुसल्मान पूजित संत प्रवाह माणिक प्रभु के हुमणाबाद ग्राम से वह २० मील है। अब तो कल्याणी में महाराष्ट्र संत कवि शिवराम स्वामी तथा सदानन्द जी के मठ, लिंगायत पन्थ के स्थापक का देहरा, टूटा फूटा प्राचीन दुर्ग और शिल्प के कुछ नमूने तथा मुस्लमान जागीरदार के आधिपत्य के कारण कब्रें और मसजिदों का ही बाहुल्य है। कालाय तस्मै नमः !!!

हाँ तो, क्षणिक विषयान्तर के लिए क्षमा याचना के साथ ही हमारे वर्णित विषय तथा उसके नायक के वंश परिचय सम्बन्धी भी दो चार बातें सुन लीजिए। चालुक्य वंश संस्थापक तैलप का नाम हिन्दी संसार में 'कहाँ राजा भोज, कहाँ गांगली तेलन' (गांगेय तैलप)* इस उक्ति के द्वारा सर्वतोप्रसिद्ध है। धार के यशस्वी परमार राजा "गते मुंजे यशः पुंजे निरालंबा सरस्वती" जैसी यथार्थ बिरुदावलि-युक्त मुञ्जदेव को तैलपराज चालुक्य ने अपने मांडलिक देवगिरि के अधिपति यादवराज की सहायता से युद्ध में हरा कर कैद कर लिया था; किन्तु प्रसिद्ध गुर्जर साहित्यक श्री कन्हैयालाल मुंशी द्वारा बन्दीगृह में ही तैलप भगिनी मृणालिनी के प्राणयाराधन की कथा के सम्बन्ध में एक उपन्यास लिखने और उसका चलचित्र भी बन जाने के कारण वह घटना अधिक जनप्रिय बन गई है। तैलप के अनन्तर उनके पुत्र सत्याश्रय तथा भतीजे जय-

---

* यह उक्ति विभिन्न प्रान्तों में विभिन्न रूप में पाई जाती है; किन्तु 'तेलण' (घोंचण-गुजराती) यह शब्द सभी जगह प्रयुक्त है। परमारों के प्रामाणिक इतिहासकार श्रद्धेय स्व. कृ. लेले जी से भी मैंने तत्सम्बन्धी चर्चा की थी। त्रिपुरी के कलचुरी अथवा चेदीवंशीय गांगेयदेव विक्रमादित्य से भोजदेव का युद्ध हुआ जिसमें चेदिराज पराजित हुए थे। भोजराज के सातवें उत्तराधिकारी (१८ वें परमार राजा) अर्जुनवर्य देव के समय की शिला पर अंकित 'पारिजात मंजरी' नामक राजप्रशस्ति रूप लिखी गई नाटिका में 'गांगेय भंगोत्सव' जैसा तो उल्लेख है; किन्तु धार के निकटस्थ तेलन की टेकड़ी (युद्ध-स्थल) तेली की लाट (विजय-स्तम्भ) आदि के मूल कारण के विषय में तो यही कहा जा सकता है कि संभवतः गांगेय देव ने तेलंगाने के राजा को भी साथ लिया हो। तैलंगण कला को तेली का मंदिर बताने की परिपाटी ग्वालियर-दुर्ग स्थित विशेष के लिए प्रचलित है। तैलप तथा भोज के समय में भी अंतर है; अत एव उक्त अनुमान के ही कारण 'तेली' शब्द क्त हुआ हो, तभी उक्ति सार्थक होगी। गांगेयदेव स्थापित गांगलेश्वर महादेव का भी हम शोध लगा चुके हैं।—ले०

सिंह (१०१५) राज्यासीन हुए। धाराधीश भोज परमार ने अपने पितृव्य मुंज के अपमान का बदला लेने के लिए कलचुरी के राजा गांगेय की सहायता से चालुक्य राज्य पर चढ़ाई की, किन्तु अंत में भोज को भाग जाना पड़ा। उन्हीं जयसिंह के पुत्र सोमेश्वर के पुत्र से परमार भोज की मृत्यु के अनन्तर कलचुरी और चालुक्यों (गुर्जर) के द्वारा राजधानी धारा हस्तगत कर लेने के कारण, भोजपुत्र जयसिंह ने सहायता चाही। तदनुसार उनकी सहायता से परमार पुनश्च धार में प्रतिष्ठित हुए। उक्त घटनाएँ ही कथित हिन्दी कहावत में अंकित हुई हैं, जिसका विस्तृत परिचय फिर कभी! सोमेश्वर के पुत्र ही महाकवि बिल्हण के आश्रयदाता विक्रम थे, जो महान् गुणज्ञ के नाते अमर हैं।

हमारे चरित नायक तृतीय सोमेश्वर देव चालुक्य सर्वज्ञान भूप (११२६-११३८) शान्तिप्रिय, पिता की नाईं रसिक तथा विद्वान् और गुणियों के आश्रयदाता थे। वर्णित विषय 'मानसोल्लास' अर्थात् 'अभिलषितार्थ चिन्तामणि' नामक तत्कालीन इतिहास तथा विविध ज्ञान परिचायक विश्वज्ञान कोष के वे ही रचयिता कहे जाते हैं। पुण्यश्लोक स्वर्गीय गुण गरिमायुक्त बड़ोदा नरेश श्रीमन्न सयाजीराव गायकवाड़ महाराज की उदारता से गायकवाड़ प्राच्य ग्रन्थमाला में उक्त ग्रन्थ तीन बृहत् खण्डों में विद्वद्वर ग. कृ. श्री गोंदेकर जी के संपादकत्व में प्रकाशित हो चुका है। उसमें राजदरबार तथा राजगृह व्यवस्था सम्बन्धी सौ विभिन्न विषयों का सुन्दर वर्णन किया गया है। अनेक ग्रन्थों पर आधारित उक्त ज्ञानकोष के पाँच परिच्छेदों (१) राज्य प्राप्ति के उपाय (२) राज्य रक्षा के साधन (३) राज्योपभोग (४) मनोविनोद तथा (५) क्रीडाओं का विवेचन किया गया है। ग्रन्थ अनुष्टुप् छन्द में लिखा गया है। डेक्कन कॉलेज, पूना के प्राचीन ग्रन्थ संग्रह में जो अब भाण्डारकर प्राच्य संग्रहालय के आधीन है, उसकी एक सम्पूर्ण तथा दूसरी अधूरी प्रति वर्तमान है। तजावर के अपूर्व प्राच्य संग्रह में भी उसकी प्रतियाँ हैं। भारतीय संस्कृति के समाज, राज्य, भूगोल, ज्योतिष, किले, सेना, वस्त्र, वाद्य, शस्त्र, मनोरंजन, खेल, छन्द शास्त्र, संगीत, साहित्य, घोड़े, हाथी, आदि सौ–सवा सौ विषययुक्त इस 'अक़लनामा' ग्रन्थ का ऐतिहासिक महत्व देखते ही बनता है। हिन्दी साहित्य के इतिहास के लिए तो इसका विशेष महत्व है। 'मिश्रबन्धु–विनोद' में श्रद्धेय स्व. श्री गणेश बिहारी मिश्र जी के साग्रह अनुरोध से मैंने मध्यभारत, बुन्देलखण्ड, महाराष्ट्र, गुजरात आदि प्रान्तों के अज्ञात हिन्दी कवियों तथा उनके अप्रकाशित ग्रन्थों की लगभग ६०० टिप्पणियाँ समन्वित कराईं, जिनमें सर्वज्ञ भूप सोमेश्वर के कुछ पूर्वकालीन प्राचीन हिन्दी पद्यों का भी उल्लेख किया था (देखिए 'विनोद' तृतीय संस्करण पृ. १०२, २०३); किन्तु "हिन्दी साहित्य की भूमिका"–कार का उस ओर ध्यान ही नहीं गया! साहित्यरथी पूज्य आचार्य श्यामसुन्दरदास जी के 'हिन्दी भाषा' ग्रन्थ के लिए भी यह सामग्री प्रेषित की गई थी। प्राचीन ग्रन्थ के आधार पर भाषाशास्त्र, व्युत्पत्ति तथा धातु की छानबीन से अभी तो हिन्दी का जन्मकाल भी निश्चित होना है। "अपभ्रंश काव्यत्रय" के परिशिष्ट 'कुवलय कथामाला' तथा पण्डित प्रवर (सन् ७७८) सांकृत्यायन जी द्वारा तिब्बत से संशोधित नाथ संप्रदाय की बहुमूल्य प्राचीन हिन्दी रचना की जांच-परख भी तो अभी कहाँ हुई है? महाराष्ट्र, लाट, कर्नाटक जैसे सुदूर प्रान्तों में उस प्राचीन काल में हिन्दी का प्रचार होना, उसकी राष्ट्रभाषा सम्मान से मण्डित होने की बात क्या गौरवास्पद नहीं है?

अब 'मानसोल्लास' के विषयों का संक्षेप में विवेचन सुनिए। पुरातत्व भूषण इतिहासाचार्य महाशास्त्री वि. का. राजवाडे जी ने अप्रैल १९०७ में कोल्हापुर से आचार्य शिक्षा शास्त्री वीजापुरकर जी द्वारा सम्पादित 'विश्ववृत्त' नामक प्रौढ़ मराठी मासिक में सब से पहले तद्विषयक चर्चा की थी। स्वराज्य-मन्त्र-द्रष्टा लोकमान्य तिलक भी उस प्रतिष्ठित मासिक में लिखते थे। अब तो मूल ग्रन्थ मी उपलब्ध है। उक्त ज्ञानकोष में भारत के निम्न देश तथा स्थलों का वर्णन पाया जाता है:

(१) सिंहल (२) वारवाटक (३) कलिंग (४) कोशल (५) हिमालय (६) मन्तगाद्रि (७) पौंड्रक (८) सुराष्ट्र (९) वैरागद (१०) सोपार (११) पारसीक (Persian gulf) (१२) बर्बर (African coast) (१३) कालपुर (१४) आन्ध्र (१५) तुबर (१६) रावणगंगा (१७) सिन्ध देश (१८) विन्ध्य पर्वत (१९) तापीतट (२०) यवन देश (२१) कन्नौज (२२) पोदालपुर (२३) चारपल्ली (२४) नागपतन (२५) चोल देश

(२६) अल्लिकापुर (२७) अणिलावाड (२८) मूलस्थान (२९) तोंडीदेश (३०) पंचपट्टण (३१) चीन (३२) वेंगी देश (२३) भावापट्टण (३४) अपरान्त

निम्न आठ प्रकार के दुर्ग बताये हैं :

(१) जल दुर्ग (२) गिरि दुर्ग (३) पाषाण दुर्ग (४) इष्टका दुर्ग (५) मृत्तिका दुर्ग (६) वन दुर्ग (७) मरु दुर्ग (८) नर दुर्ग।

सेना भी आठ प्रकार की बताई गई है :

(१) मौल [सरदारों] (२) भृत्य [सेवक] (३) मैत्र [मित्र राज्य] (४) श्वैण [पौर] (५) आटविक [जंगली निषाद और म्लेच्छ] (६) अमित्र [शत्रुसेना] (७) द्रव्याश्वनि [किराए की] (८) फालगु [पिडारों की]

तत्कालीन शस्त्रों के नाम निम्न बताए गए हैं : (१) खचर्य (ढ़ाल) (२) कुन्त (भाला) (३) सेल्लचक्र (सिरखों का चक्र) (४) क्षुरिका (छुरी) (५) यंत्रयुक्तायुध (बन्दूक) (६) पाषाणपाति यन्त्र (Roman cata) (७) खड्ग (तलवार) (८) धनुष–बाण (९) शक्ति (गुप्ती) (१०) तोमर (११) निखीश (१२) मुद्गर (१३) प्राश [छोटा भाला] (१४) पट्टीश (१५) अग्नितैलासिक्त बाण (१६) चक्र (१७) पाश (१८) परशु (१९) नदा (२०) शूल (२१) लघी।

उस समय के राज्ययन्त्र का संगठन निम्न था :

(१) राजा (२) अष्टप्रधान (३) सामन्त (४) महामण्डलेश्वर (५) दशग्रामाधिपति (६) ग्रामाधिपति।

प्रजा से एक दशांश (दसवाँ) कर लिया जाता था। तत्कालीन वाद्यों के नाम :

(१) थेरी (२) तूर्य (३) कालहा (४) शंख (५) महाभेरी (६) परह (७) दुन्दुभि (८) डिम (९) जय तूर्य (१०) बहुटका (११) हुडुका (१२) ढक्का (१३) धड़स (१४) करडा (१५) मर्द्दला (१६) त्रिवक्ति (१७) डमरु (१८) भुजा (१९) कुड़मा (२०) सेकुमा (२१) अश्व घडस (२२) टेकली (२३) डक्काडस (२४) निःसाण (२५) तबला (२६) ताल (२७) घंटा (२८) जय घंटिका (२९) वीणा (३०) तन्त्री (३१) कास्पताल।

व्यायाम गृह को 'आखाड़क' फ़सल तैयार करने के स्थान को 'खल' (खला), हाथी के पैर की जंजीर को 'अंडुक' कहा जाता था। सिर पर बांधने की पट्टी तथा बैठक की गद्दी बनाने का वर्णन भी लिखा गया है। ताल और रागों के वर्णन के साथ ही कानड़ी, हिन्दी, मराठी, तथा बंगाली भाषा के कुछ पद्य दिए गए हैं, जिनसे उन भाषाओं के तत्कालीन प्राचीन स्वरूप का भलीभाँति ज्ञान हो सकता है, किन्तु हिन्दी के मूल रूप की संस्कृत प्राकृत, अर्ध मागधी, शौरसेनी तथा समकालीन अन्य प्रान्तीय भाषाओं के आधार पर जांच-परख करने वाला व्युत्पत्ति शास्त्र का परखरने वाला भाषाशास्त्री हिन्दी में अभी उत्पन्न होना है। हमारे साहित्य के इतिहास का काल विभाजन भी तो अभी तक यथावत् नहीं हो सका है! अस्तु।

'मानसोल्लास' के लाटी भाषा के निम्न पदों को देखिए और हिन्दी से उसकी तुलना कीजिए :

[१]

नन्द गोकुल जायो कन्हु जो गोवी जाणे।
पडिऐली रे विना म्हणि हक्कारिया कन्हौ॥
भरड़ा सो आम्हणा चितिया देऊ बुधरुपण।
जो दाणव पुरां वचअनी वेद (पु) रुवेण॥

[२]

गोरी यनण हजो रखै जो कंस हरखप कालु सो
अम्हण दुरि अईवत रठ कन्हु भराड़ा बालु

उक्त ग्रन्थ में उल्लेखित हिन्दी पद्यों की छानबीन यदि संस्कृतज्ञ हिन्दी उपासक करने का प्रयास करें तो हम हिन्दी के जन्मकाल का यथावत् पता चला सकेंगे जिसकी अतीव आवश्यकता है। ग्रन्थ का अधिक परिचय, विशेषकर हिन्दी का परिचय फिर कभी कराने का प्रयत्न किया जाएगा।

—भास्कर रामचन्द्र भालेराव

रामसिंह बाग,
लश्कर

सुकरात का देश

प्रायः उन सारे देशों की स्थिति तबाह है या अभी हाल तक तबाह रही है जिन्होंने कभी अतीत में संसार का नेतृत्व किया था या जो आज अपने अतीत के नाम पर जिन्दा रहने या क़समें खाने के प्रयास करते हैं। इनमें शायद ग्रीस के बराबर गया बीता राष्ट्र आज दूसरा नहीं है। अगर उससे कोई इस क्षेत्र में स्पर्धा कर सकता है तो वह केवल प्राचीन रोम का वर्तमान स्थानापन्न इटली है।

ग्रीस और इटली की राजनीति और संस्कृति दोनों ने नैतिकता का निम्नतम-तल छू लिया है। कवूर, मेज़िनी और गैरीबाल्डी ने इटली का पुनर्निर्माण किया, उसके बिखरे तन्तुओं को एकत्र कर उन्होंने उसकी वर्तमान आकृति खड़ी की, ट्रेड यूनियन आन्दोलन जनता के सम्पर्क से मुसोलिनी के आतंकवाद के पहले की दशाब्दि में खूब फूला फला और लगा कि रूस की ही भाँति इटली में भी मजूर और सर्वहारा जनता का राज खड़ा हो जायगा परन्तु सोशलिस्ट पार्टी और मुसोलिनी की फासिस्ती क्रियात्मकता ने वह सम्भावना कुछ काल के लिए दबा दी। सोशलिस्ट दल का तो इतना दबदबा बढ़ा कि उन्होंने इतालियन सरकार को बिल्कुल बेकार कर दिया और यदि कोई दूसरा राजनीतिक दल होता तो स्वाभाविक ही उसका पहला काम अपनी सरकार बनाना होता। मगर वह दल उत्तरदायित्व का भार न ले सका और नतीजा यह हुआ कि वहाँ फासिस्ती सरकार बनी। एक ज़माने से पहले, महासमर के बाद से ही, इटली में भयानक निष्क्रियता का दबदबा हो गया था और कुछ लोगों ने कला और साहित्य दोनों में 'फ्यूचरिस्ट' आन्दोलन का आरम्भ किया जो निरन्तर जोर पकड़ता गया और अन्त में मुसोलिनी के फासिस्ती रूप में संसार में खड़ा हुआ। फासिस्त दल का इटली में उत्कर्ष वहाँ की सोशलिस्ट पार्टी की निष्क्रियता का ही परिणाम था। स्वयं मुसोलिनी पहले सोशलिस्ट और एक सोशलिस्ट पत्र का सम्पादक था। उसने उस निष्क्रियता के ऊपर उठ 'फ्यूचरिस्ट' वातावरण में फासिस्तवाद की बुनियाद डाली और रोम की ओर उसने सहसा मार्च किया। फिर रोम और इटली पर कब्ज़ा कर उसने उस मानवता विरोधी फासिस्त सरकार का निर्माण किया जो जर्मन नात्सीवाद के साथ ही अन्त में धराशायी हुई।

फासिस्तवाद इटली में सर्वथा मर चुका है, यह कहना गलत होगा। हाँ, उसने अपना चेहरा निश्चय बदल लिया है और उसके अनेक अनेक नायक 'क्रिश्चियन डेमोक्रेट' के परिवार में आज भी देखे जा सकते हैं। आज की सरकार जिसने अमरीका डालरों के जरिए अपना आवश्यक मताधिकार पाया बहुत कुछ उसी फासिस्ती भग्नावशेष पर खड़ी है यद्यपि उसको तथाकथित अमरीकी जनतान्त्रिकता का पिष्टपोषण उपलब्ध होगा।

सांस्कृतिक आकांक्षा, कलात्मक रुचि, साहित्यिक कृतीत्व, नैतिक आचार और राजनीतिक पटुता, सब में इटली आज उतना ही दरिद्र है जितना भौतिक समृद्धि में। देश पिछले युद्ध की मार से चूर चूर हो गया है और सामुहिक या वैयक्तिक नैतिकता आज वहाँ धूल चाट रही है। विशेष कर विदेशी के लिए वहाँ किसी पर विश्वास करना प्रायः असम्भव है। परन्तु यह स्थिति ग्रीस में, जहाँ इटली के प्रति सर्वत्र घृणा का रुख़ है विशेषतः लक्षित होती है।

आज के ग्रीस में इटली की ही भाँति, शायद उससे भी अधिक सब प्रकार की सुरुचि की कमी है। नैतिकता और विश्वास की भी। क्या होटल, क्या दुकान, क्या गिरजाघर सर्वत्र विदेशी को नोच खचोट लेने की प्रवृत्ति है। चीज़ों की क़ीमत इतनी बढ़ गई है कि एथेन्स या दूसरे नगरों में रहना नितान्त कठिन हो गया है। सरकार रोज़ बन बिगड़ रही है; जनता का राज वहाँ होते होते रह गया था। चर्चिल की सरकार ने जन संघर्ष का दम गोलों से तोड़ दिया था और उस देश पर अपनी राजसत्ताक सरकार लाद दी थी।

गाँव संत्रस्त हैं, नगर प्रायः खण्डहर। पिछले युद्ध में जर्मनी के नात्सियों और इटली के फासिस्तों ने

उसकी इन्सानियत को कुचल डाला था, अंग्रेज़ी आश्वासनों के बावजूद भी । फलतः आज का साधारण ग्रीक नात्सी और फासिस्तवाद की ओर पीठ करके भी अंग्रेज़ी लोकाचार में विश्वास नहीं करता । वस्तुतः किसी भी प्रतिगामी अथवा प्रगतिशील आचरण में आज ग्रीस की निष्ठा भंग हो चुकी है । उसमें न किसी प्रकार का उत्साह ,है न अपना भविष्य निर्माण करने की आशा । गाँवमें किसान नंगे पाँव, फटे चिथड़े पहने, खेतों में फिरते हैं और देखनेवालों को आश्चर्य होता है कि क्या वे उस प्राचीन कर्मठ ग्रीक राष्ट्रीयता के वंशधर हैं जिसकी दाय पर यूरोप और पश्चिमी सभ्यता को आज भी गर्व है !

प्राचीन ग्रीस । प्राचीन ग्रीस दर्शन, स्वतन्त्रता और शक्ति का परिचायक माना जाता है । ग्रीक नगर राज्यों को बराबर सदियों नागरिक स्वतन्त्रता का आदि संस्थापक और प्रतीक कहा गया है यद्यपि ऐसा कहने वालों ने उस असंख्य मानव समुदाय की अवहेलना कर दी जो एथेन्स आदि के प्राचीन श्रीमानों की शालीनता की रक्षा के लिए ही जीवित रखा जाता था । ग्रीस की प्राचीन संस्कृति श्रम की घृणा पर अवलम्बित थी जहाँ पत्नी पर्दे में थी, रखेलियाँ दर्शनिकों की गोद में और जहाँ डेमोस्थेनीज़, पेरिक्लीज़, सुकरात, अफ़लातून और अरस्तू के आँगन में भी गुलाम के बगैर काम न चलता था । जहाँ गुलाम नौकर था, रसोइया था, दार्शनिकों के बच्चों का अध्यापक था, खेतों का मजूर था और नगर का संतरी-सिपाही । उस देश की प्राचीन परम्परा जिसका आज के पश्चिमी तथाकथित जनतन्त्रों में इतना बोलबाला है, गुलामी की नींव पर टिकी थी ।

आज का ग्रीस जो सब प्रकार से भू लुंठित है, अपने उसी प्राचीन आदर्श की ओर दूर से देखता है । परन्तु भाग्यवश यह निश्चय है कि वह उसका दूरस्थ स्वप्नमात्र सिद्ध होगा । आज का ग्रीस कंगाल है, कमज़ोर है और सर्वथा निष्क्रिय है । अमरीकी सरकार का आश्वासन उसे चारों ओर से घेरे हुए है और वह इंग्लैण्ड के दायित्व से निकल कर अमेरिका के दायित्व में जा गिरा है । जनसत्ताक प्रवृत्तियों का नेतृत्व जिस दल के हाथ में था उससे लगातार विदेशों की देशी कठपुतलियों ने लड़ाई लड़ी और अब उस देश की वर्तमान राजनीति में अपना कोई स्थान नहीं । एक अनिश्चित, अनाश्वस्थ, कृत्रिम, प्रतिगामी नेतृत्वाभास सेना के हाथ में है जिसके कुछ जनरल ग्रीक हैं परन्तु अधिकतर जो सेना अंग्रेज़ अफ़सरों और अमरीकी डालर द्वारा संचालित ।

एथेन्स नगर के बीचो बीच प्राचीन एक्रोपोलिस का वीरान मस्तक ऊँचाई से नगर की ओर देखता है । सदियों उसने उस नगर का अधोधः पतन देखा है पर आज की उसकी स्थिति एक्रोपोलिस के उस भग्नावशेष में भी एक कम्पन उत्पन्न कर देती है । माराथान और थर्मापिली के पास के फैले मैदान जिनमें प्राचीन ग्रीकों के स्वराज्य प्रेम और पराक्रम की स्मृति सोती है, स्वाभाविक ही एथन्स की वर्तमान निष्क्रियता से उदासीन है ।

विदेशी, ऐसा विदेशी पर्यटक, जिसे प्राचीन ग्रीस की महत्ता से तनिक भी सन्तोष है फिर फिर कर ग्रीस के इतिहास की ओर देखता है और उसकी वर्तमान दयनीय स्थिति की ओर। और सोचने लगता है कि क्या संसार में कोई दूसरा भी ऐसा देश है जहाँ समय ने ऐसा पलटा लिया है जैसा इस अफ़लातून और अरस्तू के देश में ?

ईरान की बढ़ती हुई सीमाओं में छठी शती ईस्वी पूर्व में जब अन्य एशिया के पश्चिमी और यूरोप के पूर्वी देश समा गए थे तब ग्रीस के नन्हें राष्ट्रों ने उसे चुनौती दी थी, डेन्यूब से लौटी सेनाओं को अपनी वीरता और राष्ट्र शक्ति से अचरज में डाल दिया था । पर आज का ईरानी आज के ग्रीक से कहीं ऊँचा है, कहीं जागरूक, कहीं प्रगतिशील । ग्रीस यूरोप का राष्ट्र है, पश्चिम की शक्ति का चाहे जितना भी उपेक्षणीय, पर प्रतीक । किन्तु एशिया का कोई देश नहीं जो सतर्कता, नैतिकता और नवजीवन में ग्रीक से ऊँचा न हो । ग्रीस की आज की राजनीति में इंग्लैण्ड और अमेरिका की जो दिलचस्पी है वह उस अभागे देश के कल्याण के लिए नहीं, वह अपने स्वार्थ के लिए है । १९ वीं सदी में कुछ विवेकशील स्वतन्त्रता प्रिय अंग्रेज़ों ने तुर्की के विरुद्ध ग्रीस के पक्ष में आवाज़ उठाई थी, असाधारण रोमान्टिक बायरन ने अपना सर्वस्व उसी निमित्त उत्सर्ग भी कर दिया था परन्तु जहाँ एक ओर इंग्लैण्ड, ग्रीस को तुर्की साम्राज्य के चंगुल से छुड़ाने का दम भरता था वहाँ वह रूस का तुर्की के विरुद्ध बढ़ना 'कॉजेज़ बेली' (लड़ाई के कारण) भी ऐलान करता था !

आश्चर्य की बात है कि १९ वीं सदी में ग्रीस जितना सजग था उतना आज नहीं। तब कांग्रेस के भारतीय आन्दोलन की भाँति ग्रीस अपनी स्वतन्त्रता के स्वप्न देख रहा था। वह गुलाम था; वह एक ज़माने से गुलाम रहा था और उसकी प्रजा तुर्की साम्राज्य की चोटों से मरणोन्मुख हो चली थी। उसके प्रयत्नों में इंग्लैण्ड ने—इंग्लैण्ड की सरकार ने नहीं, उसकी कतिपय जनता ने—सहयोग का आश्वासन दिया। परन्तु शीघ्र उस आश्वासन ने ग्रीस के प्राचीन भग्नावशेषों की लूट का रूप धारण किया और जैसे ही 'एल्गिन मार्बल्स' की पट्टिकाएँ एक्रापुलिस की ऊँचाइयों से उतर कर ब्रिटिश म्यूजियम में लग गईं, इंग्लैण्ड का रुख़ बदल गया, उसके लिए 'पूर्वीय-प्रश्न' (इस्टर्न-क्वैश्चन) का सन्तुलन अधिक आवश्यक हो गया। ग्रीस सरगर्मी से फिर भी अपनी आज़ादी की लड़ाई लड़ता रहा प्रायः अकेले, यद्यपि यूरोप के अनेक स्वतन्त्रता-प्रेमी, अनेक प्राचीन ग्रीक के प्रेमी उसकी लड़ाई में सक्रिय योग देते रहे। वस्तुतः यह लड़ाई यूरोप की ज़मीन पर उस काल अकेली न थी। फ्रान्सीसी राज्यक्रान्ति ने, और उसके पहले अमेरिकन स्वातन्त्र्य युद्ध ने, और उसके भी पहले, अट्ठारहवीं सदी के प्रगतिशील और क्रान्तिकारी विचारकों ने संसार के शोषकों के सामने एक चुनौती फेंक दी थी। नेपोलियन ने जब फ्रेन्च राज्यक्रान्ति की आज़ाद प्रवृत्तियों पर अपना फौलादी शिकंजा रखना चाहा तब स्वयं उसे भी मुँह की खानी पड़ी थी और उसके बाद ही शीघ्र उस मेटरनिक को भी जिसने आस्ट्रिया के साम्राज्यवाद के अनुकूल वियना काँग्रेस की शर्तें सँवारी थीं। और तब जर्मनी में हालैण्ड और बेल्जियम में, स्पेन और पुर्तगाल में, फ्रान्स और आस्ट्रिया में, बोसनिया, हर्जेगोविना में, रूमानिया-बल्गेरिया में, चेकोस्लोवाकिया-हँगरी में, रूस और पोलेण्ड में, इटली और ग्रीस में सर्वत्र आज़ादी की एक लहर दौड़ गई थी। इनमें कुछ देशों की आज़ादी का गला अपने ही देशवाले घोट रहे थे, कुछ के विदेशी और दोनों के खिलाफ़ जनसत्ताक आन्दोलन सर्वत्र उठ खड़े हुए। ग्रीस राष्ट्रों के इस पिछले वर्ग में था जिस पर विदेशी शक्ति की सत्ता थी। ग्रीस लड़ा और खूब लड़ा; ऊँचे, ताक़तवर, क्रूर तुर्क सन्तरियों के सामने से जब ग्रीक युवक कमर पर हाथ रखे लापरवाही से राष्ट्रीय गान की सीटी बजाता गुज़रता तब इसकी परवाह न करता कि उसकी पीठ गोली से छिदती है या तुर्की संगीन से।

नतीजा वही हुआ जो होना था। तुर्की के सड़े साम्राज्य की जड़ें कभी से हिल चुकी थीं अब उसका विशाल आकार सहसा बैठ गया और ग्रीस स्वतन्त्र हो गया। सन् १८३० में ग्रीस ने जिस स्वतन्त्रता के 'प्रोटोकल' (सन्धि) पर हस्ताक्षर किए वह उस काल के सभी आज़ादी की लड़ाई लड़नेवाले बन्धे राष्ट्रों के लिए एक उदाहरण सिद्ध हुआ। परन्तु ग्रीस आज उस प्रोटोकल के भी पीछे है। १८३० के पहले के ग्रीस के बराबर खड़ा है यद्यपि तुर्की साम्राज्य के विरुद्ध जिस तेवर से वह प्रेरणा पाता था वह भी आज उसे उपलब्ध नहीं। तब का तुर्की साम्राज्य ग्रीस पर हावी होकर भी और इसी कारण उसको अपने पैरों खड़े करने को प्रेरित और मजबूत करता था, आज के ग्रीस के विजेता इंग्लैण्ड और अमेरिका उसे मूढ़ बना कर उसको चूस रहे हैं और ग्रीस मैस्मेरिज़्म के शिकार की भाँति 'गिरा अनयन नयन बिनु बानी' के अनुरूप उनकी ओर अपने रक्षक की भाँति देख रहा है।

एशिया के राष्ट्र जो कभी महान् थे और जो अपनी महत्ता खोकर मोह निद्रा में सोए आज जाग उठे हैं। उनकी निष्ठा, उनकी सक्रियता और उनके स्वप्न आज कर्मठ रूप धारण कर रहे हैं; उनकी ज़मीन पर साम्राज्यवाद की चूलें हिल गई हैं और वह वहाँ अपने अन्तिम पंजों पर खड़ा है। पर ग्रीस नए सिरे से साम्राज्यवाद का शिकार हो रहा है। एक ज़माना था जब भूमध्य सागर के उत्तर और दक्खिन के तटों में बड़ा अन्तर था, गुणतः अन्तर था। उत्तर का तट प्रगति, प्रकाश और आज़ादी का प्रतीक था; दक्षिण का शोषण, अन्धकार और गुलामी का। आज स्थिति बदल गई है और जहाँ ग्रीस और इटली आज निद्राग्रस्त हैं वहाँ मिस्र नई प्रेरणाओं के आश्वासन से अपनी नई लड़ाई लड़ने लगा है। साम्राज्यवाद के अन्तिम क्षणों को भी वह दूभर बनाए दे रहा है। शीघ्र उसकी ज़मीन से अंग्रेज़ी सत्ता की बची जड़ें भी उखड़ जाएँगी।

ग्रीस की ज़मीन आज उस सत्ता के पनपने के लिए विशेष उर्वरा सिद्ध हो रही है। उसके पत्र इंग्लैण्ड

और अमरीका के सौजन्य और कृपा का बखान करते नहीं थकते, ट्रूमैन-योजना और अमरीकन डालर आज उसकी आँखों में चमक रहे हैं और वह निरन्तर अपनापा उनके बदले खोता जा रहा है । पुनर्निर्माण के लिए उसे अमरीका से काफ़ी डालर मिले हैं परन्तु इन डालरों का भी उपयोग देश को प्रायः उपलब्ध नहीं क्योंकि वह उन हाथों में है जो जनता के कल्याण से दूर न्यूयार्क और पेरिस की घिनौनी गलियों में डालर उलीच रहे हैं। अभी हाल ग्रीस में हलकी आवाज़ उठी थी कि उन डालरों का क्या हुआ जिनको किसी ने एक योजना के नाम पर लिया था और जो व्यक्तिगत व्यवसाय में कहीं खर्च होते देखे गए थे ? यह आवाज़ तब और ऊँची उठी जब ग्रीस के किंग जार्ज के नौका विहार के लिए लाखों डालरों में एक नाव खरीदी गई थी । उसका उत्तर किसी ने न दिया, अमरीका ने भी नहीं यद्यपि अचेसन की सरकार ने छानबीन के नाम पर कुछ अनुकूल टिप्पणियाँ छाप दीं ।

वही आवाज़ जो कभी सन् ४६-४७ में काफ़ी ज़ोरदार थी और जो इधर नितान्त कमज़ोर पड़ गई थी और जो अब भी बहुत मज़बूत नहीं फिर भी जो आवाज़ है और हलकी आवाज़ है निरन्तर दम पकड़ती जा रही है । वह आवाज़ गाँव की झोपड़ियों से और नगरों के कारखानों से उठ रही है, जो दब नहीं सकती और जो ग्रीस का कायाकल्प करके ही रहेगी ।

इलाहाबाद

—भगवतशरण उपाध्याय

विभिन्नता में एकता

भारत का सौन्दर्य उसके निवासियों की ज़ीवन-व्यवहार की विभिन्नता में अभिलक्षित होता है । विभिन्न भाषा, विभिन्न जीवन-क्रम और विभिन्न अवस्थाओं में जीवन-यापन—सब बातें ऐसी हैं जिन्होंने भारतवर्ष को एक अपूर्व सौन्दर्य प्रदान किया है । यदि हमारे देश में विविधता न होती—तो हमारा जीवन नीरस बन जाता । हमें अपने देश की विभिन्नता को समझने का प्रयत्न करना चाहिए । यदि कोई यह समझता है कि सर्वत्र एकता होनी चाहिए—तो वह ग़लती पर है । अवश्यकता इस बात की है कि हमारे देश में इस विभिन्नता में अधारभूत एकता स्थापित करनी चाहिए ।……
हमारी एकता राजनैतिक नहीं किन्तु हृदयों की एकता होनी चाहिए ।…

—जवाहरलाल

(एक व्याख्यान से)

प्रशासन जो कुछ तुम्हें देता है वह तुमसे वापस भी ले सकता है और जब प्रशासन वापस लेने लगता है तो उससे अधिक ले लेता है जितना कि उसने तुम्हें दिया था ।

—एक अमेरिकन श्रमकार नेता

कुण्डेश्वर में एक सप्ताह

विंध्यप्रदेश भारतीय संघ के राज्यों में नवीनतम है। बुंदेलखंड और बघेलखंड के देशी राज्य मिलाकर इस प्रदेश की स्थापना की गई है।

ललितपुर उत्तरप्रदेश के झाँसी जिले की तहसील है। यहाँ से ओरछा राज्य की राजधानी टीकमगढ़ के मार्ग में चार मील इधर एक छोटी सी पहाड़ी नदी जमड़ार है। इस नदी को मैंने उसके भरपूर यौवन पर देखा और वह दृश्य मुझे आजीवन याद रहेगा। इस नदी पर एक छोटा सा बाँध बना कर वर्तमान महाराज वीरसिंह जू देव के पितामह ने नदी पर एक कुंड बनवाया। इस कुंड से प्रपात निकल कर एक जलाशय बनता है, जो आगे चलकर पहले जैसी पहाड़ी नदी में परिणत हो जाता है। स्वर्गीय महाराजा ने इस रमणीक स्थान के किनारे विशाल घाट, भवन और मन्दिर बनवा कर कुंडेश्वर के सौन्दर्य में चार चाँद लगा दिये, सड़क के एक ओर उन्होंने घाट, मन्दिर, और भवन बनवाये और दूसरी ओर एक विशाल वाटिका-गृह का निर्माण किया।

स्वर्गीय महाराजा बब्बाजू के नाम से प्रसिद्ध हैं। उनके उत्तराधिकारी वर्तमान महाराजा वीरसिंह जू देव भवन, वाटिका और तालों के निर्माता होते हुए भी साहित्यिकों के संरक्षक रहे हैं और परोक्ष रूप में साहित्य निर्माता भी रहे हैं। उनका 'देव पुरस्कार' हिन्दी जगत् में प्रसिद्ध है। पन्द्रह वर्ष पूर्व से कुण्डेश्वर के भवनों की देखभाल और सदुपयोग बन्धुवर बनारसीदास जी चतुर्वेदी को सुपुर्द करने से उनके संरक्षण में चतुर्वेदी जी जैसे साहित्यिक के नेतृत्व में इतने काल तक कुण्डेश्वर द्विवेदी जी के दौलतपुर की श्रेणी का तीर्थ स्थान रहा है। अनेक भारतीय साहित्यिक पत्रकार-संसार में द्विवेदी जी के इस अनुयायी के समागम में कुण्डेश्वर और विंध्य भूमि के नैसर्गिक सौन्दर्य का आनन्द लेते रहे और इसके साहित्यिक पण्डे का आदर सत्कार स्वीकार करते हुए साहित्य निर्माण करते रहे। मिस मार्जोरी साइक्स नामक एक अंग्रेज महिला को चतुर्वेदी जी के सहयोग से दीनबन्धु ऐण्ड्रूज का जीवन चरित लिखने के लिए यहाँ आना पड़ा।

चतुर्वेदी जी के परिचय का सौभाग्य तो मुझे सन् १९२७ से प्राप्त है जब वे 'विशाल भारत' के संपादक थे। परन्तु साथ साथ एक सप्ताह रह कर आपकी साहित्यिक निधि से पूर्णतया परिचित होने का सौभाग्य मुझे तभी प्राप्त हुआ जब आपने कुण्डेश्वर से विदा होना निश्चय कर लिया था। बात दूसरी से नवीं जुलाई तक की है और दस जुलाई को चतुर्वेदी जी सपरिवार कुण्डेश्वर से विदा हुए।

चतुर्वेदी जी का सेवा क्षेत्र निराला ही रहा है। कई वर्षों तक प्रवासी भारतीयों की 'भारतीय हृदय' के उपनाम से सेवा करते रहे। उनकी सेवाओं और समस्याओं का हिन्दी संसार को परिचय देते रहे। 'विशाल-भारत' के संपादक होकर भी आपने यह सेवा क्षेत्र नहीं छोड़ा। इस सेवा के सिलसिले में चतुर्वेदी जी का अंग्रेज तथा भारतीय साहित्यिकों और राष्ट्रीय नेताओं से संपर्क हुआ। जहाँ एक ओर विश्वकवि रवीन्द्र, महात्मा गान्धी दीनबन्धु ऐण्ड्रूज और श्रीनिवास शास्त्री की श्रेणी के महारथियों से आपका संपर्क हुआ तो जनपद की मिट्टी में सने दीन हीन भारतीयों में बिखरे देवीदयाल गुप्त जैसे साहित्यिकों से भी आपका नाता बना रहा। इन छोटे बड़े जनसेवियों के चरित्र चित्रण में, उनकी सेवाओं को प्रकाश में लाने के काम में, चतुर्वेदी जी ने हिन्दी संसार की अनुपम सेवा की है। इसी सेवा के कारण बहुत से साहित्यिक कुण्डेश्वर के यात्री हुए। इन यात्रियों में मेरा नाम सब के अन्त में है।

तुरन्त ही मैं चतुर्वेदी जी के परिवार का सदस्य हो गया। घर के सुख के अतिरिक्त वन-विहार का नित्य नया आनन्द मिलता रहा। परन्तु सर्वोपरि आनन्द मुझे चतुर्वेदी जी की लच्छेदार बातों में, उनके संग्रहालय के निरीक्षण में मिला।

चतुर्वेदी जी चरित्र चित्रण में अद्वितीय हैं। सहृदयता में उनके कौशल की प्रेरणा है और पत्र-संग्रह में, स्वाध्याय में भी, इस कौशल के साधन हैं। जितना सुरक्षित नियमित और विस्तीर्ण पत्र संग्रह मैंने चतुर्वेदी जी के पास देखा, उतना कहीं और मुझे देखने में नहीं आया था। फ्रेंच में रोमेन रोलाँ के पत्र और अंग्रेजी में माननीय श्रीनिवास शास्त्री के पत्र देखने में आए तो हिन्दी में महात्मा गान्धी, महावीरप्रसाद जी द्विवेदी और

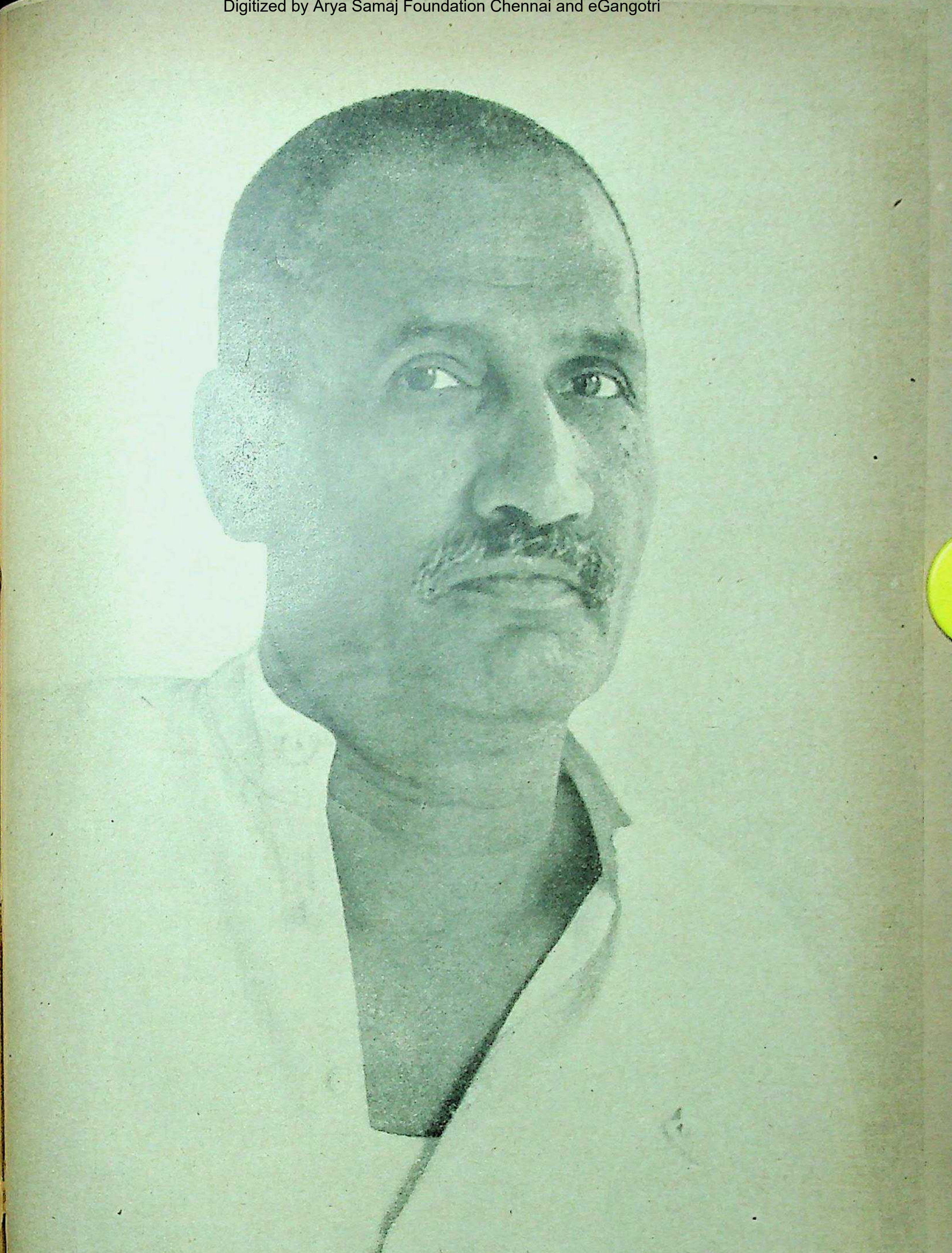

हिन्दी संसार के सुपरिचित
यशस्वी पत्रकार और लेखक **श्री बनारसीदास चतुर्वेदी**

पद्मसिंह जी शर्मा से लेकर छोटे बड़े दर्जनों हिन्दी लेखकों के साहित्यिक पत्र चतुर्वेदी जी के पास सुरक्षित ही नहीं हैं, इनका विषयानुकूल उपयोग करना भी आप खूब जानते हैं।

चतुर्वेदी जी का केन्द्रीय राज्य परिषद् का सदस्य होना मेरे जैसे मित्रों के लिए गौरवान्वित होने की बात थी। इस सदस्यता से चतुर्वेदी जी को अपनी आर्थिक समस्याओं से तो थोड़ी बहुत मुक्ति मिली है, परन्तु राज्य-परिषद् का वातावरण तथा नई दिल्ली का राजनीति-प्रधान वायुमण्डल आपकी साहित्यिक प्रवृत्तियों के अनुकूल नहीं है। परिवर्तित परिस्थिति में चतुर्वेदी जी को कुण्डेश्वर अथवा विंध्यभूमि से अस्थायी विदाई लेनी पड़ी है और नई दिल्ली में सदस्यता का निर्वाह करते हुए, अब आपको अपनी साहित्य-सेवा के अधूरे काम पूरे करने हैं।

कुण्डेश्वर किस प्रकार पन्द्रह वर्ष तक हिन्दी साहित्यिकों का तीर्थ रहा, इसका अनुभव मुझे चतुर्वेदी जी के साथ एक सप्ताह रह कर ही हो गया।

'हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय' के स्वामी श्री नाथूराम प्रेमी से मेरी लिखा पढ़ी तो सन् १९१९ से चली आ रही थी। परन्तु उनके दर्शन मुझे कुण्डेश्वर ही में हुए। प्रेमी जी किसी काम से ललितपुर पहुँचे थे। ललितपुर तक आ गए थे तो कुण्डेश्वर तीर्थ तक पहुँच कर उसके पण्डे से क्यों न मिलते? यों कुण्डेश्वर में एक यात्री की जगह दो हो गए।

ओरछा के महाराजा वीरसिंह जू देव डेली कालेज, इन्दौर में चतुर्वेदी जी के शिष्य रह चुके हैं। देश में अन्य राज्यों के विलीनीकरण के परिणाम में अब आप अवकाशप्राप्त हैं। वर्तमान परिस्थिति में आपसे विद्वज्जनों का आर्थिक संरक्षण तो सम्भव नहीं किन्तु आपकी सहृदयता पहले जैसी है। चतुर्वेदी जी से हम लोगों की यात्रा का समाचार पाकर आपने कुण्डेश्वर में ही हमें दर्शन दिए। कई घण्टों तक हम लोगों का प्रेमालाप रहा। जलाशय, भवन और वाटिका निर्माण आपका व्यसन है। हाल ही में आपने टीकमगढ़ के बाहर विस्तृत वन के मध्य 'सुधासागर' नाम का एक विशाल जलाशय बनवाया है और उसके किनारे एक सुन्दर वाटिका-गृह बनवा रहे हैं। अगले दिन आपने हम सबको सुधासागर यात्रा के लिए निमन्त्रित किया। महाराजा साहब कुशल इंजीनियर और कलाकार भी हैं। जिस कौशल से आपने सुधासागर और निजी कुटी की योजना कार्यान्वित की है वह कलात्मक और वैज्ञानिक कसौटियों पर खरा उतरता है। महाराजा साहब उस वंश के प्रतिनिधि हैं जिसने वीरसिंह और छत्रसाल के शासन काल से बराबर हिन्दी साहित्यिकों का संरक्षण किया है। यह बात भूलने की नहीं कि हिन्दी कविता के प्रथम आचार्य केशवदास ओरछा राज्य के आश्रित थे। देश की वर्तमान दशा में धनी मानियों से संरक्षण की सम्भावना नहीं। अब तो जनता को साहित्य का संरक्षण करना है—साहित्यिक कृतियों का समादर करके।

एक सप्ताह के भीतर विंध्यभूमि के छोटे से कोने की ही झलक मुझे मिल सकी, इस झलक के आधार पर ही विंध्य प्रदेश की भावी उन्नति के विषय में कुछ सुझाव प्रस्तुत करने हैं।

विंध्यप्रदेश का क्षेत्रफल देखते हुए उसकी जनसंख्या कम है। प्रदेश का अधिकांश वन्यप्रधान और पर्वतीय है। पहाड़ी नदियाँ वर्षा ऋतु में खूब उबलती हैं तो ग्रीष्म काल तक बहुत कुछ सूख जाती हैं। खेती के उपयुक्त यही भूमि है जो मानवनिर्मित जलाशयों के निकट है, जहाँ इन जलाशयों से सिंचाई हो सकती है। ऐसे जलाशयों की विंध्यप्रदेश में यथेष्ट संख्या है, चार तो मैंने ही देखे-एक ललितपुर के निकट, एक कुंडेश्वर में और दो टीकमगढ़ के निकट। छोटे छोटे बाँधों से जल रोक कर इन जलाशयों की संख्या बढ़ाई जा सकती है। जलाशयों की बढ़ती के साथ उनके किनारे की भूमि में खेती हो सकती है, फलों की वाटिकाएँ लगाई जा सकती हैं। परन्तु यह निश्चित है कि विंध्यप्रदेश का अधिकांश भाग वन्य और पर्वतीय रहता है। कहा जाता है कि प्रदेश की खनिज निधि भी कम महत्व की नहीं है। विन्ध्य प्रदेश की जनसंख्या तो कम है ही, यहाँ शिक्षा का अभाव भी है।

वस्तुस्थिति की इस पृष्ठभूमि में विन्ध्य प्रदेश के शासकों को उसकी आर्थिक और नैतिक उन्नति की योजना बनानी है।

(१) आजकल हस्तकला प्रधान बेसिक शिक्षकों की धूम है। पर हम कहीं भी उस स्तर की बेसिक शिक्षा नहीं दे पाए हैं जिसकी कल्पना महात्मा गांधी ने की थी। जितना वेतन हम दे सकते हैं उसमें हमें यथेष्ट योग्यता के शिक्षक नहीं मिलते। फिर बेसिक शिक्षा के लिए सामान पर जितने खर्च की जरूरत है उसका प्रबन्ध भी हम कहीं नहीं कर पाए हैं। बेसिक शिक्षा के नाम पर अपव्यय तो हम कुछ कर चुके हैं; परन्तु न हम बालकों को पढ़ना लिखना सिखा पाए हैं, न हस्तकला ही।

कुण्डेश्वर में प्रचलित फ़ैशन के अनुकूल बेसिक शिक्षा का ट्रेनिङ्ग स्कूल खुल गया है पर मेरा निवेदन है कि विंध्यप्रदेश के अनपढ़ परिवारों तक पहले अक्षर और संख्या ज्ञान का पहुँचना आवश्यक है । जब बालक पढ़ना लिखना और साधारण हिसाब लगाना सीख जाएँ, जब उन्हें बातचीत और दैनिक चर्या के सिलसिले में सफ़ाई और नागरिकता का साधारण ज्ञान हो जाए, तब १२ वर्ष और उससे ऊपर की अवस्था के होनहार विद्यार्थियों को खेती, बाग़बानी और अन्य वस्तुओं के उपयोग से सम्बन्धित व्यावसायिक शिक्षा दी जाए। प्रारम्भिक पाठशालाओं के आगे छोटे छोटे व्यावसायिक शिक्षा-केन्द्रों की आवश्यकता बेसिक स्कूलों और हाई स्कूलों की अपेक्षा अधिक है ।

(२) वन्य भागों की वैज्ञानिक रक्षा आवश्यक है । ऐसे पेड़ बढ़ाए जाएँ और उनकी रक्षा की जाए जिनकी लकड़ी इमारत के काम की हो, जिनके फूल और फल से जनता का भरण पोषण हो । ऐसे पेड़ों की रक्षा और वृद्धि भी आवश्यक है जिनके फल औषधि के काम के हों । आम, जामुन, महुआ, आँवला, हड़, बहेड़ा और चिरौंजी से फल प्राप्त होते हैं तो शीशम और सागौन की रक्षा इमारती लकड़ी के लिए आवश्यक है । जो भूमि खेती और बाग़बानी के काम में आ सके उसे छोड़ कर बाक़ी भूमि पर वन हों और उनकी विधिवत् रक्षा की जाय ।

विंध्य-प्रदेश शिकारियों की प्रिय भूमि रही है । अब शिकार पर भी नियंत्रण आवश्यक है । शिकारी ऐसे ही वन्य पशु-पक्षियों के विनाश पर तत्पर हों, जिनसे पड़ोस की खेती को हानि पहुँचती हो ।

वन्य भाग की बहुतायत के कारण विन्ध्य प्रदेश में ऐसे मवेशियों की संख्या बहुत बढ़ गई है जिनसे जनता को दूध नहीं मिलता, जो खेती के काम में भी कमज़ोर हैं। इनके कारण अच्छी नसल के मवेशियों को बढ़ाने का मौका नहीं मिलता । शासकों को जनता के सहयोग से इन बेकार मवेशियों के विनाश और अच्छी नसल के मवेशियों की वृद्धि के लिए तत्पर होना है । यह देख कर मुझे बहुत आश्चर्य हुआ कि कुण्डेश्वर के चारों ओर विस्तृत चरागाह होने पर भी दूध देनेवाली गायें वहाँ ढूँढे नहीं मिलती। मानवकृत इस कमी की पूर्ति अत्यन्त आवश्यक है ।

(३) जलाशयों के जल का खेती के लिए उपयोग आवश्यक है । पंपों से जल उठाने में अधिक सुविधा रहेगी । इसका प्रबन्ध प्रशासन करे और ख़र्च किसानों से उनकी सुविधानुसार वसूल करे ।

भूमि की जाँच करके बाँधों द्वारा यथा संभव छोटे बड़े जलशयों की संख्या बढ़ाई जाय और सिंचाई का प्रबंध किया जाय । यों विंध्य-प्रदेश के बहुत कुछ भाग में खेती अथवा बाग़बानी संभव हो सकेगी ।

(४) जलाशयों के निकट मलेरिया का प्रकोप स्वाभाविक है । जनता का सहयोग प्राप्त करके शासन को मलेरिया ज्वर से उसकी रक्षा भी करनी है । सम्भवतः कुण्डेश्वर में एक सप्ताह रह कर ही मैं अपने शरीर में मलेरिया के कीटाणु ले आया, जिन्होंने दिल्ली यात्रा में मुझे अपना रंग दिखलाया और यहाँ आने पर भी मुझे नहीं छोड़ा । ऐसा प्रबन्ध होना चाहिए कि जिससे विंध्य प्रदेश के भावी तीर्थ यात्री इस पुरस्कार से वंचित रहें ।

(५) विन्ध्य-प्रदेश की खनिज निधि की ब्योरेवार जाँच आवश्यक है । इस भूमि में सिमेंट के कारखाने संभव हैं। छोटे छोटे हाइड्रो-एलेक्ट्रिक स्टेशन भी सम्भव हैं । यदि विंध्य प्रदेश में खनिज निधि प्राप्त हो जाए तो जनता का भाग्योदय हो जाय । केन्द्रीय शासन के भूगर्भ विभाग को विंध्य प्रदेश की इस आवश्यकता के प्रति ध्यान देना है । एक बात और, विंध्य प्रदेश में यातायात के साधनों की बहुत कमी है । रेलें हों, न हों, पर सड़कों का होना निहायत ज़रूरी है और उनके लिए यथेष्ट सामग्री प्रदेश में ही प्रस्तुत है । पत्थर, सीमेण्ट, चूना, लकड़ी सब मिल सकता है । यहाँ पुल बनाना उतना कठिन नहीं जितना अन्य प्रान्तों में ।

चतुर्वेदी जी की श्रेणी के व्यक्तियों की बात भी कह दूँ । विंध्यभूमि में जन्मे विद्वानों की संख्या कम है । परन्तु इस के शासकों ने कई भारतीय साहित्यिकों का संरक्षण किया है । यहाँ की यह प्राचीन परम्परा है । साहित्यिकों को यही आशा विंध्यप्रदेश के जनतन्त्रात्मक शासन से भी है । पहले इस प्रदेश की भूखी जनता को शारीरिक भोजन मिले, तत्पश्चात् चतुर्वेदी जी जैसे साहित्यिक सात्विक मानसिक भोजन द्वारा उसकी सेवा कर सकते हैं !

—कालिदास कपूर

हरदोई रोड,
लखनऊ

सूरज का सातवाँ घोड़ा

श्री धर्मवीर भारती के नए उपन्यास का प्रणयन "सूरज का सातवाँ घोड़ा" शीर्षक के साथ हुआ है। इस पर लिखा हुआ है एक नवीन कथा प्रयोग अतः सबसे पहले इन दोनों चीज़ों के बारे में इस पुस्तक से ही दो उद्धरण देने ज़रूरी हैं :

"तुम लोग कहानी सुनने आए हो या शीर्षक सुनने ? या मैं उन कहानी लेखकों में से हूँ जो आकर्षक विषय वस्तु के अभाव में आकर्षक शीर्षक देकर पत्रों के सम्पादकों और पाठकों का ध्यान खींचा करते हैं ?" (पृष्ठ ६०)

"टैकनीक ! हाँ टैकनीक पर ज्यादा ज़ोर वही देता है जो कहीं न कहीं अपरिपक्व होता है; जो अभ्यास कर रहा है, जिसे उचित माध्यम नहीं मिल पाया। लेकिन फिर भी टैकनीक पर ध्यान देना बहुत स्वस्थ प्रवृत्ति है बशर्ते वह अनुपात से अधिक न हो जाए !" (पृष्ठ ९५)

सच बात तो यह है कि विभिन्न रूपों में लेखक ने अपनी इस पुस्तक के विषय में इतना कुछ कह दिया है कि किसी दूसरे को कहने को जगह ही नहीं है। इस उपन्यास पर जो-जो संभावित प्रश्न, शंका या राय हो सकती थीं सभी लेखक के ध्यान में हैं और उसने स्वयं ही सब कुछ कह कर दूसरों को इस कष्ट से बचा लिया है, यदि कोई रिमार्क इस पुस्तक में नहीं है तो बस अपनी ही पुस्तक पर सब कुछ लिख देने, प्रशंसा करने पर। पता नहीं यह बात लेखक के ध्यान में भी थी या नहीं।

उपन्यास खोलते ही सबसे पहले—मूल कथा शुरू होने से पहले—प्रकाशकीय 'परिचय', लेखक का 'निवेदन' और श्री अज्ञेय जी की 'भूमिका' में यह बात इतनी बार दुहराई गई है कि—यह 'प्रयोग कौतुक' नहीं है—पाठक चौंक उठता है: कहीं यही तो इस उपन्यास की सबसे बड़ी कमजोरी नहीं है जहाँ सब का हाथ पड़ रहा है—या जहाँ सब का हाथ बचा रहा है ! लेखक स्वयं इस विषय में कितना शंकित (कौन्शस्) है यह स्थान-स्थान पर आए वाक्यों और ऊपर के उद्धरणों से जाना जा सकता है और क्योंकि यह बात भी लेखक ने एक से अधिक बार कही है कि ये क़िस्से माणिक मुल्ला ने कहे हैं और इनका केवल इतना ही श्रेय उसे है कि उसने इन्हें लिपिबद्ध किया। अतः कथा को यह रूप देने का सारा उत्तरदायित्व 'माणिक मुल्ला' पर है। लेखक से माणिक मुल्ला का कोई सम्बन्ध जोड़ा जाय—चाहे वह कृति और कर्ता का ही क्यों न हो—यह 'प्रचलित मूर्खता' करने की आज्ञा 'अज्ञेय' जी देते नहीं हैं अतएव यह मान कर ही सन्तोष करना चाहिए कि यह सब कुछ 'किया धरा' माणिक मुल्ला का ही है।

इस उपन्यास में श्री धर्मवीर भारती की सबसे बड़ी सफलता ही यह है कि उन्होंने अपने आपको बड़ी कुशलता से माणिक मुल्ला से अलग किया है, अतः वे अपनी कहानियों में एक अत्यन्त सफल कलाकार की तरह तटस्थ और अनासक्त रह सके हैं !

शायद सन् पैंतालीस की बात है। श्री गंगाप्रसाद मिश्र ने बताया था कि 'ट्यूशन' नाम से वे एक ऐसा उपन्यास लिखने का विचार कर रहे हैं, जिसका प्रत्येक अध्याय कला की दृष्टि से एक स्वतन्त्र कहानी हो, और सब मिल कर एक सफल उपन्यास भी हो। पता नहीं वह उनका प्रयोग कैसा रहा। एक एक कहानी पत्रिकाओं में छपती चली जाय, इस आवश्यकता ने बहुतों के दिमाग़ में ऐसा उपन्यास लिखने की बात पैदा की होगी, लेकिन सबसे अधिक सफल प्रयोग इस दिशा में श्री सत्येन्द्र शरत् के माने जा सकते हैं (एक पत्र द्वारा गूँथी हुई विभिन्न कहानियों को मिला कर यदि वाक़ई उनका विचार एक उपन्यास बना देने का है तो)। प्रस्तुत उपन्यास भी पाँच—या चार—ऐसी ही कहानियों का संकलन है। लेकिन अपनी बात प्रस्तुत करने के ढंग में भारती इन सबसे अधिक कुशल और चालाक हैं, इसलिए इस दिशा में—कोई उन पर सफलता असफलता का फ़तवा दे,—यह चक्कर उन्होंने छोड़ा ही नहीं है। उनके माणिक मुल्ला ने अपनी कहानी की अलग ही व्याख्या और वाद बना लिए हैं। और उन्होंने मूर्ति पर इतने

फूल चढ़ाए हैं, इतने फूल चढ़ाए हैं कि मूर्ति बेचारी दब कर रह गई है; अर्थात् कहानी पर टैकनीक के इतने पलस्तर हैं कि कहानी दब-दुबक कर रह गई है और मैं यह स्वीकार किए लेता हूँ कि वे पलस्तर इतने कुशल हाथों से किए गए हैं कि कहानी और टैकनीक—दोनों पर कुछ कहना ख़तरे और विवाद से ख़ाली भी नहीं है।

यह पाँचों कहानियाँ एक ही मुहल्ले—या समाज के विभिन्न स्तरों और रूपों के चित्र हैं। एक दूसरे में जुड़े इसलिए लगते हैं कि एक ही आदमी ने इनका वर्णन किया है, जो एक कहानी के किसी भी छोटे बड़े पात्र को लेकर दूसरी कहानी शुरू कर देता है। पहली कहानी है जमुना की; अर्थात् जमुना के रूप में उन ९० प्रतिशत लड़कियों की कहानी है जो जमुना की ही परिस्थिति में हैं। वह बेचारी क्या करे—तन्ना (उसके प्रेमी) से उसकी शादी हो नहीं पाई, उसका बाप दहेज जुटा नहीं पाया। शिक्षा और मन बहलाव के नाम पर उसे मिली "मीठी कहानियाँ" "सच्ची कहानियाँ" और "रसभरी कहानियाँ"—तो बेचारी और कर ही क्या सकती थी!

दूसरी कहानी इस पहली कहानी का ही दूसरा भाग है अर्थात् बूढ़े से ब्याह दी जानेवाली जमुना की कहानी है जो शीघ्र ही विधवा बन जाती है और रामधन इक्केवाले के साथ रहने लगती है।

तीसरी कहानी तन्ना—जमुना के प्रेमी—की कहानी है और उस एक साधारण लड़के की कहानी है जो बचपन में सौतेली मा की आँख का काँटा रहा है और बड़ा होकर हज़ारों उत्तरदायित्वों के बीच क्लर्की करते करते मर जाता है!

और इस तन्ना से जिसका भाग्य फूटा है वह है लीला। इन्टर में पढ़नेवाली, सपनों और रोमान्स में रहनेवाली, रो पीट कर जिसकी शादी जबर्दस्ती इससे हो जाती है।

चौथी कहानी इन सबसे अलग चली गई है और वह सिर्फ़ महेसर दलाल और माणिक मुल्ला से बँधी है। सत्ती की कहानी को यों जोड़ तो दिया ही गया है, लेकिन वह जोड़ ठीक बैठा नहीं है और काफ़ी बड़ी सँध रह गई है। इस तरह यह सभी कहानियाँ अपने एक-एक हाथ से एक दूसरे को पकड़े हुए हैं और दूसरे हाथों से उस मोटे रस्से को जिसमें यह सब लटकी हैं—अर्थात् माणिक मुल्ला। इन सभी कहानियों से माणिक मुल्ला का संबन्ध प्रेम का सम्बन्ध है, क्योंकि यह सम्बन्ध उन्हें कहानियों में अपने आपको एक प्रमुख पात्र बना देने के अलावा, पाठकों के सामने इन कहानियों को सबसे अधिक प्रभावशाली और रोचक ढंग से रखने का काम भी करता है। माणिक मुल्ला ने प्रेम कहानियाँ ही क्यों सुनाईं! उन्होंने "सबसे पहले प्रेम कहानियाँ इसलिए सुनाईं कि यह रूमानी विभ्रम हम लोगों के दिमाग़ पर कुछ इस तरह छाया हुआ है कि इसके सिवा हम लोग कुछ भी सुनने को तैयार न होते।" वर्ना यह प्रेम कहानियाँ नहीं, "उस ज़िन्दगी का चित्रण करती हैं जिसे आज का निम्न मध्य वर्ग जी रहा है। उसमें प्रेम से कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण हो गया है आज का आर्थिक संघर्ष, नैतिक विशृंखलता और इतना अनाचार, निराशा, कटुता और अँधेरा मध्यवर्ग पर छा गया है" (पृष्ठ १२५) और "यह उस जिन्दगी का चित्रण करती हैं जो ऊपर ऊपर से चाहे जैसी हलकी लगती हो, लेकिन जिसका ज़रा-सा पर्त उखाड़ कर देखो तो हर तरफ़ इतनी गन्दगी और कीचड़ छिपा हुआ है कि सचमुच उस पर रोना आता है।" इस रूप में माणिक मुल्ला हमारा ध्यान पतली बर्फ़ की पर्त के नीचे उस अथाह पानी की ओर दिला रहे हैं, "जहाँ मौत है, अंधेरा है, कीचड़ है। या तो दूसरा रास्ता बनाओ नहीं तो डूब जाओगे। लेकिन आधी इंच जमी बर्फ़ कुछ काम न देगी (अर्थात् शिवम् का आग्रह कि समाज में चाहे जितनी गन्दगी हो कलाकार को तो सिर्फ शिवम् का चित्रण करना चाहिए)। एक ओर नए लोगों का यह रोमानी दृष्टिकोण, यह भावुकता; दूसरी ओर बूढ़ों का यह थोथा आदर्श और झूठी अवैज्ञानिक मर्यादा सिर्फ़ आधी इंच बर्फ़ है जिसने पानी की खूंख़ार गहराई को छिपा रखा है।" (पृष्ठ ५२)

इस तरह यह विभिन्न कोणों से एक समाज की कहानी और एक समाज के माध्यम से हमारे निम्न मध्यवर्गीय जीवन या युग की कहानी है। हम सभी के भीतर घर कर गई वह भीषण सचाई है जिसने हमें खोखला, निस्सत्व और निराश बना दिया है। एक कोढ़ और एक दुर्गन्ध की तरह हमें मानसिक जड़ता से भर दिया है। और इस प्रकार इन सवा सौ पृष्ठों में भारती ने सवा हज़ार पन्नों की बात कही है—यह उसकी कला का सबसे बड़ा कमाल है — क्योंकि इसी भारती ने —"गुनाहों के देवता" के चार सौ पन्नों में केवल चार पन्नों की बात

कही थी; यह उसका व्यक्तित्व — (जिसे साहित्यक भाषा में शैली कहते हैं) है कि वे चार सौ पन्ने भी 'बोर' नहीं थे। इतनी छोटी भूमि पर इतना बड़ा चित्र दे सकने का एक मात्र रहस्य है—उसकी यथार्थ की पकड़, जिस सामाजिक जीवनको उसने लिया है उससे उसका निकटतम सम्बन्ध, परिचय और पैठ; यही कारण है कि वे चित्र इतने स्वाभाविक हैं, इतने सच्चे हैं कि मुहल्ले, गली, पड़ौस सभी जगह मिल जाएँगे—अतः इसी अनुपात में प्रभावशाली भी हैं। सत्ती को छोड़कर ऐसी कौन सी कहानी है जिसे हम और आप रात दिन न देखते रहते हों?—निस्सन्देह सत्ती को भी देखते हैं, पर कभी कभी। सत्ती की कहानी न तो 'टाइप' बन पाई है न पहली की तरह स्वाभाविक—वह काफ़ी जल्दी में लिखी गई है और एक खानापूरीमात्र है। शुरू की भाषा शैली भी वहाँ तक पहुँचते-पहुँचते बोल गई है।

सबसे बड़ी बात है भारती का अपनी कहानी पर अधिकार। उसकी जब जैसी इच्छा होती है कहानी को चलाता है, मोड़ता है और झटके देता है। कभी कभी तो यह दिखा कर पाठकों को चमत्कृत कर देने के लिए ही वह यह 'ट्रिक' अपनाता है। पहली और दूसरी दोपहर में चाहे जहाँ से कहानी को शुरू कर देना, चाहे जहाँ अपने वार्तालाप और किस्से डाल कर समाप्त कर देना इसका उदाहरण है। जैसे दूसरी दोपहर में जमुना की कहानी को ख़त्म करके फिर शुरू करना, छठी दोपहर में 'चेख़व' का उदाहरण देकर उसकी तरह काले बैंट के चाकू को एक कहानी का केन्द्र बिन्दु बना डालना। विचित्र निष्कर्ष निकाल कर पाठकों को चमत्कृत कर देना या हँसा देना!

हाँ, हँसा देना भारती के इस उपन्यास की एक और सबसे बड़ी विशेषता है। यह हँसाना इसलिए नहीं है कि विचित्र और अप्रत्याशित निष्कर्ष देख कर आप सिर्फ़ हँस कर चल दें। यह हँसी 'सटायर' की हँसी है, एक निर्मम व्यंग्यकार की ज़हर और कड़वाहट में बुझी तीखी हँसी है, जिसके साथ आप हँसते हैं! "खाओ बहन बनाओ" जिस कहानी का निष्कर्ष है क्या वह निष्कर्ष माणिक मुल्ला के रुदन की गूँज नहीं है? इसी तरह जमुना की कहानी का पहला निष्कर्ष माणिक मुल्ला के हृदय को कचोटती कटुता, निराशा और कठोर वास्तविकता का पर्याय नहीं है ऊपर से वह चाहे जितना भी हल्का क्यों न लगे? "घोड़े की नाल" के निष्कर्ष की यह पंक्तियाँ—"इतनी बड़ी कोठी थी। अकेले रहना एक विधवा महिला के लिए अनुचित था अतः उसने रामधन को भी एक कोठरी दे दी और पवित्रता से जीवन व्यतीत करने लगी।......एक दिन कहीं रेल सफ़र में माणिक मुल्ला को रामधन मिला। सिल्क का कुर्ता, पान का डब्बा बड़े ठाट थे उसके।" क्या आज के विधवा जीवन की तथाकथित पवित्रता की खिल्ली नहीं है? यह दूसरी बात है कि इन निष्कर्ष वादी कहानियों के निष्कर्षों की यह व्याख्यात्मक सफलता, पहली तीन कहानियों तक ही सीमित है। निस्सन्देह वे खोदा पहाड़ और निकली चुहिया का आनन्द देने के अलावा अपने उद्देश में भी खूब सफल हैं।

अपनी परिहासवृत्ति का यह गम्भीर और सफल उपयोग करने के साथ चलते-चलते इधर उधर छींटाकशी करते चलना भारती के व्यंग्य का दूसरा रूप है (इस दिशा में वे अपने पहले उपन्यास से अधिक सफल हैं)। कहीं कहीं तो वह काफ़ी सटीक और गहरा है, जैसे श्याम कहता है! "भाई हमारे चारों ओर दुर्भाग्य से ९० प्रतिशत लोग तो जमुना और रामधन की तरह के होते हैं। पर इससे क्या। कहानीकार को 'शिवम्' का चित्रण करना चाहिए।" चाहे वह 'शिवम्' उस 'गाइड' की अधूरी सूचना की तरह धोखा देना ही क्यों न हो, जो अथाह पानीवाली झील के किनारे खड़ा है और झील पर सिर्फ़ आधा इंच बर्फ़ जमी है लेकिन उस पर से आनेवाले को बर्फ़ की बात तो वह बताता है, पर नीचे के अथाह पानी की सूचना वह नहीं देता।

इसी तरह "तन्ना और माणिक मुल्ला से प्यार करनेवाली जमुना की शादी जब एक वृद्ध तिहाजू वर से हो गई और जमुना ने जब उसे देखा तो बहुत रोई—ज़ेवर चढ़ा तो बहुत खुश हुई।

पिछली रात उसने (प्रकाश के) मार्क्सवाद के सवाल पर मुझे नीचा दिखाया था और सच्चे संकीर्ण मार्क्सवादियों की तरह मैं झल्ला उठा था और मैंने तय कर लिया था कि वह सही बात भी कहेगा तो उसका विरोध करूँगा।"

इसी तरह के चुहल और विनोद से पूरी कहानी की रोचकता में वृद्धि हुई है इसमें सन्देह नहीं है। लेकिन यह हास्य एक ऐसी चीज है आप इससे सर्जन के

चाकू का काम ले सकते हैं, कार्टूनिस्ट की तूलिका का काम ले सकते हैं और पाठकों को गुदगुदा कर हँसाने वाली उँगलियों का काम ले सकते हैं फिर भी यह पालतू बन्दर की तरह है जो आपके कन्धे पर चढ़ेगा-उतरेगा, अपनी क्रियाओं और मुद्राओं से आपको और दर्शकों को हँसाएगा, लेकिन हो सकता है वह कभी आपका टोपी चश्मा उतार कर फेंक दे, मुँह नोंचले या ऐसी ही कोई अन्य हरकत करने लगे जो लोगों को हँसा तो देती है, लेकिन उसमें आपका बन्दर ही नहीं आप भी हँसी के पात्र होते हैं। उस समय आपकी अपनी स्थिति ठीक वह होती है जो अपने करतबों से काफ़ी हँसाने के बीच में ही कभी भूल चूक से ज़मीन पर गिर कर चोट खा जानेवाले सरकस के 'जोकर' की होती है। यों दर्शक उसे भी उसका कोई 'करतब' समझ कर जी खोल कर हँसते ही हैं और वह स्वयं दिखाता भी यही है। बिलकुल ऐसा ही हास्य—(या स्थिति) पैदा किया है श्री भारती ने मार्क्सवाद पर अपनी क़लम चला कर। यों मार्क्सवाद को पूरा समझ डालने का उन्होंने भूमिका में काफ़ी ज़ोर से दावा किया है। मार्क्सवाद को समझ जानेवाला मार्क्सवादी ही हो जाता है, छज्जे पर खड़े होकर अपने आपको सबसे अलग, विचित्र और ऊपर समझ कर नीचे से गुज़रने वालों को हिक़ारत की नज़र से देखता हुआ उनके कपड़े-लत्तों, बोल-चाल के ढंग और अन्य बातों का यों मज़ाक़ नहीं उड़ाया करता!

फिर भी हास्य और व्यंग्य इस कहानी की बहुत बड़ी सफलता और शक्तियाँ हैं। जो इस कुरूप ज़िन्दगी की विकृतियों और सड़ाँध में दब पिस कर मर जाने या भावुक लोगों की तरह रो धो कर चुप रह जाने की बजाय हमें सामर्थ्य देती है कि हम इन सब पर जी खोलकर हँसना सीखलें और एकदिन हँसते-हँसते इस ज़िन्दगी को बदल भी डालें। (पृष्ठ ४१)

लेखक का अपनी कहानी पर अधिकार खूब है। परन्तु वह कभी-कभी अपना अधिकार जताने के लिये ही कहानी को इधर-उधर झटके देता है। अधिकार न होता तो वह इतने सारे विषय-बातें (जिन्हें मैं बाद में गिनाऊँगा) सवा सौ पन्नों में कैसे भर देता। सत्ती को मर जाते और फिर कथा क्षेत्र में आ जाते देख कर (जैसा कि जल जाने के बाद 'तराना' फिल्म में मधुबाला के साथ या आन में प्रेमनाथ के साथ हुआ है) खास तौर से और वैसे इस कहानी को पढ़ते-पढ़ते बार-बार मुझे प्रसिद्ध जादूगर गोगियापाशा की याद आती रही। ढाई तीन घण्टे के 'शो' में वह एक से एक अजब काम दिखाता है (जिसमें सामने से ही लड़के को उड़ा कर फिर ला देना भी है)। उसके मेस्मेरिज्म के काम, हाथ की सफ़ाई के कमाल, सभी को देख कर दर्शक स्तब्ध रह जाते हैं। वैसे उन पर इस प्रभाव और रौब का एक बहुत बड़ा कारण वे तमाम रंगबिरंगे चौड़े पर्दे, रोशनियाँ, कीमती [कान्स्ट्यूम्स] पोशाकें और दुनिया भर के तामझाम थे, जिन्हें वह हर ज़रा सा खेल दिखाने के के लिए बदलता था—उसकी स्वयं अपनी अरब देशों के किसी आलिफ़लैलाई युग के जादूगर की तरह तड़क-भड़क वाली ढीली-ढाली पोशाक, दाढ़ी, चमकदार आँखें—जो ख़ाँमख़ाँ ही एक रहस्यमय आवरण से उसे लाद देती थीं। हरेक खेल के पहले बड़े रोचक ढंग से अंग्रेज़ी और हिन्दी में उसका परिचय देना, फ्राँस, अमेरिका, इग्लैण्ड सब जगह घूम आने का उसका इतिहास; अपने खेलों के विचित्र विचित्र नाम देना; ज़रा भी बोलना होता था दो नौकर मेज़ को उठाए चले आ रहे हैं, एक सुन्दर लड़की आकर्षक पोशाक में पानी का गिलास या सिगरेट लिए सामने खड़ी है। दो मिनट उसने बात कही कि इन सबको फिर नौकर हटा रहे हैं। अपने खेलों को ऐसा मनोवैज्ञानिक क्रम देना कि इस भयंकर रोमांचकारी चीज़ के बाद ये 'जोकर' आएँगे--यह डांस इस तरह का होगा। यह उसकी सफलता का रहस्य था। कुछ यही कला इसमें भारती ने अपनाई है। अज्ञेय जी के शब्दों में ढंग ज़रूर भारती ने इसे अलीफ़लैला, पंचतन्त्र का दिया है। लेकिन उतना आसान यह उपन्यास कभी नहीं है (टैकनीक की दृष्टि से)। लेखक ने इसमें सभी मज़े दिए हैं, दुःखान्त चाहने वाले दुःखान्त का आनन्द लें, सुखान्त चाहने वाले सुखान्त का; (पृष्ठ १२४) कविता पसन्द छायावादी भाषा में कहानी पढ़नेवाले --मालवा की युवराज्ञी की कहानी पढ़ें (वैसे भारती जी को सिर्फ़ कविता पसन्द लोगों के लिए भी इसमें कोई जगह निकाल ही लेनी चाहिए थी, कुछ नहीं तो एक बंगला और एक अंग्रज़ी की कविता—(अच्छा होता 'लारेन्स' की—तो वे दे ही सकते थे) यथार्थवाद पर मरनेवाली जमुना की; रहस्य-रोमांच के प्रेमी सत्ती की कहानी पढ़ कर आनन्द लें, 'फ्रायड' के भक्त लेखक

के सपनों का विश्लेषण करें और पिकासो के चाहक इनमें दिए गए चित्रों के जोड़-तोड़ मिलाएँ, गर्भांक या अंकावार पर लट्टू अनध्यायों को पढ़ें। इसी तरह शैलियों के भी नमूने कई हैं। सीधी-सादी सरलतम (और सर्वश्रेष्ठ भी) शैली, व्यंग्यपूर्ण और पुरमज़ाक शैली, सपनों, फूलों, और इन्द्रधनुष की शैली, नाटक या रेडिओ रूपक के उपयुक्त वार्तालाप की शैली और उमस और घुटन की मन्द मन्थर शैली, उत्तम पुरुष की शैली, अन्य पुरुष की शैली और सब के ऊपर मध्यम पुरुष की शैली। शीर्षकों के भी आठ दस मॉडल हैं। ग़रज़ यह कि आप कैसी भी रुचि के हों, भारती ने इसमें आपके लिए सब कुछ रखा है। और सांब रखना पड़ता है। इधर सिन्धी पंजाबियों में यह कला अपने चरम पर दिखाई दी; काठ की छोटी सी दूकान होगी लेकिन क्या मजाल जो साधारण से साधारण और ऊँचा से ऊँचा ग्राहक वहाँ से लौट जाय। अब दो दो सौ किराएवाले, दुकानदार, सोल एजेण्ट, होलसेल डीलर और स्पैशलिस्ट बैठे मक्खीं मारा करें! तारीफ़ करनी पड़ती है। इस छोटी सी जगह में इन सब चीज़ों को सजाने और क्रम से बैठाने के ढंग में भारती अपूर्व है। अद्वितीय है और वैज्ञानिक है। उसकी प्रभाकर माचवे के 'परन्तु' से कोई तुलना नहीं। जहाँ ज़िन्दगी भर का उनका देखा-सुना, पढ़ लिखा ज्ञान गोदाम या कबाड़-खाने की तरह भोंडे ढंग से भर दिया गया है।

लेकिन सब कुछ होते हुए भी ध्यान बार-बार ऊपर के उद्धरण पर अर्थात् माणिक मुल्ला के टैकनीक विषयक कथन पर जाता है कि आख़िर वह कौन-सी कमज़ोरी है जिसे पाठक न पकड़ लें इसलिए टैकनीक की इतनी कलाबाज़ियाँ दिखाई गई हैं? जैसा मैंने लिखा है भारती का प्रस्तुत करने का ढंग कमाल का है, सामाजिक यथार्थ को समझने की शक्ति या पैठ खूब है; अपने चरित्रों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन आश्चर्यजनक है; हास्य और व्यंग्य के सधे हुए हथियार उसके पास हैं, जब जैसी चाहता है वैसी भाषा उसके अधिकार में है और संक्षेप में वह सब उसके पास है जो इसी भूमि पर बैठ कर लिखे गए "संघर्षों के बीच" उपन्यास के लेखक श्री गंगाप्रसाद मिश्र के पास इतने उत्कृष्ट रूप में नहीं था—था अवश्य; फिर वह कौन-सी दल-दल है जहाँ उसके उद्देश्य का 'सूरज का सातवाँ घोड़ा' बुरी तरह फँस कर रह गया है और पूरा उपन्यास टेढ़ी मेढ़ी रेखाओं वाले उस चक्रव्यूह की तरह बन गया है जिसमें बिना किसी लाइन को काटे बीच के केन्द्र तक पहुँचने में बुद्धि और धैर्य की पूरी परीक्षा हो जाती है।

हाँ यह कमज़ोरी है उपन्यास का शीर्षक—अर्थात् "सूरज का सातवाँ घोड़ा।" और यहाँ माणिक मुल्ला का पहला उद्धरण फिर याद कीजिए। पूरी कहानी को छः सात भागों में इसीलिए विभक्त किया गया है कि सूरज को सात घोड़ खींचते हैं—सूरज, जो हमारी आशा, भविष्य और नए सबेरे का आधार है। उसके छः घोड़ों ने कन्धे डाल दिए हैं अर्थात् "हुआ यह है कि हमारे वर्ग विगलित अनैतिक भ्रष्ट और अंधेरे जीवन की गलियों में चलने से सूर्य का रथ काफ़ी टूट फूट गया है और बेचारे घोड़ों की तो यह हालत है कि किसी की दुम कट गई है तो किसी का पैर उखड़ गया है, तो कोई सूख कर ठठरी हो गया है, तो किसी के खुर घायल हो गए हैं। अब बचा है सिर्फ़ एक घोड़ा जिसके पंख अब भी साबित हैं, जो सीना ताने गर्दन उठाए आगे चल रहा है भविष्य का घोड़ा, तन्ना, जमुना और सत्ती के नन्हें निष्पाप बच्चों का घोड़ा जिनकी ज़िन्दगी हमारी ज़िन्दगी से ज्यादा अमन चैन की होगी।" इत्यादि (पृष्ठ १२६)

निस्सन्देह भाव (सूझ या आइडिया) काफ़ी अच्छा है, काफ़ी शक्तिशाली शब्दों में रखा गया है और पुस्तक में सब से पहले छपी एँजेलो सिकेलियानों की कविता इस भाव को जैसे लाख गुना चमका देती है—स्पष्ट और शक्तिशाली बना देती है, लेकिन उपन्यास की सबसे बड़ी कमज़ोरी यह है कि सातवें घोड़े की कल्पना पूरी कहानी से उभर कर नहीं आती। यह अचानक ऊपर से जोड़ी गई-सी लगती है। जिस समाज की, जिन लोगों की कहानी लेखक ने कही है उसमें कोई ऐसा संकेत-इशारा नहीं है जो इस सातवें घोड़े—अर्थात् जमुना, सत्ती और तन्ना के बच्चों के उज्वल भविष्य—का आभास देता हो। इस कहानी की घुटन-सड़न और लेखक के ही शब्दों में उस सामाजिक जीवन "जहां मौत है, अंधेरा है कीचड़ है, गन्दगी है" (पृष्ठ ५२) में लेखक ने इन बीजों का आभास—चाहे वह कितना ही क्षीण हो—कहाँ दिया है जो इस सातवें घोड़े को खींच कर लाएँगे? यह ठीक है कि

हमें विश्वास होना ही चाहिए कि हमारे घिनौने जीवन से हमारे बच्चों का जीवन निश्चय ही सुखद और आनन्दपूर्ण होगा—यही विश्वास तो हमारी जीवन-शक्ति है। हमें इन अंधेरेगारों घुटन में जीवित रखता आया है। यह प्रत्येक युग का अपने बच्चों पर होता आया है। हमारे बापदादाओं का हमारे लिए था, हमारा अपने आगे आनेवालों के लिए। यह दूसरी बात है कि हमारे पुरखों का यह विश्वास हमारे बापदादाओं के लिए सच नहीं हुआ और हमारे बापदादाओं का हमारे लिए सच नहीं हुआ ! जिन्दगी बद से बदतर होती गई और हमने इस बोझ को फिर आनेवाली पीढ़ी पर डाल दिया है। अब हम फिर आशा-भरी निगाहों से अपने आगेवालों को देख रहे हैं। क्या इसका सीधा अर्थ यह नहीं है कि प्राकृतिक होते हुए भी हमारे इस विश्वास के आधार में कहीं कमज़ोरी है ? मैं पूछता हूँ हमारे ऊपर वाले विश्वासों से भारती के इस विश्वास में कौन-सी विशेषता है। या इस विश्वास को बल देनेवाली वे कौनसी शक्तियाँ हैं जिन्हें भारती ने पहचान लिया है ? वे शक्तियाँ जिन्हें हमारे बाप-दादा नहीं पहचान पाए थे और उनका यह विश्वास महज एक अन्धविश्वास बन कर रह गया था ? क्या भारती का विश्वास सुन्दर शब्दावली और सशक्त सूझ के बावजूद भी एक निरा अन्धविश्वास नहीं है, जिसकी जड़ें वे अपनी कहानी के समाज में नहीं खोज पाए और उनका यह निष्कर्ष एक जबरदस्ती थोपा गया निष्कर्ष हो गया ? और अगर भारती जी क्षमा करें तो मैं कहूँ कि यदि उन्होंने मार्क्सवाद समझ लिया होता या उसका आधार लिया होता तो निरन्तर उनके कानों में गूँजनेवाली ये पगध्वनियाँ* इतनी अनजान, इतनी अपरिचित और इतनी बिरानी नहीं लगतीं। निश्चित रूप से वे शक्तितत्व भी इस तमाम जिन्दगी में से वे खोज ही लाते, क्योंकि उनकी निगाह, सूझ और निडर ईमानदारी पर हमें विश्वास है। (व्यक्तिगत रूप से चाहे जिस राजनैतिक दल में वे बँधे हों।)

और इस प्रकार निष्कर्षवादी कहानियाँ कहने की ज़िद में उन्होंने (क्योंकि यह कमज़ोरी है इसलिए माणिक मुल्ला की नहीं हो सकती) इन छः घोड़ों की सम्पूर्ण कहानी का निष्कर्ष साँतवें घोडे वाली कल्पना निकाल डाली है। फ़र्क़ इतना है कि पिछली कहानियों के निष्कर्ष निकालते समय वे (माणिक मुल्ला) बहुत जागरूक, सचेत और सचेष्ट रहे हैं कि वे अप्रत्याशित हों, हलके हों और व्यंग्य हों, अतः वे वहाँ सफल हैं। और अगर वे यह कहते भी कि इस बड़े निष्कर्ष को निकालते समय भी उन्होंने अपनी पिछली परम्परा का ही निर्वाह किया है तो क्या इसे भी दूसरे निष्कर्षों की तरह 'सटायर' या व्यंग्य (व्यंजना नहीं) समझा जाय ? वैसे, जैसा मैंने शुरू में ही कहा था इसका जबाब देने की भी उन्होंने किसी दूसरे की राह नहीं देखी, खुद ही दे दिया है—

"हिन्दी में बहुत से कहानीकार इसलिये प्रसिद्ध होगए हैं कि उनकी कहानी में कथानक चाहे लँगड़ाता हो, पात्र चाहे पिलपिले हों, लेकिन सामाजिक तथा राजनैतिक निष्कर्ष अद्भुत होते हैं।" (पृष्ठ २१)

राजामण्डी,
आगरा

—राजेन्द्र यादव

मूर्ख मनुष्य

दो मक्खियाँ छत के इधर उधर उड़ रही थीं। एक ने कहा—"जानती हो। मनुष्य बड़े मूर्ख हैं।"

दूसरी ने कहा—"किस तरह।"

पहली ने उत्तर दिया—"देखो, सुन्दर छत बनाने में मनुष्य कितना खर्च करता है। परन्तु वह इतनी सुन्दर छत बना कर भी फ़र्श पर ही चलता है।"

---

* 'कवि और अनजान पगध्वनियाँ' भारती की एक कविता

आत्मभावना की अनिवार्यता

देश काल और कार्य-कारण भाव के परे एक तत्व प्रत्येक व्यक्ति में उपस्थित है। यह तत्व सभी का आत्मा है। देश-काल आदि के परे होने के कारण वह एक ही है। यह तत्व बुद्धि के परे इसलिए है कि बुद्धि के व्यापार द्वैत जगत् में रहते हैं। परन्तु बुद्धि को उसमें समर्पित करने से वह प्राप्त होता है, अर्थात् बुद्धि की निश्चयात्मक वृत्ति उससे आती है। मन की गति उसीसे हैं, परन्तु वह मन के संकल्प विकल्प का विषय नहीं है। मन को संकल्प-विकल्प हीन कर देने पर शान्त भाव में वह प्राप्त होता है। अपने आप में जिस प्रकार वह विद्यमान है उसी प्रकार वह सभी प्राणियों में भी विद्यमान है। एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति के प्रति प्रेम का आधार उन दोनों में एकत्व का भाव है जो आत्मा की ही देन है। सब कोई अपने को ही प्रेम करता है।

उक्त प्रकार के आत्म-भाव के चिन्तन से साधारण मानसिक चिन्ताएँ नष्ट हो जाती हैं। मनुष्य जब बाहरी जगत् का चिन्तन करता है तो उसके हानि-लाभ के व्यापार में उसका मन फँस जाता है। पहले तो मनुष्य चिन्तन के विषय को पकड़ता है पीछे वह विषय ही उसको पकड़ लेता है। इस बात का अनुभव साधारण पुरुष को नहीं होता, मन को वश में करने की चेष्टा करनेवाले व्यक्ति को ही होता है। जब हम अपने विचारों को क़ाबू में लाने की चेष्टा करते हैं तो जिन विषयों को हम पहले सोचते थे वे बार बार मन में आते हैं। जितना ही हम छोड़ने की चेष्टा करते हैं वे उतने ही अधिक आते हैं। चिन्तन करने से मानसिक शक्ति का ह्रास होता है और जैसे जैसे मानसिक शक्ति का क्षय होता है मानसिक अशान्ति बढ़ती जाती है।

प्रत्येक मनुष्य का मन विषयों का चिन्तन करने से थकावट का अनुभव करता है। साधारण व्यक्ति सो कर इस थकावट से मुक्त हो जाता है। सोना प्राकृतिक रूप से अपने आपको विषय-चिन्तन से मुक्त करना है। जो मनुष्य सो नहीं पाता वह अपनी मानसिक थकावट को दूर नहीं कर पाता। अतएव ऐसा व्यक्ति किसी न किसी प्रकार के रोग का शिकार बन जाता है। जो व्यक्ति सो लेता है वह धीरे धीरे स्वस्थ हो जाता है। विषय से अति अनुराग मनुष्य की नींद में बाधक बन जाता है। जान-बूझ कर चित्त को विषय-चिन्तन से हटाते रहने से मनुष्य को मानसिक थकावट नहीं आती। उसकी मनसिक शक्ति संचित रहती है। मानसिक शक्ति के संचित रहने पर ही मनुष्य को शान्ति प्राप्त होती है।

जो व्यक्ति जितना अधिक लेन-देन के संसार में पड़ा रहता है, दुनियादारी के बारे में जितना अधिक सोचता है वह उतना ही अधिक अपनी मानसिक शक्ति को खो देता है। मन को रोकने की चेष्टा से मानसिक शक्ति बढ़ती है और मन को चिन्तन की छूट दे देने से मानसिक शक्ति का ह्रास हो जाता है। इसी से इच्छा-शक्ति की दुर्बलता आ जाती है। फिर मनुष्य कुछ करना चाहता है और कर कुछ और ही डालता है। उसके निश्चय सदा बदलते रहते हैं। उसे अपने आप पर विश्वास नहीं रहता। जिस मनुष्य को अपने आप पर विश्वास नहीं रहता उस पर दूसरे लोग भी विश्वास नहीं करते। अपने ही विचार दूसरे लोगों में जाकर उनके मन को विशेष प्रकार का बनाते हैं। निश्चयात्मक वृत्ति का मनुष्य ही संसार में कुछ कर पाता है। ऐसा व्यक्ति ही अपने आपका और दूसरों का कल्याण करता है। यह निश्चय करने की शक्ति मनुष्य की इच्छा-शक्ति में है। निर्बल इच्छा-शक्ति मन को सर्वदा डाँवाडोल बनाए रखती है अत एव जो व्यक्ति अपने चिन्तायुक्त विचारों से मुक्त नहीं हो सकता वह सदा दुःखी ही रहता है।

मनुष्य का मन अभ्यास का दास है। यदि हम सदा अपने आपको दास बनाए रखना चाहते हैं और हमको इसीका अभ्यास है तब गुलामी कष्टदायक हो जाने पर भी मनुष्य का मन उसीको पसन्द करता है। गुलामी से मुक्त होना भयदायक प्रतीत होता है। जिन लोगों को सदा चिन्ता करने का ही अभ्यास हो गया है वे अपने

मन को प्रयत्न करने पर भी खाली नहीं रख पाते । मन खाली हो जाने की कल्पना भयावनी प्रतीत होती है । इस प्रकार उनका क्लेश बढ़ता जाता है ।

मन की दो प्रकार की वृत्तियाँ होती हैं एक प्रलोभन की और दूसरी भय की । ये एक दूसरे की पूरक हैं । प्रलोभन के कारण मनुष्य किसी विषय चिन्तन में पड़ता है । फिर भय वृत्ति अपने आप आ जाती है । इस समय सोची गई बात में संशय अपने आप ही उत्पन्न हो जाता है । यही संशय चिन्ता का रूप धारण कर लेता है । मनुष्य को बाहरी घटनाएँ त्रास नहीं देतीं, उसका मन ही उसे त्रास देता है । बाहरी घटनाएँ कितनी ही अच्छी क्यों न हों यदि हम उन्हें अपने प्रतिकूल सोचते हैं तो वे दुःख ही देंगी । जिस मनुष्य का मन अपने वश में नहीं है वह अनुकूल परिस्थितियों को भी अपने प्रतिकूल समझता है । दुर्बल मन के मनुष्य को सुखदाई विचार कम आते हैं, दुःखदायी विचार ही अधिक आते हैं । इच्छा और उतसुकता ही दुःखदाई विचारों की सृष्टि करती है और उदासीनता सुखदाई विचारों की ।

मन को सदा शून्यावस्था में ले जाने के अभ्यास से अनेक प्रकार की चिन्ताएँ अपने आप विनष्ट हो जाती हैं । शून्य भावना का अभ्यास करनेवाला व्यक्ति कठिन से कठिन परिस्थितियों में सुख की नींद सोता है । यह शून्यावस्था ही आत्मावस्था है । इसमें विषय वृतियों की शून्यता रहती है, परन्तु यह सभी प्रकार की चित्तवृत्तियों की जन्मदात्री है । इस अवस्था में पहुँचने पर मन अपनी गति को बदल देता है । यदि मनुष्य अपने किसी जटिल विचार से मुक्त होना चाहता है तो उसे शून्यभाव का अभ्यास करने से लाभ होता है । इस अवस्था की प्राप्ति के प्रयत्न मात्र से मनुष्य का कल्याण होता है । अनेक प्रकार के मानसिक रोग इससे शान्त हो जाते हैं ।

जर्मनी के एक विख्यात मनोवैज्ञानिक का कथन है कि संसार के सभी डाक्टर मिल कर जितने रोगों को हटाते हैं उससे अधिक रोगों को संसार का निम्नतर धर्म दूर करता है । कोई भी धर्म मनुष्य में कल्याण भावना को दृढ़ करता है । जो कुछ होता है सब भले के लिए ही होता है । इस भावना को मन में दृढ़ करने से मनुष्य व्यर्थ के संशय और चिन्ताओं से मुक्त हो जाता है । मनुष्य का मन ही बाहरी सृष्टि को बनाता और बिगाड़ता है । निश्चयात्मक वृत्ति से बाहरी सृष्टि बनती है और संशयात्मक वृत्ति से वह नष्ट हो जाती है । जिस व्यक्ति का मन संसार के चलानेवाले अन्तिम तत्व की भलाई में विश्वास नहीं करता वह कभी भी सुखी नहीं रह सकता । कितने ही ईश्वर को माननेवाले हृदय से निराशावादी होते हैं और कितने ही ईश्वर को न माननेवाले आशावादी होते हैं । निराशावादी सभी लोग अधार्मिक हैं और आशावादी धार्मिक चाहे वे ईश्वर को मानते हों अथवा नहीं । आधुनिक काल के बहुत से धर्म निराशावादी बन गए हैं और कुछ नास्तिक मत आशावादी हैं । अतएव पहली विचारधारा में पड़े लोग असफल हो रहे हैं । स्वार्थी मनुष्य अनायास ही निराशावादी बन जाता है और निःस्वार्थी या परमार्थी व्यक्ति आशावादी बन जाता है । धर्म मनुष्य को अपनी आत्मा का व्यापक रूप दिखा कर व्यक्तिगत बातों की चिन्ता से मुक्त करता है । जब वह यह कार्य नहीं करता तो वह अधर्म बन जाता है । आज कम्युनिज्म (साम्यवाद) इसीलिए सफल हो रहा है क्योंकि उसके नेता गण व्यक्तिगत स्वार्थ–भावना का त्याग कर समष्टि-स्वार्थ की पूर्ति में लगे हैं । इसी कारण आशावादी विचार उनके मन में आते हैं ।

कर्तव्यमात्र की भावना से कार्य करना मनुष्य को चिन्ता से मुक्त करता है । साधारणतः काम फल पाने की भावना से किया जाता है ; मनुष्य को फल उसकी कल्पना के अनुसार ही मिलता है । काम करने की शक्ति भी मनुष्य की आशावादी कल्पना पर निर्भर करती है । परन्तु फल का अधिक चिन्तन करने वाला व्यक्ति अनायास ही संशययुक्त मन का हो जाता है । उसके नकारात्मक विचार उसके कार्य में विघ्नकारी बन जाते हैं । इस प्रकार वह अपनी इच्छा के विरुद्ध ही परिस्थिति को तैयार कर लेता है । उसे इस कारण विफलता प्राप्त होती है ।

इच्छा और संशय एक दूसरे के पूरक हैं । चेतन मन की इच्छा अचेतन मन में उसके निराकरण की परिस्थिति उत्पन्न करती है । इसलिए ही संशय उत्पन्न होते हैं । इच्छा की प्रबलता संशय को प्रबल बनाती है और इच्छा की कमी संशय को भी कम कर देती है । कर्तव्य का भाव इच्छा को कम करता है । इससे इच्छा के फलित होने में सफलता मिलती है । सभी की भलाई के लिए किया गया कार्य जितनी सरलता से फलित होता है व्यक्तिगत भलाई से किया गया कार्य उतनी सरलता

से फलित नहीं होता। मनुष्य की इच्छाशक्ति का बल व्यक्तिगत स्वार्थ में सीमित हो जाता है। जितने लोगों के स्वार्थ की सिद्धि किसी कार्य से होती है उन सब की इच्छाशक्ति का बल उस कार्य के करनेवाले को मिलता है। आत्मभाव से किए गए काम में सभी लोगों की इच्छाशक्ति का बल मनुष्य को मिलता है।

जब विचार किसी हठ को पकड़ लेता है उस समय आत्म-भावना अर्थात् देश-काल-कार्य-कारण भाव के परे तत्व का ध्यान बड़ा ही लाभदायक होता है। इस ध्यान से मन की विशेष प्रकार की हठ का अन्त हो जाता है। निराशावादी विचार बार बार जब मन में आने लगें तब कुछ भी चिन्तन न करना नितान्त आवश्यक है। अपने दुःखद विचारों से मुक्त होने के लिए किसी भी भले काम में लग जाना लाभदायक होता है। दूसरे के भलाई का चिन्तन करने से अपने आप की भलाई सहज में ही हो जाती है। मनुष्य जिस प्रकार का चिन्तन दूसरे के लिए करता है उसी प्रकार का चिन्तन अपने आपके लिए भी करने लगता है। सभी की भलाई का चिन्तन करनेवाला व्यक्ति अपने लिए अकल्याण के विचार मन में नहीं लाता सभी की भलाई का चिन्तन करना आत्म-भावना का अभ्यास करना है।

मनुष्य का जगत् विचारों का बना हुआ है। अपने से भिन्न वस्तु अथवा व्यक्ति की कल्पना करना और फिर उसके विनाश का चिन्तन करना वास्तव में अपने ही विनाश का चिन्तन करना है। सबकी भलाई का चिन्तन करना अपने आपको भला बनाना है। आत्म-भाव व्यापक तत्व का भाव है। एक ओर आत्मा सूक्ष्म से सूक्ष्म और दूसरी ओर महान से महान् है। मन का वह उद्गम स्थान है। मन में सोची गई वस्तुएँ देश और काल में होती हैं। मन का जन्मदाता इन भावों के परे है, अत एव वह सूक्ष्म है। तुरन्त वह जिस प्रकार मन का जन्मदाता है, उसी प्रकार वह देश और काल का भी जन्मदाता है। अत एव देश और काल उसके भीतर हैं। देश काल की अनेक वस्तुएँ अनेक होते हुए भी आत्म द्वारा व्याप्त हैं। हमारा मन वास्तव में जहाँ जहाँ जाता है वहाँ वहाँ उसका रूप ही है। सभी चिन्तन की वस्तुएँ ज्ञान के अनेक रूप हैं। सभी भेद कल्पना से उत्पन्न हुए हैं। अनेकता ने एकता का ज्ञान मनुष्य को भय और चिन्ता से मुक्त कर देता है।

मनुष्य तब तक सुखी नहीं हो सकता जब तक वह अपने आपमें किसी प्रकार की अपूर्णता देखता है। यह अपूर्णता बाहरी शक्ति से पूरी की जाती है। परन्तु इससे वह और भी बढ़ जाती है। अपूर्णता की पूर्ति ज्ञान मात्र से हो सकती है। यह ज्ञान आत्मा का सबसे सूक्ष्म और सबसे पूरित व्यापक जानने का ज्ञान है। सभी पदार्थों से अपने आपको खींचना और फिर निर्वासना होकर सभी पदार्थों का चिन्तन करना मनुष्य को सुखी और शान्त मन का बनाता है। सभी बातें एक ही तत्व के प्रकाशन हैं और सभी पदार्थों में एक ही तत्व व्यक्त हो रहा है। इस प्रकार का विचार मनुष्य के अनेक प्रकार के असन्तोष और उनसे उत्पन्न होने वाले मानसिक रोगों से मुक्त करता है।

सिद्धगिरि,
बनारस

--लालजीराम शुक्ल

……मनुष्य इस संसार में विश्व के प्रश्नों को हल करने के लिए उत्पन्न नहीं हुआ है। वह इसलिए उत्पन्न हुआ है कि वह इस बात का ज्ञान प्राप्त करे कि उसे इस जगत् में क्या काम करना है और उसे अपने आप को इसी ज्ञान की परिधि में सीमित रखना चाहिए।……

—गेटे

तेलुगु और हिन्दी के कुछ शब्दों का विचार

तेलुगु का गहरा अध्ययन करने से यह ज्ञात हो सकेगा कि तेलुगु का उद्भव किसी प्राकृत विशेष से हुआ है। आम तौर पर यह समझा जाता कि है तेलुगु द्राविड़ परिवार की भाषा है। इस विचार के प्रथम प्रवर्तक विशप काल्डवेल थे जिन्होंने दक्षिण भारत की भाषाओं पर एक तुलनात्मक व्याकरण की रचना करके इस सिद्धान्त की स्थापना की कि वास्तव में दक्षिण भारत की भाषाएँ सीमियन परिवार की हैं और उनका कोई सम्बन्ध आर्य-परिवार की भाषाओं से रत्ती भर भी नहीं है। अतः उनको अलग 'द्राविड़ परिवार' की भाषाएँ कहना उचित है। विद्वानों का अटूट विश्वास इस सिद्धांत में कुछ बरस पहले तक था। पहली बार, बड़ी दृढ़ता के साथ इस विश्वास पर प्रबल आघात पहुँचाने वाले थे डा० नारायणराव जी। आपने अपने वृहद्ग्रन्थ "आन्ध्र-भाषा का इतिहास" में भाषासंबन्धी बड़ी खोज के बल पर यह दिखाने की चेष्टा की कि तेलुगु का संबन्ध आर्य भाषाओं से ही है और उसका सीधा संबन्ध प्राकृत भाषाओं से है। उसका संबन्ध विशेष रूप से पैशाची प्राकृत से जोड़ा जा सकता है। प्राचीन ग्रन्थों में यह बात घोषित की गई थी कि 'द्राविड़' भी एक प्राकृत विशेष है। यहाँ तक कि आर्यों में पाँच प्रकार के द्राविड़ थे जिनको 'पाँच द्राविड़ी' कहते थे। विशप काल्डवेल के मतानुसार 'तमिल' शब्द की व्युत्पत्ति जिससे दक्षिण भारत की भाषाओं से अपेक्षाकृत अधिक प्राचीन भाषा अभिहित हो रही है, 'द्राविड़' शब्द से है। परन्तु डा० नारायणराव जी की राय इसके बिलकुल प्रतिकूल है। वे 'तमिल' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'धर्मिल' शब्द तथा प्राकृत के 'ध्रमिल' शब्द से मानते हैं।

इन पंक्तियों का लेखक भी कुछ हद तक नारायणरावजी के मत से प्रभावित है। अतः वह इसी उद्देश का क़ायल है कि जब तक प्राकृत भाषाओं की छान-बीन भली भाँति न हो, तब तक तेलुगु के बारे में अंतिम निर्णय नहीं किया जा सकता है। हाँ! यह मानने के लिए लेखक तैयार है कि भाषा-विज्ञानसंबंधी उनका ज्ञान अधूरा है फिर भी अपने अनुभव में जो बातें आई हैं उनको विज्ञ सज्जनों के समक्ष उपस्थित करने में वह नहीं हिचकता। मद्रास विश्वविद्यालय की 'विद्वान्' परीक्षा के छात्रों को जब जायसी लिखित पद्मावत को पढ़ाने का सुअवसर मिला तब उसके दृष्टि-पथ में कुछ ऐसे शब्द आ गए जो तेलुगु के शब्दों से निकट सम्बन्ध रखते हैं तथा उसी अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं जिस अर्थ में तेलुगु में प्रयुक्त होते हैं। भाषा-विज्ञानसम्बन्धी नियमों की कसौटी पर कसने से शायद लेखक की बातें खरी न उतरें, फिर भी लेखक ऐसे शब्दों को विद्वज्जनों के समक्ष प्रस्तुत करना आवश्यक समझता है। 'पद्मावत' में प्रयुक्त शब्दों के कुछ अन्य शब्द भी दिए जा रहे हैं जिनका वर्गीकरण तेलुगु के कोश-निर्माताओं के द्वारा देशज शब्दों के अन्तर्गत हुआ है। तेलुगु का गहरा अध्ययन किया जाए जिससे प्रायः निकट भविष्य में यह संभव हो कि हम उसका स्रोत भी किसी प्राकृत विशेष में पा सकें। अस्तु।

पहले मैं उन शब्दों की चर्चा करता हूँ जो जायसीकृत 'पद्मावत' में उसी अर्थ में प्रयुक्त हैं जिस अर्थ में तेलुगु भाषा में अद्यावधि हो रहे हैं।

१. **निज :** यह शब्द तेलुगु में 'सत्य' के अर्थ में प्रयुक्त होता है। ठीक इसी अर्थ में जायसी के 'पद्मावत' में प्रयुक्त है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि संस्कृत में 'निज' शब्द का अर्थ दूसरा है।

"जोगी होइ निसरा सो नाहू,
तब हुँत कहा संदेस न काहू।
निति पूछौं सब जोगी जंगम,
कोइ न कहै **निज** बात, विहंगम।"
(नागमती सन्देश खण्ड)

२. **डोरा :** सूत्र

'केहि क सिंगार, को पहिरु पटोरा?
गीउ न हार, रही होइ **डोरा**।'
(नागमती-वियोग खण्ड)

तेलुगु में इसी अर्थ में 'दारमु' शब्द प्रयुक्त होता है। परन्तु कोशकार ने 'दारमु' शब्द को 'देश्य' शब्दों के अन्तर्गत माना है। तेलुगु के कोशकार ठेठ तेलुगु के

शब्दों को 'देश्य शब्द' कहते हैं। हमारी समझ में यह 'देश्य' शब्द नहीं हो सकता। इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत के 'सूत्रधार' शब्द से है। जैसे 'बलीवर्द' शब्द से हिन्दी में 'बैल' तथा गुजराती में 'बरद' शब्द निकले हैं वैसे ही साहचर्य के प्रभाव से 'धार' शब्द पर भी सूत्र शब्द का अर्थ लगाया गया है। इसी शब्द से 'डोरा' और 'दारमु' आदि शब्द निकले हैं। 'डोरा' और 'दारमु' शब्दों की निकटता द्रष्टव्य है।

३. जोहारा : वन्दना

'बाजत गाजत भा असवारा
सब सिंघल नइ कीन्ह जोहारा।'
(रत्नसेन-पद्मावती-विवाह खण्ड)

इसी अर्थ में तेलुगु के प्राचीन साहित्य में भी 'जोहारु' शब्द का प्रयोग मिलता है और कोशकार इसको भी 'देश्य शब्द' मान बैठा है।

४. आन : शपथ

'जो न कहसि सत सुअटा तोहि राजा कै आन
है कोई एहि जगत मँह मोरे रूप समान।'
(नागमती-सुवा-संवाद खण्ड)

'आन' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत में 'आज्ञा' शब्द से मान लेने पर भी संस्कृत में 'आज्ञा' शब्द का प्रयोग शायद ही इस अर्थ में कहीं प्रयुक्त हुआ हो। तेलुगु में भी शपथ अथवा दुहाई लेने के अर्थ में 'आन' शब्द का व्यवहार हुआ और हो रहा है।

५. साँटिया

चहुँदिसि आन साँटिया फेरी
(जोगी खण्ड)

'साँटिया' का व्यवहार घोषणा के अर्थ में हुआ है। तेलुगु में ठीक इसी अर्थ में 'चाटु' और 'चाटिंपु' शब्द प्रयुक्त होते हैं। इन शब्दों की निकटता तथा सदृशता दर्शनीय है।

इनके अतिरिक्त कुछ ऐसे शब्द हैं जिनको तेलुगु के कोशकारों ने 'देश्य' शब्द मान लिया है जो अन्य भाषाओं में पाए जाते हैं।

१. अम्बारी : हाथी का हौदा।

यह शब्द ज्यों का त्यों हिन्दी और तेलुगु में चल रहा है।

२. टूकी : तेलुगु में और गुजराती में इस शब्द का ज्यों का त्यों व्यवहार पाया जाता है। हिन्दी में इसी के परिवर्तित रूप जैसे टुकड़ा आदि पाए जाते हैं।

३. अत्ता-शब्द 'सास' के अर्थ में तेलुगु में प्रयुक्त है। यह शब्द 'आत्मा' शब्द से निकला है। इसका व्यवहार पाली भाषा में सर्वत्र पाया जाता है। 'सास' के अर्थ में प्राकृत में भी प्रयुक्त है। निम्नलिखित उद्धरणों से बात स्पष्ट होगी।

अत्ता हि अत्तनो नाथो को हि नाथो परो सिया
अत्तनावऽव सुदन्तेन नाथंल भति दुल्लभं
(अत्तवग्गो; धम्मपद)

सास के अर्थ में

अत्ता एत्थ णिमज्जइ एत्थ अहं दिअसअं पला एहि
मा पहि अ रत्ति अंध अ सेज्ञा एमहँण मज्जहिसि
(ध्वन्यालोक-प्रथम उ.)

'श्वश्रुरत्र शेते अत्राहं दिवस कर प्रलोकय।
मा पथिक रात्यन्ध शय्याया व्ययोर्मक्षीः'
(का. प्र. पं. उ.)

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि हिन्दी और तेलुगु के शब्दों में बड़ी सदृशता, एकरूपता तथा निकटता है और तेलुगु के कोशकारों ने इनको भूल से 'देश्य' शब्दों के अन्तर्गत ले लिया है। उपर जो शब्द दिए गए हैं वे केवल उदाहरण के रूप में दिए गए हैं। इन पंक्तियों को लेखक जानता है कि भाषा-विज्ञान के कड़े नियमों के अनुसार इन शब्दों के संस्कृत तथा प्राकृत रूप भी साथ साथ दिए जाने चाहिए परन्तु ध्येय इस समय केवल अपनी कुतूहल वृति को संतृप्त करना है। आशा है कि पाठकों में भी इस लघु प्रयत्न के द्वारा कुछ कौतूहल जागृत होगा और वे इन प्राकृत भाषाओं और द्राविड भाषाओं के गहरे अध्ययन की आवश्यकता को अनुभव करेंगे।

ए. वी. आर्ट्स कालेज,
तिरुपति

हनुमच्छास्त्री
एम-ए.

डेन्मार्क के युवराज हेमलेट

[अंग्रेज़ी नाटक साहित्य में शेक्सपियर का बड़ा ऊँचा स्थान है । उसकी ख्याति का विशेष कारण उसके लिखे हुए मरणान्त (Tragedy) नाटक हैं । इन नाटकों में 'हेमलेट' विशेष रूप से प्रसिद्ध है । पात्रों के मनोवैज्ञानिक विकास, कथावस्तु का सुचारु रूप से संघटन और प्रभाव-ऐक्य आदि गुण शेक्सपियर के नाटकों में विशेष स्थान रखते हैं । 'हेमलेट' पर देशी विदेशी अनेक आलोचनाएँ हो चुकी हैं; उसके अनेक अध्ययन प्रकाशित हो चुके हैं । दुर्भाग्य की बात है कि हिन्दी में उनका कोई भी प्रामाणिक अनुवाद अभी तक नहीं हुआ । दो तीन भावानुवाद अवश्य गिनाए जा सकते हैं परन्तु उन अनुवादों में शेक्सपियर की मौलिकता के साथ न्याय नहीं हो सका है । हेमलेट का गद्यात्मक अनुवाद प्रस्तुत करना ही हमारा मूल उद्देश्य है ।

शेक्सपियर के नाटक अतुकान्त (Blank Verse) कविता में लिखे गए हैं । उचित तो यह था कि अनुवाद भी उसी रूप में किया जाता परन्तु यह सम्भव नहीं हो सका है । भविष्य में कोई सिद्धहस्त अनुवादक ऐसा कर सकेंगे इसकी आशा सदैव बनी रहेगी । तब तक यदि हिन्दी पाठक इस अनुवाद से अपना मनोरंजन कर सकें तो अनुवादक अपने को धन्य समझेगा । —अनु०]

नाटक के पात्र

हेमलेट : भूतपूर्व महाराज हेमलेट, जिनकी प्रेत-छाया दिखाई देती है, का पुत्र।

होरेशियो : हेमलेट का मित्र ।

मार्सेलस :

बर्नार्डो : } अफ़सर लोग ।

फ्रांसिस्को : एक सिपाही ।

प्रथम अङ्क

प्रथम दृश्य

[**स्थान**—एल्सीनोर, दुर्ग के सामने का चबूतरा । कर्तव्यारूढ़ प्रहरी फ्रांसिस्को बर्नार्डो का प्रवेश]

बर्नार्डो : कौन है ?

फ्रांसिस्को : पहले मेरे प्रश्न का उत्तर दो; ठहरो, अपना परिचय दो ।

बर्नार्डो : महाराज चिरायु हों !

फ्रांसिस्को : बर्नार्डो ?

बर्नार्डो : हाँ, मैं ही हूँ ।

फ्रांसिस्को : तुम तो अपने निर्दिष्ट समय पर आ गए ।

बर्नार्डो : बारह बज गए हैं; फ्रांसिस्को ! तुम जाकर सो जाओ ।

फ्रांसिस्को : इसके लिए अनेकानेक धन्यवाद; बड़ी ही भयंकर सर्दी है, हृदय बैठा जा रहा है

बर्नार्डो : क्या तुम्हारा पहरा शान्तिपूर्वक व्यतीत हुआ।

फ्रांसिस्को : हाँ, पत्ता तक नहीं हिला ।

बर्नार्डो : अच्छा; सुनिशि ! (Good Night) यदि मेरे प्रहरी साथी होरेशियो तथा मार्सेलस तुम्हें मिलें तो उनसे शीघ्रता करने के लिए कहना ।

फ्रांसिस्को : मुझे तो उनका शब्द सुनाई दे रहा है। ठहरो, कौन है ?

[होरेशियो तथा मार्सेलस का प्रवेश]

होरेशियो : इसी देश के हितैषी ।

मार्सेलस : और डेन की प्रजा ।

फ्रांसिस्को : सुनिशि !

मार्सेलस : सच्चे सिपाही ! विदा : तुम्हारे स्थान पर कौन आया है ?

फ्रांसिस्को : मेरा स्थान बर्नार्डो ने ग्रहण किया है! सुनिशि !

[प्रस्थान]

मार्सेलस : अरे बर्नार्डो?

बर्नार्डो : जी हाँ; कौन ? होरेशियो !!

होरेशियो : हाँ, वही समझ लो !

बर्नार्डो : स्वागत होरेशियो; स्वागत, मार्सेलस !

मार्सेलस : क्यों ? आज रात को वह फिर दिखाई दी क्या ?

बर्नार्डो : मैंने तो कुछ नहीं देखा ।

मार्सेलस : होरेशियो का कहना है यह सब हमारा बुद्धि-भ्रम मात्र है; हमने जिसे दो बार देखा उस भयंकर दृश्य की सत्यता पर वह विश्वास करने के लिए प्रस्तुत नहीं है। अत एव मैंने इससे प्रार्थना की है आज की मंदगामिनी रात में वह हमारे साथ पहरा दे और यदि वह प्रेत-छाया फिर से दिखाई दे तो हमारी आँखों की प्रामाणिकता स्वीकार कर उससे कुछ बातचीत करे।

होरेशियो : रहने भी दो; वह अब प्रगट नहीं होगी।

बर्नार्डो : आओ थोड़ी देर बैठें; दो रातों में हमने जो देखा है अपनी उसी कहानी के विरोध में सुरक्षित तुम्हारे कर्ण-दुर्ग पर एक बार फिर से विजय प्राप्त करने का प्रयत्न करें।

होरेशियो : ठीक है, आओ हम सब यहीं बैठ जाएँ और बर्नार्डो से उसका वृत्तान्त सुनें।

बर्नार्डो : विशेषतया गत रात्रि के समय जब ध्रुव के पश्चिम में स्थित वह सामने वाला ग्रह, आकाश के उस भाग को, जहाँ वह अब भी दीप्त हो रहा है, प्रज्वलित करने के लिए अपना पथ-काल समाप्त कर चुका था, मार्सेलस और मैं, तब घण्टे ने एक बजाया ही था,—

[प्रेतात्मा का प्रवेश]

मार्सेलस : शान्त! कहानी समाप्त करो; देखो वह फिर आ रही है।

बर्नार्डो : ठीक वही रूप जैसा दिवंगत महाराज की आकृति का था।

मार्सेलस : होरेशियो! तुम विद्वान् हो, उससे बात करो।

बर्नार्डो : ध्यानपूर्वक देखो, होरेशियो! क्या वह महाराज के अनुरूप नहीं दिखाई देती?

होरेशियो : हाँ, ठीक उन्हीं के अनुरूप है; मुझे तो आतंक और आश्चर्य हो रहा है।

बर्नार्डो : उससे अवश्य बोलना चाहिए।

मार्सेलस : होरेशियो! उससे प्रश्न करो।

होरेशियो : तुम कौन हो? कुछ दिन पहले जिस सुन्दर और सैनिक चाल से डेन्मार्क के दिवंगत महाराज चला करते थे, उसी के अनुरूप गतिशील रात्रि के समय आने वाले, तुम कौन हो? तुम्हें ईश्वर की शपथ है, उत्तर दो।

मार्सेलस : वह बुरा मान गई।

बर्नार्डो : देखो! वह गर्वीली चाल से जारही है।

होरेशियो : ठहरो; उत्तर दो; उत्तर दो! मैंने तुम्हें शपथ दिलाई है, मुझ से बोलो।

[प्रेतात्मा का प्रस्थान

मार्सेलस : वह चली गई; संभवतः उत्तर देना ही नहीं चाहती।

बर्नार्डो : कहो, होरेशियो! तुम तो कांपने लगे और पीले पड़ गए। यह सब कुछ कल्पना की अपेक्षा क्या अधिक सत्य नहीं है? अब इस सम्बन्ध में तुम्हारा विचार क्या है?

होरेशियो : ईश्वर साक्षी है, यदि अपनी आँखों से न देखता तो इस सत्य पर विश्वास न करता।

मार्सेलस : क्या यह प्रेत-छाया महाराज के अनुरूप नहीं है?

होरेशियो : है, ठीक वैसे ही जैसे तुम अपनी अनुकृति हो। महत्वाकांक्षी नार्वे राज्य से जब उन्होंने युद्ध किया था तो उनके शरीर पर ठीक ऐसा ही शरीर-त्राण सुशोभित था; बात करते करते क्रोध में आकर जिस दिन, एक बार, उन्होंने हथौड़े जैसे परशु को हिम पर दे मारा था, उस दिन भी, उनके मुख पर आज जैसा ही क्रोध प्रगट हो रहा था। सचमुच यह सर्व आश्चर्यजनक है।

मार्सेलस : दो बार पहले भी यह प्रेत-छाया, ठीक ऐसी ही अर्धरात्रि के समय, हमारे सामने से सैनिक गति से चली गई।

होरेशियो : किस विचार को प्रधानता दूँ, समझ में नहीं आता; साधारण रूप से भी और मेरी विचार-सीमा में भी, यह सब, अपने राज्य में किसी विचित्र अमंगल का द्योतक है।

मार्सेलस : अच्छा; बैठो और यदि कोई जानता हो तो पहले यह बताओ कि आजकल इतना कठोर और कड़ा पहरा क्यों रहता है? हमारे देशवासी रात भर इतना परिश्रम क्यों करते हैं? दिन भर पीतल की तोपें क्यों ढाली जा रही हैं? विदेशों से युद्धास्त्र क्यों मंगाए जारहे हैं? पोत-निर्माताओं से इतना काम

क्यों लिया जारहा है कि सप्ताह में उन्हें अपने काम से आदित्यवार तक की छुट्टी नहीं मिल पाती? ऐसा भविष्य में क्या होने वाला है जिस के कारण, पसीने से सिक्त शीघ्रता से युक्त दिन रूपी मज़दूर रात्रि रूपी मज़दूरनी के साथ सम्बन्धित हो रहा है? क्या कोई इस विषय में मुझे कुछ बता सकता है?

होरेशियो : यह मैं बता सकता हूँ। सुनने में ऐसा आ रहा है कि नार्वे के राजा फ़ार्टिनब्रास ने गर्वोन्मत्त होकर हमारे पूर्व-महाराज को, जिनकी प्रतिमूर्ति अभी हमारे सामने प्रगट हुई थी, युद्ध के लिए ललकारा था: और उस युद्ध में हमारे वीर हेमलेट—हमारे देशवासी उन्हें इसी दृष्टि से देखते थे—द्वारा उसका निधन हो गया। चुनौती नियमों तथा विधान द्वारा स्वीकृत एक मुद्रांकित सन्धि के अनुसार, फ़ार्टिनब्रास का सारा अधिकृत राज्य, उसकी मृत्यु के उपरान्त, विजेता के अधिकार में आ गया: हमारे महाराज ने भी ठीक वैसे ही अपने राज्य का समान भाग दांव में लगा दिया था जो विजय प्राप्त कर लेने पर फ़ार्टिनब्रास के परम्परागत अधिकार में चला गया होता; उस विधान और अनुच्छेद के अनुसार फ़ार्टिनब्रास की सारी सम्पत्ति महाराज के अधिकार में आ गई परन्तु अपरिपक्व धैर्यशाली तथा क्रोधान्वित युवक फ़ार्टिनब्रास ने आजकल जहाँ तहाँ नार्वे के समीप, कुछ ऐसे उच्छृंखल, पेट-भोगी वीरों को एकत्रित कर लिया है जो प्रत्येक साहसपूर्ण कार्य में झोंके जाने के उपादान हैं। यह स्पष्ट है कि उसकी यह योजना उस समस्त सम्पत्ति को बलपूर्वक हमारे पास से पुनः हस्तगत करने के लिए है जो मान्य शर्तों के अनुसार, अनिवार्य रूप से उसके पिता के हाथ से निकल चुकी है। हमारी तैय्यारी का, मेरी समझ में, यही कारण है, हमारे पहरा रखने और शीघ्रता करने तथा अपने देश में सब वस्तुओं को तैयार रखने का भी यही रहस्य है।

बर्नार्डो : मेरा भी यही विचार है; जो महाराज पहले युद्ध का कारण रहे और जो अब भी हैं, उन्हीं के अनुरूप इस सशस्त्र, विशाल मूर्ति का, हमारे प्रहरकाल में प्रगट होना, संभव है, कुछ उपयोगी सिद्ध हो।

होरेशियो : इसका प्रगट होना हमारे मानसिक-चक्षु में एक फफोला है। रोम के विशाल और समृद्ध राज्य में परम वीर जूलियस की मृत्यु से कुछ पूर्व, ऐसा हुआ कि समाधियाँ शव-रिक्त हो गईं और धवल वस्त्राच्छादित शव वहाँ की गलियों में चीत्कार तथा अस्पष्ट नाद करने लगे; उस समय तारों से अग्नि की झड़ी तथा ओस के स्थान पर रक्त-बिन्दु गिरने लगे, सूर्य में अनेक उत्पात हुए और चन्द्रमा, वरुण के साम्राज्य का आधारभूत चन्द्रमा, ग्रहण के कारण प्रलय-दिवस की तरह पीला पड़ गया। ठीक उसी प्रकार भयंकर घटनाओं की पूर्व पीठिका एवं भावी शकुनों की एक प्रस्तावना, हमारे देशवासियों के सामने आकाश एवं पृथ्वी—दोनों ने—भाग्य के पूर्वसूचक भयंकर रूप में प्रस्तुत कर दी है।

[प्रेतात्मा का पुनः प्रवेश]

परन्तु, शान्त! देखो, वह पुनः आ रही है। मैं उसी के सामने से उसके दूसरी ओर जाऊँगा, चाहे वह मुझे भस्म ही कर दे। रुको, मायावी! यदि तुम में शब्द-बल हो, यदि तुम में वाक्-शक्ति हो तो मुझ से बोलो; यदि कोई ऐसा शुभ कार्य हो जिसके करने से तुम्हें शान्ति और मुझे गौरव प्राप्त हो तो मुझ से कहो; यदि तुम्हारे देश के भाग्य का कोई ऐसा रहस्य हो जिसकी जानकारी से अमंगल नष्ट हो जाय तो मुझे बताओ; अथवा यदि अपने जीवन काल में किसी का धन बलात् हस्तगत कर तुमने उसे पृथ्वी के गर्भ में एकत्रित कर दिया है—जिसके कारण कहा जाता है कि प्रेत की आत्माएँ मृत-वेश में प्रायः भटकती रहती हैं—[मुर्गा—बोलता है] तो उसके विषय में मुझ से कहो; ठहरो बोलो!! मार्सेलस उसे रोको।

मार्सेलस : क्या उस पर अपनी कुल्हाड़ी का प्रहार करूँ ?

होरेशियोः यदि वह न रुके तो ऐसा भी !

बर्नार्डो : वह दिखाई दे रही है ।

होरेशियो : हाँ, वह दिखाई दे रही है !

मार्सेलस : लो, वह तो चली गई ।

(प्रेतात्मा का प्रस्थान)

ऐसी भव्य वस्तु के ऊपर बल-प्रयोग, उसके प्रति सर्वथा अन्याय है । वह वायु की तरह अजेय है और हमारे व्यर्थ प्रहार केवल मात्र हमारे ही अट्टहास हैं ।

बर्नार्डो : वह बोलने ही वाली थी कि तमचूर * बोल पड़ा ।

होरेशियो : और वह उसी प्रकार चल दी जिस प्रकार किसी भयंकर आह्वान को सुन कर कोई दोषी; मैंने सुना है कि प्रातःकाल की घोषणा देनेवाला तमचूर, अपने ऊँचे और तीखे स्वर से दिवस-देवता को जगा देता है और उसकी चेतावनी पर उच्छृंखल तथा पथभ्रष्ट आत्माएँ, चाहे वे समुद्र में हों या अग्नि में, पृथ्वी पर हों या आकाश में, वे अपने बन्दी-गृह को त्वरित गति से लौट जाती हैं । इसकी सत्यता प्रस्तुत दृश्य ने प्रमाणित कर दी है ।

मार्सेलस : तमचूर के बोलने पर वह अदृश्य हो गई । कुछ मनुष्य कहते हैं कि जब हमारे रक्षक (ईसा) का जन्म-दिवस मनानेवाली ऋतु आती है तो भोर का पक्षी सारी रात गाता है और तब कोई प्रेतात्मा इधर उधर नहीं घूम सकती; उस ऋतु की रजनी बड़ी मंगलमयी होती है, ग्रहों में संघर्ष नहीं होता और समय इतना पवित्र और शुभ होता है कि न तो कोई परी अपना प्रभाव डाल सकती है और न कोई डाकिनी किसी पर जादू कर सकती है ।

होरेशियो : मैंने भी यही सुना है और बहुत कुछ पर मैं विश्वास भी करता हूँ । पर...वह देखते हो सामने ! प्रभात, अपनी ताम्र-रंग की पोशाक पहिने, सामने की पूर्वी पहाड़ी पर गिरी हुई ओस के ऊपर उतर रहा है; अब हम अपना पहरा समाप्त करें; मेरा विचार है कि आज की रात के दृश्य का समाचार युवक हेमलेट को दे दें; क्योंकि मेरा विश्वास है कि यह मौन आत्मा उससे अवश्य बातचीत करेगी । कहो, हेमलेट के प्रति अपने कर्तव्य और स्नेह को ध्यान में रखते हुए, उससे यह सब बता देने के लिए सहमत हो ?

मार्सेलस : हाँ, हमें ऐसा ही करना चाहिए; और मुझे मालूम है आज प्रातः सुगमता से उनसे मिलने का स्थान कौन सा है ?

[प्रस्थान]

एम. एस. जे. कालेज,
भरतपुर

—सोमनाथ गुप्त
एम. ए; पी. एच. डी

सोवियत संघ में नाटक

सोवियत संघ में ९०० के लगभग आपेरा, संगीत और नाटक थिएटर हैं । इससे यह ज्ञात हो सकता है कि सोवियत संघ में थिएटर और नाट्य कला कितनी लोकप्रिय है ! सोवियत जनता थिएटरों की बहुत शौक़ीन है । सोवियत नागरिकों की दृष्टि में थिएटर केवल मनोरंजन की ही वस्तु नहीं हैं—अपितु ये भी एक प्रकार के शिक्षणालय हैं । सोवियत में थिएटरों का यह उच्च उद्देश्य है कि वे जीवन को सुशिक्षित, सुसंस्कृत और उन्नत बनाएँ और उनके द्वारा मानव के श्रेष्ठतम गुणों का विकास हो ।

—न० ग्रोमोव
(सोवियत भूमि)

---

* तमचूर—सं०···ताम्रचूड़ (मुर्गा)

स्वप्न-भंग

दिन, दिन पर दिन !

उदास और आँसूभरी प्रभातें। अलसाई दोपहरियाँ और सूनी सूनी सन्ध्याएँ—सब एक एक कर ओझल हो गईं।

कमलिनी को कुछ न मिला। वह अकेली और अकेली खेती गई। जब ब्याह हुआ था तो, सबने मज़ाक किया था कि अब तो कमलिनी बहन 'अपने उनसे' मिल कर रहेगी। उनमें खो जाएगी और हमें भूल जाएगी।

और कमलिनी ने भी क़रीब क़रीब यही सोचा था।

किन्तु, ऐसा कुछ न हुआ।

बालापन के सपने, सपने ही रहे। होठों की हँसी पूरी खिल भी न पाई। और आँखों का नूर शरमा कर मुरझा गया।

हालां कि शहनाइयाँ बजीं और कमलिनी को सुहाग-सिन्दूर भी मिला। लेकिन, उसका 'सुहाग' भोर का सूरज नहीं था न था साँझ का झिलमिल तारा! वह था जीवन के सबसे गए गुज़रे नैराश्य का अन्तिम चिन्ह!

देसाई सेठ बूढ़े थे। दुबले पतले थे। उनकी गर्दन हिलती थी। पीठ झुक गई थी। जीवन में अब औरत नहीं, लाठी उनका सहारा थी।

माँ ने कहा था—पति, स्त्री का देवता है। पिता जी ने आशीष दी थी। भाइयों ने उसका भला चाहा था और पड़ोसिनों ने उसके भाग्य की आकांक्षा की थी और बताया था कि कइयों को उससे ईर्ष्या है।

क्या ये सब झूठे हैं?—माता, पिता, भाई, पड़ोसिनें, सखियाँ। सब झूठे हैं?

इस प्रश्न का उत्तर नहीं मिलता। झूठ-सच का जवाब नहीं मिलता!

कमलिनी—कमलिनी थी। नीली आँखों पर काली भौंहें थीं और काली भौंहों पर काली अलकें थीं। कण्ठ में माधुर्य था। स्वर में सारल्य था और यौवन में तारल्य था। और इन सबसे अनूठी थी कमल की चपलता और इन सबसे अजब था कमल का मौन। दिनों तक हँसती रहती और दिनों तक चुप रह जाती! जब वह हँसती—खिलखिला कर मोती बरसाती तो, उसे कोई रोक न पाता! न दादा, न भैया न बहनें। और जब सब हार जाते तो अम्मा रसोई से बाहर निकल आतीं और कमल को चुप करने के लिए क्रुद्ध दृष्टि से उसे देखतीं। पर आँख मिलते ही वह हँस देती और सारा घर हँसता रहता।

क्या यह सच है? सपना तो नहीं था यह?

कमलिनी सोचती है--अवश्य सपना था!

सपने की थाह पाने और तह तक जाने, वह दूरी नापती है। दिल्ली! दिल्ली से कोटा और कोटा से रतलाम। रतलाम में फ्रण्टियर रुकता है। रतलाम से बदली। तीन-चार घण्टे का 'रन' और यह आया इन्दौर। इन्दौर में अपना घर। अपनी बाड़ी। अपनी सखियाँ और अपनी माँ! सबसे प्यारी माँ। सबसे अच्छी माँ—हँसी रोक देने को आनेवाली और स्वयं हँस कर जानेवाली माँ!......

कमला को हँसी आ गई।

उसके मन में, सपने में नैहर था, इन्दौर था!

सुसराल साकार था—दिल्ली। खिड़की के नीचे थी दिल्ली! अजनबी और गरम दिल दिल्ली। जहाँ बसें चलती हैं और काँग्रेस सरकार राज्य करती है। इन्दौर में उसका अपना राज्य है—जहाँ, वह खेलती है, कूदती है। खिलखिला कर हँसती है। इतने ज़ोर से हँसती है कि पड़ोसिन पण्डिताइन उसे निर्लज्ज और न जाने क्या क्या समझती हैं!

दिल्ली के लोगों को शायद हँसना नहीं आता। यहाँ हँसने से मना किया जाता है—बहू ज़रा धीरे हँसो, धीरे बोलो! अपनी जिठानी से कमला दिन में तीन बार मिलती है और वह तीनों बार कमल को धीमे बोलने और धीरे चलने का आदेश देती है!

जिठानी क्या जाने कमल क्या है?—वह बी. ए. पास है!

बी. ए. क्या होता है?—जिठानी क्या जाने? उसके पिता के पास पैसा नहीं था। 'इनके'

घरवाले धनी हैं। पास में पैसा है; जायदाद है, सब कुछ है।

इसी से तो, वह इस घर आई। पिता ग़रीब थे इसलिए उसने उनके फ़ैसले का विरोध नहीं किया। वह ग़रीबी का, दीनता का विरोध कैसे करती? वह मजबूरी के सिर पर पाँव न रख सकी। अपने साथ हँसनेवाली माँ को वह कैसे रुलाती!

शहनाइयाँ बज उठीं। बाजे ज़ोर ज़ोर से बजे—

और एक सूखा-सा खुरदरा हाथ, उसकी हलदिया हथेली में रख दिया गया।

निर्जीव और निष्प्राण था वह हाथ!

मुर्दा और बेरहम था वह हाथ!—वह हाथ नहीं पंजा था। फाँसी का बाघनख था।

पिचके गाल। सूखी हँसी। हड्डियाँ और हड्डियों का प्रतिनिधि चेहरा। चाल में लड़खड़ाहट और हाल में बीमारियाँ!—क्या यही हैं देसाई सेठ? क्या सेठ ऐसे होते हैं? क्या यही हैं उसके पति? पति—धर्म शास्त्रों ने जिसके गीत गाए हैं!

झूठ! झूठ! झूठ!—उसने दीवार पर पेन्सिल से सतरवीं बार लिखा—'झूठ!'

जीवन में पहली बार, एण्ट्रेन्स में उसने पति का—एक युवा का सपना देखा था। सपने में वह उससे मिला था। बोला था और उसे गले लगा कर हँसा था! फिर—दिन बीत गए और सपना सच्चा होने के पहले झूठा हो गया। क्या दुनिया सिवाय झूठ के कुछ नहीं? और दिनू भी क्या झूठा था?—वह कायर था, और क्या कायर हमेशा झूठे नहीं होते?......

एक दुबली-पतली छाया कमल के सामने आकर खड़ी हो गई। वही चेहरा, वही आँखें और भौंहों तक आ रुके केश!

'दिनू!'—कमल ने उसे पुकारा। वह मुस्कराया और कहने लगा—'बम्बई में मेरे कई मित्र हैं। तुम... फ़िक्र न करो......कहीं भी टिक रहेंगे। तुम ग्रेज्युएट हो......स्कूल में सर्विस कर लेना। मैं किसी भी अख़बार में काम करूँगा। नहीं तो, भले किसी मिल का साँचा चलाऊँगा, पर, तुम्हें देसाई बूढ़े के हाथ न जाने दूँगा। मेरा फूल, मेरा मेरा रहेगा। मेरा मन, मेरा रहेगा। मेरी आत्मा मेरी रहेगी!......

'तो मैं तैयार हूँ रे'—कमला ने कहा।

'तू तैयार रहना। मैं भोर के अंधेरे में आऊँगा। तू चुपचाप दरवाज़े के पास खड़ी रहना। दोनों चल देंगे। साढ़े पाँच की गाड़ी मिलेगी।

कमला के मन का बोझ उतर गया।

वह पूरे दिन और पूरी रात सपना देखती रही। जागती रही और कभी न देखा बम्बई देखती रही। बम्बई शहर, उसकी हलचल और उसका समस्त कम्पन-मय वेग उसकी अपनी देह में समा गया जैसे!

ग्यारह बजे! बारह बजे! रात अधिक काली और डरावनी होती गई!

एक! डेढ़ ..! तीन बजे!......उसके दादा शौच को उठे और फिर सो गए।......चार बजे भाभी का मुन्ना रोया।......साढ़े चार......माता जी सोई थीं। उसने उनके पैरों की धूल ली। वे अपने निर्मल बदन से मानों उसे आशीष दे रही थीं। दो तीन सीढ़ियाँ उतरी, जी घबराने लगा। और वह फिर से लौट गई। पौने पाँच हो गए।

खिड़की के नीचे किसी की पद-चाप सुनाई दी। वह एक साँस में सीढ़ियाँ उतर आई। धीरे से दरवाज़ा खोला—बाहर सुनसान था। वह खड़ी ही रही।

बाहर अंधेरा था। वह खड़ी ही रही।......

बाहर उजेला होने लगा। धूप उसके पैरों तक आ गई।......

आँखें अपलक थीं। सिर चकरा रहा था और दिनेश को क्या हुआ?

तभी शहनाइयाँ ज़ोर से बजने लगी थीं।

सबने पूछा था दिनेश कहाँ गया?

न आँसू थमते थे न सिसकन रुकती थी।

और तब शहनाइयाँ बज उठीं। कमला को याद है उसने सिर झुकाए वेदी के चक्कर काटे थे। सात बार वह घूमी थी। और लगा था जैसे सारी दुनिया घूम रही है। पीतल के बाजे का कर्णकटु स्वर अभी भी उसके कानों में गूँज रहा है। वेदी...अब भी उसके चक्कर काट रही है...लोग कहते हैं—वह बेसुध हो वेदी पर गिर पड़ी थी। क़िस्मत ने साथ दिया कि साड़ी नहीं जली... लोग क्या जानें? साड़ी जल जाती और कमल जल जाती तो, कितना अच्छा होता?

कमल नहीं जानती —तब से आज तक उसे होश आया या नहीं ? सुध आई या अब तक वह बेसुध ही है ?

दिनू सामने खड़ा था—

'तू क्यों खड़ा है यहाँ कायर, मैं बम्बई नहीं आने की... '—फिर वह सिर थाम कर बैठ गई ।

नौकरानी कमरे की बत्ती जला गई । फेन की गति बढ़ा गई । मुनिया शाम का पेपर रख गई ।

हँसते हुए देसाई सेठ आए । अपने सूखे होठों पर वे भीगी मुस्कान लाना चाहते हैं, मन्द आँखों में तेज़ लाना चाहते हैं, और इस तरह बुढ़ापे को यौवन का प्रतीक बनाना चाहते हैं । उन्हें देख कर कमलिनी को न हँसी आती है, न रोना आता है । एक दिन पूछते थे—'तुम्हें क्या चाहिए मेरी रानी ? कुछ जरूरत हो तो मुनीम को कहलवा देना ।'

क्या मुनीम, कमलिनी बी. ए. का पति है ?

वह क्या चाहे ? वह कुछ नहीं चाहती है । एक दिन कह देना चाहा, पर कह न सकी—बातें होठों पर आकर रुक गईं । कहना चाहा—'आप से दूर रहना चाहती हूँ । क्योंकि आपको देख कर मृत्यु की याद आती है और मैं मौत के पास रहना नहीं चाहती । मैं जीवन की आग चाहती हूँ और आप में बुढ़ापे का पानी है । पानी है—जिसे अब भगवान् के चरण धोने में लगना है ।'

कमलिनी मुरझा गई । उसके होंठ सफ़ेद पड़ गए और उसकी पलकों का रंग फीका पड़ गया । उसकी आँखों के नीचे बूँदों के श्यामल चिह्न पड़ गए । वह सब कुछ भूल गई । पढ़ा-लिखा भूल गई । माँ-बाप भूल गई । घर-बार और नाते-रिश्ते भूल गई । उसे कुछ याद न रहा । किन्तु वह एक चीज़ न भूली और उसे एक ही बात याद रही—'कमल, तू कल चली जाएगी ?'

कमला तू चली जाएगी, उसे कोई अब भी पूछ रहा है । उसके कन्धे पर हाथ रक्खे और वह पूछनेवाले के सीने में सिर छिपाए रो रही है । लगातार रो रही है । रो कर, बरस कर मिट जाना चाहती है ।

कमला तू चली जाएगी ?

चली न जाऊँगी तो, क्या तेरे लिए रुकूँगी, का...य...र ?

गाली देना पाप है । उसका क्या कुसूर है ? वह क्या करता ।

वह उठ कर उसकी तसवीर के पास गई । वह हँस रहा था । उसको सिर नवाया और उसको हाथ जोड़े । पर, वह अब भी हँस रहा था—

उसने खिड़की के बाहर देखा । पार—दूर तक देखा—वह बृहत् छायाकार में अब भी मुस्करा रहा था । वह बिजली के खम्भे के नीचे खड़ा था ।...सामने छत पर मौजूद था ।...उषा बेन की खिड़की में था...चलते हुए रेडियो से उसी का कण्ठ स्वर आ रहा था ?...?

कमला की हिचकियाँ बँध गईं !

फिर दिनों के पंख लग गए !

पर, कमला के मन की पीड़ा वैसी ही रही । वह तो पंखहीना पंछिनी-सी तड़पती ही रही । दिनू उसे रात दिन घेरे रहता । वह आता, उससे बात करता; हँसता-बोलता, उसे खिझाता-रिझाता और रुलाता !

जब दिन भर की थकी, उदास विहंगिनी की तरह रात धरती पर उतर आई और तारों में विरहनियों की खामोश हँसी उतर गई तो, कमलिनी सदा की तरह अपने पलंग पर लेटी सपनों की जाली से झाँक कर जगत् को देखने लगी—

कमलिनी आँखें बन्द किए थी—पिछली घटनाएँ चल रही थीं । लगा कोई कमरे में आया है । दिनू ही आया है । उसने कहा—'बैठो' ।

कमरे में प्रविष्ट परछाँई पास में बैठ गई ।

'तुम इतनी देर-से क्यों आए ?...मैं खिड़की में खड़ी तुम्हारी राह देखती रह गई...'

सपनों का राजकुमार मुस्करा दिया । उसकी तन्वंगी मुस्कान में संजीवनी थी ।

वह वैसी ही लेटी रही । आगन्तुक उसके पास लेट गया ।

'मेरे निकट आओ...' । उसने कमल को अपनी बाहुओं में भर लिया ।

कमल कुछ न बोली ।

स्वप्न चल रहा था, अतः प्रत्यक्ष गतिहीन था । समय थम गया था । तब...उसे अपने कपोलों पर हलकी ऊष्मा का भान हुआ । दिनू का सामीप्य सजीव प्रतीत हो रहा था । आज भी वैसा ही लग रहा था । वह चुप रही । नींद में जैसे मुस्कराती रही ! पलकों पर आँसू

जमे थे। कपोलों पर रुलाई की रेखाएँ बन आई थीं। छाती अब भी धड़क रही थी। लम्बी साँसें उठ कर गिर रही थीं।

और तभी खिड़की के नीचे एक कार—लॉरी से टकरा गई। ज़ोर की आवाज़ हुई। कमलिनी चौंक कर बैठ गई। उसका सिर चकराने लगा—'दिनू'...नहीं देसाई सेठ पास में लेटे थे। देख कर उसकी आँखें फटी रह गईं।—'तुम? तुम...?'

'आपने...ही तो बुलाया था, पास...बिठाया था...' सेठ जी ने कहा।

'तुम्हें...मैंने बुलाया था और अपने पास बिठाया था? हा-हा-हा'—उसका अट्टहास उठ कर गिरा और वह पाषाण की तरह जड़-अचेतन हो गई। आँखों से धाराएँ चल रही थीं। वह ज़ोर ज़ोर से सुबक उठी—'तुमने मेरा सतीत्व नष्ट कर दिया...पापी, मेरा तप-भंग कर दिया। मैंने...तुम्हारा...क्या बिगाड़ा था...क्या बिगाड़ा था...' पलंग की पट्टी पर सिर पटकने की ध्वनि आती रही।

वह ज़ोर ज़ोर से रो रही थी। कपाल पर अरुण रक्त-रेखाएँ चल रही थीं। बाहर नौकर-चाकर एकत्र हो गए थे। वे समझ नहीं पा रहे थे कि सेठ ने सेठानी का क्या भंग कर दिया और क्या चुरा लिया है? मुनिया खाँस कर भीतर आ गई—कमलिनी बिलख रही थी। देसाई सेठ अपराधी की तरह सामने खड़े थे।

'मुनिया...री मुनिया, गाड़ी मँगा...मेरी मुनिया...मैं अभी इन्दौर जाऊँगी...देखती क्या है!'

'जा, देखती क्या है?' देसाई सेठ ने यन्त्रवत् दुहराया। वे अपराधी की भाँति सज़ा पाने को तैयार हो गए!

बाहर विधवा काली रात अकेली रो रही थी।

मलाड,
बम्बई

—परदेशी

हम जो कुछ खाते हैं उससे नहीं परन्तु जो अन्न हमें पच जाता है उससे हमें शक्ति प्राप्त होती है।

◆

हम जो कुछ कमाते हैं उससे नहीं परन्तु जो बचा सकते हैं उससे हम धनवान बनते हैं।

◆

हम जो कुछ पढ़ते हैं उससे नहीं परन्तु जो पढ़ कर स्मरण रख सकते हैं उससे हम विद्वान बनते हैं।

◆

हम जो कुछ कहते हैं उससे नहीं परन्तु जो करते हैं उससे सच्चे कहलाते हैं।

◆

हम क्या कहते हैं इससे नहीं परन्तु किस प्रकार कहते हैं इससे लोगों से हमारे सम्बन्ध बनते-बिगड़ते हैं।

◆

असफलता नहीं पर क्षुद्र लक्ष्य पाप है।

—संग्रहकर्त्ता : एन. एम. चन्दानी
(नागपुर टाइम्स से)

महिला-मण्डल

[दैनिक "समाचार" के सम्पादकीय आफ़िस का एक छोटा सा कमरा—मेजें पुस्तकों, पत्रिकाओं तथा अन्य प्रकार के अखबारों से लदी हैं; रद्दी की टोकरियाँ भरी पड़ी हैं। दीवारों पर सुन्दर स्त्रियों के चित्र टंगे हैं जिनमें वे भिन्न-भिन्न प्रकार की क्रीमों, पाउडर तथा लिपस्टिकों का प्रयोग करती हुई दिखाई गई हैं। खिड़की में से बाहर देखने पर दूर तक ऊँची ऊँची इमारतें दृष्टिगोचर होती हैं।

इस समय कमरा प्रायः खाली है—केवल एक पचास वर्ष का व्यक्ति बीचवाली मेज़ पर बैठा बड़ी तेजी से टाइपराइटर चला रहा है—उसके बाँई ओर टेलीफ़ोन रखी है। सम्पादक साहब, आधुनिक ढंग के दुबले-पतले शोख तबीयत के पत्रकार, प्रवेश करते हैं]

सम्पादक : सब ठीक ठाक चल रहा है, मदन-गोपाल?

मदनगोपाल : ओह! आप—नमस्कार! जी हाँ, चल ही रहा है—चार बजे तक यह पृष्ठ तैयार हो जाना चाहिए........

सम्पादक : चार बजे! कुछ ज्यादा ही देर हो जाएगी। प्रेस वाले हर हफ्ते चिल्लाते हैं—मुझे मैनेजर साहब अभी अभी कह कर गए हैं कि यदि चार बजे से पाँच मिनट भी इधर उधर हुए तो वे रविवार को साप्ताहिक नहीं निकाल सकेंगे।

मदनगोपाल : अपनी ओर से तो भरसक प्रयत्न कर रहा हूँ—किन्तु साहब बड़ी मुसीबत का काम है यह—

सम्पादक : (खाली कुर्सियों की ओर संकेत करके) और यह लड़के कहाँ हैं?

मदनगोपाल : सातवलेकर तो कल रात बहुत देर तक काम करता रहा—इसलिए आने में कुछ देर हो गई होगी। प्रकाश अभिनेत्री "सुन्दर लता" से भेंट करने गए हैं।

सम्पादक : (नाक चढ़ा कर) उँह! सुन्दर लता!!

मदनगोपाल : हमने अपने पाठकों को हर रविवार के दिन एक अभिनेत्री के बारे में बातचीत करने का वचन दे रखा है। जो अधिक लोकप्रिय तथा प्रसिद्ध हैं उनसे भेंट कर चुके हैं।

सम्पादक : अच्छा—जैसे जी में आए करो, परन्तु उसकी फ़ोटो मत छापना।

मदनगोपाल : हमारे पास उसकी पन्द्रह साल पहले की एक फ़ोटो रखी है—वह ऐसी बुरी नहीं—और उसने उस पर हस्ताक्षर भी कर रखे हैं.........

सम्पादक : हस्ताक्षर! तुम्हारा मतलब उसके अंगूठे की छाप से है?

मदनगोपाल : नहीं जी—बराबर हस्ताक्षर हैं और साथ में यह भी लिखा है "मेरे सहस्रों फ़िल्मी मित्रों के नाम जिन्हें मुझ से अनुराग है—"

सम्पादक : इस सप्ताह का लेख क्या है?

मदनगोपाल : (घृणित भाव से) : "गर्भवती स्त्री के लिए उपयोगी वस्त्र।" देखिए, सम्पादक साहब आप के "महिला मण्डल" की "लीला दीदी" बने मुझे आज तीन साल हो गए हैं—अब मुझे कोई और काम दीजिए जो पुरुषों के योग्य हो—इससे तो थक गया हूँ—अजीब अजीब पत्र आते हैं—कोमल करुणार्द्र—यह सुनिए! 'प्रिय दीदी, तुम्हारा लेख "सुखी कुटुम्ब" बहुत ही अच्छा लगा। अब मैंने फ़ैसला कर लिया है कि एक बच्चा होना ही चाहिए; किन्तु मेरे स्वामी 'नेवी' में काम करते हैं ....अह!'

सम्पादक : थोड़ी देर और हिम्मत बांध कर चलाए चलो.........मैं किसी योग्य स्त्री की खोज में हूँ जिसको आपका काम सौंप सकूँ—देखो अगले महीने तक तो मिल दी जानी चाहिए.........

मदनगोपाल : हाँ, यह भार उसे सौंप देने में मुझे अत्यन्त प्रसन्नता होगी—आप चाहें तो

मुझे बच्चों का "श्याम चाचा" बनादें परन्तु "महिला मण्डल" की "सर्वप्रिय दीदी" के बंधन से मुक्त करें ।

सम्पादक : ओह ! याद आ गया — देखो जी "रेशम फ़ेस पाउडर" का नाम कहीं न कहीं जरूर लिखना —अभी कुछ ही दिन हुए उन्होंने कई डब्बे नमूने की तौर पर भेजे थे—और विज्ञापन भी देते ही रहते हैं—इसलिए ज़रा खुश ही रखना चाहिए उन्हें........

मदनगोपाल : कह दूंगा कि मैंने स्वयं प्रयोग किया है और इतना उत्तम पाया कि लोग अब मुझे पहचान तक नहीं सकते !!

सम्पादक : (हँसते हुए): अच्छा आप के काम में और बाधा नहीं डालूँगा—भगवान् तुम्हारा भला करे—और देखो, जैसे भी बन पड़े तीन बजे तक तैयार कर दो :

मदनगोपाल : जी अच्छा ।

(सम्पादक के जाते ही फिर टाइप करने लगता है—टेलीफ़ोन बजता है)

मदनगोपाल : (सिगरेट सुलगाकर टेलीफ़ोन उठाता है) जी हाँ......यह दैनिक "समाचार" का ही दफ्तर है—ओह ! आप 'लीला दीदी' से बात करना चाहती हैं.........क्षमा कीजिए, इस समय तो वह बाहिर गई हुई हैं......कह नहीं सकता......सम्भव है "ड्राई क्लीनर" (Dry Cleaner) के पास गई हों......आप कुछ संदेशा देना चाहती हैं क्या ?...जी हाँ......मैं लिख लेता हूँ (संदेशा दुहराता तथा लिखता है)...... श्रीमती जल मातुंगवाला ने टेलीफ़ोन करके पूछा है कि उनका नाम उन लोगों की सूची में क्यों नहीं प्रकाशित किया गया, जो बाटलीवाला की पिछले बुद्ध को जुहू पर चाँदनी रात की पार्टी में उपस्थित थे......जी हाँ- मैंने लिख लिया ......मुझे विश्वास है कि दीदी को इस भूल के लिए स्वयं बहुत खेद होगा...... हाँ, कुछ ग़लती ही हुई...... जी, अवश्य आते ही कह दूँगा......नमस्कार......

(टेलीफ़ोन रखता है......प्रकाश आता है)

प्रकाश : (परेशानी से कुर्सी में गिरते हुए) हूँ– कैसा जीवन......कैसी स्त्री !

मदनगोपाल: क्यों, क्या हुआ ?

प्रकाश, : 'महिला मण्डल' के लिये रूप रंग की रानी 'सुन्दर लता' से पृथक् भेंट करके आ रहा हूँ ।

मदनगोपाल : जब तुम पहुँचे तो क्या कर रही थी ?

प्रकाश : बाल रंग रही थी......अपनी वर्षगांठ के शुभागमन में ।

मदनगोपाल : यह काम ही ऐसा है......इस में यह सब कुछ करना ही पड़ता है......अच्छा तुम जल्दी से लेख लिख कर दो मुझे......तीन बजे से पहले देना है !

प्रकाश : अभी तो बहुत समय है ।

मदनगोपाल : सम्पादक महाशय और मैनेजर तो कब से चिल्ला रहे हैं !

प्रकाश : (अपने टाइपराइटर में कागज़ डालते हुए) मैंने उससे कहा कि हमारे पाठकों को उसके विवाह सम्बन्धी विचारों को जानने की बहुत उत्सुकता है—कहने लगी मुझे शादी से कोई विरोध नहीं —लड़कियों को शादी करनी ही चाहिए—जब मैं जवान थी तो मैं भी काफ़ी शादी किया करती थी--अब अपना सारा समय अपनी कला को अर्पित करती हूँ ।

मदनगोपाल : और अपनी नाती को--

प्रकाश : मैंने उसके "नशा बन्दी", "हिन्दुस्तानी क्रिकेट टीम", "रेलवे बजट" तथा "राशन की क़ीमतें बढ़ाने" के बारे में विचारों का भी पता लगाया है--

मदनगोपाल : (उसके लम्बे लैक्चर को काट कर) : अरे, दोस्त, तुम तो शादी-शुदा आदमी को—ज़रा बताना तो—गर्भवती स्त्री के लिए कितने दस्ताने चाहिए ?

प्रकाश : कौन है गर्भवती ?

मदनगोपाल : कोई भी हो—"गर्भवती स्त्री के लिए उपयोगी कपड़े" मेरे लेख का शीर्षक है—

प्रकाश : किन्तु दस्ताने क्यों ?

मदनगोपाल : चुन्ने मुन्ने को उठाने के लिए......

प्रकाश : बकवास बन्द करो—उनसे केवल यही कहो कि खूब खाओ और खूब काम करो—फ़र्श साफ़ करो, चक्की पीसो, कपड़े धोओ और नखरे कम करो—

मदनगोपाल : कैसी भोली बातें करते हो—'लीला दीदी' अपने पाठकों को कभी इस तरह निराश कर सकती है......इस प्रकार साफ़ साफ़ लिखने लगूँ तो यह पत्रिका ही बन्द हो जाए..... (पास रखी पत्रिकाओं को थपक कर) मैं समझता हूँ अब इन पत्रिकाओं को ही देखना पड़ेगा......तभी कुछ नए विचार आएँगे......और देखो जी...... यदि एक योग्य पत्रकार बनना है तो तुमको बहुत कुछ सीखना पड़ेगा। स्त्रियों की वर्तमान समस्याओं को समझना पड़ेगा।

प्रकाश : मैं तो राजनैतिक विषयों पर विशेषता प्राप्त करना चाहता हूँ ताकि इन 'लहरों' से टक्कर ले सकूँ......

मदनगोपाल : यह व्यर्थ की बातें बन्द करो और मुझे काम करने दो।

(दोनों कुछ देर तक काम करते हैं—सातवलेकर जाता है)

सातवलेकर : नमस्कार, बहिनो और भाइयो! इस सप्ताह स्त्री संसार में क्या विप्लव आया है...

मदनगोपाल : सम्पादक साहब चक्कर लगा गए हैं और कह गए हैं कि 'महिला-मण्डल' का पृष्ठ तीन बजे तक उनके पास पहुँच जाना चाहिए—समय बहुत कम है—तुम कृपा कर के बैठो और काम करो—पाठकों के प्रश्नों के उत्तर लिख कर मेरे हवाले करो।

सातवलेकर : मेरा काम तैयार है...केवल टाइप करना रहता है। सच, यहाँ एक पढ़ी, लिखी, चतुर, सुन्दर, युवती का होना आवश्यक है जो हम लोगों के साथ काम करे। कई प्रश्न ऐसे आत्मीय होते हैं कि उत्तर देने में संकोच होता है......यह देखो (दोनों को एक सवाल दिखाता है, दोनों खिलखिला कर हँसते है)...सब दिमाग़ थक जाता है, दिनों दिन बच्चों की लंगोटियाँ, गोरा रंग करने की क्रीमों, लिपस्टिकों तथा दुबले होने के साधनों के विषय में लिखते-लिखते ......क्यों, क्या कहते हो तुम?

मदनगोपाल: एक उल्टा, दो सीधे, एक आगे धागा करके सीधा जोड़ा—दो पीछे सिलाई कर के नीचे उतारी......

(सब हँसते हैं)

सातवलेकर : ज़रा सोचो—अपने जीवन के तीन अमूल्य वर्ष मैंने अमरीका में 'जर्नलिज्म' सीखने में व्यय किए...मैं पूछता हूँ क्या इसीलिए? (प्रश्न का उत्तर नहीं मिलता—टाइपराइटर तेज़ी से चलते हैं—टेलीफ़ोन की घण्टी होती है।)

मदनगोपाल: हेलो...हम सब काम में व्यस्त हैं...समय पर समाप्त हो जाएगा...आप चिन्ता न कीजिए।

(टेलीफ़ोन रख देता है)

प्रकाश : सम्पादक महाशय?

मदनगोपाल: हाँ,

सातवलेकर : (एक पत्र उठा कर)......यह सुनो, यह एक नए किस्म का धब्बा आया है—यह महिला पूछती हैं कि 'बीयर' के धब्बे मेज़पोश पर से कैसे निकाले जाएँ?

प्रकाश : धब्बे! धब्बे!! इस देश में धब्बे डालने के सिवाय और कुछ काम है भी इन स्त्रियों को—

मदनगोपाल : नींबू का रस और नमक कैसा रहेगा?

सातवलेकर : यह उपाय तो स्याही के धब्बे मिटाने को बताया था—और पिछले रविवार को ही।

मदनगोपाल : तो अब सिरका और चीनी लिख दो।

सातवलेकर : तो सिरके के दाग़ कौन मिटाएगा?

प्रकाश : व्हिस्की और चीज़ (Cheese)!

सातवलेकर : मज़ाक नहीं करो......

मदनगोपाल : 'हाइड्रोजन पेरोक्साइड' (Hydrogen Peroxide) और 'ग्लैसरीन' (Glycerine)

सातवलेकर : यह अच्छा जँचता है—और फिर बहुत से घरों में यह चीज़ें मौजूद होंगी—मेरा विचार है थोड़ा सा 'अमोनिया' भी मिला

(Ammonia) हूँ......(टाइप करता है)...ग्लिसरीन एक हिस्सा; हाइड्रोजन पेरोक्साइड तीन हिस्से और अमोनिया छः हिस्से––मिला कर अच्छी तरह रगड़ो जब तक दाग़ न मिट जाएँ––(साथियों से) क्यों, क्या ख्याल है ?

मदनगोपाल : बहुत अच्छा ।

प्रकाश : कहीं तीनों चीज़ें मिलाने से आग लगाने की सम्भावना तो नहीं !

(टेलीफ़ोन फिर बजती है)

मदनगोपाल : प्रकाश......ज़रा सुनना......मैं ज़रा इस आकांक्षित माँ का किस्सा समाप्त कर लूँ––

प्रकाश : अच्छा (टेलीफ़ोन उठाता है)...हूँ... लीला दीदी !...जी...अवश्य...यही है... मैं उन्हें फ़ोन देता हूँ (मदनगोपाल ज़ोर ज़ोर से हाथ हिला कर समझाता है कि न कर दो)...ज़रा ठहरिए वह अभी जा रही हैं......

मदनगोपाल (दबी आवाज़ से): क्या गधापन कर रहे हो ?

प्रकाश : (टेलीफ़ोन को हाथ से दबाते हुए) क्या यह भाषा एक शिष्ट युवती को शोभा देती है?

मदनगोपाल : (भद्दी आवाज में) जहन्नुम में जाओ, यह समय क्या व्यंग्य का है...उसे कह दो दीदी बाहर गई हैं......

प्रकाश : (मुस्कराते हुए, टेलीफ़ोन में)। दीदी, अभी एक मिनट में आ रही हैं...ज़रा अपने नाखून ठीक कर रही हैं...एक नया पालिश जांच रही हैं...यह लीजिए ..आ गई......

(टेलीफ़ोन मदनगोपाल के हाथ में ठोंस, स्वयं टाइप करने लगता है)

मदनगोपाल : (बारीक आवाज़ में स्त्रियों के कण्ठ स्वर की अच्छी भली नक़ल करते हुए) ओ ! लेली !...आपकी बड़ी कृपा है, आपने टेलीफ़ोन किया...मुझे बहुत हर्ष होता है अपने पाठकों की आवाज सुन कर... परसों ?...शाम को साढ़े छः बजे...यह तो आप का अनुग्रह है...जी, मैं अवश्य आऊँगी यदि कोई विशेष काम न पड़ गया तो...हूँ 'फ़ैन्सी-ड्रैस' !! तब तो अच्छी रौनक़ होगी...तो क्या मुझे भी स्वांग बन कर आना पड़ेगा...मैं क्या बनूँ...मैं सोचती हूँ मैं एक अधेड़ पुरुष का स्वाङ्ग रच कर आऊँगी, क्या विचार है आपका...कैसी मीठी मीठी बातें करती हैं आप...अवश्य ...आपको निराश कैसी कर सकती हूँ... अच्छा तो मेरी प्यारी बहन, अब विदा; नमस्कार...(टेलीफ़ोन बन्द कर अपनी प्राकृतिक आवाज़ में) गोली मारो जी !

प्रकाश : वाह ! वाह !! कैसा कमाल किया आपने दावतें खाते हो अकेले अकेले दोस्त !

सातवलेकर : मुझे भी ले चलो विशेष संवाददाता बना कर......

मदनगोपाल : यदि तुम दोनों पन्द्रह मिनट भी अपने मुँह बन्द रख सको तो सम्भव है कुछ काम हो......

सातवलेकर : केवल एक मिनट लूँगा—यह देखिए...पूना से एक युवती लिखती हैं कि वह बड़ी दुविधा में है––उसे समझ नहीं आ रही शादी किससे करे—एक ख़ूबसूरत परन्तु निर्धन युवक से जिसे वह प्रेम करती है, या एक सीधे सादे अधेड़ पुरुष से जिसके पास पैसा भी है –घर भी...! कहती हैं उत्तर तुरन्त ही "महिला मण्डल" में छाप दीजिए......

मदनगोपाल : अमीर आदमी ही से करनी चाहिए ।

सातवलेकर : यह तो कोई भी पत्रिका जिसे स्त्री संसार का तनिक भी अनुभव है कभी नहीं कहेगी...कहना यह चाहिए कि अपने हृदय को टटोलो, यदि वास्तविक प्रेम है तो उसी पर अटल रहो। प्रेम अमूल्य वस्तु है उसकी तुलना रुपए से नहीं की जा सकती......

प्रकाश : कुछ भी लिख दो—आखिर शादी होती तो 'लौटरी' ही है—कितना भी सोच विचार करो ।

(सम्पादक का प्रवेश)

सम्पादक : यह क्या ग़ज़ब कर डाला तुम लोगों ने

(हाथ में पकड़े हुए कुछ पत्र उनकी ओर हिला कर)—यह सात पत्र आए हैं और सातों ने उलहना दिया है तुम्हारे "अखरोटों के कबाब" बनाने की विधि पर—क्या लिखा था तुमने पिछले रविवार को ?

सातवलेकर : मैंने बताया था कि प्राचीन युगों में कबाब बनाते थे "अखरोट की गिरी, केले का छिलका, आम की गुठली और बबूल की छाल को पीस कर......"

सम्पादक : (बात काट कर): इन पत्रों से तो यह ज्ञात होता है कि छः कुटुम्ब पड़े पीड़ा से कराह रहे हैं...और मुझे डर है कि वकीलों से सलाह ले रहे होंगे।

सतवलेकर : यह तो बुरी बात है...मुझे विश्वास है उन्होंने कुछ ग़लत सलत चीजें मिला दी होंगी......

सम्पादक : परन्तु तुमने यह विधि कहाँ से पाई ? क्या तुम्हारी घरवाली की विशेषता है ?

(गुस्सा तेज़ है)

सतवलेकर : (क्षमा याचना के भाव से): नहीं, मैंने स्वयं बनाई थी—सोचा, नई चीज़ है अच्छी, दिलचस्प रहेगी...और फिर आपने देखा होगा कि इसमें राशन की कोई चीज़ नहीं, लोगों को कुछ तो पीड़ा सहनी ही पड़ेगी अपनी मातृ-भूमि के लिए...

सम्पादक : (मुस्कराहट रोकने पर भी नहीं रुकती): यदि लोगों की बलि ही देना चाहते हो तो सीधी तरह से कहो...

सतवलेकर : यह पहली बार है कि मेरी बताई गई विधि ग़लत हुई—आपको याद होगा कि "बैंगन की आइस-क्रीम" कितनी पसन्द आई थी बहनों को...

सम्पादक : प्रेस की स्वतन्त्रता का यह मतलब तो नहीं कि जो जी में आया छाप दिया-ध्यान रखो ऐसी शिकायत फिर न आए...

(जाता है)

सतवलेकर : (माथा ठोंक कर): यह फल मिलता है परिश्रम और मौलिकता के लिए...(कोई उत्तर नहीं देता—टाइपराइटर निरन्तर चलते हैं कुछ देर)

मदनगोपाल : (कागज़ टाईपराइटर में से निकालते हुए): शुक्र है भगवान् का—समाप्त तो हुआ...

प्रकाश : (अपना कागज़ निकाल कर): और यह लो "सुन्दर-लता" से भेंट !

मदनगोपाल : शाबाश ! तुम्हारा क्या हाल है सतवलेकर ?

सतवलेकर : (स्पीड तेज करते हुए): बस एक आध मिनट और...

(एक चंचल युवती आती है—"महिला-मण्डल" के पुरुष उसको देखते है फिर एक दूसरे को...कुछ अनुत्साहपूर्वक)

युवती : नमस्कार ! मैं "लीला दीदी" से मिलना चाहती हूँ।

(सतवलेकर मदनगोपाल की ओर संकेत करता है।)

मदनगोपाल : मुझे खेद है कि वह इस समय आफ़िस में नहीं हैं...

युवती : अच्छा, तो मैं यहीं उनकी प्रतीक्षा करती हूँ...आपको कोई बाधा तो न होगी...

मदनगोपाल : कदापि नहीं...परन्तु 'दीदी' तो जल्दी लौटने की नहीं, वे अभी अभी अस्पताल गई हैं।

युवती : बीमार हैं क्या (मदनगोपाल सिर हिलाता है)...ओह...यह तो बुरी बात हुई—मुझे बहुत बुरा मालूम हो रहा है यह जान कर...क्या कुछ ख़ास बात है ?

सातवलेकर : नहीं, कोई घबराहट की बात नहीं...वह जचगी के लिए गई हैं।

युवती : (खुशी से): सच ! यह तो बड़ी खुशी की बात है...क्या पहला 'बेबी' है ?

प्रकाश : पन्द्रहवां !

युवती : (घबरा कर): भगवान् के लिए—क्या आप सच कह रहे हैं ?

सातवलेकर : घबराइए नहीं—सम्भव है चौदहवां ही हो—ठीक नहीं कह सकता...(युवती के पाँव शिथिल पड़ जाते हैं और लड़खड़ाने-सी लगती है— सातवलेकर उठ कर उसे सहारा देकर गिरने से बचाता है......

(सम्पादक आता है)

सम्पादक : यह क्या हो रहा है ? क्या यह भी अखरोटों के कबाब का फल है ? मैनेजर मेरी जान खा रहा है और तुम यहाँ 'भारत नाट्यम्' कर रहे हो...

युवती : पानी...पानी...

मदनगोपाल : (कुछ कागज़ सम्पादक को देकर): यह रहा "महिला-मण्डल"...शाम को आ कर 'प्रूफ़' देख लूंगा।

सम्पादक : हाँ—ठीक...किन्तु इसका क्या होगा ?

मदनगोपाल : यह 'दीदी' से मिलने आई थीं...... आप चिन्ता न कीजिए......हम इनकी देखभाल कर लेंगे...(सम्पादक जाता है) सतवलेकर, अब बताओ किसी युवती को यूँ गश आ जाए तो उसे होश में लाने का क्या उपाय है ?

सतवलेकर : नहीं जानता ...डॉक्टर बुलवाओ...

मदनगोपाल : कोई शब्द-कोश; कोई होमोपैथी, कोई स्वास्थ्य-रक्षा की किताब देखो न ! और कुछ नहीं तो "स्त्री का गृहस्थ-संसार" ही देखो......

(प्रकाश किताब उठा कर पन्ने जल्दी जल्दी से पलटता है जब पर्दा गिरता है)

हार्डिकर बाग,
हैदराबाद

—विमला लूथरा

एक नए कैदी के जेल में प्रवेश करने पर वार्डर ने कहा, "यह लो, इस कागज़ पर सब से नीचे अपने हस्ताक्षर कर दो।"

"क्षमा कीजिए", कैदी ने कहा—"मुझे लिखना नहीं आता।" वार्डर ने एक क्षण भर सोचा। "अच्छा" उसने कहा—"परन्तु किस अपराध के लिए तुम्हें यहाँ आना पड़ा ?"

"जाली हस्ताक्षर करने के लिए"

"जाली हस्ताक्षर !" वार्डर ने दुहराया, "जब तुम लिख नहीं सकते, तुम पर जाली हस्ताक्षर करने का आरोप कैसे लगाया जा सकता है ?"

कैदी ने अपना सिर हिलाया। "ओह", उसने उत्तर दिया "मेरा वकील बड़ा निकम्मा था।"

—इंग्लिश डाइजेस्ट

साहित्य-चर्चा

रोमां रोलाँ : जीवन-दर्शन और कृतित्व

विश्व साहित्य में फ्रेंचसाहित्य का जो विशेष एवं विशिष्ट स्थान रहा है वह अब भी उसके यूरोप की प्रमुख भाषा न रह जाने पर बना हुआ है। एक समय था जब फ्रेंच भाषा पश्चिमी जगत में सर्वत्र प्रचलित थी। फ्रेंच साहित्य को इतना गौरवास्पद बनाने के लिए वहाँ के साहित्यकारों ने अथक परिश्रम किया है। फ्राँस के इन्हीं अमर साहित्य-महारथियों की परम्परा में उपन्यासकार रोमां रोलाँ का महत्वपूर्ण स्थान है।

रोलाँ का जन्म मध्य-फ्राँस में निमारने प्रान्त में क्लेमसी नामक कस्बे में २९ जनवरी १८६६ में हुआ था। रोलाँ मध्यम वर्ग के एक परिवार में उत्पन्न हुआ था। बचपन से ही रोलाँ प्रकृति की ओर अनुरक्त था। वह प्रायः अपने मित्रों के साथ पहाड़ियों नदी-बन तथा मैदानों में घूमा करता था।

संगीत और साहित्य के प्रति बाल्यावस्था से ही उसका अनुराग था। उसने अपनी माता से पियानो बजाना सीखा और धीरे-धीरे फ्राँसीसी संगीत विशारदों की कृतियों को हृदयंगम कर लिया। जर्मन संगीत से भी वह बहुत अधिक प्रभावित हुआ। रोलाँ ने स्वयं लिखा है "हमारे घर में बहुत सी पुरानी जर्मन संगीत पर पुस्तकें थीं। मैं पुरानी पुस्तकों के पन्ने उलटता, पियानों पर उनकी स्वरलिपि को टोह-टोह कर बजाता। मोजार्ट और बेठोकेन का आनन्द और पीड़ा, उनकी आकाँक्षा और स्वप्न मेरे शरीर के प्रत्येक अणु परमाणु में व्याप्त हो गये। मैं उनका था और वे मेरे—मैं उनका कितना ऋणी हूँ।"

रोलाँ मनीषि शेक्सपीयर से भी बहुत प्रभावित हुआ। वस्तुतः शेक्सपीयर की कृतियों ने उस पर जादू डाल दिया था। वह शेक्सपीयर के नारी पात्रों के चित्रों से युक्त पुस्तक देख कर बहुत प्रभावित हुआ। नाटकों के पढ़ने पर वह व्यक्तियों और घटनाप्रवाह के विचार में अपने आपको भूल जाता था। घण्टों वह अपनी प्रिय पुस्तकों को लेकर एकान्त में बैठा रहता।

अपने कस्बे के स्कूल में रोलाँ की शिक्षा व्यवस्था उचित ढङ्ग से नहीं हो पाती थी। अतः उसके माता पिता ने उसे पेरिस में शिक्षा दिलाने का निश्चय किया। इसके लिए उसके पिता ने वकालत छोड़ कर पेरिस के एक बैंक में नौकरी कर ली। पेरिस में रोलाँ ने 'लुई दी ग्रेट' के 'लाइसियूम' में शिक्षा प्राप्त की। यहीं पर फ्राँस के अन्य प्रसिद्ध मनीषियों ने भी शिक्षा प्राप्त की है।

रोलाँ पाठ्य पुस्तकों के अध्ययन तक ही अपने को सीमित न रख सका। उसने साहित्य और संगीत की पुस्तकों का अध्ययन ज़ारी रक्खा। यहीं पर उसकी भेंट एक भावी साहित्य-महारथी से हुई। पाल क्लादे और उसके विचारों में काफ़ी अन्तर था। रोलाँ समाजवादी स्वतन्त्र विश्व के आदर्शों की ओर चला और क्लादे मठों और गिरजाघरों के सुधार की ओर। परन्तु बचपन में एक साथ बैठ कर वे घण्टों बहस किया करते।

शेक्सपीयर और संगीत ने रोलाँ पर इतना प्रभाव डाला कि वह प्रवेशिका परीक्षा में दो बार असफल रहा। इसी बीच रोलाँ की भेंट स्पिनोजा से हुई जिसकी बौद्धिक ज्योति का प्रभाव उस पर स्थायी रूप से पड़ा। प्रारम्भ में रोलाँ नाटककार और संगीतज्ञ दोनों बनना चाहता था। परन्तु उसके माता पिता इन अकाँक्षाओं को व्यर्थ समझते थे। उन्होंने रोलाँ को पोलिटेकनिक स्कूल में भेजना चाहा परन्तु रोलाँ का झुकाव इस ओर न था। इसलिए उसने मनोविज्ञान और नीति-शास्त्र का अध्ययन करने का निश्चय किया। सन् १८८६ में उसने नार्मल स्कूल की प्रवेशिका परीक्षा पास कर ली। इसके पश्चात सन् १८८९ से १८९१ तक उसने रोम में विद्याध्ययन किया। १८९५ में वह रोम में प्रोफ़ेसर के पद पर नियुक्त किया गया।

उसकी सर्वश्रेष्ठ कृति 'जाँ क्रिस्तोफ़' नामक उपन्यास है। इसके निर्माण में क्लैमसी की प्रकृति और उसके निवासियों का बहुत महत्वपूर्ण भाग है। इस उपन्यास पर उसे 'फ्रेंच एकेडमी' की 'ग्रैन्ड प्रिक्स' उपहार में मिली। इसके बाद सन् १९१५ में इस साहित्य-महारथी को उसकी

उत्कृष्ट साहित्यिक रचनाओं के लिए 'नोबल पुरस्कार' प्रदान किया गया ।

यह महान् साहित्य स्रष्टा सदैव नई मानवता को जन्म देने का स्वप्न देखा करता जिसमें मानव द्वारा मानव का शोषण न हो, साम्राज्यवाद और पूँजीवाद का अस्तित्व न हो अपितु मजदूरों और किसानों का राज्य हो । प्रथम महायुद्ध में तथा उसके बाद की राजनीतिक स्थिति पर उसने कितने ही चुभते लेख लिखे । 'बर्लिन की खूनी जनवरी,' 'इटली का फ़ासिज्म' आदि लेखों द्वारा उसने अपने विचारों को साधारण जनता तक पहुँचाने का प्रयत्न किया । वह बुद्धिजीवियों की स्वतंत्रता के लिए सदा ही प्रयत्नशील रहा । उसका कहना था, "मैं सब प्रकार की हिंसा के विरुद्ध हूँ और सबसे अधिक उस हिंसा के विरुद्ध हूँ जो लेखक की स्वतन्त्रता की हत्या करती है ।"

रोलाँ के साहित्य पर विश्व की वर्तमान घटनाओं का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा । दूसरा महायुद्ध छिड़ने पर उसने इसका विरोध प्रकट किया । स्पेन के गृहयुद्ध के समय फ्रेंच और ब्रिटेन के तटस्थ रहने का उसने कड़ा विरोध किया । भारत के प्रति उसका प्रेम और सहानुभूतिपूर्ण दृष्टिकोण था । भारत की प्राचीन विचारधारा, राष्ट्र-पिता गाँधी और रवीन्द्रनाथ ठाकुर के प्रति रोलाँ की आस्था गहरी थी ।

रोमां रोलाँ ने नवीन दुनिया को बड़ी उत्सुकता से देखा । उसने सोवियत संघ की यात्रा भी की । अक्टूबर की महाक्रान्ति के बाद वह इसकी प्रगति का निरन्तर अध्ययन करता था । इस नवीन सामाजिक व्यवस्था के प्रति उसकी सहानुभूति थी ।

रूस के प्रसिद्ध साहित्यकार गोर्की के साथ रोलाँ ने कुछ दिन व्यतीत किए । भोजन के समय एक बार स्तालिन से भी उसकी भेंट हुई । रोलाँ और गोर्की बीसवीं शताब्दि के दो महान् साहित्यकार माने जाते हैं और एक दूसरे के प्रति उनमें बहुत श्रद्धा थी ।

रोमां रोलाँ की साहित्यिक कृतियाँ बहुत ही महत्वपूर्ण हैं । उसकी बहुत सी रचनाओं का अनुवाद विभिन्न भाषाओं में हुआ है । उसकी प्रमुख रचनाएँ "जाँ क्रिस्तोफ़" (१० भागों में) "१४ जुलाई", "टालस्टाय", "दी सोल एनचान्टेड", "महात्मा गाँधी" आदि हैं । उसकी मृत्यु के पश्चात् श्रीमती रोलाँ उनके सारे पत्रों को एकत्र कर ६० पुस्तकों के रूप में प्रकाशित करा रही हैं । "रोमां रोलाँ के मित्र" नामक संस्था की उन्होंने स्थापना की है, जिसकी विभिन्न शाखाएँ विश्व के कोने कोने में खुली हुई हैं ।

यह महान् साहित्यकार सात वर्ष से क्लेमसी के एक छोटे से कबरिस्तान में सदा के लिए विश्राम कर रहा है । पेरिस की टीपटाप से उसे घृणा थी । इसलिए मृत्यु के पहले ही उसने यह इच्छा प्रकट की थी कि उसकी समाधि क्लेमसी में बनाई जाय । उसकी समाधि पर बहुत साधारण कोटि के पत्थर पर उनका नाम खुदा हुआ है । जन्म और मृत्यु की तिथियों का उसकी दृष्टि में कोई मूल्य नहीं था । सारे कबरिस्तान में इस महान् साहित्य-स्रष्टा की समाधि बहुत साधारण एवं सादी है जो आज भी उसकी विलक्षण प्रतिभा की प्रतीक है ।

फ्रेंच साहित्य के इस युग निर्माता का अपने जीवन काल में फ्रांस में उचित आदर नहीं किया गया । उसने जीवन के कतिपय वर्ष स्विट्जरलैंड में काटे । आँद्रे जीड ने उनके विरुद्ध बहुत लिखा । ९५ प्रतिशत फ्रेंच जनता उन्हें विदेशी समझती थी । यही कारण है कि सन् १९२६ में उनकी ६० वीं वर्ष गाँठ जर्मनी में अधिक धूमधाम से मनाई गई । उस समय फ्राँस में सन्नाटा ही था । कुछ भी हो रोलाँ फ्राँस की नाक है । उनकी पुस्तकें आज फ्राँस के अन्य साहित्यकारों से अपेक्षाकृत अधिक आदर पा रही हैं तथा फ्रेंच साहित्य और कला का सबसे अधिक प्रचार कर रही है । इसलिए उनका स्थान वर्तमान साहित्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण है । फ्रेंच साहित्य के इस युग-निर्माता का स्थान विश्व साहित्य में सदा ही सुरक्षित रहेगा ।

कालभैरव,
बनारस

—कृष्णशंकर व्यास

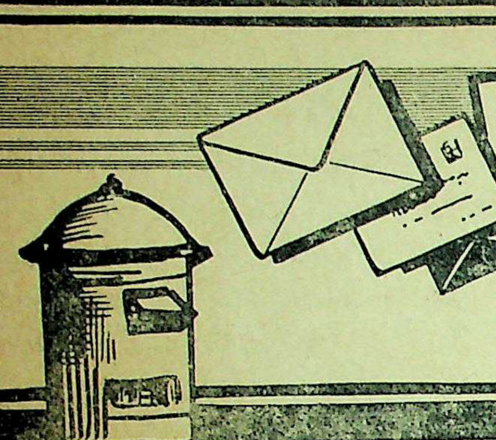

चिट्ठी-पत्री

(१)

॥

गोस्वामी तुलसीदास जी का महत्व

महोदय,

अक्टूबर १९५२ की 'अजन्ता' में श्रीयुत परशुराम चतुर्वेदी जी का 'गोस्वामी तुलसीदास जी का महत्व' शीर्षक से एक लेख प्रकाशित हुआ है। श्रीयुत परशुराम चतुर्वेदी जी ने हिन्दी के सन्त साहित्य का गम्भीर अध्ययन किया है और हम उनके इस कथन से सहमत हैं--

"...गोस्वामी तुलसीदास की कृतियों को अब हमें केवल किसी साधारण भक्त या कवि अथवा भारतीय की पंक्तियों के रूप में ही नहीं पढ़ना है। उनमें कथित विषयों की अब हमें एक नवीन व्याख्या करनी चाहिए और उनमें प्रतिपादित सिद्धान्तों को सार्वभौम विचारों की दृष्टि से देखना चाहिए। इस प्रकार के अध्ययन द्वारा ही यह समुचित रूप से जाना जा सकता है कि उनके उपर्युक्त सम्मान का रहस्य क्या है और वह फिर कब तक टिकने के योग्य भी है।"

समय के अनुसार न केवल साहित्य के मानकों में भेद पड़ जाता है परन्तु उनकी व्याख्याएँ भी बदल जाती हैं। वेद, उपनिषद्, गीता और धर्म ग्रन्थों से लेकर काव्यों और उनके विषयों तक पर यह बात लागू होती है। समय के अनुसार वेद, उपनिषद्, गीता और अन्य धर्म ग्रन्थों की भिन्न भिन्न व्याख्याएँ हुई हैं और इन व्याख्याओं के कारण उनके महत्व की वृद्धि हुई है। विषयों की भी यही अवस्था है। वाल्मीकि के राम तुलसीदास के राम से भिन्न थे। तुलसीदास ने राम की और उनके नाम की व्याख्या आपाततः दूसरे ही आधार पर की। संभवतः उनके समय की यही माँग थी। आज समय को देखते हुए वे व्याख्याएँ पुरानी हो चुकी हैं और आज 'राम' का शब्द फिर कोई नई व्याख्या माँगता है। भक्ति के विषय में भी हम यह कह सकते हैं कि चाहे वह निर्गुण के रूप में रही हो चाहे सगुण के पर कभी एक रूप में नहीं रही। वह भी समय के अनुसार ऊपर से एक जैसी दीखती हुई भी अन्दर से अपने आपको समय और अवस्था के अनुसार योग्य बना लेती है। एमर्सन ने लिखा है कि एकसदृशता (Consistency) तो लघु मानसों में होती है। जीवन में एक प्रकार की लचक होनी चाहिए। जिस जीवन में लचक नहीं है–जो जीवन अपने आपको समय और अवस्था के अनुसार परिवर्तित नहीं कर सकता वह जीवन जीवन कहलाने के योग्य नहीं हो सकता। महान् पुस्तकें, ग्रन्थ और काव्यों में भी जीवन होता है और इस जीवन में भी लचक होती है। वे समय और अवस्था के नए उच्च मानकों के ढाँचों में भी वैसे ही ठीक बैठ जाते हैं जैसे पुराने मानकों के ढाँचे में बैठ जाते हैं। जो नहीं बैठ सकते उनके जीवन की समाप्ति हो जाती है। सत्य एक होता हुआ भी इसी प्रकार अनेक रूपों में प्रतिभासित होता है। वह रहता तो एक ही है परन्तु समय और अवस्था के अनुसार एक नवीन रूप धारण कर लेता है। इसी प्रकार सत्य पुरातन होता हुआ चिर नवीन हो जाता है।

कल तक तुलसीदास को 'हिन्दु धर्म का रक्षक' कहा जा रहा था। परन्तु आज की परिवर्तित अवस्थाओं में उन्हें हमें भारतीयता और सार्वभौमिकता की दृष्टि से देखना होगा नहीं तो तुलसीदास एक संकुचित क्षेत्र के ही सन्त और कवि रह जाएँगे। अब हिन्दी राष्ट्रभाषा हो

गई है और समस्त राष्ट्र के लोग चाहे उनका कोई धर्म या जाति हो अब हिन्दी के महान् कवियों को समस्त राष्ट्र की दृष्टि से पढ़ेंगे इसलिए हमें अवस्था के अनुसार इनमें सत्यरक्षापूर्वक योग्य और उचित परिवर्तन करना होगा।

इक़बाल की ये पंक्तियाँ हमें इस प्रकरण में स्मरण हो आती हैं:—

"सच कह दूँ ऐ! बिरहमन,
गर तू बुरा न माने।
तेरे सनम क़दों के,
बुत हो गए पुराने।"

हमारे कवियों की व्याख्याएँ भी अब पुरानी हो गई हैं। यदि वे ध्रुव सत्य हैं--यदि उनमें ध्रुव जीवन है तो आज उनका नवीनतम संस्करण करना होगा।

हैदराबाद —एक हिन्दी काव्यप्रेमी

॥

(२)

'विजय' के प्रकाशन की तिथि

["अजन्ता" के सितम्बर अंक में श्री पद्मसिंह शर्मा का 'प्रोफ़ेसर इन्द्र विद्यावाचस्पति' से इन्टरव्यू प्रकाशित हुआ था। उसमें प्रोफ़ेसर इन्द्र विद्यावाचस्पति का 'विजय' के सम्बन्ध में यह कथन छपा था "१९५२ में जब दिल्ली आकर सार्वजनिक जीवन आरम्भ किया तो मैंने 'विजय' नामक पत्र निकाला।" हमें श्री दीनानाथ जी सिद्धान्तालङ्कार का पत्र मिला है जो प्रोफ़ेसर इन्द्र विद्यावाचस्पति से मिले हैं, जिसमें 'विजय' के प्रकाशन की तिथि को ग़लत बताया गया है। हम उनके पत्र का तत्सम्बन्धी अंश नीचे उध्दृत कर रहे हैं : सं०]

महोदय,

......पं० इन्द्र जी से "अजन्ता" का सितम्बर मास का अंक लेकर मिला था। उनके पास भी यह अंक पहुँच चुका है। उन्होंने केवल एक भूल की ओर निर्देश किया जिसमें "विजय" के प्रारम्भ होने का वर्ष, शायद, १९१२ लिखा गया था। लेख उन्होंने पसन्द किया।.........

दिल्ली —दीनानाथ सिद्धान्तालङ्कार

॥

(३)

तेलुगु की देन

श्रीमान् संपादक जी

"अजन्ता" के अक्टूबर अंक में 'तेलुगु के उदाहरण साहित्य' पर प्रकाशित लेख पढ़ कर प्रसन्नता हुई। वास्तव में तेलुगु के प्राचीन काव्यकारों ने अपने समय की प्रचलित सभी काव्य रीतियों को अपनाया था उन पर अनुपम रचनाएँ प्रस्तुत की थीं। यही नहीं, साहित्य के क्षेत्र में संस्कृत काव्य रीतियों से भिन्न एवं सर्वथा नूतन कई विधाओं को प्रविष्ट करके अपनी अपूर्व प्रतिभा एवं मौलिकता का भी परिचय दिया था। तेलुगु के लोक साहित्य में ऐसी नवीन उद्भावनाओं के कई नमूने पाए जाते हैं। 'उदाहरण साहित्य' केवल भारतीय साहित्य के लिए ही नहीं बल्कि विश्वसाहित्य के लिए भी तेलुगुवालों की देन रही, यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं कहा जा सकता। प्रस्तुत निबन्ध के लेखक ने विषय ग्रहण में तथा उसका प्रतिपादन करने में बड़े परिश्रम से काम लिया है। इसके साथ ही यदि उन्होंने इस तरह के साहित्य के लिए 'उदाहरण' (साहित्य) यह नाम क्यों दिया गया था इस पर कुछ और प्रकाश डाला होता तो उत्तम होता।

गुण्टूर —रेणु

॥

(४)

दक्षिण में रेल्वे स्टेशनों पर हिन्दी बोर्ड

महोदय,

ऐसा प्रतीत होता है कि दक्षिण में स्टेशनों पर हिन्दी में लिखे हुए स्टेशन के नामों और अन्य हिन्दी में लिखे हुए बोर्डों पर से हिन्दी के अक्षर मिटाने का आन्दोलन समाप्त हो गया है। मुझे अभी पिछले दिनों बेज़वाड़ा से आगे जाने का अवसर प्राप्त हुआ। बेज़वाड़ा स्टेशन पर हिन्दी के कुछ बोर्ड देखे। एक तो था "बाहर जाने का रस्ता" और दूसरा Retiring Room के लिए लिखा हुआ था : "विशन्ति कोठडी।" Retiring room के लिए 'विशन्ति कोठडी' पढ़ कर कुछ आश्चर्य हुआ। एक तो हिन्दी के अक्षर भद्दे और अस्पष्ट थे और दूसरा नाम भी ठीक लिखे हुए नहीं थे। रेलवे क्योंकि केन्द्रीय प्रशासन के आधीन है इसलिए

एक तो हिन्दी के नामों में एकरूपता (Uniformity) होनी चाहिए । ऐसा नहीं होना चाहिए कि एक स्टेशन पर उन्हीं अंग्रेज़ी के शब्दों के लिए एक शब्द हों और दूसरे स्टेशनों पर दूसरे शब्द । राज्यों के प्रशासन में तो इस बात की संभावना हो सकती है कि भिन्न-भिन्न शब्द एक ही अंग्रेज़ी शब्द के लिए व्यवहृत हों यद्यपि वहाँ भी भिन्नता अच्छी नहीं प्रतीत होती परन्तु रेलवे में जहाँ केन्द्रीय प्रशासन है वहाँ एक स्थान पर हिन्दी में एक तरह के बोर्ड लिखना और दूसरी जगह दूसरे शब्दों में बोर्ड लिखना समझ में नहीं आ सकता । यह कार्य रेलवे स्टेशन के अधिकारियों की इच्छा पर नहीं छोड़ा जा सकता । यह कार्य संगठित रूप से भारतवर्ष के समस्त रेलवे स्टेशनों के लिए एक जैसा ही होना चाहिए । फिर हिन्दी में जो भी बोर्ड लिखे जाएँ सुन्दर लिखे जाने चाहिए--वे इस तरह लिखे जाने चाहिए कि उनसे जनता हिन्दी के प्रति आकर्षित हो । इस समय ये बोर्ड जिस तरह लिखे गए हैं उससे एक तो किसी यात्री का ध्यान ही पहले तो इन बोर्डों की ओर विशेष रूप से आकर्षित नहीं होता दूसरा यदि आकर्षित भी होता है तो वे शब्द बहुत स्थानों पर ठीक तरह पढ़े नहीं जाते और उनमें से बहुत से शब्द उपहासास्पद प्रतीत होते हैं । क्या केन्द्रीय प्रशासन के अधिकारीगण इसकी ओर ध्यान देंगे ?

हैदराबाद —सप्तरश्मि

॥

(५)

साहित्य में चोर बाज़ारी

प्रिय महोदय,

'अजन्ता' और 'साहित्य-सन्देश' के अक्टूम्बर अंकों में हिन्दी साहित्य की अवांछनीय चोर बाज़ारी के सम्बन्ध में पं० विनयमोहन जी शर्मा के उल्लेख पढ़े ।

मैं आपका ध्यान सम्पादन-क्षेत्र में होने वाली ऐसी ही प्रवृति की ओर दिलाना चाहता हूँ । इसे सम्पादन क्षेत्र की चोर बाज़ारी कहूँ तो अनुचित न होगा । अब इसके कतिपय उल्लेख भी देखिए—

(१) "राष्ट्रभारती" के प्रथम वर्ष के प्रथम अंक में पत्र के तत्कालीन सम्पादक श्री वैजनाथसिंह 'विनोद' ने एक गीत आग्रहपूर्वक माँगा था । उनके अनुरोध के अनुसार गीत छप गया किन्तु छः मास पश्चात् यही गीत मित्रों ने काशी के साप्ताहिक "संसार" के दीपावली अंक में प्रथम पृष्ठ पर प्रकाशित देखा । पत्र लिखने पर न प्रति मिली, न पारिश्रमिक और न भद्रता के नाते एक साधारण उत्तर ही । सम्पादक महोदय ने यह भी जरूरी नहीं समझा कि 'राष्ट्रभारती से उद्धृत' लिखें ।

(२) अप्रैल ५२ के "नया समाज" में मेरा एक ध्वनिरूपक 'प्रजापति की निर्माणशाला' प्रकाशित हुआ था । मित्रों की कृपा से मैंने यही रूपक जबलपुर के "प्रकाश" साप्ताहिक के 'भारतीय रोज़गार विशेषांक' में 'नया इन्सान' शीर्षक से छपा पाया जिसके लिए सम्पादक ने न कहीं से उद्धृत लिखना जरूरी समझा, न लेखक को पूछना । जब क़ानूनी कार्यवाही का नोटिस भेज कर जवाब तलब किया तो प्रति भी मिल गई, पारिश्रमिक का आश्वासन भी मिल गया और स्नेहभरी चिट्ठी के साथ आगामी रचना के लिए आग्रह भी होने लगा ।

(३) अकोला के "प्रवाह" की सम्पादिका शचीरानी गुर्टू के पास उक्त पत्र में प्रकाशनार्थ अपने तीन गीत भेजे थे ! गीत छापे या नहीं, पता नहीं । ८ मास बाद इस वर्ष की दीपावली में दिल्ली स्थित "भविष्य" नामक पत्र का दीपोत्सव अंक मेरे पास पहुँचा । भीतर देख कर स्तंभित रह गया । शचीरानी गुर्टू के पास भेजे गए गीत इस पत्र में ऐसे छपे थे जैसे इनका लेखक पैदा ही नहीं हुआ । तीनों गीत अपनी सीमाएँ खोकर एकाकार हो गए थे । "प्रवाह" की तत्कालीन सम्पादिका को पत्र लिख कर पूछा कि यह किस प्रकार हुआ...तो जवाब नदारद ! मेरा विचार है, गंगासागर में परिणत होनेवाले साहित्यिक भूल जाते हैं कि उनका साहित्यिक जीवन भी किसी दिन गंगोत्री से प्रारंभ हुआ था । और ग़नीमत यह कि "भविष्य" का अंक मेरे नाम—मेरे पते पर भेजा जाता है—सिर्फ गीतों के साथ नाम नहीं छपता ।

(४) हैदराबाद के "साप्ताहिक नागरिक" ने सन् १९५२ के २६ जनवरी के जनतन्त्र अंक में मँगवा कर मेरा 'समाज का पतित अंग' लेख प्रकाशित किया था । पारिश्रमिक के लिए चार मास तक लिखता रहा कोई उत्तर नहीं । एक दिन विवश होकर उसके संचालक श्री बिरधीचन्द्र जी चौधरी को लिखा तो उन्होंने लिखा कि पारिश्रमिक अवश्य मिलेगा । जब तक मैं हूँ आपका पारिश्रमिक डूब नहीं सकता । लेकिन उन्होंने लिखा कि

आपने चिट्ठी ज़रा कड़ी लिखी है, इसे एक व्यापारी के नाते में अपना अपमान समझता हूँ। मुझे लिखना पड़ा—"लेख मँगवा कर चार महीने कान में तेल डाले आपका सम्पादकीय विभाग सोता रहा और छः महीने तक पारिश्रमिक नहीं प्रेषित किया, परेशान किया यह शायद आपने बहुत बड़ा सम्मान किया है!" इसके बाद आश्वासन देनेवाले व्यापारी हृदय चौधरी जी का न पत्र मिला न पारिश्रामिक।

(५) नागपुर के सम्पादक प्रकाशित लेखों-कविताओं का पारिश्रमिक देना ज़रूरी नहीं समझते। परन्तु अब मेरी धारणा हो गई है कि वे शायद लेखकों को प्रकाशित रचनावाली प्रति देना भी ज़रूरी नहीं समझते। इस प्रकार मुफ्तखोरी पर जिन्दा रहने वाले "नवभारत" ने सन् ४८ के दीपावली अंक में एक गीत प्रकाशित कर शायद मुझ जैसे नवयुवक पर बहुत बड़ा एहसान लाद दिया था। प्रति मिली नहीं, तो दफ्तर में पहुँचा। सहयोगी सम्पादक ने उत्तर दिया "शायद अंक समाप्त हो गए। लेकिन यह तो बड़ी मुश्किल है कि एक ज़रा-सी कविता के लिए डेढ़-दो रुपए का क़ीमती अङ्क दे दें।" आजकल के कवि ज़रा-सी कविता भेज देते हैं—अंक लेने आ जाते हैं। यही बात इस वर्ष मेरे मित्र वासुदेव व्यास 'अनल' के साथ हुई है। 'नवभारत' ने रचना माँगी, पारिश्रमिक का वादा किया। किन्तु अंक प्रकाशित हो गया और अब तक नागपुर के नागपुर में, न प्रति मिली न पारिश्रमिक। और केवल नए लेखकों के साथ ही क्यों? इस क्षण तक पता चला है कि पंडित विनयमोहन शर्मा जी को भी उनके लेख के उपलक्ष्य में "नवभारत" की प्रति नहीं मिली। इसी परंपरा का निर्वाह नागपुर के "युगधर्म" और "लोकमत" आदि कर रहे हैं।

(६) यह एक दूसरे प्रकार की घटना है। "नया समाज" को अपना एकांकी 'ग्रहों का निर्णय' प्रकाशनार्थ भेजा था। सम्पादक की स्वीकृतिसूचक चिट्ठी मिली। दो-तीन महीने बाद लिखने पर श्री मोहनसिंह सेंगर ने लिखा—'रचना मिली, पसन्द है आगामी अंकों में प्रकाशित होगी।' कुछ मास रुक कर पुनः लिखा तो क़रीब क़रीब वैसा ही आश्वासन मिला। इस प्रकार प्रतीक्षा करते हुए एक वर्ष बीत गया। "नया समाज" छपता रहा और मुझे उक्त रचना वापस मँगाने के लिए विवश होना पड़ा।

इसे मैं किस प्रकार की मनुष्यता समझूँ? स्पष्ट अस्वीकार एक बार अच्छा किन्तु साल भर रचना रोक लौटा देना मेरी समझ में नहीं आया किस प्रकार की पत्रकारिता का उदाहरण है?

यदि 'अजन्ता' इन अनुभवों को प्रकाश में ला सका तो अनुग्रहीत रहूँगा। अपने अन्य लेखक बन्धुओं से भी प्रार्थना करता हूँ कि इस दिशा में उन्हें सम्पादकों से जो अनुभव प्राप्त हुए हों प्रकाश में लायें। शायद सम्पादकीय चोरबाज़ारी के और भी कुछ तरीक़े हों जो मेरे साथ न बरते गए हों और मेरे अन्य बन्धुओं के प्रति उनका प्रयोग हुआ हो?

नागपुर —अनिलकुमार

पुनश्च,

अजन्ता के अक्टूबर ५२ के अंक में प्रकाशित मेरा ध्वनिरूपक "देवरथ" प्रसाद की 'देवरथ' कहानी का नाट्य रूपान्तर है किन्तु अजन्ता में भूल से इसे 'पुरस्कार' कहानी का नाट्य रूपान्तर कहा गया है। आशा है, पाठक अनिवार्य संशोधन कर भ्रम से बचेंगे

—अ०

॥

(६)

डिग्रियों का महत्व

('अजन्ता' के अक्टूबर १९५२ के अंक में श्री जगदीशचन्द्र की कहानी "कलकत्ते की सड़कों पर" प्रकाशित हुई थी जिसमें भूल से लेखक के नाम के आगे एम० ए० छप गया था। लेखक ने हमारे पास पत्र भेजा है जिसमें उन्होंने इस भूल की ओर संकेत किया है। अपनी भूल के लिए हम क्षमाप्रार्थी हैं। डिग्रियों के प्रति हमें कोई मोह हो ऐसी बात नहीं है। हम श्री जगदीशचन्द्र का पत्र नीचे दे रहे हैं)

प्रिय महोदय,

अक्टूबर मास की 'अजन्ता' मिली। धन्यवाद।

आपने मेरे नाम के आगे जो विशेषण लगाया है, वह मैंने तो लिखा नहीं था। न उसकी कोई आवश्यकता थी। उन सब डिग्रियों में मेरा विश्वास भी नहीं। आपने किस भावना से उसे लगा दिया, मैं समझ नहीं सका। क्या हर व्यक्ति का नाम ही उसके व्यक्तित्व के लिए यथेष्ट नहीं? दूसरे मैं एम० ए० हूँ भी नहीं और इसे छिपाना भी नहीं चाहता। मैं उसे महत्व ही नहीं देता। एक लेखक के लिए या किसी के भी लिए—ईमानदार, संवेदनशील, होना ही मेरी समझ में सबसे बड़ी डिग्री है। बहरहाल आप इस भूल को अगले अंक में, मेरी किसी रचना के साथ सुधार लें। जितना जल्दी हो सके उतना अच्छा है। नहीं तो लोग मेरे बारे में ग़लत धारणा बना सकते हैं!........

इलाहाबाद —जगदीशचन्द्र

नीर-क्षीर

(समालोचना के लिए पुस्तक की दो प्रतियाँ सम्पादक 'अजन्ता' के नाम से भेजी जानी चाहिए)

प्रेमचन्द और उनका युग

लेखक—डाक्टर रामविलास शर्मा
प्रकाशक—मेहरचन्द मुंशीराम
१०-बी, फ़ैज़ बाज़ार-- दिल्ली
मूल्य—तीन रुपया ।

एक ऐसे समाज में जो अपनी पराधीनता, दरिद्रता, विश्वासों की अन्धता और पतनशीलता के खिलाफ़ लड़ता हुआ आगे बढ़ने को आकुल हो साहित्य और साहित्यकार के गौरव तथा प्रतिष्ठा की कसौटी क्या होनी चाहिए ? प्रेमचन्द अथवा अपने देश के किसी महान् साहित्यकार के विषय में पढ़ने से पहले हमारे सामने यह प्रश्न आ जाता है ।

ऐसे समाज में साहित्य क्या है ? और साहित्यकार क्या है ?? प्रेमचन्द स्वयं इन जटिल प्रश्नों का सरल उत्तर देते हुए कहते हैं—"साहित्य राजनीति के पीछे चलने वाली चीज़ नहीं उसके आगे आगे चलनेवाला एडवास गार्ड है । वह उस विद्रोह का नाम है जो मनुष्य के हृदय में अन्याय, अनीति और कुरुचि से होता है ।" और "वह देश-भक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सचाई भी नहीं बल्कि उसके आगे मशाल दिखाती हुई चलने वाली सचाई है ।"

पराधीन समाज में साहित्य शब्द विद्रोह का द्योतक होता है । यह वह समाज है जहाँ पर शासक वर्ग अपनी दमन-शक्ति से उन युवकों पर कड़ी निगाह रखने का आदेश देता है जो साहित्य पढ़ते अथवा लिखते हैं । लेकिन साहित्य सिर्फ़ विद्रोह का द्योतक ही नहीं होता—वरन् सामाजिक प्रगति के अग्र भाग में चलनेवाले एड्वास गार्ड की तरह भी होता है जो प्रगति-पथ के निर्माण में पूरा सहयोग देता हुआ आगे बढ़ता जाता है ! ऐसे समाज में ऐसा साहित्य ही गौरवान्वित होने की आशा कर सकता है और इसके साथ ही साथ यह भी जरूरी है कि साहित्यकार का व्यक्तित्व उस मशाल के समान हो जो देशभक्ति और राजनीति के पथ को रोशनी से भर दे !

डाक्टर रामविलास ने अपनी इस नई रचना में प्रेमचन्द और उनके साहित्य को इसी कसौटी पर खरा दिखाने की सफल चेष्टा की है । उनके सामने दो प्रश्न मुख्य रूप से हैं । पहला यह कि क्या प्रेमचन्द का साहित्य युग की प्रगति में एक एड्वास गार्ड था ? और दूसरा यह कि क्या प्रेमचन्द का व्यक्तित्व आगे मशाल दिखाते हुए चलने वाला एक सत्य था ?

दोनों प्रश्नों का उत्तर 'हाँ' में है । और इसी उत्तर में प्रेमचन्द और उनके साहित्य का पूरा गौरव व्याप्त हो गया है ।

अपने युग के यथार्थ के प्रति प्रेमचन्द ने कौन सा रुख अपनाया ? क्या वह यथार्थ को ढँकने की चेष्टा थी—जैसा कि बहुत से कलाकार आज भी मानने में संकोच नहीं करते । क्या वह यथार्थ को बदलने की चेष्टा थी ?—डाक्टर रामविलास कहते हैं—

"प्रेमचन्द ने नकली आदर्शों की रामनामी खींच कर पण्डितों और मौलवियों, समाज के 'प्रतिष्ठित' सज्जनों और धनपतियों का वास्तविक रूप जनता के सामने प्रकट कर दिया । कबीर के बाद किसी ने इतनी सचाई से, ऐसे मर्मवेधी व्यंग से हिन्दू धर्म और इस्लाम, दोनों धर्मों के ढोंगियों और पाखंडियों का पर्दा फ़ाश न किया था ।" [पृष्ठ २३]

प्रेमचन्द उस सामाजिक यथार्थ को बदल कर जो उसे पतन, पराधीनता, संकट और विपन्नता की ओर लिए जा रहा था उसके स्थान पर उन्नतशील-स्फूर्तिदायक और सशक्त यथार्थ की स्थापना करना चाहते थे। इसलिए अपने समाज के विशाल जन-समूह किसानों के जीवन और उनकी समस्याओं के प्रति सचेत हो कर वे उनको अपने साहित्य का विषय बनाते थे। पराधीन भारत में हर वर्ग के ऊपर किए गए अत्याचार और बलात्कार की तो एक सीमा थी पर उसके किसान पर किए गए अत्याचारों और उत्पीड़नों की सीमा नहीं थी। अंग्रेज़, उनकी दलाली करनेवाले ज़र्मींदार और महाजन, पुलिस और अफ़सर, कचहरियाँ और जेल, पुरानी रूढ़ि से चले आए हुए अंध विश्वासों के पुरोहित और आतंक सब जैसे एक साथ मिल कर भारत के किसान पर टूट पड़े थे। उसकी समस्या पूरे देश की समस्या बन गई थी। उसका विद्रोह पूरे देश का विद्रोह बन गया था। एक तरह से उसकी पराधीनता पूरे देश की पराधीनता थी। इस सत्य को प्रेमचन्द ने सबसे पहले देखा। इस सत्य का उन्होंने अपने उपन्यासों और कहानियों में सबसे पहले प्रचार किया। और इस सत्य की रक्षा उन्होंने एक विद्रोही सैनिक की भाँति की। डाक्टर रामविलास कहते हैं :—

"एक तो किसानों पर लिखना ही रसराज का अपमान करना था। उस पर किसी खास आदमी को नायक न बनाना और भी अनोखा प्रयोग था......... उन्होंने उस धड़कन को सुना जो करोड़ों किसानों में हो रही थी......प्रेमचन्द ने अपना कथा-विषय चुना—सदियों से पिसते हुए दासों की चेतना को, जो अब जाग रही थी और उनके हृदय में इंसान की तरह जीने की तीव्र लालसा पैदा कर रही थी। 'प्रेमाश्रम' लिखना एक अद्भुत साहस का काम था।"

अपनी इस रचना में एक कुशल मार्क्सवादी की भांति डाक्टर रामविलास ने प्रेमचन्द के हर महत्वपूर्ण उपन्यास [सेवासदन, प्रेमाश्रम, कर्मभूमि, निर्मला, गबन, गोदान] की विवेचना समाजिक शक्तियों के घात-प्रतिघात के आधार पर करते हुए अत्यंत सरल और स्पष्ट शैली में यह दिखाया है कि प्रेमचन्द का हर उपन्यास अपने युग की पताका उठाए प्रगतिशील शक्तियों की सबसे आगे वाली पंक्ति में चल रहा है। प्रेमचन्द का कोई भी उपन्यास, समाज की भूमि—उसके अन्दर व्याप्त सामाजिक सम्बन्धों का आधार कभी नहीं छोड़ता। गाँवों के क्षेत्र में वर्गों के संघर्ष के विभिन्न रूप—उनके स्वाभाविक चित्र और उनमें से फूटती हुई अपराजित प्रगति की कामना और शक्ति का आभास प्रेमचन्द की हर कृति में मिलता है—इस सत्य की ओर डाक्टर रामविलास ने बड़ी दृढ़ता और सबलता से संकेत किया है। एक प्रगतिवादी स्पष्टता और समर्थ आलोचक की शैली में उन्होंने अपनी इस कृति से यह सिद्ध-सा कर दिया है कि प्रेमचन्द का साहित्य भारतीय क्रांति के बढ़ने के साथ-साथ और भी प्रभावशाली तथा गौरवान्वित होता जाएगा जब कि उन प्रगतिकामियों का साहित्य जो प्रगति की यथार्थ भूमि को छोड़ कर प्रगति की दिशाओं मात्र को पकड़ते हुए दौड़ते हैं प्रभाव में क्षीण और प्रतिष्ठा से हीन होता जाएगा। प्रेमचन्द को उन्होंने भारतीय प्रगति के प्रतिनिधि साहित्यकार के रूप में लिया है और उनकी परंपरा को सबलता सौंपने का प्रयास अपनी इस आलोचना कृति से पुरा किया है। आज जब हिन्दी आलोचना को कुछ लोग बुद्धिवाद के कूप में घसीट ले जाने का अथक परिश्रम कर रहे हैं उस समय इस कृति का महत्व और भी बढ़ गया है। हमारे अनेक भावी साहित्यालोचकों को यह कृति एक ऐसा दृष्टिकोण देगी जो साहित्य और समाज दोनों के लिए कल्याणकारी होगा।

लखनऊ —**आदित्य मिश्र**
एम. ए.

ढलती रात

लेखक : विष्णु प्रभाकर
प्रकाशक : चेतना प्रकाशन, हैदराबाद
मूल्य : दस रुपया

निशिकान्त मध्य वर्ग का प्राणी है, इच्छा और आकांक्षाओं से भरा। उसकी कुछ प्रतिज्ञाएँ हैं—खादी पहनना, पच्चीस वर्ष तक विवाह न करना, हिन्दु-मुस्लिम एकता आदि। और वह क्लर्क है...उसकी माँ है, उसका समाज है। कमला को उसने एक बार पढ़ाया।

कुमार की सुश्रुषा करती है। कुमार अपने गाँव, कमला अपने गाँव। कमला गाँव में रह नहीं सकती, लौटती है। व्यंग्य-बाण—पर इन सब से ऊपर है वह। कान्त के मित्र हबीब, कुमार—आदर्श हैं वे। और बुरे कहाँ नहीं होते सो वैसे पात्रों की कमी नहीं। कान्त बीमार, कमला द्वारा सुश्रुषा और उसमें शक्ति भर उठती है कि वह नौकरीशाही का पुर्ज़ा नहीं रहेगा, कि वह ब्राह्मण होकर कलाल जाति की नारी कमला से विवाह करेगा।

यह कथानक है 'ढलती रात' का जिससे कुछ नवीनता या कौतूहल के प्रेमी को पूर्ण निराशा होगी। परन्तु कथानक आज उपन्यास का श्रेय कहाँ है? तेलुगु भाषा में उपन्यास का अर्थ व्याख्यान से होता है। यदि तेलुगु भाषी लोग प्लेटफार्म पर खड़े होकर कहानियाँ ही नहीं कहते तो कदाचित् वे अंग्रेज़ी में 'नॉवल' कहलाने वाले साहित्य के अंग के भविष्य का पूर्वज्ञान पा चुके होंगे। उपन्यास से कथानक आज उड़ नहीं गया तो उठ गया है। साहित्य का यही अंग है जो संसार के बढ़ते हुए ज्ञान और विचारों को रागात्मक वृत्ति का नाम दे अपने में समेट कर चलना चाहता है।

पर बात है 'ढलती रात' की। साम्प्रदायिक दंगों की परिस्थिति को लेकर इस उपन्यास के कथानक का बीज पड़ता है। पहले खण्ड में परिस्थिति का चित्रण गहरा है...लगता है आगे चल कर लेखक उस अनुभव को सजीव बनाएगा जिसे जीकर जीवन के शाश्वत मूल्य साकार हो उठते हैं। परन्तु यहाँ लेखक की कला ने उसका साथ नहीं दिया है। वह बिखरे विचार देकर रह गया है......विचार......महत्...जिनमें शक्ति है पर अन्ततः विचार हैं—वे पाठक की अनुभूति की क्षमता से दूर। इसलिए 'ढलती रात' हिन्दी उपन्यासों के प्रकाशन में कोई विशेष घटना नहीं है।

और मैं संकेत करना चाहता हूँ अज्ञेय की पुस्तक 'शरणार्थी' की ओर—छोटा-सा 'गद्यपद्य संग्रह' पर अनुभूति के साथ नैतिक मान कैसे जगते हैं! कौन कहता है हिन्दी में कृशनचन्दर नहीं है? 'शरणार्थी' राजनीतिक पैम्फलेट से ऊपर है...साम्प्रदायिक दंगों के सम्बन्ध की रचना।

'ढलती रात' में विचारों का महत्व नगण्य नहीं है। "आज भी दुनिया में हिन्दु, मुसलमान, सिख, पारसी, जैन, ईसाई, बौद्ध न जाने कौन कौन हैं! नहीं है तो केवल मनुष्य नहीं है" का जब हम उत्तर सुनते हैं "मनुष्य आज कहीं नहीं है ऐसी बात नहीं है। जिस दिन मनुष्य नहीं रहेगा उस दिन धरती डूब जाएगी, मेरे बच्चो! गड़बड़ केवल इतनी ही है, हम स्वयं मनुष्य नहीं बनना चाहते, दूसरों को बनाना चाहते हैं।" तब लगता है कुछ गहरी बात कही जा रही है। मार्क्स ने एक स्थल पर कहा है—नवीन सभ्यता का जन्म धर्म के आधार पर नहीं वरन् धर्म की चिता पर होगा। 'ढलती रात' का नायक धर्म के विध्वंस की बात नहीं करता परन्तु वह सहिष्णुता की उस सीमा पर पहुँच जाता है जहाँ प्रेम पतित पावन होता है। उसका यह कहने का साहस है "सुरैया सुरैया रह कर मेरी पत्नी होगी अन्यथा नहीं। सुमित्रा और सावित्री मेरी जाति में कम नहीं हैं। शुद्धि (आर्य समाजी) को मैं प्रेम का अपमान समझता हूँ। और मैं अपनी पत्नी का अपमान नहीं कर सकता।" जी, 'ढलती रात' का मूल स्वर यही है मनुष्य पहले मनुष्य बने वह हिन्दु है या मुसलमान यह कोई महत्वपूर्ण बात नहीं।

और 'ढलती रात' सामाजिक राजनीतिक उपन्यास है पर राजनीतिक उसे फ़ैशन के तौर पर ही कहा गया है। नौकरशाही, देशप्रेम, व्यक्ति और समाज, स्वप्न-विज्ञान, साहित्य-प्रेरणा, इनमें कोई उल्लेंखनीय विशेषता नहीं जान पड़ती पर आश्चर्य नहीं जागृत नारी का स्वर सुन कर पाठक क्षण भर के लिए चौंके—

"राम कायर थे, उन्होंने सीता का परित्याग किया; उन्होंने आत्म-विश्वास, साहस और प्रेम का परित्याग किया, तभी तो आज यह देश सीता के अभाव में तड़प रहा है......

× × ×

"महाभारत के साथ तो भारत की सारी श्री और समृद्धि ही समाप्त हो गई थी। उसका एकमात्र कारण था कुन्ती द्वारा कर्ण का त्याग। इसका अर्थ था माँ के द्वारा त्याग यानी समाज के डर से माँ ने अपने हृदय को अपने पैरों से कुचल डाला था।"

सत्य तो है जब तक हमारे विश्वास खण्डित नहीं होते मुक्ति (प्रगति) का मार्ग किस ओर बनेगा ?

'ढलती रात' का कथानक शिथिल, एक लम्बी यात्रा थकान-प्रद, भाषा की सीधी रेखा, पर बात सच्ची कलाकार के अगले कदम की उत्सुकता।

पर्व-दान

लेखक—श्री जिज्ञासु
प्रकाशक—भारत-भारती लिमिटेड, दिल्ली
मूल्य— ?

सम्पादन, कविता, समालोचना सम्बन्धी प्रायः पाँच पुस्तकों के बाद "पर्व-दान" श्री जिज्ञासु की पहली नाट्य-रचना है। "पर्वदान" का आधार पौराणिक कथानक है—श्रीकृष्ण और अर्जुन के बीच में युद्ध। इस घटना को लेकर चल-चित्र भी बन चुका है और अन्य नाटक भी लिखे गए हैं पर लेखक इस कथानक द्वारा 'कर्त्तव्य परायणता' का नया आदर्श स्थापित करना चाहता है अतः उद्देश्य की भिन्नता के कारण ही कथानक को उसने यत्र-तत्र नया मोड़ भी दिया है। संक्षेप में कथावस्तु इस प्रकार है :

महाभारत-युद्ध के उपरान्त कनक श्री के निमन्त्रण पर श्रीकृष्ण और पार्थ अन्य लोगों के साथ केलिबन जाते हैं। गंधर्वराज चित्ररथ आर्यावर्त की यात्रा के लिए विमान में बैठ कर आते हैं। नीचे गालव ऋषि अन्य ऋषियों के साथ गङ्गा को अंजलि प्रदान कर रहे हैं कि उनकी अंजलि में चित्ररथ की उच्छिष्ट मदिरा और पान गिरते हैं। गालव श्रीकृष्ण के पास पहुँचते हैं और उनसे वचन लेते हैं कि वे चित्ररथ का सिरोच्छेदन करेंगे। चित्ररथ द्रौपदी के पास पहुँचता है—द्रौपदी जो पर्वदान के लिए प्रस्तुत है और चित्ररथ उससे प्राणों की भिक्षा माँगता है। द्रौपदी अर्जुन से चित्ररथ के प्राणों को बचाने का वचन लेती है। इस नाटक का सूत्रधार है नारद। नारद ही गालव को श्रीकृष्ण से प्रतिज्ञा कराने को उत्तेजित करता है और वही द्रौपदी को पर्व-दान के लिए तैयार करा के चित्ररथ को अभय दान दिलाता है। वस्तुतः नारद यहाँ प्रत्येक घटना के पीछे है, यहाँ तक कि चित्ररथ से अपराध भी वही कराता है। अन्त में कौशिक गालव को समझाते हैं यह सब नारद का प्रपञ्च है। लिए हुए वचन लौटाए जाते हैं और युद्ध होते होते रुक जाता है।

कथा के द्वारा लेखक यही बात प्रकाश में लाता है कि कर्त्तव्य, कर्त्तव्य है, उसके सामने मित्र या संबन्धी कोई महत्त्व नहीं रखते, श्रीकृष्ण तथा अर्जुन तक को अपने कर्त्तव्य के लिए एक दूसरे के विरुद्ध शस्त्र उठाने को तत्पर होना पड़ता है—निर्मम, कठोर कर्त्तव्य !

पर कोई कहे भरत, कैकयी और सारी अयोध्यावासियों के कहने पर भी राम-वन-गमन का कर्त्तव्य वचन लौटा लेने से नहीं टला। वस्तुतः कृष्ण और अर्जुन का युद्ध—यही क्यों, कृष्ण के सारे कार्य एक क्रीड़ा हैं, लेखक की आधुनिक दृष्टि उसमें भी कर्त्तव्य और आदर्श ढूँढ़ती है !

और सचमुच नारद के चरित्र को आधुनिक रूप देने में लेखक ने कमाल किया है। वह निरा प्रपञ्ची आदर्श की स्थापना के लिए कृष्ण और पार्थ सरीखे अभिन्न सखाओं को युद्ध-क्षेत्र में एक दूसरे के सामने खड़ा कर देता है। लेखक नारद के परम्परागत चरित्र के साथ न्याय करते हुए उसमें आधुनिकता का पुट देने में सफल हुआ यह उसकी कुशलता है।

नाटक के मोहक दृश्य ऋषि-कुमारों की गंगा-स्नान के लिए जाते समय बातचीत है—हँसी का फुहारा धीमे और तेज़ छूटता है।

आधुनिक नाटक की परिभाषा जिन शब्दों में होती है उनके अनुकूल "पर्वदान" नहीं ठहरेगा। अन्तर्द्वन्द्व, वाक्य छोटे—भावुकतारहित, गीतों का अभाव यह सब उसमें नहीं है। उसके आधिकांश पात्र दार्शनिकों-सी बातें करते हैं, वे भावुक हैं (विशेषतः नारी पात्र), उसके गीत-गीत न होकर कविताएँ हैं। लगता है शैली की दृष्टि से लेखक ने बहुत सावधानी पूर्वक 'प्रसाद' के पद-चिह्नों को अपनाया है। इस दिशा में उनकी प्रगति और मौलिक देन हर्ष का विषय होगी।

'पर्वदान' नव वय के विद्यार्थियों को कर्तव्यपरायणता के आदर्श के प्रति जागृत कर सकता है। लेखक ने आरम्भ में 'निवेदन' में अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट कर दिया है। सिनेमा और रंगमंच के आपेक्षिक महत्त्व पर अच्छा प्रकाश डाला है। पुस्तक पठनीय है।

हैदराबाद —हरिकृष्ण पुरोहित
एम. ए.

सामयिक

॥

तुलसीदास की रामायण का अँग्रेज़ी में अनुवाद

तुलसीदास के 'रामचरित मानस' का अभी अंग्रेजी में एक अनुवाद प्रकाशित हुआ है। इस अनुवाद को आक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस ने प्रकाशित किया है। इसका अनुवाद मिस्टर डौगलस हिल ने किया है। पुस्तक में केवल अनुवाद ही दिया गया है। इसमें हिन्दी का मूलरूप नहीं दिया गया है। तीस वर्ष के लगभग हुए मिस्टर ग्रौसे ने 'रामचरितमानस' का अंग्रेजी में अनुवाद किया था। मिस्टर डौगलस ने 'भगवद्‌गीता' का अंग्रेज़ी में अनुवाद किया है। उन्होंने 'रामचरितमानस' का अनुवाद कई समालोचनाओं, टिप्पणियों, टीकाओं और 'रामचरितमानस' की कई मूल प्रतियों के आधार पर किया है। मिस्टर डौगलस हिल ने अपने अनुवाद की भूमिका में तुलसीदास के जीवन, तुलसीदास का दर्शन, वाल्मीकि की 'रामायण' और तुलसीदास के 'रामचरितमानस' में भेद, रामानुजाचार्य का वैष्णव सम्प्रदाय इत्यादि विषयों पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। आरम्भ में भूमिका और अन्त में शब्दकोष 'रामायण' के अध्ययन में सहायता के लिए दिए गए हैं।

॥

श्रीमती दुर्गाबाई

श्रीमती दुर्गाबाई पंचवर्षीय योजना की सदस्या हैं। आप आन्ध्र की राजनैतिक क्षेत्र में कार्य करनेवाली प्रसिद्ध महिला हैं। उनके सम्बन्ध में 'स्वतन्त्र' में एक लेख प्रकाशित हुआ है जिसे हम नीचे दे रहे हैं:

"कृपया अपना प्रवेश-पत्र बतलाइए" द्वार पर स्वयंसेविका ने कहा। देश के युवक-प्राण ने शीघ्रतापूर्वक अपनी जेबों को टटोला, इधर-उधर दृष्टि दौड़ाई और जैसे अपनी भूल स्वीकार करते हुए कहा—"परन्तु श्रीमतीजी, मुझे तुरन्त ही अन्दर जाना है।"

"श्रीमान्, हमें यह आदेश मिला है कि केवल प्रवेश पत्र दिखलानेवालों को ही अन्दर आने दिया जाय।"

"क्या कहती हो? जिन्हें तुम रोक रही हो वे पण्डित जवाहरलाल नेहरू हैं। इसका तुम्हें ध्यान है?" एक स्थानीय खद्दर वस्त्रधारी ने रोका।

"जी, काँग्रेस स्वयं-सेवकों में ऐसा कौन है जो अपने राष्ट्र-देवता को नहीं पहिचानता परन्तु, आदेश..."

"प्यारी स्वयंसेविका तुम्हारा कहना ठीक है और हिन्द को तुम्हारे जैसी वीर बालाओं की आवश्यकता है" नेहरूजी ने कहा; और जब तक कि उनका प्रवेश पत्र नहीं लाया गया वे बाहर ठहरे रहे।

अखिल भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के कोकनाडा में हुए अधिवेशन के प्रवेश-द्वार पर उक्त घटना घटी थी। स्वयंसेविका तेरह वर्षीय कुमारी दुर्गाबाई थी जिसने कोकनाडा हिन्दी-बालिका-पाठशाला का संगठन करके उसकी स्थापना की मानो वह उस पाठशाला की प्राण थी। बालिका दुर्गाबाई को हिन्दी से उत्कट प्रेम था, हिन्दी प्रचार उसके लिए एक मिशन था और अपने पति की सारी सम्पत्ति उसने हिन्दी प्रेम के पुण्य यज्ञ में अर्पित कर दी।

× × ×

परम आदरणीय देशोद्धारक,

मेरे पति बीमार हैं। स्थानीय डाक्टरों की सम्मति है कि उनके बचने की अधिक आशा नहीं। मुझे विश्वास है मद्रास में सफलतापूर्वक इनका इलाज कराया जा सकता है। क्या आप कृपया हमें रहने के लिए स्थान दे सकेंगे?

सादर आपकी
दुर्गाबाई

दुर्गाबाई ने श्री नागेश्वरराव को पहले कभी देखा नहीं था। दुर्गाबाई की एकाध कहानी श्री राव की पत्रिका 'भारती' में प्रकाशित हुई थी। उनसे दुर्गाबाई का इतना ही परिचय था। परन्तु तुरन्त ही श्री दुर्गाबाई को राव ने उत्तर लिख भेजा—

प्रिय बेटी,

मेरे घर का बाहरी हिस्सा तुम्हारे लिए खाली है, तुम जब भी चाहो उसका उपयोग कर सकती हो।

नागेश्वरराव

इस कृपा और आतिथ्य-भाव से अत्यन्त हर्षित होकर दुर्गाबाई अपने पति को चिकित्सा के लिए मद्रास ले गई और सौभाग्यवश उनकी आशा सही सिद्ध हुई।

सम्पूर्ण राष्ट्र इतिहास के निर्माणकारी नमक-सत्याग्रह की तीव्र उत्कण्ठा से प्रतीक्षा कर रहा था। महात्मा गाँधी के आदेशानुसार 'लवण-यज्ञ' आरम्भ करने के लिए प्रत्येक ग्राम और नगर में सरगर्मी के साथ तैयारियाँ हो रही थीं। केवल मद्रास शान्त बैठा था। जब सम्पूर्ण राष्ट्र में उत्साह की उमंग भर उठी थी मद्रास चेतनाशून्य लग रहा था और वहाँ शक्ति का कोई चिन्ह नहीं दिखलाई देता था। सदैव कर्त्तव्य में लीन रहनेवाली दुर्गाबाई के लिए यह असह्य हो उठा। उसे इस बात से आश्चर्य हो रहा था कि मद्रास के सभी बड़े-बड़े नेता इस समय चुप क्यों हैं और मद्रास में ऐसा लग रहा है जैसे कि कुछ हुआ ही नहीं है—जैसे कि भविष्य में कुछ भी नहीं होने जा रहा है। वह यह अकर्मण्यता सहन नहीं कर सकती थीं और श्री नागेश्वरराव के पास जा कर उन्होंने पूछा—"क्या आप सत्याग्रह का नेतृत्व करने जा रहे हैं? आपका कार्यक्रम क्या है—?"

"हाँ, मैं नरसों चिराला के लिए रवाना हो रहा हूँ, वहाँ सत्याग्रह आरम्भ करने के लिए तैयारियाँ हो रही हैं।"

"परन्तु मद्रास के लिए आप क्या कहते हैं?"

"मद्रास! क्या तुम जानती हो यहाँ पहला और अन्तिम सत्याग्रही मेरे सिवाय कोई नहीं होगा।"

"क्षमा कीजिए, आप पहले सत्याग्रही होंगे और दूसरी मैं और कौन जानता है इसके पश्चात् क्या होगा? मैं जानती हूँ मद्रास की भूमि वीर विहीन नहीं है। अगर केवल यहाँ के नेताओं में साहस हो तो मद्रास किसी भी प्रान्त से पीछे नहीं रहेगा।"

"ऐसी बात नहीं है। यह काम बहुत जिम्मेदारी का है। तुम अपना काम सम्हालो।"

इस प्रताड़ना से तनिक भी निरुत्साहित न होकर वह श्री टी. प्रकाशम् के पास गई जिन्होंने उसी मद्रास की गलियों में सीना तान कर एक वर्ष पहले साइमन कमीशन का विरोध किया था।

'स्वराज्य' के संस्थापक ने सीधे प्रश्न किया, "आप कौन हैं और किस काम से आई हैं?"

"मैं तो एक साधारण स्त्री हूँ परन्तु आप बतलाइए कि नमक सत्याग्रह के सम्बन्ध में आपने क्या निर्णय किया है और आपका कार्यक्रम क्या है?"

"ओह! आप सत्याग्रह के बारे में जानना चाहती हैं। उसे चिराला में आरम्भ करने का निश्चय किया गया है और हमलोग चिराला के लिए नरसों रवाना हो रहे हैं।"

"परन्तु स्वयं राजधानी का कलङ्क कैसे दूर होगा?"

"हिश। मद्रास में सत्याग्रह के बारे में कौन गम्भीरता से सोचता है। यहाँ पहला और अन्तिम सत्याग्रही मेरे सिवाय कोई नहीं होगा।"

"क्षमा कीजिए, आप पहले सत्याग्रही होंगे और दूसरी मैं और कौन जानता है इसके पश्चात् क्या हो। मेरा विचार है कि सचमुच ही मद्रास किसी से पीछे नहीं रहेगा। केवल नेताओं को जनता में पूर्ण विश्वास होना चाहिए।"

"तुम यह कहती हो?" श्री प्रकाशम् ने कहा।

"देखना चाहिए !" क्षण भर के लिए वे रुके और कहा, "तुम्हारा कथन ठीक है।' तुरन्त ही उन्होंने अपने सेक्रेटरी से फ़ोन पर बात की और शाम को एक आम सभा करने के लिए प्रबन्ध करने का उसे आदेश दिया।

"आइए श्रीमती जी, हमें नागेश्वरराव पंतुलु से मिलना होगा।"

"आचार्य पंतुलु हम स्वयं मद्रास में ही आन्दोलन शुरू कर रहे हैं।"

"आप ! क्या यही वह युवती है जिसने तुम्हारे दिमाग़ में यह अजीब विचार जगा दिया है ?"

"जी, आपका कथन सत्य है। जनता में हमारा पूर्ण विश्वास होना चाहिए। मैं इनका कृतज्ञ हूँ कि इन्होंने मेरा ध्यान इस ओर आकृष्ट किया है," श्री प्रकाशम् ने कहा।

"लेकिन...... ..."

"अब लेकिन की कोई आवश्यकता नहीं है। सब कुछ निश्चित हो चुका है। मैंने अपना चिराला, का कार्यक्रम बदल दिया है और आज शाम को शहर में एक आम सभा करने का प्रबन्ध किया जा रहा है—।"

उस रात श्री प्रकाशम् ने दर्शकों को दुर्गाबाई का परिचय देते हुए कहा—"यही वे श्रीमती हैं जिन्होंने मद्रास में 'नमक सत्याग्रह' आरम्भ करने के औचित्य के प्रति मुझे विश्वास दिलाया और यह समझाया है कि राजधानी का निश्चेष्ट रहना उसे शोभा नहीं देता। दुर्गाबाई ने भी भाषण दिया और हृदय के अन्तरतम से जगनेवाली वाणी से उन्होंने स्वयंसेवकों से अपील की "मद्रास को महात्मा का योग्य अनुचर बनना चाहिए।" उनकी इस अपील को सुन कर तत्क्षण कई स्वयंसेवकों ने अपने नाम लिखाए। एक आन्ध्र व्यापारी ने स्वयंसेवकों की रसोई चलाने के लिए चावलों की भेंट की। दूसरे तमिल व्यापारी ने दाल की भेंट प्रदान की तथा एक अन्य गुजराती व्यापारी ने खाने की अन्य सारी व्यवस्था का भार अपने ऊपर लिया। इम्तहान की इन दहकती घड़ियों में मद्रास की जनता इस क्षुद्र बात को लेकर नहीं झगड़ रही थी कि मद्रास शहर किस प्रान्त का है। मद्रास के सम्मान की रक्षा के लिए स्वेच्छाप्रेरित सम्मिलित प्रयत्न में लोग जुटे थे। स्वयंसेवकों की सूची बनाई गई जिसमें आन्ध्र, तमिल सभी लोग सम्मिलित हुए। श्री प्रकाशम् को जेल हुई और दुर्गाबाई को मद्रास का डिक्टेटर बनाया गया। जिस साहस, शक्ति, प्रेरणा और कुशलता से उन्होंने अपना कर्त्तव्य निभाया वह इतिहास के पन्नों में चिर काल तक सुरक्षित रहेगा।

× × ×

"जब मुझे पिछली बार कैद किया गया तो मैं नहीं जानती थी दो बन्धुओं के बीच में किसी प्रकार का विभेद किया जाएगा।......किसी विशेष श्रेणी में रह कर मुझे अपना उपचार कराना पसंद नहीं है।" एक बन्दिनी ने न्याय करनेवाले हाकिम से कहा।

"हाँ, श्रीमती दुर्गाबाई आप चाहें तो (सी श्रेणी) के कैदियों का आनन्द जी भर कर उठा सकती हैं।" न्यायाधीश ने कहा।

"यदि दुर्गाबाई 'सी' श्रेणी में रहती हैं तो हमें इन 'ए' और 'बी' श्रेणियों की कोई आवश्यकता नहीं है। कृपया हमें भी वहीं रखिएगा।" शेष बन्दियों ने माँग पेश की। सभी बन्दियों की यह माँग थी। यह छूत का रोग फैलता ही जा रहा था। जेल अधिकारियों के बीच शीघ्र पूछताछ जारी हुई। सरकार के सर्वोच्च अधिकारियों और जेल अधिकारियों के बीच तारों का आदान-प्रदान आरम्भ हुआ।

एक दिन सन्ध्या समय दुर्गाबाई को सूचित किया गया कि प्रतीक्षागृह में कोई उनकी राह देख रहा है। ज्यों ही उन्होंने प्रतीक्षागृह में प्रवेश किया कि उन्हें पास ही खड़ी हुई मोटर में चढ़ने के लिए कहा गया। मोटर नजरबन्द थी और उसके दरवाजे भी ढाँप लिए गए। दुर्गाबाई को यह पता नहीं चल सका कि उनके साथ क्या व्यवहार किया जाएगा। उनके लिए जीवन में इस तरह की अनुभूति का यह पहला ही अवसर था। उनके साथ क्या होने जा रहा है यह सोच कर वे हैरान थीं। अन्त में मोटर के दरवाजे खुले परन्तु केवल रेल के डब्बे में प्रवेश करने के लिए मार्ग खोला गया था और रेल के डिब्बे को भी दुर्गाबाई के उसमें प्रवेश कर लेने के पश्चात् सावधानीपूर्वक नजरबन्द कर दिया गया। जब गाड़ी रुकी तो उन्हें एक जेल में ले जाया गया जहाँ उन्हें बतलाया गया कि वे नजरबन्द हैं। वे

क्षण भर के लिए यह नहीं सोच सकीं यह सब क्या हो रहा है।

उन्हें एक संकरे कमरे में ले जाया गया जो कि चारों ओर से बन्द था। उसके दरवाज़े के सामने एक खुला मैदान था जिसमें उन्नत दीवारें बनी थीं। भोजन के समय एक दीवार से अत्यन्त ईर्ष्यायोग्य 'सी' श्रेणी के भोजन से सजी एक लोहे की तश्तरी आगे बढ़ती जैसे एक व्यंग्यपूर्ण मुस्कराहट के साथ वह ललकार रही हो—'इसे ग्रहण करो या छोड़ दो।' बाह्य संसार से उनको केवल यही संपर्क रखने दिया जाता था। परन्तु मैदान में खड़े वृक्ष पर एकान्त वासिनी गौरैय्या सदा चहका करती, उन्हें अपना साहचर्य देने आ बैठती उसे नहीं रोका जा सकता था और न हर सुबह उस एकाकी पेड़ पर खिल उठनेवाले फूलों को ही रोकना उनके सामर्थ्य की बात थी! अन्न के दानों का एक निश्चित माप हर सुबह उनके कमरे में ढकेल दिया जाता जिसका आटा पीस कर शाम को लोहे की तश्तरी में रख छोड़ना होता था। एक पखवाड़े के पश्चात् जेल का डाक्टर इस कोठरी में उनके स्वास्थ्य का निरीक्षण करने के लिए आता और छद्मपूर्ण सुझाव पेश करता कि यदि वे क्षमायाचना पेश कर दें तो उन्हें छोड़ दिया जाएगा अथवा क्षमायाचना करने पर उन्हें गिरते स्वास्थ्य के नाम पर 'बी' श्रेणी का भोजन दिया जाएगा। इस तरह पखवाड़े भर में एक बार उन्हें जिस मनुष्य नाम के प्राणी का मुँह देखने के लिए मिलता वह उनकी पीड़ा का अशेष कारण होता और उसके आने के दिन की कल्पना कर वे काँप काँप उठती थीं। उनकी आत्मा ने इन सभी कष्टों को सह लिया परन्तु शरीर साथ नहीं दे सका। उनकी समस्त देह से पीप और खून चूने लगा। डाक्टर ने उनके भोजन में परिवर्तन करने के लिए कहा परन्तु उन्होंने 'सी' श्रेणी में अपने साथियों को दिए जानेवाले भोजन के अतिरिक्त कुछ भी लेना स्वीकार नहीं किया। मद्रास-जेल से अनायास बहनेवाली अश्रुधारा की तरह यह समाचार बाहर फैलने लगा कि दुर्गाबाई को यातनाएँ दी जा रही हैं। अकेले एक मुसलमान सदस्य ने एसेम्बली में इस सम्बन्ध में प्रश्न किया। जनता को अत्यन्त ही निराशाजनक दुःख हुआ। अन्ततः जब दुर्गाबाई को रिहा किया गया और वे मद्रास में आईं उस समय रेलवे स्टेशन पर शहर की भीड़ ने उनका जो स्वागत किया वह इतना भव्य था कि जिसे देख कर राष्ट्रीय नेताओं तक को ईर्ष्या होने लगती।

× × ×

दुर्गाबाई की चारों ओर अत्यधिक प्रशंसा हो रही थी जिसको सुन कर कोई भी अन्य व्यक्ति होता तो उसका सिर आसमान पर चढ़ गया होता। परन्तु दुर्गाबाई के लिए यह भय असत्य सिद्ध हुआ। असहयोग-आन्दोलन के भंग होने के पश्चात् जब कि सारे देश में निराशा का वातावरण व्याप्त हो रहा था दुर्गाबाई का ध्यान बनारस यूनिवर्सिटी की मैट्रिक्यूलेशन परीक्षा के लिए तैयारी करने की ओर गया। यूनिवर्सिटी की शिक्षा से वंचित रहने के कारण जो अभाव उनके जीवन में रहा उसका उन्होंने स्वयं अनुभव किया था। उन्होंने और कुछ करने से पहले वकालत की शिक्षा पाना निश्चित किया। ग़रीबी या लोकोपवाद अथवा घनिष्ट सम्बन्धियों का विरोध उनको अपने निश्चित मार्ग से नहीं डिगा सका। मैट्रिक की परीक्षा में सफलता पाने के पश्चात् वे इन्टरमीडियेट की परीक्षा में भी उत्तीर्ण हुईं और कुछ ही वर्षों में उन्होंने आन्ध्र विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में ऑनर्स की डिग्री प्राप्त की। फिर १९३७ का साल आया जब कि देश में प्रथम बार काँग्रेस मन्त्रिमण्डल की स्थापना हुई। जहाँ दुर्गाबाई के सहयोगी कार्यकर्ता मिनिस्ट्री का पद प्राप्त करने के लिए लालायित बने हुए थे दुर्गाबाई कॉलेज में अपने अध्ययन में लीन रहीं और स्त्री-शिक्षा के संगठन को उन्होंने अपना आदर्श बनाया।

व्यक्तिगत अनुभव द्वारा उन्होंने बहुत निकट से इस बात को जान लिया था कि प्रौढ़ महिलाओं के शिक्षण की हमारे देश में अत्यधिक आवश्यकता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने अपने संपूर्ण बल से कार्य आरम्भ कर दिया। 'आन्ध्र महिला' सभा उनकी संगठन शक्ति का एक ज्वलन्त उदाहरण है। विधान-सभा, धारा-सभा और अन्य कमेटियों में उन्होंने इन पिछले दिनों जो कार्य किया है वह सर्व विदित है तथा जिन लोगों को उनके साथ कार्य करने का अवसर मिला है प्रायः सभी उनके कार्यों की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते हैं।

बाल्यकाल से ही दुर्गाबाई को योजनाओं से उत्कट प्रेम रहा है। चाहे लड़कियों के लिए हिन्दी पाठशाला

या आन्ध्र महिला सभा अथवा नर्सों के शिक्षण केन्द्र स्थापना का प्रश्न हो। वह सदैव ही जन–जीवन से सम्बन्धित कार्यों में लीन रहीं। अपने जीवन का एक क्षण भी कभी उन्होंने नष्ट नहीं किया यह कथन दुर्गाबाई के सम्बन्ध में अक्षरशः सत्य है।"

॥

तेलुगु पत्रकार श्री एस. जी. आचार्य

श्री एस. जी. आचार्य तेलुगु के सुप्रसिद्ध पत्रकार थे। हाल ही में उनके स्वर्गवास के कारण तेलुगु साहित्य संसार को पर्याप्त क्षति पहुँची है। अंग्रेजी साप्ताहिक 'स्वतन्त्र' में उनके सम्बन्ध में एक लेख प्रकाशित हुआ है जिसका कुछ अंश हम नीचे दे रहे हैं :

"यदि धन को प्रायः मनुष्य की योग्यता का प्रमाण समझा जाता है तो प्रदर्शन जिससे लोकप्रियता का गठबन्धन किया जाता है मनुष्य के महत्त्व को निर्धारित करता है। आचार्य जी को कभी धन का सुख नहीं मिला और वे नेताओं की तरह प्रकाश में भी नहीं आए। परन्तु कुछ दृष्टियों से तेलुगु पत्रकारिता को उनकी देन असाधारण रही है। उन्हें हम तेलुगु के 'लोकप्रिय' पत्रकारिता का अगुआ कह सकते हैं। स्वर्गीय श्री गिडुगु राममूर्त्ति के समान जो साहित्य में बोलचाल की भाषा के प्रयोग के समर्थक थे श्री आचार्य उन सर्वप्रथम व्यक्तियों में से एक थे जिन्होंने अपने सम्पादन में बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध से ही बोलचाल की भाषा का तेलुगु पत्रों में प्रयोग करना आरम्भ किया। तेलुगु पत्रों में समाचारों के प्रकाशित करने की आधुनिक शैली को प्रचलित करने का श्रेय भी श्री आचार्य को ही है। इस शैली का आगे चल कर काफ़ी विकास हुआ और आज के तेलुगु पत्रकार अंग्रेजी पत्रकारिता की उन्नत शैलियों के साथ चलने का प्रयत्न कर रहे हैं। इससे भी महत्वपूर्ण कार्य पत्रकारिता के क्षेत्र में उन्होंने किया वह यह था कि प्रसिद्ध नामों का मोह छोड़ कर वे नए अध्यवसायी लेखकों को प्रकाश में लाए। उनका विचार था कि कार्य कितना भी साधारण हो किन्तु उसका पारिश्रमिक मिलना आवश्यक है अतः वे अपने पत्र में प्रकाशित प्रत्येक लेख पर पत्र–पुष्पम् ही सही लेखक को अवश्य भेंट करते थे। श्री आचार्य का पत्रकारिता का विषयगत और साथ ही टाइप–सेटिंग और कम्पोजिंग का ज्ञान असाधारण था। पाइंट–टाइप सेटिंग जिसका आज तेलुगु कम्पोजीटर प्रयोग करते हैं तेलुगु पत्रकारिता को श्री आचार्य की ही देन है।

श्री आचार्य अपने विद्यार्थी-जीवन में एक हस्त-लिखित पत्रिका निकालते थे। राष्ट्रीय आन्दोलन ने उन्हें आकर्षित किया और उन्होंने स्कूल छोड़ दिया। राष्ट्र–सेवा में सौभाग्य से उनकी पत्नी ने भी उन्हें बड़ा सहयोग दिया। वर्त्तमान शताब्दि के तीसरे दशक में उन्होंने तेलुगु दैनिक "जन्मभूमि" का सम्पादन किया जिसने राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रगति को बढ़ाने में सहयोग दिया। जो व्यक्ति उन दिनों समाचार पत्र पढ़ा करते थे उन्हें आज यह स्मरण करते हुए हर्ष और आश्चर्य होता है कि उस समय किस प्रकार एक पैसे के मूल्य की 'जन्मभूमि' की प्रतियाँ मद्रास में समुद्र के तट पर हाथों-हाथ बिक जाती थीं। इसके पश्चात् श्री आचार्य ने "प्रजा-बन्धु" साप्ताहिक निकाला जिसकी रुझान काँग्रेस के वाम–पक्ष की ओर थी और युवकों को प्रेरणा देने वाले सुभाषचन्द्र बोस, एन. जी. रंगा, जयप्रकाश नारायण, एम. एन. राय प्रभृति नेता इस पत्र के मनोनीत श्रद्धेय थे। अपने नाम के अनुकूल इस पत्र ने शोषितों की भावनाओं की अभिव्यक्ति की। इस पत्र के साथ ही श्री आचार्य ने "चित्रगुप्त" नामक एक पाक्षिक का सम्पादन शुरू किया। "चित्रगुप्त" राजाओं, महन्तों आदि पर व्यंग्य बाण छोड़ने से कभी नहीं चूकता था। उसकी एक विशेषता 'पाठकों के पत्र' स्तम्भ रहता था जिसभें पत्रों का उत्तर लिखते हुए उत्साही सम्पादक की कलम का जौहर दर्शनीय होता।

श्री आचार्य की प्रतिभा बहुमुखी थी। उन्होंने कई प्रकार के पत्र सम्पादित किये जिनमें महिलाओं और बच्चों के पत्र भी थे। अनेक नए पत्रकारों को श्री आचार्य ने प्रेरणा प्रदान की है। उस समय महिलाओं के लिए बहुत कम पत्र निकलते थे जिनमें एक डा० के. एन. केसरी का "गृहलक्ष्मी" था। श्री आचार्य ने अनुभव किया कि इस क्षेत्र को और भी विस्तृत करने की आवश्यकता है। उन्होंने पाक्षिक "हिन्दु सुन्दरी" और कुछ समय पश्चात् "चितरंगी को प्रत्येक सम्भव सहायता पहुँचाने का प्रयत्न किया। उन्होंने बच्चों के लिए सबसे पहले "बालमित्र" नामक एक पत्र निकाला जिसके

अनुकरण पर बाद में बच्चों के लिए अनेक पत्र निकले। उन्होंने कार्टूनों और हास्य चित्तियों का एक छोटा सा पत्र भी निकाला परन्तु 'कोनगी' का प्रकाशन युद्धोत्तर काल की कठिनाइयों के कारण एकाएक बन्द हो गया। वास्तव में श्री आचार्य स्वयं युद्धोत्तर काल की कठिनाइयों के शिकार हुए थे जिसके कारण युद्धकाल में अनेक पत्र-पत्रिकाओं के निकल कर बन्द होजाने से बहुत से योग्य और अनुभवी पत्रकारों को ऐसी परिस्थिति का सामना करना पड़ा जब उनकी नाँवें बिना पाल और पतवार के तूफ़ानों का सामना करने के लिए डगमगाती रह गईं।

परन्तु श्री आचार्य इतने सज्जन थे कि अंतरंग मित्रों के अतिरिक्त वे किसी के सामने अपने कष्टों की चर्चा नहीं करते। अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करने वाले ऐसे पत्रकार कम थे जिन्हें उनकी सहनुभूति और सहायता न मिली हो। जिन्हें श्री आचार्य के सहवास का सौभाग्य मिला उनका कहना है कि भटके हुए पंछियों के लिए जिन्हें मधुर और ऊष्म नीड़ की आवश्यकता अनुभव होती उनके लिए उनका द्वार सदैव खुला रहता था।

उन्हें साधारण रूप में पहचानने वाले भी जानते हैं निर्मल खद्दर के वस्त्रों को पहने मुस्कराता हुआ चेहरा विनम्रता का मूर्तिमान् रूप था और उसका सौन्दर्य और गौरव स्वयं अपना था। उनकी पत्नी श्रीमती–अन्नपूर्णा देवी जो उनके सुख दुःखों की ही संगिनी नहीं वरन् उनकी आशा–आकांक्षाओं, विचारों की भी सहयोगिनी थीं के प्रति उन सब की सहानुभूति है जिनके मस्तिष्क में श्री आचार्य की स्मृति चिरनवीन है।"

॥

एक नई उर्दू का आविष्कार

युद्धकाल में जर्मनी में एक नई उर्दू के आविष्कार के सम्बन्ध में 'इंगलिश डाइजेस्ट' में श्री एस. जी. सास का एक लेख प्रकाशित हुआ है जिसे हम नीचे दे रहे हैं :

"कैप्टेन ब्लेकर की भारतीय भाषाओं के ज्ञान को प्राप्त करने की हौबी थी और उन्हें कई भारतीय भाषाओं और बोलियों का ज्ञान था। एक दिन उनकी एक व्यक्ति से भेंट हुई। उसे भारत और भारतीय भाषाओं का उनसे भी अच्छा ज्ञान था।

वह एक जर्मन था। कई लोग "बूढ़ा टिकर" कह कर उसको पुकारते थे क्योंकि एक तो यह अत्यधिक समयपरायण था और दूसरा उसके दाँतों की बतीसी कुछ ऐसे ढंग से बैठी हुई थी कि जब वह बोलता था तो कट कट आवाज़ होती थी। इन दोनों के जीवन मार्ग कई वर्षों के बाद एक स्थान पर मिले। यद्यपि "बूढ़ा टिकर" शान्तिवादी था तो भी इन दोनों में दृढ़ मित्रता थी।

यूरोप का दूसरा महायुद्ध छिड़ने को था और पौलैण्ड में पहली गोली चल चुकी थी। इस समय "बूढ़ा टिकर" भारत से अपनी मातृभूमि जर्मनी में गया परन्तु उसे भारत लौटने न दिया गया।

उत्तर आफ्रिका में लड़ाई हो रही थी। भारतवर्ष में अंग्रेज़ों के विरुद्ध भावनाएँ उभर रहीं थीं। "बूढ़े टिकर" को बर्लिन ले जाया गया। ब्लेकर को कुछ पता नहीं था। वह उस समय कलकत्ता में नात्सियों के प्रोपेगैण्डे को ध्यानपूर्वक सुनता था। एक दिन उसने एक नात्सी घोषक को बोलते हुए सुना परन्तु वह एक ऐसी भारतीय बोली में बोल रहा था जिससे वह सर्वथा अपरिचित था।

युद्ध के कुछ समय पश्चात् कर्नल ब्लेकर को जर्मनी में नियुक्त किया गया। एक जर्मन नगराध्यक्ष ने अपने दुभाषिए के द्वारा उनसे मिलने के लिए समय माँगा। कुछ समय के पश्चात् कर्नल और वे दुभाषिया दोनों एक दूसरे के कन्धों को थपथपा रहे थे।

कुछ दिनों के पश्चात् कर्नल ब्लेकर ने ब्रिटिश सूचना विभाग को यह नोट भेजा :—

"एक जर्मन भाषाशास्त्री को जिसका नाम भारत में "बूढ़ा टिकर" प्रसिद्ध था—बन्द कैम्प से छोड़ दिया गय है। उसे आज्ञा दी गई है कि वह भारत के एक प्रदेश की शुद्ध बोली में रेडियो से बोले।

क्योंकि वह पक्का शान्तिवादी था इसलिए वह युद्ध करने वाली शक्ति की किसी भी प्रकार सहायता नहीं करना चाहता था। इसलिए उसने एक नई भाषा का आविष्कार किया था जो बिलकुल उर्दू से मिलती जुलती थी परन्तु उर्दू नहीं थी।"

सम्पादकीय

अजन्ताः पाँचवां वर्ष

'अजन्ता' चतुर्थ वर्ष समाप्त करके अगले अंक से पाँचवें वर्ष में प्रवेश कर रहा है। एक वर्ष से कुछ ऊपर हुआ जब कि 'अजन्ता' का बोझ हिन्दी प्रचार सभा ने हमारे कन्धों पर डाला था। तब से हमारा यह निरन्तर प्रयत्न रहा है कि हम 'अजन्ता' को संस्कृति और साहित्य की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण पत्रिका बना सकें; इसके द्वारा उत्तर और दक्षिण के साहित्य और साहित्यकारों में संपर्क स्थापित कर सकें। हम समझते हैं कि हिन्दी को जहाँ भारतवर्ष की भाषाओं में एकता स्थापित करनी है वहाँ उसका उद्देश्य उत्तर और दक्षिण के साहित्यकारों में भी एकता स्थापित करना है और इस प्रकार समस्त राष्ट्र को एकत्व की भावना से अनुप्राणित करना है। हम इस बात का भी प्रयत्न करते रहे हैं कि दक्षिण के लेखक अधिक संख्या में हिन्दी के क्षेत्र में अवत्तीर्ण हों और हमें यह कहने में प्रसन्नता है कि हम 'अजन्ता' के द्वारा बहुत से दक्षिण के लेखकों का ध्यान [illegible] ओर आकृष्ट कर सके हैं। एक मात्र संस्कृति और साहित्य की पत्रिका को चलाने में जो कठिनाइयाँ होती हैं उसकी कल्पना सहज ही में की जा सकती है। पहले तो हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं के पाठक ही कम संख्या में मिलते हैं फिर उच्च साहित्य के तो और भी कम। सभा को 'अजन्ता' के निकालने में पर्याप्त घाटा उठाना पड़ रहा है। अभी तक हमारा पत्र घाटे में ही चल रहा है परन्तु हमें इस घाटे के लिए कोई दुःख नहीं है। हमें अपने कार्य में और उद्देश्य में पूर्ण विश्वास है और हम यह समझते हैं कि यदि हम अपना कार्य सुचारु रूप से करते रहे तो हमें पत्रिका के संचालन में निकट भविष्य में ही सफलता प्राप्त हो सकेगी। हमें जिन हिन्दी के सुकवियों और लेखकों ने 'अजन्ता' के संपादन और संचालन में सहायता प्रदान की है हम उनके प्रति हृदय से आभारी हैं। कोई भी पत्रिका सुयोग्य कवियों और लेखकों के सहयोग के आधार पर ही चल सकती है। हमारी तो यह धारणा है कि एक पत्र को लेखकों और कवियों की एक सहकारी-संस्था होना चाहिए। अभी लेखक किसी पत्रिका में अपना एक लेख भेजने तक ही अपने उत्तरदायित्व को समझते हैं। कोई भी पत्र तब तक जीवित और जागृत पत्र नहीं बन सकता जब तक उसके लेखक और पाठक उसमें जीवित दिलचस्पी न लें। लेखकों की दिलचस्पी एकमात्र अपने लेखों तक ही सीमित नहीं रहनी चाहिए परन्तु उन्हें पत्र की उन्नति में अपना सहयोग देना चाहिए। यदि हमें इस प्रकार का सहयोग प्राप्त हुआ तो हमें पूर्ण विश्वास है कि हम 'अजन्ता' को और भी अधिक समुन्नत और सुन्दर बना सकेंगे।

हम 'अजन्ता' में चिट्ठी-पत्री के स्तम्भ की ओर अपने लेखकों और पाठकों का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित करते हैं। हम गत वर्ष इस स्तम्भ में कुछ छोटे लेखों को भी स्थान देते रहे हैं। इसकी ओर 'अजन्ता' के कई गण्यमान्य लेखकों ने हमारा ध्यान आकृष्ट किया है। हमने अब इस स्तम्भ में किसी प्रकार के लेखों को छापना बन्द कर दिया है और हम इस स्तम्भ में एकमात्र पत्रों को ही प्रकाशित करेंगे। हम यह जानना चाहते हैं 'अजन्ता' में जो लेख या कविताएँ प्रकाशित होती हैं उनकी लेखकों और पाठकों के हृदय में क्या प्रतिक्रिया होती है। यदि हमारे लेखक और पाठक हमें इन लेखों के विषय में अपने हृदय की प्रतिक्रिया लिखेंगे तो हम उन्हें सहर्ष प्रकाशित करेंगे। हम इस स्तम्भ के द्वारा अपने पाठकों के साथ सीधा सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं। इसके अतिरिक्त हम इस स्तम्भ में इस प्रकार के पत्रों को भी प्रकाशित करना चाहते हैं जो पत्र के रूप में हों और जिनमें व्यक्तिगत रूप में किन्हीं सांस्कृतिक या अन्य विषयों पर विचार किया गया हो। वैसे भी पत्र-साहित्य साहित्य के क्षेत्र में अपना एक अलग ही महत्वपूर्ण स्थान रखता है। आशा है इस स्तम्भ को समुन्नत करने में हमें अपने पाठकों और लेखकों का सहयोग मिलेगा।

हम 'अजन्ता' के शुभ चिन्तकों से प्रार्थना करते हैं कि वे हमें 'अजन्ता' की समुन्नति में अपना अधिकाधिक सहयोग प्रदान करें।

कोरिया में शान्ति

अभी कुछ दिन हुए चीन में शान्ति का सम्मेलन मनाया गया था और उसमें विश्व के प्रायः समस्त देशों के प्रतिनिधि एकत्रित हुए थे। इस शान्ति-सम्मेलन की बड़ी धूम थी। यदि शान्ति इस प्रकार के सम्मेलनों के द्वारा ही प्राप्त हो सकती तो शान्ति की समस्या इतनी गम्भीर न होती। इससे पूर्व भी शान्ति-पत्रों पर न जाने कितने लोगों के हस्ताक्षर

लिए गए थे। अमरीका भी यही उद्घोषित कर रहा है कि वह शान्ति चाहता है। संसार की महान् सैनिक-शक्तियाँ विश्व में शान्ति या युद्ध चाहती हैं इसकी परीक्षा कोरिया में होगी, किसी सम्मेलन में प्रस्ताव पास करने से नहीं। आज कई वर्षों से कोरिया में भयंकर युद्ध चल रहा है। प्रतिदिन हजारों की संख्या में चीनी और अमरीकी सैनिकों का संहार हो रहा है। एक वर्ष से ऊपर समय हो गया जब कि कोरिया ओर संयुक्त-राष्ट्र-संघ में संधि-वार्त्ता चल रही है परन्तु अभी तक उसका कोई भी परिणाम दृष्टिगोचर नहीं होता। जब जब भी ऐसा प्रतीत होता है कि अब दोनों युद्ध करनेवाले देशों में शान्ति स्थापित हो जाएगी तभी ज़रा सी बात पर फिर संधि की सभी बातें विफल हो जाती हैं। शान्ति दो ही अवस्थाओं में हो सकती है—या तो लड़नेवाले दोनों दलों में से एक की हार हो जाए या वे दोनों दल लड़ाई के परिणामों को समझते हुए यह उद्घोषित कर दें कि वे लड़ेंगे नहीं परन्तु आपस में सब बातों को समझौते के द्वारा तय करेंगे। जब तक दोनों दलों को अपनी सैनिक शक्ति का अभिमान है, जब तक दोनों दल यह समझते कि हैं उनके पास ऐसे विनाशकारी शस्त्र हैं जिनसे वे कोरिया तो क्या समस्त विश्व को कुछ ही क्षणों में मिट्टी का ढ़ेर बना सकते हैं तब तक शान्ति स्थापित होना संभव नहीं। यदि किसी प्रकार शान्ति स्थापित हो भी गई तो किसी अन्य स्थान पर यह युद्ध की ज्वाला फूट उठेगी। विश्व के प्रत्येक महान् युद्ध के अवसर पर कहा जाता रहा है कि यह युद्ध सभी युद्धों को समाप्त करने के लिए किया जा रहा है, अब अन्य युद्ध नहीं होगा। परन्तु युद्धों का अनुभव यदि किसी बात को प्रमाणित करता है तो इसी को कि एक युद्ध अपने से अधिक भयंकर आने वाले युद्ध की घोषणा करता रहा है। युद्ध को समाप्त करने के लिए युद्ध के विनाशकारी साधनों को नष्ट करना होगा, और इनमें विश्वास रखने के बदले हमें मनुष्यों की सद्भावना और प्रेम के प्रति विश्वास रखना होगा, यदि हममें यह विश्वास नहीं है तो हम युद्ध के साधनों से संसार में शान्ति स्थापित नहीं कर सकेंगे।

कोरिया में इस समय कैदियों की समस्या पर सारा मामला अटका हुआ है। इस दिशा में भारत ने भी अपनी ओर से शान्ति स्थापित करने के लिए प्रयत्न किया है। इन प्रयत्नों की सफलता बहुत कुछ दोनों दलों की शान्ति की वास्तविक इच्छा पर अवलम्बित है। यदि चीन और अमेरीका दोनों इस प्रस्ताव को या इसी प्रकार के अन्य किन्हीं प्रस्तावों को स्वीकार कर लें तो कोरिया में शान्ति स्थापित होने में देर नहीं लगेगी। क्या संसार के समस्त राजनीतिज्ञ संयुक्त-राष्ट्र-संघ में एक स्थान पर बैठ कर भी एक इतने छोटे-से प्रश्न को हल नहीं कर सकते? क्या कैदियों का प्रश्न इतना महान् प्रश्न है कि उसके लिए हजारों नर-बलियों की प्रतिदिन आवश्यकता है और उसकी ओर संसार के अन्य प्रश्नों को छोड़ कर संयुक्त राष्ट्रों के समस्त ध्यान को केन्द्रित करने की आवश्यकता है। यदि संसार के समस्त राजनीतिज्ञ मिल कर कैदियों के प्रश्न को हल नहीं कर सकते तो यह कैसे आशा की जा सकती है कि वे विश्व में शान्ति के समर्थक हैं। सैनिक शक्तियों को युद्ध के अस्त्रों का अभिमान उन्हें युद्ध की ओर खींचे लिए चला जा रहा है। चीन में जो शान्ति-सम्मेलन अभी पेकिंग में किया गया था, क्या उससे शान्ति स्थापित करने की सम्भवता हो सकती है जब कि वह स्वयं कोरिया में सर्वनाशकारी युद्ध को समाप्त नहीं कर सकता। यह बिलकुल स्पष्ट है कि यदि कोरिया में शान्ति स्थापित न हो सकी तो फिर यह रण की ज्वाला समस्त संसार में प्रबल रूप से धधक उठेगी। क्या विश्व के राजनीतिज्ञ विश्व के नष्ट हो जाने पर विश्व के नाश को ही शान्ति का दूसरा नाम देंगे?

कान्फरेन्सों में शान्ति का प्रदर्शन किया जा सकता है परन्तु वास्तविक शान्ति तभी होगी जब कि महान् राष्ट्रों के हृदयों में शान्ति की प्रतिष्ठा होगी।

संयुक्त राष्ट्र संघ और दक्षिण आफ्रिका

दक्षिण आफ्रिका में वर्ण भेद का संघर्ष प्रतिदिन तीव्र होता चला जा रहा है। मलान की सरकार इस प्रश्न पर किसी प्रकार का समझौता करने को तैयार नहीं। वह संयुक्त-राष्ट्र-संघ की सदस्यता को छोड़ सकती है, वह दक्षिण आफ्रिका में संयुक्त-राष्ट्र-संघ के सदस्यों के दक्षिण आफ्रिका में प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगा सकती है, परन्तु वर्ण-भेद के प्रश्न पर पर पुनः विचार करने के लिए तैयार नहीं है। दक्षिणी आफ्रिका के प्रशासन ने इस विषय में अपने ही उच्चतत्तम न्यायालय के निर्णय ठुकरा को दिया है। वह यह समझ रहा है कि वह किसी भी प्रकार किसी ऐसे न्याय के निर्णय को नहीं मानेगा, जिससे दक्षिण आफ्रिका में अश्वेत वर्ण की

जातियों को समान अधिकार प्राप्त हो सकें।

संयुक्त-राष्ट्र-संघ में इस प्रश्न को चलते हुए बहुत काफ़ी समय हो चुका है, परन्तु अभी तक इसका कोई परिणाम नहीं निकल सका। संयुक्त-राष्ट्र-संघ की स्थापना इसलिए की गई थी कि वह संसार के विभिन्न राष्ट्रों के बीच में न्याय कर सके और इस प्रकार विश्व में उस न्याय के आधार पर शान्ति स्थापित कर सके। प्रश्न यह है कि यदि संयुक्त-राष्ट्र-संघ के निर्णय को दक्षिण आफ्रिका की सरकार ने ठुकरा दिया तो उस अवस्था में संयुक्त राष्ट्र संघ क्या करेगा ? कोरिया की लड़ाई में तो संयुक्त राष्ट्र संघ एकदम कूद पड़ा और उस प्रश्न का निपटारा वह अपने हथियारों के बल पर भी नहीं करा सका। अब क्या-संयुक्त राष्ट्र-संघ से यह आशा की जाय कि वह दक्षिण आफ्रिका के इस अन्याय को रोकने के लिए किसी प्रकार के बल का प्रयोग कर सकेगा। संयुक्त-राष्ट्र-संघ में आज जिन लोगों के हाथ में शक्ति है वे क्या इस विषय में कोई क्रियात्मक क़दम उठाएँगे ? क्या संयुक्त-राष्ट्र-संघ दक्षिण आफ्रिका पर इस प्रकार प्रतिबन्ध लगाएगा—उसके व्यापारादि पर, जिससे दक्षिण आफ्रिका यह समझ सके आज विश्व का प्रबुद्ध मत दक्षिण आफ्रिका की नीति के विरुद्ध है। यदि संयुक्त-राष्ट्र-संघ इस विषय में एकमात्र शिथिलतापूर्वक प्रस्ताव पास करके रह गया और दक्षिण आफ्रिका को वैसी ही छोड़ दिया गया जैसा कि मुसोलिनी को एथोरोपिया में ज़ुल्म करने को स्वतन्त्र छोड़ दिया गया था, तो न केवल दक्षिण आफ्रिका में वर्ण-भेद का प्रश्न ही हल नहीं हो सकेगा, परन्तु संयुक्त-राष्ट्र-संघ का अस्तित्व भी ख़तरे में पड़ जायगा। संसार के महान् राजनीतिज्ञ आज विश्व को एक बनाने का स्वप्न देख रहे हैं और उसके लिए संयुक्त-राष्ट्र-संघ जैसी संस्था की संसार को महान् आवश्यकता है। जब तक विश्व की महान् शक्तियाँ अपने स्वार्थों से न्याय को उच्च नहीं समझेंगी तब तक एक राष्ट्र के साथ दूसरे राष्ट्र का संघर्ष होता रहेगा और बलवान् राष्ट्र निरन्तर दुर्बल राष्ट्रों पर अत्याचार करते रहेंगे। क्या संयुक्त-राष्ट्र-संघ के सदस्य अपने राष्ट्र के स्वार्थों की भावना से ऊपर उठ कर समस्त राष्ट्रों में न्याय स्थापित करके विश्व में एकता का मार्ग प्रदर्शन कर सकेंगे ? दक्षिण आफ्रिका में अवस्था प्रति दिन ख़राब हो रही है और अश्वेत जातियों में असंतोष बढ़ता जा रहा है। यह सत्य है कि वे साधनहीन हैं और उनमें आज अपनी यथोचित माँग को मनवाने का कोई ऐसा साधन नहीं है जिससे कि वे विश्व की महान् सैनिक शक्तियों से अपनी न्याययुक्त माँग को मनवा सकें फिर भी संयुक्त-राष्ट्र-संघ का यह परम कर्तव्य है कि वह दुर्बल राष्ट्रों की सहायता एकमात्र वहाँ न करे जहाँ कि उसके अपने स्वार्थ सुरक्षित न हों, परन्तु दुर्बल राष्ट्रों की रक्षा के लिए विश्व के न्याय के आधार पर उसे हस्तक्षेप करना चाहिए।

रेलवे स्टेशन और हिन्दी

हम "अजन्ता" के इसी अंक के चिट्ठी पत्री स्तम्भ में प्रकाशित श्री सप्तरश्मि के पत्र की ओर केन्द्रीय प्रशासन के रेलवे अधिकारियों का ध्यान आकर्षित करते हैं। रेलवे के स्टेशनों पर हिन्दी के नाम एक ढंग से और सुन्दरता से नहीं लिखे जाते। क्या यह सम्भव नहीं है कि सब स्टेशनों पर एक ही ढंग से और सुन्दरतापूर्वक सब बोर्ड लिखे जाएँ। केन्द्रीय प्रशासन अधिकारियों ने अन्य बोर्डों को अधिकतर एकमात्र अंग्रेजी में ही लिखा है, हिन्दी में लिखा ही नहीं गया और जो लिखे गए हैं उनमें सादृश्यता नहीं और जिस ढंग से वे लिखे गए हैं उससे हिन्दी के प्रति निरादर ही उत्पन्न हो सकता है। क्या यह केन्द्रीय प्रशासन का कर्तव्य नहीं है कि जहाँ कहीं रेलवे विभाग में हिन्दी में कुछ लिखा जाय वह उनसे आज्ञा लेकर सादृश्यता और सुन्दर रीति से लिखा जाय। अहिन्दी भाषी प्रान्तों में जहाँ भी रेलवे के स्टेशनों पर हिन्दी भाषा में कुछ भी लिखा जाय वह सुन्दर और एकरूप होना चाहिए। हम इसके साथ साथ रेलवे अधिकारियों का इस ओर भी ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं कि क्या यह संभव है जो विज्ञापन स्टेशनों पर लगाए जाते हैं उनमें से अधिकांश विज्ञापनों को हिन्दी में दिया जाय। इसमें से बहुत से विज्ञापन रेलवे खुद करती है। कुछ विज्ञापनों के द्वारा देश के सुन्दर स्थलों की यात्रा के लिए जनता को आकर्षित किया जाता है। क्या हिन्दी में भी इस प्रकार के विज्ञापनों को नहीं दिया जा सकता ? हम समझते हैं रेलवे अधिकारियों का इस दिशा में प्रयत्न हिन्दी को समस्त राष्ट्र में लोकप्रिय बनाने में सहायक सिद्ध हो सकेगा। क्या रेलवे के केन्द्रीय प्रशासन के अधिकारी इस ओर ध्यान देंगे ?

THE PRUDENTIAL CO-OPERATIVE CENTRAL & URBAN BANK LTD.,
Kingsway, SECUNDERABAD-Dn.

★

BRANCH : **HYDERABAD.** PHONE NO. **7195**

TRANSACTS BANKING BUSINESS OF EVERY DESCRIPTION.

Office Safety Facilities In Uptodate Underground Safe Vaults.

A. H. VENKAT RAO B. A., LL. B.,
Honorary Secretary.

L. N. GUPTA, I. A. S
President.

तार का पता : हिन्दी टेलीफ़ोन नं. ५४५०

हिन्दी, तेलुगु, मराठी और अंग्रेज़ी की सब तरह की सुन्दर छपाई के लिए हमेशा याद रखिये।

हिन्दी प्रेस

हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा
श्रीराम हिन्दी भवन
नामपल्ली • स्टेशन रोड • हैदराबाद-द.

हिन्दी के उत्तमोत्तम तथा उच्च श्रेणी के

के

साहित्य

की

प्राप्ति के लिए एकमात्र स्थान
हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा
श्रीराम हिन्दी भवन,
नामपल्लीरोड : हैदराबाद-द.
टेलीफ़ोन नं. ५४५० तार—"हिन्दी"

औद्योगिक विकास राष्ट्र की प्रगति के लिए अनिवार्य

हैदराबाद प्रशासन के संरक्षण में

अखिल भारतीय औद्योगिक प्रदर्शिनी

पहली जनवरी
से
दस फरवरी १९५३

स्टाल सुरक्षित करने की अंतिम तिथि १५ दिसम्बर १९५२

नोट : अखिल भारतीय काँग्रेस का अधिवेशन प्रदर्शिनी काल में १४ जनवरी से १८ जनवरी १९५३ तक हैदराबाद में आयोजित हो रहा है। जिसके लिए हिन्दुस्तान के विभिन्न स्थानों से लाखों की संख्या में जनता पधार रही है। इस अवसर पर प्रदर्शिनी में भाग लेकर देश के औद्योगिक विकास को प्रोत्साहन दें।

अन्य विवरण

प्रदर्शिनी कार्यालय, मुकर्रमजाही रोड, हैदराबाद से प्राप्त करें।

तार का पता :
एग्ज़ीबिशन

टेलीफोन नंबर
४५५३

प्रकाशक :– प्रियबन्धु, हिन्दी प्रेस, हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद-द.

पुस्तकालय
029510
गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय

079510